श्री क्षुल्लक जितेन्द्रकुमारजी

(ग्रंथ लेखक)

भूमिका

समस्त भेदभाव से रहित तथा पक्षपात से शून्य, साम्यदृष्टि वीतराग गुरुओ का उपदेश यद्यपि सर्व जन–कल्याण के अर्थ होता है, परन्तु अरे रे ! दुष्ट पक्षपात व साम्प्रदायिकता ! तेरे गाढ आवरण को छेद कर वह कैसे पार हो। मोह कहो या कहो मिथ्यात्व, एकान्त कहो या कहो अज्ञान, भ्रम कहो या कहो पक्षपात, ये सब साम्प्रदायिकता के एकार्थवाची नाम है । इसके गहन पटल द्वारा आच्छादित व्यक्ति का त्रिलोकदर्शी अन्तर्सूर्य कैसे प्रकाशित हो ? इसकी बू से वासित व्यक्ति के नथनो मे अध्यात्म सुगन्धिका प्रवेश कैसे हो ? इसके रंगीन चश्मे को चढा कर तत्व का वास्तविक उज्ज्वलरूप कैसे प्रतीति गोचर हो । इस पर भी ख्याति लाभ का प्रबल आकर्षण, लोक-प्रशंसा का मीठा विष, तनिक मात्र क्षयोपशम हो जाने पर विद्वत्ता का अहं-कार, तथा भाषण कला का झूठा गर्व । एक करेला दूसरे नीम चढ़ा । एक तरफ वीतरागियो कि धीमी धीमी मधुर पुकार और दूसरी ओर साम्प्रदायिकता व लोकेपणा की भयकर गर्जनाये, कैसे सुनाई दे ?

वीतराग व साम्य दृष्टि हुए बिना विश्व का सुन्दर व्यापक रूप कोई कैसे देख सकता है, जिसको देख कर व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है। उपरोक्त झूठे गर्व के कारण व्यक्ति समझ बैठता है कि मै जो जानता हूँ वस वही ठीक, इसके अतिरिक्त दूसरे सभो की बात निःस्सार है । और केवल उसकी बाह्य प्रभावना को देखकर जगत भी खिच जाता है उसकी तरफ़ । वह समझ बैठता है–ओह ! मै बहुत बड़ा हो गया । मेरे उपदेश मे १०,००० श्रोता आते है । कुंए का मेढक बेचारा इससे अधिक सोच भी क्या सकता है, मानो १०,००० या ५०,००० व्यक्तियो मे ही समस्त विश्व सीमित है । जगत बेचारा क्या जाने तत्व को, केवल प्रभावनावश उसकी आवाज़ मे ही अपनी आवाज़ मिलाकर बोलने लगता है, कि वास्तव मे यही सत्य है, मानो उसको ईश्वरीय अधिकार प्राप्त हुआ हो सच्चे व झूठे का सर्टीफिकेट देने का ।

अरे भोले व्यक्तियो ! यदि सच्चे व झूठे की परख करने की सामर्थ्य तुम्हारे मे होती तो संसार की इस गहरी दलदल मे फंसे हुए क्यों छटपटाते होते ? चार्वाक, नैयायिक, वैशेषिक, साख्य, योग, कर्ममीमासा, दैवीमीमांसा, ज्ञान मीमासा, बौद्ध व जैन आदि अनेकों सम्प्रदाय है। अन्य सम्प्रदायो की तो बात ही नही, क्योंकि उन्हे तो एकान्तवादी की उपाधि ही प्रदान कर दी गई है, पर आश्चर्य तो जैन सम्प्रदाय के उन वर्तमान पडित व साधु त्यागी वर्ग पर आता है जो कि अपने को अनेकान्तवादी कहते हुए भी साक्षात पक्षपात की खाई मे पड़े हुए दूसरो को प्रकाश दिखाने चले है, और स्वय अन्धकार मे रहते हुए जिन्हे यह भी पता नही कि जिस बात को तुम अनेकान्त के नाम से प्रचार करने चले हो, वही तो एकान्त है। क्योकि यदि ऐसा न होता तो दूसरो की दृष्टि का निराकरण करने की क्या आवश्यकता थी।

अनेको विचारक हुए और होगे। यह कोई आवश्यक नहीं कि जितना कुछ उपदेश प्राप्त हो चुका है, बस उतना ही है। प्रकाश भी अनन्त है और विश्व भी, वुद्धिये भी अनन्त है और अनुभव भी। फिर कैसे इसे शास्त्रो के पन्नो मे सीमित करके रखा जा सकता है, जो कि उन पत्रो को उलट-पुलट कर किसी बात की सत्यता की साक्षी लेनी पड़े। अरे प्रभो ! यदि तू इस गम्भीर रहस्य को समझना चाहता है तो अनेकान्त व स्याद्वाद की शरण मे आ, जहा आकर कि तुझे जगत मे किसी भी लौकिक या पारलौकिक व्यक्ति की बात गलत प्रतीत होगी ही नही। जहा आकर कि बजाय दूसरे का निषेध करने के तू अपनी वुद्धि को दूसरों की दृष्टि के अनुसार बना कर उसके अभिप्राय को समझने का अभ्यास कर सकेगा। तब तेरे हृदय मे द्वेष के स्थान पर प्रेम, कटुता के स्थान पर माधुर्य, और सकुचित हृदय के स्थान पर व्यापक प्रकाश प्रगट होगा। जगत मे जो कुछ भी, जिस किसी भी, व्यक्ति या सम्प्रदाय द्वारा कहा जा चुका है, कहा जा रहा है या आगे कहा जायेगा, वह सब किसी न किसी अपेक्षा सत्य की सीमा को

उल्लंघन नही कर सकता, और फिर विचारक ज्ञानियों की तो बात ही क्या ? क्योकि वे निष्प्रयोजन व निरर्थक बात कहते ही नही ।

यदि वास्तव मे कल्याण की इच्छा है, यदि वास्तव मे अनेकान्त का रूप देखना चाहता है, यदि वीतरागियों के अभिप्राय को समझना चाहता है तो पक्षपात व लोकेषणा की खाई से बाहर निकल और देख विश्व कितना बड़ा है । दूसरे का निषेध करने की बजाय अपनी एकान्त बुद्धि का निषेध कर । और इस प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ आद्योपान्त पढ़ इस 'नय दर्पण' शास्त्र को, एक बार नही कई बार । इसमे अनेको मूलधारणाओं व अभिप्रायों का परिचय 'नय' के नाम से दिया गया है । उनके अतिरिक्त भी अनन्तों धारणाये व अभिप्राय सम्भव है । उन सबके झगड़े को दूर करके उनमे परस्पर मैत्री उत्पन्न करना ही इसका फल है ।

जिन वीतरागी गुरुओं के परम प्रसाद से यह अमूल्य निधि मुझे प्राप्त हुई है, मै उनके चरणाम्बुजो की गन्ध का लौलुप हो उन्ही म लीन हो जाना चाहता हूँ । सेठ श्री राजकुमारसिंहजी ने जिन उत्तम भावनाओं से इस ग्रन्थ को अर्थ योग दिया है वह उनको कल्याण दायक हो । ब्र० श्री बाबूलालजी को इसके प्रकाशन मे अनथक परिश्रम करना पडा है, प्रभु उनको इसका यथार्थ फल प्रदान करे । इसके अतिरिक्त भी जिन जिन महानुभाव ने इसमे सहयोग दिया है वे सब श्रेयससिद्धिपूर्वक नि.श्रेयस लाभ प्राप्त करे ।

स्याद्वाद जैसे गम्भीर व जटिल न्याय का प्ररूपण करना मुझ जैसे बुद्धिहीन बालक के लिये ऐसा ही है जैसा कि मेढक द्वारा भगवान का गुणानुवाद किया जाना । फिर चहु ओर प्रसारित एकान्त की अटूट झड़पो से पीड़ित हृदय के रुदन मे से यह जो कुछ स्वत प्रगट हो गया है वह सब गुरुओं का प्रताप है । इस ग्रन्थ को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने के लिये हर बातकी पुष्टि मे आगम के अनेको प्रमाण उद्धृत किये गए है । फिर भी त्रुटिये होनी अवश्यम्भावी है, जिनके लिये विद्वज्जन मुझे क्षमा करे. और उनको यथायोग्य सुधार करके मुझे कृतार्थ करे ।

लेखक

आभार

प्रस्तुत ग्रन्थ न्याय शास्त्रों के गहन मथन से प्राप्त नवनीत का प्रतिनिधित्व करने का व्यर्थ ही गर्व कर रहा है, क्योंकि इस के लेखक ने कभी न्याय पढा और न कभी उसकी सूक्ष्मताओ का परिचय प्राप्त किया है। फिर भी उसने इतना वडा दु साहस किसके वल पर और क्यो कर किया इसका उत्तर वह इसके अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकता, कि अजमेर व इन्दौर की भव्य मण्डलियों की प्रेरणा के फल स्वरूप ही इसका निर्माण हो गया है, जिसमे अपने कर्तृत्व का अभिमान करना ऐसा ही है, मानो चोटी पहाड को उठाकर ला रही हो। इसके कर्तृत्व का वास्त-विक श्रेय तो गुरुदेव श्री शुभ-चन्द्राचार्य को ही है, जिन के द्वारा प्रदत्त प्रकाश मे कि उन शब्द वर्ग-णाओ का सग्रह हुआ है।

फिर भी प वंशीधरजी सिद्धात शास्त्री इन्दौर का लेखक हृदय से आभारी है कि उन्होने अपना अमूल्य समय देकर इस ग्रन्थ का शोधन करने मे उसकी सहा-यता की है और इस ग्रथ को कदाचित ग्रन्थ कहलाने का अधिकारी बनाया है।

स्व श्रीमती सौ प्रेमकुमारीजी काशलीवाल

श्री सौ. प्रेमकुमारीदेवी का

संक्षिप्त परिचय

श्री सौ. प्रेमकुमारी देवी श्री० दानवीर रायबहादुर जैनरल तीर्थभक्तशिरोमणि श्रीमंत सेठ राजकुमार सिंह जी एम ए. एल एल बी. इन्दौर की धर्मपत्नी और अनेक पद विभूषित रावराजा जैन दिवाकर स्व. श्रीमंत सेठ हुकमचन्द जी साहब की पुत्रवधू थी।

आपका जन्म श्रीमान् सेठ फूलचन्द जी सिवनी (मालवा) निवासी के यहां हुआ था। श्री हुकमचन्द जी पाटनी, बी.ए. एल एल.बी., भू पू सेल्समेन दी राजकुमार मिल्स इन्दौर की आप बहन थी।

विक्रम सं १९८४ मे जब आपका विवाह हुआ था, उस समय आपकी उम्र १२ वर्ष की और श्री० भैयासाहब राजकुमार सिह जी की उम्र १४ वर्ष की थी।

सौ प्रेमकुमारीजी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा उत्तीर्णकर साहित्यरत्न तक अध्ययन किया था तथा सर्वार्थसिद्धि आदि उच्च धर्म ग्रथो का ज्ञान प्राप्त किया था।

आप अत्यन्त विनम्र, सेवाभावी और धार्मिक महिला थी। श्रीमती दा. शी. सेठानी साहब कंचनबाई जी (धर्म पत्नी श्रीमत सर सेठ हुकमचद जी साहब) के प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक एव गार्हस्थिक कार्य मे सदा साथ रहा करती थी। श्री सौ० दा.शी. कचनबाई दि० जैन श्रविकाश्रम, श्री सौ. दा.शी. कचनबाई प्रसूति-

गृह एवं विधवा सहायता फड आदि पारमार्थिक सस्थाओं के संचालन मे श्री पूज्य मा साहब को सहयोग देती रहती थीं । आप प्रतिदिन जिनेन्द्र पूजन, सामायिक और स्वाध्याय किया करती थी तथा घर मे सभी पर आपकी धार्मिकता और प्रेमपूर्ण व्यवहार का प्रभाव था। आप इन्दौर की महिला मंडल आदि संस्थाओ की कोषाध्यक्षा व मत्रिणी आदि का कार्यभार सभालकर महिला समाज की सेवा मे सलग्न रहती थी । आपके स० १९८७ मे प्रथम पुत्ररत्न श्री राजा वहादुर सिह जी का जन्म हुआ । पश्चात् श्री महाराजा वहादुरसिहजी, श्री जम्बूकुमार सिह जी, श्री विद्युल्लता वाई, चि० चन्द्रकुमारजी और चि० यशकुमार जी हुए । तृतीय पुत्र श्री वीरेन्द्रकुमार सिह जी का ७ वर्ष की उम्र मे स्वर्गवास हो गया । श्री राजावहादुर सिह जी, श्री महाराजा बहादुर सिह जी और जम्बू कुमार सिह जी का शुभ विवाह सपन्न हो चुका है । आप तीनो ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपने फर्म के कामो को सभाल रहे है और समाज सेवा मे सदा आगे रहते है । चि० विद्युल्लताबाई का विवाह श्रीमान सेठ भँवरलाल जी साहब सेठी (श्री सेठ विनोदीराम जी वालचद जी) के सुपौत्र और श्रीमान् कैलाशचन्द्र जी के सुपुत्र कुँवर नलिनचन्द्र जी के साथ हुआ है ।

आपके वैभवसपन्न विशाल परिवार मे श्रीमंत भैया साहव राजकुमार सिंह जी एम. ए एल एल बी की वहन और आपकी ननन्द श्रीमती सौ० रत्नप्रभा देवी (धर्म पत्नी, श्रीमान् वा भृ रा व सेठ लालचन्द जी सेठी, उज्जैन) श्रीमती सौ चन्द्रप्रभा देवी (ध प श्रीमान् सेठ रतनलाल मोदी, इन्दौर) श्रीमती सौ स्नेहराजावाई (ध प श्रीमान् राजमल जी सेठी इन्दौर) का आपको पूर्ण स्नेह एवं सहयोग प्राप्त था ।

श्रीमंत भैया साहब राजकुमार सिंह जी के ज्येष्ठ भ्राता दा वी, रा व, रा भू, रावराजा, लोफ्टिनेट कर्नल, श्रीमत सेठ

हीरालाल जी सा काशलीवाल (श्री तिलोकचंद जी कल्याणमल जी) एवं लघुभ्राता श्रीमान् सेठ देवकुमारसिह जी काशलीवाल एम ए. (श्री औंकार जी कस्तूरचन्द जी) तथा बहनोई श्रीमान् सर सेठ भागचदजी सोनी, अजमेर आदि समाजमान्य एवं प्रसिद्ध महानुभाव है।

सं. १९५६ मे सौ० प्रेमकुमारी जी को अकस्मात शरीर मे सामने की ओर गठान उठी थी जिसका आपरेशन बंबई मे हो गया था। उस समय से डांक्टरो को केसर का संदेह हो गया था। श्रीमती सौ. प्रेमकुमारी जी, यह मालूम होते ही अपना पूरा समय धर्माराधन मे देने लगी थी। सं० १९५८ की फर्वरी मे जब चि० विद्युल्लतावाई के विवाह का मंडप मुहूर्त था, फिर दूसरीबार आपके गठान उठी और उसी दिन आपको बंबई जाना पड़ा। अपनी सुपुत्री के २०-२-१९५८ के विवाह के पश्चात् ३ मार्च १९५८ को भैया साहब राजकुमार सिह जी ने आपको अपनी तृतीय पुत्रवधू सौ० उर्मिला देवी (सुपुत्री श्री० सेठ गणपतराय जी सेठी, लाडनू) के साथ अमेरिका के लिए बंबई प्रस्थान किया। लन्दन में जहा आपके तृतीय सुपुत्र श्री जम्बूकुमारसिंह जी अध्ययन कर रहे थे, दो दिन ठहर कर वहां से अमेरिका पहुँच कर ९ मार्च १९५८ को न्यूयार्क के बड़े हास्पिटल मे भर्ती करा दिया। वहा आपकी जाच होकर आपरेशन करा दिया गया।

कुछ दिन बाद डाक्टर से ज्ञात हुआ कि आराम नही होकर केसर का असर लीवर मे पहुंच गया है। रोग को असाध्य जानकर भैया साहब ने भारत लौटना निश्चित कर लिया था, पर सौ प्रेमकुमारीजी का स्वास्थ्य ज्यादा बिगड जाने से हवाई जहाज का रिजर्वेशन केंसिल कराना पड़ा। भैया साहब ने अपनी विदुषी धर्मज्ञ धर्मपत्नी को धर्म मे पूरा सावधान किया और आखिर ३० अप्रेल १९५८ की रात्रि को ११।।। बजे श्री १००८ चन्द्रप्रभ भगवान (आपके इन्द्र भवन मे स्थित जिन चैत्यालय की मूल नायक प्रतिमा)

का स्मरण करते हूए शांतचित्त से आपका स्वर्गवास हो गया । अमरिका मे ही १ मई को आपके शरीर का दाह सस्कार कर दिया गया । केवल ४२ वर्ष की उम्र मे ३० वर्ष तक साथ रहने वाली अपनी परमप्रिय सहधर्मिणी पत्नी के इस वियोग से भैया साहब राजकुमारसिहजी को व समस्त परिवार को महान दु.ख होना स्वाभाविक था । ससार मे अधिक से अधिक जो उपचार हो सकता था, तत्परतापूर्वक करने मे कोई बाकी नही रखा और वम्बई मे व विदेश मे एक क्षण के लिए भी नही छोड़ा और अपना कर्त्तव्य निभाया परन्तु भवितव्य दुर्निवार है । दाम्पत्य जीवन और पति-पत्नी के प्रेम का यह अनुकरणीय उदाहरण है जिसके परिणामस्वरूप भैया साहब ने उस समय अपनी ४४ वर्ष की उम्र होने पर भी दूसरे विवाह का विचार तक नही किया ।

श्री दि. जैन महिला समाज इन्दौर की ओर से श्री सौ. प्रेमकुमारी के स्वर्गवास पर शोक सभा हुई थी तथा बाहर से सैकडों स्थानो पर शोक सभा एव शोक सवेदना सूचकतार व पत्रो द्वारा शोक सतप्त परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट की गई थी । आपकी तेरहवी के उठावने के निमित्त से कोई जाति भोज नही किया गया था ।

आपके नाम से कई वर्षो से श्री शातिनाथ दि. जैन जिनालय, सर हुकमचद मार्ग, इन्दौर मे सौ. प्रेमकुमारी दि जैन ज्ञानवर्द्धिनी पाठशाला स्थापित है ।

श्री पूज्य क्षुल्लक जिनेन्द्रकुमारजी ने इन्दौर मे पधारकर इन्द्रभवन मे नयो के विषय मे वोधपूर्ण प्रवचन देकर उन्हे लिपिवद्ध कर दिया था । श्रीमत सेठ राजकुमारजी साहव ने उस रचना को प्रस्तुत ग्रथ 'नयदर्पण' के दो भागो मे अपनी स्वर्गस्थ धर्मपत्नी की स्मृति मे प्रकाशित करा दिया है और उसे श्री स हु दि जैन पारमार्थिक सस्थाएं इन्दौर को भेट कर दिया है जिसकी आय से आगे प्रकाशन होता रहेगा ।

विषय-सूची

नय दर्पण

मंगलाचरण

खण्ड ज्ञान के पक्षपात तज, एक अनेक लखा प्रत्यक्ष ।
तज कठोरता ज्ञान सरलता, अनेकान्त की व्यापकता लख ।।
अन्तर तम हर अन्तर बल से, ज्ञान कला विकसी जगमग ।
चन्द्र पार्श्व अरु बाहूबलि को, नित मस्तक हो नत शत-शत ।।

१

पक्षपात व एकान्त

दिनाक २२-२३।६।६०
प्रवचन नं. १

१. पक्षपात का विष २. वचनों में अन्तरक भावों की झलक
३. पक्षपात का कारण ४. कुछ और भी हैं ५. वैज्ञानिक बन
६. आगम में सब कुछ नही ७. कोई भी मत सर्वथा झूठ नही
८. अनेकान्त वाद का जन्म ।

१ पक्षपात का विष

अद्वितीय अन्तर प्रकाश से सकल विश्व का एक क्षण में अवलोकन कर लेने के कारण समस्त पक्षों से अतीत, हे परम गुरु! मेरे भी हृदय के पक्षपातों को विनष्ट कीजिए, जिन पक्ष-पातों के कारण कि मेरा हृदय इतना कड़ा बना हुआ है कि मुझे आज किसी की बात सुनने तक की भी सामर्थ्य नहीं है, जिसके कारण कि मैं हित के आश्रय पर भी अपना अहित ही कर बैठता हूँ। इन पक्षपातों के कारण मैंने अपना ज्ञान इतना जटिल बना लिया है तथा इसे इतना सीमित व संकुचित कर लिया है, कि इसमें किसी भी नई बात को,

भले ही वह मेरे हित की क्यों न हो, प्रवेश पाने तक को भी अवकाश नही रहा है। मेरी धारणा से विलक्षण या विपरीत कोई एक शब्द मात्र भी आज मुझ मे क्षोभ उत्पन्न कर देता है और मै अन्दर ही अन्दर जलता या कुढता हुआ व्याकुल हो उठता हूँ। इन पक्षपातों ने आज मेरे अन्दर से कोई भी नई बात सुनने व सीखने की जिज्ञासा तक को धो डाला है, और मै चला जा रहा हूँ अहंकार के घोड़े पर सवार हुआ किस दिशा मे, यह स्वयं मै नही जानता, सभवत: ऐसे अंधकार की ओर जहां मुझे मेरी धारणा के अतिरिक्त कुछ दिखाई न दे। हे नाथ ! अद्वितीय तेज का उपासक बन कर भी मे प्रकाश की बजाये अन्धकार मे ही खोया जा रहा हूँ। मेरी रक्षा करे। मेरे हृदय मे भी प्रकाश जागृत करें। मेरी सकुचित दृष्टि को हर कर इसको व्यापकता प्रदान करे। इसकी जटिलता को खोकर इसमे सरलता का बीजारोपण करे। मै बड़ा वृक्ष बना रहने की बजाय अब एक छोटा-सा पौधा बन जाना चाहता हूँ, जो कि बड़ी से बड़ी आधी से भी टूटने न पाये, बल्कि तनिक सी हवा आने पर भी झुक जाये। छोटे व्यक्ति को छोटा ही बने रहना योग्य है। अभिमान व अहंकार के बल पर में झूठ मूठ अपने को बड़ा समझने लगा और झुकना भूल गया। नाथ! मुझको अब झुकना सिखा दीजिए। किसी की भी बात सुनकर मेरे अन्दर क्षोभ उत्पन्न होने की वजाय उसके समझने के प्रति झुकाव होना चाहिये।

अरे रे ! देखो इस पक्षपात का विषैला फल, जिसने सुनने तक की सहिष्णुता भी आज मुझ मे नही छोड़ी है, अपने हित को जानने की पात्रता कहा से आये, जब किसी की बात सुनूगा ही नही तो जानूगा कैसे, और बिना जाने मेरे जीवन का कल्याण व उत्थान होगा कैसे ? कदाचित किसी की बात को सुनकर या पढ़कर या स्वय अपनी विचारणा के वल पर जानकर, मेरे अन्दर जो यह धारणा उत्पन्न हो गई है, कि मै सव कुछ सीख गया हूँ, इसके अतिरिक्त सीखने को अब कुछ शेषनही रहा है, वह कितनी विषैली है, इसको आज तक मै जान न सका। खेद

तो इस बात का है कि आपकी शरण मे आकर भी मैं अपनी उस भूल को पकड़ न सका। मैंने आपकी कल्याणकारी वाणी को अनेकों ज्ञानी जनों के मुख से सुना, परन्तु सुनने व सीखने के लिये नही, बल्कि उपदेष्टा को सुनाने व सिखाने के लिये, उसके दोष निकालकर उसे परास्त करने व नीचा दिखाने के लिये। जो बात स्वयं मेरे कल्याण के लिये मुझे बताई जाती है, उसी मे मे कुछ विरोध की झलक देखने लगा, वाद-वितडा व शास्त्रार्थ करने लगा, और आश्चर्य यह है कि इस वितंडा का नाम मैंने रखा धर्म चर्चा, और इस प्रकार सदा हित मे से अहित, अमृत मे से विष, साम्यता मे से पक्ष-पोषण, विरागता मे से द्वेष, शाति मे से व्याकुलता ही पढता आया हूँ। धिक्कार हो इस मेरे पक्षपात को। प्रभु ! इस दुष्ट से मेरी रक्षा करे।

अहितकारी लौकिक बातों मे, प्रतिदिन के व्यापारो मे तो कभी मैं इस प्रकार की भूल नहीं करता। वहां तो इस प्रकार की असहिष्णुता की झाकी मुझ मे प्रगट नही हो पाती। वहां तो मै बजाय अपना व्यापार दूसरों को सिखाने के सदा दूसरे का व्यापार सीखने व जानने का प्रयत्न करता रहता हूँ, अपनी बात को गुप्त रखकर दूसरे की बात को जिस किस प्रकार भी जानने की इच्छा करता रहता हूँ, पर यहां कल्याण मार्ग मे तो उल्टा ही क्रम हो गया है। यहां तो मै दूसरे की बात सुनने व सीखने की बजाय अपनी ही बात दूसरों को सुनाने व सिखाने का प्रयत्न किया करता हूँ। वहा तो कमाई को स्वयं ही भोगता था, किसी की नजर लगने तक से उसकी रक्षा किया करता था, परन्तु यहां अपनी जानी हुई बात को बिना प्रयोजन के भी मै सबको देना चाहता हूँ। लेने वाले की इच्छा हो या न हो, उस पर लाद देना चाहता हूँ। यह बात यदि कल्याण भावना से की होती तब तो अच्छा ही था, परन्तु ऊपर से कल्याण भावना मे रंगा वह मेरा परिश्रम अन्तरंग में देखने पर कुछ उल्टा-सा ही दीख पड़ता है। वहा दूसरे के कल्याण की भावना कहां है। वहां तो है केवल मेरा अहंकार व अभिमान, विद्वता का

प्रदर्शन तथा अधिक से अधिक अपने हामियो व अनुयायियों की सख्या मे वृद्धि करने की भावना । वहा पड़े है लोकेषणा व स्वार्थ, और इस प्रकार कल्याण मे से निकली भी वह बात मेरे व सुनने वाले दोनो के लिये अकल्याणकारी हो जाती है ।

२. वचनो मे ग्रतरग भावो की झलक

मेरे लिये तो अकल्याणकारी है इसलिये, कि मै उसमे अपनी लोकेषणा व स्वार्थ का ही प्रदर्शन करता हूँ । उसमे भले कल्याण हो पर वह मै देखने का प्रयत्न ही कब करता हूँ । मुझे तो उसमे दिखाई देती है कोरी विद्वता व मेरे पक्ष का पोषण । अभिमान के दर्शन करते रहने पर सरलता कैसे आ सकती है । और दूसरे के लिये अकल्याणकारी हो जाती है इसलिये, कि अभिमान मे रगी हुई उस बात मे सुनने वाले बेचारे को अभिमान के अतिरिक्त दिखाई ही क्या देगा ? शब्द तो जड़ है । वास्तव में उसका रहस्य तो उस भावना मे छिपा पड़ा है, जिसके आधार पर कि वह निकल रहा है । शब्द मुख से कभी अकेला नही निकला करता, बल्कि अपने साथ कुछ और वस्तु को लेकर ही वह प्रगट होता है । वह वस्तु अदृष्ट व अव्यक्त भले हो पर उसे सुनने वाला महसूस अवश्य कर लेता है । जैसे कि—मै क्रोध या द्वेष को हृदय मे रखकर यदि आपको यह शब्द कहूं कि, "वीतराग की शरण मे आकर भी तू यह शास्त्रार्थ करता है, वाद-विवाद करता है । तुझे लज्जा नही आती ।" और यही वाक्य आपके हित को व साम्यता को हृदय मे धर कर यदि कहू कि "भो भव्य! वीतराग की शरण मे आकर भी तू यह शास्त्रार्थ या वाद-विवाद करता है, क्या लज्जा नही आती," तो आप स्पष्ट रूप से इस एक ही वाक्य मे से दो अर्थो का ग्रहण किये बिना नही रहेगे । यद्यपि लेखनी मे उस भाव का प्रदर्शन किया जाना अशक्य है, पर अनुमान किया जा सकता है । दोनों भावों को धारण करने के कारण मेरी मुखाकृति व शब्दों के साथ-साथ सुनाई देने वाली व दीखने वाली कर्कशता व सौम्यता क्या इस एक ही वाक्य के अर्थ का प्रभाव आप पर जुदा-जुदा न डालेगी?

पहिला वाक्य सुनकर आपको क्रोध तथा दूसरा वाक्य सुनकर कुछ पश्चाताप ही होगा ।

बस सिद्धान्त निकल गया । क्रोध से निकले शब्द का अर्थ है क्रोध और साम्यता से निकले शब्द का अर्थ है साम्यता । अन्तरग के जिस अभिप्राय मे से शब्द उत्पन्न होता है उसका अर्थ व प्रभाव भी वही होता है, भले ही उस शब्द का अर्थ कुछ भी हो । कर्कश भी वचन हितकारी, व मीठे भी वचन अहितकारी होते देखे जाते हैं । उसका कारण केवल वक्ता के अन्दर मे बैठा अपना परिणाम ही है । इसीलिए जिस बात को मै धर्म चर्चा कहता आया हूं वह वास्तव मे अभिमान चर्चा बनती रही हैं । और इस प्रकार धर्म के नाम पर मै सदा अपने व दूसरे के जीवन मे विष घोलता चला आ रहा हू । मजे की बात यह है कि बात करता हूं कल्याण की । नाथ ! कल्याण पक्षपात मे नही सरलता मे से निकलेगा । दूसरे को समझाने से नही स्वयं समझने से निकलेगा । अभिमान से नही साम्यता से निकलेगा । यदि वास्तव मे कल्याण की भावना रखी होती तो चर्चा या समझने समझान का ढग ही बदल जाता । मेरी बात साम्यता मे से निकल रही है, या अगले की बात मे साम्यता से सुन रहा हू या अभिमान से, यह बात किसी अन्य से पूछकर निर्णय करने की आवश्यकता नही, हृदय स्वय इस बात का साक्षी है । इतना ही सकेत करना यहा पर्याप्त है कि यह बात कल्याणार्थ व हितार्थ है, अहंकार पोषणार्थ नही । अत. भो चेतन! समस्त अन्तरंग के पक्षपातो व पुरानी धारणाओं को दबाकर अब इस अमृत रस का पान करने का प्रयत्न कर । दूसरे को समझाने का भाव दबाकर स्वयं समझने का प्रयत्न कर । अपने हित की भावना जागृत करके उसे सुन व समझ । भले ही तू ऐसा मानता हो कि मै तो वह बात अच्छी तरह समझता हू । भले ही तेरे साथ विद्वत्ता की उपाधि लगी हो, पर वास्तव मे उस बात का रहस्यार्थ आज तक तू सीख नही पाया । यदि सीख पाता तो अन्तरग से निकली यह शब्दों की खेचातानी शेष न रह पाती । पक्षपात का स्थान सरलता ने ले लिया होता ।

३. पक्षपात का कारण

इस पक्षपात की उत्पत्ति के कई कारण है। उनको भी जान लेना यहा आवश्यक है, क्योकि उनको जाने बिना मै सावधानी किस दिशा मे वर्तूंगा, और सावधानी वर्ते बिना पक्षपात को दूर भी कैसे कर सकूगा। केवल शब्दो मे ही बात कर रहा हू कि "पक्षपात बुरा है। इसे दूर हो जाना चाहिये।" और ऐसा ही आगे करता रहूँगा। न अब तक अपनी भूल को स्वीकार करके उसे दूर करने पर प्रयत्न किया है और न ही करूगा। पक्षपात दूर कैसे होगा ? भूल को जीवन में खोजे बिना केवल बात करने से भूल दूर न होगी। भूल दूर करने के लिये प्रयास करना होगा, बल लगाना होगा। पर प्रयत्न प्रारम्भ करने से पहले भी उस भूल को जानना आवश्यक है। अतः अब सुन, गुरुदेव तुझे वह भूल बता रहे है, जिसके बल पर कि यह पक्षपात जन्मा तथा पुष्ट हुआ है।

पहिला कारण है किसी बात को पूरा न सुनना तथा अधूरा ही सुनकर तृप्त हो जाना। जैसे कोई एक ज्ञानी जिसके हृदय मे अनेको बाते कहने के लिए पड़ी है, कुछ बात कह रहा है। मैने उसे आज सुना। पर कल मै सुनने न जा सका। कल आपने सुना हम दोनो को ही वे बाते अच्छी लगी, और समझ बैठे कि जीवन की भलाई का सर्वस्व हमने सीख लिया, अर्थात् इतना ही कुछ पर्याप्त है, इससे अधिक वह वक्ता और कहेगा ही क्या। एक अहकार व अभिमान उत्पन्न हो गया कि मैने एक नई बात सीखी है, जो अन्य साधारण व्यक्ति नही जानते। मै उस बात का उनमे प्रचार करने लगा। नई बात सुनकर उनके अन्दर से स्वाभाविक प्रशसा के भाव निकल पडे, जिसने मेरी लोकेषण को उत्तेजित कर दिया, अभिमान को और बल दिया, ज्ञान मे करडाई आ गई। किसी के सामने झुकना मै भूल गया, अर्थात् किसी अन्य की बात समझने की पहिली भावना विलुप्त हो गई, क्योकि अपनी धारणा के आधार पर आज मै सब कुछ मानो जान चुका हूँ, या यू कहिये कि सर्वज्ञ बन चुका हूँ—बिना इस बात को विचारे

कि यह विष मेरे जीवन को किस बुरी तरह हनन कर रहा है । मै और आप दोनों ही समान रूप से मात्र अपनी-अपनी धारणाओं को, ही सच्ची समझकर दूसरे की धारणाओं पर आक्षेप करके उन्हे झूठी ठहराने का प्रयास कर रहे हैं । दोनों के ही प्रशंसकों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है । हम दोनों ही एक दिन उस अदृष्ट शक्ति द्वारा खेच लिए जाते है, जिसकी गोद में जाकर सब विश्राम पाते है । अर्थात् मृत्यु के अन्न बन जाते है । परन्तु हमारे उस पक्ष का प्रचार सदा के लिए उन अनुयाइयो के हाथ में वाद-विवाद व शास्त्रार्थ का एक शस्त्र बनकर रह जाता है, जिसके द्वारा परस्पर मे लड़ते रहने मे ही वे बेचारे धर्म की कल्पना करके, स्वयं अपने जीवन मे आग लगाते रहते हैं । ओह ! कितनी दयनीय है उनकी दशा । प्रभू के अतिरिक्त कौन उनकी रक्षा करने मे समर्थ है ?

पक्षपात की उत्पत्ति का दूसरा कारण यह है कि अपनी बुद्धि से कदाचित कोई नई बात जान लेने पर अहंकार वश वही पहिली प्रक्रिया चल निकले, या मै तो स्वयं अहंकार के वश मे न पड़ूं पर मेरी उस बात को सुनकर मेरे अनुयाई अहंकार के शिकार हो जाये । मै अन्य बाते जानने की साधना करता रहूं पर इसी जीवनकाल मे उसे पूरी न कर सकू, और अधूरी साधना रहते-रहते ही मृत्यु के द्वारा पुकार लिया जाऊँ । तात्पर्य यह है कि पक्षपात का मूल कारण है अधूरी बात का जानना ।

४. कुछ और भी है

पक्षपात शोधन के दो ही उपाय हो सकते है । या तो पूरी की पूरी बात जानली जाये, और या अधूरी बात के साथ साथ यह अवधारण कर लिया जाये की जो कुछ मै जान पाया हू, वह पूरी बात का अनन्तवा अश भी नही है । इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ जानने को अभी शेष है । सो पहिला उपाय तो वर्तमान मे लगे हाथों होना कुछ असम्भव सा प्रतीत होता है, भले ही आगे

जाकर सभव हो, और तब तो शोधन का कोई प्रश्न ही नही रहेगा। परन्तु वर्तमान मे दूसरा उपाय ही विशेष प्रयोजनीय सभव है। तेरी वहियो मे अव तक केवल उन्ही बातों के खतियान तो होये हुए है जो कि तू जानता है, पर उन बातों का खतियान वहां नही है जो कि तू नही जानता। और हो भी कैसे, जो बात जानी ही नही उसका खतियान कर ही कैसे सकता है? अत भाई! सब खातो के अतिरिक्त वहा एक खाता और भो डाल ले। उसका शीर्षक होगा "कुछ और भी है।" इतना ही यदि कर पाया तो तेरी प्रवृत्ति में वहुत बड़ा अन्तर पड जायगा। क्योकि खाली पड़े उस खाते के अन्तर्गत तू बराबर इन्द्राज करने का प्रयत्न करता रहेगा, जो कि तेरे अन्दर नई नई बातें जानने व खोजने की जिज्ञासा उत्पन्न कर देगा। बस अब तू दूसरे की वात का निषेध करने की बजाय उसे समझ कर यथायोग्य रूप से फिट विठाने का प्रयत्न किया करेगा, और इस प्रकार उस खाते मे नित नये नये इन्द्राज होते रहेगे, अर्थात् तेरे ज्ञान मे वृद्धि होती रहेगी। पक्षपात वृद्धि के मार्ग मे सब से बड़ी अड़चन है। और उपरोक्त जिज्ञासा वृद्धि के मार्ग की सब से बडी सहायक।

५ वैज्ञानिक वन

प्रभो! लौकिक व अलौकिक किसी भी बात को पक्षपाती व साम्प्रदायिक बनकर जाना नहीं जा सकता, क्योकि ऐसी दृष्टि मे संकीर्णता वास करती है। मेरी ही बात सच्ची है अन्य सब की 'झूठी' ऐसा सा अभिप्राय अन्दर मे छिपा वैठा रहता है, जो अन्य की बात सुनने तक की आज्ञा नही देता। एक वैज्ञानिक की भाति स्वतत्र व्यापक व जिज्ञासु दृष्टि रखने से ही नई नई वाते जानी जा सकनी संभव हैं। देख! एक वैज्ञानिक की जिज्ञासा, क्या कभी उसे भी किसी साहित्य का निषेध करता हुआ सुना है तूने? यह पुस्तक तो मैं नही पढूगा, या इस व्यक्ति की बात तो मैं न सुनूगा, क्योकि यह मेरे गुरु की लिखी हुई नही है या यह बात मेरी धारणा के अनुकूल नही है, क्या ऐसा विचार कभी वैज्ञानिक को

आता है, और क्या ऐसी संकीर्णता मे से कभी भी आज के विज्ञान की उन्नति दृष्टिगत हो सकती थी ? आज के विज्ञान का मर्म उदारता है। प्रत्येक वैज्ञानिक कुछ नई बात की खोज करने के लिये तत् सबधी सारा साहित्य जो भी उसे उपलब्ध होता है पढ़ता है, चाहे वह किसी भी देश व व्यक्ति का क्यो न हो। हरेक विद्वान से तत्सबधी चर्चा करके उसके विचारो में से कोई तथ्य निकालने का प्रयास करता है, उसका निराकरण करने का नही। अपनी बुद्धिपर जोर देकर उसके अभिप्राय को समझने का प्रयत्न करता है। "यह बेचारा क्या जाने, क्योंकि इसने मेरे गुरु से शिक्षा पाई ही नही, इसलिये इसकी बात सुनना बेकार है," ऐसा विचार स्वप्न मे भी उसको नही आता। पर तू तो तनिक अपनी धारणाओ को पढ कर देख कि क्या तेरी दृष्टि भी वैसी ही है या उससे विपरीत ?

यदि अब तक नहीं तो अब ऐसी दृष्टि का निर्माण कर, तभी सर्वज्ञता का उपासक कहा जा सकेगा, और कुछ सीख कर अपने जीवन मे कोई नई बात का अविष्कार कर सकेगा, अन्यथा नही। जिस प्रयोजन को लेकर तू गुरुदेव की शरण मे आया है, वह प्रयोजन स्वत. एक विज्ञान है। अन्तर केवल इतना है कि आज का दीखने वाला विज्ञान भौतिक है और यह आध्यात्मिक। वह दृष्ट है और यह अदृष्ट। उसके अनुसंधान इन जड़ पदार्थो पर होते है और इसका अनुसधान जीवन पर। उसकी खोज बाहर मे की जाती है और इसकी खोज अन्दर मे। उसकी प्रयोगशालाओं मे लोहे व बिजली के यत्र रखे है, और इसकी प्रयोगशाला मे विचारणाओ व वेदना के यत्र रखे है। इसलिये स्वतत्र दृष्टि से सुन, सरलता से सुन, सरलता से विचार कर, और तथ्य खोजने का प्रयत्न कर। शब्द मे अटकने की बजाय शब्द के सकेत पर दृष्टि ले जाने का प्रयत्न कर। वहा विश्व पडा है। शब्द बेचारे मे उतनी सामर्थ्य कहा कि उसका पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व कर सके।

६ आगम मे सब कुछ नही

क्या किसी भी साहित्य को वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण कहा जा सकता है, अर्थात् जो कुछ वहा लिखा है उसके अतिरिक्त कोई भी नई बात किसी के हृदय मे उत्पन्न ही न हो, क्या यह संभव है ? आज हम देख रहे है नित्य नई नई बातें वैज्ञानिको की बुद्धि मे आ रही हैं, जो आज से पहिले कही लिखी हुई न थी। जो भी नई बात ध्यान मे आती है वह ही साहित्य का एक अग बन जाती है, और इस प्रकार बराबर वैज्ञानिक साहित्य मे वृद्धि होती जा रही है।

इसलिये आध्यात्मिक विज्ञान की दिशा में भी तुझे यही समझना चाहिये, कि इस सबधी जो साहित्य या आगम आज मुझे उपलब्ध है वह पूर्ण हो ऐसा नही है। यह तो पूर्ण का अनन्तवां भाग भी नही है। इसके अतिरिक्त बहुत कुछ और है, जो इस मार्ग मे आये वैज्ञानिकों की विचारणाओ मे, कदाचित स्वतन्त्ररूपेण आगेपीछे आ जाना संभव है। आगम के अतिरिक्त यदि कोई भी नई बात सामने आती है तो उसके प्रति जो तेरे अन्दर आज कुछ सशय सा दिखाई देता है, यह उसी पक्षपात की सकीर्ण दृष्टि से निकल रहा है, जो बता रहा है कि तू अभी वैज्ञानिक नही बन सका है। क्या बड़े से बड़ा विद्वान भी यह दावा कर सकता है, कि बस जो मैंने जान लिया उसके अतिरिक्त और कुछ नही, संभवत. एक वर्ष का बालक भी अकस्मात् ही आपको ऐसी बात बता दे, जिसको सुनकर आप आश्चर्य मे पड जाये। भले ही वह उतनी तथा वे सब बाते न जानता हो जितनी और जो कि आप जानते है,परन्तु एक नई बात जो उसने अब बताई है वह अवश्यमेव ऐसी है जो कि आप नही जानते। इसलिये यह भी कोई नियम नही कि विद्वान लोग ही कोई नई बात खोज सकते है। कदाचित् मूर्ख व तुच्छ बुद्धि जीव भी कोई ऐसी बात मानव के सामने ला सकता है, जिससे की मानव अब तक अपरिचित रहा हो। बस इसी प्रकार भले ही मै या आप इस तुच्छ दशा मे आगम के पार

को न पा सके, परन्तु यह सभव है कि हमारी विचारणाओं मे कोई ऐसी नई बात आ जाये, जो कि उपलब्ध आगम मे लिखी न मिले। इसलिये प्रत्येक बात की जाच आगम से की जानी सभव नही। बुद्धि ही वास्तविक यंत्र है। पर वह बुद्धि वैज्ञानिक होनी चाहिये, अर्थात् उसे रूढि से पढने की बजाये वस्तु को पढ़ने का अभ्यास होना चाहिये।

बात कुछ अरोचक सी लगेगी परन्तु किया क्या जाये सत्य बात पहले पहल कड़वी लगा ही करती है। धैर्य व शान्ति से विचार करें तो अरोचक न होगी बल्कि तेरी दृष्टि की सकीर्णता को धो डालेगी। यहा यह तर्क उत्पन्न हो रहा होगा कि दृष्टान्त रूप से बताया गया साहित्य तो अल्पज्ञो द्वारा रचा गया है, परन्तु यह आगम तो सर्वज्ञता की उपज है, इसलिये यह तो पूर्ण ही है। इसके अतिरिक्त नई बात आनी सभव नही, और यदि आती है तो वह झूठ है। परन्तु भाई! ऐसा नही है। यदि साक्षात् गणधरदेव द्वारा लिखा गया होता, तो भी तेरी बात चलो किसी अंश मे स्वीकार कर ली जाती, परन्तु यह तो उनका लिखा हुआ भी नही है। यह तो पीछे से आये हुए आचार्यों द्वारा लिखा गया है, जो भले ही विद्वान व बुद्धिमान रहे हो, पर सर्वज्ञ न थे। और इसलिये आगम में वही बातें आ सकी जोकि वे जानते थे। उनके अतिरिक्त और कहा से आती? वह भी सारी की सारी लिपि-बद्ध हो गई हो, ऐसा भी नही है जैसा कि कहा है।

प्रज्ञापनीयभावानन्तभागस्तु अनभिलाप्याना।
प्रज्ञापनीयाना पुन अनन्तभाग: श्रुतनिबद्धः।
गोम्मटसार जीव०। ३३४

"अनुभव मे आये अवक्तव्य भावो का अनन्तवा भाग मात्र ही कथन किया जाने योग्य है और कथनीय भाव का भी अनन्तवा भाग श्रुति-निबद्ध हो पाया है।" इसके ऊपर भी यदि इतिहास पर दृष्टि डालें

तो पता चलेगा कि कितनी विपत्तियां इस साहित्य के ऊपर आज तक आ चुकी है। यही सौभाग्य समझिये कि यह कुछ बचा खुचा भाग किसी प्रकार अवशेष रह पाया है। तात्पर्य यह कि उस लिपिबद्ध का वह भाग साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला मे स्वाहा हो चुका है। आपके शास्त्रो को जला जलाकर हमाम गर्म किये गये है। कैसे कह सकते हो कि इस आगम से बाहर कोई बात आपके हृदय या मेरे हृदय मे नही आ सकती है। भाई! अब कदाग्रह को छोड़ जीवन मे कुछ करने की भावना उत्पन्न कर"।

उपरोक्त सर्व कथनपर से ऐसा अभिप्राय ग्रहण न कर लेना कि मैं आगम का निषेध कर रहा हू। यह बात तो तीन काल मे भी होनी सभव नही है। आगम का ही उपकार है, जो मैं यह स्वतंत्र दृष्टि की बात कहने का साहस कर रहा हूँ। क्योकि जो सिद्धान्त यहां पढाया जाना अभीष्ट है वह स्वय स्वतंत्रता के पोषणार्थ, कदाग्रह के निराकरणार्थ व विचारज्ञ बनने की प्रेरणार्थ ही है। किसी भी बात का निर्णय करने के लिये आगम ही अल्पज्ञो का मुख्य आधार है। इसके बिना हमारे लिये सर्वत्र अधकार है। परन्तु कहने का तात्पर्य तो यह है कि कदाचित् कोई बात ऐसी अपने विचार मे स्वय आ जाये या किसी से सुनने मे आ जाये जिसका जिक्र आगम मे न मिले, तो उस को निरर्थक समझकर छोड़ नही देना चाहिये, बल्कि युक्ति व अनुभव से उसका भी निर्णय करने का प्रयत्न करना चाहिये और इस प्रकार बराबर आध्यात्मिक विज्ञान के साहित्य को वृद्धि दान देते रहना चाहिये। हां! अनुभव किये बिना केवल कल्पना के आधार पर कुछ कहना व लिखना योग्य नही, क्योकि उससे कदाचित् भव्य प्राणियों का अहित हो सकता है।

और ऐसी दृष्टि उत्पन्न हो जाने पर लोक मे प्रचलित कोई भी बात सर्वथा मिथ्या नही लगेगी । आगम मे ३६३ एकान्त मतो या मान्यताओं का कथन आता है, जिनको हम मिथ्या मत कहते है। पर एक वैज्ञानिक की दृष्टि मे कोई भी मत सर्वथा मिथ्या नही होता। सर्वत्र ही कुछ न कुछ सत्य अवश्य है क्योकि मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी बे सिर पैर की कोई बात कहना सुनाई नही देता है । जो कोई भी व्यक्ति कुछ कहता है, वह कुछ अपना अभिप्राय रखकर ही कहता है । यदि उसके अभिप्राय को पढने का प्रयत्न किया जाये, अथवा शब्दो मे न अटककर उसके वाच्य संकेत पर जा कर स्पर्श किया जाये, तो उसकी बात मे छिपी सत्यता स्पष्ट प्रकाशित हो जाती है ।

७. कोई भी मत सर्वथा झूठा नही

कोई भी शब्द सर्वथा झूठा होना संभव ही नही है । जितने भी शब्द है उनके वाच्यार्थ इस लोक मे मौजूद अवश्य है । और इस प्रकार ऐसे दृष्टात जो कि सर्वथा झूठ की सिद्धि के अर्थ दिये जाते है, जैसे कि 'गधे का सीग व आकाश पुष्प', वे भी सर्वथा झूठ हो ऐसा नही है । क्योकि भले ही प्राकृतिक संयोग को प्राप्त ऐसा कोई पदार्थ झूठ हो, पर पृथक पृथक उन पदार्थो की सत्ता लोक मे है । और इस प्रकार किसी अपेक्षा से गधे का सीग कह देना भी सत्य हो जायेगा, जैसा कि मेरे स्वामित्व मे पडा यह पैन 'मेरा पैन' ऐसा कहा जाता है, उसी प्रकार यदि गधे को सजाने के लिये उसके सिर पर कृत्रिम रूप सीग रख दिये जाये,जैसे कि आपने कही प्रदर्शनियों मे या अन्यत्र मनुष्य के मुह वाला सर्प देखा है । वह केवल कृत्रिम लाग होती है, प्राकृतिक सत्य नही । कृत्रिम रूपेण वह अवश्य सत्य है । तो गधे के सींग भी कहने मे कोई विरोध न होगा, यदि ऐसा शब्द सुनकर दृष्टि उसी विशेष गधे पर जाये, अन्य पर न जाये तो और संयोग को कृत्रिम ही समझा जाये प्राकृतिक नही तो । बुद्धि का प्रयोग करें तो शब्दों परसे वक्ता के तात्पर्य को समझा जा सकता है, परन्तु यदि शब्द में ही

अटका जाय तो गधे का सीग न तीन काल मे कभी हुआ है और न कभी हो सकेगा। विरोध को दृष्टि मे रखकर सहज प्रयोजन कभी पढा नही जा सकता, जैसा कि दृष्टान्त पर से जाना जा सकता है। सरलता पूर्वक यथायोग्य सभावना का विचार करने पर ही वह पढा जाना सभव है। लौकिक मार्ग मे प्रयुक्त वाक्यों पर से तो वह हम ठीक ठीक अभिप्राय को ही पकड़ते है, अपनी ओर से उसमे खेचा तानी करने का प्रयोग नही करते। 'मेरा पैन' कहने पर ठीक ठीक ही अभिप्राय समझ जाते है, पर यहा इस अलौकिक मार्ग मे प्रयुक्त वाक्यो मे खेचातानी अवश्य होने लगती है। इसका कारण दृष्टि मे पड़े पक्षपात के अतिरिक्त अन्य कुछ नही।

यदि पक्षपात न रहे तो ३६३ के ३६३ मतो मे किसी न किसी अपेक्षा सत्य दीखने लगे। उनके उपदेष्टा मूर्ख न थे। बुद्धिमान व तार्किक थे। कपोलकल्पित व सर्वथा अयुक्त बात को स्वीकार भी कौन करता है ? और बे सिर पैर की बात का विचार आता भी किसे है ? कुछ बात प्रतीति मे प्रत्यक्ष होने पर ही किसी को कुछ बताया जा सकना सभव है। बस तो अनेको विचारज्ञों ने अपनी विचारणाओ के आधार पर वस्तु मे से कोई तथ्य निकाला और उस ही का उपदेश दिया। वह तथ्य वस्तु मे अवश्य है, तभी तो निकल पाया, नही तो निकलता कैसे ? इसलिये जो जो भी बात वे कह रहे है वे सब सत्य है। फिर भी उन्हे मिथ्या कहा गया ? उसका कारण केवल यही है कि उनका वह सत्य अधूरा है। अपने सत्य की स्थापना के साथ साथ वह अन्य के सत्य को स्वीकार नही करते, बल्कि उसका निषेध करते है। इस पर से उनका पक्षपात प्रदर्शित होता है। बस इस पक्षपात के कारण उन सब को मिथ्या कहा गया है। यदि उन सब का परस्पर सम्मेल-बैठाकर यथा योग्य रीति से उनको स्वीकार किया जावे तो वे सब सत्य है। जैसे कि ३६३ मतों को मिथ्या बताकर स्वयं गोम्मटसार मे आचार्य देव कह रहे है।

यावंतो वचनपंथा तावंतश्चैव भवन्ति नयवादा: ।
यावंतो नयबादास्तावंतस्चैव भवन्ति पर समया: ।।८९४।।
पर समयाना वचनं मिथ्या खलु भवन्ति सर्वथा बचनात्
जैनाना पुनर्वचन सम्यक् खलु कथंचिद्वचनात् ।।८९५।।

अर्थ :—पर समयी जिस वचन को कह रहे है तिस ही को सर्वथा एकान्तपने करि कहे है । तिसके प्रतिपक्षी को नाही कहे है । पर वस्तु है सो तिस रूप भी है और तिस के प्रतिपक्षी स्वरूप भी है । तातै तिनि का वचन असत्य है । जिस वचन को जैनी (अनेकान्त-वादी) कहै है, तिसको कोई एक प्रकार करि कहै हैं सर्वथा नियम नाही कहे हैं । वस्तु भी तिस रूप कोई एक प्रकार करि ही है । तातै जैनीनि के वचन सत्य है ।

सत्यता को असत्य बताने का प्रयोजन नही है बल्कि दूसरे मत का निषेध करने का जो कदाग्रह वर्त रहा है उसे असत्य बताया जा रहा है । उस मत का निषेध नही, कदाग्रह का निषेध है ।

अब तुझे यह देखना है कि कही मेरे अन्दर तो इस प्रकार का कोई कदाग्रह नही पड़ा है । सो शब्दों पर से निर्धारित नही किया जा सकता । शब्दो मे पूछने पर तो मैं अनेकान्तवादी हूँ ही । अनेकान्तवादियो का शिष्य जो हूँ । जैन मत अनेकान्त मत है और मै भी जैनी हूँ । इसलिये मेरी तो सब बाते सत्य ही हैं । ऊपर नियम जो बना दिया गया है कि जैनियों की बात सच्ची और अन्य की बात झूठी । प्रभो ! ऐसा अर्थ करने का प्रयत्न न कर । यहां सम्प्रदायिकता को अवकाश नही । जैन सम्प्रदाय जैन मत नही है अनेकान्तिक धारणाओं का नाम जैन मत है। मत अनेकान्त अवश्य है, पर मै अनेकान्तिक हूँ या नही, विचार तो इस बात का करना है । वास्तव मे अनेकान्तिक नही हूं । क्योंकि यदि हुआ होता तो किसी का भी निषेध न करता, सब को यथायोग्य रूप से

स्वीकार कर लेता। अन्धों की भाति हां मे हा मिलाने को नही कहा जा रहा है, बल्कि बुद्धि पूर्वक उन मतों मे पड़ी सत्यता की खोज करने को कहा जा रहा है। और इसी प्रकार ३६३ ही नही, असंख्याते मत या सत्य के रूप हो सकते है। जितने भी वचन पंथ है सब मे कुछ न कुछ सत्य है। यदि खोजे तो अवश्य मिलेगा और यदि पहिले ही निषेध कर दे तो क्या मिलेगा। और उस निषेध किये गये एक सत्य के अभाव मे तेरी अधूरी मान्यता भले ही वह जैन आगम के आधार पर हो, सत्य कैसे हो सकेगी। ३६३ मतो का एक गुलदस्ता बनाये तभी सत्य के दर्शन हो सकते है। यदि इनमे से एक भी फूल निकालकर अलग कर देतो ३६२ मतों से निश्चित ही गुलदस्ता शोभा को प्राप्त न हो सकेगा। अर्थात् एक मत का भी निषेध करके यदि असंख्यते मतों को स्वीकार करे तो एकान्त कहलायेगा, अनेकान्त नही। जैन होकर भी यदि मे किसी का निषेध करता हू और उसे समझने का प्रयत्न नही करता तो मै वास्तविक जैन या अनेकान्ती नही हूँ। मुझे एकाती या कदाग्रही ही क्यो न कहा जाय?

अनेकान्त वाद का जन्म

इस प्रकार के एकान्त कदाग्रह के फल स्वरूप हम सदा से परस्पर में लड़ते-झगड़ते चले आ रहे है। आज तक हमने यथार्थ दृष्टि से न जागृत की और न अपने हित को खोज सके। वीतरागमार्ग मे से भी द्वेष का पोषण करते रहे। जब वीर प्रभुजन-सम्पर्क मे आये और उन्होंने लोगों में फैले इस दुष्ट कदाग्रह का साक्षात किया तो मानो उनका हृदय रो उठा। अरे भव्य जीवों! लौकिक दिशा मे तो सर्वदा अपना अहित ही करते हो, पर इस अलौकिक दिशा में भी आकर उसका ही प्रयोग? सम्भलो, जिस प्रकार सरलतापूर्वक लौकिक व्यापारों मे बोली गई भाषा के अर्थ यथायोग्य रूप से स्वतः लगा लेते हो, उसी प्रकार यहां क्यों नही लगाते। यहां ज्ञान में कर-डाई करके यह कदाग्रह व पक्षपात किसके लिये करते हो। याद रखो यह स्वयं आपका ही घात कर रहा है, दूसरों का नही।

लौकिक विषय तो दृष्ट है, इसलिये उनके सबध मे तो तू सहज ठीक-ठीक अभिप्राय को ग्रहण कर लेता है। उलटी भाषा का भी सीधा अर्थ लगा लेता है। पर यह अध्यात्म विषय अदृष्ट है। और इसी कारण यथा योग्य रीति से सहज इसका ठीक-ठीक अभिप्राय समझना, तुझे अवश्य कठिन ही नही, असम्भवसा प्रतीत हो रहा है। अतः हम तुझको एक कुंजी प्रदान करे, जिसको लगाकर तू इस मार्ग की गूढ से गूढ व रहस्यमयी बातों का सरलता से अर्थ लगाने मे सफल हो जायेगा। और यदि कुछ दिनो तक इस कुजी का प्रयोग करके अर्थ लगाने का अभ्यास करता रहा, तो एक दिन स्वयं अभ्यस्त हो जायेगा। और तव तुझे बिना इस कुजी के प्रयोग के ही सहज ही रहस्यमयी व जटिल दीखने वाली बातो का ठीक-ठीक अर्थ स्वत. समझ मे आने लगेगा। उस कुजी का नाम ही है अनेकान्तवाद, साम्यवाद या स्याद्वाद।

२

शब्द व ज्ञान सम्बन्ध

दिनांक २६-६-६०
प्रवचन न. २

१. पढने का प्रयोजन, शाति २. प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान, ३. प्रतिबिम्ब व चित्रण, ४. शब्द की असर्थता, ५. वस्तु को खडित करके प्रतिपादन की पद्धति ।

१. पढने का प्रयोजन शाति

सम्पूर्ण पक्षों से अतीत हे सरलता के प्रतीक ! पक्षो की आग में जलते हुए इस तृण पर अब दया कीजिये इसको भी सरलता प्रदान कीजिये । सरलता आ सकनी कैसे संभव है, इसके लिये मुझे यह विचारना है कि पक्षपात की यह दाह कहां बैठी हुई है ? उत्तर स्पष्ट है, कि ज्ञान मे, जैसे कि पहिले बता दिया गया है, पक्षपात का कारण अधूरी बात का जानना है । अधूरी बात जानने से अच्छा तो बिल्कुल न जानना ही है । क्योंकि बिल्कुल न जानने वाले जल्दी पढ़ जाते हैं, परन्तु अधूरा जानने वाले वजाय पढने के विरोध उत्पन्न करके अपना व दूसरे का अहित कर बैठते है । स्कूल मे पढ़ने वाला एक बालक क्योकि कुछ नही

जानता, इसलिये सरलता से अपने गुरु की बताई हर बात को स्वीकार करता हूआ एक दिन गुरु से भी अधिक पढ जाता है । भले अब गुरु से उन्ही बातों के सबंध मे तर्क करने लगे जो कि पहिले सरल वृत्ति से ग्रहण कर ली गई थी, पर पढते समय उसने तर्क बिल्कुल नही की थी । यदि ऐसा करता तो बिल्कुल पढ न सकता था । अतः भो भव्य ! यदि तर्क ही करना अभीष्ट है हो तो इसे उस समय के लिये रख छोड़ जवकि तू सम्पूर्ण बात पढ चुकेगा, जब कि तेरा ज्ञान अधूरा न रह जायेगा । और यदि ऐसा कदाचित हो पाया तो, अन्तरग मे साम्यता जागृत हो जाने के कारण तुझे तर्क करना रुचेगा ही नही । भले कोई गलत कह रहा हो । पर तू चुप ही रहेगा । यही है सरलता व साम्यता की पहिचान । यह अलौकिक कल्याण का मार्ग है, शान्ति का मार्ग है । किसी भी मूल्य पर अपनी शान्ति को घातने का प्रयत्न न कर । हर प्रकार इसकी रक्षा करता चल । जो कुछ भी सीख, निज शान्ति के अर्थ सीख । यदि ऐसा अभिप्राय रखकर सीखने का प्रयत्न करेगा, तो अवश्यमेव तेरे मार्ग मे आने वाली पक्षपात की बाधा दूर हो जायगी और सरल वृत्ति प्रगट हो जायेगी । आगम का एक-एक शब्द शान्ति की सिद्धि के अर्थ ही है । तेरे ज्ञान को जटिल बनाने के लिये नही, सरलता उत्पन्न करने के लिये है ।

२. प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान

हां, तो किसी नवीन वस्तु को पूरी की पूरी पढन के उपाय तीन हो हो सकते हे या तो वह वस्तु साक्षात रूप से देख व सूघ व चखली जाय, या उस वस्तु का कोई चित्र देख लिया जाय, और या उस वस्तु से किंचित मेल खाती कुछ अन्य-अन्य वस्तुओ के आधार पर अपने अनुमान को खेचकर, असली वस्तु के अनुरूप कुछ रूप रेखाये ज्ञान पट पर उत्पन्न करली जाये । जैसे कि स्कूल मे बच्चे को पढ़ाने के लिए, या उसको वही वस्तु दिखाई जाती है या उसका चित्र या उसके अनुरूप अन्य कोई वस्तु 'क से कबूतर' कहा और साथ मे कबूतर का चित्र

दिखाया, जिससे कि बालक स्पष्ट समझ सके कि कबूतर शब्द किस वस्तु की ओर सकेत कर रहा है । पर यह उसी समय संभव है जब कि उसने वह पक्षी पहिले देखा हो, भले उसका नाम संभवत: वह जान न पाया हो । अब चित्र देखकर वह यह समझ गया कि इसको कबूतर शब्द से बोलकर बताया जाता है । और इसी प्रकार यदि चित्र देखकर भी उसका सशय दूर न हो, अर्थात् वह पदार्थ यदि उसने पहिले देखा न हो, तो गुरु उसे वह पदार्थ ही सामने दिखा देता है या यदि वह पदार्थ दिखाया जाना सभव न हो तो, उसके अनुरूप कोई अन्य पदार्थ दिखाकर उसे सन्तुष्ट कर देता है । जैसे सिंह को बताने के लये बिल्ली को दिखाकर वह इतना बता देता है, कि भाई ! इसी शकल व बनावट का वह जानवर गधे जितना बड़ा होता है । अर्थात् एक वस्तु को बताने के लिये दो दृष्टान्त देकर अनुमान के पट पर लगभग वस्तु के अनुरूप चित्र खीचने का प्रयत्न करता है । तात्पर्य यह है कि तीन प्रकार से उसे उस वस्तु का परिचय दिया जा सकता है । पहिले तो वस्तु दिखाकर, दूसरे वस्तु का चित्र दिखाकर, तीसरे अन्य-अन्य वस्तुओं के आधार पर अनुमान मे परोक्ष चित्रण या उस वस्तु के अनुरूप कुछ रेखायें खेचकर ।

ऊपर के दो उपाय तो तभी संभव हो सकते है जबकि वह पदार्थ सहज दृष्ट हो, पर यदि पदार्थ अदृष्ट व अनुपलब्ध हो तब तो तीसरे मार्ग के अतिरिक्त और कोई आश्रय नही है । जैसे कि मै अमेरिका गया और कोई एक नवीन फल खाकर देखा । यहा लौटकर यदि मै उस फल से आपका परिचय कराना चाहू तो यह तीसरा मार्ग ही अपनाना होगा । पहले दो मार्ग नही अपनाये जा सकते , क्योंकि वह फल न भारत मे उपलब्ध होता है और न ही आपने पहिले उसे कभी देखा है । केवल फल का नाम लेने से आप कुछ न समझ सकेगे । अब मेरे पास एक ही मार्ग रह गया कि मे दृष्टातरूप मे कुछ ऐसे फलो को छाटकर सामने लाऊ, जो कि उसके रूप रंग गन्ध व स्वाद का किंचित

प्रतिनिधित्व कर सकते हों। यह सारी बाते किसी एक ही दृष्टांत में उपलब्ध हो सके यह असभव है, क्योंकि एक ही स्थान पर तो यह सारी बाते उसी फल मे पाई जा सकती है, अन्यत्र नही। इसीलिये उसका पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व करने वाला कोई एक ही दृष्टान्त तो दिया ही नही जा सकता। हा अनेकों दृष्टान्तो का सम्मेल करके उसे कदाचित बताया जाना संभव है। मै उसे इस रूप मे बता सकता हू, वह पपीते जितना बडा होता है, उसका वजन आध सेर से तीन पाव तक होता है, वह पपीते की ही भांति ऊपर से साफ होता है, अनानास की भाति फुनसियों वाला नही होता, वह सेब की भांति कठिन होता है, पपीते की भाति नरम नही, उसका रग भी ऊपर से सेव की भाति लाल होता है पर चीरने पर अन्दर से वह पीला निकलता है—जैसे कि आम, उसमे बीज खरबूजे जैसे होते है, सरधे की भाति कुछ-कुछ गन्ध होती है, और स्वाद अंगूर व नीबू मिलाकर जैसा हो जाये लगभग वैसा होता है। इस प्रकार उसके रूप रंग गंध स्वाद व बीज आदि बतलाने के लिये मैंने पृथक-पृथक दृष्टान्त देकर, आपके अनुमान मे लगभग उस फल के अनुरूप चित्र बनाने का प्रयत्न किया।

यह ठीक है कि तत् संबंधी स्पष्ट व विशद ज्ञान तो तभी हो सकना सभव है जबकि उसका आप प्रत्यक्ष करले, पर फिर भी उसे बताने के लिये उपरोक्त दृष्टान्तो व शब्दों पर से आपके अनुमान ने खेचकर कोई धुन्धली सी रूपरेखा ये आपके हृदय पट पर अवश्य बना दी है, जो भले ही पूर्णरूपेण उस फल के अनुरुप न हो परन्तु लगभग उसके अनुरूप अवश्य है। यदि फलो का एक ढेर आपके सामने कदा-चित लाया जाय तो आप उन रूपरेखाओ के आधार पर तुरन्त यह पहिचान लेगे कि यही वह फल है जिसके सबंध मे उस दिन बताया गया था। इसलिये भले स्पष्ट न सही पर यह धुन्धली सी सशय के साथ वर्तने वाली रूपरेखाये भी उस फल सबधी प्रत्यक्ष ज्ञानवत ही है। इसे परोक्ष ज्ञान कहते है। यह यद्यपि प्रत्यक्षवत विशद नही होता

परन्तु प्रत्यक्ष के अनुरूप अवश्य होता है, और इसलिये परोक्ष ज्ञान सर्वथा झूठा हो ऐसा नही है। यह भी सच्चा व ठीक ही है।

जिस पदार्थ के सबध मे यह अध्यात्म विज्ञान हमे कुछ बताता है वह पदार्थ साधारणत. दृष्ट नही है, और इसीलिये उपरोक्त मार्ग ही पकड़ना पड़ेगा। अर्थात् पहले कुछ शब्दो व दृष्टान्तो के आधार पर उसका परोक्ष अनुमान कराया जाना ही संभव हो सकेगा। यह परोक्ष ज्ञान इतना ही कार्य कारी है कि कदाचित उस पदार्थ के सामने आने पर नि सदेह उसे पहिचान जाये, कि यही वह पदार्थ है जिसका परोक्ष-ज्ञान कराया गया था, इससे अधिक कुछ नही। बिना प्रत्यक्ष किये तो परोक्ष ज्ञान सदा सशय के साथ ही वर्ता करता है, इसी लिये अध्यात्म ज्ञान अनुभवप्रधान वताया गया है। फिर भी परोक्ष ज्ञान प्रथम भूमिका मे अत्यन्त हितकारी व सच्चा है। शाब्दिक स्थूल सशय वहा नही रहता, केवल रसास्वादन सबधी ही रहता है, जिसका उपाय अनुभव के अतिरिक्त और कुछ नही। और अनुभव ऐसी चीज है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना कर तो सकता है पर दूसरे को दे व दिखा नही सकता। यही बडी कठिनाई है।

अव यह विचारना है कि परोक्ष ज्ञान कैसा होना चाहिये। ज्ञान का काम वस्तु को जानना है। वस्तु जैसी है वैसी की वैसी जानने को ज्ञान कहेगे या कुछ हीनाधिक या अन्य प्रकार जानने को ? सो यह कहने की आवश्यकता नही कि वस्तु जैसी है वैसी ही जानने को ज्ञान कह सकेगे। जामफल के ज्ञान को हम सेव का ज्ञान कैसे कह सकते है ? भले ही दृष्टांत रूप से सेब को वताने के लिये उसको दर्शाया जाना अभीष्ट हो। दृष्टांत पर से दृष्टात को पकडे तभी वह परोक्ष ज्ञान सच्चे की कोटी को स्पर्श कर सकता है, दृष्टान्त या शब्द मे अटके तव नही।

३. प्रतिविम्व व चित्रण

देखो मै यह घड़ी आपको दिखाकर पूछता हूँ कि भाई ! तुमने इसे जाना ? वताओ तो इसका रग कैसा है ? और आप कहे कि हरा,

तो बताइये आपने क्या जाना ? यह तो आपके नेत्र मे विकार है, आप को पीला भी हरा दिखाई देता है और या आपने इसे देखा ही नही, केवल कल्पना से अधो को भांति यू ही बता रहे हो। ज्ञान तो इसे पीला ही देख सकता था अन्य रूप वह देख सके ऐसा संभवही नही है। बस इसी प्रकार वस्तु को देखे बिना जो कोई भी बात उसके सबध मे कहना परोक्ष ज्ञान नही कहलाता । वह तो प्रत्यक्षवत् होता है । किसी वस्तु का चित्रण सामने दीवार पर खेचने के दो उपाय है । या तो दीवार पर वस्तु के सामने एक दर्पण लटका दे या उस वस्तु के रूप की ड्राइग या पेन्टिग वहा कर दे । तीसरा तो कोई उपाय नही । दर्पण मे तो सहज ही उस वस्तु का चित्रण आ जाता है, पर ड्राइग करने के लिये तो बहुत देर लगेगी । एक एक लकीर खेचखेचकर उसे बताना होगा दर्पण का चित्रण प्रतिबिब कहलाता है पर ड्राइग को प्रतिबिब नही कह सकते, इसे चित्र ही कहेंगे । प्रतिबिब से हीनाधिक होना असभव है पर चित्र मे यदि मैं चाहूँ तो हीनाधिकता कर सकता हूँ । पर यदि ऐसा कर दू तो क्या चित्र सच्चा कहलायेगा ? नही । देखो यह पुस्तक है । दर्पण के सामने ले जाता हूँ । देखिये सामने दर्पण मे । क्या एक भी अक्षर वहां प्रतिबिब मे कम या अधिक हो पाया है ? नही । जैसा कुछ यहा लिखा है वैसा व उतना ही वहां आया है । यदि मैं इस पुस्तक के इस पृष्ठ का चित्रण खीचने लगू तो सभव है कि गलती से कोई एक शब्द उसमे कम लिख पाऊँ, परन्तु यदि ऐसा हो गया तो क्या उस चित्रण को इस पृष्ठ के अनुरूप कहा जा सकेगा ? नही ।

प्रतिबिम्ब व चित्रण दोनो मे महान अन्तर है । प्रतिबिम्ब सच्चा ही होता है पर चित्रण झूठा व कल्पित भी हो सकता है । प्रतिबिम्ब सहज होता है और चित्रण कृत्रिम होता है । प्रतिबिम्ब पडने मे देर नही लगती पर चित्रण बनाने मे देर लगती है । प्रतिबिम्ब मे कोई रेखा पहले आये और कोई पीछे, ऐसा क्रम नही होता पर चित्रण क्रम के बिना बनाया ही नही जा सकता । उसमे तो अनेको रेखायें

पहिले पीछे बनाई जानी ही सभव है । पहिले ही क्षण मे सारी रेखाये वनाई जा सके यह संभव नही है । प्रतिबिम्ब मे हिनाधिकता होनी सभव नही है पर चित्रण मे की जानी संभव है । इसलिये प्रतिबिम्ब सदा सच्चा होता है पर चित्रण झूठा व सच्चा दोनों प्रकार का ।

देखिये यहा रत्न व विष्टा दो पदार्थ रखे हों, तो क्या दर्पण इस प्रकार का विवेक करेगा कि रत्न को तो अपने अन्दर ले लूं और विष्टा को छोड दू ? प्रतिबिम्ब मे तो दोनों ही युगपत आ जायेगे । वहा अच्छे बुरे का विवेक नही । परन्तु चित्रण मे मेरी कल्पना कार्य करती है इसलिये अरुचिकर होने के कारण यदि मै विष्टा को चित्रित न करके केवल रत्न को चित्रित करु, तो क्या मेरा वह चित्रण प्रतिबिम्ब के अनुरूप हो सकेगा ? नही । और इसलिये वह चित्रण सच्चा नही कहा जायेगा । जव एक वस्तु का चित्रण ही खेचना है तो अच्छे बुरे का प्रश्न क्यों ? चित्रण को प्रतिबिम्ब के अनुसार बनाने का प्रयत्न करे तभी वह सच्चा हो सकेगा ।

ज्ञान वास्तव मे एक दर्पणवत है । जो वस्तु इसके प्रत्यक्ष होती है उसका तो तदनूरूप प्रतिबिम्ब इसमे अवश्य पडता ही है, भले ही वह वस्तु अच्छी हो या बुरी । अच्छी को प्रतिबिम्ब रूप से ग्रहण करना और बुरी को छोड़ देना ज्ञान का काम नही । मास व फल दोनो को ही यह तो प्रतिबिम्बके रूप मे ग्रहण कर लेगा। ज्ञान छोड़ना नही जानता। आगमोक्त हेयोपादेय का विवेक ज्ञान के प्रतिबिम्ब सबधी नही है । वल्कि चारित्र सबधी है । बिना जाने तो हेय व उपादेय का भेद भी कैसे हो सकेगा । ज्ञान का काम तो सहज प्रतिबिम्बों को ग्रहण करने का है छोडने का नही । प्रत्यक्ष विषयों के सबध मे तो यह नियम स्वत. प्राकृतिकरूप से पल ही रहा है । यहां तो अप्रत्यक्ष विषय के सबध मे कुछ जानना अभीष्ट है । इस विषय का प्रतिबिम्ब तो पड़ नही सकता । भले ही आगे जाकर ज्ञान मे वह शक्ति जागृत हो जाये कि इस पदार्थ का भी सहज प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सके, पर आज तो उसमे वह

शक्ति नही है। यहा तो न० २ वाला अर्थात् चित्रण खेचने का उपाय ही अपनाना होगा। इसलिये इस चित्रण को परोक्षरूप से ऐसा ही बनाने का प्रयत्न करें कि मानो यह प्रतिबिम्ब ही हो, और जैसा कि पहले बता दिया जा चुका है, ऐसा होना तभी संभव है जब कि जैसे जैसे और जिस जिस प्रकार भी वस्तु दिखाई दे, उसको उस प्रकार ही चित्र मे अवकाश दे दिया जाये, एक रेखा मात्र भी छूटने न पाये, भले ही वह तेरी रुचि के अनुकूल हो या प्रतिकूल। रुचि और वस्तु है और ज्ञान और रुचि चारित्र का अग है और ज्ञान ज्ञान का। यहा ज्ञान की बात चलती है, चारित्र की नही, इसलिये इस प्रकरण मे हितअहित या अच्छे बुरे का प्रश्न नही आना चाहिये। यहा तो केवल तीन बाते सामने है-पदार्थ, ज्ञानपट व चित्रकार अनुमान।

४. शब्द की असमर्थता

वर्तमान अवस्था मे दर्पण मे प्रतिबिम्बवत अध्यात्म के प्रत्यक्ष ज्ञान की तो आप से बात करना ही निरर्थक है, क्योकि वह साधन अभी आपके पास नही है, भले ही आगे जाकर हो जाये। अब तो प्रश्न यह है कि इस अदृष्ट विषय को आपके ज्ञान पट पर चित्रित कैसे किया जाये। यह तो पहिले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि चित्रित वही कर सकेगा जिसने कि किसी भी रूप मे धुन्धला मात्र सा भी उसका प्रत्यक्ष किया हो। केवल सुने हुए शब्दों को दुहराने से से ऐसा होना सभव नहीं। खैर यहा तो प्रश्न है कि चित्रण कैसे किया जावे ?

इस नाटक के प्रमुख पात्र तीन है—वस्तु, वक्ता व श्रोता। वक्ता वस्तु को जानता है और श्रोता जानने की जिज्ञासा रखता है। वक्ता उस अध्यात्म विषय से भलीभाति परिचित है। वह अदृष्ट वस्तु उसके हृदय मे प्रत्यक्ष है। श्रोता को उसका परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा है। आपके हृदय मे उस वस्तु को मै कैसे पहुचाऊं ? ऊपर के दृष्टान्त मे तो लेखनी, पदार्थ व चित्र के बीच का माध्यम थी। लेखनी द्वारा

पदार्थ का चित्रण कागज पर किया जा सकता है पर हृदय पट पर नही । यहां मेरे और आपके वचन ही एक माध्यम है, वही एक वस्तु सेतु (पुल) है जिसके द्वारा कि मेरे हृदय का चित्र आपके हृदय तक पहुच सके । समस्या बडी कठिन है । विषय अदृष्ट व अनुपम है और माध्यम है वचन जो यह काम करने का पर्याप्त साधन नहीं है । क्योकि उसकी शक्ति सीमित है । इसलिये कि एक तो वह वस्तु का प्रत्यक्ष कराने मे असमर्थ है, और दूसरे इसलिये कि वह एकदम वस्तु की व्याख्या कर सके इतनी भी सामर्थ्य उसमे नही । वस्तु के टुकड़े करके उन टुकडो की आगे पीछे के क्रम से वह किंचित व्याख्या करने का प्रयासमात्र कर सकता है, वस इतनी सी सामर्थ्य उसमे है ।

इसके अतिरिक्त एक और भी कठिनाई यहा सामने आ रही है । वह यह कि वचन दो प्रकार के होते है । एक ज्ञाता के मुख से निकलने वाले, दूसरे इस आगम के पत्रो पर लिखे हुए । मुख से निकलने वाले, वचनो मे तो फिर भी कुछ अन्तरग के भावो की झलक दिखाई दे जाती है, कुछ वक्ता की मुखाकृति पर आने वाले हाव भाव के द्वारा, कुछ हाथो व शरीर के सकेतो के द्वारा और कुछ वचन के साथ आने वाली कर्कशता व मृदुता आदि के द्वारा परन्तु यहा लिखे वचनों मे तो उसका भी अभाव है । अत शास्त्रो के शब्दो को पढकर भावो का पढा जाना अत्यन्त कठिन है, और भावो से शून्य अर्थ या चित्रण लेखक के ज्ञान के अनुरूप न होने के कारण सच्चा नही कहा जा सकता ।

एक और भी समस्या है । वह यह कि एक ही शब्द भिन्न-भिन्न स्थलो पर भिन्न-भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होता है । जैसे 'दूध गर्म है' इस वाक्य मे गर्म शब्द का अर्थ स्पर्शन इन्द्रिय सबधी गर्मी है. परन्तु 'आप तो वहुत गर्म है' इसमे गर्म शब्द का अर्थ क्रोधी हो जाता है । यदि यहा भी पहिले जैसा ही अर्थ लगा दू तो क्या वह ठीक होगा ? पहिली गर्मी को दूर करने का उपाय उसे पानी मे रखना है, पर दूसरी गर्मी को दूर करने का उपाय शान्ति धारण करना है । यदि यहा भी पानी का

प्रयोग करू और लगू आप पर पानी के कलशे उन्धाते तो क्या आपकी गर्मी दूर हो पायेगी ? तीसरे प्रकार से 'आपका शरीर आज कुछ गर्म है' इस वाक्य मे पडे गर्म शब्द का अर्थ ज्वर रोग है, जो न पानी मे रखने से दूर हो सकता है और न शान्ति धारण करने से, बल्कि योग्य औषधि का सेवन करना ही इसका उपचार है। लौकिक व विषयो मे यद्यपि यथास्थान उस शब्द का आप ठीक ठीक ही अर्थ समझ जाते है, पर यहा लिखे शब्द जिस अदृष्ट पदार्थ की ओर सकेत कर रहे है उसका परिचय न होने के कारण, भिन्न-भिन्न स्थलों मे यथा योग्य अर्थ लगाने मे बड़ी कठिनाई पडती है, जब तक कि बुद्धि का प्रयोग करके उसका अभ्यास न कर लिया जावे। एक ही शब्द आपके लौकिक प्रयोग मे कुछ और अर्थ का प्रतिपादन करता है, डाक्टरी की भाषा मे किसी और अर्थ का, अर्थ शास्त्र को परिभाषा मे किसी और अर्थ का और अध्यात्म शास्त्र की परिभाषा मे किसी और अर्थ का। अत. शब्दो के यथा योग्य अर्थो से भी परिचय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

५. वस्तु को खडित करके प्रतिपादन करने की पद्धति

वचन की असमर्थता को देखते हुए हमे यह बात खोजनी है, कि इसे माध्यम बनाकर किस प्रकार वक्ता अपने अभिप्राय को श्रोता पर प्रगट कर सकता है, और श्रोता किस प्रकार उसको समझ सकता है। दो प्रकार से यह काम किया जा सकता है, या तो वक्ता अपने हृदय को चीरकर आपको वह विषय दिखादे और या शब्दो के द्वारा प्रतिपादन करके, आप के अनुमान को कुछ खेच कर, उसके निकट पहुचा दे। पहिला उपाय तो कल्पना मात्र है। दूसरा उपाय ही प्रयोजनीय है। इसके लिये एक दृष्टात देता हू।

एक कपडे का मील जो इन्दौर मे लगा है बम्बई ले जाना अभीष्ट है। क्या कोई हनुमान ऐसा है जो पर्वत तक इस सारे को एक दम उठाकर चलता चलाता मील बम्बई मे रख आये ? नही ऐसा तो होना

कल्पना मात्र है, सभव नही है। हा, इसको एक प्रकार अवश्य वम्बई उठाकर ले जाया जा सकता है। इसको पहिले खोलकर इसके टुकड़े टुकड़े कर लीजिये, ऐसे टुकड़े जो कि पृथक पृथक आसानीसे हाथ या क्रेन द्वारा उठाकर गाड़ी मे लादे जा सके। और इस प्रकार कई गाड़ियो मे आगे पीछे लादकर, पहिले पीछे उन गाड़ियों द्वारा वम्वई ले जाकर उसी प्रकार उतार लिए जाये। सारे टुकड़े या खड इकट्ठे हो जाने पर पुन उनको पूर्ववत यथा स्थान जोड़ दे। वस मील उठकर चला गया।

यहा यह बात विचारणीय है कि गाड़ी मे लदान करने के लिये क्या यह नियम है कि पहिले अमुक ही खंड लादा जाय, या गाडियो को वम्वई भेजने के लिये क्या यह नियम है कि अमुक ही गाडी पहिले भेजी जाय ? नही, अपनी आवश्यकता के अनुसार कोई भी खड कभी भी लाद दो। नियम कोई नही लगाया जा सकता। हा, वम्वई पहुचने के पश्चात् उन्हे यथास्थान ही जड़ना होगा, नही तो मशीन काम न करेगी। यदि थोडा सा भाग मात्र ही पहुँच जाने पर मै आप से कहूँ कि जितना भाग आया है उतना तो फिट करके चालू कार दीजिए, क्यो व्यर्थ हर्ज करते हो, तो क्या यह सभव हो सकेगा ? नही, पूरा का पूरा मील जव तक फिट न हो जाये तव तक उससे काम नही लिया जा सकता। यदि एक गरारी की भी कमी रही तो सारी मशीन वेकार है।

वस इसी प्रकार वक्ता को अपने हृदय कोष में पड़ा वह अदृष्ट पदार्थ, श्रोता के हृदय देश तक पहुचाने के लिये, उस पदार्थ को ज्ञान मे ही खंडित करके टुकड़े टुकडे कर देना पड़ेगा। फिर एक एक खंड को वचन सेतु के द्वारा श्रोता के कर्ण प्रदेश तक पहुंचाना पड़ेगा। यदि यहा श्रोता वक्ता को सहयोग न दे, अर्थात् कर्ण प्रदेश को प्राप्त उस शब्द के भावार्थ को न समझे और उसे समझ कर हृदय कोप तक न ले जाये, तो वक्ता का सारा प्रयास

विफल गया समझो । पक्षपात के सद्भाव मे तो ऐसा किया जाना श्रोता के द्वारा संभव ही नही है, क्योंकि उस स्थिति में तो वह केवल निषेध करना ही सीखा है ग्रहण करना नही । परन्तु यदि पक्षपात न भी हो तब भी यदि प्रमाद वश उपरोक्त सहयोग न दे तो काम चलने वाला नही है। वक्ता के वचन का कार्य आपके कर्ण प्रदेश पर जाकर समाप्त हो जाता है । इससे आगे वक्ता का कर्त्तव्य शेष नही रह जाता बल्कि श्रोता का कर्त्तव्य रह जाता है । इसी प्रकार बारी बारी आगे पीछे अपने अन्दर के उन सर्व खंडों को श्रोता के हृदय पट तक पहुँचाना पडेगा। जब सारे खंड श्रोता के हृदय देश मे उतर जाये तब श्रोता को कहा जायेगा कि भाई ! अब इन सब को यथास्थान जड दे, और फिर देख उस पूरे के पूरे पदार्थ को एक दम । बस यह है उस पदार्थ का चित्रण जो मेरे अन्दर पडा है ।

उपरोक्त दृष्टातवत् यहां भी यह नियम नही है कि मै अमुक ही अग या खड की बात पहिले कहूँ और अमुक की पीछे। मेरी, अपनी इच्छा से मै श्रोता के जीवन या अभिप्राय को पढ कर उसमे दिखने वाली कमियो की पूर्ति के अर्थ, जिस किसी भी खड या अंग को पहिले या पीछे कह सकता हूँ। इस कथन का क्रम मेरी इच्छा पर है, नियमित नही। नियमित यह अवश्य है कि मै क्रम से, जिस प्रकार भी, पृथक पृथक वे सम्पूर्ण अग, आपके अनुमान तक पहुँचा दू। और आपका भी यह कर्त्तव्य अवश्य है, कि जब तक सम्पूर्ण अंग सुनकर निर्णय न कर लिया जाये उस समय तक, धैर्य पूर्वक सुनते चले जाये, बिना इस बात की उतावल किये, कि मै वह अंग अभी तक क्यो नही कह पाया, जो कि पहले से आपकी धारणा मे पड़ा हुआ है। कथन क्रम मे यथा-समय वह अग भी अवश्य कहा जायगा ऐसा विश्वास रखिए, और क्षोभ उत्पन्न न होने दीजिये। बजाय मेरे ज्ञान की कमी को देखने

के अपने ज्ञान की कमी को दूर करते जाइये, अर्थात् उस कुछ और भी, वाले खाते मे मेरी सारी वाते जमा करते जाइये। और अन्त मे जाकर उस अपने वाली वात को भी इन्ही मे मिलाकर उन सव को एक ढाचे मे जोड़ दीजिये। यह प्रयास स्वय आपको करना होगा। मै तो केवल सकेत दे सकता हूँ।

मै भी अल्पज्ञ हू। हो सकता है कि मै उस अग की वात न वता पाऊँ जो कि आपकी धारणा मे पडा हुआ है। अत प्रार्थना है कि जिस प्रकार मै अपनी धारणा मे पडी सर्व वाते आपको वता रहा हूँ, उनको सुनने व समझने के पश्चात्, आप अपने वाली वात भी मुझको समझा दे, ताकि मै भी अपने 'कुछ और भी' वाले खाते मे उसका इन्द्राज कर सकू। परन्तु वीच मे मेरी वातो का क्रम काट कर उसे वताने का प्रयत्न न करे। प्रतीक्षा करे, सभवत वह वात मेरे क्रम मे आ ही जाये।

इस सर्व कथन पर से एक सिद्धान्त निकाल कर नीचे लिख देता हूँ:—

१ वक्ता के ज्ञान मे पड़ा अखंड पदार्थ
२. उस पदार्थ को खडित करना
३. प्रत्येक खड को तदनुरूप वचनो के रूप मे परिवर्तित करके श्रोता के कान तक पहुँचा देना।

ये तीन बाते तो वक्ता के लिये है। अब तीन बाते श्रोता के लिये सुनिये जिनका क्रम ऊपर वाले क्रम से उलटा है:—

१ वचनों को सुन कर उनको तदनुरूप भावो मे परिवर्तित करना।
२. उन सर्व खडों को पृथक पृथक हृदय कोष मे धारण करना।
३ उन खंडों को एक ढांचे के रूप मे जोड़कर उसे अखड रूप मे परिवर्तित कर देना और इस प्रकार आपके अन्दर खिचा चित्रण मेरे ज्ञान मे पड़े प्रति विम्ब के अनुरूप हो जायेगा। जो कि आगे जाकर कदाचित प्रतिबिम्ब का रूप धारण कर पाये।

३

वस्तु व ज्ञान सम्बन्ध

दिनांक २४-९-६०

प्रवचन न ३

१. अल्पज्ञता की बाधकता पक्षपात व एकान्त, २. वस्तु अनेकागी है, ३. विश्लेषण द्वारा परोक्ष ज्ञान, ४. परोक्ष ज्ञान का ज्ञान पना, ५. कुछ शब्दों के लक्षण ।

१. अल्पज्ञता की बाधकता पक्षपात व एकान्त

जीवन नाम है ज्ञान का क्योंकि मै ज्ञान के प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ नही हूँ । यह बाहर में दिखने वाला रूप तो वास्तव मे मेरा नही है । मै तो अन्तर मे प्रकाशमान चैतन्य तत्व हूँ । इसलिये जीवन के भार का कारण वास्तव मे ज्ञान का भार ही है । ज्ञान का भार क्या है ? ज्ञान का भार है ज्ञान में पड़ी अस्वाभाविक खेचातानी जिसे पक्षपात या एकांत कहते हैं । इस खेचातानी का कारण क्या है ? इसका कारण है वर्तमान अल्पज्ञता या ज्ञान हीनता । क्योंकि यह पक्षपात उन्ही विषयो के

सम्बन्ध मे देखने को मिलता है, जिनका आज तक स्पर्श हो नही पाया है। लौकिक प्रत्यक्ष विषयों के सम्बन्ध में किसी के अन्दर भी कोई पक्षपात देखने मे नही आता। उन विषयो के सम्बन्ध मे मे तो मै जो कुछ भी, जिस किसी भी अभिप्राय से कहू, तो आप सब क्या एक बालक भी, वह कुछ ही उस ही अभिप्राय से कहा गया समझ लेता है, विरोध नही करता। उनके सम्बन्ध मे तो मै आपके लक्ष्य को जिस ओर भी खेचना चाहूँ सहज खिचा जाता है पर अदृष्ट विषयो के सम्बन्ध मे ऐसा नही हो रहा है। वहा अवश्य कुछ खेचा-तानी प्रारम्भ हो जाती है।

जैसे कि 'अग्नि' शब्द कहने पर आप सब अग्नि को यथा स्थिर रूप मे जान जाते है, एक शब्द का सकेत ही आपके लक्ष्य को यथा-स्थान पहुचा देने के लिये पर्याप्त है, पर 'आत्मा' शब्द कहने पर आप बजाये आत्मा नाम का पदार्थ पढने के आत्मा नाम का शब्द पढने मे, तथा इस सम्बन्धी उन बातों को पढने मे अटक जाते है, जो कि आपने आज तक उसके सम्बन्ध मे पढ कर या सुनकर सीखी है। और क्योकि वे अधूरी है इसलिये आप तत्सम्बन्धी उन बातो को सुनकर तो प्रसन्न होते है जो कि आप जानते है, पर कोई उसके संबंध की नई बात या आपकी धारणा से विरोधी या विपरीत बात आपको क्षोभ उत्पन्न कराये बिना नही रहती। कारण है आपकी अल्पज्ञता। क्योकि यद्यपि आत्मा नाम पदार्थ मे वह विरोधी बात भी पडी है, पर उसे स्वीकारे कैसे, जबकि आज तक आपने वह पढी ही नही। वह तो आपको ऐसी ही प्रतीत होने लगती है मानो यह बात आपकी धारणा का निराकरण करने के लिये ही मै कह रहा हूँ। यदि कदाचित आत्मा पदार्थ का भी अग्निवत साक्षात्कार कर लिया होता तो ऐसा होने न पाता, और क्योकि यह पक्षपात जीवन मे कुछ क्षोभसा उत्पन्न करता है इसलिये यह जीवन का भार है अज्ञान है। इसे दूर करना ही प्रयोजनीय है।

पहिली जानी हुई बात के अतिरिक्त अन्य बात जानने के निषेध की जो यह भावना अन्दर मे देखी जाती है, इसका नाम ही ज्ञान

की कठोरता व एकात है। इसको दूर करके अग्नि के ज्ञानवत जो कोई भी बात सरल रीति से जैसी है वैसी स्वीकार करने की भावना का नाम ही ज्ञान की सरलता है। वही अनेकात है। सो कैसे, वह स्पष्ट किया जायेगा। अग्नि उष्ण है यह तो आप सब स्वीकार करते ही हैं; पर अग्नि शीतल है यह कैसे स्वीकार करेगे? फिर भी मै जब ऐसा समझाता हूँ कि देखो आपका हाथ जल जाये तो आप उसका उपचार कैसे करते है? अग्नि पर सेक कर। भले ही उस समय कुछ जलन सी प्रतीत हो पर आगे जाकर उसकी जलन बजाय बढ़ने के शान्त हो जाती है, और आपके हाथ मे उस स्थान पर आवला पड़ने नही पाता। बस दाह को शान्त करने की यह शक्ति अग्नि मे है, इसी को अग्नि की शीतलता समझो; जलवत शीतल कहने का अभिप्राय नही है। तब आप सरलता से उसे स्वीकार कर लेते हो, क्योकि वह वात आप प्रत्यक्ष देख रहे है। इसी प्रकार हिम मे जलाने की शक्ति है जो सर्दी के दिनों मे कोमल कोमल पौधो को जलते हुए देखकर प्रतीति मे आती है। सो भी आप यथायोग्य रूप मे अवश्य स्वीकार कर लेते है। और इसी प्रकार प्रत्येक दृष्ट पदार्थ के सम्बन्ध मे दो परस्पर विरोधी बातों को आप यथायोग्य रूप में सहज स्वीकार कर लेते है। पर आत्मा पदार्थ के सम्बन्ध मे परस्पर विरोधी बाते आपके गले उतरनी कठिन पड़ती है। उसी के फल स्वरूप आज बडे बड़े विद्वान भी परस्पर मे एक दूसरे पर आक्षेप कर करके उनका विरोध करने में ही अपना समय व जीवन बर्बाद कर रहे है। दैनिक व साप्ताहिक पत्र उनके आन्तरिक द्वन्द का युद्धक्षेत्र बनकर रह गये हैं। एक केवल उपादान उपादान की रट लगा रहा है। और दूसरा केवल नैमित्तिक भावों या निमित्तो की। एक ज्ञान मात्र की महिमा का बखान करके केवल जानने जानने की बात पर जोर लगा रहा है, और दूसरा केवल व्रतादि बाह्य चारित्र रखने की बात पर। इतना करने में भी कोई हर्ज न हुआ होता यदि यह ही बातें एक दूसरे का निषेध करती हुई प्रगट न हुई होती। परन्तु यहां तो अपने मत

के पोषण के साथ साथ अन्य विरोधी मत का वड़ा तीव्र व कटु निषेध दृष्टिगत होता हैं। फल निकला द्वेष व कटुता। यही तो है जीवन का भारा प्रभो! यहा लड़ने की क्या बात है? यदि शब्द की बजाय वस्तु को पढ़े तो दोनों बाते वहां पड़ी हैं। भले विरोधी सी लगती हों पर उनका वहा किसी न किसी रूप मे सद्भाव है अवश्य। कितना अच्छा होता कि उन सब बातों का सहज स्वीकार करके दोनों विरोधी बातों को अपने वक्तव्य मे यथास्थान अवकाश दिया होता और इस वर्तमान की निपेध करने की बात को दबा देता। ऐसा करता तो स्वयं तेरे लिये तेरी विद्वत्ता सार्थक हो गई होती। पर यह सब उस समय तक होना कठिन है, जब तक कि आत्मा का साक्षात न कर लिया जाये, या जब तक कि तत्सम्बन्धी सर्व बातों का चित्रण आपके हृदय पट पर परोक्ष रूप से न आ जाये। अतः यह विरोध ही बता रहा है कि ज्ञान अधूरा है। भले ही आप दोनों बातों को शब्दों मे स्वीकार करते हो परन्तु उन दोनों मे एक को अधिक खेंच कर बताने के तथा दूसरी को दबाने के प्रयत्न की भावना, ज्ञान की कठोरता को दर्शा रही हे। ज्ञान की सरलता मे तो ऐसा नही होना चाहिये। क्योंकि जैसा कल बताया गया था ज्ञान का काम तो जानना है। उसके लिये कोई अच्छा बुरा नही होता, हेय उपादेय नही होता, ग्राह्य व त्याज्य नही होता जैसा कि अग्नि की उष्णता व शीतलता दोनों हो यथायोग्य रूप से ज्ञान के लिये ग्राह्य है, वैसे ही आत्मा का ज्ञान शरीरीपना व भौतिक शरीरीपना, आत्मा का वीतराग भाव व क्रोध दोनों ही यथायोग्य रीति से ज्ञान के लिये ग्राह्य है। भले ही चारित्र सम्बन्धी विचार करने मे इनमे से कोई ग्राह्य व कोई त्याज्य हो जाये, परन्तु ज्ञान मे तो ऐसा नही होता, क्योंकि ज्ञान तो दर्पण है। जो भी जैसी और कैसी भी, तथा जिस रूप मे भी वस्तु सामने पड़ी है, वह ही और वैसे ही तथा उस रूप मे ही उस वस्तु का प्रतिविम्ब उसमे तो सहज पड़ जाना चाहिये। यदि आप उसे रोकने का प्रयत्न करते है तो इसका अर्थ यह हुआ, कि आप अपने ज्ञान को

सहज दर्पण रूप से देखने का प्रयास नही करते, बल्कि इसे ब्लेक बोर्ड के रूप मे प्रयोग कर रहे है, जिस पर आप जिस बात का चाहें चित्रण करे और जिस बात का चाहे न करे, जिसे चाहे बना ले जिसे चाहें मिटा दें। यह तो कृत्रिम है। स्वाभाविक ज्ञान की स्वच्छता मे तो ऐसा होना असम्भव है। अतः वहां विरोध व खेचातानी को अवकाश नही। वहा स्वीकार पडा है। बस यही है ज्ञान की सरलता।

यह याद रखना कि यह सारा लम्बा प्रकरण केवल एक ज्ञान मात्र को दृष्टि मे रखकर कहा जा रहा है, चारित्र को नही। इसलिये इस प्रकरण मे यथायोग्य रीति से स्वीकृति को ही अवकाश है, निषेध को नहीं, इसका यह भी तात्पर्य नही कि अनहोनी बे सिर पैर की बात को स्वीकार करने को कहा जा रहा हो, क्योकि जिसके हृदय मे पक्षपात नही और जिसने ज्ञान को सरल बना कर कहना प्रारम्भ किया हो, ऐसा कोई भी व्यक्ति बे सिर पैर की वात भला कहने ही क्यों लगा। हा शास्त्रार्थ व विरोधी संभाषणों तथा वाद विवाद के कुतर्कों मे अवश्य ऐसा होना सभव है। पर यहां तो वैसा वातावरण नही है और न ही होने देना चाहिये, यहां एक प्रश्न हो सकना संभव है कि आगम मे तो ज्ञान को हेयोपादेय के निर्णय करने वाला बताया गया है, और यहा उसको हेयोपादेय के विवेक रहित बताया जा रहा है। सो ठीक है भाई तू भी ठीक ही कहता है। आगम की बात सत्य है और यहा वाली बात भी सत्य है; यही तो बुद्धि का अभ्यास करना अभीष्ट है। इस प्रकार की विरोधी बाते सर्वत्र कथन क्रम में आयेंगी। उसका यथायोग्य अर्थ समझने का अभ्यास कर, निषेध व विरोध उत्पन्न करने का नही। देख मै समझाता हूँ। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, इसका चारित्र भी ज्ञान-स्वरूप है और श्रद्धा भी ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान के अतिरिक्त चारित्र और श्रद्धा कोई भिन्न वस्तु नहीं है, सब एक-मेक है। चेतन

के सब गुण चेतन हैं। ज्ञान का ही नाम उस समय चारित्र हो जाता है जबकि इसमे हेय को त्याग कर उपादेय मात्र को ग्रहण करने का प्रयत्न व झुकाव जागृत हो गया हो। इसी प्रकार ज्ञान का ही नाम श्रद्धा व रुचि हो जाता है जब कि इसमे "तू ऐसा ही किसी प्रकार कर, यही जीवन का सार है, और सब तो निरर्थक है। अरे तू जानने के पश्चात् भी क्यो इसको प्राप्त करने का उद्यम नहीं करता इत्यादि" इस प्रकार के भाव जाग्रत होते हुए प्रतिबिम्बित से हो गये हों। और ज्ञान का नाम ही ज्ञान है, जब कि यह सहज दर्पणवत् सब कुछ जो भी सामने आये उसी को निगल कर अपने अन्दर धरने के लिये तत्पर हो रहा है, चाहे वह विष्टा हो या अमृत। बता दोनों बातो मे अब विरोध कहा रहा। इसी प्रकार सर्वत्र बुद्धि का प्रयोग करके यथायोग्य रीति से अर्थ लगाने का अभ्यास करना चाहिये, तभी आगम की गहनता को स्पर्श कर सकेगा अन्यथा नही। इसी का नाम है स्याद्वाद या दो विरोधीवत दीखने वाली बातों का समन्वय या अनेकान्त।

२. वस्तु अनेकाङ्गी है

भाई वस्तु मे एक दो दस पाच ही नही अनेको अर्थात् अनन्तों भाव पड़े है। उसमें से अनेको बाते परस्पर विरोधी भी है। यद्यपि साधारणत विचारने पर यह बात गले उतरती नही कि दो विरोधी बातें एक ही स्थान पर या एक ही वस्तु मे रह सकती हों, पर वास्तव में है ऐसा ही। वस्तु पढे तो पता चल जाये जैसे की पूर्व कथित दृष्टात मे बताया जा चुका है कि अग्नि में उष्णता व शीतलता, हिम मे शीतलता व दाहकता, दोनों यथायोग्य रूप से एक स्थान पर पड़े है। एक ही स्थान पर रहते हुए भी उनमे कोई झगडा होने नही पाता, क्योंकि वह ऐसे विरोधी नही है। जैसे कि आप समझ रहे है। वह विरोध विचारणा द्वारा ही पकड़ा जाने योग्य है, स्पष्ट दीखने योग्य नही। जिस प्रकार की स्पर्शनेन्द्रिय सबंधी

उष्णत्व वहां है उसी प्रकार की शीतलत्व यदि मैं कहूँ तो अवश्य ही विरोध ठीक होगा, पर उष्णत्व किसी और प्रकार की और शीतलत्व किसी और प्रकार कहूँ तो विरोध का काम नही, जैसा कि पहिले आप स्वीकार कर चुके है। बस इसी प्रकार सर्वत्र समझना। प्रत्येक वस्तु मे परस्पर विरोधी अंग वास करते है, पर वे विरोधी अग शब्दों में ही विरोधीवत् भासते है, वस्तु मे नही। क्यों कि वहां वे विरोध एक ही प्रकार के नही है बल्कि भिन्न प्रकार के है। एक ही वस्तु एक रोग की औषधि होने से अमृत कही जा सकती है, और किसी अन्य रोग के लिये हानिकारक होने से विष कही जा सकती है। इसी प्रकार सर्वत्र यथायोग्य रीति से जानना योग्य है, बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता है, तर्क की नही क्योंकि वस्तु का स्वभाव तर्क से दूर है। उसे तो जैसा है वैसा पढने का सहज प्रयत्न होना चाहिये उसी मे ज्ञान की सार्थकता है।

वस्तु मे अनेक अंग देखने को मिलते है। कुछ तो ऐसे है जो सदा विद्यमान रहते है, जैसे भले ही आम कच्चा हो कि पक्का या सडा हुआ, उसमे कोई न कोई रग कोई न कोई गध कोई न कोई स्वाद अवश्यमेव रहता ही है। अर्थात् कोई न कोई सामान्य नेत्र इन्द्रिय का विषय, कोई न कोई सामान्य नासिका इन्द्रिय का विषय, कोई न कोई सामान्य रसना इन्द्रिय का विषय रहता ही है। वस्तु के इस त्रिकाली अग को तो गुण शब्द द्वारा सूचित किया जाता है। प्रत्येक गुण के अन्तर्गत भी अनेको अग देखने मे आते है जो काल क्रम से बराबर बदलते रहते है। जैसे कि कच्ची अवस्था मे आम का स्वाद खट्टा था, पकी अवस्था मे मीठा और सड़ी अवस्था मे कुछ और सा ही हो जाता है। यद्यपि तीनो ही अवस्थाओ मे सामान्य जिव्हा इन्द्रिय का विषयभूत रस नाम का गुण वहा है, पर प्रत्येक अवस्था मे वह भिन्न-भिन्न रूप से प्रतीति मे आता है। रस गुण के परिवर्तनशील इन खट्टे मीठे आदि अगो का नाम पर्याय है। गुणों

के पृथक कर लेने पर वस्तु कुछ नही रहती जैसे कि रंग, गंध व स्वाद निकाल लेने पर आम नाम का कोई पदार्थ नही रहता, या उष्णता प्रकाशत्व आदि भाव निकाल लेने पर अग्नि नाम का कोई पदार्थ नही रहता । इसलिये अनेक गुणो का समुदाय रूप ही वस्तु सिद्ध होती है । इसी प्रकार पर्यायों के पृथक कर लेने पर गुण कुछ नही रहता । जैसे कि खट्टा, मीठा, चरपरा आदि सर्व भाव निकाल लेने पर जिव्हा का सामान्य विषय या रस नाम का गुण किसे कहेगे । इसलिये पर्यायों के समूह को गुण कह सकते है । अनेक पर्यायो के क्रमवर्ती (आगे पीछे प्रतीति मे आने वाले) समुदाय का नाम एक गुण है । और अनेक गुणो के अक्रमवर्ती (एक ही समय प्रतीति मे आने वाले रूप, रस, गध, वर्ण) वत समुदाय का नाम वस्तु है । अत: वस्तु अनेक गुणों व पर्यायो के समुदाय के अतिरिक्त और कुछ नही ।

इन गुणो व पर्यायों के कारण वस्तु मे अनेकों विरोधी बाते भी देखने मे आती है । जैसे कि एक कुत्ता बदल कर मनुष्य बन गया । कुत्ते की अवस्था मे तो उसकी कल्पनाये या संकल्प विकल्प कुत्ते की जाति के ही थे मनुष्य की जाति के नही । वहां तो वह किसी को काटने या भो भों करने का या दुम हिलाने का विकल्प करता था । पर मनुष्य होने पर उस प्रकार के विकल्प नही करता, यहां धन कमाने का विकल्प करता है जो कुत्ते के रूप मे नही करता था । इस प्रकार ज्ञान के अन्तर्गत होने वाली कल्पनाये बदल गई है । पर फिर भी कुत्ते और मनुष्य की उन सब कल्पनाओ मे ओत-प्रोत ज्ञान का समानजातीयपना ज्यो का त्यों है । इसी प्रकार पहिले तो आकार चौपाया था और अब दो पाया है, पर आकार सामान्यपने की जाति ज्यो की त्यो रही, वह तो बदलकर ज्ञान जाति रूप हो नही गई । इस प्रकार सर्व गुण ही मानों बदल गये, और इन ज्ञान व आकार आदि सर्वगुणो की समुदायभूत वह वस्तु भी बदल कर कुत्ते से मनुष्य

बन बैठी, पर बदल जाने पर भी जीव सामान्य की जातीयता तो ज्यों की त्यो ही रही, वह तो बदलकर जड़ रूप हुई नही इस प्रकार सर्व गुणों व अखंड वस्तु में परिवर्तन आ जाने पर भी गुणों व वस्तु की उस उस जाति का ज्यों का त्यों बने रहना तो गुण व वस्तु की नित्यता है, और उन उन की अवस्थाओं का बदलते रहना उन ही गुणों व वस्तु की अनित्यता है। इस प्रकार एक ही वस्तु नित्यरूप से भी देखी जा सकती है। और अनित्यरूप से भी। समान जातीयपने की अपेक्षा नित्य रूप से, और अवस्था मे फेरफार हो जाने की अपेक्षा अनित्य रूप से।

वस्तु के इस अनेकांगीपने को ही अनेकान्त कहते है। क्योकि जैसे कि पहिले बताया जा चुका है, एक ही शब्द भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त हुआ करता है। इसका कारण है यह कि कथनीय भाव तो अधिक हैं और शब्द थोड़े। इसलिये जब तक एक ही शब्द को अनेकों भावों का वाचक भिन्न-भिन्न स्थलो पर न बनाया जाय, व्यवहार नही चल सकता। यहा 'अन्त' शब्द का अर्थ 'समाप्ति' नहीं है बल्कि वस्तु के अंग या वस्तु के धर्म या वस्तु के स्वभाव (गुण-पर्यायादि) है। अत वस्तु को अनेकान्त, अनेकाग, अनेक धर्मात्मक, अनेक स्वभावी, अनेक गुणात्मक, गुण पिड आदि नामो से पुकारा जाता है। शब्द का अर्थ एक बार निर्णय हो जाने पर आगे-आगे इस प्रकरण मे वह शब्द उसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ समझना। शब्द सबंधी शका न करना क्योंकि शब्दो का पक्ष नही है। आप जो भी चाहे नाम रख सकते है, उस उस-भाव को दर्शाने के लिये।

जैसा कि कल बताया गया था, वस्तु को पढ़ने या पढ़ाने का क्रम वस्तु को खंडित करके ही होना सम्भव है। यहा वस्तु को खंडित करने से तात्पर्य कुल्हाड़ी लेकर उसे चीरना नही है। बल्कि ज्ञान मे ही उसका विश्लेषण करना है, उसका analysis करना है। वस्तु को पढने का यही वैज्ञानिक ढंग

३ विश्लेषण द्वारा परोक्ष ज्ञान

है। इसी के द्वारा आज का विज्ञान बहुत-सी कृत्रिम वस्तुएं बनाने मे सफल हो सका है। वे वस्तुएं बिल्कुल प्राकृतिक जैसी ही होती है। इन्हे सिन्थैटिक (Synthetic) पदार्थ कहते हैं। आज तो ऐसे पदार्थो का बहुत प्रयोग हो रहा है। बनावटी सुगधियें जिन्हे एसैन्स (Essence) कहते हैं इसी विश्लेषण की उपज है। यद्यपि प्राकृतिक पदार्थों में से निकाली नही जाती पर प्राकृतिक जैसी ही होती है जैसे कि गुलाब की सुगध (Assense) गुलाब मे से निकाली नही जाती। ऐसा करने से वह बहुत महगी पड़ेगी। वह तो कुछ बेकार-सी वस्तुओं, घास, फूस आदि मे से निकाली जाती है। उपाय उसी विश्लेषण से निकला है। गुलाब का विश्लेषण करके उसमे पड़े कुछ मूल तत्व (Elements) खोज निकाले। यद्यपि इन मूल तत्वो का मिश्रित रूप मे एक स्थान पर मिलना तो गुलाब मे ही सभव है, पर पृथक्-पृथक् रूप मे यह तत्व किन्ही अन्य पदार्थो मे भी अर्थात् घास व किन्ही झाड़ियों की जडों मे भी पाये जाते है। उनको वहा-वहां से विज्ञान ने खोज निकाला। पृथक्-पृथक् वह-वह तत्व वहा-वहां से निकालकर पृथक्-पृथक् शीशियो मे भर लिये गये। अब इनको यथायोग्य हीनाधिक मात्रा मे परस्पर मिलाने से गुलाब की, खस खस की, केले की इत्यादि अनेको सुगन्धियों की उपलब्धि होनी संभव है, जो बिल्कुल प्राकृतिकवत ही होती है। अन्तर केवल इतना है, कि प्राकृतिक उन पदार्थों मे तो वे तत्व प्रकृति ने सम्मिश्रण किये हैं, पर यहां वही प्रक्रिया मानव द्वारा की गई है, और इसीलिये उसे बनावटी (Synthetic) कहते है। पृथक्-पृथक् उन तत्वों मे कोई भी गंध प्रतीति मे नही आती पर मिश्रित हो जाने पर स्वतः गुलाब आदि की गंध प्रगट हो जाती है। इसे ही वस्तु का विश्लेषण करना कहते है। ज्ञान मे अद्वितीय शक्ति है। यह किसी वस्तु को बिना छिन्न-भिन्न किये भी उसके टुकड़े कर सकता है, अर्थात् उसका विश्लेषण कर सकता है। जैसे कि डाक्टर लोग वताया करते है, कि संतरे मे इतने अंश तो पौष्टिक

विटेमिन पड़े हैं जो स्वास्थ्य को लाभदायक है, इतने अंश इसमे तेजाब या (Acid) है जो पाचक है, इतने अंश इसमे अन्य अन्य तत्व भी है, जो सभवत: स्वास्थ्य को हानिकारक पड़े। ताजी अवस्था मे इसके गुण उपरोक्त प्रकार दृष्ट होते है। पर यदि यही सड़ जाये तो वही गुण कुछ बदल जाते है। उनमे मादक शक्ति प्रगट हो जाती है। कच्ची हालत में वही गुण किसी और रूप से उपयुक्त होते हैं।

इसी प्रकार अग्नि का भी विश्लेषण किया जाता है। वह उष्ण होती है, दाहक होती है और पाचक होती है, वह प्रकाशक होती है, ऊर्ध्वगामी होती है। ईंधन मे रहने पर उसमे वह ऊर्ध्वगामी व प्रकाशपना स्पष्ट दिखाई देता है, पर आरो (गोये) में रहने पर वह दृष्ट नही हो पाता, राख मेंद बी हालत मे उसकी उष्णात्व आदि शक्तिये भी दृष्ट नही हो पाती, तथा अनेकों अन्य रीतियों से इसका विश्लेषण करके इसे खंडित किया जा सकता है, यद्यपि ऐसा करने से अग्नि खंडित नही होती।

प्रश्न होता है कि वस्तु का इस प्रकार विश्लेषण करने से भले ही डाक्टरों को या वैज्ञानिकों को अपनी खोज मे सहायता मिलती हो, पर हमारे लिये यहा ऐसा करने से क्या लाभ, यहां तो ज्ञान की बात चलती है। वस्तु देखी या बताई और जान ली, अधिक टटे मे पडने की क्या आवश्यकता। ठीक है भाई विश्लेषण करने की कोई आवश्यकता नही हुई होती यदि सारी वस्तुये तुम्हे प्रत्यक्ष हो सकी होती। अदृष्ट वस्तु को दृष्टवत् तेरे ज्ञान पट पर चित्रित करने के लिये वस्तु का विश्लेषण करना अत्यन्त उपयोगी है। बिना विश्लेषण किए वस्तु को वाच्य नही बनाया जा सकता। जो वस्तुएं आपने साक्षात् देखी हुई हैं उनके संबंध में तो केवल एक शब्द का संकेत ही पर्याप्त हो जाता है, आपके लक्ष्य को उस ओर खेचने मे। परन्तु जिस पदार्थ का

साक्षात् नही हो पाया उसके लिये भी क्या एक ही शब्द कहना पर्याप्त हो सकेगा ? जैसे अग्नि तो आपकी जानी देखी वस्तु है, अतः इसको बताने के लिये तो 'अग्नि' यह एक शब्द ही पर्याप्त है, परन्तु जैसा कि पहले बताया जा चुका है उस अमेरिका के फल के संवंध में भी यदि मै एक शब्द का संकेत आपको दू तो क्या पर्याप्त होगा ? भले ही उसके लिये पर्याप्त हो जाए जिसने कि उसे देखा और चखा है, पर आपके लिये तो ऐसा न हो सकेगा। तो आपको उसका परिचय कैसे कराये, जबकि वह फल मेरे पास नही। विश्लेषण के अतिरिक्त और मार्ग ही क्या है? विश्लेषण द्वारा उसे खडित करके अनेको अंगों मे विभाजित किया गया। बड़ापना व छोटापना, कठोरपना व नरमपना, रंग व रूप, सुगन्ध व दुर्गन्ध, स्वाद, वीज, शकल सूरत, स्वास्थ्य को लाभदायक हानिकारक इत्यादि। इन तथा अन्य भी अनेकों अगो मे विभाजित करके एक-एक अंग सबंधी वह दृष्टात सामने लाये गये जो आपके जाने देखे है, तथा जो लगभग उन-उन अंगो का कुछ प्रतिनिधित्व कर सकते है। उन-उन दृष्टातो पर से पृथक्-पृथक् उन-उन अंगों को आपके ज्ञान मे उतारा गया। फिर आपको इन सब अंगों को ज्ञान मे ही एकत्रित करने के लिये कहा गया। बस उस फल का धुधला सा आकार या रूप रेखा आपके हृदय पट पर अकित हो गई, जो यद्यपि अत्यन्त स्पष्ट तो नही पर इतनी स्पष्ट अवश्य है, कि वह फल कदाचित जीवन मे देखने का अवसर मिले तो तुरन्त उसे पहिचान जाओ कि यही वह फल है।

४. परोक्ष ज्ञान का ज्ञानपना

इस पर से जाना जा सकता है कि आपके ज्ञान पट पर खिची यह रूप रेखाये उस फल के अनुरूप ही है। यदि ऐसा न हुआ होता अर्थात् यह किसी अन्य पदार्थ संतरे आदि के अनुरूप हुई होती तो, आप कभी भी उस फल को पहिचान न सके होते। यद्यपि आपका यह ज्ञान उस फल के प्रतिबिम्बरूप नही है पर चित्रणरूप अवश्य है। प्रतिबिम्ब और चित्रण मे यद्यपि विशदता व स्पष्टता की अपेक्षा महान अन्तर

है पर आकार सामान्य की अपेक्षा कोई अन्तर नही इसलिये दोनों ही सच्चे हैं। यहा ज्ञान दो प्रकार का सिद्ध हो गया—एक प्रतिबिम्बरूप और एक चित्रणरूप। प्रतिबिम्बरूप तो पदार्थ के प्रत्यक्ष द्वारा ही होना संभव है, इसीलिये उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। परन्तु क्योंकि उपरोक्त प्रकार चित्रित ज्ञान शब्दों आदि के आधार पर से, अन्य पदार्थ को समझाने के अनुमान के आधार पर उत्पन्न हुआ है, इसलिये इसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं।

वस्तु का विश्लेषण करके बताये व जाने बिना परोक्ष ज्ञान होना असम्भव है। क्योंकि जो पदार्थ गुरुओं को आगम मे बताना अभीष्ट है वह प्रत्यक्ष नही है, अत: विश्लेषण करके वचनों द्वारा ही बताने वाले मार्ग का आश्रय लेना पड़ा। यदि प्रत्यक्ष दिखाया जा सका होता तो इस मार्ग को अपनाने की कोई आवश्यकता न थी। इसलिये आगम ज्ञान को परोक्ष ज्ञान कहा जाता है।

प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान मे महान् अतर है। प्रत्यक्ष ज्ञान मे स्वाभाविक ग्रहण होता है और परोक्ष ज्ञान में कृत्रिम। स्वाभाविक ग्रहण मे गलती होनी असम्भव है पर कृत्रिम ग्रहण मे उसकी बहुत सम्भावना है। इसलिये परोक्ष ज्ञान के सबध मे बहुत सावधानी बर्तने की आवश्यकता है। कदाचित ऐसा हो जाया करता है कि वस्तु का परोक्ष ज्ञान भी हो नही पाता और व्यक्ति मिथ्या अभिमान कर बैठता है कि मुझे वह ज्ञान है। दूसरे के लिये तो नही, पर अपने लिये अवश्य वह अहकार घातक हो जाता है। इसलिये स्वहितार्थ इस परोक्ष ज्ञान के सबध मे कुछ और बाते भी विचारणीय व धारणीय है।

सर्व प्रमुख बात इसके सबध मे यह है कि ज्ञान चाहे प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, उसी समय ज्ञान नाम पा सकता है जब कि वह वस्तु की किंचित अनुरूपता को प्राप्त हो चुका हो। सो इन दोनों ज्ञानों मे

प्रत्यक्ष ज्ञान तो सहज ही वस्तु के अनुरूप हो जाता है, क्योंकि वह तो वस्तु का प्रतिबिम्ब ही है, और प्रतिबिम्ब सर्वथा अनुरूप होता ही है पर परोक्ष ज्ञान मे वस्तु के अनुरूप होने में कुछ बाधाये है, वही य जाननी अभीष्ट है ।

भले ही विश्लेषण द्वारा अपने प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ वस्तु को खडित कर लिया गया हो पर वास्तव मे वस्तु खडित नही है । जैसे कि यदि उष्णता को पृथक् निकाल लिया जाय तो न तो उष्णता नाम की कोई वस्तु रह पायेगी और न अग्नि ही अपना सत्व सुरक्षित रख सकेगी । गुण व पर्याप द्रव्य के अंग है, इनको द्रव्य से पृथक् नही किया जा सकता । वस्तु सर्व अंगों का समुदायरूप ही है । और इसलिये तदनुसार ज्ञान भी उन अंगों का समुदायरूप ही होना चाहिये । जैसे वस्तु उन सबका अखंड एक पिन्ड है, उसी प्रकार ज्ञान में ग्रहण किये गये सर्व पृथक् पृथक् भावों या अगों का एक पिन्डरूप अखंड ज्ञान हुए बिना केवल उन अगो का पृथक् पृथक् ज्ञान, ज्ञान नाम पा नही सकता । क्योंकि उस प्रकार की पृथक् पृथक् कोई वस्तु लोक में जब है ही नही तो उस ज्ञान को किसके अनुरूप कहोगे । वास्तव मे ऐसा पृथक् पृथक् अगों के ज्ञान का आधार केवल शब्द है, वस्तु नही । इस प्रकार के खडित या शाब्दिक ज्ञान को परोक्ष ज्ञान नही कहते, वह तो वास्तव मे मिथ्या ज्ञान है, अज्ञान है, अन्धकार मे लिखे कुछ शब्द मात्र है । ऐसा ज्ञान जीवन मे सरलता न ला सकेगा, और वस्तु रहस्य से सर्वथा शून्य यह ज्ञान केवल अहकार व अभिमान का पोषण करता हुआ इसमें वही पक्षपात का विष घोल देगा । अत. भाई ! यदि परोक्ष ज्ञान ही करना है तो कुछ अपनी बुद्धि पर जोर डाल कर उसे एक अद्वैत व अखंड रूप देने का प्रयत्न करे । इस परोक्ष ज्ञान के मार्ग मे यह सर्वथा प्रमुख बात है, इसके अभाव मे सब कुछ खर, विषाणवत् है । इसी बात का स्पष्टीकरण कल किया जायेगा ।

आज के प्रकरण में कुछ शब्दों के लक्षण करने मे आये उनको

५. कुछ शब्दो के लक्षण

यहा दोहरा देना योग्य है ताकि वह स्मृति से उतरने न पाये ।

१. अपनी धारणा के अनुकूल ही बात को सुनने व कहने की, तथा उससे विपरीत अन्य बात को सुनने व कहने का निषेध करने की भावना से निकलने वाली ज्ञान की खेचा-तानी का नाम, एकान्त या पक्षपात है ।

२. अनेक धर्मात्मक वस्तु के अंगभूत गुणों व पर्यायों के एक अखंड समुदायरूप वस्तु को, अनेकान्त या अनेकधर्मात्मक कहते है ।

३. अनेकान्त वस्तु के अनुरूप ही अनेक अगों के एक अखंड ज्ञान के चित्रण को, अनेकान्त ज्ञान कहते है ।

४. अनेकान्त के आधार पर वस्तु का विश्लेषण करके उसके अंगों को पृथक पृथक कथन करने की पद्धति को अनेकान्त वाद या स्याद्वाद कहते हैं ।

५. दृष्ट वस्तु का साक्षात्कार होने पर जो प्रतिबिम्ब रूप से ज्ञान मे उस अनेकान्त वस्तु का अखंड ग्रहण होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है ।

६. वक्ता अपने ज्ञान के आधार पर जो दृष्टातों आदि के द्वारा निरूपण करके, श्रोता के ज्ञान पट पर उस अनेकान्त वस्तु का एक अखंड चित्रण बना पाता है, उसका नाम परोक्ष ज्ञान है ।

७. अनेकान्त वस्तु के पृथक् पृथक् अगों का केवल शाब्दिक ग्रहण अज्ञान या मिथ्या ज्ञान है (परोक्ष ज्ञान नही)

८. अनेकान्त वस्तु के सर्व अगों का वस्तु के अनुरूप एक अखंड चित्रण ही ज्ञान नाम पाता है ।

९. वस्तु के त्रिकाली अंगों का नाम गुण है ।

१०. प्रत्येक गुण के क्षणवर्ती परिवर्तनशील अंगों का नाम पर्याय है ।

११. अनेक पर्यायों का समूह गुण है और अनेक गुणों का समूह वस्तु है ।

४

प्रमाण व नय

दिनाक २५-९-६०
प्रवचन नं. ४

१. अभ्यास करने की प्रेरणा, २. अखड़ित ज्ञान का अर्थ।

१. अभ्यास करने की प्रेरणा

जीवन की मलिनता ज्ञान की मलिनता से है और ज्ञान की मलिनता खेंचातानी या एकान्त रूप है। अनेकान्त रूप गुरुदेव की शरण मे आकर, इनकी सरलता को पढ़ कर, जीवन के इस मैल को यदि धोने का प्रयास करूं तो क्या संभव न हो सकेगा? अवश्य हो सकेगा। अभ्यास में बड़ी शक्ति है। शरीर का मैल छुड़ाने को साबुन का प्रयोग होता है और ज्ञान का मैल छुड़ाने को अभ्यास का। इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं। सामने आई हुई कोई भी बात किस प्रकार यथा स्थान फिट बिठाई जाय, यह कार्य अभ्यस्त व्यक्ति ही कर सकता है, सर्व साधारण जन नहीं और इसीलिये उसे ज्ञानी कहा जाता है। हर व्यक्ति ज्ञानी हो सकता है, शक्ति उसके पास है, यदि प्रयोग करे तो।

गुरुदेव आपको अज्ञानी या मिथ्या दृष्टि कह रहे हैं– इसलिये नही कि आपको चिढ़ाना अभीष्ट है बल्कि इसलिये कि भूल दर्शाकर आपको ज्ञानी बनाना अभीष्ट है। भूल स्वीकार किये बिना भूल दूर होती नही। यदि यह शब्द सुनकर चिढ़ सी उत्पन्न होती है तो भाई! ले हम सब तुझको आज से ज्ञानी व सम्यग्दृष्टि कहने लगेगे। हमारा क्या जायेगा, बिगड़ेगा तो तेरा ही। तेरा ही अहंकार पुष्ट हो जायेगा, जिसके कारण तू अपना वह मैल धोने का प्रयास न करेगा। जैसा कि आज तक करता आया है। शाब्दिक ज्ञान के अभिमान के आधार पर तू अपने को ज्ञानी मानता हुआ दूसरे को ही समझाने का प्रयत्न करता रहेगा, पर स्वयं समझने का प्रयत्न न कर सकेगा। बता क्या लाभ होगा? भाई? इस झूठे अहंकार से तो सभव है ही नही, धैर्य छोड़ बैठने से भी मन शोधन संभव नही है। धैर्य पूर्वक बालकवत चलना सीखने मे दत्तचित्त होकर प्रयास व अभ्यास कर।

आज का बुद्धिपूर्वक प्रारंभ किया गया अभ्यास एक दिन अभ्यस्त हो जाने पर अबुद्धिपूर्वक की कोटि को प्रवेश कर जाएगा। बिल्कुल उस प्रकार जिस प्रकार कि बालक चलना सीखते हुए पहिले तो एक एक पग सोच विचार कर उठाता व रखता है, गिरता भी है, पर अभ्यस्त हो जाने पर वह बिना विचार किये दौड़ने लगता है, और गिरता भी नही है, प्रत्येक पग आप ही आप ठीक उठने लगता है। उसी प्रकार यदि आज से बुद्धिपूर्वक आगम वाक्य का अर्थ ठीक बैठाने का अभ्यास प्रारभ करेगा तो हर बात पर विचार करना पड़ेगा, कही कही भूलेगा भी, पर अभ्यस्त हो जाने पर सहज ही प्रत्येक बात का अर्थ तू ठीक बैठाने मे समर्थ हो जाएगा। तब विशेष विचार करने की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

बस जब तक वह अभ्यास होता नही तब तक ही तू अज्ञानी कहा जा रहा है, अभ्यास हो जाने के पश्चात् ज्ञानी बन जावेगा। अतः

वर्तमान के अभिमान को दूर करके अपने जीवन की कमी को देख, शाब्दिक ज्ञान पर संतोष मत कर, इसका कोई मूल्य नहीं। भले ही तेरी धारणा इतनी प्रबल हो कि सारा आगम तुझे याद हो, पर उस सारे आगम ज्ञान का मूल्य एक कौडी भी नही है। सो ही बात आज दर्शाई जायेगी, जरा ध्यानपूर्वक सुन। धैर्य व शाति से विचार, चिढ़ने का प्रसंग मत आने दे, तेरे अपने कल्याण के लिये ही सब कुछ बताया जा रहा है। निज कल्याण को दृष्टि मे रख कर, सुने तो अवश्य ज्ञानी हो जायेगा। परन्तु यदि पूर्ववत् अब भी उसी शाब्दिक ज्ञान पर इतराता रहा तो भाई! मर्जी है तेरी। करेगा तो वही जो तुझे अच्छा लगता है, मै तो केवल संकेत दे सकता हूँ। कुछ दृष्टात बताकर तेरे अन्दर मे उस अभ्यास करने का उपाय जागृत करने का कोई मार्ग तुझे दर्शा सकता हू, पर अपना अभ्यास तुझे दे नही सकता। अतः प्रभो! आ, तुझे वह अभ्यास करने का क्रम दर्शाये। उसे ही अनेकात-वाद या नयवाद के नाम से पुकारा जाता है।

२. अखडित व खड़ित ज्ञान का अर्थ

कल के प्रकरण मे खडित व अखंडित ज्ञान के प्रति संकेत दिया गया था जो अब तक केवल शाब्दिक रूप धारण किए बैठा है, स्पष्ट नही हो पाया है। अतः प्रश्न है कि ज्ञान के अखडितपने से क्या तात्पर्य? उसी को आज एक दृष्टात द्वारा स्पष्ट करता हूँ। सुनो।

कल दो बाते बताई थी कि एक ज्ञान होता है प्रतिबिम्ब रूप और एक होता है चित्रणरूप। दोनों ही सत्य हो सकते है यदि वे ज्ञेय वस्तु के अनुरूप हों। इन दोनों मे प्रतिबिम्ब तो नियम से अनुरूप ही होता है अत वह तो झूठा या मिथ्या हो ही नही सकता, पर चित्रित ज्ञान मिथ्या व सम्यक् दोनो प्रकार का हो सकता है क्योकि यह प्रत्यक्ष नही परोक्ष है, दृष्ट विषय सबधी नही अदृष्ट विषय सबधी है। इसका आधार वस्तु नही शब्द है जो वक्ता के मुख से निकलकर आपके कर्ण

प्रदेशो तक पहुच रहे है, या जो आप आगम मे पढ कर नेत्र द्वारा ग्रहण कर रहे हैं । वक्ता के तो शब्द सत्य हैं क्योंकि वे तो उस अन्तरंग मे पडे चित्रण को खडित करके निकल रहे है, पर आप मे वही शब्द सत्यता का रूप उस समय तक धारण नही कर सकते, जव तक कि आपके हृदय पट पर भी इन शब्दो के भावो को एकत्रित करके, वही चित्रण अकित न हो जाए ।

दृष्टांत रूप से टेलीविजन सैट (Television Set) ले लीजिए । एक चित्र आज एक स्थान से वे तार के तार (Wire less) द्वारा दूसरे स्थान पर भेज दिया जाता है । अमेरिका मे वोलने वाले वक्ता के वचन सुनने के साथ साथ आज आप उनका चित्र भी अपने घर वैठे हुए ही अपने टेलीविजन सैट की स्क्रीन पर देख सकते हो । किस प्रकार चित्र वहा से यहां आना संभव हो सका ? यह वात तो आप जानते है, कि यह कार्य बिजली के माध्यम द्वारा किया जाता है । पर विजली तो धारा रूप है, एक समय मे सारी की सारी प्रगट हो सके ऐसी नही है, वह तो बहने वाली है, पर चित्र तो धारा रूप नही है, वह तो सारा का सारा एक दम ही देखा जाता है । वचन तो धारा रूप होते है, एक के पीछे एक आते है, पर चित्र तो इस प्रकार नही होता कि उसका एक अंग अर्थात् सिर पहले दिखाई दे, नाक उसके पीछे पाव अन्त मे । वह तो सारा का सारा एक ही समय दृष्ट होता है । अत. वचनो को विजली की धारा रूप से परिर्वतित किया जाना भले सभव हो सके, पर चित्र को धारा बनाना कैसे संभव है, और उसको धारा वनाये बिना बिजली रूप से परिवर्तन कैसे सभव है । सो भाई ! ठीक है, चित्र वास्तव मे स्वयं धारा रूप नही है अर्थात् आगे पीछे देखा जाने योग्य भी नही, वह तो अक्रम रूप से एक दम ही देखा जाता है, पर विज्ञान ने उसे धारा का रूप दे दिया है ।

टेलीविजन के सिद्धांत मे जो प्रक्रिया चलती है वही यहां ज्ञान पट पर चलनी चाहिये । टेलीविजन मे पहले कैमरे मे ग्रहण किये गये

अखडित चित्र को खडित करके धारा का रूप दिया जाता है । फिर बिजली के रूप मे परिवर्तित किया जाता है, और वह बिजली की धारा आपकी तरफ फेक दी जाती है । स्टेशन का काम समाप्त हो गया । आपके घर पर रखा टेलीविजन सैट उस बिजली की धारा को ग्रहण करता है । धारारूप बिजली को चित्र मे परिवर्तित करता है, और फिर सक्रीन पर उस धारा को एक अखडित रूप देकर एक अक्रम वास्तविक चित्र बना देता है, जो बिल्कुल उस मूल चित्र के अनुरूप होता है, जिसके आधार पर कि वह बिजली की धारा बनाई गई थी । यदि उसके अनु-रूप न हो तो इस चित्र को सच्चा नही कहा जा सकता । भौतिक विज्ञान मे तो कभी भी ऐसी भूल नही हो पाती कि धारा पर से बनाया गया वह चित्र मूल चित्र के अनुरूप न हो सके, पर चेत्न विज्ञान मे भूल हो जाती है क्योंकि यहां बुद्धि का प्रयोग है । यहा ज्ञान के साथ साथ व्यक्ति की अपनी रूचि व विश्वास भी काम कर रहे है ।

प्रश्न है कि चित्र को धारा और धारा से पुन: अखड चित्र बना देने की वह प्रक्रिया क्या है ? सो यदि यहा कोई इस बेतार के विज्ञान (Wireless scince) से परिचित व्यक्ति बैठा हो तो तुरन्त मेरा आशय समझ जायेगा, पर आप सब तो उसे न समझ सकेगे, इसलिये इसी दृष्टात को और सरल बना कर आपके सामने लाता हूँ । याद रहे कि दृष्टात किसी अभिप्राय को समझाने के लिये दिया जाता है, दृष्टांत पढने के लिये नही । अत दृष्टात मे समझाये गये चित्र की धारा व धारा पर से चित्र निर्माण के क्रम से आप उसी प्रकृत को पढने का प्रयत्न करना, कि खडित या धारारूप ज्ञान और अखडित चित्ररूप ज्ञान किसे कहते है, इन दोनों मे क्या अन्तर है तथा बिना चित्ररूप ज्ञान के वह शाब्दिक धारारूप ज्ञान क्यो झूठा व निरर्थक बताया जाता है ।

देखिए यह एक चन्द्रमा का चित्र मैने ब्लेक बोर्ड पर खेचा । आप सब देख रहे है इसे । अब मै कहता हूँ कि इसे धारा रूप चित्र बनाइये,

ऐसा कि ज्यो का त्यों इस सूक्ष्म छिद्र के द्वार से यह इस डब्बे मे प्रवेश पा सके। आप विचारते होगे कि क्या यह भी सम्भव है कि लम्बाई चौड़ाई व मोटाई को रखने वाला यह चित्र, इस छिद्र मे प्रवेश पा जाये। कुछ अनहोनी सी बात दीखती है, पर वास्तव मे ऐसा नही है। आओ हम इसे इस छिद्र के मार्ग से ज्यों का त्यो इस डब्बे मे प्रवेश करके दिखाये।

यदि इस चित्र को ब्लेक बोर्ड की बजाय एक लम्बे धागे पर उतार दिया जाये और वह धागा धीरे धीरे इस छिद्र के मार्ग से डब्बे मे डाल दिया जाये तो क्या चित्र ज्यो का त्यो डब्बे मे न पहुच जायेगा ? पर यह बात भी कुछ अटपटी सी लगती है। धागे पर चित्र को कैसे उतारे ? सो भाई ! वैज्ञानिक की भाति विचार करे तो सब कुछ सम्भव हो सकता है। देखो मै वताता हूँ इसका उपाय और कितना सरल है। यहा इस लम्बे धागे को इस गत्ते के छोटे से टुकडे पर ऊपर से नीचे तक लपेट दीजिए, इस प्रकार कि प्रत्येक धागे का लपेट एक दूसरे से सट कर रहे, जैसे कि हुक्के पर धागे लपेटे जाते हैं। इस प्रकार करने से धारा रूप यह लम्बा धागा एक कागज या बोर्डवत् चौडा ताना वन गया अब यह बोर्ड पर के चन्द्रमा का चित्र इस ताने पर स्याही से वना दीजिए। क्या बनाना संभव नही है ? नही, यह तो सम्भव है।

जिसप्रकार कागज पर चित्र ड्राइंग करते है यहां भी कर सकते हैं। अच्छा देखो यह चित्र धागे के इस ताने पर बन गया। अब लीजिए इस धागे का एक सिरा पकड कर खेचना प्रारंभ कीजिए, और इस छिद्र के मार्ग से यह धागा इस डब्बे मे प्रवेश करा दीजिए। धीरे धीरे गत्ते के टुकड़े पर से धागा उधडता या खुलता जायेगा और डब्बे में जाकर इकट्ठा हो जायगा। क्या चित्र डब्बे मे नही पहुच गया है ? अवश्य पहुंच गया है।

अब यह विचारना है कि क्या धागे का यह ढेर जो डब्बे मे यो ही पडा हुआ है कोई चित्र के रूप मे दिखाई देता है ? नही यदि ऐसा कोई

लम्बा चित्रित धागा आपके सामने लाऊं और आपसे पूछू कि इस धागे पर आपको क्या दिखाई देता है तो क्या कहेंगे ? केवल कुछ कुछ अन्तराल पर पड़े स्याही के काले दाग, और कुछ भी नही। मै कहता हूँ इस पर चन्द्रमा का चित्र खिचा है पर क्या आप देख सकेंगे ? देख तो सकेगे पर धागे की इस हालत मे नही। यदि पुनः आप इस धागे को उतने ही बड़े किसी गत्ते पर पूर्ववत् सटा सटा कर लपेट दे, तो क्या ये धागे पर के काले काले दाग एक दूसरे के निकट सम्पर्क मे यथा स्थान आकर चन्द्रमा का चित्र न बन बैठेगे ? अवश्य बन बैठेगे। यदि आप लपेटे तो भी और एक बालक लपेटे तो भी। परन्तु ध्यान रहे कि गत्ते का वह टुकड़ा जिस पर कि आप इसे लपेटने बैठे हे बिलकुल उतना ही बड़ा व उतना ही मोटा हो जितना कि पहिला था। यदि एक बाल का फर्क रह जायेगा तो ये काले दाग यथास्थान एक दूसरे की निकटता को प्राप्त न हो सकेगे, बल्कि कुछ कुछ सटक जायेगे, और धागे के इस ताने पर कुछ बिखरी हुई काली काली बून्दे सी ही दीख पावेगी, चन्द्रमा नही। यदि धागे का ठीकबठीक ताना उपरोक्त प्रकार तन पाये तो उस पर प्रगट होने वाला वह चन्द्रमा का चित्र बिल्कुल वैसा ही होगा या उनसे कुछ भिन्न रूप का ! उतना ही बड़ा होगा या छोटा बड़ा ? स्पष्ट है कि वैसा ही व उतना ही बड़ा होगा। और इस प्रकार एक अखडित चित्र को धारा का रूप देकर उसे पुनः अखडित चित्र बना दिया गया।

उपरोक्त प्रकरण मे दो बाते प्रमुख है, जिनके सबध मे विचार करना है—एक है धागे पर का चित्रण जिसे मै आगे आगे 'धारारूप चित्रण' इस शब्द द्वारा कहूगा, दूसरा है धागे का ताना करने के पश्चात् प्रगटा चित्रण जिसे मै 'अखडित चित्रण' इस शब्द से कहूगा। धारारूप चित्रण मे देखने पर आगे पीछे पड़े काले धब्बो के अतिरिक्त कुछ दिखाई नही देता। अखडित चित्रण मे वही काले धब्बे एक चित्र का सुन्दर रूप धारण कर लेते है। काले धब्बो को देखने पर आप कुछ

नही जान पाते पर अखंडित चित्रण देखने पर चन्द्रमा आपको प्रत्यक्ष प्रतिविम्ववत् दीखने लगता है। धारारूप चित्रण के उन धव्वे मे चन्द्रमा है अवश्य पर केवल उसके लिये जो कि उसे अखंडित चित्रण का रूप दे पाया है, सर्व साधारण के लिये उसमे चन्द्रमा है ही नही, क्योंकि उसे वहा उस की प्रतीति होती ही नही। इसलिये उसके लिये उन धव्वो का कोई मूल्य नही, पर अखडित चित्रण वनाने वाले के लिये वहुत मूल्य रखते है।

इसी पर से सिद्धांत निकालना है। वक्ता के धारा प्रवाही वचन, वास्तव मे उसके हृदय पट पर खिचे हुए वस्तु के प्रतिविम्व या चित्रण का खडित रूप है। या यो कहिये कि उसके हृदय पट पर खिचा चित्रण अखडित चित्रण है जो वस्तु के अनुरूप है, और उसके वचन उसी वस्तु का धारा रूप चित्रण है। यह वचनो मे निवद्ध धारा रूप चित्रण आप कर्ण इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करते है। इसमे आपको केवल आगे पीछे सुने जाने वाले कुछ शब्दो मात्र की ही प्रतीति हो पाती है। जो केवल उस धारा-रूप चित्रण पर के धव्वोवत् है। यदि इस धारा को तानारूप तान कर आप इसको अखडित चित्रण मे परिवर्तित कर सके, तो वे शब्द रूप धव्वे आपके लिये भी वस्तुभूत वन जायेगे, विल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि वक्ता के लिये है। इसके द्वारा आपके हृदय पट पर वनाया गया अखडित चित्रण विल्कुल वक्ता के चित्रण के अनुरूप ही होगा। अखडित चित्रण मे परिवर्तित होने से पहिले शब्द रूप धव्वो का आपके लिये कोई मूल्य नही, इसलिये वे वक्ता के लिये सारात्मक होते हुए भी आपके लिये नि सार है।

इस अखडित चित्रण रूप ज्ञान को ही आगम मे प्रमाण शब्द का वाच्य बनाया गया है, और क्योकि इसमे कोई संशय या विपरीतपना या 'क्या कुछ है या नही' इस प्रकार के अनध्यवसायपने का अभाव रहता है, इसलिये इसी अखंडित चित्रणरूप प्रमाण ज्ञान को ही सम्यग्ज्ञान

कहा जाता है । अखंडित चित्रण बन जाने के पश्चात् धारा रूप चित्रण वाले ज्ञान मे पढ़े हुए पृथक पृथक भाव जो धारा प्रवाही वचनों पर से ग्रहण करने में आये है, नये ज्ञान कहलाता है । प्रमाण ज्ञान अनेकान्त वस्तु के अनुरूप अखड चित्रण होने के कारण अनेकान्त है, और नये ज्ञान उस अनेकान्त वस्तु के पृथक पृथक अगों के खडित चित्रण रूप होने के कारण एकागी या एकान्त है ।

५

सम्भक् व मिथ्या ज्ञान

दिनाक २७-९-६०
प्रवचन न. ५

१ नय प्रयोग का प्रयोजन, २. सेशयादि व उसका कारण अखड चिन्तण का अभाव, ३ सम्यक व मिथ्या ज्ञान के लक्षण ४. आगम ज्ञान मे सम्यक् व मिथ्यापना, ५ प्रत्यक्ष ज्ञान में सम्यक् व मिथ्यापना, ६ सम्यग्ज्ञान में अनुभव का स्थान, ७. काल्पनिक चिन्तण सम्यज्ञान नही, ८ आगम की सत्यार्थता, ज्ञानी के सान्निध्य का सम्यग्ज्ञान प्राप्ति में स्थान, १०. वस्तु पढ़ने का उपाय, ११ कुछ लक्षण।

१ नय प्रयोग का प्रयोजन,

हृदय की सरलता का आधार ज्ञान की सरलता है अर्थात् यथा योग्य रीति से वस्तु के प्रत्येक अंगों का तथा उनमे दिखने वाले विरोधो का सहज स्वीकार ही ज्ञान की सरलता है। उसी प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ अथवा वाद विवाद रूप कटुता व ज्ञान की खेचातानी रूप एकान्त

को शमन करने के अर्थ, उस अनेकान्त सिद्धात का जन्म हुआ है, और यहा भी यह नय विवरण इसी लिये चल रहा है।

प्रमाण, नय, एकान्त व अनेकान्त यह चार बाते मुख्यत इस प्रकरण मे जानने योग्य है। यह चारों सम्यक् ही होते हों ऐसा नही है। यह चारो के चारों मिथ्या भी होते है। सम्यक् प्रमाण, मिथ्या प्रमाण, सम्यक्नय, मिथ्यानय, सम्यगनेकान्त, मिथ्या अनेकान्त, सम्यगेकान्त, मिथ्या एकान्त इस प्रकार इन चारों के आठ रूप हो जाते है, तथा इसी प्रकार वस्तु के प्रत्येक अग के, अपेक्षावश दो विरोधी भेद उत्पन्न हो जाया करते है। इन विरोधो को दूर करने के अर्थ ही इस अनेकान्त वाद या नय वाद का प्रयोग करने मे आता है। इसे ही स्याद्वाद कहते है। किसी अपेक्षा से वस्तु का वह अंग ठीक भासता है और किसी अन्य अपेक्षा से वह ठीक नही भासता। प्रत्येक वस्तु के विरोधो को खोला जाना तो यहां असम्भव है। उसके लिये तो बुद्धि ही एक मात्र साधन है। यहा तो बुद्धि को इस प्रकार के विरोधो का ठीक ठीक अर्थ बैठाने का अभ्यास कराना अभीष्ट है। एक पथ और दो काज। सम्यक् मिथ्या, प्रमाण व नय भी जाने जाये और ठीक ठीक अर्थ बैठाने का अभ्यास भी प्रारंभ हो जाये इसलिये यहा यह बात स्पष्ट करने मे आयेगी कि अपेक्षाये किस प्रकार लागू की जाती है, और उन्हे लागू करके अर्थ कैसे निकाला जाता है।

कल वाले प्रकरण मे इन चारो के लक्षण बता दिये गये है, आज यह बताया जाता है कि चारो ही मिथ्या व सम्यक् क्यो हो जाते है। यहा यह बात समक्ष लेनी चाहिये कि सम्यक् ज्ञान उसे कहते है जो प्रति बिम्बवत् का प्रत्यक्षवत अत्यन्त स्पष्ट हो, जिसमे कोई सशय न हो अर्थात् 'ऐसे है कि ऐसे है' ऐसा भाव प्रतीती मे न आता हो। जिसमे विपर्य्याता न हो अर्थात् बिल्कुल उल्टा प्रतिभास न होता हो। और जिसमे अनध्यवसाय न हो अर्थात् "क्या कुछ है क्या प्रतीती में

सशयादि व उसका कारण अखड चिन्तण का आभाव

आता नही। अन्धकार मे हाथ मारनेवत् या अन्धो के तीर चलानेवत् कुछ कर भले रहा हूं पर कुछ पता चलता नही कि क्या कर रहा हू। जो शब्द सुने व पढे बस उनको दोहरा मात्र रहा हूं, उनके भावो का मुझे कुछ पता नही।" इस प्रकार का भाव जहा न पाया जाये। इन तीनो बातो से रहित स्पष्ट, नि.सशय, दृढ व प्रत्यक्ष वत् दीखने वाले वस्तु के चित्रण को सम्यक्ज्ञान कहते है। तथा इन तीनो बातो सहित ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते है।

अब विचार करना यह है कि यह तीनों बाते कहा और क्यो उत्पन्न होती है। जैसे कि कल वाले दृष्टात पर से स्पष्ट करने मे आया था, जहा अखडित चित्रण का ज्ञान नही होता वहा ही वास्तव मे उसके धारा रूप चित्रण का ज्ञान भी नही हो सकता। क्योंकि देखनें पर वह धारा रूप चित्रण केवल धागे पर आगे पीछे पडे कुछ काले धब्बो के अतिरिक्त कुछ भी न भासेगा और इसलिये भले ही मेरे कहने पर आप यह स्वीकार कर ले कि ठीक है, इस धागे पर चन्द्रमा का चित्र है, पर वास्तव मे यह बात आपके हृदय पर पर स्पष्ट नही हो पायेगी। यह केवल शाब्दिक स्वीकार होगा, हार्दिक नही। हार्दिक स्वीकार तो तभी हो सकता है जब कि आप अपने ज्ञान पट पर अनुमान के आधार पर उस धागे को कदाचित तान कर उस पर पड़े उन धब्बों को एक अखड चन्द्रमा के चित्र रूप से देख पाये। इसलिये स्पष्ट है कि अखडित चित्रण के अभाव में उस चित्रण के वे धारा रूप खंड आपके हृदय मे यह तीनों बाते अवश्य उत्पन्न कर देगे। या तो आप विचारने लगेगे कि न मालूम इस धागे पर यह काले दाग डाल कर क्यों इसे गन्दा कर दिया गया और यही आपका अनध्यवसाय कहलायेगा। या आप विचारेगे कि इस पर चन्द्रमा का चित्र बताया जा रहा है परन्तु है या नही कौन जाने—और यही आपका संशय कहलाये। या आप विचारेगे कि अरे मुझे धोका देने के लिये ही, मेरी परीक्षा लेने के लिये ही या मेरी हंसी उडाने के लिये ही यह मुझ को इस धागे पर चन्द्रमा के चित्र का

सद्भाव कह रहे है, पर वास्तव मे वहां वह है ही नही, वहां तो केवल कुछ धब्बे मात्र है—बस यही आपका विपर्य्यय भाव होगा। इससे सिद्ध हुआ कि अवश्यमेव अखडित चित्रण की अनुपस्थिति मे ज्ञान में तीनों बाते होती है।

३. सम्यक व मिथ्या ज्ञान के लक्षण,

एक दूसरे दृष्टात पर से भी इस बात को पुष्ट करता हूँ देखिये यह महल है। ईट पत्थरों व लकड़ी के दरवाजे आदि अनेकों अंगों को जोड़कर बनाया गया है। जब इसको बनाने के लिये ईंट पत्थरो व इन दरवाजों आदि का ढेर बाहर लगा हुआ था, तब उन ईट पत्थरो मे यह महल था या नही? कहना होगा कि था भी और नही भी। क्योकि उस व्यक्ति को तो वह स्पष्ट दिखाई देता था जिसके हृदय मे कि इस महल का नक्शा मौजूद था, पर उस व्यक्ति को वह प्रतीति में नही आता था जिसके हृदय मे इसका नकशा नही था इसलिये अखडित चित्रण रूप नकशा हृदय पट मे रहने पर यह कहा जाना कि इन ईटों मे महल छिपा है—यह बात सम्यक् व स्पष्ट है, संशय विपर्य्यय अनध्यवसाय रहित है। पर अखडित चित्रण से शून्य हृदय के लिये—यह कहना कि इसमे महल छिपा है, केवल शब्द मात्र है, सुनी सुनाई बात है, प्रलापमात्र है, वाक् गौरव के अतिरिक्त कुछ नही क्योकि वहा यह बात बिल्कुल अधकार मे पड़ी है, अस्पष्ट है, सशयादि सहित है, नि सार व अकार्यकारी है। क्योकि ऐसा व्यक्ति उनके रहते हुए भी महल का उपभोग नही कर सकता, उसे बरसात मे भीगना ही पडेगा, और दर्वाजे आदि भी धीरे धीरे बरसात धूप आदि के द्वारा गलकर बेकार हो जायेगे।

इसी प्रकार आगम के अन्दर पडे शब्दों का ढेर अध्यात्म विज्ञान रूप महल के अंग अवश्य है, परन्तु केवल उसके लिये, जिसके हृदय पट पर कि विज्ञान का अखडित चित्रण विद्यमान है। इससे शून्य हृदय के

लिये तो वह अध्यात्म विज्ञानरूप न होकर केवल शब्द मात्र है। इसलिये पहिले व्यक्ति के लिये, यह आगम ज्ञान साररूप है और दूसरो के लिये नि सार। पहिले के लिये प्रमाण है और दूसरों के लिये प्रमाण भास या अप्रमाण। पहिले के लिये अगो का यथास्थान जडित समुदाय रूप है, और दूसरो के लिये पृथक पृथक पड़े तथा भाव शून्य शब्दों का ढेर मात्र। इसलिये यही आगम पहिले व्यक्ति के लिये संशयादि रहित है और दूसरो के लिये सशयादि सहित। भले ही ११ अंग पढ ले, धारणा इतनी प्रवल कर ले कि सारा आगम कंठ मे पडा हो पर वह सब उपरोक्त रीति से अखडित चित्रण रूप प्रमाण से निरपेक्ष रहने के कारण सशयादि रहित नही हो सकेगा। बस सार निकल आया कि वस्तु के अखडित अनेकागी चित्रण का हृदय पट पर सद्भाव रहने पर तो प्रमाणनय आदि चारों सम्यक् है, और उसके अभाव मे चारो मिथ्या।

४ आगम ज्ञान मे सम्यक व मिथ्यापना

यही वह सार है जिसको पढना है। अहकार व मिथ्या अभिमान अपने लिये ही घातक है। अत भाई अब इस अभिमान को छोड कि मुझे आगम ज्ञान है। और इसे सम्क्ज्ञान कहा गया है, अत. मैं सम्यग्ज्ञानी हूँ। अपने अन्दर झुककर उस अखड चित्रण की खोज कर। यदि वह वहा नही है तो अवश्य ही तत्सवधी सशय, विपर्य्यय या अनध्यवसाय मौजूद है और इसलिये वह तेरा आगम ज्ञान सम्यग्ज्ञान नही है, मिथ्या ज्ञान है। झुझलाने की वात नही। सुधार करके उन्नति करने की बात है।

और देखिये यही से अनेकान्त उदय होकर अपना परिचय दे रहा है, एक वस्तु मे दो अगो का प्रदर्शन कर रहा है। आगम सर्वथा सम्यग्ज्ञान नही, यही आगम या जिन वाणी सम्यक् भी है और मिथ्या भी। अरे अरे! जिन वाणी को यहा मिथ्या कहा जा रहा है। भाई! झुझलाने की वात नही। यह तेरी झुझलाहट ही वास्तव मे खेचातानी रूप एकात है। यथा योग्य रीति से अर्थ लगाने का अभ्यास यहा से ही

प्रारभ कर । इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार समझ कि किसी व्यक्ति के लिये यह सम्यक् है और किसी के लिये मिथ्या । जिन गुरुओं से यह आया है उनके लिये तो सम्यक् ही है या जिन्होने इसे पढ कर गुरुओं के ज्ञान के अनुरूप ही अध्यात्म का कोई अखडित यथार्थ चित्रण हृदय पट पर बना लिया है, उनके लिये भी यह सम्यक् है । परन्तु उनके लिये जो कि उस चित्रण से शून्य है, यह मिथ्या है । इसी प्रकार एक ही बात भिन्न भिन्न अपेक्षाओ व आश्रयों से विरोध को प्राप्त हो जायेगी, इसी का नाम अनेकात है ।

५ प्रत्यक्ष ज्ञान मे सम्यक व मिथ्यापना

यहा इस स्थल पर एक दूसरे प्रश्न का भी स्पष्टीकरण कर देना चाहिये । वह यह कि परसो के प्रकरण मे मै यह बता चुका हूँ कि वस्तु को प्रत्यक्ष देखने पर जो प्रतिबिम्ब रूप ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है वह तो सर्वदा ठीक ही होता है, अर्थात् सम्यक् ही होता है, उसमे तो हीनाधिकता या विपरीतता या संशयादि उत्पन्न होने सभव ही नही है । और परोक्ष ज्ञान रूप जो चित्रण है, वह ठीक भी हो सकता है और गलत भी । सो यह दूसरी परोक्ष ज्ञान संबधी बात तो आगम से मेल खाती है पर पहली बात आगम से विरोध को प्राप्त हो जाती है । क्योकि यहा जिस प्रत्यक्ष ज्ञान को दृष्टि मे रखकर बात की जा रही है वह इद्रिय प्रत्यक्ष के संबंध की है । इसे आगम मे मतिज्ञान कहा गया है । और उसे वहा सम्यक् और मिथ्या दोनों प्रकार का बताया है । जबकि उसे मै सम्यक् ही होने का निश्चय कर रहा हूँ । दूसरे परमार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान मे भी भले ही मन: पर्यय व केवलज्ञान के साथ तो यह नियम लागू हो जाता हो, पर अवधिज्ञान के साथ यह नियम लागू नही हो सकता, क्योकि उसको भी दोनों प्रकार का बताया गया है ।

प्रश्न बहुत सुन्दर है और प्रकरणवश इसका स्पष्टीकरण यहां किया भी जाना चाहिये । सो भाई ! ठीक ही कहता है । ऊपर से देखने

पर तो विरोध स्पष्ट है ही । इस से इन्कार नही किया जा सकता । पर यहा बुद्धि पर जोर देकर विचारने का प्रयत्न करे तो वह विरोध विरोध नही रह पायेगा । आगम वाली बात भी ठीक ही दिखाई देगी, और मेरी बात भी । बस यही तो है अनेकान्त सिद्धात की महिमा । पर बुद्धि लगाये बिना इसका स्पर्श कठिन है । प्रकरणवश आगे आगे भी इसी प्रकार के अनेको प्रश्न आयेगे और वहा उन पर अनेकान्त का प्रयोग करके दिखाया जायेगा, या यो कहिये कि भिन्न भिन्न अपेक्षाये लगा लगाकर विरोधों को दूर करके दिखाया जायेगा । इस पर से ही अपेक्षा के प्रयोग करने का उपाय ग्रहण कर लेना, क्योकि पृथक से कोई अध्याय केवल अपेक्षा लागू करने के विषय मे सभवत्. आने न पाये । अपेक्षा लागू करने को दृष्टान्त चाहिये, जिन पर कि वह लागू करके दिखाई जाये । यहा वह दृष्टात सहज उपलब्ध हो रहे हैं । अपेक्षा लागू करने के सबध मे कोई सैद्धातिक नियम नही है, वुद्धि की स्पप्टता ही मात्र एक साधन है । भिन्न भिन्न स्थलो पर भिन्न भिन्न रूप से उनको लागू किया जाता है । यद्यपि आगे आने वाले नयों के विषय पर से उसका किंचित अनुमान लगाया जा सकता है, पर वास्तविक उपाय तो निज का अभ्यास ही है । अत जिस प्रकार पहिले प्रश्न मे आगम ज्ञान को मिथ्या व सम्यक् दोनो प्रकार का सिद्ध कर दिया गया यहा भी प्रत्यक्ष ज्ञानों में सर्वथा सम्यक्पना किसी अपेक्षा सिद्ध किया जा सकता है । दृष्टांत पर से अपने ज्ञान को मांजने का अभ्यास कर , ताकि स्वतत्र रीति से स्वत. वह इस प्रकार के प्रश्नों का हल कर सके । तेरा अपना अभ्यास तेरे काम आयेगा । हर समय ज्ञानियो का सम्पर्क वने रहना बहुत कठिन है । और फिर उनसे कराया गया स्पष्टीकरण केवल एक विषय के संबंध मे ही हो सकेगा, सर्व विषयों के सवंध मे कैसे होगा । तेरी ज्ञान की सरलता तो जब है जब कि सर्व विषयो संबंधी स्पष्टीकरण हो जाए, मूल व प्रयोजन—भूत विषय संबधी सशयादि न रहे । और यह काम केवल अपने ज्ञान के अभ्यास से ही होना संभव है ।

देख प्रश्न का स्पष्टीकरण करके दिखलाता हूँ। यह बात याद रखने की है कि किसी भी शब्द या वाक्य का अर्थ लगाने से पहिले यह देख लेना आवश्यक है कि वहा प्रकरण क्या चल रहा है। प्रकरण के भेद से एक ही शब्द या वाक्य के अर्थ व भाव मे अन्तर पड़ जाया करता है। मै ज्ञान की प्रत्यक्षता का आधार सर्व साधारण विषय ले रहा हूँ और आगम मे केवल अध्यात्म विषय के आधार पर कथन किया गया है। मेरे प्रकरण मे सम्यक् व मिथ्यापने का माप दंड विस्तृत है और वहा सकुचित। यहा तो जिस किस विषय सबंधी भी सशयादि का अभाव होने पर उस विषय सबंधी सम्यक् ज्ञान होना बताया जा रहा है और वहां केवल आत्मा के विषय मे संशयादि दूर हो जाने को सम्यग्ज्ञान कहा जा रहा है। देख प्रकरण के भेद से कितना बड़ा अन्तर पड़ गया।

एक व्यक्ति सर्प को सर्प रूप देखता है और दूसरा व्यक्ति उसे रस्सी समझता है। दोनों मे किसका ज्ञान सम्यक् हुआ ? स्पष्ट है कि पहिले का, परन्तु यहा सम्यक् पना आत्मविज्ञान के प्रति सकेत नही कर रहा है, पर केवल सर्प ज्ञान के प्रति संकेत कर रहा है। जब कि आगम मे यहां तक कह दिया है कि सम्यग्ज्ञानी तो सर्प को रस्सी देखे तो भी उसका ज्ञान सम्यक् और मिथ्या ज्ञानी सर्पको सर्प देखे तो भी उसका ज्ञान मिथ्या है। यह बात कैसे स्वीकारी जा सकती है ? क्या साधारणत: देखने पर इसे पक्षपात या साप्रदायिकता न कहेगे ? परन्तु प्रकरण पर से अर्थ लगाने पर इसमे पक्षपात की बू न आयेगी ? आगम मे सम्यक् ज्ञान का माप दड है केवल आत्म विज्ञान, और इसीलिये आत्म विज्ञान शून्य सर्व व्यक्ति आत्म विज्ञान की अपेक्षा मिथ्या ज्ञानी है, भले ही अन्य विषयों सबंधी उनका ज्ञान सम्यक् हो। पर सम्यक्पने के माप दंड को विस्तृत करके यदि सर्व विषयक विज्ञान कर दिया जाये तो हर व्यक्ति को किन्ही एक दो, दस, पचास विषयों सबंधी सम्यक् ज्ञान है, उन विषयों की अपेक्षा वह सम्यक्ज्ञानी है, उसके अतिरिक्त अन्य विषयों की अपेक्षा मिथ्या ज्ञानी है।

इस प्रकार सर्व विषयों के विज्ञाता सर्वत्र देव को छोड़कर हर व्यक्ति किसी अपेक्षा से सम्यग्ज्ञानी है और किसी विषय की अपेक्षा मिथ्याज्ञानी । जैसे कि डाक्टरी विज्ञान की अपेक्षा डाक्टर लोग, मशीन विज्ञान की अपेक्षा एन्जियर लोग, अणु विज्ञान की अपेक्षा अमेरिका व रूस के वैज्ञानिक विशेष ही सम्यग्ज्ञानी कहे जा सकते है, वीतरागी गुरु नही । और आत्मविज्ञान की अपेक्षा वीतरागी गुरु वा अन्य अल्प भूमिका मे स्थित कोई भी अनुभवी व्यक्ति ही सम्यग्ज्ञानी कहा जा सकता है, ऊपरवाले डाक्टर आदि नही, क्योकि वे उस विषय को जानते नही । इसी प्रकार सर्वत्र लागू करना । अव बताओ कि मेरी वात व आपकी वात मे विरोध कहा रहा ? उस उसविषय का इन्द्रिय प्रत्यक्ष करके उस उस विपय सबंधी यथार्थ प्रतिबिम्व को ज्ञान मे लेने पर क्या उस उस विषय संबधी संशय विपर्य्यय व अनध्यवसाय रहना सभव है ? क्या वह वह विषय उसके ज्ञान मे अत्यन्त स्पष्ट नही हो जाता ? क्या उस उस विषय का प्रत्यक्ष करने के लिये आत्मा का प्रत्यक्ष करना भी आवश्यक है, और यदि नही तो क्यो वह उस उस विपय सबधी सम्यग्ज्ञानी न कहलायेगा उसमे उस विषय संबंधी सम्यग्ज्ञान का लक्षण (संशय विपर्यय अनध्यवास रहितता) घटित होती है ? परन्तु जव तक आत्मा सबंधी प्रत्यक्ष नही हो जाता या आत्मा संबंधी परोक्ष अखड चित्रण का भाव क्यो कि उसके हृदय पट पर अकित नही हो जाता, तव तक भले सर्व लौकिक विषयो का साक्षात कर पाया हो तथा सर्व आगम को धारणा व स्मृति में वैठा लिया हो, वह आत्मा विज्ञान की अपेक्षा तो मिथ्या ज्ञानी ही रहेगा, क्योकि आत्म विज्ञान के सबध मे मिथ्या ज्ञान के लक्षण, सशयादि का सद्भाव वहा घटित होता है ।

सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान को और अधिक स्पष्ट करने के लिये पुन. और दृष्टान्त देता हूँ । देखो आज तो अणु का युग चल रहा है । रूस व अमेरिका अणु विज्ञान मे वरावर प्रगति करते जा रहे है । पर भारतवर्ष आज तक उस विषय को स्पष्ट स्पर्श करने में असफल रहा है । क्या उसने अणु सम्बन्धी

सम्यग्ज्ञान में अनुभव का स्थान

साहित्य या आगम नही पढ़ा ? डाक्टर भावे जो आज भारतीय अणु विज्ञान शाला के अध्यक्ष है बड़े विद्वान व्यक्ति है । अणु संबधी कोई बात नही जो उन्होने न पढ़ी हो, तथा जो तर्क व युक्ति की कसौटी पर कसकर उन्होंने धारणा मे न बैठा रखी हो । फिर भी सफलता क्यों नही ? कारण एक ही है कि यह सारा ज्ञान वास्तव में शाब्दिक ज्ञान है, यह सारा निर्णय शाब्दिक निर्णय है, पर अणु विज्ञान का कोई स्पष्ट अखंड चित्रण हृदय पट पर अभी अंकित नही हो सका है । उसे अंकित करने का तो प्रयास किया जा रहा है । इसी का नाम तो खोज (Research) है । यदि वह चित्रण अंकित हो गया होता तो खोज की क्या आवश्यकता रहती । वास्तव मे अणु सिद्धान्त का शाब्दिक परिचय पा लेने पर भी उसके चित्रण या अनुभव या दर्शन के अभाव के कारण , उनके हृदय मे तत्-सम्बन्धी सशयादि बराबर बेठे हुए है, जिनको दूर करने के लिये कि वह अनुसंधान कर रहे हैं पर सफल हो नही पाते । इसलिये उनके इस अणु सबंधी ज्ञान को सम्यक कहोगे या मिथ्या ? स्पष्ट है कि उनका वह अणु ज्ञान सम्यक् नही, मिथ्या है । आत्म विज्ञान की अपेक्षा नही, अणुविज्ञान की अपेक्षा । इसलिये सिद्धान्त अचल रहा कि अखंड चित्ररूप ज्ञान या अनुभव के अभाव मे उस विषय के अंगों का खंडित शाब्दिक ज्ञान मिथ्या ज्ञान है । रूस व अमेरिका के पास भी शाब्दिक ज्ञान उतना ही तथा वह ही है, पर उसके वैज्ञानिकों के हृदय पट पर तत्सबंधी एक स्पष्ट चित्रण यानी अखंड चित्रण अंकित है । अर्थात् उन्हे तत्संबधी अनुभव है । इसी से अणु ज्ञान की अपेक्षा उनका ज्ञान सम्यक् है ।

इसी प्रकार हम देखते है कि एक इंजीनियर जिसने १६ साल शिक्षण में खोये, वह एक मशीन को ठीक करने मे कदाचित फैल हो जाता है, पर एक अनुभवी मिस्त्री जिसको पढ़ाई के नाम कुछ नहीं आता, उसे तुरन्त ही ठीक कर देता है । कारण ? उसका

ज्ञान अनुभवात्मक है, और इंजीनियर का शब्दात्मक । मिस्त्री भले किसी को पढा न सके परन्तु उस मशीन सबधी उसका ज्ञान स्पष्ट है, और इजीनियर अनेकों को शाब्दिक ज्ञान पढा दे पर मशीन सवधी उसका ज्ञान अस्पष्ट व मिथ्या है ।

अब तक के प्रकरण पर से सम्यक् व मिथ्या ज्ञान के निम्न लक्षण निकल पाये है ।

१. किसी विषय संबधी एक अखंड चित्रण का हृदय पट पर अकित होना या उस सबधी अनुभव होना सम्यक् ज्ञान है ।

२. ऐसे अखड चित्रण या अनुभव के अभाव मे सर्व शाब्दिक आगम ज्ञान भी मिथ्या ज्ञान है ।

काल्पनिक चित्रण सम्यग्ज्ञान नही

इन लक्षणों मे अभी और विशदता लानी अभीष्ट है । केवल शाब्दिक ज्ञान ही मिथ्या हो ऐसा नही है, कदाचित उन शब्दों के भावों का ग्रहण भी मिथ्या ज्ञान हो सकता है । वह कब सो ही आगे बताता हूँ ।

देखिये वही ईंट पत्थरों वाला दृष्टान्त ले लीजिये । मै यदि उन ईंट पत्थरों से एक महल तो बनाकर खड़ा कर लू, पर बिना सोचे–विचारे जो कोई वस्तु उसमे जहा कही भी फिट कर दू। अर्थात् यह दर्वाजा तो वहां छत मे खोल दू जहां पखा लगा है और पंखा यहा खड़ा कर दू जहा मै बैठा हूँ । खिड़की वहां लगा दू जहां इस आतिश-खाने पर या शेल्फ पर कुछ चित्र आपने सजाकर रखे है, वह रोशनदान वहा पृथ्वी मे गाड़ दू जहां वह पायेदान पड़ा है, इन तस्वीरों को फर्श पर बखेर दू और यह सोफा सेट दीवार पर टांग दू, तो बताइये मेरा यह मूर्खो का सा कार्य क्या मेरे किसी भी काम आ सकेगा ? क्या ऐसे बनाये गये महल का मै किसी प्रकार भी उपभोग कर सकूगा और क्या वह

महल सज्ञा को प्राप्त भी हो सकेगा ? भले ही दूर से देखने पर वह महल ही भासता हो, क्योंकि दीवारे तो ठीक ही खड़ी हुई दीखेगी, पर पास आने पर क्या आपकी हसी रुक सकेगी ? और इस प्रकार ई टो, दर्वाजों व फर्नीचर आदि को जोड़कर एक अखड रूप दे देने पर भी ई ट पत्थर आदि एक महल का काम न दे सकेंगे, और इसलिये उनका मूल्य अब भी ई ट पत्थरो से अधिक कुछ न हो सकेगा । सम्भ-वत उससे भी कुछ कम हो जाये । क्योकि चिनने से पहिले तो वे सब बेचे भी जा सकते थे, पर अब तो वे बेचे भी नही जा सकते । यदि इस महल को तोड़कर भी उनको बेचने का प्रयास किया जाये तो कोई इनके कितने टके देगा, क्योकि अब वह सब पुराने हो चुके है ।

बस इसी प्रकार यदि उस पूर्वोक्त शाब्दिक धारारूप चित्रण को अर्थात् आगम ज्ञान के अगों को परस्पर जोड़कर भी यदि मै एक अखड रूप प्रदान कर दू, परन्तु उनको यथा स्थान फिट न बैठाकर बिना विचारे उनका जो सो भी अर्थ ग्रहण कर लू तो क्या मेरे वह कुछ काम आ सकेगा ? जो अग जहा लागू होता हो, जिस अग का जिस अपेक्षा से जो अर्थ होता है वह न करके जहां कही भी उसे लागू कर दू, तो बताइये उन आगम ज्ञान के अंगो का क्या मूल्य रहा । सम्भवत जुड़ने से पहिले तो कुछ काम आ भी जाते, क्योकि वहां तक तो उनका अर्थ समझने व फिट बैठाने की जिज्ञासा थी जो कि किन्ही ज्ञानियो के सम्पर्क मे आकर कदाचित् पूरी की जा सकती थी, पर अब तो एक अभिमान जागृत हो चुका है, जिसने कि उसे जिज्ञासा का भी गला घोट दिया है । बताओ ऐसी हालत मे उनका क्या मूल्य ? क्या यह सब ज्ञान बेकार नही है ? ऐसा करने पर भले ही साधारणतया उसमे सशयादि की प्रतीति न होने पावे क्योकि उसका ऊपरी ढाचा कुछ जुड़ा हुआ सा दिखाई देता है, पर अन्तरग मे झुककर वे संशयादि अब भी अवश्य पढ़े जा सकते है । इस रूप में कि "अरे ! भले बहुत आगम पढ लिया हो और तर्क आदि

भी करने सीख लिये हों, भल ही अनेकों को आगम पढ़ा दिया हो और पढ़ा रहा हो, भले ही लोग मेरी विद्वता की प्रशंसा करत हो, भले ही मैंने बड़े-बड़े शास्त्रार्थो मे विजय प्राप्त की हो, पर जीवन मे से तो वह रस आने पाया नही जिसके प्रति कि यहा संकेत किया गया हैं।" और इसलिये इन संशयादि के सद्भाव मे इस कारण प्रकार का निर्णय किया गया भी आगम ज्ञान मिथ्या ज्ञान है।

८. आगम ज्ञान की सत्यार्थत

अब प्रश्न होता है, फिर कैसे किया जाये। आगम ही आज के अध्यात्म ज्ञान का प्रमुख आधार है और इस ही बेकार सिद्ध कर दिया गया, तो क्या अब जीवन विकास का कोई उपाय नही? नही ऐसा नही है भाई! आगम तीसरी चक्षु है। यह बिल्कुल बेकार हो ऐसा नही है। वर्तमान काल मे इसकी उपलब्धि होना हमारा बड़ा भारी सौभाग्य है। रुढि मात्र से इसको न पढकर यदि बुद्धि पर जोर दे देकर पढ़े, यदि उतावल न करे, शास्त्र पूरा करने की बजाये इसके एक एक शब्द पर एक एक वाक्य पर सूक्ष्म व गहन विचार करे, उसक सकेतो को अपने जीवन मे खोजे, अन्दर मे खोजे, बाहरमे खोजे, और उस समय तक चैन न पावे जब तक कि उस वाक्य का वाक्यार्थ तुझे मिल नही जाता। और इस प्रकार धीरे धीरे करके अनेकों वाक्यार्थों का परिचय मिल जाने पर उनके दृष्टसयौगादिक व अदृष्ट प्रभाव आदिक को यथा योग्य पढ़ने का प्रयत्न करते हुए, उनका परस्पर यथा योग्य रीति से सम्मेलन बैठाये, तो अवश्यमेव आगम के उपकार का भान हुए बिना न रहे, अर्थात् उस आत्मविज्ञान की प्राप्ति किये बिना तू न रहे। ऊपर वाले प्रकरणों मे वास्तव मे आगम का निषेध नही किया है, आगम का दोष नही बताया है, आगम को मिथ्या नही कहा है, आगम पढ़ने वाले का दोष बताया है, और उसी के ज्ञान को मिथ्या कहा है। आगम तो सर्वदा ग्राह्य ही है, वह तो अपने अन्दर

पूर्णत: निर्दोष ही है, वह तो अपने प्रतिपादित विषयो की अपेक्षा सम्यक् ही है। अत: भाई! अब उसके वाक्यों का ठीक ठीक अर्थ बैठाने का अभ्यास कर।

ज्ञानी के स निध्य का सम्यग्ज्ञान प्राप्ति में स्थान

यद्यपि यह कार्य बड़ा कठिन है और समस्या बड़ी जटिल है पर संम्भव है असंभव नही। सौभाग्यवश यदि किसी ज्ञानी अर्थात् आगम रहस्य के ज्ञाता अर्थात् आत्मानुभवी का सयोग प्राप्त हो जाये, तो कुछ सुविधा हो सकती है, क्योकि भिन्न भिन्न अवसरों पर उपजने वाली गुत्थियों व शकाओं का समाधान व सम्मेलन बैठाकर किस प्रकार विरोधों को दूर करना है और अर्थ फिट बैठाना है यह उसके पास में रहकर हो पढा जा सकता है। इसकी कोई ट्रेनिग नही होती। देख लौकिक व्यापारो मे भी सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् इससे पहिले कि वह उस व्यापार को प्रारम्भ करे छात्र को किसी अभ्यस्त व्यक्ति के सम्पर्क मे कुछ दिन के लिये रहना पडता है। पुस्तको से पढा जा सकता है पर कढ़ा नही जा सकता। कढा जाने का एक मात्र उपाय ज्ञानीजनों का संसर्ग ही है। इसी से एल. एल. बी. या वकालात पढ लेने के पश्चात् उस छात्र को कम से कम ६ महीने किसी वकील के साथ रहकर वकालात मे किस प्रकार उस सिद्धान्त को लागू किया जाता है, यह बात पढनी पडती है। इस प्रकार ६ महीने के अभ्यास बिना उसे वकालात का लाइसेस नही दिया जाता। इसी प्रकार डाक्टरी पढ़ने के पश्चात् कुछ समय के लिये किसी होश्यार डाक्टर के पास, और इजीनियरिंग पढ जाने के पश्चात् कुछ समय के लिये किसी बडे कारखाने मे रहकर काम सीखना पडता है जो अत्यन्त आवश्यक है। इस कढाई के बिना किताबी पढाई बेकार है। इसी प्रकार यद्यपि आगम ज्ञान महान् उपकारी है पर उसे पढने के पश्चात् उसमे बढने के लिये कुछ समय को

किसी ज्ञानी का सम्पर्क अत्यन्त आवश्यक है, जिसके बिना उसका अर्थ ठीक समझना वहुत कठिन है और इसलिये उसके बिना वह ज्ञान वेकारवत है।

दृष्टान्त मे तो गृहस्थ सबधी तथा अर्थोपार्जन संबंधी लालच रहने के कारण इतना समय किसी के पास रहना भी गवारा कर लेता है। पर यहां तो कुछ भी लालच नही है, सो क्यों किसीके पास रहकर समय गवाया जाये, ऐसी धारणा पड़ी है, फिर तू ही बता कि कैसे इसका अर्थ समझने का उपाय तू सीख सकेगा। भाई! लौकिक व्यापारोक्त यह भी तो एक व्यापार है यदि जीवन मे इसकी कोई आवश्यकता है, तो अवश्य ही समय किस जिस प्रकार भी निकालना ही पड़ेगा, और यदि इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं तो अर्थ समझ कर भी क्या करेगा। फिर भी सब यहा एकत्रित हुए हो और मुझसे पूछते हो तो अपनी योग्यतानुसार कुछ बताने का प्रयत्न करूंगा ही। पर इतना बता देना चाहता हूँ कि वह मेरा बताया हुआ भी तो पूर्ववत् शाब्दिक ज्ञान का ही अंग मात्र वनकर रह जायगा। उसका भी रहस्यार्थ कैसे समझा जा सकेगा जब तक कि उस पढ़े हुए का प्रयोग कर करके अर्थ निकालने का स्वय प्रयास न करेगा, और अर्थ न निकलने पर किसी से पूछेगा नही।

१०. वस्तु के पढने का उपाय

ले बताता हूँ, समझ। आगम शब्दो का अर्थ तुझे वस्तु मे जाकर यह बात पहिले ही हृदय मे दृढ बैठा ले। शब्द याद करने के प्रति जो महिमा तुझे आज वर्तती है उसे धो डाल और वस्तु को पढने का यत्न कर। वस्तु को पढने के लिये पहिले यह क्रम है, कि वस्तु को खडित करके देख। फिर उसके प्रत्येक खड का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर और उसके भाव को

हृदय पट पर अंकित कर। ऐसा कर चुकने पर उन खंडित भावो को पुनः ज्ञान मे अखंड रूप प्रदान कर, और देख क्या वैसा ही रूप बन पाया है जैसा कि मूलभूत वस्तु का उसे खडित करने से पहिले था ? यदि नही तो उन खडो को पुन. देख कि कौनसा खड ठीक स्थान पर बैठने नही पाया है। उसे यथास्थान पर बैठा कर फिर दोबारा इन सारे खंडों को एक अखडित रूप देकर देख और यह प्रक्रिया बराबर उस समय तक करता रह, जब तक कि वस्तु का वही रूप न बन जाये जो कि ,इसका था।

जैसे कि एक मशीन को पढ़ने के लिये आवश्यक है कि पहिले इसे खोलकर इसके पुर्जे पुर्जे कर दे। फिर इन पुर्जो को यथास्थान जोडने का प्रयत्न करते हुए इन्हे एक अखड रूप दे, और देख मशीन काम करने लगी या नही। यदि नही तो पुनः परीक्षा कर, गरारियो को इधर से उधर पलट पलटा कर लगाकर देख, और उस समय तक बराबर ऐसा करता रह जब तक कि मशीन काम न करने लगे। यद्यपि पहिली बार ऐसा करने मे तुझे बहुत परिश्रम करना पडेगा, बुद्धि पर भी बहुत जोर देना पड़ेगा पर आगे को यह काम तेरे लिये बच्चो का खेल हो जायगा। स्वत. एक भी कोई पुर्जा टूट जाय या बिगड़ जाय तो आख मीच कर ठीक कर देगा। इसी प्रकार वस्तु का विश्लेषण करके जोड़ने मे एक बार तो बुद्धि पर बहुत जोर देना पड़ेगा ही।

देख अब वस्तु का विश्लेषण करता हूँ। उस अखडित रूप को खंडित करके उसे एक धारा के रूप मे परिवर्तित करता हूँ। पहिले बताया जा चुका है कि अनेको आगे पीछे होने वाली अपनी पर्यायो का पिड तो एक गुण है और एक ही समय मे साथ साथ रहने वाले ऐसे अनेको पृथक पृथक गुणो का पिड वस्तु है। गुण एक साथ रहते है और पर्याय आगे पीछे। ये गुण और पर्याये ही वस्तु के अग है।

यह सिद्धान्त वस्तु के विश्लेषण का मूल आधार है। नीचे के चित्रण पर से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

(आगे पीछे रहने वाली, व्यतिरेकी
क्रमवर्ती, पर्याय
ऊर्ध्व प्रचय

५	१०	१५	२०	२५	३०
४	९	१४	१९	२४	२९
३	८	७	१३	२४	२९
२	७	१२	१७	२२	२७
१	६	११	१६	२१	२६
क	ख	ग	घ	च	छ

चित्र न १

(एक साथ रहने वाले, अन्वयी, सहवर्ती, या अक्रमवती गुण)

तिर्यकप्रचय

कल्पना करो कि उपरोक्त चित्र मे एक वस्तु प्रदर्शित की गई है, जिसमे क, ख, ग, घ, च, छ, यह ६ गुण है, जो एक ही समय वस्तु मे पाये जाते है, आगे पीछे नही। इसीलिये इन्हें अक्रमवती या सहवर्ती अंग कहते है इनके साथ साथ रहने मे कोई विरोध नही इसलिये इनको अन्वयी कहते है। क्योकि यह इस चित्र मे पट लाइन पर अर्थात् (Horizental Axis) पर दिखाये गये है इसलिये इनको आगम मे तिर्यग्प्रचय कहा जाता है। एक के ऊपर एक चिनी गई १, २, ३ आदि उस गुण की पर्याय है। क्योकि यह क्रम से आगे पीछे होती है इसीलिये इन्हे क्रमवर्ती अंग कहते है। क्योकि एक पर्याय के रहते उसी गुण की दूसरी पर्याय नही होती। दो पर्यायो के साथ साथ होने मे विरोध है इसलिये इन्हे व्यतिरेकी कहते है। क्योकि ऊपर खड़ी लाइन (Vartecal Axis) पर दिखाई गई है इसलिये इनको ऊर्ध्वप्रचय कहते है।

यहा दृष्टांत में प्रत्येक गुण की पांच पांच पर्यायों को ग्रहण किया है : न. एक से पाच तक कि पर्यायें 'क' नाम गुण की है नं. ६ से १०

तक 'ख' नाम गुण की है नं. ११ से १५ तक 'ग' तक नाम गुण की है न. १६ से २० तक 'घ' नाम गुण की है न. २१ से २५ तक 'च' नाम गुण की है और और न. २६ से ३० तक 'छ' नाम गुण की है। इस प्रकार वस्तु की कुल पर्यायें ५–६ ३० तीस हो जाती है। जैसा कि पलि बताया जा चुका है कि पर्यायो से रहित गुण कुछ नही और गुणों से रहित वस्तु कुछ नही इन ३० पर्यायो का समूह ही वस्तु है। वस्तु को ३० भागों मे खण्डित करना ही वस्तु का विश्लेषण करना है।

अब यह देखना है कि इस वस्तु का कथन क्या इस प्रकार करने मे कोई भी शब्द समर्थ है कि एक ही शब्द ३० की ३० इन ६ जाति की पृथक पृथक पर्यायो का निरूपण कर सके ? नही भी और है भी। नये श्रोता के लिये तो नही, पर परिचित श्रोता के लिये उस वस्तु का नाम मात्र कहना ही सर्व ३० की ३० पर्यायो से समवेत वस्तु का ठीक ठीक प्रतिनिधित्व करने को पर्याप्त है। जिस प्रकार कि 'अग्नि' ऐसा एक ही शब्द आपके लिये अग्नि की सम्पूर्ण शक्तियो (Qualification) से युक्त अग्नि नाम के पदार्थ का प्रतिनिधित्व करने को पर्याप्त है। कारण कि अग्नि का चित्रण आपके हृदय पट पर स्पष्ट है। परन्तु 'आत्मा' का स्पष्ट चित्रण आपके हृदय पट पर नही है। तब कैसे 'आत्मा' नाम का एक शब्द पूर्ण रूपेण आपके लिये आत्मा पदार्थ का प्रतिनिधित्व कर सकेगा ? और यदि पहिले सुने हुए और सीखे हुए 'आत्मा' नाम शब्द के चित्रण के आधार पर अब भी आप उसका नाम मात्र सुनकर तृप्त हो जाये, तो भी आपके हृदय पट पर उसका स्पष्ट चित्रण तो बन पायेगा। उसके लिये तो मुझे आपको इस आत्मा नाम पदार्थ का पृथक पृथक विस्तृत निरुपण करना पड़ेगा, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि उस अमेरिका के फल का प्रतिपादन करने के शिये करना पड़ा था। और यह काम एक शब्द के द्वारा होना असभव है। एक एक पर्याय का पृथक पृथक विस्तृत निरुपण करने के लिये लम्बे लम्बे कथन क्रम की आवश्यकता पड़ेगी। पृथक पृथक अनेको दृष्टान्तों द्वारा उसका भाव चित्रित करने की आवश्यकता पड़ेगी। ओर इसलिये सभवत. महीनों तक मै इन सारी ३० की ३० पर्यायो का प्रतिपादन समाप्त कर पाऊँ।

विचारना तो यह है कि इन पर्यायों का पृथक पृथक प्रतिपादन क्या इन खडित पर्यायो को दर्शाने के लिये कर रहा हूँ। या अखडित वस्तु का परिचय दिलाने के लिये ? मेरा यह प्रयास तो अखडित वस्तु को दर्शाने के लिये है। पर यदि आप उन-उन एक-एक पृथक-पृथक पर्यायों को तो समझे पर उनको परस्पर मे यथा स्थान जड़ कर अपने ज्ञान मे उन सब का एक अद्वैत या ;खंडित चित्रण न बना सके, तो क्या आप इनको ३० पृथक-पृथक पदार्थ ही न समझ बैठेगे। ऐसा ही होगा और ऐसा ही हो रहा है ।

कथन क्रम मे तो पहिले नं. १ फिर नं. २, फिर नं. ३ और इसी प्रकार नम्बर वार ३० की व्याख्या की जायेगी, अर्थात् कथन क्रम मे इस वस्तु का चित्रण निम्न प्रकार का हो जायगा ।

चित्र न २

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	

और इसलिये जब आप नं. ८ की बाते सुनते हुए होगे तो पहिले सुनी हुई नं. एक की बात भुला चुके होगे, और जब न. १७ की बात सुनते होगे तो न. ८ की बात को भुला चुके होगे। इस प्रकार सुनने से तो पदार्थ का चित्र बनाया जाना सभव नही है, क्योकि इस प्रकार तो सर्व अग पृथक -पृथक भी आपके हृदय कोष मे प्रवेश न पा सकेगे, यदि यह ३० के ३० आपके स्मृति पट पर उतरते भी चले जाये तो भी यह वहां मात्र पृथक-पृथक स्वतत्र वस्तुओ का रूप धारण करके चित्रित होने का प्रयन्न करने लगेगे ।

अर्थात् न १ का नाता न. ८ से कुछ न हो सकेगा और न. ८ का न १७ से कुछ न हो सकेगा और यदि ऐसा भी हो पाया तो क्या

३० की ३० को धारण करके भी आपने कुछ धारण किया कहा जायगा ? नही—क्योंकि इस प्रकार की पृथक-पृथक स्वतत्र पदार्थो की सत्ता लोक मे है ही नही। न १७ का पृथक पदार्थ लोक मे आपको कहा देखने को मिलेगा ? और इसलिये यह ३० पृथक-पृथक चित्रण वस्तु के अनुसार न हो सकेगे।

बस यही वह भूल है जिसे मुख्यत दूर करना है। आपने इन ३० की बात पहिले भी पढी या सुनी अवश्य है, पर उनका भाव अब तक भी कोई अखडित रूप मे धारण नही हो पाया है। तभी तो आप चारित्र की बात को पृथक् स्वतत्र वस्तु और ज्ञान को पृथक् स्वतत्र वस्तु समझकर प्रश्न करने लगते हो। जैसा कि परसो के प्रकरण मे प्रश्न उपस्थित हुआ था कि ज्ञान का कार्य हेय व उपादेय के विवेक सहित सब कुछ सहज ग्रहण करना है या इनके विवेक से रहित। और तब मैने उत्तर दिया था कि दोनों पृथक्-पृथक् दो पर्यायों की अपेक्षा सत्य है। चारित्र की अपेक्षा पहिली बात और ज्ञान की अपेक्षा दूसरी। परन्तु संतुष्ट न होकर आप फिर पूछ बैठे थे कि आगम मे तो इस प्रकार हेयोपादेय का विवेक करने वाला ज्ञान को ही बताया है। बस यही तो है वह पृथकता जिसके प्रति मै सकेत कर रहा हूँ, और इसी का स्पष्टीकरण उस रोज इस ढग से किया था कि भाई ! ज्ञान व चारित्र भिन्न-भिन्न स्वतत्र वस्तुए थोडे ही है, कि जब चारित्र होगा तो ज्ञान न होगा और जब ज्ञान होगा तो चारित्र न हो सकेगा। वह तो सर्वत्र ज्ञान रस वाला ही प्रमुखत : है। उसका चारित्र भी तो ज्ञानात्मक है और ज्ञान भी चारित्रात्मक है। दोनो एक अखड रस रूप है। चारित्र की ओर झुके हुए अर्थात् जीवन मे हेय का त्याग व उपादेय का ग्रहण करके जीवन को ढालने का प्रयत्न करने, अथवा चरण करने के प्रति झुके हुए ज्ञान का नाम ही चारित्र है, और इस-लिये हेयोपादेय का विवेक रखने वाला ज्ञान को कहना कौन झूठ है। भेद करके कथन करने मे तो चारित्र का काम कहेगे और अखड

अभेद रूप देखने पर सब एक ज्ञान का ही काम है या आत्मा का ही काम है ।

इसी प्रकार जब सात तत्वों की बात चलती है तो तू इन्हे कहा खोजने का प्रयास करता है; जीव को त्रसस्थावर भेदो मे अजीव को पुद्गल आदि पाच द्रव्यो मे, आस्रव को नाव के छिद्र मे, वन्ध को किसी काल्पनिक फूक सरीखी आत्मा के प्रदेशों मे सवर को नाव छिद्र रोकने मे, निर्जरा को पाल मे दबाये गये कच्चे आम मे, और मोक्ष को लोक शिखर पर किसी पत्थर की शिला मे। अर्थात् इन सातों बातो को दार्ष्टान्त मे खोजने की बजाये दृष्टातों में खोजने लगता है। कभी अपने जीवन की एकता मे इन सातो का अखड रूप खोजने का प्रयत्न किया है ? नही, तो भला फिर सात के सात तत्व याद करके भी तूने क्या याद किया ? सारी उम्र चर्चा मे कि बिता दी पर सीखा क्या ? इसे आगम का रहस्यार्थ नही कहते । इसे ही तो मै शाब्दिक ज्ञान के नाम से कह रहा हूं ।

इन सातो का अखड चित्रण जो कि आगम को जनाना अभीष्ट है वह तो ऐसा है, कि मै एक 'जीव' या चेतन हूं । यह शरीर रूप 'अजीव' मेरे जीवन का कलक है । इसके आधार पर जो भी मन वचन काम की क्रिया नित्य करता हूँ वह मेरे जीवन का अपराध ही 'आस्रव' है । पुन. पुन: वह अपराध करके बराबर उनका पोषण करता आ रहा हूँ और, इस प्रकार जीवन मे एक प्रबल संस्कार उत्पन्न कर लिया है, जो कि पुन. पुन: वह--वह अपराध करने के लिये मुझे प्रेरित करता है--उसी का नाम 'बन्ध' है । मन को काबू मे करके उसकी चचलता को रोककर उसे शान्ति मे स्थिर करने का प्रयास करे तो वचन व शरीर की क्रियाये स्वत. काबू मे आ जाये, यही 'सवर' है । धीरे धीरे अभ्यास करते करते, अधिकाधिक बल के साथ बड़ी से बड़ी प्रतिकूलता मे भी मन की स्थिरता को बनाये

रखने की शक्ति उत्पन्न हो जायगी, और इस प्रकार वे सस्कार खड खंड हो जायँगे यही निर्जरा है। और सस्कारो व अपराधो से शून्य पूर्ण शांत जीवन ही मोक्ष है। यह है सात तत्वों का अखंड ग्रहण ! एक मे सात और सात मे एक दिखाई दे। उसे अखड ज्ञान कहते हैं, ऐसा अभिप्राय है। इस प्रकार के अखड ज्ञान के अभाव मे उन सातों का पृथक् ग्रहण मिथ्या ग्रहण है। क्योकि जीवन से पृथक आस्रव आदि की सत्ता ही लोक मे नहीं है।

यह है वह ३० अंगो की पृथकता। वास्तव मे चारित्र नाम का पृथक् कोई पदार्थ नही और चारित्र से शून्य ज्ञान नाम का कोई पदार्थ नही। पर फिर भी जब चारित्र वाले अंग को समझाया जायेगा तो ज्ञान वाले अंग की बात आने न पायेगी। और जब ज्ञान को समझाया जायगा तो चारित्र के अंग की बात आने न पायेगी। इसलिये दोनों पृथक्-पृथक् स्वतंत्र पदार्थ भासने लगेगे। भले ही शब्दों मे आप स्वीकार करते रहे कि नही दोनों पृथक-पृथक नही एक हैं, पर यथा स्थान उनको पूर्ण चोकौर चित्रण मे जड़े बिना आपके ज्ञान पट पर उनका पृथक्-पृथक् ही अकित होना अनिवार्य है। इसे मिथ्या एकान्त कहते है, क्योकि वह अपका चित्रण किसी भी सत्तात्मक वस्तु के अनुरूप नही है। आप कहे कि आगम मे द्रव्य गुण, पर्याय तीनों को सत् स्वीकार किया है। सो भाई ! इनको पृथक्-पृथक स्वतंत्र सत् स्वीकार किया है या एक ही पदार्थ मे जुड़े हुए एक रस रूप अंगों के रूप में सत् स्वीकार किया है ? यह बात ही तेरे जानने की है। परन्तु शब्द मे उनका एक सत रूप प्रतिपादन करना अशक्य है। एक बार आप समझकर उन ३० के ३० अगों को यथा स्थान बैठाकर यदि एक अखंड चित्रण बना पाये, तो मै आगे पीछे भी अर्थात् कटमा रूप मे भी या आनुपूर्वी रूप मे यदि कदाचित उनकी व्याख्या करूं, तो आप तुरन्त सब कुछ समझ जायेगे, परन्तु ऐसा किये बिना नही। इसलिये कर्त्तव्य तो यह है कि पहिले नम्बर वार १ से ३० तक की व्याख्या को सुने इन सर्व अंगों के पृथक पृथक भावों के चित्रण को

ग्रहण करे धैर्य रखे, ३० के ३० भावों को ग्रहण करके भी अहंकार न करे, सतुष्ट न हो। अव इनको यथा स्थान जड़ कर इन सब को रसात्मक अखड रूप प्रदान करे बिल्कुल इस प्रकार कि जिस प्रकार चित्र न १ मे है अर्थात् चित्र नं. २ को चित्र न १ मे परिवर्तित करे।

क्योकि आगम मे या किसी भी उपदेष्टा के वचनो मे ऐसा होना सभव नही, कि जिस क्रम मे न १ से न ३० तक आपने उन सर्व अगों का निर्णय किया है उसी क्रम मे वे प्रगट हो। कहा तो सव आगे पीछे कोई भी कही, कटमा रूप से प्रकट हो जायेगे। और यदि उपरोक्त प्रकार दोनो स्पष्ट चित्रण आपके हृदय मे न होगे, तो अवश्यमेव उन वक्तव्यो या लेखो मे दीखने वाले विरोधो मे तथा उन पहिले व पीछे वाले अँगो मे परस्पर सम्मेलन वैठने पायेगा। इसी से कुछ विरोध सा भासने लगेगा। और आप कहने लगेगे कि पहिले तो कुछ कहा और अव कुछ कह रहे हो, कुछ समझ मे नही आता। जैसे कि जब यह वात सुनोगे कि 'चारित्र' ही धर्म है' तो कह वैठोगे कि फिर 'श्रद्धा धर्म का मूल है' यह क्यो कहते हो? और जव सुनोगे कि ज्ञानधारा में स्थिति पाना ही मुक्ति का कारण है तव कहने लगोगे कि फिर तो यह संभव व व्रतादि धारण निरर्थक ही रहा—इत्यादि, और यही आज हो रहे है। अत. उपरोक्त प्रकार निर्णय करके दोनों चित्रण वनाने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार अभ्यास कर करके जब तक इस कोटी मे नही पहुँच जाते कि किसी भी गुण या पर्याय की बात सुनने या पढ़ने पर यथा स्थान दृष्टि पहुँच जाये, उस समय तक हृदय पट पर वह चित्रण हुआ नही कहा जा सकता। यहा तो इससे भी ऊपर जान है। क्योकि ऐसा तो कदाचित शाब्दिक चित्रण के द्वारा भी होना संभव है कि सुने या पढे शब्दों का अर्थ यथा स्थान कर सम्मेलन बैठा दिया जाये, परन्तु वास्तविक चित्रण तो उसे कहते है कि ऐसा प्रतीति

मे आने लगे कि यह है वह आत्मा नाम का पदार्थ, यहां रखा हुआ, मेरे हृदय पट पर--बिल्कुल उस प्रकार जिस प्रकार अग्नि नाम पदार्थ के चित्रण की प्रतीति होती है। परन्तु आत्म नाम के अदृष्ट पदार्थ का इस प्रकार का चित्रण तो आगे जाकर उस ही समय होना सभव है, जब कि उसकी शान्ति का रसास्वादन हो जाये, और वह शब्दो मे समझाया जाना असभव है। वह तो जीवन के ढलाव से उत्पन्न हो सकता है, और कदाचित जीवन पर से ही पढा भी जा सकता है। अन्तिम लक्ष्य तो वह है। इसलिये शाब्दिक उपरोक्त अभ्यास पर भी सतोष पा लेना योग्य नहीं, पर आगे बढते रहना ही योग्य है, कि अनुसंधान द्वारा उसका प्रत्यक्ष साक्षात न कर ले।

पर प्रत्यक्ष करने से पहिले इस परोक्ष चित्रण को अवश्य आवश्यकता पड़ेगी। बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि वैज्ञानिक मार्ग मे प्रायोगिक (Practical) अनुसधान से पहिले सैद्धान्तिक शिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना प्रयोग (Experiments) ही किये नही जा सकते, आविष्कार कैसे बने। और क्योकि यह परोक्ष चित्रण प्रत्यक्ष चित्रण के अनुरूप ही होगा, इसलिये इसे भी कदाचित व कथञ्चित सम्यक् प्रमाण कह देते है। वास्तव मे तो सम्यक प्रमाण वह प्रत्यक्ष चित्रण ही है। अत. आगम रूप भी प्रमाण उसी के लिये है जिसने प्रत्यक्ष चित्रण की प्राप्ति के प्रति अग्रसर, किर उसे खोज निकाला है। फिर भी उपाय तो यही है। बिना शाब्दिक आगम का आश्रय लिये अनुसंधान करना असभव है। अतः वर्तमान स्थिति मे वस्तु का उपरोक्त प्रकार विश्लेषण करके अंगों को यथा स्थान बैठाने का अभ्यास करना ही तेरे आपके लिये कार्य कारी है। धैर्य पूर्वक अभ्यास करें।

बड़ा उलझा हुआ कथन किया है जिसमे अनेको प्रमुख प्रमुख शब्दो के लक्षण बनाने मे आये है। ताकि आगे आगे

११. कुछ लक्षण

के प्रकरणो मे उन उन शब्दो का प्रयोग होने पर आप उस उस शब्द का वही वही अर्थ समझे जो कि मुझे अभिप्रेत है, वह अर्थ न समझे जो कि पहिले से कदाचित आप जानते है। तभी मेरे वक्तव्य को आप समझने मे सफल हो सकेगे। अतः यहां उन सर्व शब्दों के लक्षण एक स्थान पर सग्रहीत करने योग्य है।

१. गुण—वस्तु के त्रिकाली अग को गुण कहते है।

२. पर्याय—गुण के क्षणवर्ती परिवर्तनशील अंग को पर्याय कहते है।

३. वस्तु—गुण व पर्यायो के एक अखंड त्रिकाली ध्रुव पिड का नाम वस्तु है। अनेको अगों का पिड होने के कारण वस्तु अनेकान्त है।

४. अनेकान्त (१) अनेक अगो का पिड होना ही वस्तु का अनेकाग या अनेकान्तपना है।

(२) इस अनेकान्त वस्तु के अनुरूप ज्ञान मे प्रतिबिम्ब या हृदय पट पर खिचा अखंड चित्रण का सद्भाव, ज्ञानकार अनेकान्तपना है।

५. एकान्त (१) इन अनेकों में से कोई भी एक दो आदि अधूरे अंग, वस्तु का एकान्तपना है।

(२) इन अधूरे अंगो का यथा स्थान ज्ञान के चित्रण मे ग्रहण, ज्ञान का एकान्तपना है।

६. प्रमाण (१) वस्तु के अनेक अंगो का एक साथ हृदय पट पर वस्तु के अनुरूप, एक रसात्मक (Burned) अखण्ड चित्रण की प्रत्यक्ष प्रतीति ही, प्रमाण ज्ञान है।

(२) इस प्रत्यक्ष प्रतीति के आधार पर निकले शब्द व आगम भी प्रमाण है।

(३) प्रमाण ज्ञान की विषयभूत वह अखण्ड वस्तु भी प्रमाण है।

७. नय (१) उस प्रमाण रूप चित्रण की प्रतीति में से कोई एक अंग का पृथक विचार, नय ज्ञान है।

(२) उस नय ज्ञान के आधार पर बोला या लिखा गया शब्द, नय शब्द या नय वचन हैं।

(३) नय ज्ञान का विषयभूत वस्तु का वह अंग भी, वस्तु की नय है।

८. प्रत्यक्षज्ञान:— वस्तु के अनुरूप ज्ञान पट पर पडा सहज प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष ज्ञान है।

९. परोक्ष ज्ञान:— शब्दों व भावों के अनुमान के आधार पर ज्ञान पट पर खेचा गया वस्तु अनुरूप कृत्रिम अखड चित्रण, परोक्ष ज्ञान है।

इन नौ लक्षणो मे पहिले तीन लक्षण केवल वस्तु के संबध मे ही लागू होते है। अगले दो लक्षण वस्तु व ज्ञान दोनों के संबंध मे लागू होते है। अगले दो लक्षण ज्ञान व शब्द व वस्तु तीनो के संबध मे लागू होते है। यहां नं. ४ से न. ९ तक के ६ लक्षण जो ज्ञान मे लागू होते है उनमे सम्यक् व मिथ्यापना दर्शा देना अभीष्ट है। यही बात इस अध्याय में समझाई गई है। फिर एक बार दोहरा देता हूँ। हृदय पट पर वस्तु के अनुरूप अखंड चित्रण रूप प्रमाण ज्ञान या अनुभव के सद्भाव के

साथ साथ वर्तने वाले, सब लक्षण सम्यक् हैं और उसके अभाव मे मिथ्या। इसी को प्रमाण की सापेक्षता कहते हैं। इसी प्रमाण की सापेक्षता के आधार पर नीचे इन छहों के लक्षण करने मे आते है। जिसको मै अखंड चित्रण कहता चला आया हू उसी को आगम में अनुभव नाम से कहा है। अतः नीचे उसी अर्थ में अनुभव शब्द का प्रयोग करूगा।

इस पर से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अनुभव ज्ञानी ही यथार्थतः नयों का प्रयोग कर सकता है, शब्दागम ज्ञानी नही। और इसलिये जो शब्दागम भी भली भाति जानते नही उनके द्वारा तो "निश्चयनय व व्यवहारनय" इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग तो आज हो रहा है वह सार्थक कैसे हो सकता है? वह तो केवल प्रलाप मात्र है। वह बेचारे नय का नाम तो लेते है पर नय को जानते नही।

अनेकान्त

१. वस्तु के अनुरूप हृदय पट पर खिचे अखंड चित्रण रूप प्रमाण को या अनुभव ज्ञान को सम्यकअनेकान्त कहते है।
२. वस्तु के संपूर्ण विरोधी अगों का अखंड ग्रहण सम्यक् अनेकान्त है।

एकान्त

१. उपरोक्त प्रमाण ज्ञान या अनुभव के सापेक्ष वस्तु के एक दो आदि अधूरे अंगो का विकल्प ज्ञान सम्यक् एकांत है।
२. परस्पर में यथा स्थान समेल बेठाते हुए पृथक पृथक अंगों की मित्रता का ज्ञान सम्यगेकान्त है।

प्रमाण:

१. वस्तु के अनुरूप ही अनेकान्त वस्तु का हृदय पट पर अखंड चित्रण या अनुभव सम्यक् प्रमाण है।

२. उपरोक्त सम्यक् प्रमाण के आधार पर बोला या लिखा गया उपदेश आगम भी सम्यक् प्रमाण है।

मिथ्या लक्षण:

१. उस अखंड चित्रण रूप प्रमाण से निरपेक्ष अर्थात् अनुभव शून्य वस्तु के संपूर्ण अंगों का शाब्दिक ग्रहण मिथ्या अनेकान्त है।

२. वस्तु के संपूर्ण अगों का पृथक पृथक ग्रहण मिथ्या अनेकान्त है।

१. उपरोक्त प्रमाण या अनुभव से निरपेक्ष वस्तु के एक दो आदि अगों का अधूरा शाब्दिक ग्रहण मिथ्या एकान्त है।

२. परस्पर मे यथास्थान सम्मेल से रहित पृथक पृथक बिखरे हुए अंगों का परस्पर विरोधी खंडित ग्रहण मिथ्या एकान्त है।

१. वस्तु के अनुरूप चित्रण या अनुभव के अभाव मे केवल शब्दों के आधार पर का कल्पित ग्रहण मिथ्या प्रमाण है।

२. उपरोक्त मिथ्या प्रमाण के आधार पर दिया गया उपदेश व लिखा गया शास्त्र भी मिथ्या प्रमाण है।

३. सम्यग्ज्ञान अनेकोअगो के युगपत ग्रहण स्वरूप होने के कारण सम्यक् अनेकान्त है।

नय.

१. प्रमाण ज्ञान या अनुभव ज्ञान के सद्भाव मे तत्सापेक्ष खडित ज्ञान या अगों का पृथक पृथक विकल्प सम्यक्नयज्ञान है।

२. उपरोक्त सम्यक्नय ज्ञान के आधार पर बोला या लिखा गया वचन व वाक्य व्यक्तव्य भी सम्यक्नय है।

३. पृथक पृथक अगों का सापेक्ष रूप ज्ञान होने के कारण यह सम्यगेकान्त है।

प्रत्यक्ष:

१. अध्यात्म विज्ञान के प्रकरण मे निज चैतन्य तत्वसंबंधी प्रत्यक्ष, अर्थात् शाति रस के अनुभव हो जाने पर, होने वाला कोई भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान, या अवधि मनः पर्यय आदि प्रत्यक्ष ज्ञान, सम्यक् प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

परोक्षज्ञान या ज्ञान

१. उपरोक्त आत्मानुभव के रहते जिस किसी भी विषय का प्रमाण ज्ञान सम्यक्-ज्ञान है।

मिथ्या लक्षण:

३. मिथ्या प्रमाण अनेको अशो के पृथक पृथक रूप से खंडित ग्रहण होने के कारण मिथ्या अनेकान्त है।

१. प्रमाण ज्ञान या अनुभव ज्ञान से शून्य उससे निरपेक्ष पृथक पृथक अगों का ज्ञान मिथ्यानय ज्ञान है।

२. उपरोक्त मिथ्या नय ज्ञान के आधार पर बोले गए या लिख गए शब्द भी मिथ्या नय वाक्य है।

३. पृथक पृथक अंगो का स्वतंत्र रूप खंडित ग्रहण होने के कारण यह मिथ्या एकांत है।

१. भले, ही अन्य पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाने पर अध्यात्म प्रकरण मे आत्म शाति के अनुभव रहित वर्तनेवाला इन्द्रिय प्रत्यक्ष व अवधि प्रत्यक्ष मिथ्या प्रत्यक्ष ज्ञान है।

२. उपरोक्त आत्मानुभव के अभाव मे अन्य विषयों का स्पष्ट प्रमाण, ज्ञान रूप चित्रण भी मिथ्या ज्ञान है।

६

द्रव्य सामान्य

१. नयों को जानने का प्रयोजन, २. द्रव्य व उसके अंगों का परिचय, ३. पर्याय, ४. वस्तु के स्वचतुष्टय, ५. सामान्य व विशेष ६. सारांश ७. द्रव्य के अंगों सम्बन्धी समन्वय

१. नयों को जानने का प्रयोजन — बिना प्रयोजन के कोई कार्य करना पुरुषार्थ को व्यर्थ खोना है, सो बुद्धिमानों का कार्य नही। इसीलिये वर्तमान का यह नयका प्रकरण सीखने व सिखलाने के इस कार्य का भी प्रयोजन बराबर दृष्टि मे बैठाये रखना चाहिये। इसका प्रयोजन व्यर्थ सीखना अथवा विद्वान बनकर दूसरे को समझाने की भावना को उत्तेजित करना नही है, बल्कि ज्ञान मे सरलता उत्पन्न करके इसमे पड़े एकान्त या खेचातनी का अभाव करके इसकी सरलता का रस पान करने मात्र के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

दृष्ट पदार्थों मे तो वह खेचातानी उत्पन्न होना संभव नही, क्योकि वहां तो वस्तु के सम्पूर्ण अंगों का यथा स्थान चित्रण रूप प्रमाण व अनुभव ज्ञान मौजूद है, जैसे कि अग्नि के सम्बन्ध मे मै आपसे चाहे कुछ भी कहू आप उसे सहज स्वीकार कर लेते है अग्नि को उष्ण कहूं तब भी स्वीकार कर लेते है और उसे कथचित् शीतल कहूं तब भी स्वीकार कर लेते है। इसे उपयोगी कहूं तब भी स्वीकार कर लेते है और इसे भयानक कहूं तो भी स्वीकार कर लेते है। वहा तो इसे उपयोगी सुनकर स्वतः आपकी दृष्टि भोजन पकाने व पढने आदि कार्यों मे नित्य सहायक बनने रूप से इसके अनेक उपयोगी अंगों पर, पड़ जाती है। और भयानक सुनकर स्वतः इसके उस प्रचण्ड रुद्र रूप पर पड जाती है, जिसमे कि बड़े बड़े नगर तक क्षणभर मे भस्म होकर राख के ढेर बन गये है। वहां तो आपको संशय व शंका नही होती कि "वाहजी ! आप इसे भयानक कैसे कहते है। इस प्रश्न को स्पष्ट करने के लिए आपको किसी भी चर्चा की आवश्यकता नही पड़ती। हाथ पर रखे आमले वत् मानो वे सारी बाते आपके हृदय की बाते ही हों। कारण यही है कि अग्नि का अनेकागी पूर्ण चित्रण आपके हृदय पट पर स्पष्ट है। आग के सम्पूर्ण अंग आपको यथा स्थान जड़े हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे है। जिस भी अग की बात आई और आपने उसे यथा स्थान फिर बैठा ली। इसी को मै ज्ञान की सरलता कहता हूं।

परन्तु यह बात अदृष्ट जो यह अध्यात्म विषय इसके सबध मे देखने मे नही आती। इस विषय की अनेकों उलटी सीधी बाते सामने आने पर आपको विरोध भासने लगता है। अपनी रुचि की बातको आप सरलतासे स्वीकार कर लेते है, परन्तु उससे विपरीत बात आपके चित्त मे एक बौखलाहट सी उत्पन्न कर देती है। जैसे कि जब मै यह कहूं कि भगवान वीर पूर्णरूपेण धर्म की मूर्ति हैं। तब तो आप प्रसन्नता व सरलता पूर्वक स्वीकार कर लेते हैं, पर जब यह

कहूं कि भगवान वीर तो यहा बड़े पापी दिखाई दे रहे है, तो आप एकदम चौक उठते है। इसका कारण क्या? केवल यही कि उनके अखिल जीवन का या उनके सम्पूर्ण अंगो का चित्रण या प्रमाण ज्ञान आपको नही है। केवल सुनी सुनाई कुछ बातें आपकी भक्ति मे पड़ी हैं। इन सबको यथा स्थान जड़े बिना वे सब भी वास्तव मे आपके लिये उपयोगी नही है। अत: जो कोई भी जाने स्पष्ट चित्रण सहित जाने, यही इस नयके प्रकरणको जानने का प्रयोजन है ।

२. द्रव्य व उसके अगो का परिचय

इस प्रयोजनकी सिद्धि के अर्थ वस्तु तथा उसके ध्रुव व क्षणिक सम्पूर्ण अंगों का यथा योग्य सामान्य परिचय होना अत्यन्त आवश्यक है। उसके अभाव मे नयो का कथन आगे चल न सकेगा। क्योकि नयों को उन अंगो पर ही तो लागू करके प्रयोगमे लाना है। खाली नयो के नाम व लक्षण जानने से तो उपरोक्त प्रयोजन की सिद्धि हो नही सकती। यद्यपि द्रव्यो के अंगों का कथन करना यहां अभीष्ट नहीं है,

क्योकि वह एक स्वतंत्र विषय है, और नय समझने के लिये आप सब को यह विषय तो आता ही होगा, यह बात अनुक्त रूप से स्वीकृत (Understood) है। परन्तु फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव मे ऐसा नही है, सम्भवत: आप मे से कुछ तो उस विषय मे अभ्यस्त हो पर कुछ उससे अनभिज्ञ ही हों। अत: योग्य तो यह था कि पहिले उस विषय का पूर्ण परिचय प्राप्त करके यहा आते, परन्तु अब यदि आही गये हो और इतने दिन से सुन रहे हो तो आप को निराश करना योग्य नही। इसलिए यद्यपि इस प्रकरण मे उस विषय का विस्तृत व पूरा परिचय तो दिया न जा सकेगा, क्योंकि उसका वर्णन ही सम्भवत: महीनों में पूरा हो पावे, और तब यह मूल विषय पीछे रह जायेगा। अत: प्रयोजन वश यहां उस विषय का सक्षिप्त परिचय दे देना ही पर्याप्त समझता हूं। परिचित व्यक्तियो

को उससे वह ताजा हो जायेगा, और अपरिचित व्यक्तियों को कुछ धुन्धला सा अनुमान हो जायेगा, जो कि अगले प्रकरणों के लिये उनके हृदय मे भूमिका की स्थापना कर देगा, और वह उन प्रकरणों को सरलता से पकडने के योग्य हो जायेंगे।

इस विषय सम्बन्धी कुछ मुख्य सिद्धान्त ही नीचे निर्धारित किये जाते है। यद्यपि पहिले भी उनके सबंध मे संकेत आ चुके है पर यहा एक ही स्थल पर सब को संगृहीत करना तथा उन्हे और अधिक विशदता प्रदान करना अभीष्ट है। कल वाले दृष्टांत में भी यद्यपि उन अगों का सकेत किया गया, और उन्हे ३० पृथक पृथक कोष्टको मे स्थापिन करके एक सम्पूर्ण वस्तु का परिचय दिलाने का प्रयत्न किया गया पर वास्तव मे वे ३० अंग वस्तु मे इस प्रकार कोष्टकों में पड़े हुये नही है। भले समझाने के लिये यहां यह कोष्टक बना दिय गये हों, पर वहा तो वे एक रस रूप होकर पड़े है। सो कैसे वही यहा स्पष्ट किया जायेगा।

वस्तु अनेक गुणों व पर्यायों का पिड है, पर गुण व पर्याय उसके अग है। उन अंगो से रहित वस्तु कुछ भी नहीं। जैसे कि आम अपने किसी विशेष रंग, स्वाद, गंध, स्पर्श के अतिरिक्त कुछ नहीं। इन्हे पृथक कर लिया जाय तो आम नाम का कोई पदार्थ रहता नही। परन्तु इन्हें पृथक किया जाना सम्भव नही। क्यो कि यहाँ पिण्ड या समूह से तात्पर्य यह नही है कि जैसे बोरी मे अनाज भरा है वैसे वस्तु नाम की बोरी मे कोई गुण व पर्याय भरी है, और इस प्रकार बोरी रूप वस्तु अलग हो और गुण पर्याय अलग। या ऐसे भी नही है जैसे कि अनेक लकड़ियों को बाध कर एक गट्ठा वना लिया गया हो, जिस मे बोरी रूप गट्ठे की पृथकता तो यद्यपि नही रह पाई है, परन्तु इन अंगों रूप लकड़ियों की पृथकता दृष्ट होती है, जिनको कभी भी बखेरा जा सकता है या बांधा जा सकता

है। या वृक्ष मे लगे टहनी फूलो पत्तों वत भी वह समूह नहीं है क्योंकि यहां यद्यपि वह समूह किसी के द्वारा बांध कर बनाया तो नहीं गया है, पर बखेरा अवश्य जा सकता है तथा उन डाली पत्तों आदि की पृथकता भी दृष्ट है। यहां तो समूह से तात्पर्य एक रस रूप होकर रहना है, जो समूह न बनाया जा सके और न बिगाड़ा जा सके। जैसे कि आम मे रहने वाले उसके गुण न उसमें भरे जा सकते हैं और न निकाले जा सकते है। तथा जिन गुणों को कल्पना द्वारा पृथक कर लेने पर आम नाम की कोई बोरी रूप वस्तु शेष रह जाये ऐसा भी नही है। इस प्रकार वस्तु अनेक गुण व पर्यायो का एक रस रूप पिण्ड है ।

२ गुण वस्तु के सामान्य अंग का नाम है जो वस्तु मे सर्वदा पाया जाता है। भले ही उसकी अवस्था बदल जाये पर वह अपनी जाति सामान्य या अमुक इन्द्रिय का विषय सामान्य बदल कर दूसरी इन्द्रिय का विषय बन बैठे ऐसा कभी नही हो सकता जैसे कि आम का हरा पना बदल कर भले पीला हो जाये पर नेत्र इन्द्रिय का विषय सामान्य रंग पना हर हालत मे उसमे विद्यमान रहता है। अत भले ही लौकिक व्यवहार मे हम हरे पीले आदि की रग गुण समझते हों पर वह गुण नहीं, वह तो बदलने वाला अंग है। रंग नाम का गुण तो इन हरे पीले पने मे, एक नेत्र इन्द्रिय के विषय सामान्य रूप से रहने वाला स्थायी अंग है, जो हरे पने मे भी है और पीले पने मे भी वास्तव में जो भी अंग दृष्ट होता है वह पर्याय ही होती है ।

गुण व वस्तु कभी अनुभव में नही ली जा सकती, पर बुद्धि के द्वारा पकड़ी जा सकती है, अनुभव मे तो वस्तु के अनेक गुणों की उस समय की पर्याय ही आया करती है। और इसी लिये उस समय सम्पूर्ण वस्तु उन पर्यायों के समूह रूप ही भासती है। पर्यायों को ही व्यवहार मे गुण रूप स्वीकार करके उसे उन गुणों के समुदाय रूप कह

दिया जाता है । उन पर्यायों के अनुभव के अतिरिक्त वस्तु का पृथक अनुभव नही हुआ करता । जैसे कि हरे पने व खट्टे पने आदि के अनुभव के अतिरिक्त आम का पृथक अनुभव नही । और इस प्रकार सामान्यतः कहे जाने वाले हरे, पीले आदि गुण नही--रंग गुण की पर्याय है । खट्टा मीठा आदि रस गुण नही रस गुण पर्याय है । अतः गुण वह जो सामान्य रूप से वस्तु मे सर्वदा पाया जावे । सर्वदा शब्द काल सूचक है अर्थात् भूत, भविष्यत व वर्तमान तीनों कालों में पाया जाये । जिसकी वस्तु में न कभी नवीन उत्पत्ति हुई हो और न कभी विनाश हो सकता हो । इसीलिये वस्तु का त्रिकाली या ध्रुव अग स्वीकारा गया है । इसलिये वस्तु मे जितने गुण है उतने ही सदा बने रहते है । ऐसा नही होता कि आज उसमें ३ गुण है और कल को चार हो जाये और परसों को दो ही रह जाये । क्योंकि गुणो के निकले बिना उनकी संख्या मे हानि, और गुणों के प्रवेश बिना उनकी संख्या मे वृद्धि होनी असंभव है ।

गुण वस्तु मे सर्वत्र व्याप कर रहते है । सर्वत्र शब्द क्षेत्र सूचक है अर्थात् वस्तु के एक एक कण मे प्रत्येक गुण मानों ओतप्रोत होकर समाया रहता है । ऐसा नही होता कि एक कोने मे तो रस नाम का गुण बैठा हो और दूसरे कोने मे रंग नाम का गुण । वस्तु को तोड़ कर उसका छोटे से छोटा हिस्सा भी यदि पृथक निकाल कर देखे तो वहा सारे ही वस्तु के गुण दिखाई देगे । अर्थात जहां जहा वस्तु है वहा वहा उसका प्रत्येक गुण है । जहां जहा एक गुण है वहा वहा दूसरे आदि अनेक गुण है । जैसे आम मे जहां रग है वहा ही कोई न कोई स्वाद भी है, और वहा ही कोई न कोई गन्ध भी है इत्यादि । इनको सकोड़ कर सकुचित किया जाना भी सभव नही है ।

४ यहां तक तो वस्तु को गुणो के समुदाय रूप से देखा और अब इसे पर्यायो के समुदायरूप से देखो । यदि केवल गुण ही गुण हुये

होते तो वस्तु सरल (Simple) रहती और इसे समझने में भी कठिनता न पड़ती। न पर्यायो ने इसे जटिल (Complex) बना दिया है, इसलिए समझने मे भी दिक्कत पड़ती है, क्योंकि पर्याय बदलने वाले अंगो का नाम है, जिसके कारण कि वस्तु प्रतिक्षण कुछ बदलती सी प्रतीत होती है। यद्यपि थोड़े समय तक तो उसमे परिवर्तन देखते रहते हुए भी हम उसमें 'वही पने' की प्रतीति को खोते नही, पर अधिक समय गुजर जाने पर तथा उसका परिवर्तन बहुत स्थूल हो जाने पर हम उसमें से 'वही पने' की प्रतीति को भूल जाते है, और उसे कोई नई वस्तु समझने लगते है। जैसे कि अपने पुत्र को बच्चे से युवा होते तक तो आप 'यह वही मेरा पुत्र है' इस प्रकार की बात बराबर याद रखते हो, परन्तु मृत्यु के पश्चात वही प्राणी जब अन्यत्र जन्म लेकर आपके सामने आता है तो आप उसे वही न समझ कर कोई नया ही व्यक्ति समझने लगते हो। बस यही वह उलझन है जिसे दूर करना अभिष्ट है। अवस्था बदल जाने से यद्यपि वस्तु का अनुभवनीय दृष्ट रूप बदल तो जाता है पर वास्तव मे वस्तु वही की वही रहती है, दूसरी नही बन जाती। जैसे कि विष्टा बदल कर अन्न बन बैठी, तो भी वस्तु अर्थात वे परमाणु जिन पर कि यह दोनों अवस्थाये नृत्य कर रही है, वही के वही रहे।

५. क्योकि गुणो के पिण्ड का नाम ही वस्तु है, गुणो से पृथक वह कोई स्वतंत्र पदार्थ नही इसलिए वस्तु की पर्यायो के परिवर्तन का आधार भी गुणो का परिवर्तन है। उन सर्व का सामूहिक एक परिवर्तन ही वस्तु का परिवर्तन है, उन सब की सामूहिक एक पर्याय ही वस्तु की पर्याय है। जैसे कि रग का काला हो जाना, गध का दुर्गंधित हो जाना रस का कसायला हो जाना, और स्पर्श का पिलपिला हो जाना ही आम का सड़ जाना है, इन से अतिरिक्त और कुछ नही पर्याय बदलने पर वास्तव मे गुण ही बदला हुआ प्रतीत होता है। और सर्व गुणो के बदलने पर वस्तु ही बदली हुई प्रतीत होता है। परन्तु

बदलना दो प्रकार से हो सकता है। रस बदल कर रंग बन जाये यह भी बदलना है और खाट्टा रस बदल कर मीठा रस बन जाये यह भी बदलना है। बस यहां बदलने का अर्थ पहली जाति का बदलना नहीं है बल्कि दूसरी जाति का है। जहां कि अनुभव रूप स्वाद बदल जाने पर भी रस पना नही बदलता। इसे कहते है बदलते हुये भी नही बदलना, नित्य में अनित्यता और फिर विरोध नहीं। अपार है इस अनेकान्त की महिमा।

यह बदलना ऐसा भी न समझना कि गुण या वस्तु नाम का कोई पदार्थ तो नीचे निश्चल पड़ा रहे, और पर्याय उसके ऊपर ही ऊपर बदला करे, जैसे कि चक्की का निचला पाट तो निश्चल रहे और उसके उपर उपरला पाट बराबर घूमा करे, बराबर घूमते रहते भी निचले पाट मे वह कोई फेर फार न कर सके। सो भाई! ऐसा नही है। वस्तु, गुण व पर्याय भले ही पृथक पृथक शब्दों के द्वारा कहे जा रहे हो, पर वास्तक मे सत्ताभूत पृथक पृथक पदार्थ नही है, जो एक तो बदल जाये और एक जूका तू बना रहे। वास्तव में यह तीन है ही नही, यह एक ही है फिर भी उसकी शक्तियों का विश्लेषण करने के लिए, इसे तीन भागों मे बाट लिया गया है। यह विभाजन काल्पनिक है, वास्तविक या वस्तु भूत नही। और इस लिये पर्याय बदलने पर कथचित गुण व वस्तु ही बदल जाती है। वस्तु व गुण का न बदलना तो केवल उसमे वही जाति व व्यक्तिपने की प्रतीति है। रस बदल कर भी रस जाति रूप ही रहा, और वस्तु बदल कर वही परमाणु ही रहा दूसरा परमाणु नही बन गया। ऐसी ध्रुवता समझना पर कथन मे भेद आये बिना न रहेगा। आप सर्वत्र उपरोक्त प्रकार उस मे एक रस रूप अर्थ ही ग्रहण करते रहना।

६. उपरोक्त वक्तव्य पर से यह जाना गया कि पर्याय गुण के ही परिवर्तन शील अंग का नाम है, जो प्रत्येक क्षण बदलता रहता

है । इस लिये वस्तु में इसकी स्थिति सर्वत्र तो मिल सकती है पर सर्वदा नही । यही गुण व पर्याय मे अन्तर है वह तो वस्तु में सर्वत्र व सर्वदा पाया जाता है, और यह सर्वत्र रहते हुये भी सर्वदा नही रहती । सर्वत्र तो इसलिए रहती है कि यह गुण का विशेष अंग है, और अपने अपने गुण मे व्याप कर रहती है । और क्योकि गुण सर्वत्र व्याप कर रहता है, इसलिये यह भी सर्वत्र व्याप कर रहती है, जैसे कि आम के गध की सुगधित पर्याय सारे आम मे व्याप्त होकर रहती है। पर सर्वदा नही रहती, बदल जाती है, बदल कर जो भी प्रकट होती है वह भी सर्वत्र ही रहती है पर सर्वदा नही । एक समय मे एक गुण की एक ही पर्याय रह सकती है दो नही । जैसे जब रस खट्टा है तो मीठा पना वहा नही रह सकता ।

७. उपरोक्त सर्व वक्तव्य पर से भली भांति समझा जा सकता है कि यदि वस्तु को अनुभव करने जाये तो उस समय उसमे उतनी ही पर्याय दिखाई देंगी जितने कि गुण । या कल वाले शिक्षण मे पढ़े तो यो कहिये कि त्रिकाली वस्तु के कुल ३० अंगो मे से केवल ६ अंग ही साक्षत दृष्ट हो सकेंगे । ३० के ३० अंग हर समय वस्तु मे नही रहते । जब 'क' मे न. १ वाला अग दृष्ट होगा तो उसके साथ रहने वाले 'ख' आदि गुणो के न. ६ ११, १६, २१, २६, यह अग ही दृष्ट हो सकेंगे । अर्थात् एक लाइन में दिखाये गये, छः अग ही एक समय में दृष्ट हो सकेंगे । अगले समय मे २, १२, १७, आदि दृष्ट हो सकेंगे उपर नीचे वाले कोई भी अग वस्तु मे साथ एक नही देखे जा सकते है । परन्तु ज्ञान की विचित्रता है कि उसमे यह ३० के ३० अंग एक साथ देखे जा सकते है । वस्तु और ज्ञान के अनुभव मे यह अन्तर ही वास्तव मे वादविवाद या दृष्टियों की विभिन्नता का कारण बन जाता है । देखो यदि आप अपने जीवन पर दृष्टि डाल कर देखें तो आपको बाहर से अपने को देखने पर तो वर्तमान की यह प्रौढ़ अवस्था ही दिखाई देती है और इस संबंधी ही अनेको बाते ।

पर यदि ज्ञान मे उतर कर इसे ही देखें तो वहा तो वचपन रूप भूत-काल की पर्याय, वर्तमान काल की पर्याय, और अनुमान के आधार पर आगे आप क्या करेंगे इस सम्बन्धी रूप रेखाओ के रूप से पडी, भविष्यत काल सम्बन्धी कुछ पर्याये भी दिखाई देती है। 'इसी के आधार पर आप आज भी यह कह उठते है "अरे मेरे वचपन के यह दिन कितने प्यारे है। क्या ही अच्छा हो कि यह जिस प्रकार ज्ञान में बैठे उसी प्रकार बाहर में प्रगट हो जाये।" और यह भी कदाचित कह वैठते है कि 'तुम्हें विश्वास आये या न आयें' पर मे तो अभी निकट भविष्य में अमुक अमुक व्यापार करके क्रोडपति वन जाने वाला हूं। इसमे सशय को अवकाश नही। वस जानो कि मै आज क्रोडपति ही हूँ। और इसी ज्ञान के निश्चय पर आप, लोगों का रुपया भी कर्ज ले लेकर व्यापार मे लगा देते है वस इसी प्रकार सर्वत्र जानना। अर्थात् ज्ञान वस्तु से कुछ अधिक है क्योंकि ज्ञान मे तो एक पर्याय जान लेने के पश्चात उसका चित्र वहा टिक जाता है, वहां से मिटने नही पाता, पर वस्तु मे से वह पर्याय मिट जाती है।

८. इसलिए वस्तु को चार प्रकार से समझा जा सकता है—१. त्रिकाली एक अखड वस्तु के रूप मे २. समयवर्ती अखंड पिण्ड रूप वस्तु के रूप मे ३. किसी त्रिकाली सम्पूर्ण अखंड गुण के रूप मे और ४. उस गुण की समय वर्ती एक पर्याय के रूप मे कल वाले ३० अंगो के चित्रण मे ३० के ३० अगो को एक साथ देखे तो त्रिकाली वस्तु के दर्शन कहे जाते है, नं. १, ६, ११, १६, २१, २६, वाली पड़ी हुई पक्ति को देखे तो एक समय वर्ती एक अखड वस्तु के दर्शन कहे जाते है। न. १ से नं. ५ तक की खड़ी पंक्ति को देखे तो त्रिकाली सम्पूर्ण एक 'क' गुण के दर्शन कहे जाते है। और किसी एक कोष्टक को देखे तो किसी भी गुण की एक पर्याय का दर्शन कहा जाता है। प्रमाण ज्ञान त्रिकाली पूर्ण वस्तु के दर्शन का नाम है। क्योकि हाथी के पाव मे सव का पाव, जहा त्रिकाली वस्तु हो वहां

एक समय की तो होगी ही, पर केवल एक समय की वस्तु मे त्रिकाली कैसे समायेगी । इस त्रिकाली दर्शन अभाव के में ही वक्ता की बात कदाचित समझ मे नही आती, और भुझलाहट सी उत्पन्न होने लगती है, जैसे कि महावीर प्रभु को पापी सुन कर आप में हुई थी ।

प्रभो ! महावीर प्रभु का त्रिकाली चित्रण दृष्टि मे रखकर उनके सर्व अंगो मे से जरा भील की पर्याय वाला अंग तो उठाकर देखे । क्या वह पापी नही है ? क्या पापी रूप से दीखने वाला वह व्यक्ति कोई और है ? भले उस समय उसका नाम कुछ और हो, पर व्यक्ति तो वही है । फिर यह झुझलाहट क्यों ? मैने झूठ क्या कहा ? आप भी तो स्वंय अनेको बार ऐसा कहते है । क्या भूल गये ? याद करो वह दिन जब आप मुझे दीवार पर खिचे उस भील के चित्र को दर्शाते हुये कह रहे थे, कि यह महावीर स्वामी का जीव था । वर्तमान काल सम्बन्धी भाषा का प्रयोग किया था । भूतकाल सम्बन्धी प्रयोग तो तब करते जो चित्र सामने न होता । बस उसी प्रकार भले दीवार पर खिचा चित्र नही पर हृदय पट पर खिचा वह चित्र अब भी मेरे सामने प्रत्यक्ष है, जिसके आधार पर कि मै उन्हे 'पापी है' ऐसा कह रहा हूं 'पापीथे' ऐसा नही कह रहा हू । इसी प्रकार सर्वत्र जानना ।

३. पर्याय

द्रव्य व उसके अगो का सामान्य परिचय दे देने के पश्चात उनकी कुछ विशेषताओ को भी जान लेना योग्य है । गुण व पर्यायो का एक अखड पिण्ड द्रव्य है ऐसा बता दिया गया । अतः यह कहा जा सकता है कि ये गुण व पर्याय इस द्रव्य के अग या विशेष है, तथा द्रव्य स्वयं अंगी है । यद्यपि पहिले पयाय शब्द का प्रयोग परिवर्तन शील अंग के लिये किया गया है, परन्तु वास्तब मे इस शब्द का अर्थ है वस्तु के विशेष, वे भले गुण रूप हो कि परिवर्तन शील पर्याय रूप । वे विशेष ही दो प्रकार के होते है—अक्रम वर्ती या

सहवर्ती तथा क्रम वर्ती। जो सदा पाये जाये उन्हें अक्रम वर्ती या सह-वर्ती कहते हैं और जो आगे पीछे पाये जाये उन्हे क्रमवर्ती कहते है। इस प्रकार गुण तो अक्रम वर्ती विशेष है और पर्याय क्रमवर्ती विशेष है। ये दोनों ही सामान्यत: पर्याय शब्द के वाच्य है, परन्तु समझने व समझाने में भ्रम न पड़े इसलिये अक्रमवर्ती पर्याय के लिये 'गुण' शब्द और क्रमवर्ती पर्याय के लिये 'पर्याय' शब्द निश्चित कर दिये गये है ।

क्रमवर्ती या परिवर्तन शील पर्याय भी दो प्रकार की होती हैं– द्रव्य पर्याय व गुण पर्याय या व्यंज्जन पर्याय व अर्थपर्याय दोनों शुद्ध व अशुद्ध के भेद से दो दो प्रकार की हो जाती हैं । उन्ही का क्रम से कथन किया जायेगा ।

यहां द्रव्य पर्याय व गुण पर्याय का विशेष स्पष्टीकरण करना इष्ट है । द्रव्य के मुख्यत: दो लक्षण करने मे आते है "गुणो के समुदाय को द्रव्य या वस्तु कहते है" ऐसा एक लक्षण तो प्रकृत कथन मे समझाया ही जा चुका है। परन्तु इसके अतिरिक्त द्रव्य का एक दूसरा लक्षण भी प्रसिद्ध है। "गुणों के आश्रय या आधार को द्रव्य कहते हैं । अर्थात् जिस मे गुण प्रतिष्ठत होते हैं या रहते है वह द्रव्य है । पहिला लक्षण अभेद दृष्टि से किया गया है और दूसरा भेद दृष्टि से । इसलिए पहिले लक्षण मे गुणों के समुदाय से पृथक किसी अन्य स्वतत्र द्र य की प्रतीति नही होती। परन्तु दूसरे लक्षण मे ऐसी सी प्रतीति होती है मानो द्रव्य जुदा है और गुण जुदा । द्रव्य भाजन है और गुण उस भाजन मे रखे जाने योग्य कोई पदार्थ । अत: स्पष्ट है कि द्रव्य प्रदेशात्मक होना चाहिये, अर्थात कुछ लम्बाई चौड़ाई व मोटाई को धारण करने वाला होना चाहिये, नही तो वह भाजन के रूप मे कल्पित नहीं किया जा सकता । ऐसे प्रदेशात्मक द्रव्य मे गुण सर्वत्र व्याप कर रहते हैं । इस पर से केवल यह बात दर्शाने का

प्रयत्न किया गया है कि द्रव्य क्षेत्र या प्रदेश प्रमुख होता है और गुण भाग प्रमुख। जैसे 'आम' कहने पर उस आकृति विशेष का फल लक्ष्य मे आता है, और 'मीठा' कहने पर उस के स्वाद का भाव दृष्टि में आता है।

उपरोक्त कथन पर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि द्रव्य प्रदेशात्मक स्वीकार किया गया है, जब कि गुण भावात्मक। इसलिये द्रव्य व गुण की पर्याय के लक्षण करते समय भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि द्रव्यपर्याय प्रदेशप्रमुख मानी जाती है और गुण पर्याय भाव प्रमुख। इसी लिये आगम मे द्रव्यपर्याय का लक्षण उस वस्तु या द्रव्य का सस्थान या आकृति किया गया है, और प्रदेश या सस्थान से अतिरिक्त उसके अन्य सर्व गुणो की पर्याय को गुण पर्याय नाम दिया गया है।

इस प्रकार द्रव्यपर्याय के दो लक्षण स्वीकार किये गये है। द्रव्य के लक्षण नं. १ के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण गुणो की किसी एक विवक्षित समय की पृथक पृथक सम्पूर्ण पर्यायों का समूह ही उस विवक्षित समय का द्रव्य है यही द्रव्य पर्याय है। द्रव्य के लक्षण नं. २ के आधार पर कहा जा सकता है कि द्रव्य के आश्रित अनेक गुणो मे से केवल प्रदेशत्व गुण की पर्याय को द्रव्यपर्याय कहते है और उससे अतिरिक्त अन्य सर्व गुणो की पृथक् पृथक् पर्याय को गुण पर्याय कहते है। द्रव्य पर्याय का दूसरा नाम व्यञ्जनपर्याय और गुण पर्याय का दूसरा नाम अर्थपर्याय भी है।

दूसरे प्रकार से भी अर्थ व व्यञ्जन पर्याय के लक्षण किये गये है। वस्तु में जो परिवर्तन स्थूल दृष्ट से देखने मे आता है, उसके संबंध में विचार करने से पता चलता है कि वह परिवर्तन वास्तव में प्रतिक्षण होने वाले किसी सूक्ष्म परिवर्तन का फल है। जैसे बालक से वृद्ध होने-

वाले पुरुष मे जो बुढापा दृष्ट हो रहा, है वह क्या उसमे एक दम आ गया या धीरे धीरे ही आया है ? उत्तर स्पष्ट है कि एक दम आना असम्भव है, धीरे धीरे ही आया है । तव प्रश्न होता है कि कव से आना प्रारभ हुआ है, क्या १० वर्ष पूर्व से या २५ वर्ष पूर्व से ? सूक्ष्म रूप से विचार करने पर इस प्रकार की कोई सीमा नही वान्धी जा सकती । वास्तव मे तो पैदा होने के उत्तर क्षण मे ही वह मनुष्य अपने बुढापे के प्रति एक पग आगे बढ गया था । और इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि क्षणो मे भी वरावर बुढापे के प्रति गमन करता हुआ, अपनी आयु के अनेकों क्षण, मास व वर्ष पीछे छोड़ता गया, और आज ८० वर्ष पश्चात वह पूर्ण रूपेण बूढ़ा दिखाई दे रहा है । इसी प्रकार वस्त्र धुलने के उत्तर क्षण से ही मैला होना प्रारभ हो गया । स्तम्भ वनने के उत्तर क्षण से ही जीर्ण होना शुरू हो गया ।

यदि प्रथम क्षण मे ही वस्तु के अन्दर कोई परिवर्तन न आता तो दूसरे क्षण मे भी न आता । और इस प्रकार तीसरे चौथे आदि क्षणो मे भी न आता । तव तो वस्तु वदलती ही कैसे ? अत. सिद्ध हुआ कि जो परिवर्तन दृष्ट होता है वह वास्तव मे कोई एक परिवर्तन नही है, वल्कि अनन्तों क्षणिक परिवर्तनो का सामूहिक फल है । भले ही अपनी अल्पज्ञता के कारण हम उस क्षणिक परिवर्तन को जान न सके पर उपरोक्त युक्ति पर से सिद्ध अवश्य कर सकते हैं ।

इस सूक्ष्म परिवर्तन को या प्रति क्षणवर्ती सूक्ष्म पर्याय को अर्थ पर्याय कहते है और उनके सामूहिक फल स्वरूप दिखने वाली स्थूल पर्याय को व्यञ्जन पर्याय कहते हैं, क्योकि वह अत्यन्त व्यक्त है । सूक्ष्म अर्थ पर्याय प्रत्येक वस्तु मे प्रतिक्षण स्वभाव से ही होती रहती है, अतः वे तर्क की विषय नही है ।

ये दोनों ही अर्थ व व्यञ्जन पर्याय भी दो दो प्रकार की होती है-शुद्ध व अशुद्ध तहां शुद्ध द्रव्यों की दोनो ही पर्यायें शुद्ध है और अशुद्ध द्रव्यों

की दोनों ही पर्याये अशुद्ध है । मुक्त जीव व परमाणु की सर्व पर्याय शुद्ध और संसारी जीव व स्थूल स्कन्धो या दृष्ट जड़ पदार्थो की सर्व पर्याय अशुद्ध हैं, क्योकि वे अनेक द्रव्यो के सयोग से उत्पन्न हुई है । यह इनका सक्षिप्त परिचय है, विस्तार तो आगम से ही जाना जा सकता है ।

४. वस्तु के स्वचतुष्टय

गुण व पर्याय रूप नित्य व अनित्य अंगों का अधिष्ठान वह द्रव्य प्रदेशात्मक होना चाहिये अर्थात किसी न किसी आकृति या सस्थान वाला होना चाहिये, यह बात पहिले वाले प्रकरण मे बताई गई है । इसी पर से वस्तु मे अन्य प्रकार से भी चार अग पढ़ने मे आते है । गुण व पर्यायो को धारण करने वाली वस्तु स्वय एक द्रव्य है । उस द्रव्य का आकार या सस्थान उसका क्षेत्र है, क्योकि आकार क्षेत्रात्मक परिमाण वाला होता है । परिणमन शील पर्याये उस द्रव्य का काल है, क्योकि पर्यायो की स्थिति काल परिमाण वाली होती है । उसके गुण द्रव्य के स्वभाव कहलाते है क्योकि वे भावात्मक होते है ।

द्रव्य के क्षेत्र, काल व भाव ये वस्तु के स्वचतुष्टय कहलाते है । सामान्य या विशेष कोई भी पदार्थ इस चतुष्टय को तीन काल मे उल्लधन करके अपनी सत्ता सुरक्षित नही रख सकता । जैसे कि द्रव्य सामान्य स्वय द्रव्य है, उसका आकार उसका क्षेत्र है, अपनी त्रिकाल गत पर्यायों मे अनुस्यूत रहने के कारण अनाद्यनन्त या त्रिकाल स्थायी उसका काल है । अनेक गुणो में अनुस्यूत एक अखंड स्वभाव उसका भाव है इसी प्रकार गुण द्रव्य से पृथक् अपनी सत्ता न रखने के कारण स्वय द्रव्य है, द्रव्य मे सर्वत्र व्याप कर रहने के कारण द्रव्य का आकार या क्षेत्र ही उसका आकार या क्षेत्र है, अपनी त्रिकाल वर्ती पयार्यों मे अनुस्पूत रहने के कारण अनाद्यनन्त या त्रिकाल स्थायी उसका काल है । उसकी अपनी पूर्ण शक्ति ही उसका भाव है । इसी प्रकार पर्याय भी

द्रव्य से पृथक् अपनी सत्ता न रखने के कारण स्वयं द्रव्य है, द्रव्य मे सर्वत्र व्यापकर रहने के कारण द्रव्य का आकार या क्षेत्र ही उसका आकार या क्षेत्र है, एक क्षण स्थायी होने के कारण क्षण मात्र उसका काल है, उस क्षण मे प्रगट हुई गुण की शक्ति का कुछ अंश ही उसका भाव है क्योकि गुण की किसी पर्याय मे शक्ति अश अधिक प्रगट रहते है और किसी मे कम, जैसे कि बालक की पर्याय मे ज्ञान गुण की शक्ति कम व्यक्त होती है और युवा अवस्था मे अधिक ।

द्रव्य गुण व पर्याय का क्षेत्र काल व भाव क्योकि सर्वत्र समान नही रहता है, हीन या अधिक देखा जाता है, इसलिये इनकी हीनाधिकता को मापने के लिये किसी एक गज या यूनिट की आवश्यकता पडती है । मापने के छोटे से छोटे पैमाने को यूनिट कहते है । क्षेत्र का छोटो से छोटा भाग क्षेत्र का यूनिट है और इसी प्रकार काल व भाव का भी अपना अपना छोटे से छोटे भाग उस उसका यूनिट है । यूनिट द्वारा क्षेत्रादि का परिमाण जाना जाता है, पर यूनिट का प्रमाण अन्य के द्वारा नही जाना जाता, क्योकि वह आदि मध्य अन्त की कल्पना से रहित अविभागी होता है ।

किसी पुद्गल स्कन्ध अर्थात दृष्ट पर्याय का विभाजन करते जाये । इस प्रकार इसका जो ऐसा अन्तिम भाग प्राप्त हो जिसका पुनः विभाजन न किया जा सके उसका नाम 'परमाणु' है । वह सब से छोटा द्रव्य है । अत: किसी स्कन्ध मे द्रव्य का परिमाण जानने के लिए परमाणु एक यूनिट है । यह परमाणु जितनी जगह घेरता है वह सब से छोटा क्षेत्र है उसे एक प्रदेश कहते है । अथवा क्षेत्र का कल्पना द्वारा विभाजन करते जाने पर जो ऐसा अन्तिम भेद प्राप्त हो जिसका पुनः विभाग न किया जा सके उसे एक 'प्रदेश' कहते है । यह क्षेत्र मापने का यूनिट है । इसी प्रकार किसी काल के परिमाण को कल्पना द्वारा घंटा, मिनट सैकेन्ड आदि के क्रम से विभाजित करते जाने पर जो अन्तिम

भाग प्राप्त हो जिसका आगे विभाग किया जाना सभव न हो, उसे एक 'समय' कहते है। यह छोटे से छोटा काल है। इससे कालका परिमाण जाना जाता है। इसी प्रकार किसी गुण की शक्ति का कल्पना द्वारा विभाजन करते जाने पर उसका जो अन्तिम भाग प्राप्त हो, जिसका पुन: विभाग किया जाना सम्भव न हो, उसे एक 'अविभाग प्रतिच्छेद' कहते है। यह सब से छोटे भाव है । इसके द्वारा गुण या भाव की शक्ति का परिमाण जाना जाता है ।

परमाणु द्रव्य का यूनिट है, प्रदेश क्षेत्र का यूनिट है, समय कालका यूनिट है और अविभाग प्रतिच्छेद भावका यूनिट है, इन के द्वारा उस उस की हानि वृद्धि का प्रमाण मापा जाता है। इस प्रकार द्रव्य गुण व पर्याय इन तीनो को चतुष्टय मे गर्भित कर दिया गया आगे आगे के प्रकरणो मे इसी चतुष्टय के आधार पर वस्तु का या नयों का कथन किया जायेगा, अत: इनको दृढत: हृदयगम कर लेना योग्य है।

५. सामान्य व विषेय तत्व परिचय

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इस चतुष्टय रूप से वस्तु का विभाजन कर दिया गया। अब इन चारो मे सामान्य व विशेष भाव रूप द्वैत दर्शाता हूं। जिस विकल्प मे अन्य भेद सम्भव न हो उसे विशेष कहते है, और इस प्रकार के अनेक विशेषों मे अनुगत कोई एक अखण्ड भाव सामान्य शब्द का वाच्य है अर्थात् जिसके अन्तर्गत अनेकों विशेष या भेद देखे जा सकें उसे सामान्य कहते है।

सत् की अपेक्षा समस्त जड व चेतन द्रव्यों का समूह रूप सर्व व्यापी यह अखण्ड विश्व सामान्य सत् है। क्योंकि इसके अन्तर्गत जीव अजीव आदि अनेकों अन्य द्रव्य जातिये पाई जाती है। इसे महा सत्ता भी कहते है। अन्तर्गत भेद स्वरूप जीव अजीव द्रव्य जातिये इस के

विशेष हे। उन्हे अवान्तर सत्ता भी कहते है। महा सत्ता व अवान्तर सत्ता का यह सक्षिप्त परिचय है। इसका विशद वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा। सत् के इन अवान्तर विशेषो मे भी निम्न प्रकार सामान्य व विशेष का विभाजन किया जा सकता है।

द्रव्य की अपेक्षा जीव या अजीव जातिये सामान्य द्रव्य है, क्योकि इनके अन्तर्गत मनुष्य तिर्यंच आदि अथवा पुन्दल धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि अन्य भेद प्रभेद पाये जाते हैं। इसे जीव या अजीव द्रव्य सामान्य कहते है, और इसके अन्तर्गत पाये जाने वाले उपरोक्त भेद उसके विशेष है। द्रव्य के इन विशेपो मे भी सामान्य व विशेष का विभाग किया जा सकता है। जैसे—

मनुष्य जाति सामान्य मनुष्य है, क्योकि इसके अन्तर्गत आर्यम्लेच्छ अनेको जातिये, पाई जाती है। और इस मे पाये जाने वाले उपरोक्त भेद उसके विशेष है। आर्य म्लेच्छ आदि इन विशेषो मे भी सामान्य व विशेष का विभाग किया जा सकता है।

आर्य मनुष्य सामान्य है, क्योकि इसके अन्तर्गत देवदत्त इन्द्रदत्त आदि अनेकों व्यक्ति पाये जाते है। और इसमे पाये जाने वाले उपरोक्त भेद विशेष है। इसी प्रकार परमाणु अजीव द्रव्य का अन्तिम विशेष है।

इस प्रकार सामान्य व विशेष विभाग की यह अटूट श्रृंखला तब तक चलती रहती है जब तक कि अन्तिम वह विशेष प्राप्त न हो जाये जिसमे कि अन्य भेद दिखाई न दे सके। इनमे से प्रथम विकल्प सर्वथा सामान्य है और अन्तिम विकल्प सर्वथा विशेष। इन के मध्य के सर्व भेद कथञ्चित सामान्य व कथञ्चित विशेष है। सामान्य इसलिये कि उनमे अवान्तर भेद दिखाई देते है और विशेष इसलिये

कि अपने से ऊपर वाले विकल्प में स्वयंभेद रूप से रहते हैं । इस प्रकार अपने से ऊपर की अपेक्षा सर्व भेद विशेष कहलाते है, और अपने अवान्तर भेदों की अपेक्षा वही सामान्य कहलाते है । सामान्य व विशेष विभाग का क्रम क्षेत्र काल व भाव मे भी सर्वत्र इसी प्रकार जानना । कथन को सरल बनाने के लिये उनके मध्य वाले अवान्तर भेदो को छोड़ कर केवल सर्व प्रथम सामान्य व अन्तिम विशेष को ही दर्शाया जायेगा ।

क्षेत्र की अपेक्षा सर्व व्यापी एक अखण्ड विश्व का आकार सामान्य क्षेत्र है, क्योकि इसके अन्तर्गत अनन्तों प्रदेशों का विभाग किया जाना सम्भव है । एक प्रदेश इसका विशेष है, क्योकि उसमे अन्य प्रदेशो की कल्पना सम्भव नही । इन दोनों के मध्य मे सामान्य जीव द्रव्य कान्लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी आकार, या मनुष्य का सीमित असख्यात प्रदेशी आकार, अथवा पुद्गल स्कन्धो के यथा योग्य बडे छोटे सर्व ही दृष्ट आकार अवान्तर सामान्य या विशेष क्षेत्र हैं । पुद्गल स्कन्धों मे से कोई अनन्त प्रदेशी होता है । कोई असंख्यात या संख्यात प्रदेशी परमाणु का एक ही प्रदेश होता है ।

काल की अपेक्षा अनादि से अनत पर्यंत एक अखण्ड काल की धारा त्रिकाली सामान्य काल है, क्योकि इसके अन्तर्गत अनेकों समयो का विभाग किया जाना सम्भव है । एक समय मात्र काल विशेष काल है । इन दोनो के मध्य मे सैकण्ड, मिनट, घण्टा, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, कल्प आदि अवान्तर सामान्य या विशेष काल है । काल का अर्थ यहा काल नही बल्कि उतनी उतनी स्थिति प्रमाण द्रव्य की पर्यायें है, यह बात न भूलना ।

भाव की अपेक्षा पूर्ण शक्ति युक्त त्रिकाली सामान्य गुण का भाव सामान्य है, क्योकि उसमे अनेको अविभाग प्रतिच्छेद का विभाजन

किया जाना सम्भव है। और एक अविभाग प्रतिच्छेद उसका विषेश है। इन दोनों के मध्य में हीनाधिक ज्ञान की प्रगटता की भाति अनेकों अवान्तर सामान्य व विशेष भावों की कल्पना की जा सकती है।

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारों मे ही इस प्रकार सामान्य व विशेपपना देखा जा सकता है। तहा सामान्य चतुष्टय से सहित द्रव्य या सत् सामान्य द्रव्य या सत् कहा जाता है और विशेप चतुष्टय से युक्त द्रव्य या सत् विशेष द्रव्य या सत् कहा जाता है। अवान्तर चतुष्टय से युक्त द्रव्य या सत् अवान्तर सामान्य या विशेष द्रव्य या सत् कहा जाता है।

नयों का कथन समझने के लिये सामान्य तथा विशेष की व्याख्या ध्यान मे रखनी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि बहुत आगे जाकर नयो के मूल व उत्तर भेदो के लक्षण आदि करते समय 'सामान्य व विशेष यह दो शब्द ही प्रमुखत· प्रयुक्त करने मे आयेगे। जैसे कि सामान्य सत् या सामान्य द्रव्य की ही सत्ता को स्वीकार करके विशेष द्रव्य की सत्ता को गौण करने वाला द्रव्यार्थिक नय है, और केवल विशेष द्रव्य या सत् द्रव्य की सत्ता को स्वीकार करके सामान्य सत्ता को गौण करनेवाला पर्यायार्थिकय नय है। तहा भी द्रव्यर्थिक नय के दो भेद है-शुद्ध व अशुद्ध। महासत्ता रूप प्रथम सामान्य की ही सत्ता को स्वीकार करे सो शुद्ध द्रव्यार्थिक है, और अवान्तर सामान्यों की सत्ता को स्वीकार करे सो अशुद्ध द्रव्यार्थिक है। महा सत्ता एक ही है, अत: उसको विषय करने वाला शुद्ध द्रव्याथिक भी एक ही है। अवान्तर सत्ता अनेक है अत: उसको विषय करने वाले अशुद्ध द्रव्यार्थिक भी अनेक है। इसी प्रकार पर्यायार्थिक नय भी दो प्रकार है—शुद्ध व अशुद्ध। एक अन्तिम विशेष का ग्राहक शुद्ध पर्यायार्थिक नय एक है और अवान्तर विशेषो का ग्राहक अशुद्ध पर्यायार्थिक अनेक भेद रूप है।

६. साराश

उपरोक्त सर्व कथन पर से यह सिद्धान्तिक नियम निकले जो याद कर लेने योग्य है--

१. गुणव पर्यायों का एक रसरूप अखन्डपिण्ड द्रव्य है। अतः गुण व पर्याय इसके विशेष हैं।

२. विशेष का नाम ही पर्याय है। वह दो प्रकार है– अक्रमवर्ती व क्रमवर्ती। अक्रमवर्ती पर्याय को गुण और क्रमवर्ती को पर्याय कहते हैं।

३. गुण वस्तु के सामान्य अग है। वे इसमे सर्वदा व सर्वत्र व्यापकर रहते है।

४. पर्याय गुण के विशेष परिवर्तनशील अंग हैं।

५. पर्याय के बदल जाने पर गुण या वस्तु बदलते हुए भी नही बदलते।

६. एक पर्याय वस्तु मे सर्वत्र तो रहती है पर सर्वदा नही

७. वस्तु मे केवल एक गुण की एक पर्याय ही दृष्ट होती है, सर्व नही। अनुभव या प्रत्यक्ष पर्यायों का होता है वस्तु व गुण का नही।

८. ज्ञान वस्तु से अधिक है। इसमें वस्तु की त्रिकाली पर्यायें दृष्ट होती हैं। वस्तु मे केवल एक समय की ही पर्याय दृष्ट होती है।

९. एक गुण की पर्याय को गुण पर्याय कहते है।

१०. अनेक गुणो की एक समयवर्ती एक एक पर्यायों के समूह को द्रव्य पर्याय कहते है।

११. अथवा द्रव्य के आकार या संस्थान सम्बन्धी पर्याय को द्रव्य पर्याय कहते है, और इससे अतिरिक्त अन्य गुणो की पर्यायों को गुण पर्याय कहते है ।

१२. द्रव्य पर्याय को व्यञ्जन पर्याय और गुण पर्याय को अर्थ पर्याय कहते है । अथवा सूक्ष्म पर्याय को अर्थ पर्याय व स्थूल पर्याय को व्यञ्जन पर्याय कहते है ।

१३. गुण व पर्याय का अधिष्ठान द्रव्य कहलाता है। वह आकार वान होता है ।

१४. द्रव्य के आकार या संस्थान को उसका क्षेत्र कहते हैं । उसका सूक्ष्मतम भाग प्रदेश कहलाता है ।

१५. द्रव्य, गुण व पर्यायों की स्थिति उस उस का काल कहलाता । उसका सूक्ष्मतम भाग एक समय कहलाता है । अर्थ पर्याय की स्थिति एक समय है, तथा व्यञ्जन । पर्याय की स्थिति मिन्ट, घण्टे, द्र वर्षादि है ।

१६. गुण या गुण पर्याय का नाम ही भाव है। उसका सूक्ष्मतम भाग एक अविभाग प्रतिच्छेद कहलाता है ।

१७. यह द्रव्य क्षेत्र काल व भाव वस्तु के स्वचतुष्टय कहलाते हैं ।

१८. अन्तिम निर्विशेष भाग को विशेष कहते है, जैसे प्रदेश समय आदि और अनेक विशेषो मे अनुगत एक तत्व सामान्य कहलाता है ।

१९. सामान्य चतुष्टय स्वरूप तत्व सामान्य और विशेष चतुष्टय स्वरूप तत्व विशेप कहलाते हैं ।

द्रव्य व अगो सबंधी समन्वय

द्रव्य के इस उलझे हुये रूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिये यहां कुछ प्रश्नोत्तर करना आवश्यक है

१ प्रश्न·— गुण व गुण पर्याय में क्या अन्तर है

उत्तर — (i) गुण पर्याय उस गुण की एक समय की व्यक्ति का नाम है जो अगले समय मे बदल जाती है, और गुण उस शक्ति का नाम है जिस के आधार पर कि वह पर्याय बदलती रहती है, या जिस पर कि वे सब आगे पीछे होने वाली पर्याय नृत्य करती है ।

(ii) गुण पर्याय उसकी एक समय की व्यक्ति का नाम है और गुण उसकी तीन काल की सर्व व्यक्तियों के समूह का नाम है, उनके एक अखड पिण्ड का नाम है। अखंड पिण्ड का रूप आगे प्रश्न न. ३ मे दर्शाया जायेगा ।

२. प्रश्न — द्रव्य व द्रव्य पर्याय मे क्या अन्तर है

उत्तरः— द्रव्य उस त्रिकाली पिण्ड रूप गुणों का समूह है द्रव्य पर्याय उन सर्व गुणो की एक समय की पृथक पृथक पर्यायो का समूह। त्रिकाली गुणों का समूह त्रिकाली द्रव्य और गुणो की एक समय की पर्यायो का समूह एक समय का द्रव्य। त्रिकाली द्रव्य को द्रव्य कहते है और एक समय के द्रव्य को द्रव्य पर्याय। यह भी अगले प्रश्न के अन्तंगत आने वाले दृष्टात पर से स्पष्ट हो जायेगा। इसके अतिरिक्त द्रव्य के सस्थान या आकृति को भी द्रव्य पर्याय कहते है ।

३. प्रश्नः— द्रव्य मे या गुण मे पर्याय, भले सर्वत्र व्यापकर रहती हो पर सर्वदा व्यापकर नही रहती, ऐसा नियम कर दिया गया

है । इस नियम के अनुसार गुण मे या द्रव्य मे एक समय में एक ही पर्याय हो सकी है, दो नही । फिर एक समय मे त्रिकाली पर्यायो को कैसे देखा जा सकता है ?

उत्तर -- प्रश्न ठीक है । वस्तु मे व वस्तु के ज्ञान मे कुछ अन्तर है । यह अन्तर तेरी,दृष्टि मे स्पष्ट नही है, यही कारण है इस प्रश्न की जागृति का है ।

वस्तु में पर्याय उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाती है, फिर दिखाई नही देती, परन्तु क्या ज्ञान मे भी ऐसा होता है ? वहां तो वह एक पर्याय को जान लिया तो सर्वदा के लिये जान लिया । वहा वह विनष्ट पर्याय दिखनी बन्द हो जाये ऐसा नही हो सकता । क्योंकि वह वहा स्मृति का विषय बन जाती है । इसी प्रकार अनुत्पन्न पर्याय या भविष्य काल सम्बन्धी पर्याय भले ही वस्तु मे व्यक्त न हो, पर अनुमान के आधार पर ज्ञान मे वह व्यक्त है । जैसे कि आप अपनी होने वाली मृत्यु के समय की अवस्था का या बुढापे की अवस्था का पहिले ही से निर्णय किये बैठे हो ।

आप अपने जीवन पर दृष्टि डाल कर देखे तो आपकी दृष्टि मे आप का बचपन अव्यक्त नही है, प्रत्यक्षवत् है । आज की अवस्था तो व्यक्त है ही, और आगे की वुढापे वाली अवस्था भी व्यक्त् व तही है । इस प्रकार आपके ज्ञान मे वस्तु की तीनो कालो की पर्याये पड़ी है । हीन ज्ञान मे यह पर्याय कुछ कम है, ज्ञान अधिक हो जाने पर यह कुछ अधिक हो जाती है, और पूर्ण हो जाने पर वस्तु की त्रिकाली पूरी की पूरी पर्यायो को पकड़ने मे समर्थ हो जायेगा । परीक्षा ज्ञान मे यह कुछ अस्पष्ट सी है, विशेषत् भविष्यत काल सम्बन्धी, पर प्रत्यक्ष ज्ञान मे यह सव स्पष्ट होगी चाहे भूत काल की हो या भविष्यत

काल की । नय प्रमाण ज्ञान का अग है वस्तु का नही, अत, यहा ज्ञान पर से वस्तु को पढना है, वस्तु पर से नही । जो वस्तु को ही पढने जायेगे तो वहा तो एक समय की पर्याय ही मिलेगी, तीनों कालों की पर्यायों का अवस्थान वहा असम्भव है ।

लोक मे ऐक ऐसा मत है कि वस्तु मे जितनी पर्याय हो चुकी है वे भी वस्तु मे अभी तक बैठी हुई है, और जितनी होने वाली है वे भी सब इसमे पहिले ही से विद्यमान है । मानों वस्तु त्रिकाली पर्यायो का कोष है । एक एक करके वे पर्याय बाहर आती रहती है और पुन· उसमे प्रवेश करती रहती है । दृष्टान्त के रूप मे उनका कहना है, कि शब्द आकाश की पर्याय है, और जितने भी शब्द आज तक रामायण या महाभारत काल में उत्पन्न हुये है या उससे पहिले हो चुके है या आगे होने वाले है, वे सब आकाश मे विद्यमान है वैज्ञानिक किसी यत्र विशेष के द्वारा उनमे से जो चाहे वर्त्तमान मे सुन सकता है । सो भाई ! ऐसा नही है । ज्ञान मे उन शब्दों का भान विद्यमान रह सकना सम्भव है, पर आकाश मे नही, न ही वैज्ञानिक कोई ऐसा यत्र बना सकता है कि रामायण काल की आवाजे वर्तमान मे सुन सके । रेडियो मे सुने जाने वाले शब्द तो वर्तमान समय मे प्रगट हो रहे है, वही है, भूत भविष्यत काल वाले नही । इसलिये रेडियो पर से उस मत की पुष्टि की जाना सम्भव नही ।

४ प्रश्नः— ज्ञान मे उन त्रिकाली पर्यायों को कैसे देखा जा सकता है ?

उत्तर — आप अपने सारे जीवन की एक फिल्म तैय्यार कीजिये जैसी कि सिनेमा की फिल्म होती है । इसमे बचपन का फोटो स्पष्ट है, स्कूल के जीवन का फोटो स्पष्ट है, पिकनिक पर गये थे वह फोटो भी स्पष्ट है, आपके विवाह का फोटो स्पष्ट है,

आज का फोटो स्पष्ट है, आगे आने वाले बुढ़ापे व मृत अवस्था का फोटो कुछ अस्पष्ट है। पर अस्पष्टता ज्ञान की कमी के कारण है। प्रत्यक्ष ज्ञान मे यह भी स्पष्ट हो जाता है। यह तो आपके छोटे जीवन की फिलम हुई। देखिये मे अपने पूर्ण जीवन की फिल्म खेचकर दिखाता हूँ, जो मेरे ज्ञान मे प्रत्यक्ष पडी हुई है। देखिये इसमे न.१ का फोटो निगोद का रूप है, दूसरा फोटो घास के रूप का, तीसरा आग्नि के रूप का और इसी प्रकार यह देखिये आगे आगे वायु, कीड़ा, चीटी, मक्खी, भवरा, ततया, चिडिया, तोता, मछली, सर्प, वृक्ष, नारकी, गाय, बैल, घोडा, देव फिर कीडा, चूहा, मनुष्य, यह यहा तक तो भूत काल की २२ अवस्थाओं के फोटो नम्बर वार इस पर चित्रित है। और आगे चलिये। देखिये यह देव, फिर मनुष्य, मुनि, अर्हत और यह दखिये सिद्ध इस प्रकार यह पांच फोटो भविष्य काल की सारी यथा योग्य अवस्थाओं के भी नम्बर वार इस पर स्पष्ट चित्रित है। बस मेरे जीवन की २७ फोटो वाली फिलम तैय्यार हो गई। इसमे न पहले की कोई पर्याय छूट पाई है और न पीछे की।

सिनेमा की फिल्मवत् इसको देखने के दो तरीके है।

(i) या तो इसे मशीन पर चला कर जैसे साधारणत देखने मे आती है उस प्रकार देखले।

(ii) और या इसे सामन दीवार पर लम्बी लटका कर देखते। या यों कहिये कि किसी ऐसी कल्पनिक मशीन के द्वारा देखले जिससे कि उस सारी लम्बी फिलम के आकार यथा स्थान जड़े हुये सामने पर्दे पर, एक लंबी फैली हुई फिलम के रूप मे ही आ जाये।

नं. १ वाले ढंग से देखने पर तो उसमें भाग दौड़ होती दिखाई देगी जैसे कि रोज देखने मे आता है। पर नं. २ वाले ढ़ंग से देखने पर तो सब फोटो यथा स्थान जड़े हूये स्थिर दिखाई देंगे ।

पहिले ढग से देखने पर आपको दृष्टि के सामने एक समय मे एक ही फोटो आता है, वह आगे सरक जाने के पश्चात फिर दूसरा आता है, परन्तु दूसरे ढंग से देखने पर इस प्रकार क्रम नही रहता, सारे फोटो एक साथ दृष्टि मे आ रहे है । या यो कहिये पहिले ढंग मे तो आगे आगे के फोटो देखते समय पीछे और आगे से आख मूंदे ली जाती हैं पर दूसरे ढंग मे आख बराबर खुली रहती है ।

बस प्रत्येक वस्तु को भी पढ़ने के दो ढ़ंग है उसकी पूरी फिल्म मे से उसका एक एक फोटो क्रम से देख कर या उसकी सारी की सारी फिल्म को एक साथ देख कर । पहले ढग से एक समय का द्रव्य या द्रव्य पर्याय देखी जाती है और दूसरे ढंग से त्रिकाली द्रव्य । पहिले ढंग से वस्तु बदलती हुई दिखाई देगी पर दूसरे ढ़ंग से स्थिर, मानों उसकी सारी पर्याये वस्तु मे पहिले से टाकी से खोद दी गई हो । यह बात विशेष ध्यान मे रखने योग्य है, क्योकि आगे त्रिकाली ज्ञान की बात आयेगी । वहां यह बताया जायेगा कि इस ज्ञान में वस्तु बदलती नही, सदा जूकी तू बनी रहती है ।

५ प्रश्न — द्रव्य, गुण पर्याय का स्पष्ट चित्रण खेचकर दिखाईये ।

उत्तर — ठीक है देखिये । पहिले एक गुण 'क' नाम का लीजिये । इसकी सारी त्रिकाली पर्यायों की एक फिल्म बना कर हृदय पट पर बिछा लीजिये । अब दूसरा 'ख' नाम का गुण लीजिये

इसकी भी सारी त्रिकाली पर्यायों की एक फिल्म बना कर हृदय पट पर उस पहिली फिल्म के नीचे उसके बराबर में सटा कर बिछा दीजिये। इसी प्रकार तीसरे 'ग' नाम के गुण की व चौथे 'घ' नाम के गुण की भी त्रिकाली पर्यायों की फिल्मे बनाकर उनके नीचे एक दूसरे से सटा कर बिछा दीजिये, जैसे कि नीचे चित्र मे दिखाया गया है।

क	१	२	३	४	५	×	७	८	६	१०	११	१२	१३
ख	१	२	३	४	५	×	७	८	६	१०	११	१२	१३
ग	१	२	३	४	५	×	७	८	६	१०	११	१२	१३
घ	१	२	३	४	५	×	७	८	६	१०	११	१२	१३

चित्र में 'क' 'ख' 'ग' व 'घ' नाम के चार गुणों की चार फिल्मो को ऊपर नीचे बराबर बराबर सटा कर बिछाया गया है। प्रत्येक गुण की फिल्म मे आगे पीछे १३ अवस्थाओ के फोटो हैं।

कल्पना कीजिये कि यह समय जिस समय कि आप विचार करने बैठे है वस्तु की नं. ६ वाली अवस्था का समय है। अत: नं. ६ की पर्याय तो वर्तमान की पर्याय है नं. १ से ५ तक भूत काल की पर्याय है और ७ से १३ तक भविष्य काल की पर्यायो हैं। इस प्रकार यह चित्र त्रिकाली पर्यायों का प्रतिनिधित्व कर रहा है फिल्म मे नं. ६ वाले पृथक पृथक ४ फोटुओं को पृथक पृथक देखे तो, यह उन 'क' आदि ४ गुणों की ४ गुण पर्याये है जो द्रव्य मे एक ही समय मे विद्यमान है। क्योंकि गुण पर्यायों क समूह को द्रव्य पर्याय कहते है इसलिये ऊपर से नीचे की ओर

ठीक प्रकार फिल्म के रूप मे बाये से दाये को दर्शाया जा सकता है। पर गुणो का पिण्ड चित्रण में दिखायेवत ऊपर से नीचे को नही दिखाया जा सकता। क्योकि गुण इस प्रकार वस्तु मे उपर नीचे नही होते, वे तो जीरे के पानी वत एक रस होते है। परन्तु क्या किया जाये, एक रस का चित्रण खेंचा जाना असम्भव है। अत दाये से बाये की ओर पर्याय माला का फिल्म रूप चित्रण तो यथार्थ ही समझना, पर उपर से नीचे की ओर गुणो के समूह का चित्रण काल्पनिक जानना। कुछ भी हो भाव पडने का प्रयत्न करे, और किसी प्रकार समझाने की योग्यता नही है।

७

-: आत्मा व उसके अंग :-

दिनांक १२।१०।६०

१. आत्मा सामान्य का संक्षिप्त परिचय, २. ज्ञान, ३. चारित्र, ४. श्रद्धा, ५. वेदना, ६. शुद्धाशुद्ध भाव परिचय, ७, क्षायिकादि चार भाव, ८. पारिणामिक भाव ९. भावों का स्वामित्व, १०. वस्तु में पांचों भावों का दर्शन, ११. आत्मा की द्रव्य पर्यायों का परिचय, १२. पारिणामिकादि भावों का समन्वय।

१ आत्मा सामान्य का संक्षिप्त परिचय

नय दर्पण का यह विषय प्रमुखत. अपने जीवन मे हित व सरलता उत्पन्न करने के प्रयोजन से पढा व पढाया जा रहा है, तथा आगम क गूढ व रहस्य मयी वाक्यो का यथार्थ भावार्थ जानने का अभ्यास

कराने के लिये भी। क्योंकि आगम मे भी आत्म पदार्थ के सम्बन्ध मे ही प्रमुखत. कथन करने मे आया है, अत. वहा भी आत्मा के अनेको अगो का भिन्न-भिन्न दृष्टियों व नयों से कथन मिलता है। इन दोनो प्रयोजनो की सिद्धि के अर्थ यहा भी आत्म पदार्थ का किन्चित् परिचय करा दिया जाना आवश्यक है। क्योंकि ऐसा किये विना आगम के प्रकरणो मे नयों को लागू किया जाना सम्भव न हो सकेगा। दूसरे, आगम मे नयो के उदाहरण भी यदि खोजने जाऊंगा तो वहा केवल आत्मा पर लागू करके ही दर्शाये हुए उपलब्ध हो सकेगे, अन्य सामान्य पदार्थों व वस्तुओं पर नही। अत. आत्म पदार्थ के सम्बन्ध मे सक्षिप्त परिचय प्राप्त करना ही इस स्थल पर अत्यन्त आवश्यक है।

वैसे तो आत्म पदार्थ बड़ा विचित्र व जटिल है। एक तो इसलिये कि अनन्तो शक्तियो का पून्ज है, और दूसरे इसलिये कि यह अदृष्ट है। इसका अनुभव या दर्शन आज तक कभी हुआ नही। अत: समझने व समझाने मे वहुत कठिनाइये पड़ेगी। अत: बिना विस्तृत कथन किये, विषय पूर्ण रूपेण स्पष्ट होना असम्भव है। परन्तु यहा यह विषय प्रकृत नही है। अत: सक्षिप्त परिचय ही वताया जा सकेगा, सो ध्यान देकर सुनना।

वस्तु सामान्य वत् आत्मा के भी अनेको अंग है, जिन्हे यहा शक्तियों के रूप मे दर्शाया जा रहा है। इनमे से कुछ त्रिकाली शक्तिया है जो गुण रूप है, और कुछ क्षणिक या परिवर्तनशील शक्तिया है जो पर्याय है। त्रिकाली शक्तिये इसमे प्रमुखत. चार है--ज्ञान, चरित्र, श्रद्धा व वेदना। इन्हो की सामान्य वा विशेष व्याख्या करने मे आती है। शक्तियो का परिचय पाने से पहिले यह वात ध्यान मे वैठा लेनी चाहिये कि आत्मा नाम का पदार्थ इन इन्द्रियो से देखा व जाना नही जा सकता, क्योंकि इसमे इन

इन्द्रियो के विषय जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श है वे पाये नही जाते। इस पदार्थ का अनुभव केवल विचारणाओं रूप से होता है। यह जो पुतला बैठा दिखाई दे रहा है सो दो पदार्थों के सम्मिश्रण से बना हुआ है शरीर व आत्मा। इन दोनो की शक्तिये वर्तमान मे दूध पानी वत् घुलमिल कर इस प्रकार एक मेक हो गई है, कि पता नहीं चलता कौन शक्ति शरीर की है और कौन आत्मा की। सो इन दोनो की शक्तियों को पृथक पृथक पढ़ने का काम तभी सिद्ध हो सकता है जब कि इनको पृथक् पृथक् निकाल कर देखा जाये, और यह सम्भव नही। कदाचित शरीर को पृथक करके देखा जा सके पर आत्मा को तो नही।

यदि मृत्यु के पश्चात् इस शरीर को पढ़े तो पता चलेगा, कि इस मे कुछ शक्तिये तो अब भी रह गई है और कुछ शक्तिये इसमे से निकल गई है। बस जो शक्तिये निकल गई है वे सर्व ही आत्मा की थी ऐसा जान लेना। वे शक्तिये न इसकी थीं और न इसमे रह सकती थी। आत्मा की थी और इसीलिये आत्मा के साथ चली गई, जहां कही भी इस शरीर से पृथक होकर गई है। इस प्रकार पूर्ण शक्तियों मे से उन निकलने वाली शक्तियों का विचार करें तो आत्मा की शक्तियो का स्पष्ट परिचय हो जायेगा। अब विचार कर देखिये कि किस चीज का प्रमुखत. अभाव हुआ है। प्रकाश तथा विचारणाओं व चिन्तवनाओं का। और तो यहां सब कुछ पड़ा है। आंख, नाक, कान सब ज्यू का त्यू होते हुए भी, उनका प्रकाश जाता रहा। अब वे जान कुछ नही पा रही है। अत समझ लीजिये कि यह जो छूकर कुछ अन्दर मे महसूस होता था, यह जो चख कर खट्टा मीठा सा महसूस होता था, यह जो सूंघ कर कुछ दुर्गन्धी या सुगन्धी का चित्रण अन्दर मे आता था, या जो कुछ देखकर प्रकाश सा या वस्तुओ का स्पष्ट आभास सा देखने मे आता था, तथा सुन कर जो कुछ झंकार व गुंजार सी प्रतीति मे आती थी, वह सब इन इन्द्रियो को नही आती थी बल्कि आत्मा को आती थी। यदि

ऐसा न हुआ होता तो अब भी इन इंद्रियो को यह काम करते रहना चाहिये था । तथा अन्य भी।

२. ज्ञान यह उपर बताई गई सर्व शक्तिये ज्ञान रूप ही समझना ज्ञान नाम जानने का है। जानना उपर प्रमाण इन पांच इन्द्रियों से भी हो रहा है तथा एक अदृष्ट इन्द्रिय अर्थात् मन से भी मन से होने वाला जानना विचारणाओं रूप है। आत्मा इन्द्रियों वाला नही। यह जानना व विचारणा उसीका काम है। बस इसे ही ज्ञान कहते हे आत्मा की समस्त शक्तिया चाहे वह चारित्र हो या श्रद्धा व वेदना, सर्व विचारणात्मक है या प्रकाशात्मक हैं अत परमार्थत सब ही ज्ञान रूप है। वर्तमान मे यह ज्ञान दो प्रकार से अनुभव मे आ रहा है एक तो इन छहों इन्द्रियों के आधार पर होने वाला तथा दूसरा शेख चिल्ली की कल्पनाओं वत्, कड़ी बद्ध कोरी कल्पनाओं रूप से, या किसी भी पदार्थ को जानने के साथ साथ उसमे इष्टता व अनिष्टता की कल्पना रूप से, जिन कल्पनाओं का आधार कोई वस्तु नही होती, बल्कि अन्दर मे पड़े ही कुछ पहिले आकर होते हैं। उन आकारो का स्मरण कर करके ही वे कल्पना जागृत हुआ करती है। इन्द्रियो का ज्ञान किसी वस्तु को आश्रय करके ही वर्तता है। अत ज्ञान दो प्रकार का कहा जा सकता है। इन्द्रिय ज्ञान व कल्पना विज्ञान। कल्पना विज्ञान विचारणा रूप होता है यह विचारणा दो प्रकार की होती है एक तो किसी वस्तु को सामने रख कर की जाने वाली तथा एक केवल स्मृति व अनुमान के आधार पर। पहिली जाति की विचारणा को इन्द्रिय ज्ञान मे ही सम्मिलित कर लीजिये और दूसरी को पृथक रहने दीजिये। इस इन्द्रिय ज्ञान को हम व आगम 'मतिज्ञान' इस नाम से पुकारते हैं तथा दूसरे कल्पनाओ रूप ज्ञान को 'श्रुत ज्ञान' कहा जाता है। यह दोनों हम मे ही नही बल्कि चींटी आदि क्षुद्र जन्तुओ तक मे देखने मे आता है। इसके अतिरिक्त अवधि ज्ञान कुछ भूत व भविष्यत

काल सम्बन्धी विलुप्त बातो को प्रति बिम्ब रूप से जान जाया करता है, और मन: पर्यय ज्ञान समक्ष आये हुये किसी भी प्राणी के मन मे 'क्या विचार आ रहा था या आगे आयेगा' यह सब प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब रूप से जान जाया करता है। अवधि ज्ञान तो यथा योग्य रीति से गृहस्थों व साधुओ दोनों को हो सकना संभव है पर मन: पर्यय ज्ञान बड़े बडे तपस्वी योगियो को ही होना सभव है इसके अतिरिक्त एक और भी ज्ञान होता है जिसे 'केवलज्ञान' कहते है। यह सकल विश्व की वर्तमान काल सबधी भूतकाल सबधी व भविष्यत् काल संबधी सर्व दृष्ट व अदृष्ट बातो को प्रतिबिब वत् प्रत्यक्ष एक ही बार जानने मे समर्थ है। यह ज्ञान आत्मा की पूण विकसित अवस्था है। जिसे सिद्ध अवस्था या निर्गुण अवस्था कहते है।

इस प्रकार मति श्रुत अवधि मन. पर्यय व केवल ये पाचों ज्ञान की ही विशेष शक्तियां है। ये पाचो जिसमे से स्फुरायमान होते है या यों कहिये कि जिसके उपर नृत्य करते है, अर्थात कभी हीन रूप से और कभी अधिक रूप से प्रगट होते व विलीन होते रहते हैं, उस सामान्य शक्ति का नाम ही ज्ञान है। इसका काम तो जानना मात्र है। भले मति रूप से जाने, या श्रुत रूप से, अवधि रूप से या मन: पर्याय रूप से, या केवल रूप से- ये पाचों तो कभी या किसी आत्मा मे प्रगट दृष्ट होते हैं और कभी नही इस लिये क्षणिक या परिवर्तन शील अङ्ग है, पर्याय हैं। पर वह जानने की त्रिकाली शक्ति सो ज्ञान है। सो उसमे तो जानने की अनन्त शक्ति है, भले ही वर्तमान मे पूर्ण रूपेण प्रगट न दीखती हो।

प्रगट मे दीखने वाली को व्यक्ति व अन्दर मे छिपी हुई को शक्ति कहते हैं। जैसे यदि पूछु कि दीपक की लौ मे कितने पदार्थो का जला देनो की शक्ति है, तो आप यही कहेगे कि यदि सारा विश्व भी सामने आये तो उसे भी जलादे, और फिर भी न थके। परन्तु वर्तमान

मे तो इतनी व्यापक दिखाई देती नही छोटी सी दीखती है। बस इस अन्दर मे छिपी शक्ति का नाम शक्ति है और प्रगट दीखने वाला वर्तमान का छोटासा रूप उस अग्नि सामान्य की व्यक्ति है। इसी प्रकार ज्ञान को समझना। वह जानने की अनन्त शक्ति रखता है जो भी सामने आ जाये उसे ही जान जाये। क्या जानता हुआ यह थकेगा कभी ? नही। सर्व विश्व भी सामने आये तो जान जाये और फिर भी न थके। यदि ऐसे ऐसे अनन्तो विश्व भी हो तो भी जान ले और फिर भी न थके। बस इसी का नाम ज्ञान की शक्ति है। उस का मति श्रुति आदि रूप तो वर्तमान की छोटी छोटी सी व्यक्ति मात्र है। इस शक्ति को गुण सामान्य समझो और व्यक्ति को उसकी परिवर्तन शील पर्याय। मति, श्रुति, अवधि, व मन. पर्यय इस की छोटी व्यक्ति है, और केवल ज्ञान इस की पूर्ण व प्रचण्ड व्यक्ति या रूप है। सर्व शक्ति वहा व्यक्त या प्रगट हो जाती है अर्थात इस समस्त विश्व को तो यह जान ही लेता है, परन्तु यदि और भी हो तो भी जान जाये। जब और है ही नही तो जाने क्या ? इसे ही सर्वज्ञता कहते है। सो इस प्रकार जानना नाम तो ज्ञान शक्ति है।

३. चारित्र

अब चारित्र शक्ति को सुनिये। यद्यपि यह भी ज्ञान व विचारण रूप ही है पर क्योकि इसका अनुभव दूसरे प्रकार से होता है इसलिये इसका दूसरा नाम रख दिया है। या यो कहिये कि जानने का ही जब ऐसा सा ढग होता है तो उस ज्ञान को ही चारित्र नाम दे दिया जाता है। यह जो नित्य ही राग व द्वेषादि व क्रोधादि भाव विचारणाओं मे उठते व दबते दिखाई देते है, बस इसी को हम चारित्र नाम की शक्ति कहते है। कोई भी शक्ति अपनी व्यक्ति के आधार पर ही जनाई जा सकती है या यो कहिये कि कोई भी गुण सामान्य अपनी पर्याय के आधार पर ही जनाया जा सकता है। जैसे कि रगपना दर्शाने के लिये हरा पना व पीला पाना ही दिखाना पड़ता है। पहिले भी बताया जा चुका है कि अनुभव गुण का नही हुआ करता, बल्कि पर्याय का होता है।

उसी के आधार पर गुण रूप त्रिकाली शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है उपर ज्ञान के प्रकरण मे भी यही बात लागू होती है। और आगे भी यही लागू होगी व्यक्ति या पर्यायो की ओर लक्ष्य दिलाकर उस शक्ति सामान्य को अनुमान का विषय बनाने का प्रयत्न किया जायेगा ।

चारित्र गुण की कई व्यक्तिये हमे प्रत्यक्ष अनुभव मे आती हैं। उनमे से १३ प्रधान है १ क्रोध, २ अभिमान, ३ मायाचार, ४ लोभ, ५ हास्य भाव, ६ किसी पदार्थ के प्रति रति व आसक्ति भाव, ७ किसी पदार्थ के प्रति का अरति या अरूचि भाव ८ शोक भाव, ९ भय भाव, १० ग्लानि व घृणा भाव ११ स्त्री, १२ पुरुष व १३ नपु सक मे उठने वाले उस उस जाति के मैथुन व काम सेवन रूप भाव। यह तेरह के तेरह भाव सर्व जनसमत है। इन्हे ही सक्षेप मे कहे तो दो शब्द राग व द्वेष द्वारा कहा जा सकता है। राग भाव कहते है आर्कषण भाव को और द्वेष भाव कहते है हटाव के भाव को । सो उपरोक्त १३ मे से क्रोध, मान, अरति, शोक, भय व जुगुप्सा ये ६ भाव तो द्वेष रूप है और माया, लोभ, हास्य, रति, व तोनी प्रकार के मैथुन भाव ये सात राग रूप है। सो ज्ञान की इन राग द्वेप मे रगी हुई विचारणाओ का नाम चारित्र है।

इन उपरोक्त राग द्वेष का तो हमे परिचय है क्योकि यह तो हमारे जीवन के अङ्ग है, पर इन से विपरीत वीतरागता से परिचय नही है। वास्तव मे चारित्र की अनन्त शक्ति उस वीतरागता मे ही निहित है । उस वीतरागता की किंचित पहिचान निम्न भावो पर से की जा सकती है जो कि उपरोक्त १३ से विपरीत भाव है । क्रोध के विपरीत क्षमा है, जो इस प्रकार से प्रगट होता है कि अरे ! जाने भी दे क्या लेगे लडकर। जा भाई जा । तेरी करनी तेरे साथ। अभिमान को दबाते हुअे मार्दव भाव प्रगट होता है जिसका रूप

कुछ इस प्रकार का होता है, कि अरे काहे को अपने बडप्पन पर इतराता है । छोटा ही बना रहना ठीक है । बेटा बनकर सब ने खाया है बाप बनकर किसी ने नही । माया से विपरीत सरल या आर्यत्व भाव है । जिसका रूप कुछ इस प्रस प्रकार का होता है, कि क्या रखा है छल कपट करने व ढोग रचाने मे । जो कुछ मन मे है स्पष्ट क्यो नही कह देता । लोभ से विपरीत शौच या सतोष भाव है, जो इस रूप से प्रगट होता है, कि अरे क्या रखा है अधिक भाग दौड करने मे । जो आना होगा आ जायेगा । तथा इसी प्रकार सयम भाव, त्याग भाव, सत्य भाव, मेरा यहा कुछ नही ऐसा आकिंचन्य भाव, व ब्रह्मचर्य आदि भाव सब राग व द्वेष से विपरीत वीतरागता वैराग्य के परिणाम है । इसे ही वीतरागता, साम्यता माध्यस्थता, सरलता, सन्तोष व शाति आदि शब्दो से कहा जाता है ।

क्रोधादि भावो से प्राणी थक जाता है, ऊब जाता है । पर इन वीतराग परिणामो से थकता नही, इसलिये यह चारित्र की निर्मल व्यक्तिये है, क्रोधादि मलिन व्यक्तिये है । निर्मल व्यक्तियों को स्वाभाविक भाव या शुद्ध भाव या सम्यक चारित्र और मलिन व्यक्तियो को विभाविक या अशुद्ध भाव या मिथ्या चारित्र भाव कहते है । यह शुद्ध व अशुद्ध भाव जिस एक जातीय विचारणाओ से से निकल रहे है उसी का नाम हम चारित्र शब्द से करते है ।

४ श्रद्धा– हित व अहित के विवेक को श्रद्धा कहते है । यह भी विचारणाओ का ही एक रूप है । "यही मेरे लिये हितकारी है, इसे ही प्राप्त करना चाहिये । यह मुझे शिघ्रातिशीघ्र कैसे मिले" ऐसी जिज्ञासा रूप से जो जीवन को उसकी प्राप्ति के प्रति प्रेरणा दे, उसे श्रद्धा कहते है । आज का यह विवेक कुछ उलटा है । धनादि की आसक्ति मे हित की श्रद्धा है और वीतरागता व त्याग मे अहित की । परन्तु यह क्योकि जीवन मे चिन्ताओं का कारण बन रही है इसलिये

इसे विपरीत श्रद्धा, अशुद्ध श्रद्धा, विभाविक श्रद्धा या मिथ्या श्रद्धा कहते है । कदाचित् वीतरागता का रस आ जाने पर यह बदल कर वीरागता मे हित की और राग द्वेष मे अहित की श्रद्धा रूप हो जाये तो, उसे स्वभाविक श्रद्धा शुद्ध श्रद्धा या सम्यक श्रद्धा कहते है । यह तो श्रद्धा की प्रगट दीखने वाली व्यक्तिये या पर्याय है । इनके नीचे छिपी हुई वह शक्ति जिसके आधार पर कि यह जागृत होती है और बदलती रहती है उसे श्रद्धा गुण व श्रद्धा शक्ति कहते है ।

५- वेदना यह जो कुछ जीवन मे चिन्ताओ का भार सा मेहसूस करने मे आता है या सुई चुभने पर यह जो पीडा सी मेहसूस होती है, या कड़वा बादाम मुंह मे आने पर कुछ वहुत बुरा बुरा सा लगने लगता है, या मीठाई खाकर कुछ मजा सा आता प्रतीत होता है, उसे वेदना कहते है । यहा वेदना का अर्थ पीड़ा नही है वल्कि वेदन करने की या मेहसूस करने की शक्ति का नाम है । जानने व मेहसूस करने मे कुछ अन्तर है । बालूशाही का मीठास इस जाति का होता है यह तो बालूशाही को जानना है और बालू-शाही का मिठास लेते हुए उसमे जो तन्मयता सी हो जाती है, "आ हा हा बहुत स्वाद है" कुछ इस प्रकार का भाव आता है उसे वेदना कहते है । यह दो प्रकार की होती है सुख की व दु.ख की, शान्ति की व अशान्ति की, चिन्ताओं की व निश्चिन्तता की, व्याकुलता की व निराकुलता की इच्छाओ की व सन्तोष की इत्यादि । इनमे से सुख शान्ति निराकुलता आदि इस वेदना की स्वाभाविक व शुद्ध व्यक्तिये है और दु ख अशान्ति, व्याकुलता आदि विभाविक व अशुद्ध यक्तिये है । यद्यपि यह भी विचारणाओ रूप ही है पर जानने मात्र से कुछ पृथक प्रकार की है । ये दु ख व सुखादि तो व्यक्तिये व पर्यायें है । यह सब जिसमे वास करती है वह वेदना नाम का गुण त्रिकाली शक्ति है ।

इस प्रकार इन चार शक्तियों का सक्षिप्त परिचय दिया गया। और भी बहुत कुछ है पर समय थोड़ा होने के कारण विस्तार नही किया जा सकता यहा इतना ही समझना चाहिये कि आत्मा तो ज्ञानपुज है। यह ज्ञान ही अनेक प्रकार से प्रगट होकर भिन्न भिन्न शक्तियों रूप बन बैठता है।

६. शुद्धाशुद्ध भाव परिचय

ऊपर की चारों शक्तियो मे से ज्ञान मे तो शुद्ध पना व अशुद्ध पना होता नही। वहा तो हीन ज्ञान पना न अधिक ज्ञान पना होता है। सो वहा तो हीन ज्ञान पने का नाम ही विभाव व ज्ञान की अशुद्धता है और अधिक या पूर्ण ज्ञानपने का नाम ही स्वभाव या ज्ञान की शुद्धता है। पर चारित्र, श्रद्धा व वेदना, मे शुद्धपना व अशुद्ध पना होता है, जैसा कि दर्शा दिया गया। शाति रूप से प्रगट होने को यहा शुद्ध पना और अशाति रूप से प्रगट होने को अशुद्ध पना कहते है। सर्वत्र ही यह शुद्ध पना व अशुध्द पना तीन प्रकार का हो सकता है। १. पूर्ण शुध्द, पूर्ण अशुध्द, तथा ३. शुध्द व अशुध्द का मिश्रण। पूर्ण का अर्थ है पूर्ण शाति मे स्थित होने पर प्रगटे भाव, पूर्ण अशुद्ध का अर्थ है पूर्ण अशाति या चिन्ताओं मे उलझे हुए भाव और शुध्दाशुध्द रूप मिश्रित भावों का अर्थ है कुछ शान्ति तथा साथ ही साथ कुछअशान्ति मे बसने वाले भाव।

पूर्ण शुद्ध व पूर्ण अशुद्ध तो ठीक प्रकार समझ मे आ जाता है पर शुद्धाशुद्ध रूप मिश्रित भाव कुछ उलझन उत्पन्न कर रहा है। इस को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता हू। देखो, ये घर पर बिलो कर निकाला गया एक सेर पूर्ण शुद्ध घी है और यह है एक सेर पूर्ण अशुद्ध व नकली डालडा। यह लो दोनो को मिला दीजिये। अब यह मिला हुआ वह घी शुद्ध कहलायेगा या अशुद्ध? कहना होगा कि न पूर्ण शुद्ध, न पूर्ण अशुद्ध वल्कि इसे तो मिश्रित कहना होगा, या शुद्धाशुद्ध कहना होगा। यद्यपि शुद्ध व अशुद्ध तो एक एक ही कीटि के हो सकते है, पर शुद्धाशुद्ध

तो असख्याती कोटियो के हो सकेंगे । एक तोला शुद्ध व शेष सर्व अशुद्ध का मिला हुआ भी शुद्धाशुद्ध है, आधा आधा मिला हूआ भी शुद्धाशुद्ध है, और एक तोला अशुद्ध और शेष सर्व शुद्ध मिला हूआ भी शुद्धाशुद्ध है । तथा इन के बीच मे एक एक अंश शुद्ध का बढाते हूये और साथ साथ एक एक अश अशुद्ध का घटाते हुये असख्यातों भेद शुद्धाशुद्धके हो जायेगे । जिसका अश अधिक होगा, घी उसी ओर कुछझुकता हुआ सा प्रतीति मे आयेगा । जैसा कि सुगन्धित व दुःर्गन्धित दो पदार्थो को मिलाने पर यदि सुगन्धि का अश उसमे अधिक है तो सारा का सारा मिश्रण कुछ सुगधित सा प्रतीत होगा । जू जू सुगधि का अंश बढता जायेगा तू तू अधिक अधिक सुगधित प्रतीति मे आने लगेगा । दु र्गन्धि उतनी उतनी ही घटती जायेगी । इस मश्रण मे बढते बढते शुद्ध घी तो पूरा सेर हो जाये और घटते घटते अशुद्ध धी इसमे से बिल्कुल निकल जाये तो यह पुन. शुद्ध कहलाने लगेगा ।

उस इसी प्रकार आत्मा मे समझना । चारो गुणो की कुछ शुद्ध और अशुद्ध व्यक्तिये मिली हुई पड़ी हो, तब उसे उस उस गुण का शुद्धाशुद्ध भाव कहते है । जैसे चारित्र मे तीव्र क्रोध आ जाने पर तीव्र दाह प्रतीति मे आई सो तो पूर्ण अशुद्धता हुई । अव मेरे समझाने व सान्तवना देने पर कुछ समझ कर उस व्यक्ति पर ऐसा भाव प्रगट हूआ कि अच्छा, जो मर्जी मे आवे कर मुझे क्या । तब तीव्र दाह कुछ हलकी सी हुई प्रतीत हुई । बस जितनी हलकी हुई उतनी क्षमा आ गई । यह पहिली स्थिति है, जो कि अभी क्षमा रूप दीखने नही पाई, क्योकि अभी भी इसमे क्रोधका अश अधिक है अतः क्रोध ही मुख्यत प्रतीति मे आ रहा है । आगे जाकर धीरे धीरे दाहमन्द पड़ती गई । समझिये क्षमा का अश बढता गया और क्रोध का अश उतना ही कम होता गया । आधम सूत आने पर आप पूर्ववत अपने काम मे लग गये, पर अन्दर मे थाडे थोड़े कुढ अभी भी रहे हो । आगे क्षमा और बढी और क्रोध कुछ कम हूआ, तो कुछ शान्ति सी प्रतीत होने

लगी जो बराबर बढती गई, यहा तक कि क्रोध ससाप्त हो गया और उसका स्थान क्षमा ने ले लिया आप पूर्व वत शान्त हो गये। यह सब पहिले से लेकर इस अन्तिम तक के शुद्धाशुद्ध अंग कहलायेगे । इसी प्रकार सर्वत्र जानना। यहा चारित्र सबधो शुद्धाशुद्ध भाब को मैं ने लौकिक दृष्टि से दृष्टान्त रूप मे समझाया है। आगम की अपेक्षा तो यह सब अशुद्ध भाव ही है। जब तक पारमार्थिक अन्तरंग शान्ति रूप क्षमा की रेखा हृदय मे प्रगटती नही तब तक की क्षमा आदि वास्तव मे अशुद्ध ही है।

ज्ञान का पूर्ण अशुद्ध भाव पूर्ण अन्धकार रूप जिसमे कुछ भी जाना न जा सके, शुद्ध भाव है पूर्ण प्रकाश जिसमे समस्त विश्व जाना जा सके जैसे कि भगवान मे है, और शुद्धाशुद्ध भाव अधूरा प्रकाश जैसे हम सभो मे है। कुछ जानते है और कुछ नही जानते हे। सो सब मे वरावर नही है। किसी में शुद्धता रूप प्रकाश का अश अधिक है और किसी मे अध कार अधिक है। जैसे कि यहां जो बात को पकड सकते है उनमे प्रकाश का अश अधिक है ओर जो बिल्कुल नहीं समझ पाते उनमे अधकार का अश अधिक है।

चारित्र का पूर्ण शुद्ध भाव है पूर्ण वीतरागता जैसा कि अर्हन्त व सिद्ध भगवान मे है। इसका पूर्ण अशुद्ध भाव है विषयो मे पूर्ण रूपेण फसकर नित्य क्रोधादि भावों मे उलझे रहना। क्रोध जाये तो मान आ बैठे और मान जाये तो माया। जैसा कि जन साधारण मे होता है। इसका शुद्धाशुद्ध भाव है राग मे रहते हुये भी वीतरागता का अभ्यास करने रूप। जैसे कि गृहस्थ मे रहते हुये भी कुछ व्रतो को धारना व विषयो का कुछ त्याग करना।

श्रद्धा का पूर्ण शुद्ध भाव है विवेक का निश्चलपना। लोकके सर्व कार्य करते हुए भी "मेरा मकान अमुक ही स्थान पर है, मेरा पुत्र

विलायत मे जीता जागता विद्यमान है ही" इस प्रकार की दृढ़ श्रद्धा अदर मे पड़ी रहना। उसमे पोचता न आना, उसमे कम्पन न आना, उस मे कुछ धुन्धला पन न आना। इसी प्रकार रागात्मक लौकिक कार्य करते हुए भी "यह का कार्य मेरे लिये अहित कर है" वीतरागता ही हितकर है। ऐसा निश्चल भाव अन्दर मे बने रहना। श्रद्धा का पूर्ण अशुद्ध भाव है विवेक का पूरा अभाव, अहित मे हित की श्रद्धा जैसे कि "धन ही मेरे लिये तो हित कारी है, मुझ शान्ति नही चाहिये इत्यादि"। इस का शुद्धाशुद्ध भाव है उतार चढाव रूप। चिन्ताये बढ जाने पर तो "अरे आज ही छोडकर भाग इस धधे को, इससे बड़ा अहित और कुछ नही हो सकता" एसा सा भाव प्रगट हो जाना। और चिन्ताये कुछ कम होने पर तथा विषयो की उपलब्धि हो जाने पर वह भाव दब सा जाना, उपरोक्त प्रकार प्रगट न हो पाना। और इस प्रकार बराबर उसकी दृढता मे हानि वृध्दि होते रहना श्रद्धा का शुद्धाशुद्ध भाव है।

वेदना का पूर्ण शुद्ध भाव है पूर्ण शान्ति मे निश्चल स्थिति, इच्छाओं का पूर्ण अभाव। पूर्ण अशुद्ध भाव है पूर्ण अशान्ति, इच्छाओं, मे सदा जलते रहना। ओर शुद्धाशुद्ध भाव है अशाति मे कुछ कभी और कुछ कुछ शाति की प्रतीति जो कभी बढ जाती है और कभी घट जाती है।

शुद्ध भाव की व्यक्ति दो प्रकार की हो सकती है। एक थोडी देर के लिये पूर्ण शुद्ध होकर फिर अशुद्ध या शुद्धाशुध्द हो जाने वाली जैसे कि गदला पानी गाद बैठने पर थोडी देर को पूर्ण शुद्ध हो जाता है पर हिलने पर फिर अशुद्ध हो जाता है। और दूसरी सर्वदा के लिये पूर्ण शुद्ध होकर फिर कभी भी अशुद्ध या शुद्धाशुद्ध होने की सम्भावना न रहे ऐसी शुद्ध। जैसा कि उबाल कर सुखाया गया गेहू का दाना सदा के लिये अब उगने की शक्ति को खो बैठा है।

इसी प्रकार एक क्षण को हित का भान होने पर "अरे अरे ? यही मेरे लिये हितकर है यह—अन्य सब तो मेरे शत्रु है, 'इस प्रकार का भाव जागृत होकर भी अन्य काम धन्धों मे फंसने पर उसे भूल जाना यह क्षणिक पूर्ण शुद्ध भाव है । और अर्हंत भगवान मे प्रगटी वीत-रागता अब कभी नष्ट न होगी यह स्थायी पूर्ण शुद्ध भाव है ।

७. क्षायिकादि चार भाव,

आगम भाषा मे क्षणिक शुद्ध भाव को औपशमिक भाव कहते है, स्थायी पूर्ण शुद्ध भाव को क्षायिक भाव कहते हैं । पूर्ण अशुद्ध भाव को औदयिक भाव कहते है और शुद्धाशुद्ध भाव को क्षायोपशमिक भाव कहते है । यह चारों ही भाव तो अनुभव में आने वाली व्यक्ति या पर्यायें है । क्योंकि उत्पन्न होती तथा विनाश पाती है । चारो ज्ञानादि गुणों मे यथा योग्य रीतयः इन चारों भावो मे से सारे या कुछ पाये जाने सम्भव है । जैसे चारित्र व श्रद्धा तो ऐसे गुण है जो क्षण भर अत्यन्त निर्मलता रूप से प्रगट होकर पुनः मलिन हो जाये । पर ज्ञान व वेदना मे ऐसा नही होता । ज्ञान यदि एक बार पूर्ण हो जाये तो फिर हीन होने का काम नही जैसा कि देखने मे भी आता है, कि जानी हुई वस्तु भुलाने से भी नही भूलती, अत. उसमें क्षणिक शुध्दता नही होती, होती है तो स्थायी ही होती है और इसी प्रकार वेदना या सुख मे भी समझना । अत. चारित्र व श्रद्धा तो क्षायिक, औपशमिक, औदयिक व क्षायोपशमिक चारो प्रकार से रह सकती है, पर ज्ञान व वेदना या सुख केवल तीन प्रकार से । वे औपशमिक नही होते ।

आत्म के इन चारो भावो मे कोई तो ऐसा है जो सादि सान्त है । कोई अनादि सान्त है, कोई सादि अनन्त है । पर अनादि अनन्त कोई नही है । अथात् कोई भाव तो ऐसा है कि वह पहिले तो था नही फिर उत्पन्न हो गया, फिर विनष्ट हो गया फिर कुछ समय पश्चात उत्पन्न हो गया । अर्थात जिस का आदि भी हो ओर अन्त भी हो वह

तो सादि सान्त है । कोई भाव ऐसा है जो पहिले से चला आता है, कभी पैदा नही हुआ था परन्तु विनष्ट अवश्य हो जाता है, ऐसे भावो को अनादि-सान्त कहते है । कोई भाव ऐसा है जो पेदा होकर फिर कभी विनष्ट नही होता, उसे सादि अनन्त कहते हे । सो औदयिक भाव तो अनादि सान्त है तथा सादि सान्त भी औपशमिक भाव सादि सान्त ही है । क्षायिक भाव सादि अनन्त ही है । और क्षायोपशमिक भाव सादि सान्त व अनादि सान्त दोनों है । ज्ञान का क्षायोपशमिक भाव अनादि सान्त है तथा शेष गुणों का सादि सान्त ।

क्यों कि इन चारों में आदि व अन्त की अपेक्षाये पडती है इसलिये इन्हें उत्पन्न ध्वसी भाव कहा जाता है । इसी से यह पर्याय रूप है, शक्ति सामान्य रूप या गुण रूप नही है । क्योकि यह चारो ही भाव अन्य वाह्य पदार्थो के आश्रय के सद्भाव या अभाव से उत्पन्न होते हें इसलिये इन्हे पराश्रित या पर सापेक्ष भाव कहा जाता है । जैसे कि क्रोध भाव, बिना किसी दूसरे व्यक्ति की ओर लक्ष्य ले जाय उत्पन्न नही हो सकता । हिताहित का विवेक भी या तो लोक के किसी पदार्थ के ग्रहण की ओर लक्ष्य ले जाकर उत्पन्न होता है, या उस पदार्थ को त्यागने के प्रति लक्ष्य ले जाकर उत्पन्न होता है । और इस प्रकार सर्व अशुद्ध भाव तो किसी पदार्थ का आश्रय लेने से तथा सर्व शुद्ध भाव उस उस पदार्थ का आश्रय छोडने से उत्पन्न होते है । शुद्धाशुद्ध भाव किंचित ग्रहण व किंचित त्याग से उत्पन्न होते है । इसलिये ये चारो ही भाव पर सापेक्ष है । अथवा कर्मों के उदय व क्षय आदि की अपेक्षा रखते हैं, इसलिये पर सापेक्ष है । कर्मो के उदय से अर्थात् उनके जागृत रहने से होवे सो औदयिक, कर्मों के क्षय अर्थात् विदग्ध हो जाने से उत्पन्न हो सो क्षायिक, और कर्मों के क्षयोपशम से अर्थात् किंचित दब जाने से व किंचित जागृत रहने से उत्पन्न हो सो क्षायोपशमिक भाव कहलाते है । इसलिये यह चारों पर के सद्भाव या अभाव की अपेक्षा रखते हैं । यद्यपि क्षायिक भाव

जैसेकि सिद्ध प्रभु का पूर्ण वीतराग चारित्र किसी पर पदार्थ का आश्रय ग्रहण करने के रूप या त्याग करने रूप नही है परन्तु इस की उत्पत्ति, पर के त्याग पूर्वक हुई थी, इतना ही इसमे पर सापेक्ष पना है ।

८. पारिणामिक भाव

क्षायिकादि चार भावों को समझ लेने के पश्चात् उस भाव को प्रमुखतः समझना योग्य है, जिसके उपर कि यह चारो भाव नृत्य कर रहे हैं । उसे पारिणामिक भाव कहते हैं । से त्रिकाली वस्तु का स्वभाव समझना, जिसमे कि पर पदार्थ के ग्रहण की यात याग की, निकटता की व दूरता की, कर्मो के उदय की या क्षय की कोई अपेक्षा नही । इसको समझना जरा कठिन पड़ेगा, क्यो कि इसकी त्रिकाली शुध्द भाव के रूप में प्रतीति होती है । शुध्द भाव दो प्रकार के हो जाते है । एक तो पर की अपेक्षा का अभाव होने पर प्रगटे क्षायिक व औपशमिक भाव, और एक वह जिसमे पर की अपेक्षा न थी और न हटी है, जो सदा से शुद्ध था और सदा शुद्ध रहेगा । यहा बड़ा संशय खड़ा हो जाता है और कदाचित भ्रम का कारण भी बन बैठता है । अतः सूक्ष्म दृष्टि से समझने का प्रयत्न करना ।

यह कथन त्रिकाली ध्रुव शक्ति या भाव की अपेक्षा विचारा जाना चाहिये । यदि व्यक्ति पर अर्थात् प्रगट जो अनुभव मे आ रहा है ऐसी पर्याय पर दृष्टि चली गई तो अनिष्ट हो जायेगा । क्योकि या तो यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि राग मे रहते हुये भी आत्मा को शुद्ध कैसे कहा जा सकता है, और या यह अभिमान उत्पन्न हो जायेगा कि मैं तो त्रिकाली शुद्ध हूं अत रागद्वेषादि मेरा अपराध ही नही, मै इन्हे करता ही नही, वर्तमान मे जो देखने मे आता है वह तो भ्रम मात्र है । अतः व्यक्ति और शक्ति का विवेक रखकर ही समझना योग्य है । व्यक्त रूप जितने भी भाव है वह तो सब के सब औदायिकादि चारो मे से ही कोई न कोई हो सकते है ।

जैसे कि पहिले बता दिया गया कि अनुभव सदा पर्याय का हुआ करता है गुणका नही, अर्थात व्यक्ति का होता है शक्ति तो वह है जो इन सब व्यक्तियों के पीछे छिपी बैठी है । दृष्टात पर से समझिये "स्वर्णत्व" यह शब्द सुनकर आप इसे शुद्ध कहेगे या अशुद्ध ? खान मे से निकले स्वर्ण पाषाण मे पडे स्वर्णत्व मे और फासे मे पड़े स्वर्णत्व मे क्या अन्तर है । खोटे सोने मे पड़ा और खरे सोने मे पड़ा स्वर्णत्व क्या भिन्न भिन्न है ? स्वर्णत्व तो जहा भी है स्वर्णत्व है । स्वर्णत्व क्या कभी खोटा हो सकता है ? स्वर्णत्व तो केवल उस भाव विशेष का नाम है जो केवल पीलेपने, चमकदार पने व भारीपने रूप से प्रतीति मे आता है । यह तो भाव वाचक संज्ञा (Abstract Noun) है । इसलिये भले स्वर्ण मे खोट मिलाया जा सकना व निकाला जा सकना सम्भव हो, पर स्वर्णपने मे तो खोट मिलाना निकलना सम्भव नहीं । यदि मै पूछ कि स्वर्ण पने का क्या आकार, तो क्या बतायेगे आप ? क्या इसे फासे की शकल का बतायेगे या कण्ठे की शकल का । फासे या कण्ठे की शकले सोने की तो कही जा सकती है, पर सोने पने की नही । एक तोले के जेवर मे और पांच तोले के जेवर मे सोना तो कम या ज्यादा कहा जा सकता है, पर क्या एक तोले वाले मे सोना पना कम कह सकेगे कभी ? स्वर्ण की एक कणिका मे सोने पने का जो एक सामान्य भाव विद्यमान है वही पांच तोले के जेवर मे है । सोना शुद्ध और अशुद्ध हो सकता है, पर सोने पने का भाव नही । बस इस सोने पने के भाव को, जो अनुमान मे आ सकता है पर व्यक्त नही देखा जा सकता, आप स्वर्ण का परिणामिक भाव या उसकी शक्ति समझे । यह है स्वर्ण का त्रिकाली शुद्धपना । पका कर शुद्ध किये गये सोने की शुद्धता मे और इस त्रिकाली शुद्धता मे महान अन्तर है, क्योंकि वह कृत्रिम है और यह स्वाभाविक वह कार्य है और यह कारण । यदि सोने मे यह सोने पने का स्वभाव न होता तो भट्टी पर चढ़ाने से निकल कैसे पाता ? वही तो निकला है जो स्वभाव रूप से पहिले से उसमे विद्यमान था । भाव वाचक संज्ञा पर से अनुमान लगाया जा

सकता है कि पारिणामिक भाव किसे कहते हैं। वह शक्ति रूप होता है व्यक्ति रूप नही।

इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान गुण ले लीजिय। भले ही आज उस की हीन व्यक्ति हो। हमे ज्ञान अत्यन्त अल्प प्रगट हो परन्तु इसके ज्ञान पने मे क्या कमी है। अर्थात हमारा हीन जानना भी जानना मात्र है और अर्हन्त प्रभू का पूर्ण जानना भी जानना मात्र है। निगोदिया मे भी जानन पना वैसा ही है जैसा कि प्रभु मे। जानन पने में हीनाधिकता या शुद्धता अशुद्धता क्या? वह तो जानन की जाति का एक भाव सामान्य है। वही ज्ञान का परिणामिक भाव समझिये। जो न कभी पर का संयोग लेता है और न छोड़ता है। वह तो शक्ति मात्र है, पर को जानना तो व्यक्ति मे है। जानन भाव क लिय न कोई स्व है और न पर, वह तो जानना मात्र है। वह न कभी शुद्ध होता है न अशुद्ध वह तो त्रिकाली शुद्ध ही है। यहा शुद्ध का अर्थ ठीक ठीक प्रकार समझना। एक शुद्ध तो होता है अशुद्धि को दूर करके उसे तो क्षायिक भाव कहते है। एक शुद्ध होता है निर्पेक्ष, जिसमे न अशुद्धि की अपेक्षा होती है और न शुद्धि की। शब्द एक है और इसमे प्रदर्शित भाव दो, अत. उलझना नही। आगे के प्रकरणों मे शुद्ध शब्द का प्रयोग बहुत करने में आयेगा, कही तो इस त्रिकाली शुद्ध के अर्थ मे और कही उस कृत्रिम शुद्ध के अर्थ मे। अत. वहा शुद्ध-शुद्ध मे विवेक बनाये रखना। क्षायिक शुद्ध को सापेक्ष और पारि-णामिक शुद्ध को निर्पेक्ष ही समझते रहना।

लेखन मे भाव दर्शाया जाना असम्भव है। अतः भाव वाची सज्ञा अर्थात् (Abstract Noun) पर से जो सामान्य भाव पकड़ मे आता है उसे ही आगम भाषा मे पारिणामिक भाव कहते है। क्योंकि यह किसी भी पदार्थ के संयोग व वियोग की अपेक्षा नही रखता अतः यह

सर्वथा निरपेक्ष है । इसमे हानि वृद्धि या शुद्धि अशुद्धि नही होती अतः त्रिकाली शुद्ध है । इसमे सादि अनादि पने की विवक्षा भी नही होती, अत यह कोई पर्याय तो है ही नही । पर इसे गुण भी कह नही सकते । क्योकि जानना और बात है जानने की शक्ति और बात है, और जानन पना और बात है । जानन पने को धारण करने वाली शक्ति का नाम जानन शावित या ज्ञान गुण है । पर जान न पना तो स्वय कोई शक्ति नही । शक्ति तो उसे कहते हैं जो कि कुछ कार्य कर सके, अर्थात जो पर्याय रूप से बदल कर प्रगट हो जाये उसे तो गुण व शक्ति कहते हैं, परन्तु जिसमें प्रगट होने व दब जाने की कोई अपेक्षा ही नही पड़ती हो, उसे शक्ति नही कह सकते वह तो उस शक्ति का सार या abstract है । जैसा कि ऊपर के दृष्टांतों से सिद्ध किया गया । इसके अतिरिक्त भी गर्मी पना, रस पना, इत्यादि जितने भी भाव सामान्य गुणो का सार दर्शाने के लिये, या चिन्मात्र, जड़मात्रादि भाव, अखंड व एक रसरूप वस्तुओ का सार दर्शाने के लिये प्रयुक्त करने मे आते हैं वे सब उन उन गुणों व वस्तुओं के पारिणामिक भाव समझने । ऊपर जिसे शक्ति कहते आये थे, उसे ही यहा और अधिक सूक्ष्म बनाकर शक्ति से भी दूर केवल अखण्डित ध्रुव भाव सामान्य रूप से सिद्ध किया है ।

पारिणामिक भाव के सम्बन्ध में निम्ननियम याद रखनेः—

१ यह वस्तु या गुण का सार मात्र भाव होता है । जैसे कि जानन मात्र या स्वर्णत्व ।

२ इसमे हानि वृद्धि रूप उत्पत्ति व विनाश का प्रश्न करने तक को अवकाश सम्भव नही ।

३ यह त्रिकाली ध्रुव भाव व्यक्त नही होता बल्कि अनुमान के आधार पर प्रतीति मे आ जाता है ।

४ यद्यपि यह स्वयं उत्पत्ति विनाश रूप पर्यायों से अतीत है, पर वस्तु या गुण की प्रत्येक पर्याय मे इस की झलक ओत प्रोत है। यह न हो तो वह वह पर्याय अपने एक जातीय भाव को स्थिर न रख सके।

५ यह शुद्ध व अशुद्ध पने से अतीत त्रिकाली शुद्ध है। इसकी शुद्धता क्षायिक भाव वत अशुद्धि को दूर करके उत्पन्न नही होती। अतः क्षायिक भाव की शुद्धता और इसकी शुद्धता मे महान अन्तर है।

६ यह अन्य किसी भी पदार्थ के संयोग वियोग से तथा अपेक्षाओं से अतीत सर्वथा निर्पेक्ष सहज सिद्ध भाव है।

७ यह स्वभाव रूप है।

६ भावो का स्वामित्व

इस प्रकार आत्म नाम पदार्थ के चार प्रमुख गुणो का, उनकी प्रमुख प्रमुख पर्यायों का, उन पर्यायो की शुद्धता व अशुद्धताक इ, सक्षणिक शुध्दता अशुध्दता के आधार भूत क्षायिक आदि चार भावो का, तथा त्रिकाली ध्रुवभाव समान्य रूप पचम परम पारिणामिक भाव का परिचय देकर, आत्म पदार्थ की धुंधलीसी रूप रेखायें आपके हृदय पर पट बनाने का प्रयत्न किया गया, ताकि आगे आने वाले प्रकरणों मे नयो को लागू करते समय कुछ सुविधा रहे।

यहा तक तो गुणो के आधार पर बात की। अब आत्म पदार्थ रूप अखण्डित वस्तु के आधार पर करकै दर्शाने मे आती है। आत्मा प्रदार्थ सामान्यत तीन प्रकार से विचार ने मे आया है साधारण ससारी आत्मा, सिद्ध आतमा व साधक आत्मा। साधारण ससारी आत्मा मे केवल तीन भाव ही होते है, पारिणामिक, औदायिक व क्षायोपशमिक। परिणामिक तो स्वभाव रूप होने के कारण सब मे है ही।

औदायिक भाव भी चारित्र व श्रध्दा मे विपरीतता रूप से तथा वेदना में दु ख रूप से व्यक्त हो ही रहा है । इन तीनो मे क्षायोपशमिक भाव नही है औदयिक है । प्रश्न होता है कि साधारण जीवो में क्षायोपशमिक भाव क्या है । सो यहां ज्ञान मे क्षयोपशमिक व औदयिक दोनो भाव पाये जाते हैं । जब तक पूर्ण ज्ञान प्रगट होता नही तव तक ज्ञान का कुछ भाग तो व्यक्त रहता है, और कुछ दबा रहता है । कोई भी जीव ऐसा नही जिसमे ज्ञान पूर्ण रूपेण दब गया हो अर्थात् शत प्रतिशत अन्धकार हो । निगोदिया तक मे भी १ प्रतिशत प्रकाश प्रगट रहता अवश्य है, भले वह कुछ कार्यकारी हो या न हो । ज्ञान मे ही यह नित्य व्यक्ताव्यक्त पने की बात लागू होती है, अन्य गुणो मे नही । क्योकि अन्य गुणों मे तो शुध्दता व अशुध्दता का अर्थ अनुरूपता व विपरीतता है, पर ज्ञान सदा ही जानने रूप रहता है । इसका विपरीत परिणमन सम्भव नही । इसकी व्यक्ति मे हीनता अधिकता रहती है, पर अन्य गुणों की व्यक्ति मे हीनता अधिकता नही रहती । वहा तो शुध्द व्यक्ति की हीनता व अशुध्द व्यक्ति की अधिकता या अशुध्दता की हीनता और शुध्द की अधिकता रहती है । पर गुण सामान्य की व्यक्ति की अपेक्षा हीनता अधिकता वहां नही रहती । ज्ञान मे ही वह सम्भव है । अत जितने अंश में ज्ञान प्रगट व्यक्त है वह उस ज्ञान गुण का क्षायोपशमिक भाव है, और जितने अश मे उस की व्यक्ति का अभाव है या अन्धकार है उतने अंश में उसका औदयिक भाव है । इसलिये प्रत्येक संसारी जीव मे ज्ञान के क्षायोपशमिक व औदयिक दोनों भाव विद्यमान रहते है । ज्ञान का पूर्ण औदयिक भाव किसी मे भी नही होता । इसी लिये ससारी जीवों मे तीन भावो का सद्भाव बताया गया ।

सिद्ध जीवों मे पारिणामिक तो है ही । शेष चारों में से केवल क्षायिक भाव है । क्योंकि किसी गुण मे अशुध्दि रूप से या ज्ञान मे हीनता रूप से औदयिक भाव सर्वथा नही । औदयिक के अभाव मे क्षायोप-

शमिक व औपशमिक भी कैसे हो सकते है। क्योंकि जब अशुद्धि है ही नही तो उसका कुछ देर के लिये दबना या उसमे आशिक कमी होने का प्रश्न ही कैसे हो सकता।

हां साधक जीव मे पाचो भाव उपलब्ध हो सकते हैं। पारिणामिक तो है ही। जब तक ज्ञान मे कुछ भी कमी है तब तक वहा औदयिक भाव विद्यमान है। साधक मे वेदना गुण तो पूर्ण शान्त होना सम्भव नही है। हां आशिक शाति आने के कारण से वहा क्षायोपशमिक सुख है। चारित्र व श्रध्दा यह दोनों गुण क्षायिक, औपशमिक या क्षायोपशमिक तीनो प्रकार के हो सकते है। इस प्रकार यथा योग्य रीति से वहा पांचों भावो की व्यक्ति सिध्द है।

१० वस्तु मे पाचो भावो का दर्शन–

अब इन पाचों भावो को यथा योग्य रीति से वस्तु मे या आत्मा मे कैसे पढा जाये सो दृष्टात देकर समझाता हूँ। मेरे पास एक सोने का जेवर है। इसे सुधवाना अभीष्ट है। शोधन करने के लिये इसको गला कर इसमे कुछ चान्दी मिला दी गई। अब यह बजाये सुनहरी के सफेद दीखने लगा। सफेद होते हुये भी इसे हम सोना ही कह रहे हैं। यह तो इसका औदयिक भाव समझिये, क्योकि इसमे पर पदार्थ के संयोग से अत्यन्त तन्मयता-इतनी कि अपना सुनहरी रूप भी खो बैठा, पाई जाती है। अब इसे तेजाब मे डालकर अग्नि पर पकने के लिये रख दिया गया। धीरे धीरे चान्दी अन्य ताम्बे आदि खोट को लेकर तेजाब मे घुलने लगी। जूं जूं वह तेजाब मे घुलने लगी तूं तू सोने की उन सफेद डलियो का रग कुछ कुछ बदलने लगा। पूरा नही बदला। यह उसका क्षायोपशमिक भाव समझिये। कुछ देर के पश्चात चान्दी सारी की सारी तेजाब मे घुल गई उसके साथ साथ और सारा खोट भी घुल गया, और सोने की छोटी छोटी डलिये पृथक पड़ी रह गई। तेजाब निकाल कर पृथक बर्तन मे कर दिया गया। अन्दर पड़ी स्वर्ण की

डलियो को धोकर साफ कर लिया गया । अब इन का रूप लाल पत्थर की बजरी वत दीखता है । यद्यपि अन्दर का खोट सर्वथा निकल गया परन्तु अब भी बाहर मे कुछ कमी है । सो अन्दर की अपेक्षा तो यह पूर्ण शुद्ध है और बाहर की अपेक्षा कुछ अशुद्ध । यहां इसके अन्दर मे तो क्षायिक भाव समझिये । क्योकि खोट का क्षय हो गया है, और बाहर मे औदायिक भाव समझिये । अब इन डलियों को आग पर गलाने के लिये रख दिया । गलने के पश्चात साचे मे भर कर इसका फासा बना दिया गया । अब इसका बाहर का रूप भी सुनहरी व चमकदार हो गया । अन्दर और बाहर दोनों दृष्टियो से यह अब शुध्द है । सो यह इसका पूर्ण क्षायिक भाव समझिये । परन्तु इसके औदयिक, क्षायोपाशमिक व क्षायिक तीनो भावों मे दीखने वाले स्वर्णत्व मे क्या अन्तर पड़ा ? जो स्वर्णत्व पहिली अवस्था मे था वही दूसरी में था और वही अब इस अन्तिम अवस्था मे है । वह तो न अशुध्द हुआ था और न शुध्द हुआ । न चान्दी के साथ संयोग को प्राप्त हो सका था और व सयोग को क्षय कर पाया है । अत. वह तो त्रिकाली शुध्द ही रहा । बस यही स्वर्णत्व इसका पारिणामिक भाव समझिये ।

यदि मै पूछूं कि हार का रूप या शकल क्या है तो तुरन्त उसका फोटो मेरे सामने रख देंगे । यदि पूछू कि फासे का आकार क्या है तो उसका भी फोटो मेरे सामने रख देंगे । पर यदि पूछू कि स्वर्णत्व का आकार क्या है तो उसका कोई फोटो न रख सकेंगे, और कहेगे कि स्वर्णत्व तो भाव वाचक है, उसका आकार हो ही नही सकता, वह तो केवल जाना जा सकता है । इसी प्रकार औदयिक भाव का भी आकार हो सकता है, क्षायिक भाव का भी आकार हो सकता है, पर पारिणामिक भाव का कोई आकार नही हो सकता ।

अब यदि मै पूछूं कि बताइये तो सही कि इस पृथिवी पर कुल ऐसे हार कितने होंगे। तो अनुमान के आधार पर आप कह सकेंगे कि

१० लाख हार होंगे । यदि पूछं कि स्वर्ण इस पृथिवी पर कितना होगा, तो भी अनुमान के आधार पर सारे हारो मे सारे कुंडलो मे सारे अन्य जेवरो व सारे फासों मे दीखने वाले स्वर्ण को जोड़ कर कह सकेंगे, कि लगभग होगा । १० टन सोना सारी पृथिवी पर । यदि पूछू कि बताइयै कुल स्वर्णत्व कितना होगा तो क्या कहेंगे । आप ? स्वर्णत्व का क्या कितना उतना पना ? वह तो एक भाव है । एक रत्ती स्वर्ण मे भी उतना ही, और १० टन स्वर्ण मे भी उतना ही । हार मे भी उतना ही और फासे में भी उतना ही । खोटे स्वर्ण में भी वैसा व उतना ही और खरे स्वर्ण मे भी वैसा व उतना ही ।

वस इसी पर से अनुमान लगा लीजिये कि पारिणामिक भाव एक होता है न अनेक, वह तो एक अनेक की कल्पना से अतीत एक रूप होता है । वह न वजन मे इतना होता है न कितना । वह तो इतने कितने की कल्पना स अतीत अपने जितना ही होता है ।

इसी प्रकार सर्वत्र समझना । पारिणामिक भाव का त्रिकाली शुध्द पना वास्तव मे शुध्दता अशुद्धता की कल्पना से अतीत कोई अवक्तव्य शुद्धता है । यह अनुमान गम्य है शब्द गम्य नही । यह क्षायिक भाव की शुद्धतावत नही है । वह तो अशुद्धता का अभाव करने पर प्रगट हुआ वक्तव्य व दृष्ट भाव है । इसी प्रकार पारिणामिक भाव का एक पना, एक अनेक पने की कल्पना से अतीत कोई अवक्तव्य एक पना है । यह अनुमान गम्य है शब्द गम्य नही । क्षायिक भाव का एक जातीय पना तो अनेक फासो मे दीखने वाला एकी भाव है । सो अनेकता सापेक्ष है । इसी प्रकार अन्य सारी बाते भी इस पारिणामिक भाव मे जब जहा तहां वताने मे आयेगी, तब शब्दो मे ऐसा लगेगा कि यह तो क्षायिक भाव मे भी बताई गई है । परन्तु उनमे का यह महान अन्तर अनुमान मे ले लेना । सर्वत्र य ही समझना कि पारिणामिक भाव मे दर्शाई जाने वाली वे सब बाते अवक्तव्य व व अदृष्ट है, और क्षायिक भाव मे दीखने वाली वही बाते वक्तव्य व

दृष्ट । क्योकि क्षायिक भाव व्यक्ति रूप है, और पारिणामिक भाव शक्ति से भी अतीत एक भाव मात्र ।

आत्मा पदार्थ में यह सर्व भाव इस रूप मे पढे जा सकते है । आप का क्रोध मे भरा आशान्त भाव तथा शरीर सहित का आकार औदयिक भाव है क्योकि अन्य पदार्थों व शरीरादि के सयोग की अपेक्षा रखते है । आपका किञ्चत क्षमा की और झुकता हुआ पर क्रोध अंश मिश्रित कुछ शांत व कुछ अशांत भाव तथा वर्तमान का प्रगटा अधूरा ज्ञान, क्षायोपशमिक भाव है, क्योकि शुद्धता अशुद्धता मिश्रित है । ११ वे गुणस्थान मे जाकर उत्पन्न हुआ, एक क्षण के लिये क्रोध के पूर्ण तय. दबजाने से उपजा पूर्ण क्षमा रूप शांत भाव औपशमिक भाव है । क्योंकि एक क्षण के पश्चात ही पुन. कोई भी सूक्ष्म या स्थूल क्रोध का अंश वहां जागृत हो जायेगा । अर्हंत अवस्था मे प्रगटे पूर्ण क्षमा रूप शांत भाव तथा पूर्ण केवल ज्ञान क्षायिक भाव है, क्योकि अब यह भाव कभी विनष्ट नही होंगे । उन का शरीर सहित का आकार औदयिक भाव है क्योंकि शरीर की अपेक्षा सहित है । सिद्ध अवस्था मे रहा पूर्ण क्षमा रूप शात भाव व केवल ज्ञान तो क्षायिक भाव है ही, पर शरीर रहित का उनके अपने प्रदेशों का शरीर के समान आकार भी उन का क्षायिक भाव है, क्योकि इस आकार मे शरीर की अपेक्षा अब नही रही है । इसी प्रकार अन्य गुणो मे भी यथा योग्य लागू कर लेना । परन्तु इन सब उपरोक्त भावो से अतीत वह शाति का त्रिकाली भाव, जिसमें से कि यह क्षायिक भाव रूप शाति व ज्ञान व्यक्त हुए है, यदि यह न होता तो यह व्यक्ति कहां से प्रगट होती इस अनुमान पर जो जाना जाता है, चारों भावों मे जो व्याप्त है, आत्मा की सब ही अवस्थाओं में जो रहता है, जो न तो औदयिक भाव मे विनष्ट हो पाया और न क्षायिक भाव मे नवीन जागृत हुआ है, जिसमे उत्पत्ति व विनाश का प्रसंग ही नही, ऐसा शांति व जानने पने का सहज स्वभाव आपका पारिणामिक

भाव है। आपके असंख्यात प्रदेश सामान्य, जिसमे आकार की कोई अपेक्षा नही पर जिनके आधार पर आकार व्यक्त होता है, आपका पारिणामिक भाव है। इत्यादि

११ आत्मा की द्रव्य पर्यायो का परिचय

आत्मा को अन्य प्रकार भी पढ़ा जा सकता है। आत्मा अनादि काल से अनंत काल तक का एक रस रूप त्रिकाली अखण्ड पिण्ड रूप वस्तु या द्रव्य है। इस लोक मे यह अनेको रूपो मे पाया जाता है। इन्ही रूपों को इस के भेद प्रभेद कहते है। इसमे ज्ञान, चारित्र, श्रद्धा, वेदना, आदि अनेकों त्रिकाली गुण निवास करते है। यह भी इसके ही भेद या अग कहे जाते है। इन सर्व गुणो की शुद्ध या अशुद्ध अनेको पर्याय उन उन गुणों के भेद या क्षणिक अङ्ग है वे भी इसी के भेद या अङ्ग कहे जाते है। इस प्रकार अनेक प्रकार के नित्य व क्षणिक भेदो का त्रिकाली पुञ्ज व अखण्ड आत्मा एक है।

इन सर्व भेदो को आगम मे भेद शब्द के द्वारा या अङ्ग, अश, खण्ड, विशेषण, लक्षण, तथा धर्म, गुण, पर्याय आदि शब्दो द्वारा कहा गया है। और इन सर्व शब्दो के सामने, इन भेदो के अभेद रूप उस पिण्ड द्रव्य, को क्रमश अभेद शब्द के द्वारा या अङ्गी, अशी, अखण्ड, विशेष्य, लक्ष्य, धर्मी, गुणी पर्यायी आदि शब्दों द्वारा कहा गया है। अर्थात् यदि उस भेद को भेद शब्द के द्वारा कहे तो अभेद पिण्ड रूप द्रव्य को "अभेद" शब्द के द्वारा कहते है, यदि उसे 'अङ्ग' शब्द के द्वारा कहे तो द्रव्य को अङ्गी अर्थात् अगो वाला कहते है। इसी प्रकार भेद को 'अंश' तो द्रव्य को अंशी (अशो वाला), भेद को 'खण्ड' तो द्रव्य को 'अखड' भेद कों विशेषण, तो द्रव्य को 'विशेष्य' (विशषणो द्वारा जिसके प्रति संकेत किया जाय) भेद को 'लक्षण' तो द्रव्य को 'लक्ष्य' (लक्षणो द्वारा जिसको लक्ष्य मे लिया जाये), भेद को 'धर्म' तो द्रव्य को 'धर्मी' भेद को 'गुण' तो द्रव्य को 'गुणी' भेद को पर्याय तो द्रव्य को 'पर्यायी'

तथा अन्य भी तथा योग्य रूप मे इसी प्रकार कहा जाता है। आमने सामने के यह शब्द आगम में जोड़ों के रूप में प्रयोग करने मे आते है। भेद-अभेद, खंड-अखंड पिंड, अंग-अंगी, अश-अशी, गुण, गुणी पर्याय-पर्यायी, धर्म-धर्मी विशेषण-विशेष्य, लक्षण, लक्ष्य इत्यादि ।

भेद दो प्रकार से देखने में आते हैं—द्रव्य में दीखने वाले अर्थात द्रव्य पर्याय और गुणमें दिखने वाले अर्थात् गुण पर्याय । द्रव्य पर्याय और गुण पर्याय का कथन पहिले वाले अधिकार में किया जा चुका है। यहां जीव या आत्मा की द्रव्य पर्यायों का किञ्चित परिचय दे दना योग्य है । अन्य जो जड़ पदार्थ उनमें भी तथा योग्य रूप मे द्रव्य पर्यायों के भेद जान लेना ।

जीव द्रव्य दो रूपों में पाया जाता है मुक्त व ससारी । मुक्त तो एक ही रूप मे पाया जाता है, पर ससारी दो रूपों मे पाया जाता स्थावर व त्रस । स्थावर पाच रूपों मे पाया जाता है पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति । ये सब भी दो दो रूपो मे पाये जाते हे । सूक्ष्म-स्थूल या बादर । त्रस चार रूपों मे पाये जाते है दो इन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय । पञ्चेन्द्रिय दो रूपो मे पाये जाते हैं सज्ञी, असंज्ञी अर्थात मनवाला बिना मनवाला और इसी प्रकार वह वह भेद आगे आगे अपने उत्तर भेदों व रूपों मे निवास करता हुआ अनेक प्रभेदों रूप से पाया जाता है। इस का स्पष्ट भाव निम्न चार्ट पर से ग्रहण किया जा सकता है ।
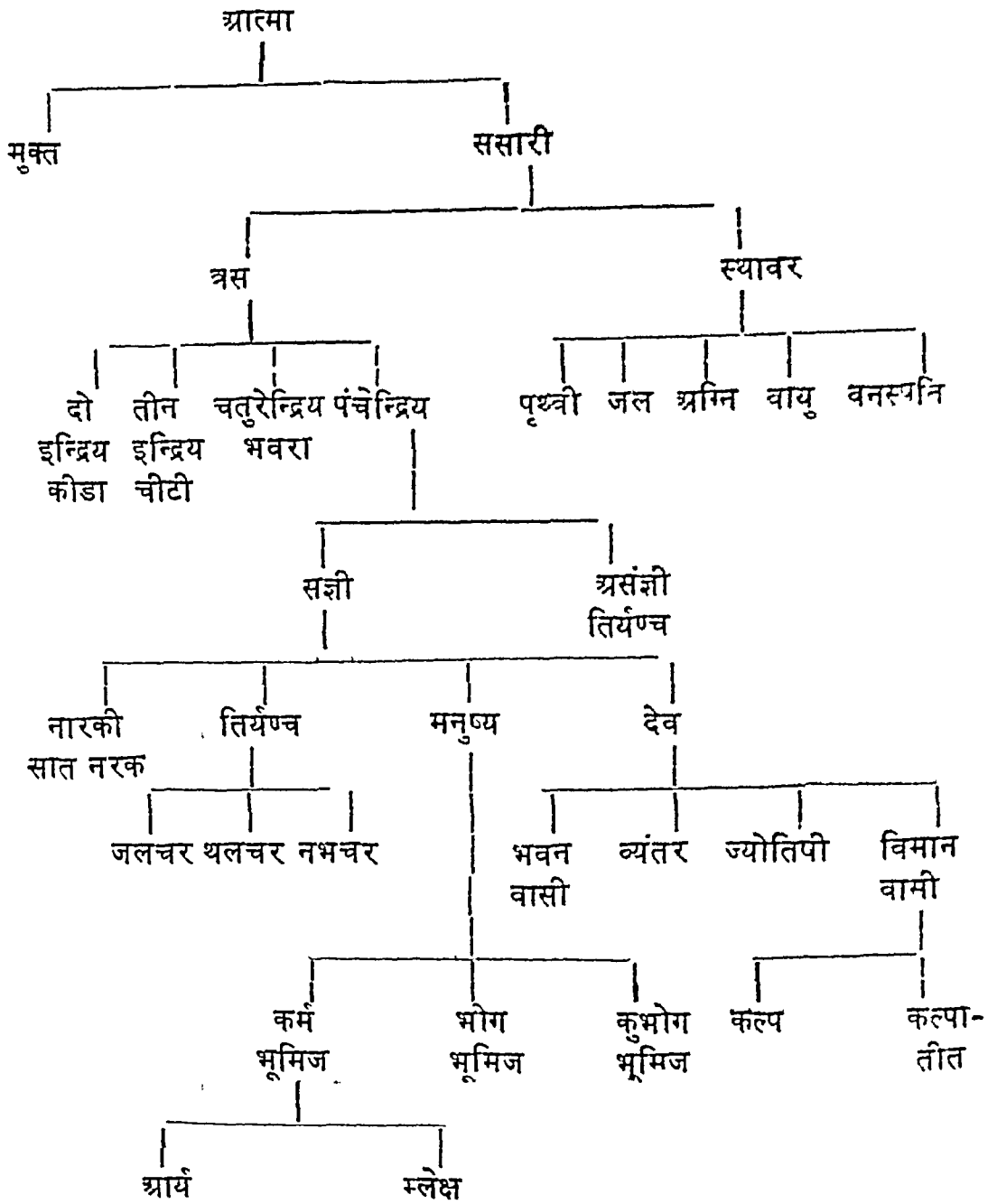
यह उपरोक्त सर्व भेद एक त्रिकाली जीव के पेट मे पड़े है। परन्तु देखने पर प्रतीत होता है, कि इन मे से एक भी भेद को हम जीव का गुण या गुण की पर्याय नही कह सकते, पर उसे जीव द्रव्य की एक अवस्था या पर्याय अवश्य कह सकते है। जैसे ममुष्य को जीव का गुण या ज्ञानादि गुण की पर्याय नही कहा जा सकता, पर जीव की ही एक क्षणिक अवस्था या पर्याय अवश्य कहा जा सकता है। और इस प्रकार पर्याय दो स्थान पर पाई जाती है गुणों मे और

द्रव्य मे भी गुण मे तो ज्ञान की मति, श्रुति आदि, चारित्र की राग वीतरागतादि, श्रद्धा की सम्यक् मिथ्या श्रद्धादि, वेदना की शांति अशांति आदि, ये पर्याय हैं । और द्रव्य मे उपरोक्त सर्व भेद पर्याय हैं ।

पर्याय क्षणिक भाव को कहते है । क्षण भी बड़ा व छोटा हो सकता है। बड़ा तो इतना कि कल्पों लम्बा और छोटा इतना कि एक सैकैन्ड का भी असंख्यातवा भाग । अतः यहां क्षणिक भाव या भेद का अर्थ यह न समझना, कि इस छोटे क्षण वाली अवस्था को ही क्षणिक अवस्था या पर्याय कहते हैं । त्रिकाली की अपेक्षा सर्व ही भेद उस की क्षणिक अवस्थायें हैं क्योंकि वे कभी अवश्य उत्पन्न होती हैं और कभी अवश्य विनश जाती हैं। इन मे कोई अधिक काल तक स्थित रह कर विनशती है और कोई उस छोटे क्षण मात्र के लिये रह कर विनश जाती है । पर क्योंकि विनश जाती है, इस लिये कहा जायगा सबको पर्याय ।

और इस प्रकार मुक्त जीव भले न विनशे पर उत्पन्न अवश्य हुआ है । इसलिये यह त्रिकाली जीव की एक सादि अनन्त पर्याय है । इस का काल जीव सामान्य के अनादी अनत काल की अपेक्षा बहुत छोटा है । ससारी जीव भी इसी प्रकार भले कभी उत्पन्न न हुआ हो पर कदाचित विनश कर मुक्त अवश्य हो सकता है, इसलिये यह त्रिकाली जीव की एक अनादि सान्त पर्याय है । इसका काल भी जीव समान्य के अनादि अनन्त काल की अपेक्षा बहुत छोटा है । पर फिर भी अपने अपने उत्तर भेदो की अपेक्षा इन का काल बहुत्त अधिक लम्बा है । त्रस जीव उत्पन्न होते तथा मरते रहते हुए भी धारा प्रवाही रूप से पुनः पुन. त्रस ही होते रहे, बीच मे कभी स्थावर न हो पाये तो वह काल त्रस जीव का काल कहा जाता है । पर ससारी सामान्य की अपेक्षा तो वह बहुत छोटा है स्थावर जीव भी त्रस वत बराबर मरता और जन्म लेता यदि धारा रूप से पुन. पुनः स्थावर ही होता

रहे, बीच मे त्रस न बने, तो यह काल स्थावर-काल कहलाता है। यह यद्यपि त्रस के काल से बहुत लम्बा है, पर सामान्य ससारी जीव के काल से वहुत छोटा है। इसी प्रकार स्थावर के पृथिवी आदि प्रत्येक भेद का पृथक पृथक धारा रूप काल स्थावर सामान्य से वहुत छोटा है। और दो इन्द्रिय आदि त्रस के प्रत्येक भेद का धारा रूप काल त्रस सामान्य से बहुत छोटा है। आगे भी इसी प्रकार प्रत्येक उत्तर भेद का काल अपने मूल सामान्य भेद की अपेक्षा अधिक अधिक छोटा होता चला जायेगा। यहा तक की मनुष्य का धारा रूप काल अर्थात मर मर कर पुनः पुनः मनुष्य ही बनता रहे तो अनुमानत अधिक से अधिक चार पांच वार ही बन पायेगा। और इस प्रकार मनुष्य का काल लगभग अधिक से अधिक ४०० वर्ष लगा लीजिये। यहा आगम का आधार न लेकर स्थूल रूप से समझाया जा रहा है ऐसा समझना। आगम में कर्मभूमिज व भोगभूमिज मनुष्य व स्त्रियो को मिला कर मनुष्य का सामान्य काल ३ पल्य व ४७ पूर्व कोडि कहा गया है उस की यहां अपेक्षा नही है। यह काल या आगम कथित उसका ३ पल्यादि काल तो अपने पूर्व मे पडे 'सज्ञी' के काल से वहुत छोटा है। और आज दीखने वाले आपके इस भव का काल तो केवल ८० वर्ष ही है। जो उस धारा प्रवाही सामान्य मनुष्य के काल से भी वहुत छोटा है, इस की भी एक युवावस्था का काल केवल ४५ साल (१५-६० तक की आयु वाला) रह जाता है, जो उस एक भव से मी छोटा है। और इस से भो आगे यदि और सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो यह युवावस्था प्रतिक्षण बुढापे की और जा रही है। तब तो इस का एक क्षणिक भेद केवल उस छोटे क्षण जितना ही रह जाता है।

इस प्रकार हमने देखाकि प्रत्येक नीचे नीचे के भेद का काल ऊपर ऊपर के भेद से बराबर अधिकाधिक छोटा होता हुआ अन्त मे एक क्षण मात्र बन बैठा। अतः उन लम्बे कालों में स्थित जीव की

अवस्था या पर्यायों को भी क्षणिक ही कहा जायेगा। जीव द्रव्य के इन क्षणिक भेदो को हम द्रव्य पर्याय कहते है पर्याय तो इसलिये कि यह सर्व भेद क्षणिक है, त्रिकाली नही। और द्रव्य इसलिये कि इनमे से कोई भी भेद जीव के किसी एक गुण की किसी पर्याय विशेष रूप नही है, वल्कि सर्व ही गुणों की उतने लम्बे क्षणो तक टिकने वाली क्षाणिक शुद्ध या अशुद्ध पर्यायो का एक रस रूप पिण्ड है। अर्थात् इन सर्व जीव के भेदो मे किसी न किसीरूप मे ज्ञान, चारित्र, श्रद्धा व वेदना आदि गुण अखण्ड रूप से पाये जाते हैं। इसलिये इन भेदो को द्रव्य पर्याय कहते हैं।

१२ पारिणामिकादि भावो का समन्वय

आत्मा के इन भावो के विशेष स्पष्टीकरणार्थ कुछ शंका समाधान किया जाना यहा आवश्यक है।

(१) **प्रश्नः**— एक अखण्ड वस्तु मे पारिणामिक व औदयिकादि भावो का विवेक कैसे किया जाये ?

उत्तर— द्रव्य के अगों का समन्वय करते हुए पहिले वाले अध्याय मे बताया जा चुका है कि वस्तु की फिल्म बना कर उसे दो ढगो से पढ़ा जा सकता है एक तो पृथक पृथक फोटुओ को देख कर और दूसरे सारी की सारी फिल्म को फैला कर। इसी मे तीसरा ढग और देखिये।

लीजिये पूर्वोक्त २७ फोटो वाली मेरे जीवन की इस फिल्म को फैला लीजिये। देखिये प्रत्येक फोटो मे से छन कर कुछ प्रकाश आ रहा है। किसी फोटो मे से कम और किसी मे से अधिक, किसी मे से किसी आकार का और किसी मे से किसी आकार का। यदि इस प्रकार सामान्य को पढे तो पृथक पृथक फोटुओं मे से छन कर आने वाले उस प्रकाश की जाति मे क्या अन्तर

है ? यदि पहिले फोटो के प्रकाश मे बैठ कर पुस्तक पढ़ना चाहे तो भी वैसे ही पढी जायेगी । और अन्त वाले फोटो के प्रकाश मे पढे तब भी वैसी ही पढ़ी जायेगी । यह बात अवश्य है कि पहिले फोटो से प्रकाश बहुत कम आ रहा है क्योकि वहा काला भाग अधिक है, और अन्त के फोटो से प्रकाश पूरा आ रहा है क्यों कि यहा काला भाग बिल्कुल नही है, पर प्रश्न तो यह है कि पढते समय क्या दोनों मे पृथक पृथक प्रकार के अक्षर दिखाई देगे ? दूसरे प्रकार से भी यह प्रकाश सामान्य देखा जा सकता है । यदि फिल्म को मशीन पर चढा कर मशीन बहुत अधिक तेजी से चला दे, तो पर्दे पर चित्र नही आयेंगे, केवल एक धुन्धला सा स्थिर प्रकाश आकर रह जायेगा, जो आदि से अन्तपर्यन्त जब तक मशीन चलती रहेगी जू का तू बना रहेगा ।

फिल्म मे से आने वाला यह प्रकाश सामान्य मेरी सर्व पर्यायो मे स्थिर रहने वाला चैतन्य सामान्य है । पहिली निगोद अवस्था मे भी वैसा व वही था और अन्त की सिद्ध अवस्था मे भी वैसा व वही है । इस मे कोई अन्तर पडा नही । यह मेरा पारिणामिक भाव है । दूसरे प्रकार से भी सारी पर्यायो को मिला जुलाकर एक मेक कर डाले जो धुधला सा प्रकाश मात्र दिखाई देगा वह पारिणामिक भाव है । भले धुन्धला हो कि स्पष्ट पर है तो प्रकाश ही । यह प्रकाश पना पारिणामिक भाव है, धुन्धला पना नही । इस प्रकार अखण्ड वस्तु मे पारिणामिक भाव पढाया गया ।

अब इसी फिल्म मे औदयिक आदि भाव देखिये । यह जो न० १ से न० २४ तक के भूत कालीन फोटो दिखाई दे रहे है वे सब मेरे औदयिक भाव का प्रदर्शन कर रहे है । नं० २५ मे मुनि के रूप वाला फोटो मेरे क्षायोपशमिक भाव को दर्शा रहा है । नं २६ मे अर्हंत रूप वाला फोटो क्षायिक व औदयिक दोनो भावों को दर्शा रहा है—शरीर

का आकार औदयिक है और अन्तरग शांति का रूप क्षायिक । न० २७ मे सिद्ध के रूप वाला फोटो सर्वथा क्षायिक भाव का प्रतिनिधित्व कर रहा है ।

इस प्रकार हम ने देखा कि परिणामिक भाव रूप प्रकाश सामान्य तो सर्व फोटुओ मे स्थिर रहा, बदला नही, परन्तु औदयिकादि भाव बदल गये है । पारिणामिक भाव सारी की सारी लम्बी फिल्म मे है । पर औदयिकादि कोई एक भाव सारी फिल्म मे नही है । जहां औदयिक है वहां क्षायिक नही, जहां क्षायिक है वहा औदयिकादि नही । अतः यह औदयिकादि भाव तो पर्याय रूप है और उत्पन्न ध्वसी है, इसीसे इन को क्षायिक कहा जा रहा है । पर पारिणामिक भाव त्रिकाली है, उत्पन्न ध्वसी नही है ।

इस प्रकार एक ही पदार्थ की फिल्म मे एक ही समय यह चारो अर्थात् पारिणामिक, औदयिक, क्षायोपशमिक व क्षायिक भाव पढ़े जा सकते है, पर वस्तु मे पाये नही जा सकते है, क्योंकि वहा सब पर्याय एक साथ नही रहती ।

२ प्रश्न – चार भावो का तो कथन किया पर औपशमिक भाव का नही किया ?

उत्तर.– औपशमिक भाव को जान बूझ कर छोड दिया है । इसके कई कारण है । पहिला कारण तो यह है कि यह भाव बहुत थोडे समय तक टिकता है इसलिये इसका दृष्टात दिया जाना बहुत कठिन पड़ता है । दूसरा कारण यह है कि नय प्रकरण मे इसकी मुख्यता नही है । आगम मे कही भी इस भाव पर नय लागू करके नही दिखाई गई है । तीसरा कारण यह है कि यह अपने थोड़े मात्र समय मे क्षायिक वत् अत्यन्त शुद्ध व निमल रहता है, अत शुद्धता की अपेक्षा क्षायिक व औपशमिक मे कोई अन्तर नही । केवल दोनों के काल मे अन्तर है, पर नय विवरण मे काल का ग्रहण नही वस्तु के भाव का ग्रहण है ।

८

—: सप्त भंगी :—

१. सप्त भंग सामान्य का परिचय, २. वस्तु के वक्तव्य अवक्तव्य दो अंग, ३. स्ववपर चतुष्टय,४. अस्ति नास्ति भंग, ५. सात भंगों की उत्पत्ति ६. सात भंगों की सार्थकता, ७. सात भंगों के लक्षण ८. सप्त भंगी के कारण प्रयोजनादि, ९. शंका समाधान

१. सप्त भग सामान्य का परिचय

जिन वाणी की एक एक बात अलौकिक है। तत्वो के प्रत्यक्ष से अति दूर तत्सम्बन्धी विवाद द्रह मे घुमेर खाते लौकिक जनों के कोलाहल को शान्त करने के लिये, तत्वों के अन्त: स्वरूप में डुवकी लगाकर महान् पुरुषों के द्वारा निकाला हुआ यह सप्त भग सिद्धात भी अलौकिक है। इसकी भूमिका कल्पना नही मनोविज्ञान है। लौकिक व अलौकिक किसी भी विषय

का ज्ञान करते या कराते हुए यह सात भंग स्वत: उत्पन्न हो जाते है। अब तक वस्तु के अनेकों अगों का तथा सामान्य व विशेष का स्वरूप दर्शाया गया। इन अपने सर्व अगोपांगो से समवेत वस्तु सदा ही इनमे स्थित रहती है, न तो इनमे से किसी भी विशेष का त्याग कर सकती है, और न किसी अन्य वस्तु के किसी एक भी सूक्ष्म या स्थूल विशेप को ग्रहण कर सकती है। वस्तु की इस स्वतंत्रता को दर्शाना ही इस सिद्धांत का प्रयोजन है ।

यद्यपि लोक मे कोई विषय ऐसा नही कि जिनका ज्ञान इन सातों बातो से निर्पेक्ष हो रहा हो, परन्तु इन्द्रिय प्रत्यक्ष व सुलभ होने के कारण उस ज्ञान मे इन सात बातो का स्थूल दृष्टि से साक्षात हो नही पाता। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तो ये सातो बाते उस साधारण प्रति दिन के ज्ञान मे भी अवश्य दिखाई देती है ।

इसका कारण है वस्तु का अनेक धर्मों से युगपत स्पर्श और उन सब को युगपत कह सकने मे असमर्थ वचन और इन दोनो का परस्पर वाच्य वाचक सम्बन्ध जिस प्रकार वस्तु मे अनेक धर्मो की युगपत सत्ता है उस प्रकार की युगपत वाचकता वचन मे नही, और जिस प्रकार उन्ही धर्मो की क्रमिक वाचकता वचन मे है उस प्रकार उनकी क्रमिक सत्ता वस्तु मे पाई नही जाती ।

घट या स्वर्णादि पदार्थो के दृष्टांतों के आधार पर शीघ्र ही इन सातों की व्याख्या हो जाने के कारण ऐसा प्रतीत होने लगता है कि ये भग इतने आवश्यक नही जितना कि इन्हे कहा जाता है, यदि इनको आवश्यक भी माना जाये तो केवल एक वा दो भगों से ही काम चल सकता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नही है। प्रत्येक बात को जानने के लिये ये सात ही भग उत्पन्न होते है, हीनाधिक नही। यह बात तब प्रतीति मे आती है जबकि लक्ष्य पदार्थ अब तक सर्वथा अदृष्ट, अतीन्द्रिय, अननुभूत व अश्रुत या बिना जाना देखा रहा हो। वे सात भग

ये है–१. अस्ति, २. नास्ति, ३. अस्ति नास्ति, ४. अवक्तव्य, ५. अस्ति-अवक्तव्य, ६ नास्ति अवक्तव्य, ७ अस्ति नास्ति अवक्तव्य ।

२. वस्तु के वक्तव्य व अवक्तव्य दो अग

कल्पना करो कि ऐसे अज्ञात पदार्थ का ज्ञान अत्यन्त अनिष्णात श्रोता को कराने के लिये कोई भी ज्ञानी वक्ता क्या करेगा ? वह जानता है कि प्रत्येक पदार्थ की भाति इसमे भी दो मुख्य अश विद्यमान है--एक वक्तव्य और दूसरा अवक्तव्य । वक्तव्य अश के ज्ञान के बिना अवक्तव्य अंश की पकड़ होनी असम्भव है, और अश अवक्तव्य अंश के भान बिना वक्तव्य अश का ज्ञान निरर्थक है । इसी कारण प्रत्येक विज्ञान के दो अंग है एक सिद्धांतिक (Theoritical) और दूसरा अनुसन्धानिक (Practical) दोनो मे सिद्धातिक अग वक्तव्य है तथा सुना जाने योग्य भी, और अनुसंधानिक अग अवक्तव्य पर अनुभवनीय है । यह अवक्तव्य अग भी "अवक्तव्य है" ऐसे वचन द्वारा प्रगट किया जा सकने के कारण कथाचित वक्तव्य है ।

यहां यह जो पहिला वक्तव्य अग है वह दो प्रकार का है–एक तो विवक्षित पदार्थ के स्व धर्मो की उस उस रूप से व्याख्या स्वरूप दूसरा उन्ही धर्मो के समान अन्य पदार्थों के धर्मो के निषेध स्वरूप जैसे कि "यह वस्त्र लाल है काला नही' ऐसा कहना । पहिले का नाम अस्ति धर्म है और दूसरे का नास्ति ।

३. स्व व पर चतुष्टय

वस्तु के स्व चतुष्टय का स्वरूप पहिले दर्शाया जा चुका है । द्रव्य गुण व पर्याय आदि वस्तु के सर्व विशेषों का इसी मे अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये कथन पद्धति को सरल वनाने के लिये, सामान्य व विशेष वस्तु का कथन करते समय, वस्तु के इस स्वचतुष्टय का आश्रय लेना ही पर्याप्त है । गुण व पर्यायों का अधिष्ठान 'द्रव्य' कहलाता है, उस द्रव्य का संस्थान या आकृति उसका

स्व क्षेत्र है, उसकी पर्यायें ही उसका स्वकाल है और उसके गुण उसका स्व-भाव है। वस्तु इस चतुष्टय से गुम्फित एक रस रूप है। कहने मात्र के लिये ही ये चार है, वास्तव मे एक ही है, क्योंकि तीन काल मे कभी ये बिखर कर वस्तु से पृथक नही हो सकते, या यों कह लीजिये कि इससे शून्य वस्तु असत् है।

लोक मे अनन्तों वस्तुये है-जो सर्व चेतन व अचेतन इन दो प्रमुख जातियों मे या मूर्त व अमूर्त इन दो प्रमुख जातियों मे विभाजित की जा सकती है। वे सर्व ही अपने अपने विशेषों मे अवस्थित रहने के कारण अपने अपने ही चतुष्टय की स्वामी है। इसलिये वस्तु का अपना एक चतुष्टय तो उसका स्व चतुष्टय है और अपने से अन्य सर्व वस्तुओ के अनेक चतुष्टय उसके लिये अन्य चतुष्टय है या पर चतुष्टय है। जैसे कि मैं और आप दोनों ही जीव द्रव्य है, दोनों ही सस्थान वाले है, दोनो ही पर्याय वाले है, और दोनों ही गुण पिण्ड हैं। परन्तु आप आप ही है और मै मैं ही हूँ, आप का सस्थान आपका ही है और मेरा सस्थान मेरा ही है, आप के रागादि विकल्प आपके ही है और मेरे रागादि बिकल्प मेरे ही है, आपके ज्ञानादि गुण आप के ही है और मेरे ज्ञानादि गुण मेरे ही है। आप कभी भी मै रूप से नही है और मैं कभी आप रूप से नहीं हूँ, इसी प्रकार आपका संस्थान रागादि व ज्ञानादि कभी मेरे नही है और मेरा संस्थान रागादि व ज्ञानादि कभी आपके नही है। यद्यपि आपका यह चतुष्टय बिल्कुल मेरी जाति का है परन्तु मेरे वाला ही नही है और इसी प्रकार मेरा भी चतुष्टय आपके वाला नही है। इसलिये आपका चतुष्टय आपके लिये तो स्व चतुष्टय है पर मेरे लिये वही पर चतुष्टय है, तथा मेरा चतुष्टय मेरे लिये तो स्वचतुष्टय है और आपके लिये वही पर चतुष्टय है। इसी प्रकार जगत के सर्व पदार्थों मे लागू करना।

४ अस्ति नास्ति भग

उपरोक्त प्रकार प्रत्येक पदार्थ की सत्ता तभी सिद्ध की जा सकती है, जबकि उस पदार्थ को चारो ही अपेक्षाओं से अन्य पदार्थ से व्यावृत्त कर दिया जाये, अन्यथा तो पदार्थो का परस्पर मे सम्मेल हो जाने के कारण अथवा दोनो के चतुष्टयों में परस्पर आदान प्रदान हो जाने के कारण सर्व सकर व सर्व शून्य दोषो का प्रसग प्राप्त होता है। अर्थात् यदि पदार्थ के लिये अपने ही चतुष्टय मे रहने का नियम न हो तो कदाचित यह संभव है, कि वह अन्य के चतुष्टय को छीन ले और अपना चतुष्टय किसी अन्य को दे दे। और यदि ऐसा हो जाये तो मे तो आप वन जाऊँ और आप मैं वन जाये, अथवा जीव तो जड बन जाये और जड़ जीव वन जाये। इस प्रकार लोक मे पदार्थो की सत्ता की तथा स्वभाव की कोई भी निश्चित व्यवस्था न रह जाये। भोजन करते करते ही जिव्हा पर पडा हुआ ग्रास चूहा बनकर जिव्हा को काट खाये। परन्तु न तो ऐसा कभी हुआ है कि और न हो सकता है।

इसी बात को एक सिद्धात के रूप मे यदि कहने लगू तो ऐसा कहूगा, कि प्रत्येक पदार्थ स्वचतुष्टय मे ही अवस्थित है, पर चतुष्टय मे नही, अथवा स्व चतुष्टय ही उसके लिये सत् स्वरूप है पर चतुष्टय नही, अथवा स्व चतुष्टय की अपेक्षा ही उस वस्तु का अस्तित्व है, पर चतुष्ट को अपेक्षा नही। या यो कह लीजिये कि स्व चतुष्टय की अपेक्षा तो वह और उसकी अपेक्षा स्व चतुष्टय तो अस्तित्व रूप है या अस्तित्व स्वभावी है, और पर चतुष्टय की अपेक्षा वह और उसकी अपेक्षा पर चतुष्टय नास्तित्व रूप है या नास्तित्व स्वभावी है। उदाहरणार्थ आप अपने स्व चतुष्टय की अपेक्षा तो अस्तित्व रूप हे और मेरे चतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्व रूप हैं। यदि दोनों ही चतुष्टयो की अपेक्षा आप अस्तित्व रूप या अस्तित्व स्वभावी होगे तो हम दो न होकर निश्चय से एक ही हो जायेगे, और इस प्रकार सकल व्यवस्था विच्छिन्न हो जायेगी।

इस सर्व कथन पर से यह तात्पर्य निकला कि वस्तु मे दो विरोधी धर्म विद्यमान है-अस्तित्व धर्म व नास्तित्व धर्म । अर्थात वस्तु सर्वथा सत्ता स्वरूप ही हो ऐसा नही है वह किसी अपेक्षा असत् भी है। यहां यह शंका करनी योग्य नही कि वस्तु को असत् मानने पर तो उसके अभाव का प्रसग होगा, अथवा एक ही स्थान पर, विरोध को प्राप्त ये अस्तित्व व नास्तित्व दो धर्म परस्पर मे लड़कर एक दूसरे का विनाश कर देंगे, और वस्तु शून्य मात्रा बनकर रह जायेगी । क्योकि यहां जिन विरोधी धर्मो की स्थापना की गई है वह दो भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से की गई है, एक ही अपेक्षा से नही । अर्थात अस्तित्व तो स्व चतुष्टय की अपेक्षा । यदि अस्तित्व व नास्तित्व दोनो ही स्व चतुष्टय की या पर चतुष्टय की अपेक्षा कहे गये होते तो अवश्य दोनों मे झगडा हो जाता । दृष्टि भेद से दोनो धर्म पढे जा सकते है, परन्तु स्थूल बुद्धि से नही ।

उपरोक्त सिद्धान्त के आश्रय पर जब हम यह कहने जाते है कि घट तो 'घट' ही है 'पट' नही, या घट स्व चतुष्टय की अपेक्षा ही अस्तित्व रूप है, परन्तु पट की अपेक्षा तो वह नास्तित्व रूप ही है, तब स्वत ही ऐसा सा लगने लगता है कि घट का अस्तित्व दर्शाना मात्र ही पर्याप्त था, पट का नास्तित्व कहने की क्या आवश्यकता ? क्योकि घट का अस्तित्व ही स्वय पट के नास्तित्व स्वरूप है । 'यहा प्रकाश है' ऐसा कहने मात्र से ही उस स्थल पर अन्धकार का अभाव सिद्ध हो जाता है, तब उसे अर्थात नास्तित्व को भी पृथक से कहना वाक् गौरव के अतिरिक्त और क्या है ? सो ऐसी आशका करनी योग्य नही, क्योंकि भले ही साधारण तथा क्षेत्र व भाव की अपेक्षा पृथक पृथक विषयों मे उसकी कोई आवश्यकता न पड़ती हो. परन्तु विशेष तथा क्षेत्र व भाव की अपेक्षा एक या समान दीखने वाले अपृथक या पृथक पृथक विषयों मे उसकी आवश्यकता अवश्य पड़ती है । जैसे कि घट व पट आदि, क्षेत्र की अपेक्षा पृथक पृथक पदार्थों मे

बिना कहे भी एक की दूसरे मे नास्ति का ग्रहण हो जाता है, परन्तु जीव व शरीर या खोटे स्वर्ण मे रहने वाला स्वर्ण व ताम्बा, ऐसे जो क्षेत्र से अपृथक पदार्थ है, उनमे बिना बताये किसी अनिष्णात व्यक्ति को, उनकी एक दूसरे में नास्ति का भान होना असम्भव है। इसी प्रकार घट व पट ये दोनों तो भाव या स्वरूप की अपेक्षा भी भिन्न है क्षेत्र की अपेक्षा भी पुथक पृथक है ? अत: इन मे तो बिना कहे भी पृथकता का ज्ञान हो जाता है, परन्तु स्वर्ण व पीतल या ऐसे ही अन्य पदार्थ जो स्वरूप की अपेक्षा समान दिखते है, उनमे बिना बताये किसी अनिष्णात व्यक्ति को स्वरूप की पृथकता का ज्ञान कैसे हो सकता है । स्वर्ण के पीतादि गुणों का परिचय पा लेने पर भी वह पीतल मे स्वर्ण के भ्रम को कैसे दूर कर सकता है, क्योकि पीतल भी स्वर्ण वत् पीला है।

अत एक ही जाति के अनेक गुणों मे तथा मिश्रित पदार्थों के भिन्न भिन्न गुणो मे परस्पर व्यतिरेक बताये बिना विवक्षित पदार्थ का अविवक्षित पदार्थ से पृथक्करण करना दुस्साध्य है। ऐसा न होने के कारण ही अनभिज्ञ व्यक्तियो के द्वारा पीतल व स्वर्ण मे तथा शुद्ध व अशुद्ध स्वर्ण मे भेद देखना अत्यन्त कठिन है। अत. किसी भी पदार्थ की स्पष्ट सत्ता का भाव तभी सम्भव है, जबकि उससे उपरोक्त प्रकार अस्तित्व व नास्तित्व दोनो धर्म स्वीकार किये जाये।

ये अस्तित्व व नास्तित्व दो धर्म ही मूल है क्योंकि अगले पांच का आधार यही हे तथा यही वक्तव्य भी हैं क्योंकि स्व व पर की अपेक्षा से विकल्पों को ग्रहण करने वाले हैं। इन दोनों धर्मों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जिस प्रकार स्व पर चतुष्टय पर लागू करके परस्पर विरोधी अस्ति व नास्ति स्वभाव वाली वस्तु सिद्ध होती है, उसी प्रकार अपने ही अन्दर मे रहने वाले सामान्य व विशेष इन दोनो अगों मे भी परस्पर विरोधी धर्म वाली वस्तु देखी जा सकती है। स्व द्रव्य का सामान्य भाव देखने पर वह

अभेद है और गुण पर्यायादि विशेष भाव देखने पर वह भेद रूप है। इस-लिये वह भेदाभेदात्मक है। स्व क्षेत्र में सामान्य भाव को देखने पर वह अखड है और उसी के विशेष प्रदेश देखने पर वह खड रूप है। इसलिये वह खडिताखडित है। स्वकाल मे सामान्य भाव को देखने पर वह नित्य है और उसी के बिशेष काल या पर्यायो को देखने पर वह अनित्य है। इसलिये वह नित्यानित्य है। स्वभाव मे सामान्य भाव को देखने पर वह स्वलक्षण भूत एक स्वभावी है और उसी के विशेष गुण देखने पर वह अनेक स्वभावी है। इसलिये वह एकानेक स्वभावी है। इस प्रकार वस्तु मे अस्ति-नास्ति, भेद-अभेद, खंड-अखड, नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि अनेकों विरोधी धर्म एक ही स्थान में व एक ही काल मे देखे जा सकते है। इन सब विरोधी धर्मों का प्रतिनिधित्व एक अस्ति-नास्ति कररहा है।

५. अवक्तव्य भंग

वक्तव्य भंग के दो भेदो (अस्ति व नस्ति) का कथन कर दिया गया अब दूसरे अवक्तव्य भंग को भी बताता हूँ। वस्तु मे दो प्रकार से अवक्तव्यता देखी जा सकती है-एक तो उसके एक रस रूप अखड स्वाद की तरफ से, और दूसरे कथन क्रम की असमर्थता के कारण से। इन दोनो मे पहिला भाव अर्थात वस्तु का अखड स्वरूप क्योकि अनेकान्तात्मक है, इसलिये जाना तो जा सकता है पर कहा नही जा सकता, जैसे जीरे के पानी का अखड स्वाद। दूसरी अवक्तव्यता कथन क्रम की असमर्थता के कारण से है। अस्ति नास्ति भगो का वर्णन करते हुए वस्तु मे अस्तित्व और नास्ति-त्व नाम के दो विरोधी धर्मो की स्थापना कर दी गई। ये दोनों धर्म वस्तु मे युगपत पाये जाते है, परन्तु युगपत कहे नही जा सकते। क्रम पूर्वक ही कहे जा सकते है, परन्तु वस्तु मे आगे पीछे क्रम रूप नही है। वस्तु के सम्बन्ध मे न उसे केवल अस्ति कहने से काम चलता है। और न केवल नास्ति। ऐसा कोई शब्द नही जो अकेला दो विरोधी धर्मों को व्यक्त कर सके, इसलिये कोई भी शब्द पूर्णरूपेण वस्तु स्वरूप

का प्रतिपादन करने मे समर्थ नही है । इसी लिये वह अवक्तव्य है, या यो कह लीजिये कि उसमे अवक्तव्यता नाम का धर्म है ।

६ सात भगो की उत्पत्ति

ये तीनो अस्ति नास्ति व अवक्तव्य (अनुभवनीय) अग वस्तु मे युगपत पाये जाते है । यद्यपि वस्तु का स्वभाव तो इन तीनो अगो मे समाप्त हो जाता है परन्तु उसका ज्ञान कराने मे प्रवृत्त हुए वचन क्रम मे इन तोनों के ही पूर्वोक्त सात भग बन जाते है । वह कैसे सो ही दर्शाने मे आता है ।

कल्पना करो किसी ऐसे विषय की (जैसे आत्मा) जो अतीन्द्रिय है, जिसका या जिसके किसी भी कार्य का साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा कराया जाना असम्भव है । उसके सम्बन्ध मे कोई ज्ञानी वक्ता व्याख्या करने लगता है, और विधि निषेध रूप से उसके वक्तव्य अगों की व्याख्या करते हुए उसे महीनों या सालो बीत जाते है ।

इस अन्तराल मे अनेको पुराने श्रोता किसी लौकिक कार्य वश, या निराशा वश, या प्रमाद वश या व्याकुलता वश व्याख्या को पूरी सुने बिना बीच मे ही चले जाते है । और अनकों नये नये श्रोता बीच बीच मे आकर उसे सुनने लगते है । इन सब श्रोताओं को उनके द्वारा सुने हुए अगों की अपेक्षा यदि श्रेणियो मे विभाजित करे तो वे सात श्रेणी ही बनेगी, छ या आठ नही । पहिली श्रेणी मे वे श्रोता आयेगे जिन्हों ने केवल अस्ति अग ही सुना है, नास्ति व अवक्तव्य अग नही । दूसरी श्रेणी वालो ने केवल नास्ति अग सुना है शेष दो अंग नही । तीसरी श्रेणी वालो ने "अवक्तव्य है, केवल अनुभव गोचर है" इस प्रकार की ही बात सुन ली है, शेष दो नही । यह तीन तो एक सयोगी श्रेणिया होती हैं ।

तीन द्वि सयोगी श्रेणिया बनती है पहिली वह जिसने अस्ति व नास्ति अंग सुने हैं और अवक्तव्य अंग से सर्वथा अनभिज्ञ रही है ।

दूसरी वह जिसने अस्ति व अवक्तव्य अंग सुने हैं पर नास्ति अंग का परिचय नही पाया है। तीसरा वह जिसने नास्ति व अवक्तव्य अग सुने है पर अस्ति अग का परिचय नही पाया है।

एक श्रेणी त्रि संयोगी श्रोताओं की भी है जिन्हों ने तीनो बाते पूरी की पूरी सुनी है।

अब यदि विचार करे तो इन श्रेणियो मे से पहिली छ: श्रेणिया वस्तु स्वरूप से इतनी ही दूर हैं जितनी कि वे उस समय थी जब तक कि उन्होने कुछ भी न सुना था। केवल इतना अन्तर अवश्य पड़ा है कि ये अब उस विषय मे विवाद करने के योग्य हो गये है। परन्तु सातवी श्रेणी मे स्थित व्यक्ति वस्तु स्वरूप के अत्यन्त निकट पहुँच चुका है। वह उपरोक्त विवाद मे न पड़कर उसको साक्षात रूप जानने के लिये अवक्तव्य अंग सम्बन्धी अनुसंधान मे जुट जाता है, अर्थात अभेद वस्तु का वास्तविक स्वरूप क्या है यह जानने के लिये उद्यत हो जाता है।

उसने भी यद्यपि "एक अग अवक्तव्य है" ऐसी बात सुनी अवश्य है परन्तु जब तक उस अवक्तव्य या अनुभवनीय अग का अनुसधान द्वारा प्रत्यक्ष कर नही लेता तब तक वह भी वास्तव मे अस्ति नास्ति वाले द्वि,सयोगी भग मे ही समाविष्ट है। अन्तर केवल इतना है कि द्वि संयोगी अग वाला तो अवक्तव्य अंगो से बिल्कुल अपरिचित रहने के कारण उतने मात्रा मे वस्तु स्वरूप का अत समझ लेता है, अतः वह तो अनुसंधान करता ही नही, पर यह दूसरा जिसने उन दो अगो के अतिरिक्त इस अवक्तव्य अंग की बात भी शब्दो मे सुनी है, वह वस्तु स्वरूप का उतने मात्र मे ही अन्त समझ कर सन्तुष्ट नही होता, पर कुछ और भी अदृष्ट बात जानने के लिये अनुसंधान मे प्रवृत्ति करता है। और इस प्रकार उद्यम पूर्वक अनुसंधान मे सफल

हो जाने पर वास्तविक त्रि सयोगी श्रेणी मे कदाचित प्रवेश पा जाता है ।

अस्ति अवक्तव्य व नास्ति अवक्तव्य वाली द्वि सयोगी दो श्रेणियो ने यद्यपि "अवक्तव्य" ऐसी बात सुनी है और अनुसधान के उपाय भी सुने है पर पूर्ण वक्तव्य अग के भान बिना वह उनका सारा ज्ञान निष्फल है । क्योकि ऐसी अवस्था मे वे यदि अनुसधान भी करने लगे तो अन्धकार मे इधर उधर हाथ पाव मारने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकेगे ?

७.सात भंगो की सार्थकता

इतनी बातो को अन्तर मे धारण करके ही वे ज्ञानी वक्ता विवक्षित विषय को प्रारम्भ करने से पहिले, उस अनिष्णात जिज्ञासु श्रोता को इस प्रकार समझाता है कि "भो भव्य ! मै तुम्हे वह दुलर्भ तत्व अवश्य बताऊंगा, परन्तु एक वचन मुझको देना होगा । वह यह कि सम्पूर्ण व्याख्यान व अनुसधान को पूरा किये बिना इसे बीच मे न छोड़ना । यदि तेरा क्षयोपशम अधिक है तो शीघ्र ही तू उस तत्व को जान जायेगा । परन्तु यदि क्षयोपशम हीन है तो अधिक समय लगेगा । इससे निराश मत होना, साहस मत छोडना, तथा इससे पहिले अनेक व्यक्तियो ने जो अधूरी बातों मात्र का ग्रहण किया हुआ है, वे यदि अभिमान वश तुझसे विवाद करने लगे तो उनसे विवाद मत करना । तथा उन्ही छ श्रेणियो मे से किसी व्यक्ति के द्वारा की हुई किसी शका को निवारण करने मे असमर्थ रहो तो भी इस व्याख्या पर अविश्वास न करना । तथा वचन द्वारा क्रम से कहे जाने वाले इन अस्ति नास्ति व अवक्तव्य अगो का ज्ञान मे क्रम न रखना । इन सबको एक रस रूप करके युगपत अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप कों ही ग्रहण करने का प्रयन्त करना । इस प्रकार तुम अवश्यमेव अन्त मे सातवी श्रेणी मे प्रवेश करके इस तत्व के वास्तविक ज्ञाता हो जाओगे ?"

"उस समय उन छ: श्रेणियों को प्राप्त तथा विवाद ग्रस्त उन अज्ञानी जनो के द्वारा उठाये हुए कुतर्कों का स्पष्टीकरण बिना बताये भी तुम्हारे ज्ञान मे स्वत: प्रकाशित हो जायेगा, और तभी तुमको वह आनन्द आयेगा जिसका कथन व्याख्या के बीच मे अनेको बार अवक्तव्य अग के रूप मे कहा जाने वाला है।"

इस प्रकार ऐसा निश्चय हो जाने पर कि अब यह श्रोता उन सातो भागो या श्रेणियों मे स्थित जीवों के भावों को जान गया है तथा इस के कारण इसमे धैर्य व दृढ़ संकल्प जन्म ले चुका है, वह तत्सबन्धी व्याख्या को प्रारम्भ करता है, जिसे सुनकर श्रोता अवश्य ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे सफल हो जाता है।

अत: किसी भी विषय का ज्ञान करने से पहिले इन सातो भगो को अवश्य जानना चाहिये। यद्यपि उपरोक्त दृष्टात मे सात श्रेणियो में स्थित पृथक पृथक व्यक्तियों का कथन करके समझाने मे आया है, परन्तु सातों भगो का निश्चय किये बिना किसी एक जीव मे भी भिन्न भिन्न समयों मे इनमें से ही एक एक करके सातो भग उत्पन्न होने सम्भव है। इन स्थितियो से श्रोता की रक्षा करना ही इस सिद्धान्त का प्रयोजन है।

जैसे कभी अस्ति रूप भग को विचार कर सतुष्ट होने लगता है तथा कभी नास्ति रूप भग के ही विचार मे खो जाता है, कभी दोनो बातो को छोड़ अधवत् अनुसधान मे ही जुटकर वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करता है। कभी क्रम रूप से पृथक पृथक अस्ति नास्ति अंगो का विचार करता हुआ परस्पर मे भासने वाले विरोध की दाह मे जलने लगता है। कभी केवल अस्ति अग के आश्रय पर ही या केवल नास्ति अंग के आश्रय पर ही अनुसंधान करके फल की इच्छा करनेलगता है। और इस प्रकार भिन्न भिन्न समयों मे छहों एकान्त श्रेणियो मे घूमरी

खाता निष्फलता के कारण निराश हुआ उस सर्व व्याख्या को कपोल कल्पना मान बैठता है जब तक यथार्थ रीतयः सातवी 'अस्ति-नास्ति अवक्तव्य' रूप त्रिसयोगी श्रेणी मे प्रवेश नही पाता तव तक आनिष्णात ही रहता है और इस प्रकार अपने तथा वक्ता के परिश्रम को निष्फल करता है ।

परन्तु सात भगो से भली भाति परिचित हो जाने के पश्चात् अल्प तथा अधूरी अवस्था मे, इनमे से किसी भी श्रेणी के विचार के प्रति सदा सावधान रहता हूआ, धैर्य पूर्वक सप्तम श्रेणी को प्राप्त करके ही चैन लेता है ।

७. सातो भगो के लक्षण

अस्ति नास्ति भग बताते हुए यह बात दर्शा दी गई, है कि वस्तु अनेको विरोधी धर्मो की पिण्ड है । इस अनेकान्त वस्तु मे जहा अभेद बैठा है वहा ही भेद भी बैठा है । द्रव्य की अपेक्षा या सामान्य की अपेक्षा अभेद है और गुण व पर्यायो की अपेक्षा या विशेष की अपेक्षा भेद है । जहा एकत्व बैठा है वहां अनेकत्व भी बैठा है । सामान्य रूप से एकत्व है और पर्यायो की अपेक्षा अर्थात् विशेष रूप से अनेकत्व है जैसे एक ही जीव मनुष्य व पशु आदि अनेक रूप होता हुआ पाया जाता है । जहाँ नित्य बैठा है वहा अनित्य भी बैठा है । सामान्य रूप से नित्य है और विशेष रूप से अनित्य है । और इसी प्रकार काल नियमित व अकाल नियमित, कर्मधारा रूप व ज्ञान धारा रूप, नियत व अनियत ईश्वर व अनीश्वर स्वतत्र व परतत्र इत्यादि अनेको दृष्टियो के आधार पर अपनी बुद्धि से वस्तु मे एक ही समय मे अनेको विरोधी युगल पढे जा सकते है । इस प्रकार एक वस्तु मे वस्तु पने को निपजाने वाली परस्पर विरुद्ध शक्ति युगलो को प्रकाशित करने वाला अनेकान्त है ।

साधारणत. सुनने पर यद्यपि इन युगलो मे विरोध दिखाई देता है परन्तु भिन्न भिन्न दृष्टियो या नयो से देखने पर यह सब वस्तु मे

एक ही समय दिखाई अवश्य देते हैं। वस्तु मे यह एक - रस रूप से पड़े है परन्तु वचनों द्वारा क्रम पूर्वक ही कह कर बताये जा सकते है युगपत नही। जिस प्रकार अद्वैत रूप से वस्तु में है उस प्रकार वचन मे नही आते और जिस प्रकार वचन मे आते है उस प्रकार वस्तु मे नही है। यदि कोई पूछे कि क्रम पूर्वक न कह कर मुझे तो किसी ऐसे ढंग से बताइये कि वस्तु के अनुरूप ही सुनने मे आवे क्रम पूर्वक सुनने मे तो उलझन पड़ती है, 'तब आप क्या कहेगे ?' इस प्रकार तो कहा नही जा सकता यही तो कहेगे। बस यहा से ही तीन अंग निकल आये—एक विधि रूप अंग जैसे एक, नित्य, नियति आदि; दूसरा निषेध रूप अंग जैसे अनेक, अनित्य, अनियति आदि तीसरा अवक्तव्य रूप अग। यह तीनों ही सप्त भगी के मूल है, क्योंकि शेष चार इन्ही तीनो के सयोगी भग है।

अस्ति का अर्थ केबल अस्तित्व गुण नही परन्तु वस्तु मे दिखने वाले विधि आत्मक सर्व धर्म है और इसी प्रकार नास्ति का अर्थ निषेधात्मक सर्व धर्म है। कथन को सरल व सम्भव बनाने के लिये विधि के प्रतिनिधि रूप 'अस्ति' तथा निषेध के प्रतिनिधि रूप 'नास्ति' के आधार पर ही सप्त भगी सिद्धान्त की स्थापना की गई है।

स्व चतुष्टय से अस्ति ही है नास्ति नही, और पर चतुष्टय से नास्ति ही है अस्ति नही, सामान्य रूप से नित्य ही है अनित्य नही और विशेष रूप से अनित्य ही है नित्य नही, सामान्य रूप से अभेद ही है भेद नही और विशेष रूप से भेद ही है अभेद नही। इस प्रकार प्रत्येक एक एक धर्म पर दो मूल अगो के आधार पर विधि व निषेध या अस्ति व नास्ति का विकल्प किया जा सकता है। किसी धर्म को दर्शाने के लिये केवल विधि-दर्शाना ही पर्याप्त नही बल्कि उसमें दृढ़ता लाने के लिये उससे विरोधी धर्म का निषेध किया जाना भी साथ साथ आवश्यक है, अन्यथा संशय व अनध्यवसाय का निराकरण नही हो सकता।

बस इसी पर से सातों भंगों के लक्षण निकल आयेः-

१. किसी धर्म को दर्शाने के लिये, "इस अपेक्षा से ऐसा ही है" इस प्रकार कहना अस्ति भग है।

२ उसी धर्म को और दृढ़ करने के लिये उसके विरोधी धर्म का निषेध करते हुए, "ऐसा नही ही है" इस प्रकार कहना नास्ति भंग है।

३. दोनो के आगे पीछे, 'ऐसा ही है ऐसा नहीं है' इस प्रकार कहना अस्ति नास्ति भंग है।

४ युगपत दोनों को एक रस रूप से कहने की असमर्थता अवक्तव्य भंग है।

५. अवक्तव्य कहने से कोई सर्वथा अवक्तव्य न मान वैठे इसलिये 'अवक्तव्य होते हु ए भी अपने अपने धर्म का उस अपेक्षा से अस्तित्व अवश्य है' इस प्रकार कहना अस्ति अवक्तव्य अंग है।

६. इसी प्रकार "अवक्तव्य होते हुए भी अपने अपने से विरोधी धर्मों का उस अपेक्षा से नास्तित्व अवश्य है' इस प्रकार कहना नास्ति अवक्तव्य भंग है।

७. 'यद्यपि युगपत कहा जाना असम्भव है पर क्रम से विधि निषेध द्वारा कहा अवश्य जा सकता है, सर्वथा अवक्तव्य नही है' इस प्रकार कहना सातवा अस्ति नास्ति अवक्तव्य भंग है।

किसी भी उलझी हुई बात को कहने का यह एक वैज्ञानिक ढग

८. सप्त भंगी के कारण प्रयोजनादि

है जो नित्य ही हमारे प्रयोग मे आता है, परन्तु सिद्धांत का विकल्प न होने के कारण क्योंकि हम बुद्धि पूर्वक इन भागों का प्रयोग नही करते है, इसलिये यह

सिद्धांत कुछ अटपटा सा लगता है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। किसी को स्वर्ण की पहिचान बताते समय 'यह स्वर्ण है' इतना कहना ही पर्याप्त नही है बल्कि 'इस हीं के जैसा पीतल होता है पर यह पीतल नही है' ऐसा कहना भी आवश्यक है। यद्यपि जानकार व्यक्तियो को तो बताने के लिये ऐसा कहना नही पड़ता पर अनजान को बताने के लिये अवश्य ऐसा कहना पड़ता है, अन्यथा भय है कि कही वह भूल कर लुट न आये। यही है अस्ति ओर नास्ति भंगों का लौकिक प्रयोग इन्ही दोनों के उपरोक्त रीतयः सात भंग बन जाते है जो भिन्न भिन्न अवसरो पर कथन क्रम में अवश्य आते हैं, विशेषतयः उस समय जब कि अनजान व्यक्ति को किसी वस्तु का परिचय देना अभीष्ट हो। इसलिये यह सिद्धात अध्यात्मिक दिशा मे अत्यन्त उपयोगी है।

यद्यपि अस्ति और नास्ति मे परस्पर विरोध है, पर वस्तुत. ऐसा नही है। विरोध अवश्य हो जाता यदि जिस धर्म को अस्ति कहा जा रहा है उस ही धर्म को नास्ति कहा जाता, परन्तु उससे विरोधी धर्म को नास्ति कहने में विरोध आना असम्भव है। जैसे कि, "अग्नि उष्ण ही है और उष्ण नही ही है" ऐसा कहना तो विरोध को प्राप्त हो जायेगा, परन्तु, "अग्नि ऊष्ण ही है शीतल नही ही है" ऐसा कहना विरोध को प्राप्त नहीं हो सकता बल्कि ज्ञान की दृढ़ता के अर्थ सिद्ध होगा।

यद्यपि अवक्तव्य कहने से "वचन द्वारा बताना असम्भव है" ऐसा घोषित होता है परन्तु ऐसा इस सिद्धांत में से ग्रहण होना सम्भव नही है क्योंकि साथ मे रहने वाले अस्ति अवक्तव्य व नास्ति अवक्तव्य वाले भंग उसको किसी प्रकार वक्तव्य बना देते हैं।

इस प्रकार वक्तव्य भी है और अवक्तव्य भी है ऐसा प्रदर्शन सातवे भंग से हो जाता है।

अत. यह सिद्धात जिज्ञासु जनो के लिये बड़ा उपकारी है। अनन्तों धर्मो पर पृथक पृथक सप्त भंगी लागू की जा सकती है, इसलिये वस्तु मे अनन्त सप्त भगियों की सिद्धि होती है।

वस्तु मे दीखने वाले अनेको परस्पर विरोधी धर्म तो इस सिद्धात की उत्पत्ति का कारण है। क्योकि यदि धर्मो मे परस्पर विरोध न हुआ होता तो इस सिद्धांत का जन्म भी न हुआ होता। वस्तु के उलझे हुए रूप का सरलता से परिचय देना, उसके सम्बन्ध के सशय आदि का निरास करके ज्ञान मे दृढता लाना इस सिद्धात का प्रयोजन है।

६. शका समाधान यहा इस विषय सम्बन्धी कुछ शकाओ का समाधान कर देना योग्य है।

१. शका.—"पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु है ही नही अर्थात नास्तित्व स्वभाव वाली है" इस प्रकार वस्तु का निषेध किया जाना कैसे सम्भव है, क्या जगत मे से उसका अभाव हो गया है ?

उत्तर:– निपेध का अर्थ यहा सर्वथा निपेध नही है, बल्कि विवक्षित विषय मे से उसके अतिरिक्त अन्य विषयो का निपेध है। इसी भाव को सिद्धातिक भाषा मे उपरोक्त प्रकार कहा जाता है। वस्तु मे पर चतुष्टय नही है, या पर चतुष्टय मे यह वस्तु नही है दोनो बाते एकार्थक है। इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु असत् है या नास्ति रूप है। यदि ऐसा न करे तो लोक के सर्व पदार्थ मिलकर एक हो जाये, अर्थात ज्ञान मे उन का पृथक पृथक ग्रहण न हो सके।

२. शंका:– नास्तित्व स्वभाव स्वीकार कर लेने पर उसी वस्तु में रहने वाले अस्तित्व स्वभाव के साथ विरोध आ जायेगा ?

उत्तर:– नही आयेगा, क्योंकि यहा अस्तित्व और नास्तित्व का लक्ष्य एक ही विषय नहीं है, बल्कि भिन्न भिन्न विषय हैं उसी विषय की अपेक्षा अस्तित्व और उसी विषय की अपेक्षा नास्तित्व कहते तो विरोध होता, पर भिन्न भिन्न विषयो पर लागू होने के कारण विरोध नही आता। अस्तित्व का अर्थ है स्व चतुष्टय या अपने स्वभाव की अपेक्षा अस्तित्व और नस्तित्व का अर्थ है पर चतुष्टय या अन्य पदार्थों के स्वभाव की अपेक्षा नास्तित्व । जैसे उष्णता की अपेक्षा तो अग्नि नाम का पदार्थ सत् है, परन्तु शीतलता की अपेक्षा वह असत् है, अर्थात शीतल स्वभाव वाली किसी अग्नि की सत्ता लोक मे नही है। यहा एक ही अग्नि मे अस्ति व नास्ति का विरोध नही है । यदि कहते कि उष्ण स्वभाव की अपेक्षा अग्नि सत् है और उसी उष्ण स्वभाव की अपेक्षा उसकी नास्ति है, तो अवश्य विरोध आता ।

३. शका:–जब दोनों का एक ही अर्थ है, तो दोनों को पृथक पृथक कहना वचन विलास के अतीरिक्त और क्या है ?

उत्तर:–नही भाई ! ऐसा नही है, क्योकि "यह घट है" ऐसा कहने के साथ साथ "यह पट नही है" ऐसा कहने की यद्यपि कोई आवश्यकता व्यवहार मे प्रतीति नही होती, अनुक्त भी उसका स्वय ग्रहण हो जाता है, परन्तु कठिनता तो वहा पडती है, जबकि दूध पानी वत् घुल मिलकर दो पदार्थ एक हो गए हो, और उस एकमेक दिखने वाले पदार्थ मे से विश्लेषण करके किसी एक अभिष्ट पदार्थ को अलग निकालना पडे। और यह कठिनाई और भी बढ जाती है जबकि यह विवक्षित पदार्थ अदृष्ट हो। जैसे कि गाय के थन से निकले हुए शुद्ध दूध मे यदि किसी साधारण व्यक्ति से पूछे, तो क्या उसमे पानी का अस्तित्व स्वीकार करेगा? यही तो कहेगा कि इसमे पानी की एक बूद भी नही है।

अब विचारिये क्या यह ठीक है ? क्या सारा का सारा दूध ही है ? दूध तो सम्भवत: उसमे एक पाव होगा, शेष तो पानी ही है। आप भी चकरा गये होंगे यह सुनकर । पर भाई ? विचार कर देखे तो पता चले कि दूध का तो उसमें उतना ही भाग है जितना कि आग पर रखकर जलाते जलाते शेष रह जाये, अर्थात पावडर मिल्क ही वास्तविक दूध है । जितना कुछ जल गया वह तो पानी है, दूध नही।

वस सेर भर दूध मे दूध को ही स्पष्ट: दर्शाने के लिये यह कहना ही होगा कि इसमे दूध तो एक पाव वाला अंश ही है, शेष वारह छटांक वाला अंश नही, क्योंकि वह दूध नही पानी है। ऐसा कहे बिना यदि केवल इतना कहकर छोड़ दे कि भाई ! यह एक पाव दूध है, या इस बर्तन मे एक पाव दूध है, तो वताइये एक अपरिचित व्यक्ति क्या उलझन मे न पड़ जायेग। ? अरे ! क्या कह रहा है यह, साक्षात एक सेर को एक पाव बता रहा है ? या तो इसका दिमाग खराब हो गया है या मेरा ।

इसलिये मिले जुले पदार्थो मे स्पष्ट पृथकता दर्शाने के लिये विवक्षित पदार्थ की विधि के साथ साथ दूसरे विद्यमान पदार्थो का और यदि आवश्यकता पढे तो अविद्यमान अन्य सर्व पदार्थो का भी निपेध किया जाना अत्यन्त आवश्यक है । अत: ये अस्ति व नास्ति के दोनो ही भग सार्थक है व्यर्थ नही । इस सिद्धांत का हर समय शब्दो मे प्रयोग हुआ ही करे ऐसा आवश्यक नही, परन्तु भावों मे यह विधि निपेध वरावर वना रहता है, और तभी लोक का व्यवहार चलता है । शास्त्रीय अदृष्ट व सूक्ष्म विषयों को जानने के लिये बुद्धि पूर्वक इसका प्रयोग किया जाता है । अभ्यस्त हो जाने पर भावभासन हो जाने के कारण, फिर वहा भी शब्दों मे इसके प्रयोग की आवश्यकता नही । अत यह वाग्विलस मात्र नही है ।

६

नय की स्थापना

१. वक्ता का प्रयोजन, २. नय का लक्षण, ३. अर्थ-ज्ञान व वचन नय, ४. वचन कैसा होना चाहिये, ५. प्रत्येक शब्द एक नय है, ६. नय प्रयोग से लाभ, ७. वस्तु में नय प्रयोग की रीति, ८. नय का उदाहरण लक्षण कारण व प्रयोजन, ९. नयों के मूल भेदों का परिचय, १०. आगम व अध्यात्म पद्धति, ११. नयचार्ट,

१. वक्ता का प्रयोजन

नय दर्पन के प्रकरण के अन्तर्गत अत्यंत जटिल वस्तु का व उसके अस्ति नास्ति आदि अनेको परस्पर विरोधी अगो का परिचय पा लेनेके पश्चात, अब देखना यह है कि किस प्रकार वक्ता बोलते समय प्रयोजन वश, अपने वक्तव्य मे मुख्य गौण व्यवस्था उत्पन्न करके इस विरोध को दूर करता है,

अर्थात एक बात पर जोर देकर दूसरी बात को उस समय दबाने का प्रयत्न करता है। इस अवसर पर श्रोता की दृष्टि भी यदि वक्ता के अनुरूप ही रहे तब तो वह कुछ समझ सकता है, परन्तु यदि श्रोता की दृष्टि किसी दूसरे अग को पढ़ने का प्रयत्न करने लगे, अर्थात वक्ता की दृष्टि के अनुरूप न रहने पाये तो वह उसका प्रयोजन पढने मे असफल रहेगा। अत: उसे वक्ता की वह बात सुनकर या तो कुछ भी समझ नही आयेगा, या उसके हृदय मे वस्तु के अगके स्थान पर वक्ता के प्रति सशय प्रवेश कर जायेगा, और वह आगे सुनने की जिज्ञासा भी खो बैठेगा। इस प्रकार भी हित के स्थान पर अहित हो जाना सम्भव है। अत: नय की स्थापना करते समय यहा यह बता देना आवश्यक है कि वक्ता के द्वारा बोले गये प्रत्येक शब्द मे उसका कोई विशेष प्रयोजन व अभिप्राय छिपा रहता है। श्रोता को उसका परिज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

वक्ता जो कुछ बात करता है या विचारक जो कुछ विचारता है, वह वस्तु को नही बल्कि ज्ञान को देखकर ही बोलता विचारता है। इसलिये कभी तो वह वर्तमान काल सम्बन्धी वस्तु के सम्बन्ध मे कहने लगता है, और कभी भूत या भविष्यत काल सम्बन्धी वस्तु के सम्बन्ध मे। सम्पूर्ण त्रिकाली प्रमाण ज्ञानरूप चित्रण को एक साथ कहने मे असमर्थ, तथा एक साथ समझाना असम्भव होने के कारण, वह कोई एक एक अंग उस सम्पूर्ण मे से निकालकर दिखाने का प्रयत्न करता है। कौनसा अग कब निकालकर दिखाये, यह कोई नियम नही। क्योकि ज्ञान मे पड़े ३० अगो के चित्रण मे कोई आगे पीछे रहने का नियम नही है। एक रसरूप वस्तु मे ऐसा कोई नियम हो भी नही सकता। यह तो वक्ता की मर्जी पर है कि जो भी अंग वह चाहे पहिले कहदे, और जो भी चाहे पीछे कहदे। कथन करने के लिये वास्तव मे उसका कुछ अपना स्वार्थ या प्रयोजन आडे आता है। जैसे कि पाकशाला मे अग्नि जलाते समय तो हाथ सैकने का

विकल्प होता है, और दीपक जलाते समय उसमे हाथ सैकने का विकल्प आपको उत्पन्न नही होता ।

भले आपको ज्ञान मे सब कुछ स्वीकार है, पर यदि पाकशाला मे जाकर मै आप से पूछूं तो आप यही कहेंगे कि "देखो अग्नि की कृपा जो हम आज भोजन पकाने में सफल हो गये है, अग्नि का पाचकगुण महान् है ।" और इसी प्रकार दीपक के निकट ले जाकर पूछूं तो आप कहेगे कि "इसका प्रकाशगुण महान् है ।"

बस इसे ही कहते है वक्ता का प्रयोजन या मुख्य गौण व्यवस्था । जो कुछ भी उस समय वक्ता का अपना स्वार्थ या प्रयोजन होता है, वह उसी के अनुरूप अंग को प्रमुखत ज्ञान मे से निकालकर विचारता या बात करता है । दीपक जलाते हुये यदि दाहकता की मुख्यता रहे तो घर मे आग लगने के भय से दीपक कभी न जला पाये । किसी अंग की मुख्यता के आधार पर ही किसी कार्य विशेष की सिद्धी हुआ करती है, और किसी अग की मुख्यता के आधार पर ही वचन क्रम का निकलना सम्भव है । ऊपर के दृष्टान्त पर से कार्य की सिद्धि वश प्रमुखता दर्शाई गई । अब वचन क्रम में आने वाली प्रमुखता भी देखिये । वक्ता कौनसे अंग को किस समय प्रमुख वना कर कथन करे यह बात उसके अपने प्रयोजन मे छिपी हुई है, और यह प्रयोजन उसके अन्दर श्रोता को देखकर उत्पन्न होता है । श्रोता मे वह जिस अग की कमी देखता है उस समय वह उसी अग को मुख्य करके कथन करने लगता है । भले उस पर श्रोता को दृढ करने के लिये उसे उसके अतिरिक्त शेष अंगों का उस समय निषेध ही क्यों न करना पड़े । परन्तु बाहर मे दीखने वाला वह निषेध निषेध नही होता, क्योंकि ज्ञान मे उसका बराबर स्वीकार पड़ा रहता है ।

जैसे किसी निराश श्रोता को देखने पर, जोकि यह कह रहा हो कि "बस जी रहने दो, यह धर्म की बात मुझ पापी को सुननी भी

योग्य नही, क्योंकि मेरे लिये इस अवस्था मे इसका अपनाया जाना असम्भव है," मै उसे वीरप्रभु के भूतकाल का ही चित्र दर्शाऊंगा और यही कहूगा कि "घबराता क्यो है, देख महावीर प्रभु का यह रूप। क्या वह पापी नही दिखते है तुझे? सम्भवत. वह इस अवस्था मे तुझ से अधिक पापी हैं। जब वे ऊंचे उठ गये तो तू क्यो उठ न सकेगा। निराशा तज, साहस ठान, आलस हान, और आगे बढ। तू वीरों की सन्तान है" यहा वीर प्रभु को पापी बनाने का प्रयोजन क्या उन्हे गाली देना है, या श्रोता को ऊचे उठाना? इसी प्रकार जब किसी श्रोता को आलस मे पड़ा देखता हू, जोकि यह समझ बैठा है कि काफी धर्म कर लिया, और अधिक करके क्या करूगा, तो उसे वीर प्रभु के वर्तमान काल का चित्रण दर्शाऊंगा, और यही कहूगा कि "बस इतने पर ही थक गया? अरे! तुझे तो यहां पहुचना है जिस अवस्था मे कि वीरप्रभु आज है। तेरा गुमान मिथ्या है। अपने जीवन और इनके जीवन को मिलाकर देख, कहा है तू? भाई उठ! अभी बहुत कुछ करना शेष है। सन्तोष न कर।" यहां भी तो उसे ऊंचा उठाने का वही प्रयोजन है।

इसी प्रकार, ऐसे श्रोता को देखकर जोकि बाह्य चारित्र, व्रत, वेष, तप, उपवास, शुद्ध भोजनादि की क्रियाओं पर अभिमान करके अपने को मोक्ष मार्गी या शान्ति पथगामी मान बैठा है, उसको तो अभेद रत्नत्रय मार्ग मे से ज्ञानवाला अग ही पृथक निकालकर प्रमुखत. दर्शाऊगा, और यही कहूगा कि तेरी यह सब क्रियाये निरर्थक है, उन्हे छोड़ दे, ज्ञान प्राप्त कर, वही तेरी उन्नति का मार्ग है, यह बाह्य क्रिया कलाप नही। यह फोकट है बेकार है। क्या यहा चारित्र छुड़ाना अभीष्ट है या उसे उन्नति पथ पर लगाना? इसी प्रकार यदि कोई ज्ञान मात्र प्राप्त करने मे और अधिकाधिक ग्रन्थों का अध्ययन करने मात्र मे सन्तोष पा गया हो, तो ऐसे व्यक्ति के सामने यही कहूगा कि भाई! यह ज्ञान तेरे कुछ काम मे आने वाला नही। यह

गधे का भार है। चारित्रधार वही अमृत व जीवन का सार है। त्याग कर व साम्यता धारने का अभ्यास कर" । क्या यहां जिन वाणी की अविनय करना अभीष्ट है। नही परन्तु सर्वत्र श्रोता को ऊंचे उठाने का ही मात्र प्रयोजन है ।

परन्तु इस प्रयोजन से अनभिज्ञ आप मेरे वक्तव्यों का उल्टा अर्थ समझकर झुझलाने लगते है। चर्चा करने लगते हैं कि यह तो भ्रष्टाचारी है। भगवान को पापी कहते नही हिचकता, वाणी की अविनय करते हुये नही डरता। बस एक अपनी स्वतंत्रता स्वतंत्रता के राग अलापता है। यही तो स्वच्छन्दता के लक्षण हैं। "चारित्र का निषेध सुनकर भी इसी प्रकार आप बौखला उठते हो और मुझ से लड़ने लगते हो, परन्तु ज्ञान का निषेध सुनकर तुम्हे कुछ हर्ष सा होने लगता है। इसका क्या कारण ? केवल यही कि आपको 'नय-ज्ञान' नही है। भले ही निश्चय व्यवहार आदि नयों के नाम याद किये हो। और उन्हे प्रयोग भी करते हों, पर वह केवल कथन मात्र है, प्रयोजन शून्य है, अन्धे के तीर वत् है। प्रभों! अपने कल्याण को दृष्टि मे रखकर तथा स्वयं अपने जीवन को उन्नत करने के लिये अपनी भूल सुनकर चिडना अब छोड दे। यह चिड़चिड़ाहट तेरे ही लिये बाधक है, मेरे लिये नही। मै अब नय का लक्षण व स्वामित्व दर्शाता हूँ। निर्णय करने का प्रयप्न कर।

२ नय का लक्षण –

उपरोक्त प्रकार प्रयोजन वश, वस्तु के सम्पूर्ण त्रिकाली अंगो के प्रमाण ज्ञान रूप चित्रण मे से, कोई एक अग को बाहर निकालकर कहने की जो यह पद्धति दर्शाई गई है, इसी को नय वाद कहते है। इस बात को इस प्रकार भी कहने मे आता है कि भाई! मैने यह बात इस प्रयोजन या अभिप्राय से कही है। किसी को गलत फहमी उत्पन्न हो जाने पर आप लौकिक क्षेत्र मे भी तो उसे समझाने के तथा गलत फहमी दूर करने के लिये यही बात कहते हो।

बस इसी का नाम नय है । इसमे कोई खोटा प्रयोजन नही रहता । या यह भी कह सकते हो कि मैने यह बात इस दृष्टि से कही है, इस अपेक्षा से कही है, यह मुख्यता रखकर कही है, यह लक्ष्य रखकर कही है, या इस नय से कही है । इसलिये प्रयोजन, अभिप्राय लक्ष्य, दृष्टि, अपेक्षा, मुख्यता व नय–यह सारे शब्द एकार्थवाची हैं । निप्रयोजन नय के नाम का प्रयोग नय नही कहलाता । और इसी प्रकार कोई विशेष कारण रूप कार्यकारी पना देखे विना भी जिस किस नय का प्रयोग करना नय नही कहलाता । नय उसी का नाम है जो किसी प्रयोजन व कारण को दृष्टि मे रखकर प्रमुखत: दर्शाने मे आये । इसलिये नय सर्व साधारण व्यक्तियो को होनी असम्भव है । इसका यथार्थ प्रयोग तो प्रमाण ज्ञानी या सम्यगदृष्टि ही कर सकता है ।

उस वक्ता के प्रयोजन विशेष को दृष्टि मे रखकर बोला गया वह वाक्य ही श्रोता के जीवन में हित उत्पन्न कर सकता है, या यो कहिये कि श्रोता को वस्तु व्यवस्था समझाने मे सफल हो सकता है, अर्थात् उसे वस्तु स्वरूप के निकट ले जाने मे सफल हो सकता है । परन्तु यह तभी सम्भव है जबकि श्रोता स्वयं, प्रमुख करके कहे गये एक एक अग को समझकर हृदय कोष मे जमा करता जाये, और इस प्रकार धीरे धीरे क्रम से सम्पूर्ण अगो को धारण करके, अन्त मे जाकर उन्हे परस्पर मे मिलाकर एक रस कर दे । जू जू वह आगे आगे के अगो को धारण करेगा तू तू उसे "वस्तु के निकट जा रहा है" ऐसा कहा जायेगा । इस लिये उपरोक्त प्रयोजन वश बोला गया नय वाक्य श्रोता को वस्तु के निकट पहुंचाने या ले जाने की शक्ति रखता है, और इसी से अत्यत उपकारी है ।

क्योकि प्रमाण ज्ञान के एक अग को प्रमुख करके बोला जाता है, इसलिये इसे एकात भी कहते है । उस एक अंग को कहते हुए शेष अंग गौणा रूप से निषिद्ध भले हो गये हों, पर अभाव रूप से निषिद्ध

नही हो पाये है, ज्ञान मे अब भी वे उतने ही बल से स्वीकार किये जा रहे है जितने बल से कि वह प्रमुख अंग। वचनो मे मुख्य पर अधिक जोर दिया जा रहा है और इस लिये बाहर मे ऐसा दिखाई देने लगता है, मानो यही अंग इसे स्वीकार है, अन्य नही। पर ज्ञान मे ऐसा होने नही पाता। यदि ज्ञान मे भी ऐसा हो जाये तो वह नय नय नही रहती, उसे नयाभास व मिथ्यानय या मिथ्या एकात कहते है। परन्तु यह उसी समय सम्भव है जबकि प्रमाण ज्ञान रूप अखड चित्रण हृदय पट पर हो। अतः मुख्यता व गौणता का अर्थ सद्भाव व अभाव नही बल्कि दोनों का सद्भाव है, और समान शक्ति रूप से सद्भाव है—जैसे कि दीपक मे अग्नि का प्रकाश मुख्य हो जाने पर भी ज्ञान में पाचकता का कोई कम महत्व नही हो जाता। प्रमान ज्ञान त्रिकाली वस्तु के अनुरूप होता है। वस्तु मे कोई गुण मुख्य या या गौण नहीं होता। वहा तो सारे ही मुख्य है। मुख्यता गौणाता तो रागी प्राणी का, स्वार्थ वश उत्पन्न किया गया मानसिक विकल्प है। इसलिये वस्तु के अनुरूप प्रमाण ज्ञान मे भी मुख्यता गौणता नही होती। वहा सब अग समान रूप से प्रमुख है। उसमे सर्व अगों की प्रमुखता रहने पर ही नय रूप मुख्यता की अपेक्षा का प्रयोग सच्चा कहा जा सकता है। अतरग मे भी यदि हीन बल वाली दिखाई दे तो अपेक्षा सच्ची नही होती। इसी का नाम है प्रमाण सापेक्ष नय। तथा सर्व अग अपने-अपने स्थान पर समान शक्ति वाले स्वीकार करने पर ही उस प्रमुख अग का अपने पड़ोसी अन्य अगो के साथ सहयोग रहना सम्भव है, अन्यथा नही।

एक अग की सुनते समय उससे विरोधी अग की स्वीकृति को बराबर हृदय पट पर चित्रित देखते रहने को ही नयों की परस्पर सापेक्षता कहते है। नय की प्रमाण से सापेक्षता और नय की नय से सापेक्षता इस प्रकार सापेक्षता दो प्रकार की हो जाती है। अपेक्षा या नय की स्पष्ट बताये बिना, 'किसी अपेक्षा से भगवान पापी भी है'

ऐसा भी कहने मे आ सकता है। परन्तु तभी, जब कि श्रोता यह जानता हो कि यह कथन भूतकाल की पर्याय की अपेक्षा कहा जा रहा है। यदि श्रोता अनभिज्ञ है तो अपेक्षा स्पष्ट बतानी ही चाहिये, ताकि उसे भ्रम उत्पन्न न हो जाये। इस प्रकार को कथन पद्धति मे 'कथंचित' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है, किसी अपेक्षा से।

ऊपर के वक्तव्य पर से नय के निम्न लक्षण निकलते है। वक्ता व श्रोता दोंनो का पृथक पृथक आश्रय लेकर इसके पृथक पृथक लक्षण निकालते है:—

१ वक्ता के अभिप्राय को नय कहते है

२. सम्यग्ज्ञान या प्रमाण ज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं

३. जो श्रोता की वस्तु के प्रति ले जाये सो नय है।

ऊपर के दो लक्षण वक्ता को दृष्टि मे रखकर दिये गये है, और इस पर से यह सिद्ध होता है कि वक्ता सम्यग्ज्ञानी ही होना चाहिये। क्योकि उसी के ज्ञान का विकल्प, नय है, सर्व साधारण ज्ञान का नही। नं. ३ वाला लक्षण श्रोता को दृष्टि में रखकर किया गया है जिस पर से यह सिद्ध हो सकता है कि नय वचन उसी के लिये कार्य कारी है, जो अपने पक्षपातों को दबाकर वस्तु को समझने का प्रयास करे।

३. अर्थ, ज्ञान व वचन नय

इस प्रकरण मे थोड़ी और विशेषता भी यहां जान लेनी आवश्यक है, क्योकि अब तक हमने नय की व्याख्या का आधार ज्ञान मे पड़े अखड चित्रण को ही बनाया है, परन्तु इतना ही मात्र नही है। वस्तु के अंग तीन स्थान पर पढे जा सकते है—१. वस्तु मे जाकर, २. वस्तु के अनुरूप प्रमाण ज्ञान मे जाकर, ३. प्रमाण ज्ञान मे से किसी अग को मुख्य रूपेण दृष्टि मे लेकर बोले

गये या लिखे गये वाक्यों में जाकर। इन तीनों मे परस्पर कार्य कारण भाव है। वस्तु ज्ञान की सत्यता का कारण है और ज्ञान वचन की सत्यता का कारण है। इसलिये नय के भी तीन ही भेद समझ लेने चाहिये:–

१. वस्तु नय, अर्थात् वस्तु मे दीखने वाले अंग। इसे आगम मे अर्थ नय कहा जाता है।

२. ज्ञान नय, अर्थात् प्रमाण ज्ञान में प्रति भासने वाला वस्तु का अंग। वस्तु के अनुरूप ज्ञान को ज्ञान नय कहते है। अथवा वस्तु के आकार से प्रतिबिम्बित ज्ञान को ज्ञान नय कहते है।

३. वचन नय, अर्थात् ज्ञान के उपरोक्त प्रतिभास के प्रकाशनार्थ बोले गये या लिखे गये शब्द। इसे आगम मे शब्द नय या व्यञ्ज नय भी कहते है।

वचन नय से इस बात का विवेक कराया जाता है, कि बोले या लिखे गये शब्द ऐसे होने चाहिये जिससे कि श्रोता या पाठक ठीक ठीक ही बाच्यार्थ को ग्रहण करे, भ्रम मे न पड़े। क्योकि भिन्न भिन्न स्थलो पर भिन्न अभिप्राय से बोले गये शब्दो के अर्थ मे भी तदनुसार भेद अवश्य पड़ जाता है।' जिसका खुलासा आगे नय के भेदों मे 'शब्द नय' तथा उसके भेद प्रभेदों की व्याख्या करते हुए किया जायेगा।

४. वचन कैसा होना चाहिये

अर्थ नय, ज्ञान नय, और वचन नय, इन तीनों के सम्यक् मिथ्यापने पर दृष्टि डालने से पता चलता है, कि वस्तु के प्रमाण ज्ञाता के लिये, अर्थ नय व ज्ञान नय तो सदा प्रमाण व नय साक्षेप ही रहते हैं, क्योंकि वस्तु को देखते हुए या उस

सम्बन्धी विचार करते हुए, उसे वस्तु मे या प्रमाण ज्ञान मे मुख्य बनाये हूए अंग के साथ साथ, अन्य और भी अवश्य ही दिखाई दे रहे है। अव तो प्रश्न यह है कि वचन नय को सापेक्ष कैसे बनाया जाये ? आगम मे पढ़ा है कि सापेक्ष नय ही सम्यक् है, निर्पेक्ष नय मिथ्या है, इसका क्या तात्पर्य ?

वचन को भी सापेक्ष वनाया जा सकता । सापेक्षता दो प्रकार की है–प्रमाण के प्रति व अन्य नय के प्रति । वचन में एक समय मे एक ही अग प्रमुखत कहा जा सकता है, सर्व अगों का युगपत कहा जाना सम्भव नही । फिर भी इसको प्रमाण सापेक्ष वनाया अवश्य जा सकता है। सो किस तरह वह सुनिये । इस प्रकार, कि वस्तु के किसी अग विशेष का प्रवचन प्रारभ करन से पहिले, उसकी भूमिका वना देनी चाहिये । जिसमे उस वस्तु विषयक सम्पूर्ण अगों का संकेत मात्र देकर सक्षिप परिचय श्रोता को दे दिया जाये, "इस प्रकरण के अन्तरगत स्थूलत. यह यह विषय आयेगे, सो इनका कथन लगभग एक महीने मे पूरा कर पाऊंगा. अतः आपका कर्त्तव्य है कि विषय को एक महीने तक वरावर सुनकर एक महीने पश्चात् ही उस सम्पूर्ण विषय के सम्वन्ध मे अपना कुछ निर्णय स्थापित करना, अधूरा सुनकर नही, और न ही इसे अधूरा सुनकर छोड देना । क्योकि ऐसा करने से आपका भ्रम वश अहित होने की सम्भावना है इत्यादि ।" तथा वक्तव्य के बीच बीच मे भी यथा अवसर ऐसा संकेत देते रहना चाहिये, कि "जितना आप अव तक सुन पाये है, यह पूरा नही है । इतने मात्र पर सतोष पाने का प्रयत्न न करना। इसके अतिरिक्त और भी कुछ है। सारे का सारा सुन कर ही कुछ निर्धारित करना, उससे पहिले नही ।" इस प्रकार आपका वोला गया तद्विषयक हर वचन प्रमाण के प्रति वरावर सकेत करते रहने के कारण, प्रमाण सापेक्ष बन जायेगा, जो आप व श्रोता दोनों के लिये हितकारी होगा ।

हित के इस मार्ग मे आपका हर वचन हित और मित व मिष्ट होना चाहिये । मिष्ट तो उसे बनाया जा सकता है सरलता व प्रेम को हृदय मे रखकर बोलने के द्वारा, और हित बनाया जा सकता है उसे सापेक्ष बनाकर । प्रमाण के साथ वचन की सापेक्षता दर्शा दी गई। अब नय के साथ सापेक्षता सुनिये ।

नय के साथ सापेक्षता के अन्तर्गत आता है, दो विरोधी अगों का कथन भले एक दिन के वक्तव्य के सम्पूर्ण अग न कहे जा सके, किन्तु एक विषय के दो अंग कहे जाने सम्भव है । फिर भी मुख्य गौण व्यवस्था वश, उस विषय के दो विरोधी अगो मे से मुख्य अग पर अधिक जोर देकर उसकी ही व्याख्या की जाना न्याय सगत है । परन्तु ऐसा करते हुये भी यदि यह विवेक रख लिया जाये, कि उस दिन का वक्तव्य समाप्त होने के पश्चात् ५ मिनट के लिये यथा योग्य रीति से उस विरोधी अंग की कार्यकारिता भी दर्शा दे, तो वह सर्व आपका कथन नय सापेक्ष हो जायेगा जैसे कि निम्न दृष्टान्त से स्पष्ट होता है ।

कल्पना करे कि मुझे जीव के चारित्र अग का कथन करना अभीष्ट है । चारित्र के दो विरोधी भाग है । राग व बीतरागता । जहा राग होता है वहां वीतरागता नही, और जहा वीतरागता होती वहां राग नही । वीतरागता कैसे प्राप्त की जाये यह प्रकरण है । सो स्पष्ट है कि मै जोर देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूगा कि राग द्वारा वीतरागता की प्राप्ति असम्भव है । क्योंकि विष पान से अमृतत्व मिलना असम्भव है । धन्टे भर बोलने का समय है । सो मुझे चाहिये कि ५५ मिनट तो उसी बात पर जोर देकर कहूँ, कि राग के द्वारा वीतरागता तीन काल में प्राप्त हो नही सकती, अतः राग त्याग कर वीतरागता में स्थिति पा ।

पर यह विचार कर कि रागी जीव के लिये ऐसा किया जानाएक दम सम्भव नही। रागी को ही तो वीतराग होना है। वीतराग ही हो गया तो वीतरागता की प्राप्ति का प्रश्न ही क्या रहा ? अतः राग मे रहते रहते वीतरागता की प्राप्ति तो राग के आधार पर ही हो सकेगी। केवल उस राग की दिशा मे परिवर्तन करना होगा। अतः अन्त के शेष ५ मिनिट में यह बताना भी मेरा कर्त्तव्य अवश्य है, कि भाई ! राग अवस्था मे राग ही एक मात्र साधन है, अतः इसकी दिशा भोगों की ओर से हटाकर वीतराग देव शास्त्र गुरु की ओर कर भोगो के ग्रहण के राग की दिशा घुमाकर भोगों के त्याग की ओर कर। और इस प्रकार राग तो कर, पर राग के प्रतिका नही, वीतरागता के प्रति का कर। इस प्रकार राग भी कथंचित वीतरागता का साधन इस निचली भूमिका मे अवश्य है। आगे जाकर शुल्क ध्यान मे इसका आश्य पूर्णतः छूट जाने पर, ऊपर वाला नियम लागू होगा। अत वीतरागता के प्रति का राग साधन है, और वीतरागता साध्य है। इस प्रकार चारित्र की व्याख्या के अर्न्तगत वीतरागता अग का पोषक कथन सापेक्ष हो गया।

प्रभो ! यह मार्ग कल्याण का, है पक्षपात का नही। जिस वचन मे आप व पर का दोनों का हित हो, वही बोलने योग्य है। तेरे पास वुद्धि है, अनुमान के आधार पर यह जाना जा सकता है, कि श्रोता मेरा वचन सुनकर अहित की और तो नही झुक जायेगा। यदि ऐसा होता दिखाई दे, तो तत्क्षण, अपनी मुख्य बात का विरोधी अंग पुष्ट कर देना योग्य है। देख राजा वसु का दृष्टात। यद्यपि उसके ज्ञान मे सत्य और असत्य का निर्णय मौजूद था। वह यह जानता था कि इस यज्ञ के प्रकरण मे 'अज' शब्द का अर्थ 'जौ' होता है "बकरा नही"। फिर भी अपने किसी स्वार्थ या पक्ष विशेष वश उसने यह कह दिया कि 'अज' का अर्थ यहा 'बकरा' ही ग्रहण करना चाहिये। यद्यपि ज्ञान मे वह वरावर जान रहा था कि वह बात असत्य है, पर फिर

भी वह बोल गया। साधारण व्यक्ति के रूप मे बोलता तब भी कुछ और बात थी, परन्तु उसने यह बात न्याय के सिहासन पर बैठकर बोली बोलते समय उसे यह विचार न आया, कि इस एक छोटे,से वचन से असख्याते जीव हिसक होकर अपना अकल्याण कर बैठेगे। और ऐसा ही उसका फल हुआ भी। इसीसे वह उस विषय सम्बन्धी सम्यग्ज्ञानी होते हुए भी, अधोगति का पात्र हुआ।

बस इसी प्रकार तू जिस समय, शास्त्र की गद्दी पर बैठा है, उस समय साधारण व्यक्ति नही, गुरु का प्रतिनिधि है। तेरा एक भी शब्द असंख्याते जीवों के कल्याण व अकल्याण का कारण बन सकता है। अतः वचन सम्बन्धी बहुत विवेक रखने की आवश्यकता है। भले ही तेरा ज्ञान सत्य हो, अर्थात् प्रमाण हो, परन्तु यदि कदाचित उपरोक्त विवेक शून्य होकर, अपने किसी पक्ष पोषण वश, एक प्रमुख बात ही बारबार कहता रहेगा, और उसकी विरोधी बात को अश मात्र या सकेत मात्र रूप मे भी न कहेगा, तो श्रोता बेचारा कहा जायेगा। वह क्या जाने कि तेरे अन्दर मे दोनों अगों की सापेक्षता मौजुद है। उसका तो आधार वचन है। उसमे सापेक्षता आने पर ही वह कल्याण की ओर झुकेगा, अन्यथा अकल्याण की ओर झुकने की सम्भावना है। अर्थात् "राग से वीतरागता की प्राप्ति असम्भव है" बराबर यही बात सुनते सुनते उसकी दृष्टि कदाचित वीतराग देवादि के प्रति से भी उपेक्षित हो जायेगी, और इस प्रकार वह अहित कर बैठेगा। अतः यदि उपरोक्त विवेक उत्पन्न नही कर पाया तो ऐसा न हो कि कदाचित राजा वसु वाली उपमा को प्राप्त होकर, तू अपना भी अहित कर बैठे। वीतरागी गुरुओं की शरण मे आकर हित ही को अपना, अहित को नही। प्रभु तेरी रक्षा करे।

५. प्रत्येक शब्द एक नय है

कथन करने की अनेकों दृष्टिये हो सकती है। जितनी दृष्टियों से मुख्य करके कथन किया जाता है उतने ही वचन विकल्प हो जाते हैं। यह सर्व ही वचन विकल्प 'नय'

के नाम से कहे जाते है। भिन्न भिन्न समय पर वक्ता की दृष्टि या प्रयोजन भी अनिश्चित रूप से भिन्न भिन्न ही होता है, अत: यह दृष्टिये या वचन विकल्प या नय असख्याती हो जाती है। जिनमे से सब की सब तो जानी या बताई जानी असम्भव है, हां मुख्य मुख्य कुछ दश पाच पचास बताई जा सकती है।

यहा इतना ध्यान मे रखना आवश्यक है कि किसी भी कथन को चलाने के लिये वचन या शब्द ही हमारे पास एक माध्यम है, इसलिये किसी भाव को दर्शाने के लिये हमे उस भाव का कुछ न कुछ सज्ञा करण करना अवश्य पड़ता है, अर्थात् उस भाव का नाम अवश्य रखना पड़ता है। इसके बिना कथन चल नही सकता। जितने भी शब्द आज प्रचलित है वे सबके सब आगे पीछे इसी प्रकार प्रकाश मे आये है। एक बार एक शब्द का प्रयोग होने के पश्चात वह शब्द लोक मे प्रसिद्ध हो जाता है, और शब्द कोषों मे स्थान पा लेता है। अब उसका कोई न कोई अर्थ होने लगता है। और इसी प्रकार शब्द कोष मे बराबर वृद्धि होती जाती है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आवश्यकता पड़ने पर यथा योग्य नये शब्द भी, उस उस समय के भावो व प्रयोजनो के प्रति सकेत देने के लिये, बनाये जाते रहते है। जैसे कि आज भारत विधान मे हिन्दी भाषा को स्थान देने के लिये, हमारी सरकार को अनेको नये शब्दो का निर्माण करना पड़ा। यह शब्द अब तो नये घड़े गये है, परन्तु आगे जाकर वे हमारे शाब्दिक संग्रह के अग बन जाने पर प्रसिघ्द व पुराने हो जायेगे, हमें उनके प्रयोग का अभ्यास हो जायगा। इसी प्रकार नयो के सम्बन्ध मे जानना। जितने भी नयो के नाम आगम मे आते है, उतनी ही नय हो, ऐसा नही है। वह तो कुछ भी नही है, और भी असख्यातो हो सकती है। वे सब किसी न किसी वाच्य अभिप्राय के प्रति संकेत करने का साधन मात्र है।

हरेक शब्द का कुछ अर्थ उसी समय बन पाता है, जब कि यह समझ लिया जाय, कि यह शब्द किस अदृष्ट भाव गुण या पर्याय के प्रति संकेत करता है। यदि यह समझे बिना केवल वचन ही याद किया जाये, तो उसका संकेत किसी भी सत्ता भूत भाव के प्रति उस श्रोता का लक्ष्य ले न जा सकेगा, और इसलिये निरर्थक रहेगा। अत प्रत्येक शब्द के वाच्य भाव को ग्रहण करके ही शब्द को कहना व सुनना सार्थक होता है। एक बार भाव समझाने के पश्चात पुनः पुनः समझाना नही पडता। फिर तो एक छोटे से शब्द मात्र का सकेत भी उस भाव को दर्शाने को पर्याप्त है। इसलिये जितने भी शब्द शब्द कोष मे भरे पड़े है, वे सब ही नय हैं। और समय समय पर अनेकों शब्द या नयी नय जागृत हो सकती है। आगम में लिखी है कि नही लिखी है यह कोई परीक्षा नही है। न तो सारी लिखी जा सकती है, और न सारी कही जा सकती है। बुद्धि का अभ्यास करने के लिये कुछ मात्र के भाव दर्शा कर उनके प्रयोग की रीति बतायी जा सकती है। आगे तो वह अभ्यस्त बुद्धि स्वय काम करेगी। किस स्थान पर वक्ता की क्या दृष्टि है, यह बुद्धि ही पहिचानेगी। उस दृष्टि को पहिचान कर ही श्रोता उस दृष्टि को कुछ नाम दे सकेगा। या कदाचित पूछने पर वक्ता भी श्रोता का सकेत उस दृष्टि के नाम या नय के नाम द्वारा, उस ओर आकृष्ट कर सकेगा।

इस प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ आप स्वतत्र रूप से भी अपनी दृष्टि के प्रति सकेत करने के लिये, अपने श्रोताओ को कोई भी नाम या शब्द अपनी ओर से निश्चित करके बता सकते है, कि जब जब मै यह शब्द कहूंगा तब तब आप इस शब्द का यह अर्थ या भाव या दृष्टि समझ जाना। आगे प्रयोग किया जाने पर उस श्रोता के लिये तो वह शब्द अपने भाव का प्रतिनिधित्व करने मे सफल हो जाता है, परन्तु दूसरे नये श्रोता उससे कुछ भी भाव समझ नही पाते। वह अपनी बुद्धि के अनुसार उस शब्द के वह अर्थ लगाने लगते हैं जो कि

उन्होने पहिले से सीख रखे है, और इसी लिये वक्ता के वे शब्द सुन कर भी वह उसके आशय को नही समझ पाते, और कदाचित उलटा ही समझ बैठते है। उस समय श्रोता का कर्त्तव्य उस शब्द का वह अर्थ जानने का है, जिस अर्थ मे कि वक्ता उसे उस समय प्रयोग कर रहा है, तभी वह शब्द नय कहला सकता है। और इस प्रकार जितने शब्द है उतनी ही नय है। जितने शब्द पैदा किये जायेगे वह सब नय है। 'हरा' 'पीला' 'सुख' 'दु ख' वह सब शब्द 'नय' है। क्योंकि 'हरा' यह शब्द सुनकर आप वक्ता की दृष्टि को तुरन्त पहिचान जाते है, कि इस समय ये नेत्र इन्द्रिय के किसी उस भाव के प्रति संकेत कर रहा है जो कि पहिले मैने कच्चे आम मे देखा था, और जो मेरी धारणा में बैठा हुआ है।

इसी प्रकार शब्द कोष मे जितनी भी संज्ञाये, सर्व नाम व विशेषण है वे सब नयों के नाम है, यह समझना। मै कहता हूं "वह आदमी आज देहली गया है"। बस इस वाक्य मे मैने चार सज्ञा व सर्व नाम का प्रयोग किया। बस यही चार नय हो गई। 'वह' शब्द 'जो उस रोज देखा था' इस प्रकार की वक्ता की दृष्टि का प्रतिनिधित्व कर रहा है, इसलिये इसको 'वह' नाम की नय कह लीजिये। "आदमी" शब्द दो हाथ दो पैरो वाले इस पुतले की ओर सकेत कर रहा है, इस भाव को दर्शा रहा है, इस लिये इसे 'आदमी' नाम की नय कह लीजिये। 'देहली' शब्द उस सत्ता भूत बडे नगर की ओर सकेत कर रहा है, जो आपके हृदय पर चित्रित है, इस लिये इसे 'देहली' नाम की नय कह लीजिये। और इसी प्रकार सर्वत्र लागू करते हुये प्रत्येक वह शब्द जो श्रोता को सकेत द्वारा वस्तु के निकट ले जाने मे सफल हो जाये, नय कहलाता है। यही लक्षण पहिले किया भी गया है। श्रोता न समझ पाये तो उस शब्द को नय नही कहेगे यह बात कुछ हास्यप्रद सी प्रतीत होती है, तथा व्यवहार में लाई जाने योग्य भी नही है, इसलिये संग्रह करण द्वारा कुछ दृष्टि विशेषो का परिचय पा लेना ही पर्याप्त है।

आगम कारों ने अनेक प्रमुख प्रमुख दृष्टियों का संग्रह करके उनका सज्ञा करण किया है। यद्यपि आप अपनी ओर से भी उस उस दृष्टि के लिये कोई अपना शब्द नियुक्त कर सकते हैं, पर इस प्रकार की उलझन मे न पड़ कर जैसा कि व्यवहार है, मै उन्ही आगमोक्त शब्दों का प्रयोग करके वह वह दृष्टि दर्शाऊंगा। इसे ही नय के प्रयोग का अभ्यास कहते है। एक बार उस शब्द का ठीक ठीक प्रयोग वाक्य पर लागू करना आपको आ जाये तो, वह वह शब्द आपके लिये भी नय रूप हो जायेगा। अभ्यास कीजिये, इसी का नाम सीखना है, इसी को नय वाद कहते है। और इस प्रकार स्कूलों व कालेजों मे या आपके दैनिक व्यवहार मे जो भी यह शब्द व्यवहार प्रचलित है वह सब नय व्यवहार है। अन्तर केवल इतना ही है कि वहा शब्दो का प्रयोग करके भी उसके प्रयोग का कारण आप जान नही पाते। स्वतः ही प्रयोग हो जाता है। यहा उसे ही सिद्धात का रूप देकर उन प्रयोगों के लक्षण कारण प्रयोजन आदि दर्शाये जा रहे है। इसीसे कुछ विचित्र नया सा लगता है। वास्तव में नया नही। यह वैज्ञानिक मार्ग है। साम्प्रदायिक नही। जैनियों के लिये ही नही, हर व्यक्ति के लिये इस सिद्धान्त का जानना आवश्यक है। यदि इस सिद्धान्त की ट्रेनिग प्राप्त कर ली जाये, तो वक्ता के वचनों का टोक ठीक अर्थ बहुत सरलता से लगाया जा सकता है। अतः यह नय वाद जैनियों की कोई मीरास हो ऐसा नही। किसी भी वैज्ञानिक सिद्धांत को, भले ही आप उसके अग्र प्रदाता अर्थात वैज्ञानिक के नाम के आधार पर जाने या कहे, पर वह सर्व लोक के लिये ही सत्य रूप से ग्राह्य है, बस इसी प्रकार से यहां भी समझ कर साम्प्रदायिक दृष्टि का त्याग कर। इस सिद्धान्त की महत्ता को समझ, और आगे आगे जीवन मे इसका प्रयोग कर, ताकि पद पद पर वक्ता व श्रोता के बीच पडने वाली गलत फेहमिये दूर हो जाये।

आगे आने वाले लम्बे प्रकरण मे मै यही दर्शाने का प्रयत्न करूगा कि किस प्रकार अनेकों भिन्न भिन्न अभिप्रायों में रंगा हुआ वाक्य

बोलने मे आता है, और किस प्रकार उसका ठीक ठीक अभिप्राय समझा जा सकता है। तथा वक्ता का उस अभिप्राय से वाक्य बोलने का क्या प्रयोजन या स्वार्थ है, यह भी समझा जा सकना है। बक्ता के उन उन अभिप्रायो या भावो का सज्ञा करण करने के लिये मुझे कुछ शब्द चाहिये। यद्यपि मै अपनी ओर से भी उनके लिये कोई शब्द निश्चित कर सकता हू पर ऐसा करने से भले ही आप मेरे वक्तव्यो का अभिप्राय तो समझ लेगे, पर आगम वाक्यों का अभिप्राय फिर भी आपकी समझ मे न आ सकेगा। क्योंकि वहां जो शब्द अपने अभिप्रायों का प्रतिनिधित्व करने के लिये लेखकों ने स्वयं प्रयुक्त किये है, उनका अर्थ समझे बिना उनका अभिप्राय समझा जाना असम्भव है। अत मै आगम कथित ही मुख्य मुख्य नयो के प्रयोग का रूप आपको दर्शाऊंगा।

७ वस्तु मे नय प्रयोग की रीति

वस्तु के अनेक अगो मे से वक्ता किसी भी अंग को किसी भी समय किसी प्रयोजन विशेष वश मुख्य करके कह सकता है। उस समय श्रोता को ऐसा लगेगा मानो यह दूसरे अगों को या तो भूल गया है, या उनका निषेध कर रहा है। दृष्ट पदार्थो मे तो ऐसे सशय को अवकास होने नही पाता, हा अदृष्ट पदार्थो मे अवश्य ऐसा होता है। श्रोता के इस सशय के निवारणार्थ वक्ता उन पृथक पृथक अगो का स्वरूप अनेको दृष्टान्तो व उदाहरणो के आधार पर आगे पीछे विस्तृत रूप से समझाता है श्रोता जब उस उस अग का वह स्वरूप समझ जाता है तब आगे आगे के प्रकरणो मे पुन पुन प्रकरण आने पर वही स्वरूप दोहराना न पडे, इसलिये उन अगों का सज्ञाकरण कर देता है, ताकि अवसर आने पर केवल एक शब्द कहना ही श्रोता को उस अग तक ले जाने मे पर्याप्त हो सके। यह काम तो अर्थात वस्तु के अनेको अगों का संज्ञाकरण तो, अब तक के विस्तृत कथन मे किया जा चुका।

अब किस श्रोता को समझाने के लिये, कौनसा अंग उठाकर उसे उस समय दर्शाया जाये कि वह हित मार्ग पर अग्रसर हो सके, यह वक्ता अपनी योग्यता पर निर्भर है। इसे वक्ता का अभिप्राय या दृष्टि कहते हे। यह नियम करना तो असम्भव है कि वक्ता को अमुक ही अंग अमुख अवसर पर कहना चाहिये, इसलिये वक्ता किस दृष्टि से कब क्या बात कह रहा है, यह विवेक उत्पन्न करने के लिये श्रोता को कुछ अपना अभ्यास करना पडेगा। इस प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ वक्ता की कुछ मुख्य मुख्य दृष्टियों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है, जिन दृष्टियो के आधार पर कि हित मार्ग मे प्रमुखतः कथन करने मे आता है। दृष्टि तो वक्ता का अभिप्राय है, इसलिए प्रत्यक्ष दिखाई नही जा सकती। हा अनेक दृष्टान्तों व उदाहरणों के आधार पर यह अवश्य समझाया जा सकता है, कि अमुक अवसर पर अमुक प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ, अमुक अग का कथन करने से श्रोता पर यह प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार वस्तु के अगों की व्याख्या की भाति ही वक्ता की इन दृष्टियों का भी पृथक पृथक विस्तृत कथन किया गया है। उदाहरणों व दृष्टान्तो के आधार पर किये गये इस विस्तृत कथन पर से जब श्रोता उस दृष्टि के भाव को समझ जाता है तो, उस दृष्टि का भी कोई नाम रख दिया जाता है। यद्यपि दृष्टि कोई पदार्थ नही, पर उसको किसी न किसी नाम से पुकारा जाना सम्भव है। समझने व समझाने के लिये नाम या शब्द ही एक माध्यम है।

इस दृष्टि का नाम भी जब श्रोता को याद हो जाता है, तो उसके लिये वह नाम वाला एक शब्द का सकेत मात्र ही अब वक्ता की उस दृष्टि का स्पर्श करने के लिये पर्याप्त हो जाता है, जिसको समझाने के लिये कि पहिले इतने लम्बे विस्तार की आवश्यक्ता पड़ी थी। यदि दृष्टि का कोई नाम न रखे तो पुन पुनः उस उस प्रकार का वाक्य बोला जाने पर वही दृष्टान्त व उदाहरण दोहरा कर, पुनः पुन उस दृष्टि को विस्तार से समझाने के लिये यदि इतना विस्तृत कथन

करना पड़े तो कथन क्रम ही नही चल सकता। जैसे कि रेखा गणित विज्ञान (Geometry) मे एक समस्या (Problem) को हल कर देने के पश्चात उस समस्या का कोई सज्ञा करण कर दिया जाता है। ताकि आगे आगे के सवालों मे जहा कही भी उस प्रकारकी उस समस्या आ जाये, तो केवल उस समस्या के नाम का हवाला दे देना पर्याप्त हो सके, उसे पुन. हल करना न पड़े। इसी प्रकार एक बार दृष्टि को समझा देने के पश्चात उसका संज्ञा करण कर दिया जाता है। ताकि आगे आगे के प्रकरणो मे जहां कही भी उसी प्रकार की दृष्टि आ जाये, तो केवल उस दृष्टि के नाम का हवाला या नय का नाम देना ही पर्याप्त हो सके, उसे पुनः समझाने की आवश्यकता न पड़े।

यद्यपि हर वाक्य मे वक्ता की कोई न कोई दृष्टि अवश्य छिपी रहती है, परन्तु कथन क्रम मे सर्वत्र प्रत्येक वाक्य के साथ उस दृष्टि या नय का हवाला देकर ही कथन करना भी सम्भव नही है। क्योंकि कथन क्रम तो धारा प्रवाही रूप से बहा चला जाता है। वक्ता में स्वत यथा अवसर एक दृष्टि के पीछे दूसरी दृष्टि जागृत होती रहती है, और उस उस दृष्टि के अनुरूप वाक्य बन बनकर उसके मुख से निकलते रहते है। यह काम आप ही आप (automatically) इतनी जल्दी हो जाता है कि स्वय वक्ता भी यह जान नही पाता, कि क्या दृष्टि आई थी और क्या वाक्य निकल गया। क्यों कि बोलते समय यह विचारा नही जाया करता, कि इस पर अमुक दृष्टि काम देगी, और अमुक प्रकार का वाक्य बोलना चाहिये। यह वक्ता के अभ्यास पर निर्भर है, कि उसे धारा प्रवाही रूप से दृष्टिये बराबर जागृत होती चली जाये। दृष्टि उत्पन्न होने पर बिना विचारे वाक्य तो स्वय बन जाया करता है।

अव श्रोता की ओर चल कर देखिये। यदि श्रोता मुख्य मुख्य सब दृष्टियों या नयों से परिचित है, तो वक्ता का वाक्य सुनते ही

बिना विचारे स्वत: ही वह उस की दृष्टि को पहिचान जाता है, कि यह किस बात को लक्ष्य मे रखकर यह वाक्य कह रहा है। अधिक तर तो ऐसा ही होता है, पर फिर भी कही कही उसे सशय व शंका होने की सम्भावना रहती है। उस समय उसकी शंका को दूर करने के लिये, दृष्टि का यह उपरोक्त सज्ञा करण या नय का नाम बहुत उपयोगी पडता है। उसे केवल यह सकेत कर देना ही पर्याप्त है कि 'भाई! यह वाक्य मैंने अमुक नय से कहा है'। बस इन दो शब्दो को सुनते ही तुरन्त उसका लक्ष्य वक्ता के लक्ष्य से जा टकराता है और दो सैकेन्ड मे गुत्थी सुलझ जाती है। वह ठीक ठीक अर्थ समझ जाता है और उसकी शका कथन क्रम में विशेष बाधक होने नही पाती। बस यही है नयों के नाम रखकर उन का प्रयोग करने, अर्थात् हवाला देने का प्रयोजन।

८ नय का उदाहरण लक्षण कारण व प्रयोजन

अब प्रश्न यह होता है, कि वक्ता की उन प्रमुख दृष्टियो या नयों को कैसे समझा या समझाया जाये। सो यद्यपि कठिन काम है, परन्तु सम्भव है। हां बुद्धि का प्रयोग अवश्य मागता है, क्योकि नय के नाम या शब्द को याद करके सतोष पाना निरर्थक है। वक्ता के भाव को पकड़ना है। भावो को समझाने या गले से नीचे उतारने के लिये दृष्टान्त व उदाहरण ही एक मात्र उपाय है। लौकिक दिशा मे नित्य कहे व सुने जाने वाले कुछ वाक्य उदाहरण के रूप मे सामने लाये जाते है और श्रोता को कहा जाता है कि ऐसा वाक्य बोलते या सुनते समय तुम्हें विरोध क्यों नही होता, जबकि वाक्य का शब्दार्थ बिल्कुल उल्टा सा भासता है। जैसे कि अपने खिलाड़ी पुत्र को धमकाते हुए जब पिता उसे यह कहता है कि 'क्यो मेरा पैसा व्यर्थ बरबाद कर रहा है। इससे अच्छा तो "स्कूल न जाया कर" तो वह पुत्र उसका अर्थ उलटा क्यों नही समझ जाता। "स्कूल न जाया कर" का अर्थ क्या कभी

भी वह यह समझ पाता है, कि पिता मुझे स्कूल से छुट्टी दिला रहे है ? वह तो उसका अर्थ यही समझता है, कि वह मना तो खेलने को कर रहे है, स्कूल जाने को नही । अब ज़रा मिलाइये तो सही वाक्य के शब्दार्थ से इस ग्रहण किये गये अर्थ को । क्या मेल खाता है ? दोनो मे स्पष्ट विरोध है । खेल का शब्द भी उसमे आया नही फिर भी खेल का अर्थ कैसे निकल आया ? बस इसे ही मै दृष्टि की पहिचान कह रहा हू । लौकिक दृष्टान्त सुन कर श्रोता कहता है कि इस वाक्य को बोलने वाले व्यक्ति का अभिप्राय मै समझता हूं, इसीलिये विरोध नही होता, भले शब्दार्थ कुछ भी हो ।

बस तो पारमार्थिक मार्ग मे भी इस जाति का वाक्य आने पर ऐसा ही अर्थ समझ लेना । जैसे कि बाह्य त्याग मे सन्तोष पाकर अभिमान को प्राप्त किसी त्यागी को यदि मै यह कहू कि, "यह त्याग तेरे कुछ काम न आयेगा । इससे अच्छा तो इस त्याग को छोड दे, तो इस वाक्य मे से त्याग को छोड़ने का अर्थ ग्रहण न करना, बल्कि ज्ञान प्राप्त करने को कहा जा रहा है, ऐसा समझना । भले ज्ञान शब्द वाक्य मे न आ पाया हो पर मेरी दृष्टि मे से पढ लेना । क्योकि तुम पारमार्थिक दिशा मे प्रयुक्त वाक्यो का अर्थ लगाने मे व दृष्टि को स्वतः समझने मे अभी अभ्यस्त नही हुए हो, इसलिये सम्भव है कि कदाचित मेरे वाक्य का ठीक-ठीक अर्थ न लगा सको और तुम्हारे हृदय मे संशय जागृत हो जाये । ऐसे अवसर पर मै उस दृष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाला वह नाम जो कि सज्ञा करण के द्वारा एक वार निश्चित कर लिया गया है बोल दूगा । वस तुम समझ लेना कि अमुक दृष्टि को लक्ष्य मे रखकर कथन किया गया है, और शका दूर हो जायेगी । आगे के प्रकरण मे दृष्टि को नय शब्द के द्वारा ही सर्वत्र कहा जायेगा यह याद रखना ।

यह जो दृष्टि का भाव तुम इन उदाहरणो के आधार पर ग्रहण कर पाये हो, बस यही उस नाम से चिन्हित नय का लक्षण है । या यो कहिये कि इन उदाहरणों के आधार पर सिध्दान्त रूप से नय का लक्षण निर्धारित कर दिया जाता है, ताकि श्रोता उस लक्षण को भाव सहित शब्दो मे याद करले और वह नाम सामने आने पर तुरत उस भाव को पकड सके । इस प्रकार नय का कोई न कोई लक्षण अवश्य होता है ।

यह नय क्यो उत्पन्न हुई ? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि वस्तु मे या तदनुरूप प्रमाण ज्ञान मे वस्तु के उस अग का स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है । और इस अ ग को देखने से श्रोता के हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ेगा जिससे कि वह वर्तमान की निराशा व पुरूषार्थ हीनता या अभिमान को छोड़ कर हित को जीवन मे अपनाने के प्रति कुछ उद्यमशील हो जायेगा । बस यही नय के प्रयोग का कारण है ।

श्रोता मे हेयोपादेय दृष्टि उत्पन्न करने के लिये किसी अग को उभारना और किसी अग की हानियो को दर्शाना ही नय प्रयोग का प्रयोजन है । क्योकि हेयोपादेय दृष्टि बने बिना श्रोता का कल्याण मार्ग पर आगे बढना असम्भव है ।

इस प्रकार नय वही कार्य कारी होती है जिसमें निम्न बातें पाई जाये । इन बातों से शून्य केवल शब्द मात्र नय की रटन्त निरर्थक व मिथ्या है.–

१. नय के भाव को किसी न किसी उदाहरण के आधर पर निश्चित किया जाना चाहिये ।

२. निर्धारित भाव के आधार पर शब्दों मे उस नय का कोई सिद्धांतिक रूप प्रगट करने वाला लक्षण होना चाहिये ।

३. उस नय का प्रयोग निष्कारण नही सकारण होना चाहिये। और वह कारण ऊपर दर्शा दिया गया है। उस नय के नाम की सार्थकता भी जाननी चाहिये।

४. उस नय का कोई न कोई हितकारी प्रयोजन होना चाहिये। जिसमे श्रोता का अहित हो, वह नय का प्रयोग नही कहलाता।

६ नयो के मूल भेदो का परिचय

यह नय कितनी होती है, इसके लिये कोई नियम नही किया जा सकता। क्योकि जैसे कि पहिले बताया जा चुका है जितने शब्द है उतनी ही नय हो सकती है। फिर भी अध्यात्म मार्ग मे उपयोगी मुख्य-मुख्य दृष्टियो का प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ नये आगम मे कही गई हैं। यद्यपि यथा अवसर अपनी ओर से नयी नयो की स्थपना की जा सकती है पर यहां तो केवल उन्ही नयों का वर्णन करना अभीष्ट है जो कि आगम मे पहिले से आई हुई है।

वैसे तो आगम मे भी नयों के अनेको भेद प्रभेद है पर उन सब की उत्पत्ति जिन दो मूल नयो से हुई है उनका नाम द्रव्यार्थिक व पर्यार्थिक नय है। अर्थात् नये है द्रव्यार्थिक व पर्यार्थिक। आगे जाकर इन के ही भेद प्रभेद बहुत हो जाते है। यद्यपि द्रव्यार्थिक या पर्यार्थिक नय का बिशेष विस्तार तो आगे आयेगा, पर इस स्थल पर उनके सम्बन्ध मे सामान्य कथन कर देना अभीष्ट है। ताकि आगे कहे जाने वाले भेदो की स्थापना के लिये कोई भूमिका तैयार हो जाये।

प्रमाण ज्ञान मे तो त्रिकाली द्रव्य पड़ा है, उसके सम्पूर्ण अंग भी वहा पड़े हैं। प्रमाण ज्ञान तो इन दोनों को अर्थात् अगी व अंगो को युग पत स्वीकार करता है। परन्तु द्रव्यार्थिक नय इन दोनों मे से

अगो की पृथक-पृथक सत्ता को गौण करके उनके समूह स्वरूप केवल अंगों की अभेद सत्ता को ही मुख्य रूपेण ग्रहण करता है, और पर्यायार्थिक नय अभेद अगी की सत्ता को गौण करके केवल एक किसी भी अंग की पृथक-पृथक सत्ता को ही मुख्य रूपेण देखता है ।

उदाहरणार्थ द्रव्य गुण व पर्यायो का एक अखण्ड पिण्ड है । तहा गुण व पर्याये वास्तव मे अपना कोई भी पृथक अस्तित्व नही रखते । इन का सामूहिक एक अखण्ड पिण्ड ही सत् है । वही द्रव्य है । जीव ज्ञानादि अनेक गुणो व तिर्यंच मनुष्यादि अनेक पर्यायो मे अनुस्थूल जो एक ध्रुव तत्व है वही जीव द्रव्य है । बालक, युवा व बूढ़ा यह तीन नही बल्कि एक ही मनुष्य है । ऐसा द्रव्यार्थिक नय देखता है । इससे विपरीत एक एक गुण व एक एक पर्याय की पृथक पृथक सत्ता को दर्शाना पर्यायार्थिक नय काकाम है । जैसे ज्ञान कुछ और है और श्रध्दा, चारित्रादि कुछ और है । इनमे परस्पर कोई एकता नही है । इसी प्रकार तिर्यंच कोई और है और मनुष्य कोई और इनमे अनुस्थू कोई जीव नामका अन्य ध्रुव तत्व लोक मे दिखाई नही देता । इसी प्रकार बालक कोई और था और यह बूढ़ा व्यक्ति, कोई और है, इन दोनो को एक ही व्यक्ति कहना भ्रम है । पर्यायार्थिक नय का ऐसा अभिप्राय रहता है । इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय तो द्वैत मे अद्वैत करके देखना है । पर पर्यायार्थिक नय केवल एकत्व को ।

जिस प्रकार ऊपर कालात्मक या परिवर्तन शील अग का आश्रय लेकर कथन किया गया उसी प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, व भाव पर भी लागू करना । दो द्रव्यों का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दिखाना द्रव्यार्थिक है, और प्रत्येक द्रव्य को पृथक पृथक देखना पर्यायार्थिक है । द्रव्य को अनेक प्रदेश वाला कहना द्रव्यार्थिक दृष्टि है और एक प्रदेश मात्र ही उसे देखना पर्यायार्थिक दृष्टि है ।

इसी प्रकार अनेक पर्यायो का समूह द्रव्य है ऐसा कहना द्रव्यार्थिक दृष्टि है और एक वर्तमान पर्याय मात्र ही द्रव्य है ऐसा कहना पर्यायार्थिक है । अनेक गुणो का समुदाय द्रव्य को द्रव्यार्थिक है और एक गुण मात्र ही द्रव्य कहना पर्यायार्थिक है । विशेष आगे जानने मे आयेगा ।

यहा यह प्रश्न हो सकता है कि मूल नये दो ही क्यो कहे गए । जिस प्रकार द्रव्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक, पर्याय को विषय करने वाला पर्यायार्थिक, उसी प्रकार गुण को विषय करने वाला एक गुणार्यिक नय भी कहना चाहिये था । सो इस प्रश्न का उत्तर राजवार्तिकारकार ने निम्न प्रकार दिया है–

(रा.वा.।५।३८।२।५०१।२.)

द्रव्यस्य द्वावात्मनौ सामान्य विशेषश्चेति । तत्र सामान्य-मुत्सर्गोऽन्वय: गुण इत्यनर्थान्तरम् । विशेषो भेद: पर्योयोति पर्याय शब्द: । तत्र सामान्य विषयो नयो द्रव्यार्थिक. । विशेष विषय पर्यायार्थिक: । तदुभयं समुदितमयुतसिद्धरूपं द्रव्यमित्युच्यते, न तद्विषयस्तृतीयो नयो भवितुमर्हति, विकलादेशत्वान्नयानाम् । तत्समुदायोऽपि प्रमाणगोचर: सकलादेशत्वात् प्रमाणस्य ।"

अर्थ:–द्रव्य के सामान्य और विशेष ये दो स्वरूप है। सामान्य, उत्सर्ग, अन्वय और गुण ये एकार्थक शब्द है। विशेष, भेद और पर्याय ये पर्यायार्थिक शब्द है । सामान्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय है, और विशेष को विषय करने वाला पर्यायार्थिक । दोनो समुदित-अयुतसिद्ध द्रव्य हैं । अत: गुण जब द्रव्य का ही सामान्य रूप है, तब उसके ग्रहण के लिये द्रव्यार्थिक से पृथक गुणार्थिक नाम के किसी तीसरे नय

की कोई आवश्यकता नही है । क्योंकि नय विकलादेशी होती है । समुदाय रूप द्रव्य सकलादेशी प्रमाण का विषय है ।

१०. आगमपद्धति व अध्यात्म पद्धति

इन दोनों ही नयों का कथन दो प्रकार से करने मे आता है—आगम पद्धति से और अध्यात्म पद्धति से । तहा जीव अजीव आदि सर्व ही पदार्थो का सामान्य कथन करना अर्थात् द्रव्य सामान्य सम्बन्धी सिद्धांत जानने के अर्थ व्याख्यान करना आगम पद्धति है। इस पद्धति मे जीव द्रव्य की कुछ प्रधानता और अन्य द्रव्यों की गौणता सम्भव नही । यहां सब ही पदार्थ एक कोटी मे है । उनको जानना मात्र अभीष्ट है, अतः किसी का भी निषेध नही । कौन पदार्थ हेय है और कौन उपादेय यह बताना यहां प्रयोजनीय नही है । इसीलिये इस पद्धति मे नयो के नाम भी वस्तु के स्वभाव का आश्रय करके रखे गये है—जैसे द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, भेद ग्राहक, अभेद ग्राहक आदि ।

अध्यात्म पद्धति मे केवल आत्मा अर्थात् जीव द्रव्य का ही कथन करना प्रमुख है । आत्मा का स्वभाव, उसके गुण पर्याय, उनमे भेद अभेद तथा उसका अन्य पदार्थो के साथ निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध आदि सर्व बाते बताना इसका काम है । आत्मा के लिये क्या कुछ हेय है और क्या कुछ उपादेय इस बात का विवेक कराके उसकी शुद्धता व अशुद्धता आदि के विकल्पो का परिचय देना इस अध्यात्म पद्धति मे ही आता है । इसीलिये इस पद्धति मे नयो के नाम भी केवल आत्म पदार्थ का तथा उसके लिये इष्ट व अनिष्ट बातो का आश्रय करके रखे गये है—जैसे निश्चय, व्यवहार, शुद्ध, अशुद्ध,सद्भूत, असद्भूत आदि ।

इन दोनो मे से पहिले आगम पद्धति के आधार पर नयों का निरूपण किया जायेगा, क्योंकि द्रव्य सामान्य सम्बन्धी परिचय पाये बिना द्रव्य विशेष अर्थात् आत्म पदार्थ का तथा उसके लिये हेय व उपादेय का निर्णय करना असम्भव है ।

१०

—: मुख्य गौण व्यवस्था :—

दिनांक १० । १० ।६●

१. मुख्य गौण व्यवस्था का अर्थ,
२. विशेषण विशेष्य व्यवस्था,
३. किस को मुख्य किया जाये,

१ मुख्य गौण व्यवस्था का अर्थ

पहिले सकेत किया गया था कि नयो के मूल भेद दो है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। अव उन ही का विशेष स्पष्टी करण करने मे आता है। यद्यपि वक्ता के प्रमाण ज्ञान मे परिपूर्ण त्रिकाली अखण्ड वस्तु पड़ी है, वह उसे प्रत्यक्ष वत् देख सकता है पर कह नही सकता। जिस प्रकार कि २ भाग नीला, ४ भाग पीला और ६ भाग लाल रंग मिला दे तो, आप अनुमान के आधार पर भी सम्भवत उसके मिले हुए एक रंग को प्रत्यक्षवत देख तो सकेंगे पर कह न सकेंगे। कहने के लिये

आपको उपरोक्त नीले पीले व लाल रगो के नाम लेकर, उनको कितने कितने पृथक पृथक भागों मे मिलाया गया है, यह बताना होगा, और कोई उपाय नही। इसी प्रकार अखण्ड वस्तु का परिचय देने के लिये उसके अगों के नाम लेकर ही बताना होगा, और कोई उपाय नही है।

प्रमाण ज्ञान मे परिपूर्ण वस्तु की दो प्रमुख बाते पडी है जिनके सम्बन्ध मे पहिले प्रकरणो मे अनेको बार पुन पुन. कथन आ चुका है—अभेद वस्तु और उसके भेद या अंग। दोनो ही बाते जाननी योग्य है। क्योंकि भेदों के जाने बिना तो वस्तु या द्रव्य जाना नही जा सकता, और अखण्ड द्रव्य के जाने बिना वे भेद जाने नही कहे जा सकते, क्योंकि द्रव्य से बाहर पृथक पृथक उन भेदों की सत्ता लोक मे है ही नही। इन दोनो बातो को क्रम से दर्शाया जा सकता है। विचार करें कि बिलकुल अपरिचित व अनिष्पन्न कोई श्रोता आपके सामने है, तो क्या कथन क्रम अपनाना होगा, कि आप श्रोता के गले यह दोनों बाते उतारने में सफल हो जाये। स्पष्ट है कि पहिले तो आप पृथक पृथक इन भेदो की व्याख्या करके इन भेदों या अंगों (गुण व पर्यायों) का स्वरूप उसे दर्शायेंगे। केवल व्याख्या पर से ही नही पर उन उन अगो का जो कोई भी रूप उस के अनुभव मे आ रहा है, है, उसके उस अनुभव की ओर सकेत करके भी। जब पृथक पृथक उन सब अगो के भावो से वह परिचय प्राप्त कर चुकेगा तो आप उससे कहेगे कि अब इन सब अगो को अपने अनुमान ज्ञान मे मिला जुला कर एक रस कर दे, और देख अब तुझे कैसा दिखाई देता है। जब वह ऐसा कर चुके तो आप कहेगे कि देख अब थोडी देर के लिये उन अगो वाली पढाई को भूल जा और केवल इस एक रस की ओर देखकर मुझे बता कि क्या दिखाई देता है। अब वह क्या कहेगा, इसके सिवाये कि दिखाई तो देता है पर कह नही सकता। इसी का नाम मुख्य गौण व्यवस्था है। सो दृष्टान्त पर से स्पष्ट हो जायेगी।

यद्यपि पहिले यह दृष्टान्त आ चुका है परन्तु फिर भी देता हूं। कल्पना कीजिये कि एक रस रूप जीरे का हाजमा पानी तो वह पदार्थ

है जिसका परिचय देना है। नमक, मिर्च, खटाई, हीग आदि कुछ मसाले उसके गुण रूप अग हैं और उन मसालों की हीनाधिक मात्रा (Ratio) उन अगो की पर्याय हैं। श्रोता ने आज तक उसे चाखकर नही देखा है। केवल वचनों पर से उसको अनुमान कराना है। भले ही उस जीरे के पानी का स्वाद पहिले न चखा हो पर नमक मिर्च आदि मसालों का पृथक पृथक स्वाद उसने पहिले चखा है, अर्थात् पृथक पृथक मसालों का ज्ञान उसको है। यदि श्रोता को इनका भी ज्ञान न होता तो उसे किसी प्रकार भी आप जीरे के पानी का शब्दों द्वारा परिचय न दे सकते, परन्तु अब उसके इस ज्ञान को आधार बना कर आप उसे जीरे के पानी के स्वाद का परिचय दे सकते हैं, भले ही आपके शब्दों पर से वह उसका असल स्वाद चख न सके पर किसी भी प्रकार वह उसके ख्याल मे अवश्य आ जायेगा।

इस प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ आप के वक्तव्य का क्रम परस्पर मे निम्न प्रकार होगा:—

आप.—क्या कभी नमक का स्वाद चख कर देखा है तूने ?

श्रोता.—हा।

आप:—कैसा होता है ?

श्रोता.—खारा।

आप·—कैसा खारा ?

श्रोता:—मै जानता हूं पर कह नही सकता।

आप.—अच्छा तो इस खारे स्वाद को ध्यान मे रखना।

श्रोता.—रख लिया।

आप:—बस इसी प्रकार मिर्च के स्वाद को, फिर खटाई के स्वाद को, तत्पश्चात हीग के स्वाद को, फिर जीरे के स्वाद को, फिर सौठ के स्वाद को क्रमश: ध्यान मे ले लेना।

श्रोता:—ले लिया।

आप.—इन सबका पृथक पृथक् स्वाद ठीक ठीक ध्यान मे आ गया?

श्रोता —हा आ गया।

आप·—क्या वता सकेगा कि कैसा कैसा ध्यान मे आया है ?

श्रोता —ध्यान मे आया है पर वता न सकूगा। और ध्यान में भी प्रत्यक्ष व अत्यन्त स्पष्ट आ गया है, क्योकि मैने उन उन पदार्थो को पहिले भिन्न भिन्न अवसरो पर चखकर देखा हुआ है।

आप:—खैर ध्यान मे आना चाहिये, मेरे पूछने का यही तात्पर्य है। अब एक काम कर, कि एक सेर पानी ले और इसमे दो तोला नमक मिलाकर इस पानी का स्वाद अनुमान मे ले कि क्या होना चाहिये।

श्रोता —उतना स्पष्ट तो नही पर फिर भी अनुमान मे वह आ अवश्य गया है।

आप —अव इस पानी मे एक तोला मिर्च मिलाकर इस पानी के स्वाद का ध्यान कर।

श्रोता.—कर लिया।

आप —इसी प्रकार एक तोला खटाई, फिर एक माशे हीग, फिर एक तोला जीरा, फिर एक तोला सौठ, क्रम पूर्वक एक एक करके इस पानी मे मिलाते जाओ और तब तक क्रम पूर्वक उस पानी का स्वाद भी ध्यान मे लेते जाओ।

श्रोता.—ठीक है यह भी कर लिया।

आप.—क्या स्वाद कुछ वदलता हुआ प्रतीत हुआ ?

श्रोताः–हां, जू जूं और और चीजे मिला मिलाकर अनुमान करता जाता हूं तू तू स्वाद और और ही जाति का होता जाता है।

आप –सबको मिलाने पर अब कैसा स्वाद ध्यान मे आ रहा है ?

श्रोता.–बिल्कुल विजाति प्रकार का कोई अनौखा सा स्वाद बन गया है।

आपः–नमक मिर्च आदि का स्वाद याद न रखना। भूल जाना।

श्रोताः–अच्छा भूल गया।

आपः–अब कैसा स्वाद आता है?

श्रोताः–जानता हूं पर बता नही सकता।

आपः–बस यही है वह जीरे के पानी का स्वाद।

बस अब तो श्रोता प्रसन्न हो जायेगा और हर्ष से भरा हुआ कह देगा कि ओह ! यही है वह जीरे का पानी ? भले ही उसे आपके जैसा प्रत्यक्ष स्वाद न आया हो पर उसके अनुरूप कुछ धुन्धला सा भान उसे अवश्य हो गया।

इसी प्रकार आत्मा एक पदार्थ है। ज्ञान-चारित्र-श्रद्धा व वेदना इसके गुण या त्रिकाली अग या विशेषण है। मति श्रुत आदि ज्ञान, राग रूप चारित्र, भौक्तिक पदार्थो मे इष्टता रूप श्रद्धा, अशान्ति की वेदना यह इन चारो गुणो की सर्व जन सामान्य के अनुभव मे आने वाली वर्तमान अर्थ पर्याय है, मनुष्यत्व वर्तमान की व्यञ्जन पर्याय है। यह दोनो पर्याय उस आत्मा के क्षणिक अंग या विशेषण है। ये सर्व विशेषण श्रोता के अपने अनुभव मे आये हुए है, जैसा कि अध्याय न. ७ मे सिद्ध किया जा चुका है। श्रोता को इस आत्म पदार्थ का परिचय दिलाने के लिये आपको वही दृष्टान्त मे दिखाया गया क्रम अपनाना पड़ेगा।

जिस प्रकार वहा पहिले नमक मिर्च आदि मसालो के पृथक पृथक स्वाद को श्रोता के ध्यान मे स्थापित किया गया था, उसी प्रकार यहा पहिले मति श्रुत ज्ञान व अन्य क्षणिक अनुभवनीय अगों के पृथक पृथक भावो को श्रोता के ध्यान मे स्थापित किया जायगा। तत्पश्चात जिस प्रकार वहा क्रम पूर्वक पानी मे नमक फिर मिर्च आदि घोल घोल कर उस मिश्रित स्वाद को ध्यान मे स्थापित किया गया था, उसी प्रकार यहा भी क्रम पूर्वक ज्ञान मे राग फिर भोगो की श्रद्धा और फिर अशान्ति को घोल घोलकर उसके मिश्रित भाव को ध्यान मे स्थापित किया जायेगा। जिस प्रकार अन्त मे जाकर वहा श्रोता को नमक मिर्च आदि का स्वाद भूल जाने के लिये कहा था, उसी प्रकार अत मे आकर यहा भी श्रोता को मति ज्ञान अशान्ति आदि के भावो को भूल जाने के लिये कहा जायगा। जिस प्रकार वहा एक रस रूपी जीरे के पानी का स्वाद ही मुख्यतः याद रखने के लिये कहा गया था उसी प्रकार यहां भी उन सब खण्डित अगो का एक रस रूप चैतन्य ही मुख्यत· याद रखने के लिये कहा जायेगा। यही जीव द्रव्य की एक अखण्ड संसारी पर्याय का परिचय है। इसी प्रकार मति ज्ञान की बजाये केवल ज्ञान और राग आदि की बजाये वीतरागता, स्वात्म श्रद्धा व शान्ति के मिश्रण से सिद्ध पर्याय का परिचय भी दिया जा सकता है। तद-नन्तर ससारी व सिद्ध दोनो पर्यायो को एक अटूट फिल्म मे जड़ लेने पर त्रिकाली जीव या आत्मा का परिचय भी दिया जा सकता है।

इस क्रम के अन्तर्गत कहे गये दृष्ट्रान्त व दाष्ट्रान्त दोनो पर से यही पढने मे आता है कि पहिले वस्तु के अगों या विशेषणों की और श्रोता का लक्ष्य खेच कर, पीछे उस लक्ष्य को तो भूलने या दबाने को को कहा गया है और उन विशेषणों के आधार पर अनुमान मे आये हुए किसी एक अखण्ड भाव या विशेष को ग्रहण करने या याद रखने के लिये कहा गया है।

बस इसे ही गौण मुख्य व्यवस्था कहते है। याद करके भी कुछ देर के लिये भूल जाने को गौण करना कहते है, सर्वथा या सर्वदा के लिये भूल जाने को नही। जिस प्रकार कि दृष्टान्त मे जीरे का पानी का स्वाद जानते हुए भी श्रोता ने भले नमक आदि का पृथक पृथक स्वाद थोड़ी देर के लिये ध्यान से ओझल कर दिया हो, पर ज्ञान से उसे धो डालना उसके लिये सम्भव नही है, हा थोड़ी देर के लिये दृष्टि से ओझल अवश्य किया जा सकता है, अर्थात उस समय तक वह विचारणाओ मे न आ सके, इस प्रकार उसे दबाया अवश्य जा सकता है। बस इसी प्रकार विचारणाओ मे कुछ देर के लिये दबा देने को गौण करना कहते है, ओर उतनी देर के लिये विचारणाओ को किसी एक विषय पर केन्द्रित करने को, उस विषय को मुख्य करना कहते है। यहा भी मुख्य का अर्थ सर्वथा या सर्वदा के लिये उसे ही विचारणाओं का आधार बनाना नही, बल्कि केवल उतने मात्र अन्तराल के लिये बनाना है जितने मे कि उपरोक्त बात को गौण करके दबाया गया है। किसी अन्य समय मे सम्भव है कि और कोई नया ही अग विचारणा मे मुख्य हो जाये, या वही अंग मुख्य हो जाये जिसे कि अब गौण किया गया है। जेसै की इस बातचीत का क्रम समाप्त होने पर, यदि श्रोता से आप नमक का स्वाद पूछे, तो तुरन्त पुन· उसकी विचारणाये नमक पर जा लगती है, और जीरे के पानी को भूल जाती है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना।

यद्यपि यहा दृष्टान्त मे अंगों या विशेषणों को गौण तथा अगी व विशेष्य जो द्रव्य या पदार्थ उसे मुख्य करके दर्शाया गया है। पर इसका यह अर्थ नही कि मुख्य गौण व्यवस्था का अर्थ विशेषण को गौण व विशेष को मुख्य करना ही है। बल्कि प्रयोजन वश कभी अगो या विशेषणो को मुख्य और विशेष या पदार्थ को गौण भी किया जा सकता है।

वस्तु के भेद व अभेद दो भागो मे से, किसी भी एक को प्रयोजन वश मुख्य करके, उस समय के लिये दूसरे भाग को गौण करना, मुख्य गौण व्यवस्था कहलाती है। यह नियम सर्वत्र आगे के प्रकरणो मे लागू होगा। अत अच्छी तरह याद कर लेना।

साथ साथ यह न भूलना कि यह नियम ज्ञान की अपेक्षा जानने मे ही अर्थात आगम पद्धति मे ही लागु होता है, अध्यात्म पद्धति मे नही। क्योकि वहा चारित्र की प्रधानता से जानना होता है इसलिये वहा मुख्य का अर्थ जीवन के लिये हितकर व उपादेय और गौण का अर्थ जीवन के लिये अहितकर व हेय होता है। अत आगम पद्धति मे तो क्षण भर के लिये ही किसी अंग को मुख्य व किसी अङ्ग को गौण किया जाता है, परन्तु अध्यात्म पद्धति मे सर्वदा के लिये ही किसी अङ्ग को मुख्य या किसी अङ्ग को गौण किया जाता है अर्थात वहां सर्वदा के लिये ही किसी अङ्ग को ग्राह्य और किसी अङ्ग को त्याज्य स्वीकार किया जाता है। जैसे कि उपादान की वहां सर्वदा मुख्यता व निमित्त की वहा सर्वदा गौणता ही रहती है। अत अध्यात्म पद्धति में मुख्य गौण व्यवस्था विधि निषेध व्यवस्था का रूप धारण कर लिया करती है। तात्पर्य यह कि आगम पद्धति मे तो कभी द्रव्यार्थिक नय ग्राह्य हो जाता है और कभी पर्यायर्थिक नय, पर अध्यात्म मे सर्वत्र द्रव्यार्थिक नय ही प्रधान रहता है, पर्यायार्थिक या व्यवहार नय का सदा निषेध किया जाता है।

२. विशेषण विशेष्य व्यवस्था

किसी भी अपरिचित विषय को जनाने याजानने के लिये, सदा ही वस्तु के भेदो व अगो को, वचन क्रम का तथा श्रोता के ज्ञान क्रम का, आधार बनाया जाता है। इसके बिना अन्य मार्ग नही। तथा अभेद रूप वस्तु इस आधार पर से जनाई या जानी जाती है। अत वस्तु के भेद व अभेद दो भागो मे से, भेद तो गुरु व शिष्य के मध्य आधार होता है और अभेद

वस्तु आधेय होती है । इसलिये वक्ता व श्रोता के मध्य के वचन क्रम मे सदा ही वस्तु के अङ्ग विशेष रूप से आश्रय किये जाते है। इसीलिये वस्तु के इन अंगों को 'विशेषण' यह नाम दिया गया है, और इन विशेषणो पर से विचार करके अपरिचित अभेद या अखण्ड वस्तु को स्पर्श किया जाता है, या स्पर्श कराने का प्रयत्न किया जाता है, इसलिये अभेद को 'विशेष कहते है। जैसे कि जो जनावे सो ज्ञान तथा जो जाना जाये सो ज्ञेय, जो दिखावे सो प्रकाश और जो दिखाया जाय सो प्रकाशय, इसी प्रकार जिसके आधार पर जनाया जाये सो विशेषण और जो जाना जाये सो विशेष ।

इस पर से यह नियम नही किया जा सकता कि त्रिकाली अखण्ड वस्तु ही सर्वत्र विशेष स्वीकारी जाये, और उसके वे सर्व भेद प्रभेद जो अध्याय न.८ मे दर्शाये गये है, और उसकी सर्व व्यञ्जन पर्यायें, सर्व गुण, तथा सर्व अर्थ पर्याये सर्वत्र विशेषण रूप से ग्रहण किये जाये । जैसाकि पहिले यह सर्व भेद दर्शाते समय अध्याय न. ८ मे भी दर्शा दिया गया है, और आगे सग्रह-व्यवहार नय वाले अध्याय न १२ मे भी स्पष्ट किया जायेगा, वस्तु की भेद प्रभद व्यवस्था मे, पहिला पहिला अर्थात वहा दिखाये गये चार्ट की अपेक्षा ऊपर ऊपर का भेद तो बराबर अपने से आगे नीचे वाले प्रभेदो की अपेक्षा अभेद या अगी बनता चला जाता है, और उससे आगे व नीचे के वह प्रभेद उसके अङ्ग बनते चले जाते है। यहा तक कि अन्तिम सूक्ष्म अङ्ग अर्थात सूक्ष्म अर्थ पर्याय आ जाती है जिसका कि आगे भेद होना ही सम्भव न हो सके।

जैसे कि त्रिकाली सामान्य जीव की अपेक्षा ससारी व मुक्त आदि आगे के सर्व भेद तो अङ्ग है और वह जीव सामान्य एक अङ्गी है। और संसारी जीव की अपेक्षा त्रस स्थावर तथा उनके आगे के सर्व उत्तर प्रभेद अङ्ग है और संसारी जीव एकला अङ्गी है। यहा

जीव सामान्य व मुक्त का प्रसंग न होने के कारण, न व अङ्ग है और न अङ्गी । इसी प्रकार त्रस जीव की अपेक्षा दो इन्द्रिय आदि भेद तथा इनके आगे के सर्व उत्तर भेद तो अङ्ग हैं और वह अकेला त्रस जीव अङ्गी है । यहा स्थावर जीव का प्रसग न होने से वह तथा उसके सर्व पृथिवी आदि भेद, न अङ्ग है न अङ्गी । और इसी प्रकार आगे भी यथा योग्य अन्तिम भेद तक समझ लेना । अङ्ग और अङ्गी की यह व्यवस्था तो द्रव्य व द्रव्य पर्यायों या व्यञ्जन पर्यायो मे लागू होती है । द्रव्य गुणों मे भी इसी प्रकार लागू की जा सकती है । वहा सर्व गुण तो अङ्ग है और द्रव्य अङ्गी । इसी प्रकार व्यञ्जन पर्याय व अर्थ पर्यायों मे यथा योग्य सर्व अर्थ पर्याये अङ्ग है और व्यञ्जन पर्याय अङ्गी । उसके अतिरिक्त अन्य के व्यञ्जन पर्याय न अङ्ग है न अङ्गी । इसी प्रकार सर्वत्र ऊपर ऊपर भेद अङ्गी और नीचे नीचे के अङ्ग वनते जाते है, जहा तक कि अन्तिम अङ्ग अर्थात ज्ञान की अपेक्षा मति ज्ञान की क्षणिक व सूक्ष्म अर्थ पर्याय प्राप्त न हो जाये । यहां इतना अवश्य समझ लेना चाहिये कि अङ्गी अनेक अङ्गो का स्वामी व समूह होता है, अत. अङ्गी सदा बडा होता है और अङ्ग छोटा, या उसका एक भेद या भाग मात्र ।

अङ्ग अङ्गी की इस व्यवस्था मे सर्वत्र अङ्ग को विशेषण बनाया जाता है और अङ्गी को विशेष । क्योकि भेदों पर से अभेद का निर्णय करने या कराने का नियम सिद्ध किया जा चुका है । यही विशेषण विशेष व्यवस्था है ।

३ किसको मुख्य किया जाये

विशेषण व विशेष मे से किसको मुख्य किया जाये तथा किसको गौण, यह प्रश्न आता है ? सो भाई ! वस्तु मे जाकर देखे या तद्रूप प्रमाण ज्ञान मे जाकर देखे तो, वहा विशेषण व विशेष दोनों एक साथ निवास

करते हुए दिखाई देंगे। किसको मुख्य कहे व किसको गौण ? वहां तो दोनों ही युगपत समान रीति से प्रकाशित हो रहे हैं। कोई भी दबा हुआ या भूला हुआ नही है। इसलिये वस्तु या प्रमाण ज्ञान मे तो दोनो ही मुख्य है। इसीलिये वस्तु व प्रमाण ज्ञान दोनों को निर्विकल्प कहा गया है। यह दोनो ही नय के विकल्पों से अतीत हैं। मुख्य गौण व्यवस्था नय मे होती है, वस्तु व प्रमाण मे नही। इसी से नय को सविकल्प या सम्यक् श्रुत ज्ञान का विकल्प कहते हैं।

वस्तु को जानते समय या अनुभव करते समय तो कोई विकल्प उत्पन्न नही हुआ करता। जैसेकि सरलता से जीरे के पानी को जानने वाले उस वक्ता को, श्रोता के सम्पर्क मे आने से पहिले तत्सम्बन्धी कोई विकल्प नही था। वह जीरे का पानी उसके ज्ञान मे चित्रित रूप से केवल पड़ा मात्र था। हां वही वस्तु जब किसी को बतानी या सुनानी अभीष्ट हो, या उस वस्तु के अङ्गो की विशेषता पर विचार करना अभीष्ट हो, तब अवश्य उसके विशेषण व विशेष्यों मे मुख्य गौण व्यवस्था के विकल्य उत्पन्न हो जाते हैं। क्योकि ऐसा किये बिना वह प्रयोजन सिद्ध होना असम्भव है। किसी विशेषण को मुख्य करके ही बताया जा सकता है, किसी विशेषण को मुख्य करके ही जाना जा सकता है तथा किसी विशेषण को मुख्य करके ही वस्तु की विशेषता पर विचार किया जा सकता है।

बताने या विचारने का विकल्प आने पर भी, विशेषण व विशेष दोनो मे किस को मुख्य किया जाये व किस को गौण, यह नियम बान्धा नही जा सकता। प्रयोजन वश दोनो मे से किसी को मुख्य किया जा सकता है और किसी को भी गौण। यही आगे स्पष्ट किया जाता है।

पहिले यह देखना होगा कि मुख्य गौण करने का विकल्प कैसे अवसरों पर उत्पन्न हुआ करता है। सो कह सकते हैं कि मुख्यतः तीन अवसरों पर उत्पन्न हुआ करता हैं।

१. किसी अनिष्पन्न शिष्य को, अपरिचित वस्तु का वचनो द्वारा परिचय देते समय ।

२. किसी ज्ञानी या निष्पन्न व्यक्ति द्वारा परीक्षार्थ द्रव्य के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध मे प्रश्न किया जाने पर उसका उत्तर देते समय, या उस प्रश्न के सम्बन्ध मे विचार करते समय।

३. किसी वस्तु की विशेषताओ को पूछते या विचार करते समय।

इन तीनों मे पहिला विकल्प वक्ता सम्बन्धी है, दूसरा विकल्प श्रोता सम्बन्धी है, तीसरा विकल्प किसी भी विचारज्ञ सम्बन्धी है। इन तीनों के दृष्टान्त दिये जाते हैं। जरा विचार करना और पता चल जायेगा, कि तीनो मे किस अवसर पर विशेषण को मुख्य किया जाता है और किस अवसर पर विशेष्य को।

पहिले विकल्प का दृष्टान्त तो दिया जा चुका है। जिस पर से यह जाना जाता है कि अनिष्पन्न श्रोता को समझाने के लिये वक्ता को सर्वदा, विशेपण को ही मुख्य करके कहना पड़ेगा विशेष को मुख्य करके नही, क्योंकि विशेष को मुख्य करके कहा ही नही जा सकता। अर्थात पहिले विकल्प मे सदा विशेषण मुख्य व विशेष्य गौण होते है।

अव दूसरे विकल्प सम्बन्धी दृष्टान्त सुनिये उस पहिले ही दृष्टात से आगे का क्रम विचारिये। वहा श्रोता को समझाकर आपने छोड दिया था। यहां उसकी परीक्षा लेनी अभीष्ट है, कि आपके इतने वचन पर से वह आपका अभिप्राय समझ भी पाया है या नही। ऐसा न हो कि वैसे ही हां मे हां मिला रह हो, और आपका परिश्रम विफल जा रहा हो आओ श्रोता से प्रश्न करे।

आप.—जीरे के पानी का स्वाद तूने जाना-कैसा आता है ?

श्रोता:—एक अभेद विजातीय प्रकार का स्वाद है, कह नही सकता।

आप:—क्या किसी प्रकार भी कह नहीं सकते ?

श्रोता:--जिस प्रकार आपने बताया है उसी प्रकार कहने के अतिरिक्त तो और कोई उपाय सूझता नही ।

आप:--अच्छा बताओ नमक जैसा स्वाद है वहां ?

श्रोता:—नही । पृथक पृथक नमक मिर्च जैसा नही है ।

आप:—तो फिर कैसा है ?

श्रोता:--नमक जैसा तो है पर नमक जितना ही नही ?

इसी प्रकार आत्मा पदार्थ के सम्बन्ध मे भी उससे पूछे तो यह उपरोक्त चार बाते ही कहेगा, पृथक ज्ञान रूप नही है, ज्ञान वाला है पर ज्ञान मात्र ही नही, सर्व अगों के अभेद रूप है, कहा नही जा सकता ।

बस तो जान लेने के पश्चात के दूसरे विकल्प मे केवल अभेद वस्तु या विशेष ही मुख्य है । जिसको दर्शाने के लिये अङ्गो या विशेषणो का निषेध किया जा रहा है । यह निषेध सर्वथा निषेध रूप नही है, बल्कि "इतना ही नही है कुछ और भी है" इस रूप वाला है । इसी का नाम गौण करना है । अर्थात दूसरे विकल्प मे विशेष्य मुख्य है और विशेषण गौण हो जाते है ।

अब यदि उस वस्तु के सम्बन्ध मे आपको स्वय विचार करना अभीष्ट हो तो भी उपरोक्त ही दृष्टान्त लागू होगा । अन्तर केवल

इतना ही होगा कि तब पूछने वाले तो आप ही होगें पर और श्रोता होगा आपका हृदय । वहा से भी वही चार बाते आयेगी । जिन पर से जाना जा सकता है कि विचार करते समय भी विशेष्य (अङ्गी) मुख्य व विशेषण (अङ्ग) गौण होते है ।

अब तीसरे विकल्प को लीजिये । जीरे के पानी की विशेषताओ के सम्बन्ध में श्रोता से या अपने मन से पूछ कर देखे कि क्या उत्तर देता है ।

आप —क्यों भाई ! इस पानी मे जरा बताओ तो कि नमक कम है कि ज्यादा ?

श्रोता या हृदया —तनिक विचार कर—कुछ कम सा लगता है ।

आप —अच्छा मिर्च कम है कि ज्यादा ?

श्रोता या हृदय --पुनः तनिक चखकर और विचार कर-यह कुछ ज्यादा लगती है । परन्तु थोड़ा सा नमक यदि और मिलादे तो यह भी ठीक हो जायेगी ।

इसी प्रकार आत्म पदार्थ के सम्बन्ध में विचार करके आप बता सकते हैं कि यह अधिक ज्ञानी है कि हीन ज्ञानी, विद्वान है कि मूर्ख, क्रोधी है कि शान्त ।

इस पर से जाना जाता है कि अभेद वस्तु को जानते समय भी आप विशेषणों को सर्वथा भूल गये हो, ऐसा नही है । उनके सम्बन्ध मे पृथक पृथक विचार करने पर वह विशेषण उसमे पृथक पृथक भी भासते हुए अवश्य प्रतीत होते है । तथा उस समय अभेद स्वाद प्रतीति मे नही आता । या यो कहिये कि वस्तु की विशेषता के सम्बन्ध मे विचार करते समय विशेषण मुख्य हो जाते हैं और विशेष गौण ।

उपरोक्त विस्तार पर से निम्न चार सिद्धान्त निकले --

१. वस्तु में या तदनुरूप प्रमाण ज्ञान में मुख्यता गौणता का विकल्प सर्वथा नहो होता । 'वहा' विशेषण व विशेष्य दोनो मुख्य है, गौण कोई नही ।

२. अनिष्पन्न शिष्य को पढ़ाते समय भेद या विशेषण मुख्य होते है और अभेद या विशेष गौण ।

३. वस्तु की विशेषताओं के सम्बन्ध मे किसी से पूछते या स्वय विचार करते समय भी सदा विशेषण या भेद मुख्य और विशेष्य गौण होता है ।

४. परन्तु किसी ज्ञानी से या अपने हृदय से स्वयं अपने अनुभव के सम्बन्ध मे बात करते समय या विचारते समय सदा विशेष्य या अभेद मुख्य होता है और विशेषण या भेद गौण ।

११

शास्त्रीय नय सामान्य

१ ज्ञान अर्थ व शब्द नय, २ वस्तु के सामान्य व विशेष अंश ३. द्रव्यार्थिक नय सामान्य ४. सप्त नय सामान्य

१. ज्ञान अर्थ व शब्द नय

वस्तु के एक देश को ग्रहण करने वाला ज्ञान नय कहलाता है, ऐसा पहिले भली भाति समझाया जा चुका है। अब उस नय की विशेषताये तथा भेद प्रेम भेदो का विस्तार से कथन प्रारम्भ किया जाता है। वस्तु को जानना ज्ञान का लक्षण है, इसलिये जितने प्रकार की वस्तु होती है, उतनी ही प्रकार का ज्ञान भी होना चाहिये। जगत मे वस्तु तीन प्रकार की उपलब्ध होती है - ज्ञानात्मक, अर्थात्मक और शब्दात्मक। तहां ज्ञान ज्ञेय संबध द्वारा वस्तु का ज्ञान मे जो प्रतिबिम्ब या प्रतिभास पड़ता है उसे ज्ञानात्मक वस्तु कहते है। वाच्य वाचक सम्बन्ध द्वारा वस्तु का शब्द में जो प्रतिभास पड़ता है उसे शब्दात्मक वस्तु कहते

है। अर्थ क्रिया रूप से वस्तु की जो अर्थ मे सत्ता रहती है उसे अर्थात्मक वस्तु कहते है। जैसे ज्ञान मे प्रतिबिम्बित 'गाय' ज्ञानात्मक गाय है। ब्लैक बोर्ड पर लिखा हुआ 'गाय' शब्द या मुख से बोला हुआ 'गाय' शब्द शब्दात्मक गाय है। और दूध देने रूप अर्थ क्रिया करने वाली असली 'गाय' अर्थात्मक गाय है। इन तीनो मे से ज्ञानात्मक वस्तु स्वयं जानी जा सकती है परन्तु न दूसरे को दिखाई जा सकती और न किसी प्रयोग मे लाई जा सकती है—जैसे ज्ञानात्मक गाय स्वय जानी जा सकती है परन्तु न किसी को दिखाई जा सकती है और न उससे दूध दूह कर पेट भरा जा सकता है शब्दात्मक वस्तु स्वय भी पढी व सुनी जा सकती है, दूसरे को भी पढाई व सुनाई जा सकती है, परतु उसे किसी प्रयोग मे नही लायी जा सकती—जैसे कि शब्दात्मक गाय या 'गाय' नाम का शब्द स्वय भी पढ़ा व सुना जा सकता, दूसरे को भी पढ़ाया व सुनाया जा सकता है परन्तु उससे दूध दूह कर पेट नही भरा जा सकता। अर्थात्मक वस्तु स्वय भी जानी व देखी जा सकती है, दूसरे को भी सुनाई व दिखाई जा सकती है और उस को प्रयोग मे भी लाया जा सकता है—जैसे दूध देने वाली गाय स्वय भी जानी व देखी जा सकती है, दूसरे को भी जनाई व दिखाई जा सकती है, और उस से दूध दूह कर पेट भी भरा जा सकता है।

इस प्रकार वस्तु तीन प्रकार की है—ज्ञानात्मक, शब्दात्मक व अर्थात्मक। चौथी प्रकार की वस्तु लोक मे नही है। तीन प्रकार की वस्तुओ का जानने वाला ज्ञान भी तीन प्रकार का होना चाहिये। ज्ञान दो प्रकार है—प्रमाण रूप और नय रूप। अखड वस्तु को जानने वाला एक रसात्मक ज्ञान प्रमाण कहलाता है और उस वस्तु के एक देश को जानने वाला अंश ज्ञान नय कहलाता है। अतः प्रमाण भी तीन प्रकार का है—ज्ञानात्मक प्रमाण—शब्दात्मक प्रमाण और अर्थात्मक प्रमाण। प्रत्यक्षज्ञान-ज्ञानात्मक प्रमाण है, आगम या द्रव्य श्रुत शब्दात्मक प्रमाण है, और वस्तु स्वयं अर्थात्मक प्रमाण है; नय भी

तीन प्रकार की है-ज्ञाननय शब्द नय और अर्थ नय। भावात्मक श्रुत ज्ञान रूप ज्ञान प्रमाण के एक देश को ग्रहण करने वाला 'ज्ञान नय' है। शब्दात्मक श्रुत ज्ञान रूप प्रमाण के अर्थात आगय के एक देश को ग्रहण करने वाला ज्ञान 'शब्दनय, है,अर्थात आगम मे प्रयुक्त अनेक प्रकार की युक्तियो वाला वाक्यो का ज्ञान 'शब्द नय' है। अथ अर्थात वस्तु के एक देश को, गुण को अथवा पर्याय को ग्रहण करने वाला ज्ञान 'अर्थ नय' है।

यद्यपि नय के तीन भेद कर दिये गये ज्ञान-अर्थ, व शब्द। परन्तु इसका यह अर्थ नही शब्द या अर्थ (वस्तु) स्वय नय रूप है, नय तो स्वय ज्ञान रूप ही है। वह ज्ञान जिस प्रकार की वस्तु का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है उस नाम से ही वह ज्ञान उपचार से पुकारा जाता है-जैसे कि घी के आश्रय भूत धड़े को भी घी का घड़ा उपचार से कहा जाता है। अत: ज्ञान को विषय करने वाला ज्ञान 'ज्ञान नय, कहा जाता है, अर्थ (वस्तु) को विषय करने वाला ज्ञान 'अर्थ नय, कहा है, और शब्द को विषय करने वाला ज्ञान 'शब्द नय, कहा जाता है। ये तीन हीं नय अपने स्वरूप से ज्ञानात्मक ही है, शब्दात्मक व अर्थात्मक नही।

यहा शंका हो सकती है कि अर्थ नय और शब्द नय कहना तो ठीक है, परन्तु ज्ञान नय कहना ठीक नही है। इसका भी कारण यह है कि ज्ञान 'अर्थ, को तथा 'शब्द, को तो विषय करता देखा जाता है, पर ज्ञान स्वयं ज्ञान को ही विषय करता हो, ऐसा देखा नही जाता। सो ऐसी शका करना युक्त नही है, क्योंकि दीपक की भांति 'ज्ञान, स्व पर प्रकाशक है। जिस प्रकार दीपक अन्य पदार्थो को तो प्रकाशित करता ही है, परन्तु स्वयं को भी वह स्वयं ही प्रकाशित कर लेता है, । उसे व्यक्त करने के लिये अन्य दीपक की आवश्यकता नही पड़ती। उसी प्रकार ज्ञान अन्य पदार्थों को तो जानता ही है, परन्तु

स्वयं अपने को भी वह स्वयं ही जान लेता है "मै यह ज्ञान घट पट आदि पदार्थो को जान रहा हूं इस प्रकार की अनुभव गम्य प्रतीति सर्वजन सम्मत है। इस प्रतीति को उत्पन्न करने के लिये अन्य ज्ञान की आवश्यकता नही पड़ती। इसलिये सिद्ध हुआ कि ज्ञान जिस प्रकार अर्थ व शब्द को विषय करता है। उसी प्रकार स्वय अपने को अर्थात ज्ञान को भी विषय करता है। इस प्रकार ज्ञान तीन प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण करने के कारण तीन प्रकार का बन जाता है—ज्ञान नय, अर्थ नय और शब्द नय।

फिर भी यहा यह शंका हो सकती है कि ज्ञानात्मक वस्तु को भी शब्दो द्वारा कहकर या लिखकर व्यक्त किया जाता है, अर्थात्मक वस्तु को भी शब्दो द्वारा कहकर या लिखकर व्यक्त किया जाता है और शब्दात्मक वस्तु तो स्वयं शब्दो रूप है। इस प्रकार जब तीनों नयों के विषयो को व्यक्ति एक शब्द द्वारा ही की जाती है, तब एक शब्द नय ही रही आओ, अन्य दो नय कहने की क्या आवश्यकता है। सो ऐसा कहना भी युक्त नही है। कारण कि यहा विषयो की शब्दों द्वारा व्यक्ति की अपेक्षा नही है बल्कि ज्ञान के प्रतिभास की अपेक्षा है। यह बात ठीक है कि कोई भी बात शब्द व्यवहार के बिना व्यक्त नही की जाती, परन्तु इस का यह अर्थ नही जो भी शब्द बोले जाये वे सब शब्दात्मक वस्तु को ही व्यक्त करते हों जिस प्रकार ज्ञानात्मक वस्तु को विषय करने वाला ज्ञान 'ज्ञान नय, है, उसी प्रकार ज्ञानात्मक वस्तु को वाच्य बनाने वाले शब्द व वाक्य भी 'ज्ञान नय, के कहे जायेगे। जिस प्रकार अर्थात्मक वस्तु को विषय करने वाला ज्ञान 'अर्थ नय, कहलाता है, उसी प्रकार अर्थात्मक वस्तु को वाच्य बनाने वाले शब्द व वाक्य भी 'अर्थ नय, के कहे जायेगे। जिस प्रकार शब्दात्मक वस्तु तो जानने वाले ज्ञान 'शब्द नय, उसी प्रकार शब्दात्मक वस्तु को अर्थात स्वय शब्दो को वाच्य बनाने वाले शब्द व वाक्य 'शब्द नय, कहे जायेगे। इस प्रकार सर्वत्र जानना, नही तो जब भी

समझाने व समझाने के लिये कुछ भी पूछा या कहा जायगा तब केवल शब्द नय की बात ही कही गई समझी जायेगी अन्य नयो की नही। आगे आने वाली सभी नयो का कथन यद्यपि शब्दो द्वारा किया जायगा और आगम मे उनका प्रयोग भी शब्दो द्वारा किया जायगा पर इस पर से यह नही समझना चाहिये कि सब कथन शब्द नय रुप है। शब्द भी तीन प्रकार क उपलब्ध है, ज्ञान वाचक अर्थ वाचक व शब्द वाचक जैसे 'विकल्प' शब्द ज्ञान वाचक है, जीव शब्द अर्थ वाचक है, स्वर व व्यजन शब्द शब्द वाचक है जिस प्रकार की वस्तु को वाच्य बनाना होता है उसी प्रकार के शब्द का प्रयोग वक्तव्य मे किया जाता है। तहा 'यह शब्द द्वारा कहा जा रहा है इस लिये शब्द नय है, इस प्रकार निर्णय करना योग्य नही। बल्कि इस शब्द द्वारा अमुक विषय को वाच्य बनाया जा रहा है इस प्रकार निर्णय करना योग्य है। अत नय तीन ही है-ज्ञान नय, अर्थ नय व शब्द नय

इन तीनो नयों के विषय के सम्बन्ध मे भी यहा विशेष प्रकार से विचार कर लेना चाहिये। ज्ञान, अर्थ व शब्द इन तीनों मे ज्ञान सब से बड़ी वस्तु है, अर्थ उससे छोटी वस्तु है और शब्द सबसे छोटी है। सो कैसे वही बताता हू। ज्ञान सत् व असत् सब प्रकार के अर्थ को जानने के लिये समर्थ है। सत्ता भूत पदार्थो को तो ज्ञान जानता ही है परन्तु कल्पना के आधार पर गधे का सीग, आकाश पुष्प, हौआ, अट्ट, विट्ट आदि बे सर पैर की बातो को जानने के लिये उसे कौन रोक सकता है? अत ज्ञान मे अर्थ व शब्द जन्य प्रतिभास भी होता है और कल्पना जन्य प्रतिमास भी। कल्पना जन्य प्रतिमास नियम से ज्ञान विपयक ही होता है, अर्थ व शब्द विषयक नही। और उस कल्पना जन्य प्रतिभास का विषय अर्थ है, व शब्द दोनो से अधिक है, क्योकि अर्थ व शब्द तो सीमित है और वह असीम। इसलिये ज्ञान सब से बडी वस्तु है। अर्थ व शब्द मे से अर्थ,वड़ा है और शब्द छोटा क्योकि द्रव्य

गुण पर्यायों मे सूक्ष्म स्थूल रूप से तथा द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप से रहने वाला अर्थ तो अनन्त है, परन्तु शब्द संख्यात मात्र से अधिक होने ही असम्भव है। दूसरी बात यह है कि शब्द केवल स्थूल अर्थ को विषय कर सकता है, सूक्ष्म को नही और जगत मे स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म अर्थ बहुत है। इसलिये शब्द का विषय अर्थ की अपेक्षा अत्यन्त अल्प है। इस प्रकार तीनों नयों के विषयों मे महान व लघु पना जान लेना चाहिये ज्ञान नय का विषय महान् है, अर्थ नय का उससे कम और शब्द नय का सब से कम।

आगे आने वाली सात नयों मे नैगम ज्ञान नय भी है और अर्थ नय भी। सग्रह, व्यवहार व ऋजु सूत्र ये तीन नयेँ अर्थ नय ही है। शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये तीन शब्द नय ही है। इस प्रकार उन सातो में एक नैगम नय ज्ञान नय है, नैगम संग्रह व्यवहार व ऋजु सूत्र ये चार नयें अर्थ नय हैं और शब्द समाभिरूढ तथा एवंभूत ये तीन नय शब्द नय हैं। आगे इन्ही का सरल भाषा मे दृष्टान्त आदि दर्शा कर व्याख्यान किया जायेगा।

२. वस्तु का सामान्य व विशेष अंश

शास्त्रीय सात नयों का विशेष व्याख्यान प्रारम्भ करने से पहिले यहां पूर्व कथित अर्थनय का सामान्य परिचय दे देना योग्य है क्योकि आगम में सर्वत्र अर्थ नय का ही कथन किया जाता है, ज्ञान व शब्द नय का कथन तो केवल उन नयो के लक्षण करके उनका किंचित परिचय कराने मात्र के लिये होता है। अथवा कदाचित कदाचित ही उनका प्रयोग करने मे आता है। अत इस ग्रंथ मे अर्थ नय का ही विस्तार किया जायेगा। अत ज्ञान नय या शब्द नय के विशेषण से रहित जितना कुछ भी कथन या विस्तार या नयों के भेद प्रभेद आगे इस ग्रथ मे अथवा अन्यत्र आगम मे किया गया है वह सब अर्थ नय की अपेक्षा ही किया गया समझना चाहिये।

अर्थात्मिक वस्तु का विश्लेषण करने पर उसमें दो मुख्य अंश दृष्टिगत होते है--सामान्य अश और विशेष अश । अनेक अर्थो में रहने वाली एकता को सामान्य अश कहते हैं और एक अर्थ में रहने वाली अनेकता को विशेष अश कहते हैं । वह सामान्य दो प्रकार का है-तिर्यक् सामान्य व ऊर्ध्व सामान्य । एक कालवर्ती व अनेक क्षेत्रवर्ती अनेक पदार्थों मे रहने वाली एकता को तिर्यक् सामान्य कहते हैं—जैसे खडी मुडी आदि अनेक गौवों मे रहने वाला एक गोत्व सामान्य । इसे सादृश्य सामान्य भी कहते हैं, क्योंकि इसमे 'यह भी गौ है, यह भी गौ ही है, यह भी गौ ही है' इस प्रकार का सादृश्य प्रत्यय प्राप्त होता है । एक कालवर्ती तथा एक क्षेत्रवर्ती अनेक पदार्थो मे रहने वाली एकता भी तिर्यक् सामान्य है—जैसे कि एक द्रव्य के अनेक सहभावी गुणों में अथवा उसके अनेक प्रदेशों मे रहने वाली एकता; क्योंकि इसमे भी 'इस गुण व प्रदेश रूप भी वही एक द्रव्य है जो कि उस दूसरे गुण व प्रदेश रूप है' इस प्रकार तद्भाव प्रत्यय की प्राप्ति हो रही है । अनेक कालवर्ती व एक क्षेत्रवर्ती अनेकों क्रमवर्ती अवस्थाओं मे अनुस्यूत एक द्रव्य ऊर्ध्व सामान्य है—जैसे आगे पीछे प्रगट होने वाली बालक युवा वृद्ध आदि अनेक अवस्थाओ मे अनुस्यूत एक मनुष्यत्व, क्योंकि यहा भी, 'यह भी वही मनुष्य है जो कि पहिले बच्चा था' इस प्रकार के एकत्व प्रत्यय की प्राप्ति हो रही है ।

विशेष अंश भी दो प्रकार का है—तिर्यक् विशेष व ऊर्ध्व विशेष । एक काल व एक क्षेत्रवर्ती अनेक विभिन्न पदार्थो मे रहने वाली व्यक्तिगत पृथकता तिर्यक् विशेष है—जैसे अनेक गौओ मे रहने वाली अनेकता, क्योंकि यहां जो यह गाय है वही यह दूसरी नही है' इस प्रकार व्यतिरेकी प्रत्यय प्राप्त होता है ।। अनेक कालवर्ती व एक क्षेत्रवर्ती आगे पीछे होने वाली एक ही द्रव्य की अनेक पर्यायों मे रहने वाली पृथकता ऊर्ध्व विशेष है—जेसे एक व्यक्ति

अर्थात्मक वस्तु का विश्लेपण करने पर उसमे दो मुख्य अश दृष्टिगत होते है--सामान्य अश और विशेष अंश । अनेक अर्थों में रहने वाली एकता को सामान्य अश कहते हैं और एक अर्थ में रहने वाली अनेकता को विशेप अंश कहते है । वह सामान्य दो प्रकार का है-तिर्यक् सामान्य व ऊर्ध्व सामान्य । एक कालवर्ती व अनेक क्षेत्रवर्ती अनेक पदार्थों मे रहने वाली एकता को तिर्यक् सामान्य कहते हैं–जैसे खडी मुडी आदि अनेक गौवों में रहने वाला एक गोत्व सामान्य । इसे सादृश्य सामान्य भी कहते हैं, क्योंकि इसमें 'यह भी गौ है, यह भी गौ ही है, यह भी गौ ही है' इस प्रकार का सादृश्य प्रत्यय प्राप्त होता है । एक कालवर्ती तथा एक क्षेत्रवर्ती अनेक पदार्थों मे रहने वाली एकता भी तिर्यक् सामान्य है–जैसे कि एक द्रव्य के अनेक सहभावी गुणो में अथवा उसके अनेक प्रदेशों मे रहने वाली एकता; क्योंकि इसमें भी 'इस गुण व प्रदेश रूप भी वही एक द्रव्य है जो कि उस दूसरे गुण व प्रदेश रूप है' इस प्रकार तद्भाव प्रत्यय की प्राप्ति हो रही है । अनेक कालवर्ती व एक क्षेत्रवर्ती अनेको क्रमवर्ती अवस्थाओ मे अनुस्यूत एक द्रव्य ऊर्ध्व सामान्य है–जैसे आगे पीछे प्रगट होने वाली वालक युवा वृद्ध आदि अनेक अवस्थाओं में अनुस्यूत एक मनुष्यत्व, क्योंकि यहा भी, 'यह भी वही मनुष्य है जो कि पहिले वच्चा था' इस प्रकार के एकत्व प्रत्यय की प्राप्ति हो रही है ।

विशेप अंश भी दो प्रकार का है–तिर्यक् विशेप व ऊर्ध्व विशेष । एक काल व एक क्षेत्रवर्ती अनेक विभिन्न पदार्थों मे रहने वाली व्यक्तिगत पृथकता तिर्यक् विशेष है–जैसे अनेक गौओं मे रहने वाली अनेकता, क्योंकि यहां जो यह गाय है वही यह दूसरी नही है' इस प्रकार व्यतिरेकी प्रत्यय प्राप्त होता है।। अनेक कालवर्ती व एक क्षेत्रवर्ती आगे पीछे होने वाली एक ही द्रव्य की अनेक पर्यायों मे रहने वाली पृथकता ऊर्ध्व विशेष है–जेसे एक व्यक्ति

मे आगे पीछे उदय होने वाला हर्ष व विषाद क्योंकि यहां भी जो हर्ष का स्वरूप है वही विषाद का नही है' इस प्रकार का विसदृश प्रत्यय प्राप्त होता है।

तात्पर्य यह कि एक ही समय मे अनेक पदार्थों में रहने वाली एक जातीयता तथा एक द्रव्य के अनेक गुणों में रहने वाला एक अन्वय तिर्यक् सामान्य है तथा अनेक समयवर्ती अनेक पर्यायों मे रहने वाला एक अन्वय (अनुस्यूत द्रव्य) उर्ध्व सामान्य है। इसी प्रकार एक समय मे अनेक पदार्थो में रहने वाली व्यक्तिगत पृथकता तथा एक द्रव्य के अनेक गुणों में रहने वाली विसदृशता तिर्यक् विशेष है और एक द्रव्य की आगे पीछे अनेक समयों मे होने वाली पर्यायो की परस्पर असमानता उर्ध्व विशेष है 'तिर्यक' शब्द क्षेत्र वाची है और 'उर्ध्व' शब्द काल वाची। इस प्रकार सामान्य व विशेष का स्वरूप यथा योग्य रूप से सर्वत्र समझना इस ग्रंथ मे जहां भी सामान्य या विशेष ये दो शब्द प्रयुक्त हों वहा वहा उपरोक्त अर्थो मे से यथा योग्य कोई एक अर्थ समझ लेना।

३ द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय सामान्य

वस्तु में नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत-असत्, तत्-अतत् आदि अनेकों सामान्य व विशेष अंश पाये जाते हैं। नित्यत्व, एकत्व, सत् व तत् उसके सामान्य अंश हैं और अनित्वत्व अनेकत्व असत व अतत उसके विशेष अंश है। इन सर्व सामान्य व विशेष अंशों का एक रसात्मक अखण्ड पिण्ड वस्तु है। इनमें से कोई भी एक अंश जिस दृष्टि में ग्रहण किया जाय उस दृष्टि विशेष को नय कहते है अथवा परिवर्तन पाते हुए जैसे बदलते हुए भी उस पदार्थ मे, 'यह वही है' इस प्रकार का उर्ध्व सामान्य ग्रहण जिस दृष्टि से होता है उसे नित्य ग्राहक सामान्य दृष्टि या नय कहते हैं, और उसकी परिवर्तन शील आगे पीछे की विभिन्न पर्यायों या अवस्थाओं में पृथकता देखते हुए 'यह वह

नहीं है जो कि पहले था' इस प्रकार का उर्ध्व विशेप रूप ग्रहण जिस दृष्टि से होता है उसे ही अनित्य ग्राहक विशेप दृष्टि कहते हैं--जैसे वालक,युवा व वृद्ध अवस्थाओं 'वही तो है' ऐसा ग्रहण करने वाली दृष्टि नित्य या सामान्य ग्राहक है और बालक से वृद्ध हो जाने पर 'यह तो कुछ अन्य ही है' ऐसा ग्रहण करने वाली दृष्टि अनित्य या विशेप ग्राहक दृष्टि कहलाती है। सामान्य ग्राहक दृष्टि का नाम द्रव्यार्थिक नय है और विशेष ग्राहक दृष्टि का नाम पर्यायार्थिक नय है।

द्रव्यार्थिक नय मे वस्तु की सत्ता सामान्य की मुख्य रहती है और उसके विशेषाश गौण रहते है, तथा पर्यायार्थिक नय मे उसके विशेपाश मुख्य रहते है और उसकी सत्ता सामान्य गौण रहती है। वस्तु के दो ही मूल अंश है अत' इनको ग्रहण करने वाली मूल नये भी दो है—द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक। इनके भी आगे अनेक प्रकार से भेद प्रभेद किये जायेगे। तहा द्रव्यार्थिक नय के दो मुख्य भेद है--अभेद ग्राहक व भेद ग्राहक और पर्यायार्थिक के भी अनादि अनन्त पर्याय ग्राहक, अनादि सान्त पर्याय ग्राहक, सादि पर्याय ग्राहक इत्यादि अनेको भेद हो जाते है जिनका विशेप परिचय आगे यथा स्थान दिया जायेगा।

गुण पर्याय आदि विशेषांशो को ग्रहण न करके उस वस्तु का एक रस रूप निर्विकल्प व अखण्ड भाव ग्रहण करने वाली दृष्टि किसी भी पदार्थ को अभेद देखती है, जैसे कि मनुष्य ऐसा कहने पर बालक युवा आदि के विकल्पो से रहित सामान्य मनुष्य का ग्रहण होता है। यही अभेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि है। और द्रव्य मे गुण पर्यायों आदि रूप से भेद उत्पन्न करके उनके समूह रूप मे उसे देखना भेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि है, जैसे 'मनुष्य' ऐसा कहने पर वालक से वृद्ध पर्यंत की सब उर्ध्व विशेष रूप अवस्थाओ का युगपत ग्रहण हो जाने

के कारण, बालक आदि अवस्थाओं का समूह ही मनुष्य है, या उष्णता व प्रकाशता आदि तिर्यक् विशेषो का समूह ही अग्नि है, इस प्रकार के विकल्प पूर्वक उस उस पदार्थ का ग्रहण करने मे आता है । इनमे से अभेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि को शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं और भेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं ।

पर्यायार्थिक दृष्टि मे काल कृत भेद की प्रमुखता है । वह काल सूक्ष्म व स्थूल दोनों प्रकार का हो सकता है, जिसके कारण से पर्याय भी सूक्ष्म व स्थूल के भेद से दो प्रकार की हो जाती है, ऐसा पहले वताया जा चुका है । सूक्ष्म पर्याय को अर्थ पर्याय और स्थूल पर्याय को व्यञ्जन पर्याय कहते हैं । इन दोनों मे से कोई सी भी एक पर्याय को मूल द्रव्य से पृथक करके, एक स्वतंत्र द्रव्य के रूप मे देखने वाली दृष्टि पर्यायार्थिक है । इस दृष्टि मे इस पर्याय का मूल द्रव्य के साथ कोई भी सम्बन्ध देखा नही जाता । देखा भी जा सकता है जब कि इस दृष्टि मे पर्याय से अतिरिक्त और कोई द्रव्य नाम का पदार्थ दीखता ही नही । जैसे-कि मनुष्य मनुष्य ही है, और तिर्यंच तिर्यंच ही । इनमे अनुस्यूत रूप से रहने वाला और जीव द्रव्य कौन है, यह जानने मे नही आता ।

अर्थ व व्यञ्जन पर्यायों मे से अर्थ पर्याय तो सर्वथा पर्यायार्थिक का ही विषय बन सकती है । क्योंकि वे व्यवहार गम्य नही है, पर व्यञ्जन पर्यायो मे बालक, युवा आदि कुछ ऐसी पर्यायें भी हैं, जिन मे अनुस्यूत एक व्यक्ति सामान्य सर्व सम्मत है तथा व्यवहार गम्य है । ऐसी पर्याय पर्यायार्थिक व द्रव्यार्थिक दोनों की विषय बनाई जा सकती हैं । बालक आदि को यदि स्वतत्र व्यक्ति के रूप मे ग्रहण करें तो वह पर्यायार्थिक का विषय बन जाती है, और उन्ही का यदि एक व्यक्ति सामान्य की किन्ही विशेष अवस्थाओ के रूप मे ग्रहण हो तो

नही है जो कि पहले था' इस प्रकार का उर्ध्व विशेष रूप ग्रहण जिस दृष्टि से होता है उसे ही अनित्य ग्राहक विशेष दृष्टि कहते हैं--जैसे वालक,युवा व वृद्ध अवस्थाओं 'वही तो है' ऐसा ग्रहण करने वाली दृष्टि नित्य या सामान्य ग्राहक है और बालक से वृद्ध हो जाने पर 'यह तो कुछ अन्य ही है' ऐसा ग्रहण करने वाली दृष्टि अनित्य या विशेष ग्राहक दृष्टि कहलाती है। सामान्य ग्राहक दृष्टि का नाम द्रव्यार्थिक नय है और विशेष ग्राहक दृष्टि का नाम पर्यायार्थिक नय है।

द्रव्यार्थिक नय मे वस्तु की सत्ता सामान्य की मुख्य रहती है और उसके विशेषाश गौण रहते है, तथा पर्यायार्थिक नय मे उसके विशेपाश मुख्य रहते है और उसकी सत्ता सामान्य गौण रहती है। वस्तु के दो ही मूल अश है अत: इनको ग्रहण करने वाली मूल नये भी दो है—द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक। इनके भी आगे अनेक प्रकार से भेद प्रभेद किये जायेगे। तहा द्रव्यार्थिक नय के दो मुख्य भेद है--अभेद ग्राहक व भेद ग्राहक और पर्यायार्थिक के भी अनादि अनन्त पर्याय ग्राहक, अनादि सान्त पर्याय ग्राहक, सादि पर्याय ग्राहक इत्यादि अनेकों भेद हो जाते है जिनका विशेष परिचय आगे यथा स्थान दिया जायेगा।

गुण पर्याय आदि विशेषांशो को ग्रहण न करके उस वस्तु का एक रस रूप निर्विकल्प व अखण्ड भाव ग्रहण करने वाली दृष्टि किसी भी पदार्थ को अभेद देखती है, जैसे कि मनुष्य ऐसा कहने पर बालक युवा आदि के विकल्पो से रहित सामान्य मनुष्य का ग्रहण होता है। यही अभेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि है। और द्रव्य मे गुण पर्यायों आदि रूप से भेद उत्पन्न करके उनके समूह रूप मे उसे देखना भेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि है, जैसे 'मनुष्य' ऐसा कहने पर बालक से वृद्ध पर्यंत की सब उर्ध्व विशेष रूप अवस्थाओ का युगपत ग्रहण हो जाने

के कारण, बालक आदि अवस्थाओं का समूह ही मनुष्य है, या उष्णता व प्रकाशता आदि तिर्यक् विशेषों का समूह ही अग्नि है, इस प्रकार के विकल्प पूर्वक उस उस पदार्थ का ग्रहण करने में आता है । इनमें से अभेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि को शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं और भेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं ।

पर्यायार्थिक दृष्टि मे काल कृत भेद की प्रमुखता है । वह काल सूक्ष्म व स्थूल दोनों प्रकार का हो सकता है, जिसके कारण से पर्याय भी सूक्ष्म व स्थूल के भेद से दो प्रकार की हो जाती है, ऐसा पहले बताया जा चुका है । सूक्ष्म पर्याय को अर्थ पर्याय और स्थूल पर्याय को व्यञ्जन पर्याय कहते हैं । इन दोनों मे से कोई सी भी एक पर्याय को मूल द्रव्य से पृथक करके, एक स्वतंत्र द्रव्य के रूप में देखने वाली दृष्टि पर्यायार्थिक है । इस दृष्टि मे इस पर्याय का मूल द्रव्य के साथ कोई भी सम्बन्ध देखा नही जाता । देखा भी जा सकता है जब कि इस दृष्टि मे पर्याय से अतिरिक्त और कोई द्रव्य नाम का पदार्थ दीखता ही नही । जैसे-कि मनुष्य मनुष्य ही है, ओर तिर्यंच तिर्यंच ही । इनमे अनुस्यूत रूप से रहने वाला ओर जीव द्रव्य कौन है, यह जानने मे नही आता ।

अर्थ व व्यञ्जन पर्यायों मे से अर्थ पर्याय तो सर्वथा पर्यायार्थिक का ही विषय बन सकती हैं । क्योंकि वे व्यवहार गम्य नही है, पर व्यञ्जन पर्यायो मे बालक, युवा आदि कुछ ऐसी पर्यायें भी है, जिन मे अनुस्यूत एक व्यक्ति सामान्य सर्व सम्मत है तथा व्यवहार गम्य है । ऐसी पर्याय पर्यायार्थिक व द्रव्यार्थिक दोनों की विषय बनाई जा सकती हैं । बालक आदि को यदि स्वतत्र व्यक्ति के रूप मे ग्रहण करें तो वह पर्यायार्थिक का विषय बन जाती है, और उन्ही का यदि एक व्यक्ति सामान्य की किन्ही विशेष अवस्थाओं के रूप मे ग्रहण हो तो

वही अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय बन जाती है, क्योंकि यहा उसके सम्बन्ध से द्रव्य ही प्रमुखतः देखा जा रहा है ।

अर्थ व व्यञ्जन पर्यायों मे से अर्थ पर्याय तो सर्वथा पर्यायार्थिक नय का ही विषय बन सकती है, क्योंकि उसमे किसी प्रकार भी अन्य पर्याय दिखाई नही देती और इसलिये निर्विशेप है । परन्तु मनुष्यादि व्यञ्जन पर्याये सर्वथा निर्विशेप नही है । यद्यपि द्रव्य की दृष्टि से वह अवश्य निर्विशेष है क्योंकि किसी एक व्यक्ति गत मनुष्य में अन्य मनुष्य की सत्ता नही है, परन्तु क्षेत्र की अपेक्षा उसका असख्यात प्रदेशी एक अखण्ड क्षेत्र अनेकों प्रदेशो मे अनुगत है, काल की अपेक्षा भी वह बालक युवा वृद्ध आदि विशेष पर्यायो मे अनुगत है और इसी प्रकार भाव की अपेक्षा भी बालक आदि के अनेक भाव विशेषो मे अनुगत है, इसलिये कथाचित सविशेप भी है । इसलिये वह द्रव्यार्थिक अ पर्यायार्थिक दोनों नयों के विपय बन सकते है ।

मनुष्य को यदि बालक आदि पर्यायो से निर्पेक्ष एक स्वतत्र व्यक्ति की अखण्ड सत्ता के रूप मे ग्रहण करे तो वह पर्यायार्थिक का विषय है, और यदि बालक आदि पर्यायो के पिण्ड रूप से ग्रहण करे तो अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है, क्योकि यहा अनेक पर्यायो मे अनुगत एक सामान्य अश दृष्टिगत हो रहा है ।

इसी प्रकार द्रव्य क्षेत्र व भाव मे भी लागू करे । द्रव्य की अपेक्षा एक से अधिक द्रव्यो मे किसी प्रकार का एक क्षेत्रा व गाह या निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध देखना द्रव्यार्थिक नय का विपय है, और सर्व अन्य द्रव्यो के सम्बन्ध से सर्वथा रहित एक व्यक्तिगत द्रव्य की ही स्वतत्र सत्ता देखना पर्यायार्थिक नय का विषय है । इस दृष्टि में न जीव व कर्म आदि का संयोग सम्भव है और न किसी के

निमित्त से कुछ कार्य की सिद्धि सम्भव है। क्षेत्र की अपेक्षा एक से अधिक प्रदेशो का परस्पर मे स्पर्श देखना द्रव्यार्थिक नय का विषय है जैसे द्रव्य अनेक प्रदेशी है। और केवल एक प्रदेश की पृथक सत्ता को देखना पर्यायार्थिक नय का विषय है। इस नय से एक प्रदेशी ही द्रव्य हो सकता है, इससे बड़ा नही। काल की अपेक्षा एक से अधिक पर्यायो की परस्पर में एकता देखना द्रव्यार्थिक नय का विषय है जैसे तिर्यंच व मनुष्य आदि रूप से परिणमन करने वाला एक ही जीव है। और पूर्व व उत्तर पर्यायों से रहित केवल वर्तमान पर्याय मात्र ही द्रव्य की सत्ता देखना पर्यायार्थिक नय का विषय है जैसे मनुष्य विशेष एक स्वतत्र द्रव्य है। इस नय से पर्याय ही स्वयं द्रव्य है, अत: न द्रव्य पर्याय का कारण है और न पूर्व पर्याय ही उसका कारण है। वास्तव मे वहा कार्य कारण भाव ही धटित नही होता। भाव को अपेक्षा एक से अधिक भावों की परस्पर में एकता देखना द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे ज्ञान दर्शन आदि गुणो का समूह जीव है। और केवल स्वलक्षण भूत एक रसात्मक कोई एक व अविभागी भाव स्वरूप ही द्रव्य को देखना पर्यायार्थिक नय है। इस नय से एक द्रव्य मे अनेक गुण नही हो सकते, तथा किसी एक गुण मे भी शक्ति की हानि बृद्धि नही हो सकती।

अधिकार नं ८ के अन्त मे नय के भेद प्रभेदों का चार्ट दिया गया है। पाठक गण एक बार यहां उस पर दृष्टि पात कर ले। वहा नयो के भेद दो अपेक्षाओं से करने मे आये है—आगम पद्धति से और अध्यात्म-पद्धति से। इन दोनों मे पहिले आगम पद्धति की अपेक्षा नयो का प्ररूपण करूंगा। उस मे दो अपेक्षाये है—शास्त्र की तथा वस्तु की। यहां पहिले शास्त्रीय दृष्टि से नयों का कथन करूगा, तत्पश्चात वस्तु की अपेक्षा से। प्रकृत मे सात नये है नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत। इनमे से नैगम, सग्रह व व्यवहार ये तीन नये द्रव्यार्थिक है और ऋजुसूत्र नय पर्याया-

र्थिक । शब्दादि आगे तीन की नये यद्यपि शव्द नय के भेदो में गर्भित हैं, परन्तु इनको पर्यायार्थिक ही समझा जाता है, क्योंकि इनका विषयभूत शव्द स्वय एक व्यञ्जन पर्याय है ।

नय की उपरोक्त दोनो श्रेणियो मे इतना अन्तर है कि शास्त्रीय सात नये तो विपय भूत वस्तु की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता को दृष्टि मे रखकर उत्पन्न हुए है और वस्तु भूत अगली नये केवल वस्तु मे दीखने वाले अनेको सरल विकल्पो को दृष्टि मे रखकर उत्पन्न हुए है । इन सात नयों की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता आगे वताई जाने वाली है ।

४ सप्त नय सामान्य

नयों के उपरोक्त सात भेदो के नाम है—नैगम, सग्रह, व्यवहार ऋजु सूत्र, शव्द, समाभिरूढ़ व एवभूत । इनके भी आगे अनेक उत्तर भेद हो जाते है, जैसाकि पहिले अधिकार न. ८ मे नयो का चार्ट बना कर दर्शाये गये है । उनका विशेष कथन उस उस नय की व्याख्या करते समय किया जायेगा । यहा तो केवल इनका सामान्य व सक्षिप्त परिचय देना ही दृष्ट है ।

जैसा कि पहिले वताया गया है नैगम नय ज्ञान नय भी है और अर्थ नय भी है । अत इस नय के दो लक्षण होते है—एक ज्ञान नय की अपेक्षा और एक अर्थ नय की अपेक्षा । ज्ञान नय की अपेक्षा यह नय सकल्प मात्र ग्राही है । अर्थात कोई एक विचारक जव केवल सकल्प या कल्पना के आधार पर किसी भी पदार्थ का चितवन करने लगता है अथवा कोई वक्ता अपनी उस कल्पना का कथन करने लगता है तव उसके ज्ञान मे प्रतिभासित वह कल्पित विषय, यद्यपि असत् है परन्तु नैगम नय की दृष्टि से सत्ताभूत कहा जाता है । नैगम नय ज्ञान नय होने के कारण सत् व असत् दोनों को विषय कर सकता है, क्योकि कल्पना या संकल्प के लिये कोई ऐसा नियम नहीं कि वह सत्ताभूत पदार्थ के सम्वन्ध मे ही उत्पन्न हो । सत्ताभूत

गुलाब के फूलो का सेहरा और असत्ताभूत आकाश के फूलो का सेहरा दोनो ही कल्पना मे सत् है।

अर्थ नय की अपेक्षा करने पर नैगम नय का लक्षण 'एक को ग्रहण न करके दो को ग्रहण करना' है। अर्थात सग्रह नय के विषय भूत अभेद को, तथा व्यवहार नय के विषयभूत भेद को दोनो को ही ही युगपत परन्तु मुख्य गौण के विकल्प से ग्रहण करना नैगम नय है। तहा सग्रह नय अनेको मे अनुगत सामान्य को ही ग्रहण करके वस्तु को एक मानता है और व्यवहार नय उसी वस्तु मे अनेको द्रव्य गुण व पर्याय गत विशेषों का ग्रहण करके उसे अनेक रूप मानता है। जैसे 'जीव एक है' यह संग्रह नय कहलाता है ओर 'जीव दो प्रकार का है–ससारी व मुक्त' यह व्यवहार नय कहलाता है परन्तु इन दोनो नयों के विषयो को मुख्य गौण भाव से युगपत ग्रहण करना नैगम नय का विषय है। उसमे कही सग्रह नय का अभेद विषय मुख्य होता है तो व्यवहार नय का भेद विषय गौण हो जाता है–जैसे जो यह संसारी व मुक्त दो प्रकार का कहा जा रहा है वह वास्तव मे एक जीव ही है। कही व्यवहार नय का भेद विषय मुख्य हो जाता है और सग्रह नय का अभेद विषय गौण हो जाता है-जैसे यह जो एक जीव कहा जा रहा है वही ससारी व मुक्त के भेद से दो प्रकार का है। नैगम के इस लक्षण का विषय सत्ताभूत पदार्थ ही है, क्योंकि यह अर्थ नय है।

संग्रह नय व व्यवहार नय ये दोनों अर्थ नये है, इसलिये वे सत्ताभूत पदार्थ को ही अभेद या भेद रूप विषय करती है। उनमे से भी संग्रह नय एक अभेद व सामान्य पदार्थ को, उसके उत्तर भेदों या विशेषताओ को दृष्टि से ओझल करके, एक रूप से ग्रहण करता है, जबकि व्यवहार नय उसके द्वारा ग्रहण किये गये विषय के अनेक भेदों को अथवा उसकी अनेक विशेषताओं को दर्शाता है।

जैसे संग्रह नय की अपेक्षा वृक्ष एक पदार्थ है, परन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा वही वृक्ष पदार्थ आम, नीबू, आदि अनेकों प्रकार का होता है। सग्रह नय की अपेक्षा जीव एक है और व्यवहार नय की अपेक्षा वह दो प्रकार का है-ससारी व मुक्त ये दोनो नये द्रव्यार्थिक नय के अन्तर्गत है। इनमे से संग्रह नय अभेद ग्राही होने के कारण शुद्ध द्रव्यार्थिक है और व्यवहार नय भेद ग्राहक होने के कारण अशुद्ध द्रव्यार्थिक है।

ऋजु सूत्र नय भी अर्थ नय है, परन्तु सर्वथा विशेष ग्राही है। यह पदार्थ की किसी एक समय वर्ती सूक्ष्म पर्याय मे ही परिपूर्ण पदार्थ की कल्पना करता है, इसलिये यह पर्यायार्थिक नय है। इस नय की दृष्टि मे पदार्थ एक समय स्थायी है। उत्तर समय मे उसका सर्वथा निरन्वय नाश हो जाता है, और कोई नया ही पदार्थ उत्पन्न होता है।

शब्द समभिरूढ़ व एवंभूत ये तीनों नये शब्द या वचन नय के भेद है। शब्द क्योंकि स्वय एक पर्याय है इसलिये भले ही शब्द द्रव्य को वाच्य बनाये परन्तु उसे विषय करने वाली ये नये पर्यायार्थिक है। ये पर्यायार्थिक नये उस शब्द के वाच्यभूत पदार्थ को विषय न करके केवल उस वाचक शब्द के सम्बन्ध मे ही तर्क वितर्क करते है। ऋजु सूत्र पर्यन्त की अब तक अर्थ नयो मे शब्द गत सूक्ष्म दोषो का विचार न करके किन्ही भी शब्दों या कैसे भी वाक्यों के द्वारा अर्थ का प्ररूपण कर दिया जाता था, परन्तु ये शब्द नय उन शब्दों के अर्थ मे अथवा उनके प्रयोग मे सूक्ष्म से सूक्ष्म भी दोष न आने पाये ऐसा विवेक उत्पन्न कराते है।

ऋजुसूत्र नय भिन्न लिंग व संख्या आदि के भी अनेक शब्दों को एकार्थ वाची मानकर अपने अर्थ का प्रतिपादन करने के लिये उन शब्दों मे कोई सा भी शब्द कहीं भी प्रयुक्त कर देता था।

परन्तु शब्द नय उन सर्व शब्दों मे से समान लिंग व संख्या आदि के ही शब्दों को एकार्थ वाची स्वीकार करता है, और वाक्य मे उनका ही एक प्रयोग करता हुआ वाक्य में से लिग संख्या आदि के व्यभिचार को दूर करता है । जैसे 'दार' आदि ५ पुलिगी शब्द, 'भार्या, आदि ५ स्त्री लिगी शब्द और 'कलत्र आदि ५ नपुसक लिंगी शब्द इन १५ शब्दों का ऋजुसूत्र की दृष्टि मे एक ही वाच्य अर्थ है परन्तु शब्द नय की दृष्टि मे 'दार आदि ५ पुलिंगी शब्दो का अन्य अर्थ है, 'भार्या आदि ५ स्त्री लिंगी शब्दो का अन्य अर्थ है तथा 'कलत्र आदि पाच नपुसक लिगी शब्दों का अन्य ही अर्थ है, क्योंकि इनमे लिंग भेद से भेद पाया जाता है ।' यद्यपि शब्द नय एकार्थ वाची शब्दों को स्वीकार करता है, परन्तु समान लिंगादि वाले ही शब्दों को न कि ऋजु सूत्र वत् भिन्न लिंगादि वालों को भी ।

समभिरूढ़ उससे भी आगे बढ जाता है । उसकी दृष्टि मे एकार्थ वाची शब्द हो ही नही सकते । भले ही 'दार आदि पांच शब्दों का एक ही लिग हो परन्तु पद भेद से उनमे भेद पाया जाता है । इसलिये समान लिगी भी उन पांच पाच शब्दों का पृथक पृथक वाच्य अर्थ है । अर्थात यह नय १५ शब्दों के १५ अर्थ मानता है । परन्तु इतनी बात अवश्य है कि जो भी शब्द वह अपने अर्थ के लिये प्रयुक्त करता है उसे सर्वथा रूप से करता है, अर्थात उस पदार्थ की किसी समय कैसी भी अवस्था या पर्याय क्यों न हो रही हो अथवा व पदार्थ कुछ भी कार्य क्यों न कर रहा हो, परन्तु वह सर्वदा उन १५ शब्दों मे से यथा योग्य किसी एक शब्द का ही वाच्य बनाया जाता रहेगा । जैसेकि पूजा करता हो या राज्य करता हो या युद्ध करता हो, सभी अवस्थाओं मे 'इन्द्र' इन्द्र ही है ।

एवभूत नय इससे भी आगे निकलकर सूक्ष्म से सूक्ष्म भी दोष को दूर करता हुआ उस एक पदार्थ के लिये भिन्न भिन्न समयों मे भिन्न

भिन्न शब्दो का प्रयोग करता है। उसकी दृष्टि मे पूजा का कार्य करते समय इन्द्र पुजारी हो सकता है पर इन्द्र नही, और आज्ञादि चलाते समय वही इन्द्र हो सकता है परन्तु पुजारी व शक्र नही, युद्ध करते समय वह शक्र ही है, इन्द्र व पुजारी नही इत्यादि ।

५. सात नयो में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता

इन नयो में पहिले पहिले नय अधिक विषय वाले है और आगे आगे के नय परिमित विपय वाले है। सग्रह नय सत् मात्र को जानता है और नैगम नय सकल्प मात्र के द्वारा सत् व असत् दोनो को ग्रहण करता है। सत् में भी सग्रह नय केवल सामान्य अश को ग्रहण करता है और नैगम नय सामान्य व विशेप दोनो को जानता है, इसलिये सग्रह नय की अपेक्षा नैगम नय का अधिक विपय है। व्यवहार नय सग्रह से जाने हुए पदार्थों को विशेप रूप से जानता है, ओर सग्रह समस्त सामान्य पदार्थ को जानता है, इसलिये सग्रह नय का विपय व्यवहार नय से अधिक है। व्यवहार नय तीनो कालो के पदार्थो को अथवा परस्पर सम्वद्ध सर्व क्षेत्राशो व भावाशो को जानता है और ऋजु सूत्र से केवल वर्तमान पदार्थ का अथवा किसी एक अविभागी क्षेत्र व भाव का ही ज्ञान होता है, अतएव व्यवहार का विपय ऋजु सूत्र से अधिक है।

शब्द नय काल, कारक आदि के भेद से वर्तमानव्यञ्जन पर्याय को जानता है, ऋजु सूत्र मे काल आदिका कोई भेद नही है, इसलिये शब्द नय से ऋजु सूत्र का विषय अधिक है। समभिरूढ़ नय इन्द्र शक्र आदि पर्याय वाची शब्दो को भी व्युत्पत्ति की अपेक्षा भिन्न रूप से जानता है, परन्तु शब्द नय मे यह सूक्ष्मता नही रहती अर्थात वह सव पर्याय वाची शब्दो को सर्वथा एकार्थ वाचक स्वीकार करता है अत. समभिरूढ से शब्द नय का विषय अधिक है। समभिरूढ से जाने हुए पदार्थों मे तत्क्षणवर्ती क्रिया के भेद से वस्तु के नाम मे भेद मानना एवंभूत है. जैसे समभिरूढ की अपेक्षा पुरन्दर और शचीपति

मे भेद होने पर भी, नगरो का नाश करते व न करते समय पुरन्द शब्द इन्द्र के अर्थ मे प्रयुक्त होता है परन्तु एवभूत की अपेक्षा नगरो का नाश करते समय ही इन्द्र को पुरन्दर नाम से कहा जा सकता है। अतएव एवभूत से समभिरूढ़ नय का विपय अधिक है।

अन्य प्रकार से भी इन सातो नयो की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता का विचार किया जा सकता है। यह निम्न प्रकार:–

१. 'प्रमाण ज्ञान' भी वस्तु के सामान्य व विशेषाशों को युगपत ग्रहण करता है परन्तु मुख्य गौण के विकल्प रहित एक रसात्मक अखण्ड रूप मे, अत: इसका विषय सबसे महान है।

२. 'नैगम नय' भी वस्तु के भेदात्मक व अभेदात्मक दोनों सामान्यो को युगपत ग्रहण करता है परन्तु मुख्य गौण के विकल्प सहित खण्डि रूप में। अतः इसका विषय प्रमाण के विषय से अल्प है। अर्थात भेद व अभेद दोनों अंशो को युगपत ग्रहण करने पर भी वह प्रमाण नही कहा जा सकता क्यों कि इसका विशय मुख्य गौण व्यवस्था सहित सविकल्प है, और प्रमाण का विषय मुख्य गौण व्यवस्था से रहित निर्विकल्प।

३ 'संग्रह नय' नैगम के विषय मे से अनेक विशेषो रूप अथवा भेदों रूप सामान्य को छोड़कर केवल उन विशेषों या भेदो मे अनुगत एक अभेदात्मक सामान्य अश को ही परिपूर्ण वस्तु रूप से स्वीकार करता है। अत. इसका विषय नैगम से अल्प है।

४. 'व्यवहार नय' नैगम के विषय मे से अभेदात्मक सामान्यांश को छोड़कर उसको केवल भेदात्मक अश को अर्थात उस एक

सामान्य मे रहने वाले अनेक भेदो या विशेषों को युगपत ग्रहण करके भेदात्मक सामान्य को परिपूर्ण वस्तु स्वीकार करता है। अत इसका विषय भी नैगम से अल्प है। अभेद ग्राही सग्रह नय से भी इसका विषय अल्प है, क्योकि अभेद की अपेक्षा भेद अल्प होता है।

५. 'ऋजु सूत्र नय' व्यवहार के विषय भूत भेदो व विशेषों मे से भी केवल अन्तिम एक भेद या विशेष को पृथक निकाल कर उसे ही परिपूर्ण वस्तु रूप से ग्रहण करता है। अतः इसका विषय व्यवहार नय से भी अल्प है।

६. 'शब्द नय' ऋजु सूत्र नय द्वारा स्वीकृत एकार्थ वाची अनेक शब्दों मे से केवल समान लिंगादि वाले कुछ कुछ शब्दों को ही एकार्थ वाची स्वीकार करता है। अत. इसका विषय ऋजु सूत्र से भी अल्प है।

७. 'समभिरूढ़ नय' शब्द नय के द्वारा स्वीकृत एकार्थ वाची समान लिगी आदि अनेक शब्दों मे से भी एक एक शब्द का एक एक ही अर्थ स्वीकार करता है। अतः इसका विपय शब्द नय से भी अल्प है।

८. 'एवंभूतनय' समभिरूढ़ नय द्वारा स्वीकृति शब्द को भी वस्तु की सर्व अवस्थाओं का सामान रूप से वाचक स्वीकार न करके, उसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं के वाचक भिन्न भिन्न शब्द स्वीकार करता है। अत. इस नय का विषय समभिरूढ़ नय से भी अल्प है।

इस प्रकार विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सातों नयों में नैगम नय सबसे अधिक स्थूल है, संग्रह उसकी अपेक्षा

सूक्ष्म है, व्यवहार उससे भी सूक्ष्म है और ऋजु सूत्र व्यवहार से भी अधिक सूक्ष्म है । ऋजु सूत्र से भी आगे शब्द नय सूक्ष्म, समभिरूढ़ सूक्ष्म तर और एवंभूत सूक्ष्म तम है । इस बात का विशेष स्पष्टीकरण उन उन नयों के लक्षणादि हो जाने के पश्चात भली भांति हो जायेगा ।

इनकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मता को दर्शाने के लिये धवलाकार ने एक उदाहरण दिया है ।

ध ।७।२८। गा १-६ का अनुवाद

१. किसी मनुष्य को पापी लोगों का समागम करते हुए देखकर नैगम नय से कहा जाता है कि यह पुरुष नारकी है ।१।

२. (जब वह मनुष्य प्राणिवध करने का विचार करके सामग्री का संग्रह करता है, तब वह सग्रह नय से नारकी कहा जाता है ।

३. व्यवहार नय का वचन इस प्रकार है-जब कोई मनुष्य हाथ मे धनुष और बाण लिये मृगो की खोज मे भटकता फिरता है, तब वह नारकी कहलाता है ।२।

४. ऋजु सूत्र नय का वचन इस प्रकार है—जब आखेट स्थान पर बैठकर पापी मृगो पर आघात कर । वह नारकी वहलाता है ।३।

५. शब्द नय का वचन इस प्रकार है—जब जन्तु प्राणो से वियुक्त कर दिया जाये तभी वह आघात करने वाला हिंसा-कर्म से संयुक्त मनुष्य नारकी कहा जाये ।४।

६. समभिरूढ नय का वचन इस प्रकार है—जब मनुष्य नारक कर्म का बन्धक होकर नारक कर्म से सयुक्त हो जाये तभी वह नारकी कहा जाये ।५।

७. जब वही मनुष्य नरक गति को पहुचकर नरक के दुःख अनुभव करने लगता है, तभी वह नारकी है, ऐसा एवभूत नय कहता है ।

---

११. नय चार्ट

ा
र
है
थं
ना
थं

चार्ट नं. २

शास्त्रीय नय
पर्यायार्थिक
व्यवहार
शुद्ध
अशुद्ध
अर्थ नय
शब्द नय
ऋजु सूत्र
शब्द
समाभिरूढ
एवभूत
शुद्ध
अशुद्ध
नैगम
द्रव्य पर्याय नैगम
व्यजन पर्याय नैगम
अर्थ पर्याय नैगम
शुद्धद्रव्यार्थ पर्याय नैगम
अशुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम
शुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय नैगम
अशुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय नैगम
द्रव्य एव भूत नैगम

१३
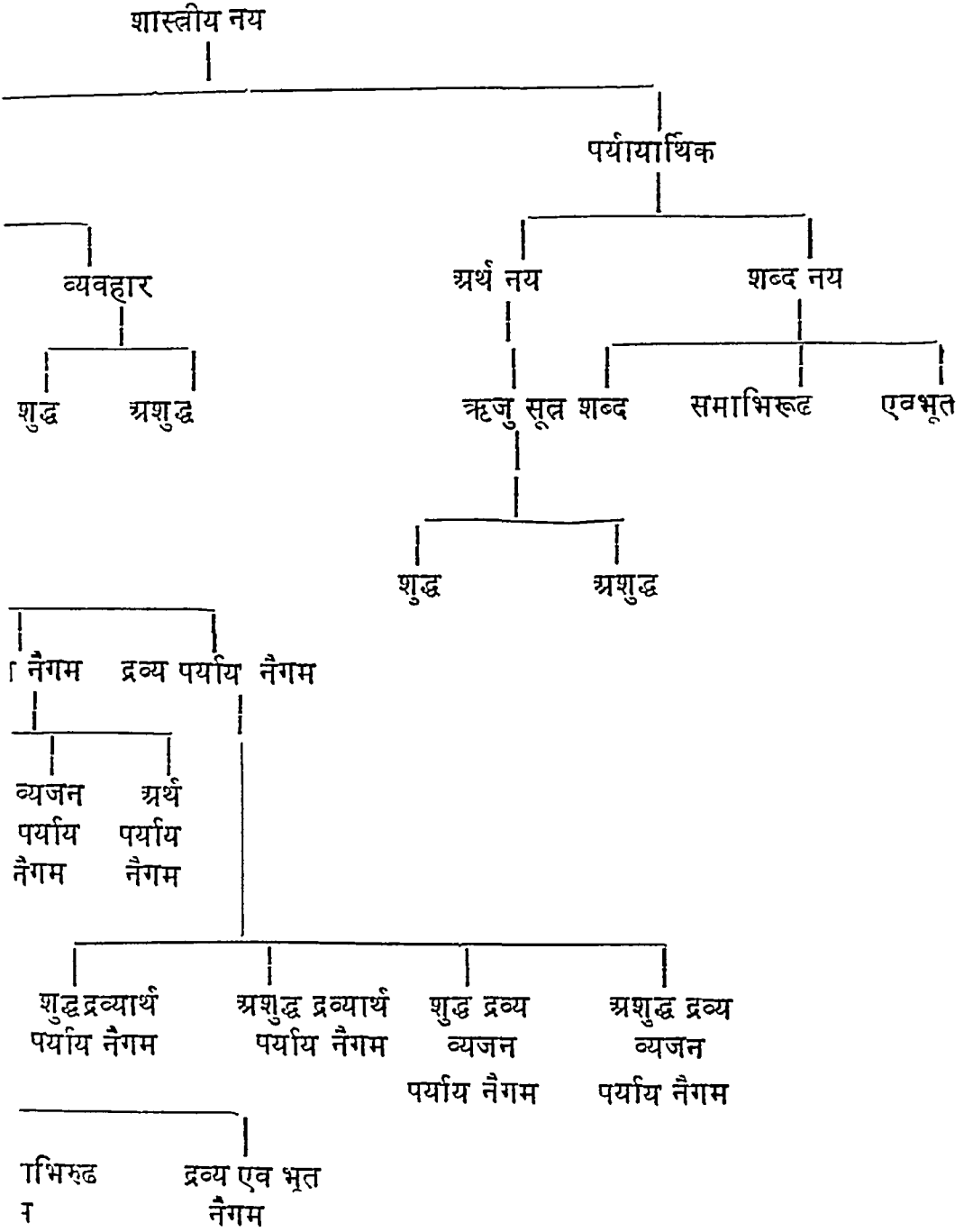
नैगम नय

१. नैगम नय सामान्य, २. नैगम नय के भेद प्रभेद, ३. मूल वर्तमान व भावि नैगम, ४. द्रव्य नैगम नय, ५. पर्याय नैगम नय, ६. द्रव्य पर्याय नैगम नय ७. नैगम नय के भेदों का समन्वय

१ नैगम नय सामान्य

जैसा कि पहले वताया जा चुका है नैगम नय अत्यन्त व्यापक है, क्योकि यह ज्ञान नय है। ज्ञान सकल्प मात्रहोता है। वह सत् पदार्थ सम्बन्धी भी हो सकता है और असत् पदार्थ सम्बन्धी भी। सत् पदार्थ सबधी ज्ञान तो सर्व सम्मत है ही जैसे कि मनुष्य तथा वृक्षादि संबधी ज्ञान। परन्तु असत् पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान भी असिद्ध नही है। भले ही आकाश पुष्प की माला की सत्ता लोक मे न हो पर संकल्प ज्ञान उसको भी गूथने मे शमर्थ

है। भले ही गधे को सीग न होते हो, पर ज्ञान मे सीग वाले गधे की कल्पना होना भी सम्भव है। अर्थ नय तो केवल सत्ता भूत पदार्थ को ही जान सकता है परन्तु ज्ञान या नैगम नय का व्यापार उपरोक्त प्रकार से असत् पदार्थ मे भी होता है।

सत्ता भूत पदार्थ मे भी इस नय का व्यापार अत्यन्त विस्तृत है। संग्रह व व्यवहार दोनो अर्थ नये इसके पेट मे पड़ी हैं। ज्ञान नय होने के कारण यह वस्तु की त्रिकाली पर्यायो का ग्रहण या संकल्प करने मे समर्थ है, भले हो वस्तु मे वे पर्याये विनष्ट हो चुकी है या अभी उत्पन्न नही हुई है। यह नय सर्व गुणों की त्रिकाल गोचर पर्यायो वाले द्वैत को एक माला के रूप मे गूथ कर उसे अद्वैत रूप प्रदान कर सकता है इसलिये अर्थ नय के अन्तर्गत भी द्रव्यार्थिक के रूप में इसका ग्रहण होता है।

उपरोक्त प्रकार इसकी व्यापकता का परिचय निम्न लक्षणों पर से आका जा सकता है।

१ लक्षण न० १—पहिला लक्षण तो 'नैगम' शब्द की व्युत्पत्ति पर से लिया गया है। 'निगम' शब्द का अर्थ सकल्प है। उसमे जो रहे सो नैगम है। निगम शब्द का अर्थ है 'अन्दर से बाहर निकलना'। ज्ञान मे से स्वय फूट कर बाहर निकलना निगम कहलाता है, अर्थात् शान्त व स्थिर ज्ञान मे सहसा ही जो विकल्प उत्पन्न होता है, उसे निगम कहते हैं। उस निगम या विकल्प अथवा सकल्प में जो रहे सौ नैगम है। इस प्रकार नैगम नय संकल्प मात्र ग्राही प्राप्त होता है।

सकल्प भी दो प्रकार का हो सकना सम्भव है—प्रमाण भूत व अप्रमाणभूत। सत्ता धारी किसी पदार्थ के सम्बन्ध मे होने वाला संकल्प प्रमाण भूत है, जैसे राजकुमार मे राजापने का सकल्प अथवा

राजभ्रष्ट व्यक्ति मे राजापने का संकल्प अथवा नाटक के किसी पात्र मे राजापने का संकल्प, अथवा खड़ाऊ या राजमुद्रा आदि में राजा का सकल्प । असत् पदार्थ के सम्बन्ध मे होने वाला सकल्प अप्रमाण भूत है, जैसे विन्ध्यापुत्र के लिये आकाश पुष्प का सेहरा गूथने का संकल्प, अथवा सीग वाले घोड़े पर सवारी करने का सकल्प अथवा स्वप्न की अनेको ऊँटपटांग वातों के सम्वन्ध में विचारने का सकल्प ।

भले ही काम करना अभी प्रारम्भ भी न किया हो, पर चित्त में उसे करने का संकल्प मात्र प्रगट हो जाने पर, वह कार्य जिस दृष्टि मे निश्चित रूपसे समाप्त हो गया वत् प्रतिभासित होने लगता है, वही नैगम नय है, जैसे अभी देहली नही गये पर देहली जाने का विचार ही करने पर "मैं देहली जा रहा हूँ" ऐसा कहने का व्यवहार होता है । इस प्रकार संकल्प मात्र के द्वारा भूत कालीन वस्तु को अथवा भविप्यत कालीन वस्तु को वर्तमान वत् देखा जा सकता है, और इसी प्रकार अप्रमाण भूत काल्पनिक वातों को भी ज्ञान के विकल्प मे सत्-स्वरूप वत् देखा जा सकता है । बस प्रमाण भूत व अप्रमाणभूत दोनो प्रकार के विपयो को सत् स्वरूप देखना नैगम नय का लक्षण है ।

२ लक्षण नं २ —इस दृष्टि की व्याकता मे वस्तु के सामान्य अंश व विशेष अश दोनों युगपत पृथक पृथक दिखाई देते हैं। अर्थात् अनेको भेदों मे रहने वाली परिपूर्ण वस्तु का ग्रहण हो जाता है। यहा यह शका करनी योग्य नही कि सामान्य व विशेष का युगपात ग्रहण तो प्रमाण का विपय है, क्योकि प्रमाण व नैगम नय के ग्रहण मे अतर है । प्रमाण भी सामान्य व विशेष दोनों अंगो को युगपत ग्रहण करता है आर नैगम नय भी, परन्तु प्रमाण का वह ग्रहण "यह विशेष इस सामान्य के है" इस प्रकार के विकल्प से रहित एक रस रूप होता है, और नैगम नय का वही ग्रहण उपरोक्त विकल्प सहित होता है ।

अर्थात् एक रस रूप अखण्ड वस्तु मे यह नय उसके गुणों व पर्यायो को पृथक पृथक जड़ा हुआ देखता है, तथा उन गुणों आदि मे अनुस्यूत एक अखंड सत्ता को भी साथ ही ग्रहण कर लेता है।

इस दृष्टि मे द्रव्य को अनेक गुणो व एक एक गुण को अनेक पर्यायो मे विभाजित करके देखा जाता है। द्रव्य की अखण्डता को अनेक प्रदेशों मे विभाजित करके देखा जाता है। इस प्रकार अद्वैत मे द्वैत उत्पन्न करके यह एक ही द्रव्य को अनेक रूप देखता है। उदाहरणार्थ इस नय की अपेक्षा अनेको स्वतत्र सत्ताधारी प्रदेश परस्पर मे एक दूसरे के साथ बधकर एक रूप धार तिष्टते है। प्रमिति तो अपने कारण रूप प्रमाण से और ज्ञप्ति अपने कारण रूप ज्ञान से भिन्न है। अर्थात् उपादान कारण व उसका कार्य इस दृष्टि मे भिन्न भिन्न स्वतंत्र विषय है, जो परस्पर मे सम्मेल को प्राप्त होकर एक वत् दीखते है। वैशेषिक व नैयायिक लोगों के मत का आधार यह नैगम दृष्टि ही है।

३. लक्षण न. ३ –जिस प्रकार अद्वैत मे द्वैत देखता है, उसी प्रकार यह नय द्वैत मे अद्वैत भी देखता है। द्वैत मे अद्वैत को तीन प्रकार से ग्रहण किया जा सकता है-दो धर्मों मे एकता रूप मे, दो धर्मियो मे एकता रूप से तथा धर्म व धर्मो मे एकता रूप से। यहा धर्म धर्मी आदि शब्दो से तात्पर्य द्रव्य, गुण पर्याय के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। गुण, गुणी आदि शब्दों का प्रयोग प्रयोजन वश नही किया गया है। वह प्रयोजन यह है कि गुण व 'पर्याय' यह शब्द अपने अपने सीमित अर्थ का ही प्रतिपादन करते है। परन्तु 'धर्म' शब्द, गुण व पर्याय दोनों का युगपत प्रतिनिधित्व करता है। धर्म वस्तु के स्वभाव को कहते है गुण व पर्याय दोनों ही उत्पाद, व्यय, ध्रुवात्मक वस्तु के स्वभाव है। इसलिये गुण व पर्याय दोनों मे ही 'धर्म' शब्द का अर्थ चला जाता है, अकेली पर्याय भी वस्तु का धर्म है। और गुण व पर्याय दोनों

युगपत भी वस्तु का धर्म है। 'गुण' शब्द द्वारा 'पर्याय' का ग्रहण और 'पर्याय' शब्द द्वारा 'गुण' का ग्रहण होता नही। 'धर्म' शब्द के द्वारा 'गुण' 'पर्याय' दोनो का युगपत ग्रहण होता है, इसलिये यहां 'गुण' व 'पर्याय' शब्द के स्थान पर 'धर्म' शब्द को प्रयोग किया है। इसी प्रकारधर्मी शब्द के लिये भी समझ लेना। गुणी, पर्यायी, व अंगी आदि सब शब्दों का अर्थ एक धर्मी शब्द मे पड़ा है।

यहां धर्म धर्मी आदि की एकता का अर्थ, विशेषण विशेष्य भाव रूप द्वैत मे अद्वैतता का संकल्प करना है। 'सत्' सामान्य के ध्रुव स्वभाव पर से किसी गुण विशेष के ध्रुव स्वभाव का संकल्प करना अथवा 'सत्' सामान्य के ऊध्रुव स्वभाव पर से किसी पर्याय विशेष के क्षणिक स्वभाव का सकल्प करना दो धर्मो मे एकता है। "सद्द्रव्य लक्षणम्" ऐसे निर्विकल्प लक्षण पर से अथवा "गुणपर्यय वद् द्रव्यं ऐसे विकल्पत्मक लक्षण पर से द्रव्य सामान्य के अभेद व भेद स्वभाव का संकल्प करना अथवा इसी प्रकार द्रव्य विशेप के लक्षणों पर से उसके स्वभाव का संकल्प करना दो धर्मियों मे एकता है। गुण विशेप अथवा पर्याय विशेप पर से किसी द्रव्य विशेष के स्वभाव का सकल्प करना धर्म धर्मी मे एकता है। इसका विशेष परिचय द्रव्य नैगम व पर्याय नैगम की व्याख्या करते समय दिया जायेगा।

४. लक्षण न. ४—अब इसका दूसरी प्रकार से भी लक्षण समझिये। नैगम नय जैसे कि ऊपर वताया गया है संग्रह व व्यवहार इन दोनो नयो के विपय को उल्लंधन कर के अपना कोई पृथक विषय नही रखता। संग्रह व व्यवहार इसी के अंग हैं, या यो कहिये कि संग्रह व व्यवहार नयो मे व्यापक रहने वाला नैगम नय है, या यों कहिये कि संग्रह व व्यवहार नयो के समूह का नाम या उनकी एकता का नाम ही नैगम नय है। इसका उदाहरण ऐसा समझना जैसे कि अखंड जीव एक द्रव्य है। उसके मुक्त संसारी, त्रस, स्थावर, पृथिवी

आदि तथा एक, दो इन्द्रिय आदि तथा अन्य भी अनेको भेद है। पृथक पृथक वे सब भेद प्रभेद तो सग्रह व व्यहार के विषय है, पर नैगम नय अकेला ही इन सब को विपय करता है। तात्पर्य यह कि नैगम नय के दो भेद है--संग्रह व व्यवहार।

५. लक्षण न. ५·—इन सब बातों के अतिरिक्त यह वस्तु में अन्य प्रकार भी द्वैत उत्पन्न कर देता है। शब्द, शील, कर्ता-कर्म, साधन-साध्य, कारण–कार्य, आधार-आधेय, भूत-वर्तमान-भविष्यत, मान-उन्मान आदि का आश्रय करके यह वस्तु मे भेद डाल देता है। कभी गुण को साधन व द्रव्य को साध्य बनाकर प्रतिपादन करता है-क्योकि गुणों पर से ही द्रव्य की सिद्धि होती है। कभी द्रव्य को कारण औरपर्याय को कार्य कहता हुआ प्रगट होता है। क्योकि द्रव्य मे ही पर्याय प्रगट होती है।कभी पूर्व पर्याय को कारण व उत्तर पर्याय को कार्य बतलाने लगता है-क्योंकि पूर्व पर्याय का व्यय हो जाने पर ही उत्तर पर्याय की उत्पत्ति होती है। द्रव्य को आधार तथा गुण व पर्याय को आधेय कहकर वस्तु मे द्वैत उत्पन्न करता है–क्योंकि द्रव्य मे ही गुण पर्याय रहते है, पृथक नही, जैसे अग्नि मे ही ऊष्णता रहती है पृथक नही। इस प्रकार अभेद द्रव्य मे भी विश्लेषण द्वारा द्वैत का उपचार उत्पन्न करके उसे विशद बनाना इस नय का काम है।

इतना ही नही, भिन्न द्रव्यो मे भी कारण-कार्य आदि भावो को स्वीकार करके वस्तु की कार्य व्यवस्था का अत्यन्त व्यापक रूप दृष्टि मे लाना भी इसका काम है। उपादन-उपादेय ओर निमित्त-नैमित्तिक दोनों ही भाव इस के विषय है। वस्तु की सत्ता को तथा उसकी उत्पाद व्यय रूप कार्य व्यवस्था को सिद्ध करने के लिये जो कुछ भी जानने, देखने व कहने मे आता है वह सब इसका विषय है। यद्यपि आगम पद्धति मे वस्तु का निज वैभव अर्थात उसके स्व चतुष्टय ही दर्शाने मे प्रमुखत: आते है, पर उसकी कार्य व्यवस्था मे

अन्य पदार्थो का संयोग तथा उनका परस्पर का निमित्त नैमित्तिक सम्मेल सर्वथा दृष्टि से ओझल नही किया जा सकता । इसलिये पर चतुष्टय के आधार पर भी वास्तव मे वस्तु का निज वैभव ही दर्शाना अभीष्ट होता है । विना निमित्त नैमित्तिक सयोग को जाने वस्तु की कार्य व्यवस्था का स्पष्ट ज्ञान होना असम्भव है । इसीसे यह नय अत्यन्त स्थूल है ।

इस प्रकार नैगम नय अनेको दृष्टियों से द्वैत उत्पन्न कर करके उसमे अद्वैत का संकल्प करता है । इसीलिये इसका नाम नैगम है । क्योकि व्याकरण की दृष्टि से "जो एक को नही जानता किन्तु द्वैत को जानता है" उसे नैगम कहते है । नीचे उन सारी दृष्टियों का एक ही स्थान पर सग्रह कर देना उचित है, ताकि विषय को स्मृति मे उतारा जा सके । वास्तव मे यह निम्न मे दिये गये कोई पृथक पृथक लक्षण नही है, वल्कि वस्तु मे भेद डालकर उसके अभेद को समझना व समझाना ही इसका एक सच्चा लक्षण है । वह भेद ही दो प्रकार के होते है-गुण कृत या सहवर्ती भेद तथा पर्याय कृत या क्रमवर्ती भेद ।

एक जो एक का ग्राहक न होकर द्वैत का ग्राहक हो उसे नैगम नय कहते है । (यह लक्षण व्याकरणकी अपेक्षा निरुक्ति रूप अर्थ का द्योतक है ।)

१. संकल्प मात्र ग्राही नैगम नय है ।

२. अद्वैत द्रव्य मे गुण पर्यायो का द्वैत देखने वाला नैगम नय है ।

३. धर्म धर्मी आदि द्वैत मे अद्वैत देखने वाला नैगम नय है ।

४. सग्रह व व्यवहार दोनो को विपय करने वाला नैगम नय है ।

५ कर्ता कर्म आदि मे भेद करने वाला नैगम नय है ।

यह सब इस नैगम नय के लक्षण है । इसके अनेको भेद प्रभेद है, जो आगे बताये जायेगे । यहा तो नैगम सामान्य का प्रकरण है, अत इसके उपरोक्त लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम के उद्धरण देखिये:–

१. लक्षण नं १ (संकल्प मात्र ग्राही)

१. रा. वा. ।१।३३।२।६५ "निगच्छन्ति तस्मिन्निति निगमनमात्र वा निगमः निगमे कुशलो भवो नैगमः ।"

अर्थ — 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'गम' धातु से 'अच' प्रत्यय करने पर निगमन शब्द बना है । और निगम शब्द से कुशल या भव अर्थ मे 'अण्' प्रत्यय करने पर नैगम शब्द की सिद्धि हुई है । (इसका अर्थ संकल्प करना है)

२ आ प. १६।२३ "नैक गच्छतीति निगम निगमो विकल्प स्तत्र भवो नैगम. ।"

अर्थ — जो प्रचुर रूपेण जाने सो निगम । निगम का अर्थ विकल्प है । उसमे होने वाला ज्ञान नैगम कहलाता है ।

२ स सि ।१।३३।५।५०७ "अनभिनिर्वृत्तार्थसंकल्पमात्रग्राही नैगमः। कश्चित्पुरुष परिगृहीतपरशु गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थ भवान्गच्छतीति । स आह प्रस्थमानेतुमिति । नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः, तदर्थे व्यापारे स

प्रयुज्यते । एवं प्रकारो लोक स व्यवहार: अनभिनिर्वृत्तये सकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहार: । (आगे भी)

अर्थ.– अनिप्पन्न अर्थ मे सकल्प मात्र का ग्रहण करने वाला नय नैगम है । यथा-हाथ मे फरसा ले कर जाते हुए किसी पुरुप को देखकर कोई अन्य पुरुप पूछता है, आप किस काम के लिये जा रहे है । वह कहता है, प्रस्थ लेने के लिये जा रहा हूँ । उस समय वह प्रस्थ पर्याय (माप) सन्निहित नही है, केवल उसके बनाने का संकल्प होने से उसमे प्रस्थ व्यवहार किया गया है ।

इसी प्रकार ईन्धन और जल आदि के लाने मे लगे हुए किसी पुरुप से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे है । उसने कहा भात पका रहा हूं । उस 'समय भात पर्याय सन्निहित नही है, केवल भात के लिये किये गये संकल्प मे भात पकाने का प्रयोग किया गया है । (इस पैरेग्राफ की संस्कृत ऊपर छोड़ दी गई है)

क्रमश:

३. रा. वा.।१।३३।२।६५ अथवा 'यहां कौन जा रहा है' इस प्रश्न के उत्तर मे कोई 'बैठा हुआ' व्यक्ति कहे कि 'मैं जा रहा हूं ।'

इन सब दृष्टान्तो मे प्रस्थ और गमन के या ओदन पकाने आदि के संकल्पमात्रमे वे व्यवहार किये गये है । इस प्रकार जितना लोक व्यवहार अनिष्पन्न अर्थ के आलम्बन से सकल्प मात्र को विषय करता है वह सब नैगम नय का विषय है ।

४ श्ल. वा ।१।३३।२६६ "सकल्पो निगमस्तत्र भवोऽयतत् प्रयोजन. ।, तथा प्रस्थादि संकल्प: तदभिप्राय इष्यते ।"

अर्थ --सकल्प को निगम कहते हैं। उसमे जो होता है सो ही नैगम है, ऐसा इस नय का प्रयोजन है। और प्रस्थादि लाने आदि का सकल्प करना इसका अभिप्राय माना गया।

५ का. अ. ।२७१ "जो साहेदि अदीदं, वियप्परूवं णेगमोविस्समत्थं च। संपड्किालाविट्ठं, सो हूणयो णेगमो णेयो।"

अर्थ:--जो नय अतीत भविष्यत तथा वर्तमान को सकल्प मात्र सिद्ध करता है वह नैगम नय है।

२ लक्षण नं० २ (अद्वैत में द्वैत ग्राही) —

१ ध। पु ९ पृ १८१।२ "न एकगमो नैगम।"

अर्थ:--जो एक को विषय न करे अर्थात भेद व अभेद दोनो को विषय करे वह नैगम नय है।

२. ध। पु० १३। पृ. १९९।१ "नैकंगमोनैगम: द्रव्यपर्यायद्वय मिथो विभिन्नमिच्छन्न नैगम इति यावत्।"

अर्थः--जो एक को नही प्राप्त होता वह नैगम है। जो द्रव्य और पर्याय इन दोनों को आपस मे अलग अलग स्वीकार करता है वह नैगम है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

३ ध. । पु० १०।सूत्र १।पृ १३ "नैगम व्यवहाराणं णाणावरणीय वेयणा दशणावरणीय वेयणा वेयणीय-वेयणा मोहणीय वेयणा आउववेयणा णामवेयणा गोदवेयणा अंतराइय-वेयणा।"

अर्थ:--नैगम व व्यवहार नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना, दर्शनावरणीयवेदना, वेदनीयवेदना, मोहनीयवेदना, आयु-

वेदना, नामवेदना, गोत्रवेदना और अन्तरायवेदना, इस प्रकार वेदना आठ भेद रूप है। यहा एक समय के जीव क अखण्ड भाव को आठ भेद डालकर बताया जा रहा है।

४ ध ।पु १३।पृ १३।१ "असगहियणेगमणयभास्सिदूण लोगागास पदेशमेत्तधम्मदव्वपदेसाणं पुध पुध लद्धदव्ववववएसाण-मण्णोण्ण पासुवलभादो। ३। अधम्मदव्वमधम्यदव्वेण पुसिज्जति, तक्खध देस, पदेस' परमाणूणमसगहिपयणेग-मणएण पत्तदव्वभावागमेयत्तदसणादो।

अर्थः—असग्राहिक नैगम नय की अपेक्षा लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण और पृथक पृथक द्रव्य सज्ञा को प्राप्त हुए धर्म द्रव्य के प्रदेशो का परस्पर मे स्पर्श देखा जाता है। ३। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य अधर्म के साथ स्पर्श को प्राप्त होता है, क्योकि असग्राहिक नैगम नय की अपेक्षा द्रव्य-भाव को प्राप्त हुए अधर्म द्रव्य के स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुओ का एकत्व देखा जाता है।

(यहा अखण्ड द्रव्यो मे भी खण्डित करके उनके प्रदेशों को पृथक पृथक द्रव्य रूप से स्वीकारा गया और इस प्रकार अद्वैत मे द्वैत डालकर उनका परस्पर सम्मेल दिखाया है।)

५ स म। २८ । ३११।३ तत्र नैगमः सत्तालक्षण महासामान्-यम्, अवान्तरसामान्यानि च द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादीनि, तथान्त्यान् विशेषान् सकलासाधारणरूपलक्षणान् अवां-तरविशेषाश्चापेक्षया पररूपव्यावर्त्तनक्षमान् सामान्यान् अत्यन्तविनिर्लुंठितस्वरूपानभिप्रैति।"

अर्थ—नैगम नय सत्ता रूप सामान्य को, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व रूप अवान्तर सामान्य को, असाधारण रूप विशेषको, तथा पर रूप से व्यावृत्त और सामान्य से भिन्न अवान्तर विशेषो को जानती है ।

क्रमश·—स म ।२८।३१५।२४ में उद्धत अन्यदेव हि सामान्य-मभिन्नज्ञान कारणम् । विशेषोऽप्यन्य एवेति मन्यते नगमो नय. ।।१।।

अर्थ.—नैगम नय के अनुसार अभिन्न ज्ञान का कारण सामान्य धर्म, विशेष धर्म से भिन्न है ।

६ लक्षण नं० ३ (धर्म धर्मी आदि रूप द्वैत में अद्वैत)

१ स म ।२८।३१७।२ में उद्धत "धर्मधर्मिणोधर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जन भावेन यद्विवक्षण स नैगमो नेगम· । सत् चैतन्यमात्मनीतिधर्मयो. । वस्तु पर्ययव द्रव्यमिति धर्मिणो: क्षणमेक सुखी विषयासक्तजीव इति धर्मधर्मिणो ।

अर्थ—दो धर्म अथवा दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी ये प्रधान और गौणता की विवक्षाको नैगम अथवा नैगम-नय कहते है ।

१. जैसे 'सत् और चैतन्य दोनो आत्मा के धर्म है'। यहा सत् और चैतन्य दोनो धर्मो मे चैतन्य विशेष्य होने से प्रधान धर्म है, और सत् विशेषण होने से गौण धर्म है ।

२. 'पर्यायवान द्रव्य को वस्तु कहते है'। यहा द्रव्य और वस्तु दो धर्मियों मे द्रव्य मुख्य और वस्तु गौण है । अथवा 'पर्यायवान वस्तु को द्रव्य कहते है' यहा वस्तु मुख्य और द्रव्य गौण है ।

३. 'विषयासक्त जीव क्षणभर के लिये सुखी हो जाता है' यहां विषयासक्त जीव रूप धर्मी मुख्य और क्षण भर के लिये सुखी होना रूप धर्म गौण है ।

क्रमश''— स म । २८। ३१७।५ धर्मद्वयादीनामेकान्तिक पार्थक्याभिसन्धि र्नैगमाभास ।"

अर्थः—दो धर्म, दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी मे सर्वथा भिन्नता दिखाने को नैगगाभास कहते है । जैसे

१. आत्मा मे सत् और चैतन्य परस्पर भिन्न है ।

२. पर्यायवान वस्तु और द्रव्य सर्वथा भिन्न है ।

३. सुख ओर जीव परस्पर भिन्न हं ।

२. श्ल वा ।१।३३।२१"यद्वा नैकगमो योऽत्र सतत नैगमो मतः । धर्मयोर्धर्मिणो वापि विवक्षा धर्मधर्मिणोः ।

अर्थ —जो एक को विषय न करे वल्कि सदा द्वैत को विषय करे उसे नैगम नय माना गया है । जैसे दो धर्मो में या दो धर्मियो मे अथवा धर्म व धर्मी मे एकता करने मे आती है ।

४. लक्षण नं० ४ (संग्रह व व्यवहार उभय रूप)

१ ध्र ।१३।ग्र०१।४।१२ "यह नय सव नयो के विषय को स्वीकार करता है ।

२ ध०।१।८४।६"यदस्ति न तद्वयमतिल्लध्य वर्ततेति नैगमो नयः । सग्रहासंग्रह स्वरूप द्रव्यार्थिको नैगमेति यावत्—एते त्रयोऽपि नयाः नित्य वादिनः स्व विषये पर्यायाभावतः सामान्य विशेष कालयोरभावात् ।"

अर्थः—जो भी है वह दो पने को उल्लघन करके नही वर्तता ऐसा नैगम नय कहता है। अर्थात जो सग्रह व व्यवहार दोनो को छोडकर नही रहता वह नैगम नय है। संग्रह व असग्रह अर्थात भेद व भेद स्वरूप द्रव्यार्थिक है वही नैगम है। नैगम सग्रह और व्यवहार यह तीनो ही नय निजनिज विषय मे नित्यता बताने वाले है-क्योकि उन उनके अपने अपने विषय की सीमा मे सामान्य व विशेष काल के ग्रहण का अभाव होने के कारण वहा पर्यायो का भी ग्रहण हो नही पाता ।)

३ ध. ।६।१७१।४ "यदस्ति न तद्वयमतिल्लध्य वर्ततेति सग्रह व्यवहारयो परस्पर विभिन्नोभय विषयावलम्वनो नैगमनय· ।"

६ ध ।१२।३०३।१ (क पा ।१।ह१८३।२२१।१)

(अर्थ—जो कुछ भी है वह संग्रह व व्यवहार अर्थात् अभेद व भेद इन दोनो को उल्लघन करके नही वर्तता। संग्रह व व्यवहार इन दोनो की परस्पर विभिन्नता को उभय रूप से अर्थात अभेद करके विषय करने वाली नैगम नय है।)

५ लक्षण नं० ५ (कर्ता कर्मादि भेद प्रदर्शक)

१ ध ।९।१७१।४ "यदस्ति न तद्वयभतिलध्य वर्ततेति सग्रह व्यवहारयो। परस्पर विभिन्नोभय विषयावलम्वनो नैगम नय. । शब्द शील, कर्म कार्यकरण, आधाराधेय, भूतभविष्यत-वर्तमान, मेयोन्मेयादिकमाश्रित्य स्थितोप्रचार प्रभव इति यावत्।"

(ध.।१२।३०३।१) (क. पा.।१।ह१८३।२२१।१) इन दोनों स्थानो पर भी उपरोक्त बात का पोषण किया गया है ।)

अर्थः—जो कुछ भी है वह सग्रह व व्यवहार अर्थात अभेद व भेद ऐसे दो पने को उल्लघन करके नही वर्तता । असंग्रह व व्यवहार इन दोनो नयो की परस्पर विभिन्नता को उभय रूप से अर्थात अभेद करके विषय करने वाला नैगम नय है । अभिप्राय यह है कि जो शब्द, शील, कर्म, कार्य, कारण, आधार, आधेय, भूत, वर्तमान, भविष्यत, मेय व उन्मेय, आदि विकल्पों को आश्रय करके रहने वाले उपचार से उन्नत होने वाला है, वह नैगम नय कहा जाता है ।

२ ध.।१२।२९५-२९६।सू० २-३ "नैगम और व्यवहार नय की अपेक्षा ज्ञानावर्णीय (आदि अष्ट कर्मो) की वेदना जीव के होती है ।२। कथञ्चित वह नो जीव (पुग्दल कर्म) कें होती है ।३।"

(**अर्थः**—यहाँ जीव व कर्मों मे निमित्त नैमित्तिक भाव देखकर कर्मो की वेंदना या कर्मों का अनुभव जीव को होना स्वीकार किया गया है । वास्तव मे तो उनके निमित्त से होने वाली ज्ञान मे हानि वृद्धि की वेदना ही जीव को होती है, कर्मो की नही । यह नैगम नय की स्थूलता है कि निमित्त की वेदना उपादान मे बतादी गई।)

३ क० पा०।१।ह२५७।२९७।८ 'नैगम नय की अपेक्षा कारण मे कार्य का सद्भाव स्वीकार किया जाता है ।

इस प्रकार नैगम नय के छहों सामान्य लक्षणो सम्बन्धी आगम कथित उद्धरण बता दिये गये । लक्षण व उदाहरण पहिले

ही बता दिये जा चुके है । विचार करने से पता चलता है कि यह सब के सब नाम मात्र को ही पृथक पृथक लक्षण है । वास्तव मे तो द्वैत मे अद्वैत देखना ही इसका एकमात्र लक्षण है । अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये ।

वस्तु के अखण्ड पिण्ड मे पडे हुए उस ही के वस्तु भूत अगों के आधार पर दीखने वालाद्वैत या अनेकपना ही इस नयकी उत्पत्ति का कारण है । क्योकि यदि वस्तु मे यह द्वैत सर्वथा न हुआ होता तो इस प्रकार के द्वैत का संकल्प होना भी असम्भव था ।

प्रयोजन है अभेद का विश्लेषण करके भेद द्वारा अभेद का परिचय देना । अनिष्णात श्रोता को ऐसा द्वैत उत्पन्न किये बिना वस्तु के अद्वैत का परिचय देना असम्भव है (स० म० ।२०२।१।१४) मे कहा है कि.–

"अभेद मात्र का ज्ञान कराने वाला सामान्य धर्म तो अन्य है तथा विशेष रूप धर्म कुछ (उस से) जुदा है, ऐसा ज्ञान नैगम नय के द्वारा होता है ।"

२. नैगम नय के भेद प्रभेद

नैगम नय बहुत व्यापक नय है । अत. इसकी व्यापकता को दर्शाने के लिये इस नय का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है । इसका विषय द्रव्य, गुण व पर्याय तीनो है । जाति व व्यक्ति, शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य, शुद्ध व अशुद्ध पर्याय, स्थूल व सूक्ष्म पर्याय, अर्थ व व्यन्जन पर्याय सब कुछ इस नय के पेट मे समाया हुआ है । अतः विषय की अपेक्षा इसके अनेको भेद प्रभेद हो जाते है जो निम्न चार्ट मे दर्शाये गये है ।
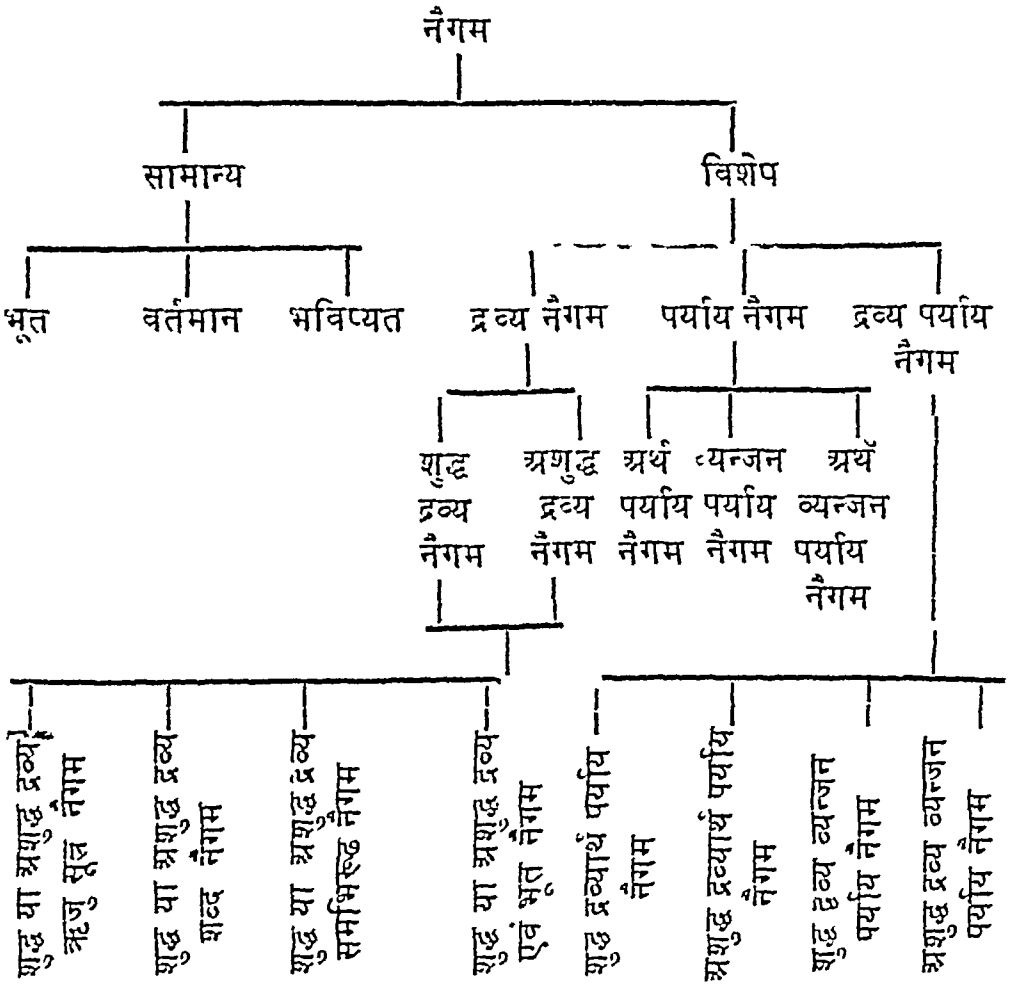
यद्यपि अर्थ व व्यन्जन पर्याय नैगम के भी शुद्ध व अशुद्ध रूप से ग्रहण करने पर दो दो भेद हो जाते है । परन्तु उनके लक्षण सामान्य अर्थ व व्यन्जन पर्याय नैगम मे ही गर्भित हो जाते है, अतः यहा उनका पृथक ग्रहण नही किया है। इन सर्व भेदो के अब क्रम से लक्षण आदि दर्शाये जायेगे। पहिले काल सूचक भूत, वर्तमान व भावि नैगम का स्वरूप देखिये ।

३. भूत वर्तमान व भावि नैगम

यहा तक द्रव्य का विश्लेषण उसके अनेक सहवर्ती व क्रमवर्ती अंगो के आधार पर अर्थात गुणो व पर्यायो के आधार पर कर करके, उनके अखण्डत्व का परिचय दिलाने के लिये, आगम पद्धति कथित शास्त्रीय सात नयो का निर्देश

किया जा चुका है । अब आगे पीछे की पर्यायों मे कथचित एकत्व दर्शाने के लिये, नैगम नय के कालकृत भेदो का विस्तार करने मे आता है । जैसाकि पहिले बताया जा चुका है, नय प्रमाण–ज्ञान के अश का नाम है । प्रमाण–ज्ञान मे और वस्तु मे कुछ अन्तर है । वह यह कि वस्तु का विश्लेषण करने पर तो उसके सारे गुण तथा उन सब गुणो की उस समय वर्ती एक एक पर्याय ही किसी एक समय मे उपलब्ध होती है, परन्तु प्रमाण ज्ञान का विश्लेषण करने पर उस वस्तु के सम्पूर्ण गुण तथा उनकी त्रिकाल वर्ती सर्व पर्याये किसी भी एक समय मे उपलब्ध हो जाती हैं । कारण है यह कि वस्तु मे सारे गुण तो हर समय रहते है पर सारी पर्याये हर समय नही रहती, एक समय मे एक ही पर्याय रहती है, जबकि ज्ञान मे हर समय त्रिकाली पर्यायो का चित्रण पडा रहता है ।

वस्तु मे तो पर्याय आगे पीछे होती है, पर ज्ञान के चित्रण मे सर्व पर्याय युगपत पड़ी हुई है । वस्तु मे वर्तमान की एक पर्याय ही दिखाई देती है इसलिये वही सत् है और भूत व भविष्य की पर्याय विनष्ट व अनुत्पन्न होने के कारण असत् है, परन्तु ज्ञान मे एक ही समय मे भूत वर्तमान व भविष्यत की सर्व पर्याये टकोत्कीर्णवत् पडी हुई होने के कारण वहा न कोई पर्याय विनष्ट होती है और न कोई अनुत्पन्न है, बल्कि वहा तो सब की सब वर्तमान है, और इसीलिये वहा सर्व पर्यायें सत् ही हैं असत् एक भी नही । वस्तु मे काल कृत भेद के कारण पर्याये बदलती दिखाई देती है परन्तु ज्ञान मे कुछ भी परिवर्तन होता दिखाई नही देता । जहा सर्व ही पर्याये सत् है वहा परिवर्तन किस वात का ? वस्तु मे ही भूत वर्तमान व भविष्यत का विकल्प है, ज्ञान मे नही, वहां तो सब कुछ वर्तमान ही है, भूतकाल की पर्याय भी वहां वर्तमान है और भविष्यत की भी वर्तमान है । भले वस्तु की अपेक्षा लेकर ज्ञान मे पड़ी पर्यायो पर भूत व भविष्यत की मोहर लगा दे पर वहा तो भूत व भविष्यत कोई वस्तु ही नही ।

प्रमाण ज्ञान के लघुभ्राता भेद व अभेद ग्राही इस नैगम नय की ओर लखाने पर किसी भी पर्याय के रूप मे वस्तु को वर्तमान मे ही देखा व कहा जा सकता है ।

अथवा नैगम नय ज्ञान नय है, जिसका काम केवल कल्पना करना है । यह आवश्यक नही कि कल्पना सद्भूत पदार्थ को ही विषय करे । सद्भूत व असद्भूत सर्व ही पदार्थ कल्पना के विषय बन सकते है । भले ही वर्तमान मे भूत या भविष्यत पर्याय असत् हों, पर क्या कल्पना पर भी यह प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है, कि वह दृष्ट ही पर्याय को ग्रहण करे अदृष्ट को नही ? कल्पना तो वर्तमान मे ही एक भिखारी को राजा और राजा को भिखारी बना सकती है, पर्वत को आकाश मे उडा सकती है और सागर को पर्वत के स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकती है । उसके लिये कुछ भी असत् व असम्भव नही । अत वर्तमान पदार्थ मे झूठी या सच्ची भावि पर्याय का सकल्प करना अथवा वर्तमान पदार्थ मे भूत पर्याय का साक्षात्कार करना आदि सब कुछ अत्यन्त सहल है । इसी प्रकार किसी अर्ध निष्पन्न पर्याय मे पूर्ण निष्पन्न का सकल्प करना भी सम्भव है । उपरोक्त सकल्पो के आधार पर ही इस ज्ञान नय के भूत, भविष्य वर्तमान ऐसे तीन भेद हो जाते है जिन का पृथक पृथक कथन आगे किया जायेगा ।

(१) भूत नैगम नय:—

ज्ञान मे सकल्प द्वारा वर्तमान पदार्थ को भुत कालीन पर्याय के रूप मे देखना भूत नैगम नय कहलाता है । ऐसा कहते हुए भूतकालीन क्रिया (Tense) का प्रयोग करने मे नही आता बल्कि वर्तमान काल सूचक ही प्रयोग किया जाता है, क्योकि ज्ञान मे वस्तु उस पर्याय के साथ तन्मय रूप से वर्तमान ही दीख रही है ।

किसी व्यक्ति का भोला पना देखकर कदाचित यह कह दिया जाता है कि 'तू तो अभी बच्चा ही है'। वाक्य मे उसे बच्चा कह दिया गया है, यद्यपि वर्तमान में तो वह बच्चा नही बल्कि कई बच्चों का पिता है। फिर भी प्रयोजन वश उसे यहा बच्चा कह दिया गया है। सो ऐसा सुनकर भ्रम मे पड़ने की आवश्यकता नही। उसका भोला पना छुड़ाकर उसे चतुर बनाना अभीष्ट है, ऐसे प्रयोजन जान कर जिस प्रकार इस वाक्य का ठीक ठीक अर्थ आप समझ जाते हैं और भ्रम मे नही पड़ते, उसी प्रकार इस अध्यात्म मार्ग मे कदाचित इस प्रकार के वाक्य का प्रयोग करने मे आये तो भ्रम मे पडना नही चाहिये, बल्कि उस नय के प्रयोजन को जानकर ठीक ठीक अर्थ का ग्रहण कर लेना चाहिये।

इसी प्रकार किसी ऐसे व्यक्ति को जो पहिले आपके यहा नौकरी करता था पर पुण्योदय से आज धनवान बन गया है, आप कदाचित यह कह देते है कि तू वही मेरा पहिले वाला नौकर ही तो है। यहां भी आप भूत कालीन क्रिया का प्रयोग न करके अर्थात 'नौकर था' ऐसा न कहकर 'नौकर है' ऐसा वर्तमान कालीन प्रयोग करते हो। आज नौकर नही है, फिर भी 'नौकर है' ऐसा कहने मे आपका कुछ प्रयोजन है। या तो आप अपने अभिमान वश उसे नीचा दिखाना चाहते हो, या उसका गर्व तुडाकर उसमे सरलता लाना चाहते हो। और यथा अवसर वाक्य मे न कहा गया भी वह अभिप्राय आप पढ़ लेते हो, यह शका नही करते कि वर्तमान मे तो यह धन-वान है, इसे 'नौकर है' ऐसा क्यो कहते हो, 'नौकर था' ऐसा कहिये। नौकर वाली पूर्व पर्याय और धनिक वाली वर्तमान पर्याय एक ही व्यक्ति मे जड़ी हुई होने के कारण उपरोक्त सकल्प मिथ्या नही कहा जा सकता।

इसी प्रकार अध्यात्म मार्ग मे भी सिद्ध प्रभु को संसारी तथा भगवान वीर को भील कहा जा सकता है। अथवा 'आज दीवाली के

दिन भगवान वीर को निर्वाण हुआ है' ऐसा भी कदाचित कहने मे आ सकता है। वास्तव मे तो निर्वाण आज नही हुआ है वल्कि पहिले हुआ था, फिर भी 'हुआ है' ऐसा वर्तमान कालीन प्रयोग प्रयोजन वश किया जा सकता है। दीवार पर खिचा हुआ भगवान वीर के पूर्व भव का चित्र दिखाते हुए आप अनेको वार यह कहते सुने जाते हो कि, 'देखो, पहिचानते हो यह कौन है ? यह भगवान वीर है।' यह वात सुनकर किसी अनभिज्ञ को यह सन्देह हो सकता है कि, 'क्या भगवान वीर इसी भील का नाम है ? यदि ऐसा है तो आज से उनकी पूजा कर ना वन्द कर देता हूं।' परन्तु ऐसा संशय करना योग्य नही, और न ही होना सम्भव है यदि भूत नैगम नय के प्रयोजन से परिचय हो तो ।

यद्यपि वाक्य मे भूत कालीन क्रिया का प्रयोग न करके वर्तमान कालीन क्रिया का प्रयोग किया है, पर इसका अर्थ यही है कि यह भगवान वीर का बीता हुआ जीवन है वर्तमान का नही। इस भूत कालीन जीवन या चित्रण को दर्शाने का प्रयोजन यही है कि प्राणियो मे पड़ी पामरता दूर हो जाये और वह यह समझने लगे, कि जव वह ऐसी निकृष्ट अवस्था को उल्लघन करके भगवान वन गये तो मै क्यो न वन सकूगा। ऐसा प्रयोजन पकड लिया जाये तो भगवान को वर्तमान मे ससारी या अपराधी बताना भी अनुचित न होगा, परन्तु इस प्रयोजन को पकड़े विना तो उपरोक्त वाक्य वोलना महान अनर्थ का कारण वन जायेगा, क्योंकि वास्तव मे भगवान वर्तमान मे अपराधी नही है।

इस प्रकार भूत कालीन पर्याय मे वर्तमान का संकल्प करना भूत नैगम नय का लक्षण है। उदाहरण ऊपर कहे जा चुके। अव इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देने मे आते है।

१ वृ. न. च.।२०६ "निर्वृत्तार्थ क्रियाया. वर्तमान काले तु यत्समाचरणम् । स भूत नैगम नयो यथाद्यदिने निर्वृत्तिर्वीरे।२०६।''

(अर्थ–बीती हुई क्रिया का वर्तमान काल मे जो ग्रहण करने मे आता है वह भूत नैगम नय है–जैसे ' आज दिन वीर भगवान मोक्ष पधारे हैं" ऐसा कहना)

२. नय चक्र गद्य पृ. १२. "अतीत साम्प्रत कृत्वा निर्वाणत्वद्य येगिन । एव वदतिरभिप्रायो नैगमातीत वाचकः ।१।"

(अर्थः–अतीत काल को समक्ष करके "आज योगी राज निर्वाण गये है" ऐसा कहने का जो अभिप्राय है, वह भूत नैगम नय का वाचक है ।)

३ आ पा ।६। पृ. ७६ "अतीते वर्तमानारोपण यत्र स भूत नैगमो यथा अद्य दीपोत्सवे दिन श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्ष गत·।'

अर्थ– अतीत काल मे वर्तमान का आरोपण करना भूत नैगम नय है । जैसे "आज दीपावली के दिन श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्ष पधारे है" ऐसा कहना)

४ नि सा । ता वृ । १६ "भूत नैगम नयापेक्षया भगवता सिद्धानामपि व्यञ्जन पर्यायत्वमशुद्धत्व च सम्भवति ।"

(अर्थ –भूत नैगम नय की अपेक्षा से सिद्धो को भी अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय कहना सम्भवै है ।)

५ वृ. द्र स ।१४।४८ "अन्तरात्मावस्थाया तु बहिरात्मा भूत पूर्वन्यायेन घृतघटवत्, परमात्मावस्थायां तु पुनरन्तरात्म वहिरात्मद्वयं भूत पूर्वनयेनेति ।"

(अर्थ – अन्तरात्मा अवस्था मे तो बहिरात्म पना और परमात्म अवस्था मे अन्तरात्मा व बहिरात्मा दोनो भूत पूर्व नय से वर्तमान है, जैसे पहिले घी भरा हुआ था इसलिये उस घड़े को वर्तमान मे भी घी का घडा कहते है, भले अब वह खाली ही क्यों न पडा हो।)

इस नय को अनेकों अन्य नामों से भी पुकार जाता है-जैसे पूर्व प्रज्ञापन नय, भूत अनुग्रह तन्त्र नय, भूत प्रज्ञापन नय, भूत ग्राही नय, भूतपूर्व नय, भूत भाव प्रज्ञापन नय, भूत विपय नय, अतीत-गोचर नय, भूत नय, भूत पूर्वन्याय इत्यादि। इस प्रकार इस नय के लक्षण उदाहरण व उद्धरण तो हो चुके, अव इसका कारण व प्रयोजन विचारिये।

वर्तमान ज्ञान की कल्पना मे स्पष्ट दीखने वाली उस की त्रिकाली पर्याये इस नय का कारण है, क्योकि यदि वहा वे न दीखती तो इस प्रकार भूत व वर्तमान पर्याय के जोड का सकल्प करना ही असम्भव था।

श्रोता को नीचा दिखाना या उसके पूर्व के अच्छे दिन याद दिला कर उसके चित्त मे उसकी वर्तमान दशा के प्रति पश्चाताप उत्पन्न कराना, या उसका गर्व खण्डित करना, या उसकी कायरता को दूर करके उसे उन्नति पथ पर अग्रसर कराना आदि अनेको इस नय के प्रयोजन व अभिप्राय हो सकते है।

भावि नैगम नय –

भूत नैगम नय वत भावि नैगम को भी समझना। अन्तर केवल इतना ही है कि वहा भूत कालीन विनष्ट पर्याय को वर्तमान मे आरोपित किया गया था, और यहा भावि कालीन अनुत्पन्न पर्याय को।

वहा विनष्ट पर्याय को वर्तमान के साथ जोडने का सकल्प किया गया था और यहा अनुत्पन्न पर्याय को। यह तो इस नय का लक्षण हुआ अव उदाहरण सुनिये ।

किसी एक ऐसे बालक को देखकर जो कि स्कूल मे बहुत होशियार है और सदा परीक्षा मे अव्वल आता है तथा जो कई बार दो दो कक्षा की परीक्षाये एक साथ दे चुका है और बडी बुद्धिमानी की बाते करता है, आप सहसा ही यह कह वैठते है कि "भाई ! यह तो कोई वड़ा आदमी है।" यद्यपि है नही पर भविष्यत मे बनने की सम्भावना है, फिर भी 'है' या "हो चुका है" ऐसा कह दिया जाता है। प्रयोजन है उसको शावाश देकर उसका उत्साह बढ़ाने का, और कारण है उसकी वर्तमान योग्यता को देखकर उस का 'भविष्य' ज्ञान मे आ जाना। यद्यपि यहाँ यह निश्चय नही है कि वह वड़ा आदमी ही बनेगा या कि भीख माँगेगा, परन्तु यदि इसी प्रकार वृद्धि करता रहा तो इसका भविष्य उज्जवल होना निश्चित ही है, इसी सकल्प के कारण ऐसा कह दिया गया है।

इसी प्रकार अध्यात्म मार्ग मे किसी नव जात साधक को "तू तो भगवान ही है या अपने को भगवान हो गया ही समझ" ऐसा कहा जा सकता है। यद्यपि अभी तो गृहस्थ है, कोई निश्चिय नही की साधना मे आगे वढ़ेगा भी या नही, या कदाचित साधना को छोड़ ही वैठेगा, परन्तु ख्याल मे धुन्धला सा कल्पित निश्चय करके उसके आधार पर उसे वर्तमान मे भगवान कहा जा रहा है । "भगवान वन जायेगा" ऐसा भावि कालीन क्रिया का प्रयोग न करके "भगवान हो चुका है" ऐसा भूत निष्पन्न काल सम्बन्धी ही प्रयोग कर दिया गया है, जो आप के चित्त मे कदाचित भ्रम उत्पन्न कर सकता है, परन्तु प्रयोजन को समझ लेने पर ऐसा होना असम्भव है। यहां "भगवान हो गया है" ऐसा कहने का प्रयोजन नही है, बल्कि "यदि

साधना करता रहा तो भगवान हो जाने का निश्चय है" ऐसा दर्शाना अभीष्ट है। साधना की महिमा बताकर उसे उत्साह प्रदान करने का प्रयोजन है, और विचारणा मे रहनेवाला उपरोक्त निश्चय इसका कारण है। ऐसे इस नय के उदाहरण हुए।

अनिष्पन्न या अन हुए व अनिश्चित का वर्तमान मे निश्चित रूप से निष्पन्न मानने का सकल्प करना भावि नैगम नय का लक्षण है। अव इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण सुनिये।

१. वृ. न. च. ।२०७ "निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदार्थं नरोऽनिष्पन्नम् । अप्रस्थे यथा प्रस्थो भण्यते स भावि नैगम इति नयः ।२०८।"

(अर्थ – अनिष्पन्न भावि पदार्थ को निष्पन्न वत कल्पना करना भावि नैगम नय है। जैसे कि कुल्हाड़ी लेकर जाते हुए किसी मनुष्य से पूछने पर वह कह देता है, कि प्रस्थ लेने जाता हूँ। यहा परस्थ पर्याय अभी बनी नही, फिर भी केवल सकल्प के आधार पर उसे बनी हुई वत ही स्वीकार कर लिया गया है।

२. नय चक्र गद्य पृ. १२. "चित्तस्थ पदनिर्वृत्त प्रस्थके प्रस्थकयथा। भाविनो भूतवद्भूते नैगमोऽनागतो मतः ।३।"

"भाविकाले परिणामिष्यतोऽनिष्पन्न क्रिया विशेषान् वर्तमान काले निष्पन्ना इतिकथंन भावि नेगमः।"

अर्थ – जैसे निष्पन्न होने वाले अनिष्पन्न प्रस्थक को निष्पन्न कह दिया जाता है, उसी प्रकार ध्यानस्थ मुनि को मुक्त

कहना, और इसी प्रकार भविष्य में निष्पन्न होने वाले कार्य को भूतकाल में निष्पन्न हो गये वत स्वीकार करने वाला भावि नैगम नय है ।३। भविष्यत काल मे परिणमेगी ऐसी अनिष्पन्न क्रिया विशेष को वर्तमान काल मे निष्पन्न कह देना भावि नैगम नय है ।)

३ आ पा ।६। । ७६ "भाविनि भूतवत्कथन यत्र स भावि नैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव।"

(अर्थ – भावि काल को जहा भूतवत कहन मे आये सो भावि नैगम नय है जैसे--'अर्हन्त भगवान सिद्ध ही है' ऐसा कहना ।)

४. ध. ।७।गा ११२८ "किसी मनुष्य को पापी लोगो का समागम करते हुए देख कर नैगम नय से कहा जाता है कि यह पुरुष नारकी है ।")

अर्थ – यद्यपि अभी नारकी नही है परन्तु भविष्य मे नारकी हो जाने का निश्चय अवश्य है । इस निश्चय के आधार पर उसे वर्तमान मे ही नारकी कह देना भावि नैगम नय से न्याय सगत है ।)

५ ध. ।१३।३०३।३१"भूत व भविष्यत पर्यायों को वर्तमान रूप स्वीकार कर लेने से नैगम नय मे यह व्युत्पत्ति बैठ जाती है ।"

६ स सि ।७।१६।५३-५४ "शका:--अगारिणो असकल व्रतत्वात् व्रतित्वम् न प्राप्नोति ?

उत्तरः- नैप दोप, नैगमादिनयापेक्षया अगारिणोऽपि व्रतत्वम् नगरावासवत् व्रतत्वयुपपद्यते। यथा गृहे अपवरके वा वसन्नीय नगरावास, इत्युच्यते. तथा असकल व्रतोऽपि नैगम संग्रह व्यवहार नयापेक्षया व्रतीति व्यप दिश्यते।"

(अर्थ – शका है कि अपूर्ण व्रत होने के कारण गृहस्थी को व्रती पना कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसके उत्तर मे कहते है कि इसमे कोई दोप नही, क्योकि नैगम सग्रह व व्यवहार नयों की अपेक्षा से गृहस्थी को भी व्रतीपना है। उदाहरणार्थ जैसे घर मे रहने वाले को 'नगर मे रहता है' इस प्रकार कह दिया जाता है उसी प्रकार अपूर्ण व्रत होते हुए भी व्रती व्यपदेश वन जाता है।)

७ वृ. द्र. स।१४।४८ "वहिरात्मावस्थायामन्तरात्मपरमात्मद्वय शक्ति रूपेण, भावि नैगमनयेन व्यक्ति रूपेण च विज्ञेयम् अन्तरात्मावस्थाया तु·· ·परमात्मस्वरूपं तु शक्तिरूपेण भावि नैगमनयेन व्यक्तिरूपेण च।"

अर्थ– वहिरात्मा रूप अवस्था मे अन्तरात्मपना व परमात्मा पना दोनो शक्ति रूप से तो निस्सन्देह स्वीकारनीय है ही, परन्तु भावि नैगम नय से तो वे व्यक्ति रूप से भी वहा विद्यमान है। और इसी प्रकार अन्तरात्मा रूप अवस्था मे भी परमात्म स्वरूप यद्यपि शक्ति रूप से तो है ही, परन्तु भावि नैगम नय से भी वहा है। इस प्रकार भावि काल मे भूत काल का संकल्प भावि नैगम नय से कर लिया जाता है।)

८. प. ध.।३०।६२१ "तेभ्योऽर्वागपिछद्मस्थरूपास्तद्रूपधारिणः। गुरुव स्युर्गु रोर्न्यायान्नान्योऽवस्थाविशेषभाक्।६२१।

अर्थ.- देव होने से पहिले भी, छद्मस्थ रूप मे विद्यमान मुनि को देव रूप का धारी होने करि गुरु कह दिया जाता है। वास्तव मे तो देव ही गुरु है। ऐसा भावि नैगम नय से ही कहा जा सकता है। अन्य अवस्था विशेष मे तो किसी भी प्रकार गुरु सज्ञा घटित होती नही।)

इस प्रकार सर्वत्र भाविकाल मे होने वाले कार्य को वर्तमान में या भूतकाल मे हो गया वत् कहा जा सकता है। परन्तु यत्र तत्र विवेक शून्य इस नय का प्रयोग करके जिस किसी को भी साधक या भगवान आदि कह देना योग्य नही। क्योकि ऐसा करने से प्रयोजन की सिद्धि होने की बजाये उल्टा ही फल कदाचित हो सकना सम्भव है। जैसे कि ज्ञान शून्य धार्मिक क्रियाये करने वाले को वर्तमान मे ऐसा कहना योग्य नही कि मेरी यह व्यवहारिक क्रियायें भावि नैगम नय से परम्परा मोक्ष का कारण है, क्योकि ज्ञान शून्य उन क्रियाओ मे मोक्ष की साधक शक्ति का अभाव है। अत भावि नैगम नय का प्रयोग वहां ही करने मे आता है जहा कि भविष्यत कालीन कार्य का कोई अश वर्तमान मे प्रगट हो चुका हो, या भविष्यत मे वैसा फल होने का निश्चित हो गया हो। निश्चय अर्थ मे ही भावि नैगम का प्रयोग होता है जैसा कि निम्न उद्धरणों से प्रगट है।

१. ध. ।१।१८।१४ **शंका** – अक्षपकानुपशयकाना कथं तद्- (क्षायिक औपशमिकभावाना) व्यपदेशञ्चेत ?

उत्तर— न, भाविनि भूत वदुपचारतस्तत्सिद्धे

शंका – सत्येवमति प्रसङ्ग स्यादिति चेत् ?

उत्तरः— न, असति प्रतिबन्धरि मरणे नियमेन चारित्र मोह क्षपणोपशमकारिणा तन्दुन्मुखानामुपचार भाजामुपलम्भात्।

(ध. ।५। २०६)

अर्थ – शंका है कि आठवे, नवे व दसवे गुण स्थान मे न तो कर्मो का क्षय है और न उपशम, फिर भी वहां क्षायिक व औपशमिक भावो का सद्भाव कैसे स्वीकार करते हो ? उत्तर में कहा कि भावि काल मे भूत का उपचार करके अर्थात भावि नैगम नय से उन भावो की सिद्धि वहा हो जाती है। इस पर शंका कार कहता है कि ऐसा करने से तो अति प्रसंग दोप आ जायेगा, क्योकि भावि नैगम नय से तो जिस किसी भी जीव को क्षपक या उपशामक कहा जा सकता है ? उत्तर मे आचार्य प्रवर कहते है कि ऐसा नही है, क्योंकि हम जिस जीव मे उन भावो का सद्भाव बता रहे है वह जीव निश्चय से उन भावो को स्पर्श करेगा ही, यदि बाधक कर्म का उदय या मृत्यु न आये तो। इसी कारण नियम से चरित्र मोह का क्षपण व उपशमन करने वाले या ऐसा करने के उन्मुख जीवों मे क्षायिक व औपशमिक भावो की कथञ्चित उपलब्धि हो जाती है, अन्य जीवों मे नही।)

२ ध. ।५।२०६।८ शका.--इस प्रकार सर्वत्र उपचार का आश्रय करने पर अति प्रसंग दोप क्यो नही प्राप्त होगा ?

उत्तर:—नही, क्योकि प्रत्यासत्ति अर्थात समीपवर्ती (निश्चित) अर्थ के प्रसंग से अति प्रसग दोष का प्रतिषेध हो जाता है।

३. वृ. द्र. स. ।१४।४८ "अभव्य जीवे. ..अन्तरात्म परमात्म द्वये शक्ति रूपेणैव न च भावि नैगम नयेनेति।"

(अर्थ—अभव्य जीव मे तो अन्तरात्मा परमात्मा पना केवल शक्ति रूप से ही स्वीकार किया जा सकता है पर व्यक्ति रुप से तो भावि नैगम नय से भी कदापि स्वीकार नही किया जा सकता, क्योंकि वहा उस की व्यक्ति का असम्भव पना है।)

इस प्रकार इस नय के लक्षण, उदाहरण व उद्धरण तो कह दिये गये। इस नय को उत्तर प्रज्ञापन नय तथा भावि सज्ञा व्यवहार भी कदाचित कहने मे आता है। अब इस के कारण व प्रयोजन सुनिये ।

ज्ञान की वर्तमान कल्पना मे किसी पदार्थ के भविष्य का साक्षात निश्चय होना इस नय का कारण है। और व्यक्ति या साधक को उसके पुरुषार्थ के लिये शाबाश दे कर उसे उत्साह प्रदान करना इस नय का प्रयोजन है ।

(२) वर्तमान नैगम नय –

भावि नैगम वत् वर्तमान नैगम मे भी अनिष्पन्न या अपूर्ण कार्य को निष्पन्न या पूर्ण वत् स्वीकार किया जाता है । अन्तर केवल इतना है कि वहा तो कार्य की निष्पत्ति कुछ दूर है और यहा अत्यन्त निकट । वहां तो कार्य की निष्पत्ति मे अनेको बाधाये आनी सम्भव हैं और यहा ऐसी कोई बाधा का आना ख्याल मे नही आता । वहा तो कार्य की निष्पत्ति मे उपरोक्त कारणो से कुछ सन्देह पड़ा रहता है और यहा निश्चय दृढ़ होता है । यद्यपि वर्तमान काल सम्बन्धी भी अर्ध निष्पन्न कार्य की निष्पत्ति, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तो भविष्यत मे ही पड़ी है पर फिर भी यह भावि काल बहुत छोटा होने के कारण स्थूल दृष्टि से वर्तमान सज्ञा को प्राप्त हो जाता है । इसीलिये इसे

भावि नैगम न कह कर वर्तमान नैगम कहा गया है । अर्थात वर्तमान के अनिष्पन्न कार्य को भूतवत् कहना वर्तमान नैगम है ।

उदाहरणार्थ कल्पना कीजिये कि आप ने चुल्हे पर चावल पकने को चढाये है । अतिथि को भोजन कराना है जब तक उन चावलो में एक उवाल नही आ जाता तब तक उनका पकना कुछ दूर दिखाई देता है और इसीलिये उतने समय तक अतिथि को पाक शाला में बुलाने का साहस आप को नही हो पाता । क्योकि यद्यपि उन के शीघ्र ही पक जाने का अनुमान है पर निश्चय नही कि कितनी देर लगेगी । या यह कहिये कि पकेगें तो अवश्य परन्तु कुछ अधिक देर लगेगी, और अतिथि को प्रतीक्षा मे खाली वैठाना शोभा नही देता । इसलिये उस समय तक तो पूछने पर भी आप यही उत्तर देते है कि "बस अभी पक जाते है थोड़ी देर पुस्तक पढिये" ।

परन्तु जब उबाल आजाने के पश्चात् उन्हे सीजने के लिये नीचे कोयलो पर रख दिया जाये तब तो आप पूरे विश्वास के साथ अतिथि को पाक शाला मे ले आते हो ओर यही कहते हो कि "पधारिये खाना तैयार है" । ऊपर तो "अभी पक जाते है" और यह यहा "तैयार है", ऐसे दोनों मे ही प्रयोगो मे यद्यपि वर्तमान काल मे तैयारी की सूचना है, परन्तु दोनो मे कुछ अन्तर है । पहिले प्रयोग मे अनिश्चय व कुछ देरी की सूचना और दूसरे प्रयोग मे पूर्ण निश्चय व पूर्ण निष्पत्ति की सूचना है ।

यद्यपि दूसरे प्रयोग के समय भी चावल पूर्ण रीतय. पके नही, पर इस विश्वास पर कि आसन ग्रहण करते तथा कुल्ला आदि करते करते वे अवश्य तैयार हो जाने वाले है । परोसने मे देर करनी न पड़ेगी, आप उन्हे पके वत् ही समझ रहे है ! बस पहिला प्रयोग भावि नैगम नय का समझिये और दूसरा प्रयोग वर्तमान नैगम का ।

इस प्रकार दोनो मे दूर भविष्य व निकट भविष्य का ही अन्तर है।

सिद्धान्तिक रुप से विचारने पर तो दूर भविष्य या निकट भविष्य दोनो भविष्य ही है। एक क्षण पीछे वाला समय भी वास्तव मे भविष्य ही है और इसलिये इसे भी वर्तमान नैगम न कह कर भावि नैगम ही कहना चाहिये, परन्तु स्थूल व्यवहार मे निकट भविष्य वर्तमान रूप से ही ग्रहण करने मे आता है। जैसे "जो कल करना सो आज कर और जो आज करना सो अब कर" इस वाक्य मे 'कल' की अपेक्षा 'आज का सारा दिन' वर्तमान रुप से ग्रहण किया है और 'आज' की अपेक्षा 'अब' अधिक वर्तमान रुप से। 'अब' की अपेक्षा 'आज' का शेष समय भविष्यत मे पड़ा है और 'आज' की अपेक्षा 'कल' का सारा समय भविष्य में पड़ा है। इसी प्रकार जू जू निकटता आती जाती है तू तू उस भविष्यत काल मे वर्तमान पने का सकल्प होता चला जाता है।

इसलिये निकट भविष्य में निष्पन्न होने के निश्चय वाले कार्य के सकल्प को वर्तमान नैगम नय कहते है, और दूर भविष्य मे निष्पन्न होने वाले कार्य के संकल्प को भावि नैगम कहते है। यही दोनो में अन्तर है। सूक्ष्म दृष्टि से विचारने पर तो वर्तमान नैगम भी भावि नैगम ही है।

अध्यात्म दिशा मे भी उदाहरणार्थ उपरोक्त प्रकार ही आप किसी ऐसे प्रगति शील साधक को देख कर जो बराबर अधिकाधिक उत्साह के साथ आगे बढ़ता जा रहा है—अर्थात गृहस्थ से श्रावक होता है, वहा भी कुछ कुछ महीनों या वर्ष पश्चात् ऊपर ऊपर की प्रतिमाये धारण करते हुए मुनि बन जाता है, या मुनि बनने की अतीव जिज्ञासा रखते हुओ मुनि बनने के उन्मुख हो जाता है। बराबर अपनी

हीनता को धिक्कारता हुआ आगे बढने के लिये बल लगा रहा है, बाहर से मुनि भले न बन सका हो पर अन्तरङ्ग से मुनि वत् ही ध्यान आदि की साधना करता हुआ बराबर वैराग्य की ओर बढ़ रहा है। ऐसे किसी प्रगति शील साधक को या किसी सामान्य मुनिराज को या किसी ध्यानस्थ मुनि को वर्तमान में ही आप सिद्ध कह सकते है।

"अरे ! यह साधु नहीं है साक्षात प्रभु ही है" ऐसा निश्चय पूर्वक वाक्य बोला जा सकता है। यद्यपि साधु ही है परन्तु "साधु नही है" ऐसा कहना, और प्रभु हुए नही फिर भी "प्रभु ही है" ऐसा कहना विरोध को प्राप्त होता है। परन्तु निकट भविष्य म उन का प्रभु बन जाने के सम्बन्ध मे हृदय निश्चय ऐसा कहने मे कोई विरोध नही आने देता। वाक्य का अर्थ अनुक्त रुप से भी स्वत. आप को ऐसा भास जाता है कि, "प्रभु नही है, साधु ही है, पर निकट मे ही प्रभु बन जाने का निश्चय है"। इसे ही वर्तमान नैगम नय कहते है, जो भावि नैगम नय वत् होते हुते हुए भी उससे पृथक है।

उपरोक्त उदाहरणों पर से इस नय का लक्षण बना लीजिये। निष्पत्ति के निकट पहुचे हुए वर्तमान के अनिष्पन्न या अर्ध निष्पन्न कार्य को पूर्ण निष्पन्न दर्शाने का संकल्प करना वर्तमान नैगम है। अब इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१ वृह न. च.। २०८ तथा आ. प. । ६ । पृ. ७८. "प्रारब्धा या क्रिया पचनविधानादि कथयति य. सिद्धा। लोकेषु पृच्छ्यमानो भण्यते स वर्तमान नयः ।२०८।

"कर्तु मारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्न वा वस्तु निष्पन्न न त्यथ्यते तत्र स वर्तमान नेगमो यथा ओदनः पच्यते"

(**अर्थ**– जो क्रिया प्रारम्भ कर दी गई है–जैसा कि भात आदि पाचन विधि को प्रारम्भ करके भात पक गये है इस प्रकार, उस कार्य को सिद्ध हो गया हुआ ही लोक में पूछने पर जो कह देना, सो वर्तमान नैगम नय है। २०८।

करना प्रारम्भ कर दिया है पर अभी पूरा नही हुआ है, ऐसा अर्ध निष्पन्न या अनिष्पन्न कोई कार्य या वस्तु निष्पन्न वत् कह दी जाती है–जैसे "भात पकता है" ऐसा कहना सो वर्तमान नैगम है।)

२ नय चक्र गद्य पृ. १२ "अनिष्पन्न क्रिया रुप निष्पन्न गदति स्फुटं। नैगमो वर्तमान. स्यादोदन पच्यते यथा।२ ।"
"वर्तमान काले परिणमतोऽनिष्पन्न क्रिया विशेषान् वर्तमान काले निष्पन्न वत् कथन वर्तमान नैगम. ।"

(**अर्थ**– अनिष्पन्न क्रिया को स्पष्ट रुप से निष्पन्न कह देना वर्तमान नैगम है–जैसे "भात पकता है" ऐसा कहना ।२। वर्तमान काल मे परिणमन करने वाले परन्तु अनिष्पन्न कार्य विशेष को वर्तमान मे निष्पन्न वत् कहना वर्तमान नैगम है ।)

यह इस नय के उद्धरण हुए, अब इस के कारण व प्रयोजन देखिये। कल्पना द्वारा किया गया निष्पत्ति का निर्णय तो इस का कारण है, और साधक के प्रति बहुमान उत्पन्न करके स्वय अपने जीवन को कुछ प्रेरणा देना अथवा साधक को उत्साह प्रदान करना इस नय का प्रयोजन है।

इस प्रकार नैगम नय के काल कृत भेदो का निरुपण करके यह सिद्ध कर दिया गया कि त्रिकाल वर्ती पर्यायों मे से कोई भी एक

पर्याय का वर्तमान मे सकल्प करना नैगम नय है । अब आगे इस नय के द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक रुप भेदों का निरुपण करने मे आयेगा । गौर से सुनना ।

४. द्रव्य नैगम नय

काल सूचक नैगम के भेदों का कथन हो चुका । अब इसके धर्म धर्मी के द्वैत रूप भेदों का कथन करना चाहिये । द्रव्य, गुण व पर्याय तीनों को ही द्वैत रूप से युगपत ग्रहण करने वाले इस व्यापक नय को तीन प्रमुख भेदो में विभाजित किया गया है–

१. दो धार्मियो मे एकता का सकल्प

२. दो धर्मों मे एकता का संकल्प

३. धर्म व धर्मी मे एकता का सकल्प

इन्ही तीनो को विशेष स्पष्ट करने के लिये इनके निम्न प्रकार उत्तर भेद किये गये है, जो भले ही नामो की अपेक्षा भिन्न दीखते हो परन्तु उपरोक्त तीन विकल्पो से अन्य अपनी पृथक सत्ता नही रखते ।

१. धर्मियो की अपेक्षा— १. द्रव्य नैगम, २. शुद्ध द्रव्य नैगम, ३ अशुद्ध द्रव्य नैगम,

२. धर्मो की अपेक्षा — १. पर्याय नैगम, २ अर्थ पर्याय नैगम, ३ व्यञ्जन पर्याय नैगम, ४ अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम ।

३. धर्म धर्मी की अपेक्षा – १ द्रव्य पर्याय नैगम, २. शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम, ३ शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम, ४. अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम, ५. अशुद्ध द्रव्य व्यन्जन पर्याय नैगम

इस प्रकार इन तीन के कुल १२ भेद हो जाते हे । इनमें भी द्रव्य नैगम, पर्याय नैगम और द्रव्य पर्याय नैगम यह तीन सामान्य भेद है, अर्थात उन पूर्वोक्त धर्म धर्मी आदि के ही पर्याय वाची नाम हैं। दो धर्मियो मे एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य नैगम है, जिसके कि दो भेद है-शुद्ध व अशुद्ध। इसी प्रकार दो धर्मो मे एकता के सकल्प का नाम ही पर्याय नैगम है, जिसके कि दो भेद है–अर्थ व व्यञ्जन। धर्म धर्मी मे एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य पर्याय नैगम है, जिस के कि चार भेद है--शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय मे, अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय, शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय और अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय। इस प्रकार तीन तो सामान्य भेद है और शेप नौ उनके उत्तर भेद है। अब इन का ही क्रम से कथन किया जायेगा। उनमे भी पहिले द्रव्य नैगम वक्तव्य है।

इतने ही नही और भी अनेको विकल्प इन भेदों मे उत्पन्न किये जा सकते है, यदि द्रव्य व पर्याय इन, सामान्य वाची शब्दों को हटाकर इनके स्थान पर, इनको ग्रहण करने वाले सातो नयों के नाम लगा कर उनके सयोगी भंग बना दिये जाये तो जैसे.–

शुद्ध द्रव्य नैगम.–१. शुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्र नैगम, २ शुद्ध द्रव्य शब्द नैगम, ३. अशुद्ध द्रव्य समभिरूढ़ नैगम, ४. शुद्ध द्रव्य एवभूत नैगम।

अशुद्ध द्रव्य नैगम --१. अशुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्र नैगम, २. अशुद्ध द्रव्य शब्द नैगम, ३. शुद्ध द्रव्य समभिरूढ नैगम, ४. अशुद्ध द्रव्य एवभूत नैगम।

अर्थ पर्याय नैगम.–१. ज्ञान अर्थ पर्याय नैगम, २. ज्ञेय अर्थ पर्याय नैगम, ३. ज्ञानज्ञेय अर्थ पर्याय नैगम

व्यञ्जन पर्याय नैगम.-१.शब्द व्यञ्जन पर्याय नैगम, २.समभिरूढ़ व्यञ्जन पर्याय नैगम, ३ एवभूत व्यंञ्जन पर्याय नैगम, ४. शब्द समभिरूढ व्यञ्जन पर्याय नैगम, ५. शब्द एवभूत व्यञ्जन पर्याय नैगम, ६. समभिरूढ़ एवभूत व्यञ्जन पर्याय नैगम

अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम --१. शब्द अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम, २. समभिरूढ अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम ३. एवंभूत अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम

द्रव्य पर्याय नैगम --१. शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम, २. शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम, ३. अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम, ४. अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम ।

तथा इसी प्रकार अन्य भी अनेकों द्वैत रूप विकल्प उत्पन्न किये जा सकते है ।

१ द्रव्य नैगम नय सामान्यः-

वस्तु की पर्वाह न करके, ज्ञानगत कल्पनाओं मे वर्तते हुए ही, "यह द्रव्य है, यह उसका स्वभाव है, यह पर्याय है, इसका सम्बन्ध इस द्रव्य से है" इत्यादि प्रकार के अनेकों सकल्प विकल्प ज्ञान मे उठा करते है । इस कल्पनागत द्वैत के आधार पर ही द्रव्य पर से द्रव्य का संकल्प जब करने मे आता है, तब द्रव्य नैगम नाम पाता है इसका यह अर्थ न समझ लेना कि एक द्रव्य के आधार पर किसी अन्य द्रव्य का परिचय पाना इसका लक्षण है, क्योंकि

भिन्न जातीय द्रव्यों मे लक्ष्य लक्षण भाव होना असम्भव है। तव द्रव्य पर से द्रव्य का संकल्प करना इसका क्या अर्थ ?

जैसा कि पहिले भली भांति स्पष्ट किया जा चुका है कि कल्पना म गुण गुणी आदि भेद करने से वस्तु मे भेद नही हो जाता फिर भी भाषा मे तो भेद दीखता ही है। द्रव्य का अदृष्ट रूप किसी को समझाने के लिये उसका कुछ न कुछ लक्षण करना पड़ता है। तव उस एक के अन्दर ही लक्षण लक्ष्य भेद उत्पन्न हो जाता, जैसे 'सद्रव्यलक्षणम्' या 'गुणपर्ययवद्रव्यम्' यह दो लक्षण द्रव्य सामान्य के करने मे आते है, और 'उपयोगो लक्षणम्' या 'ज्ञानवाश्च जीवो' ऐसे लक्षण जीव द्रव्य विशेष के करने मे आते है, तथा इसी प्रकार ही पुग्दल आदि द्रव्यों के भी यथायोग्य रूप से कुछ न कुछ लक्षण करने मे आते हैं।

तहा यद्यपि 'सत्' व 'द्रव्य' कोई भिन्न भिन्न वस्तुए नही है, फिर भी 'सत् को द्रव्य कहते है' या 'सत् द्रव्य है' या 'द्रव्य सत् है' इस प्रकार कहा जाता है। इसी प्रकार जो गुणपर्यायवान है वही द्रव्य है, फिर भी 'गुणपर्यायवान द्रव्य है' ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार एक ही के अन्दर लक्षण लक्ष्य भेद करके एक के आधार पर दूसरे का परिचय दिया जाता है। सर्वत्र ऐसा व्यवहार प्रचलित है। लक्षण उसे कहते है जिसके द्वारा या जिस पर से किसी विवक्षित वस्तु को अन्य वस्तुओ से पृथक करके दर्शाया जाये। और लक्ष्य उसे कहते है जिसे कि दर्शाया जाये। इस प्रकार दोनों मे द्वैत भासने लगता है। यह कार्य मात्र ज्ञान मे सकल्प द्वारा किया जाता है, वस्तु मे नही।

लक्षण को सर्वत्र गौण किया जाता है और लक्ष्य को सदा मुख्य क्योंकि जो बात समझनी अभीष्ट हो वही मुख्य होती है, जिसके द्वारा समझायी जाये उसकी प्रमुखता नही होती। द्रव्य अदृष्ट है और उसके कुछ कार्य व स्वभाव दृष्ट है। उन दृष्ट कार्यों व स्वभावो

पर से अदृष्ट का अनुमान किया जाता है अत वही मुख्य है। सर्वत्र यही लक्षण व लक्ष्य मे गौण मुख्य व्यवस्था का नियम है।

तहां देखना-यह है कि लक्षण किस नय का विषय है और लक्ष्य किस नय का है। उपरोक्त उदाहरणो मे लक्षण शुद्ध या अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विपय है, क्योंकि 'सत्' ऐसा लक्षण अभेद का वाचक होने के कारण शुद्ध है और 'गुण पर्याय वान' ऐसा लक्षण भेद का वाचक होने के कारण अशुद्ध है। लक्ष्य जो द्रव्य वह तो स्वय द्रव्य है ही, अत. वह भी द्रव्यार्थिक का ही विषय रहा। इस प्रकार ऊपर द्रव्यार्थिक का विषय ही लक्षण है और द्रव्यार्थिक का विपय ही लक्ष्य है। द्रव्यार्थिक के विषयभूत लक्षण पर से द्रव्यार्थिक ही के विषयभूत लक्ष्य को समझा या समझाया जा रहा है। इसीको कहते है द्रव्य पर से द्रव्य का संकल्प या विचार करना।

क्योकि दोनो मे से लक्षण को गौण व लक्ष्य को मुख्य किया जाता है, इसलिये यह द्वैत मे अद्वैत या अनेकता में एकता का संकल्प कहलाता है। इस प्रकार द्वैत मे अद्वैत और अद्वैत मे द्वैत उत्पन्न करना ही सर्वत्र नैगम नय का लक्षण है। तहां द्रव्य पर से द्रव्य के सकल्प का या द्रव्यार्थिक नय के विषय परसे द्रव्यार्थिक नय के ही विपय के संकल्प को द्रव्य नैगम कहते है। इसे ही दो 'धर्मियो मे एकता' इन शव्दो द्वारा कहा गया है, क्योकि द्रव्यार्थिक के विपय होने के कारण लक्षण भी धर्मी है और लक्ष्य भी। इस प्रकार एक धर्मी के आधार पर दूसरे धर्मी का सकल्प किया जाने के कारण यह दो धर्मियों की एकता है।

यह सामान्य द्रव्य नैगम का लक्षण है इसलिये इसमे संग्रह नय व व्यवहार नय दोनों के लक्षण समा जाते है। उदाहरणाथ गाये एक पशु है। वह दो प्रकार की होती है-ब्राजील ज़ाति की और

मार्तीय जाति की। इनमे मार्तीय जाति अनेक भेद वाली हैं। तहा पुन एक एक पृथक पृथक भेद भूरी काली व सफेद आदि रंगो की अपेक्षा अनेक प्रकार का है। इसी प्रकार जीव एक पदार्थ है। वही दो प्रकार का है संसारी व मुक्त। उनमे भी संसारी त्रस स्थावर आदि के भेदों से अनेक प्रकार का है, इत्यादि।

इस प्रकार भेद प्रभेद डालना द्रव्यार्थिक नैगम नय का विषय है। यहा भी एक द्रव्य को अथवा उसके एक भेद को उसी के उत्तर भेदो के आधार पर विशेष रूप से समझाना अभीष्ट है। द्रव्य स्वयं तो द्रव्यार्थिक का विषय है ही, पर वह उसके भेद भी द्रव्यार्थिक के ही विषय है, क्योंकि यथा योग्य रूप से सर्व ही भेद द्रव्य पर्याय स्वरूप हैं। इनमे कोई भी भेद अर्थ पर्याय वाला नही है, जो कि उन को पर्यायार्थिक का विषय बताया जा सकता। यद्यपि ये सर्व भेद तो पर्याय है द्रव्य नही, पर द्रव्य पर्याय होने के कारण इन्हे द्रव्यार्थिक के विषय रूप ही स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार उपरोक्त उदाहरण को द्रव्य नैगम नय का विषय बनाना निर्बाध सिद्ध है। ये सब ही इस व्यापक नय के लक्षण व उदाहरण समझना। अब इन की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगमोक्त वाक्य सुनिये।

१. क पा।पू १।पृ २४४ "सर्वमेकं सदविशेषात्, सर्वं द्विविध जीवाजीवभेदादित्यादि युतयवष्टम्भबलेन विषयीकृत संग्रह व्यवहारनय विषय. द्रव्यार्थिक नैगम·।"

अर्थः—अभेद दृष्टि से देखने पर सकल विश्व व्यापी सत् एक है। वह ही जीव व अजीव के भेद से दो प्रकार का है। इसी प्रकार से युक्ति पूर्वक संग्रह व व्यवहार इन दोनों नयो के विषय को स्वीकार करने वाला द्रव्यार्थिक नैगम नय है।

२. ध. । पु. ६।पृ. १८१।३. "न एगमो नैगमः इति न्यायात्-- शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिक नय द्वय विषयः द्रव्यार्थिक नैगम ।"

अर्थः— जो एक को विषय न करे अर्थात भेद व अभेद दोनों को विषय करे वह नैगम नय है' इस न्याय से जो शुद्ध द्रव्यार्थिक और अशुद्ध द्रव्यार्थिक दोनो नयों के विषय को ग्रहण करने वाला है वह द्रव्यार्थिक नैगम नय है ।

३. रा. वा. हि. ।१।३३।१६८ (यद्यपि यहा द्रव्य नैगम सामान्य का लक्षण नही दिया है, उसके भेदो के लक्षण अवश्य दिये है जो आगे आने वाले है । वहा सर्वत्र द्रव्य जो लक्ष्य या विशेष्य उनको मुख्य किया है और 'सत्' अथवा 'गुणपर्यायवान' जो लक्षण या विशेषण इनको गौण किया है। तातै 'द्रव्य विषै विशेष्य को मुख्य और विशेषण को गौण करके द्रव्य का संकल्प करना द्रव्य नैगम है' ऐसा इसका लक्षण किया जा सकता है ।)

इस प्रकार लक्षण, उदाहरण व उद्धरण इन तीनो का कथन हो चुकने के पश्चात अब इसके कारण व प्रयोजन विचारिये । द्रव्य पर से द्रव्य का सकल्प करने के कारण द्रव्य नय है । अद्वैत मे लक्षण लक्ष्य रूप द्वैत को ग्रहण करने के कारण नैगम है। वस्तु की तरफ न देखकर मात्र ज्ञान के आकार मे ही संकल्प द्वारा इस प्रकार का द्वैत किया गया है । इसलिये भी यह नैगम नय है । इसलिये इसका 'द्रव्य नैगम नय' ऐसा नामा सार्थक है । यह इस नय का कारण है । तथा दृष्ट कार्यो या स्वभावों के आधार पर अष्दृट व अखण्ड वस्तु का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

यहां इतना अवधारण करना योग्य है कि आगे आने वाले शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य नैगम नयो के प्रकरण मे 'शुद्ध' शब्द का अर्थ सर्वत्र

अभेद और 'अशुद्ध' शब्द का अर्थ भेद ग्रहण करना । अर्थात् द्रव्य की एक रस रूप सामान्य अखण्डता को दृष्टि मे लेना ही शुद्ध द्रव्य दृष्टि है, और उसके अन्तर्गत रहने वाले गुण पर्याय आदि विशेपो का भेद करके उनके समुदाय रूप से उसे देखना अशुद्ध द्रव्य दृष्टि है ।

२ शुद्ध द्रव्य नैगम नय

इसका विशेप विस्तार करने की आवश्यकता नही । उपरोक्त द्रव्य नैगम के सामान्य लक्षण पर से ही इसका विस्तार जाना जा जा सकता है । अन्तर केवल इतना है कि यहा लक्षण शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषयभूत ही होना चाहिये । या यों कहिये कि शुद्ध द्रव्यार्थिक के विषयभूत शुद्ध द्रव्य पर से द्रव्य सामान्य का संकल्प करना शुद्ध द्रव्य नैगम नय का लक्षण है ।

जैसे 'सत् द्रव्य है' ऐसा कहना । तहा 'सत्' यह शब्द वस्तु के उत्पाद व्यय व ध्रुव स्वरूप तीनों अशो मे अनुयूत एक सामान्य भाव का द्योतक है । इसलिये जैसा कि आगे सग्रह नय के प्रकरण मे वताया जायेगा, यह अभेद सत् शुद्ध द्रव्यार्थिक संग्रह नय का विपय है । अत' यहा शुद्ध पर से द्रव्य सामान्य का सकल्प किया जा रहा है । अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देता हू ।

१. श्ल. वा. ।पु. ४।पृ ३७ "भेद विकल्प रहित सन्मात्र वस्तु का संकल्प (शुद्ध द्रव्य नैगम है) "

२ रा. वा. हि. ।१।३३।१९८ "सग्रह नय का विपय सन्मात्र शुद्ध द्रव्य है, ताका यह नैगम नय सकल्प करे है, जो सन्मात्र द्रव्य समस्त वस्तु है । ऐसे कहे तहा सत् तो विशेपण भया, तातै गौण भया । ब्हुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य है । यह शुद्ध द्रव्य नैगम है ।

अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये। ग्राह्य लक्षण शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है इसलिये यह नय शुद्ध है। द्रव्य पर से द्रव्य का सकल्प अर्थात द्रव्यार्थिक के विषय पर से द्रव्यार्थिक के विषय का संकल्प करने के कारण द्रव्य नय है। अद्वैत सत् मे लक्षण लक्ष्य द्वैत को ग्रहण करने के कारण नैगम है। अथवा मात्र ज्ञान के आकार मे ही सकल्प द्वारा द्वैत किया गया है, इसलिये भी इसे नैगम कहा गया है। इसलिये इसका 'शुद्ध द्रव्य नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। तथा दृष्ट जो सत्ता या अस्तित्व रूप स्वभाव उसके आधार पर अखण्ड व अदृष्ट वस्तु का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

२ अशुद्ध द्रव्य नैगम नय —

उपरोक्त शुद्ध द्रव्य नैगम नय की भाति इसके लक्षण का विस्तार भी द्रव्य नैगम सामान्य के लक्षण पर से जाना जा सकता है। अन्तर केवल इतना है कि यहा लक्षण अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषयभूत ही होना चाहिये या यो कहिये कि अशुद्ध द्रव्यार्थिक के विषयभूत अशुद्ध द्रव्य पर से द्रव्य सामान्य का संकल्प करना अशुद्ध द्रव्य नैगम नय का लक्षण है।

जैसे 'गुण पर्याय वाला द्रव्य है' या ज्ञानवान जीव ऐसा कहना तहा 'गुण पर्याय वाला' अथवा 'ज्ञानवान' यह कहना तो अभेद मे भेद की कल्पना है। वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक या व्यवहार नय का विषय है। यह तो लक्षण है और द्रव्य समान्य लक्ष्य हैं। इस प्रकार यहां अशुद्ध द्रव्य पर से द्रव्य सामान्य का सकल्प किया जा रहा है। अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देता हू।

१. श्लो. वा. ।पु ४। पृ ३९ "गुण पर्याय आदि भेद डालकर वस्तु का सकल्प करना (अशुद्ध द्रव्य नैगम नय है)।"

२. रा. वा. हि. ।१।३३।१६८ "जो पर्यायवान है सो द्रव्य है' तथा गुणवान है सो द्रव्य है' ऐसा व्यवहार नय भेद करि कहै है। ताका यह नैगम नय सकल्प करै है। तहा 'पर्यायवान तथा गुणवान' यह तो विशेषण भया तातै गौण है। वहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य भया। ऐसे अशुद्ध द्रव्य नैगम है।"

अव इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये। ग्राह्य लक्षण अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है इसलिये यह नय अशुद्ध है। द्रव्य पर से द्रव्य का सकल्प, अर्थात द्रव्यार्थिक के विषय पर से द्रव्यार्थिक के विषय का सकल्प करने के कारण द्रव्य नय है। अद्वैत सत् मे लक्षण लक्ष्य रूप द्वैत को ग्रहण करने के कारण नैगम है। अथवा वस्तु की अपेक्षा न करके मात्र ज्ञान के आकार को आश्रय कर, सकल्प द्वारा द्वैत किया जाने के कारण भी इसे नैगम कहा जाता है क्योकि नैगम नय ज्ञान नय है ऐसा पहिले कहा जा चुका है। इसलिये इसका 'अशुद्ध द्रव्य नैगम नय' 'ऐसा नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। तथा दृष्ट जो स्वभाव तथा उनके कार्य, उनके आधार पर अखण्ड व अदृष्ट वस्तु का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

५ पर्याय नैगम नय

अव नैगम नय के उत्तर भेदों मे जो दूसरा विकल्प, अर्थात दो धर्मों मे एकता का ससल्प करना है, उसका कथन चलता है। द्रव्य नैगम नय के प्रकरण के प्रारम्भ मे ही यह वात दर्शा दी गई है कि इसका ही दूसरा नाम पर्याय नैगम नय है। इसके प्रमुखतः ३ भेद हैं—अर्थ पर्याय नैगम, व्यञ्जन पर्याय नैगम और अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम।

यद्यपि अर्थ पर्याय नैगम के भी शुद्ध अर्थ पर्याय नैगम व अशुद्ध अर्थ पर्याय नैगम ऐसे दो भेद किये जा सकते है, और इसी प्रकार

व्यञ्जन पर्याय नैगम के भी शुद्ध व्यञ्जन पर्याय नैगम और अशुद्ध व्यञ्जन पर्यायनैगम ऐसे दो भेद किये जा सकते है, क्योकि अर्थ व व्यञ्जन दोनो ही प्रकार की पर्यायें शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो दो प्रकार की है। परन्तु इनका पृथक पृथक कथन यहां किया नही गया है, क्योकि ऐसा करना वाग्गौरव के अतिरिक्त कुछ न होगा।

शुद्ध व अशुद्ध पर्याय नयों के लक्षण अपनी अपनी सामान्य अर्थ व व्यञ्जन पर्याय वाली नयो के समान ही होते है । अन्तर केवल इतना है कि अर्थ व व्यजन पर्याय नैगमसमान्य मे तो सामान्य पर्यायों का सकल्प करना अभीष्ट है और उनके भेदों द्वारा पर्यायो के शुद्ध व अशुद्ध विशेपो का संकल्प करना अभीष्ट है । यहां लक्ष्य सामान्य अर्थ व व्यञ्जन पर्याय है और वहा लक्ष्य शुद्ध या अशुद्ध अर्थ व व्यञ्जन पर्याय होगा।

इस पर से यह कहा जा सकता है कि तब तो सामान्य पर्याय नैगम का ही कथन करना पर्याप्त था क्योकि अर्थ व व्यञ्जन पर्याय नैगम नये भी उन्ही मे गर्भित हो जाती है। सो वात नही है, क्योंकि दोनो के लक्षणो मे कुछ अन्तर है। जैसा कि आगे उनके लक्षणो पर से जानने मे आयेगा यहा अर्थ पर्याय नैगम मे प्रत्येक गुण की क्रमवर्ती क्षणिक पर्याय को अर्थात गुण पर्याय को ग्रहण किया है, भले ही वह सूक्ष्म हो कि स्थूल। व्यञ्जन पर्याय मे किसी भी एक त्रिकाली गुण सामान्य को या वस्तु के आकार को ग्रहण किया गया है। इसके अन्तर्गत द्रव्य पर्यायो का ग्रहण सर्वथा किया नही जा सकता क्योकि उनको द्रव्य रूप स्वीकार किया जाने के कारण द्रव्य नैगम का विषय बनाया जा चुका है। स्थूल दृष्टि में स्थायी दीखने वाली मति ज्ञानादि पर्याये भी व्यञ्जन पर्यायें है। द्रव्य पर्याय वत् उनको भी उपचार से गुण रूप स्वीकार करने मे कोई विरोध नही है।

पर्याय नैगम नय मे पर्यायो का ग्रहण करने के कारण नैगम नय का द्रव्यार्थिक पना विरोध को प्राप्त नही हो सकता, क्योकि यहा दो पर्यायो मे अद्वैत किया जाता है अर्थात एक पर्याय पर मे दूसरी पर्याय का सकल्प किया जाता है, जब कि पर्यायार्थिक नय मे के एक पर्याय की सत्ता के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता ही स्वीकार नही की जाती। यह द्वैत भाव ही इस नय की द्रव्यार्थिकता का द्योतक है। अब इसके भेदो का क्रम से कथन किया जाता है।

१ पर्याय नैगम नय सामान्य—

जैसा कि इसका नाम स्वय बता रहा है, पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करने को पर्याय नेगम कहते है। यद्यपि द्रव्य नैगम का लक्षण भी बिल्कुल इन्ही शब्दो मे किया गया है, परन्तु दोनो मे कुछ भेद है। द्रव्य का लक्षण द्रव्य के अपने गुण पर्याय व स्वभाव रूप हो सकता है, परन्तु पर्याय का लक्षण अपनी पर्याय स्वरूप नही हो सकता, क्योकि जिस प्रकार भेद विवक्षा द्वारा द्रव्य मे गुण पर्याय देखे जा सकते है उस प्रकार भेद विवक्षा द्वारा भी एक पर्याय मे अन्य पर्याय नही देखी जा सकती। द्रव्य अगी है और पर्याय अग। अगी का विशेषण तो अग हो सकता है पर अग का विशेषण कौन बने ? एकत्व मे द्वित्व उत्पन्न करना असम्भव है। अत. किसी एक गुण की पर्याय का या उसके स्वभाव का परिचय पाने के लिये उसके साथ किंचित मेल खाती अन्य गुण की पर्याय का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। अत. यहा 'पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करना' इसका अर्थ है एक गुण की पर्याय पर से अन्य गुण की पर्याय का सकल्प करना। यही दो धर्मो की एकता का तात्पर्य है।

द्रव्य या अभेद की अपेक्षा, सत् व द्रव्य, या सत् व गुण, या सत् व पर्याय कोई भिन्न वस्तु नही है। परन्तु पर्याय या भेद की अपेक्षा से सत् नाम का गुण तथा ज्ञानादि कोई अन्य गुण, अथवा

सत् की पर्याय तथा किसी अन्य गुण की पर्याय अथवा सत् का अनित्य स्वभाव तथा किसी भी अन्य गुण या पर्याय का अनित्य स्वभाव, यह सब पृथक सत्ता रखते हैं। इस प्रकार यहा दो धर्मो मे एकता करने के कारण द्वैत को अद्वैत करना कहा है, द्रव्य नैगम वत् अद्वैत को द्वैत करना नही।

मुख्य गौण व्यवस्था तो यहा भी द्रव्य नैगम वत् ही है, अर्थात जिस गुण या पर्याय को विशेषण रूप से ग्रहण किया गया है वह तो गौण कर दिया जाता है। और जिसे विशेष्य रूप से जानना अभीष्ट है उसे मुख्य किया जाता है।

यहा देखना यह है कि लक्षण किस नय का विषय है और लक्ष्य किस नय का। सो कोई भी अर्थ या व्यञ्जन पर्याय तो निःसदेह पर्यायार्थिक नय का विषय है ही, परन्तु द्रव्य से पृथक करके विचारा गया कोई गुण भी पर्यायार्थिक नय का ही विषय है। इस प्रकार लक्षण व लक्ष्य दोनो ही पर्यायार्थिक नय के विषय है। पर्यायार्थिक के विषय भूत एक गुण या पर्याय पर से पर्यायार्थिक के विषयभूत अन्य गुण या पर्याय का सकल्प करना ही पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करना है।

यह इस नय की स्थापना हुई। इसके उदाहरण तो आगे इस नय के भेदों के कथन मे आने वाले है। उनसे पृथक इसका कोई स्वतत्र उदाहरण नही हो सकता। अब इसकी पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगम कथित वाक्य उद्धत करता हू।

१ क. पा. । प्र १ । पृ २४४। र ३ "ऋजु सूत्रादिनयचतुष्टयविषयं युक्त्यवष्टभबलेन प्रतिपन पर्यायार्थिक नैगम ।"

अर्थः- ऋजुसूत्रादि चारो पर्यायार्थिकनयों के विषय को युक्तिरूप आधार के बल से स्वीकार करने वाला पर्यायार्थिक नैगम है।

२. धा।पृ ६ ।प्र।१८१।२ "न एकगमो नैगम इति न्यायात् शुद्धाशुद्ध पर्यायार्थिकनय द्वयविषय पर्यायार्थिक नैगम. ।"

अर्थः- जो एक को विषय न करे अर्थात भेद व अभेद दोनो को विषय करे वह नैगम नय है । इस न्यायसे जो शुद्ध पर्यायियार्थिक नय व अशुद्ध पर्यायार्थिक नय इन दोनो के विषय को ग्रहण करने वाला हो वह पर्यायार्थिक नैगम है ।

३. रा वा हि ।१। ३३। १६८ "पर्यायो मे विशेपण भाव को गौण तथा विशेष्य भाव को मुख्य करके पर्याय को विशेषण रूप सकल्प करना । "

इस प्रकार लक्षण व उद्धरण का कथन हो चुकने के पश्चात अव इस के कारण व प्रयोजन विचारिये । पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करने के कारण पर्याय नय है । द्वेत मे लक्षण लक्ष्य भाव रूप अद्वैत का ग्रहण करने के कारण नैगम है । अथवा वस्तु की तरफ न देख कर इसका व्यापार मात्र ज्ञान के आकार मे हो रहा है, अर्थात सकल्प द्वारा ज्ञान के आकारो मे ही उपरोक्त द्वैत का ग्रहण किया जा रहा है । इसलिये भी इसे नैगम कहा गया है, क्योकि नैगम नय का व्यापार ज्ञान मे ही होता है वस्तु मे नही । अतः इसका 'पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह इसका कारण है । तथा दृष्ट व परिचित पर्याय के आधार पर किसी पर्याय के अदृष्ट स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

२ अर्थ पर्याय नैगम नय

इसका विशेष विस्तार करने की आवश्यकता नही क्योकि पर्याय नैगम सामान्य के लक्षण पर से ही वह जाना जा सकता है । यहा विशेषता केवल इतनी है कि विशेषण रूप से ग्रहण की गई पर्याय भी अर्थ पर्याय या गुण पर्याय होनी चाहिये और विशेष्य रूप से

स्थापन की गई पर्याय भी अर्थ पर्याय या गुण पर्याय ही होनी चाहिये द्रव्य पर्याय नही, क्योकि उस का ग्रहण द्रव्य के रूप मे द्रव्य नैगम के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहां अर्थ पर्याय या गुण पर्याय से तात्पर्य किसी भी गुण की क्षणिक पर्याय है।

यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि प्रत्येक पर्याय ही क्षणिक होती है, परन्तु स्थूल दृष्टि से कुछ पर्याय ऐसी भी होती है जो बहुत कालपर्यन्त या सारे जीवन पर्यन्त जू की तूं देखने में आती है। जैसे ज्ञान गुण की मति ज्ञान आदि पर्याये। इस प्रकार की पर्यायों को व्यज्जन पर्याय कहते है। उपचार से इन को गुण भी कह दिया जाता है। इन के अतिरिक्त कुछ पर्याये ऐसी भी होती है जो स्थूल दृष्टि से देखने पर भी क्षण स्थाई ही दिखाई देती है—जैसे विषय सुख या क्रोधादि भाव। ऐसी पर्यायो को अर्थ पर्याय या गुण पर्याय कहते हैं। इन के क्षण वर्ती पने के कारण इन्हे उपचार से भी गुण नही कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गुण की प्रति समयवर्ती जो एक सूक्ष्म पर्याय होती है, जो छद्मस्थ ज्ञान के अगोचर है, उसे भी अर्थ पर्याय कहते है।

वहा पहिली अर्थात स्थूल अर्थ पर्याय को अशुद्ध अर्थ पर्याय कहते है और पिछली अर्थात सूक्ष्म अर्थ पर्याय को शुद्ध अर्थ पर्याय कहते है। अत्यत सूक्ष्म होने के कारण शुद्ध अर्थ पर्याय को लक्षण रूप से ग्रहण नही किया जा सकता, क्योकि लक्षण सर्व जन परिचित ही होना चाहिये ऐसा न्याय है। अत. यहा अर्थ पर्याय नैगम के प्रकरण मे अशुद्ध पर्यायो को ही लक्षण व लक्ष्य बना कर कथन किया जा रहा है।

यद्यपि अर्थ पर्याय नैगम दो प्रकार की होती है—शुद्ध अर्थ पर्याय नैगम और अशुद्ध अर्थ पर्याय नैगम परन्तु उपरोक्त कारण से शुद्ध अर्थ पर्याय नैगम का उदाहरण भी सम्भव नही है। अतः अशुद्ध अर्थ पर्याय नैगम के उदाहरण पर से उस का भी योग्य रीति से अनुमान

कर लेना। 'क्रोध क्षण ध्वसी है' ऐसा कहना अर्थ पर्याय नैगम का उदाहरण है।

वैसे तो क्रोध व क्षणध्वसी पना कोई पृथक पृथक पर्याये नही है। क्रोध का स्वभाव ही क्षणध्वसी है परन्तु फिर भी इस वाक्य मे या ऐसी विचारणा मे क्योंकि क्रोध का स्वभाव जानना अभीष्ट है अत वह तो विशेष्य है और 'क्षणध्वसीपना' यह विशेषण है, क्योंकि इस के द्वारा उस का परिचय मिल रहा है।

यद्यपि प्रत्येक पर्याय स्वय क्षण ध्वसी होती है, परन्तु भेद विवक्षा से विचार करने पर, उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक 'सत्' के उत्पाद व्यय स्वरूप अनित्य अग के कारण से ही पर्यायो मे वह क्षणिक पना आता है। इस प्रकार कारण कार्य का भेद डालकर 'उत्पन्न ध्वसी' इस भाव को तो 'सत्' गुण की अर्थ पर्याय कहते है और क्रोध' चारित्र गुण की अर्थ पर्याय है। इस प्रकार एक गुण की अर्थ पर्याय पर से अन्य गुण की अर्थ पर्याय का सकल्प करना अर्थ पर्याय नैगम नय का विषय है। अब इसकी पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित वाक्य उद्धत करता हू।

१ श्लो. वा. पु. ४ पृ २६ "प्रति क्षण ध्वसी सुख से देह धारी ससारियो का सकल्प (अर्थ पर्याय नैगम है)।

२ रा. वा हि।१।३३।१६८ "प्राणी के सुख सवेदन है सो क्षण ध्वसी है" या का यहू नैगम सकल्प करे है।

अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये। यहां लक्षण भी अर्थ पर्याय है और लक्ष्य भी अर्थ पर्याय है। इस प्रकार अर्थ पर्याय पर से अर्थ पर्याय का सकल्प करने या परिचय पाने के कारण यह अर्थ पर्याय नय है। द्वैत करके भी अद्वैत को ग्रहण करने के कारण नैगम है अथवा

ज्ञान मात्रा के आकारों मे संकल्प के आधार पर ही यह द्वैत किया गया है, इसलिये भी इसको नैगम कहना युक्त है । इसलिये इसका 'अर्थ पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह इसका कारण है । कोई भी अर्थपर्याय क्षणिक ही होती है ऐसा बताना इसका प्रयोजन है ।

३. व्यञ्जन पर्याय नैगमः--

अर्थ पर्याय वत् यहा भी पर्याय पर से पर्याय का संकल्प कराना अभीष्ट है । विशेष इतना है कि वहा तो विशेषण विशेष्य दोनो क्षणिक थे और यहा विशेषण विशेष्य दोनो ही स्थायी होने चाहिये । तहा गुण सामान्य तो त्रिकाल स्थायी होने के कारण इस नय के विषय बन ही जाते हैं, परन्तु स्थूल दृष्टि मे स्थायी दिखने वाली व्यञ्जन पर्याये भी इस की विषय भूत है । यह बात अर्थ पर्याय नैगम का कथन करते समय बताई जा चुकी है । हा द्रव्य पर्यायो का ग्रहण इसमे सर्वथा हो नही सकता, क्योकि अनेक पर्यायो का पिण्ड होने के कारण वह द्रव्य नैगम का विषय है ।

'जीव मे ज्ञान सत् है' अथवा 'ससारी जीव मे मति ज्ञान सत् है' ऐसा कहना इस नय के उदाहरण है । यहा सत् सामान्य का नित्य अग तो विशेषण है और ज्ञान व मति ज्ञान विशेष्य है । इस प्रकार सत् की नित्यता पर से किसी भी गुण अथवा व्यञ्जन पर्याय की नित्यता या ध्रुव अस्तित्व का सकल्प करना व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है । यह तो इसके लक्षण व उदाहरण हुए, अब इस की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित वाक्य उद्धृत करता हू ।

१ श्लो. वा. ।पु ४ ।पृ. ३२ "वस्तु का आकार देखकर वस्तु को जानने का सकल्प (व्यञ्जन पर्याय नैगम है) ।

२ रा.वा हि ।१।३३।१९८ "पुरुष विपै चेतन्य है सो सत् है। (ताकू यह नैगम नय सकल्प करै है)। यहा सत् नाम व्यञ्जन पर्याय है, सो विशेषण है, (तातै गौण भया) और चैतन्य नामा व्यञ्जन पर्याय है सो विशेष्य है तातै मुख्य है। यह व्यञ्जन पर्याय नैगम है।

'सत्' की व्यञ्जन पर्याय अस्तित्व रूप स्थायी सत् है और चैतन्य की व्यञ्जन पर्यायचैतन्य का स्थायी अस्तित्व है। एक व्यञ्जन पर्याय पर से दूसरी व्यञ्जन पर्याय का सकल्प करने के कारण व्यञ्जन पर्याय नय है। दोनो के द्वैत का परस्पर मे अद्वैत करने के कारण नैगम है अथवा इस सर्व द्वैताद्वैत रूप ग्रहण का आधार मात्र ज्ञान है, वस्तु नही। उसी मे सकल्प मात्र द्वारा यह सब व्यापार किया जा रहा है। इसलिये 'व्यञ्जन पर्याय नैगम नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह इसका कारण है। द्रव्य के सामान्य अस्तित्व पर से गुण विशेपो के अस्तित्व का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

४. अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम नय –

इसका नाम ही स्वय अपना प्रतिपादन कर रहा है। पूर्व कथित अर्थ व व्यञ्जन पर्याय का उभय रूप ही अर्थ व्यञ्जन पर्याय है किसी अर्थ पर्यायविशेष पर से उसके साथ वर्तने वाली किसी अन्य व्यञ्जन पर्याय का सकल्प करना अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है।

जैसे 'धर्मात्मा का जीवन सुखी व शान्त होता है' ऐसा कहने पर सुख व शान्ति ही उस जीवन की विशेषता है, ऐसा प्रतीति में आता है। तहा सुख व शान्ति तो क्षणिक होने के कारण अर्थ पर्याय है और 'जीवन' स्थायी अस्तित्व मात्र होने के कारण व्यञ्जन पर्याय है। अर्थ पर्याय यहाँ विशेषण है और व्यञ्जन पर्याय विशेष्य। इस प्रकार अर्थ पर्याय पर से व्यञ्जन पर्याय की विशेषता का परिचय देना

इस नय का विषय है । यह तो इसके लक्षण व उदाहरण है । अब इसकी पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगमोक्त वाक्य उद्धृत करता हूं ।

१. श्लो. वा.।पु. ४।पृ. ३५ "सुख और जीवत्व से जीव को दर्शाने का संकल्प (अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है)

२ रा वा. हि. ।१।३३।१९६ "धर्मात्मा जीव मे सुखजीवी पना है (ताकू यह नैगम नय सकल्प करै है) यहा सुख तो अर्थ पर्याय है सो विशेषण है (तातै गौण भया ।) बहुरि जीवीपना (व्यञ्जन पर्याय है सो) विशेष्य है तातै मुख्य है । यहू अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है ।"

सुख रूप अर्थ पर्याय पर से जीवीपना रूप व्यञ्जन पर्याय की विशेषता का परिचय देने के कारण, तो यह अर्थ व्यञ्जन पर्याय नय है और ज्ञान के ही आकारो मे सकल्प द्वारा द्वैत मे अद्वैतता करने के कारण नैगम है । इसलिये इसका 'अर्थव्यञ्जनपर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह इस नय का कारण है । अर्थ पर्याय विशेष के अनुभव के आधार पर व्यञ्जन पर्याय विशेष की सुन्दरता व असुन्दरता आदि रूप विशेषता का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

६. द्रव्य पर्याय नैगम नय

अब नैगम नय के उत्तर भेदो मे से तीसरा जो धर्मी व धर्म मे एकता के सकल्प करने रूप विकल्प है, उसका कथन चलेगा । धर्मी के स्वभाव का परिचय देने वाला द्रव्य नैगम है और धर्म के स्वभाव का परिचय देने वाला पर्याय नैगम है । अत धर्मी व धर्म का परस्पर सम्मेल करके दिखाने वाले नय का नाम द्रव्य पर्याय नैगम ही होना चाहिये ।

दोनो नयो के भेदों को परस्पर मिला देने से इस नय के चार भेद हो जाते है– १. शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम, २ शुद्ध द्रव्य

व्यञ्जन पर्याय नैगम, ३ अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम और ४. अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम ।

इन भेदो मे इतना ध्यान रखने योग्य है कि ससारी जीवो के इन्द्रिय गम्य तथा अनुभव गोचर क्षणिक पर्याय या औदयिक भाव तो अशुद्ध पर्याय रूप से ग्रहण की गई है और पर्याय के सहज सत्ता मात्र स्वभाव को शुद्ध पर्याय रूप से ग्रहण किया गया है। शुद्ध पर्याय से तात्पर्य यहा क्षायिक भाव नही है। अशुद्ध पर्यायो को धारण करने वाली द्रव्य पर्याय को अशुद्ध द्रव्य रूप से ग्रहण किया गया है और द्रव्य के सत् सामान्य मात्र स्वभाव को शुद्ध द्रव्य के स्थान पर समझा गया है। सत् एक सामान्य भाव है, जिसमे सर्व गुणों व पर्यायो का अस्तित्व गर्भित है, इसलिये इसे शुद्ध कहते है। उत्पाद व्यय व ध्रुव इसकी विशेपताये है इसलिये यह नित्यानित्य है । इस सहज स्वभाव के दर्शन द्रव्य के त्रिकाली सत् मे जैसा होता है उसी प्रकार पर्याय की क्षणिक सत्ता मे भी होता है, अत दोनो ही भावो को यहा शुद्ध शब्द का वाच्य वनाया गया है ।

आगे इस नय के भेदो का कथन करते समय जव शुद्ध द्रव्य पर्याय नयो का कथन करने मे आयेगा तव तो शुद्ध द्रव्य या सत् को विशेषण वनाकर, उस पर मे शुद्ध पर्याय का सकल्प किया जायेगा, और जव अशुद्ध द्रव्य पर्याय नयो का कथन करने मे आयेगा तब अशुद्ध पर्याय को विशेपण वनाकर, उस पर से अशुद्ध द्रव्य का सकल्प किया जायेगा । ऐसा ही नियम यहा प्रयोजन वश अगीकार किया गया है। वह प्रयोजन क्या है, इस वात का उत्तर आगे समन्वय के अन्तर्गत किये जाने वाले शका समाधान मे किया जायेगा ।

अव इन्ही सामान्य व विशेष भेदो का पृथक पृथक कथन करने मे आता है ।

१. द्रव्य पर्याय नैगम नय सामान्य --

द्रव्य के लक्षण व स्वभाव पर से द्रव्य का सकल्प करने वाले नय को द्रव्य नैगम कहते है, और इसी प्रकार एक गुण की पर्याय पर से अन्य गुण की पर्याय का सकल्प करने वाले नय का नाम पर्याय नैगम नय है। दोनो का सम्मेल करने पर, द्रव्य सामान्य पर से पर्याय के समान्य स्वभाव का सकल्प करने वाले अथवा पर्याय के दृष्ट रूप पर से अदृष्ट द्रव्य का सकल्प करने वालेउभयात्मक नय का नाम द्रव्य पर्याय नैगम नय है। उदाहरण आगे यथा स्थान दे दिये जायेगे। अब इसकी पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगमोक्त वाक्य उद्धृत करता हूं।

१ क. पा. पु. १।पृ २४५।१ "द्रव्यार्थिकनयविषय पर्यायार्थिकनयविषयञ्च प्रतिपन्न. द्रव्यपर्यायार्थिक नैगम:।"

अर्थ--द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक इन दोनो नयो के विषय को उभय रूप से युगपत स्वीकार करने वाला नय द्रव्यपर्याय नैगमनय है।

२ ध. ।पु. ९। पृ. १८१।३ "द्रव्य पर्यायार्थिक नयद्वयविषय नैगमो द्वदज:।"

अर्थ--द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनो नयो के विषय को ग्रहण करने वाला द्वदज अर्थात द्रव्यपर्याय नैगम है।

ज्ञान के आकारो मे मात्र सकल्प के आधार पर द्रव्य व पर्याय दोनों मे परस्पर मुख्य गौण व्यावस्था द्वारा, द्वैताद्वैत देखने के कारण इस नय का 'द्रव्य पर्याय नैगम' ऐसा नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। सत्ता के नित्यानित्य स्वभाव सामान्य

पर से, अर्थात् शुद्ध द्रव्य पर से अर्थ व व्यञ्जन पर्यायों की शुद्ध सत्ता सामान्य का अथवा अशुद्ध पर्यायो पर से अशुद्ध द्रव्यो का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

शुद्ध द्रव्य का अर्थ यहा भी पूर्ववत् अभेद द्रव्य अर्थात द्रव्य के सामान्य अखण्ड एक रस रूप का ग्रहण है जैसे सत् । परन्तु अशुद्ध द्रव्य का अर्थ यहा औदयिक भाव मे स्थित अशुद्ध द्रव्य पर्याय है, जैसे ससारी जीव । शुद्ध पर्याय से यहा किसी एक त्रिकाली गुण का या उसके क्षायिक भाव का ग्रहण होता है । तथा अशुद्ध पर्याय से किसी एक गुण की अशुद्ध पर्याय का अथवा अशुद्ध द्रव्य पर्याय का ग्रहण करना ।

२ शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नयः—=

शुद्ध द्रव्य पर से शुद्ध अर्थ पर्याय का सकल्प करना इस नय का सक्षिप्त लक्षण है । यहां शुद्ध द्रव्य या शुद्ध पर्याय के साथ प्रयुक्त शुद्ध शब्द का अर्थ सहज स्वभाव है, क्षायिक भाव नही । द्रव्य का सहज स्वभाव 'सत्ता सामान्य' है जो पारिणामिक भाव स्वरूप होने के कारण शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है, अत· शुद्ध है । पर्याय का सहज स्वभाव, जैसा कि स्वभावअनित्य पर्यायार्थिक नय युगल का कथन करते हुए आगे बताया जायेगा, पर्याय का क्षणिक 'सत्' है, जो स्वभाव व विभाग दोनो प्रकार की, शुद्ध व अशुद्ध पर्यायों मे तथा अर्थ व व्यञ्जन पर्यायो मे समान रूप से देखा जाता है । अत. यहा इस प्रकरण मे सर्वत्र ही शुद्ध द्रव्य का अर्थ द्रव्य की त्रिकाली सत्ता या 'सत्' सामान्य है और शुद्ध पर्याय का अर्थ पर्याय का क्षणिक सत् है ।

यद्यपि त्रिकाली अखण्ड द्रव्य के अस्तित्व मे पर्यायों की अपेक्षा भेद डालना व्यवहार नय गत अशुद्धता कहा जाता है, परन्तु यहां वह विवक्षा नही है । यहां तो द्रव्य, गुण या पर्याय का अपना

अपना सत् सामान्य अभिप्रेत है, जिसमें अशुद्धता या भेद की कल्पना ही होनी असम्भव है। क्योंकि सत् तो अस्तित्व मात्र का नाम है। द्रव्य व गुण का त्रिकाली सत्व भी निर्विकल्प है और पर्याय का क्षण स्थायी सत् भी उतने समय के लिये निर्विकल्प है। यहा द्रव्य के सत् को द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखिये और पर्याय के सत् को पर्यायार्थिक दृष्टि से। द्रव्यार्थिक दृष्टि मे जिस प्रकार एकत्व होने के कारण वह निर्विकल्प शुद्ध है, उसी प्रकार पर्यायार्थिक दृष्टि मे भी एकत्व रूप होने के कारण वह निर्विकल्प शुद्ध है।

द्रव्यार्थिक सत् और पर्यायार्थिक सत् इन दोनों मे भी पहिला तो कारण रूप है और दूसरा कार्य रूप, क्योंकि सर्वत्र पर्याय का उपादान कारण द्रव्य ही होता है द्रव्य का उपादान कारण पर्याय नही। कारण पर से ही कार्य का परिचय दिया जा सकता है, इसलिये शुद्ध द्रव्य व शुद्ध पर्याय के इस प्रकरण मे द्रव्यार्थिक नय के विषय भूत सत् को सर्वत्र विशेषण और पर्यायार्थिक के विषय भूत सत् को सर्वत्र विशेष्य बनाया गया है। इस प्रकार द्रव्य सत् रूप विशेषण को गौण करके उस पर से पर्याय सत् विशेष्य का मुख्य रूपेण सकल्प करना शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम विषय है।

उदाहरणार्थ "वर्तमान का यह क्षण वर्ती ज्ञान, ज्ञान ही तो है" ऐसा कहने मे 'ज्ञान का अस्तित्व' तो शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है और 'वर्तमान ज्ञान का क्षणिक अस्तित्व' शुद्ध पर्यायार्थिक का विषय है। उपयोग का यह क्षणिक अस्तित्व ज्ञान के अस्तित्व से ही है। इस प्रकार ज्ञान गुण के सत् पर से उपयोग रूप अर्थ पर्याय के सत् का सकल्प करना, शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय का लक्षण है। इसी की पुष्टि व अभ्यासार्थ निम्न उद्धरण है।

१. श्लो. वा. ।पु ४। पृ ४१ "संसारियों मे भी शुद्ध सुख का सकल्प करना (शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय है। यहा

शुद्ध सुख से अभिप्राय पारिणामिक सुख स्वभाव का सामान्य अस्तित्व है ।)

२. रा. वा हि. ।१।३३।१९९ "ससार विपै सत् विद्यमान सुख है सो क्षण मात्र है । (ताका यह नैगम नय सकल्प करै है ।) यहा सत् शुद्ध द्रव्य है सो विशेषण है (तातै गौण भया) । सुख है सो अर्थ पर्याय है, सो विशेष्य है तातै मुख्य है । यहू शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय है ।

शुद्ध द्रव्यार्थिक के विषय पर से शुद्ध पर्यायार्थिक का परिचय देने के कारण यह शुद्ध द्रव्य पर्याय नय है । क्योंकि पर्यायों के दोनों भेदो मे से भी अर्थ पर्याय का संकल्प किया गया है इस लिये अर्थ पर्याय नय है । क्योंकि सकल्प मात्र के द्वारा ज्ञान मे द्रव्य सत् व पर्याय सत् इस प्रकार के द्वैत मे अद्वैत किया गया है इस लिये नैगम है । अत इसका 'शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक ही है । यह तो इस नय का कारण है । और पर्याय के निर्विकल्प अस्तित्व सामान्य का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

३. शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय —

शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय वत् ही यहा भी शुद्ध व्यञ्जन पर्याय से तात्पर्य, उस उस पर्याय का निर्विकल्प एकत्व रूप अस्तित्व सामान्य है, जो शुद्ध पर्यायार्थिक अर्थात स्वभाव अनित्य पर्यायार्थिक का विपय है, और शुद्ध द्रव्य से तात्पर्य द्रव्य का निर्विकल्प अद्वैत रूप अस्तित्व सामान्य है, जो शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है । ऐसे शुद्ध द्रव्य पर से या द्रव्य सामान्य रूप सत् पर से किसी भी व्यञ्जन पयाय के अस्तित्व का सकल्प करना शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है ।

उदाहरणार्थ 'चैतन्य पना कहो या आनन्द पना कहो सब सत् रूप ही तो है' ऐसा कहने मे चैतन्य या आनन्द तो व्यञ्जन पर्याय है और सत् सामान्य द्रव्य है । इस प्रकार द्रव्य सत् पर से व्यञ्जन पर्याय के सत् का संकल्प करना शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है । इसी की पुष्टि व अभ्यास निम्न उद्धरणो पर से किया जा सकता है ।

१. श्लो वा।पु ४।पृ ४५ "जीव को सत् चित् रूप निर्णय का सकल्प (शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है) ।"

२. रा. वा. हि. ।१।३३।१९९ "चित्सामान्य है सो सत् है (ताकू यह नैगम नय सकल्प करै है) । यहा 'सत्' ऐसा शुद्ध द्रव्य है, सो तो विशेषण है तातै गौण है । 'चित्' है सो व्यञ्जन पर्याय है, सो विशेष्य है तातै मुख्य है । यहू शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम भया ।"

शुद्ध द्रव्यार्थिक के विषयभूत सत् सामान्य पर से स्वभाव अनित्य या शुद्ध पर्यायार्थिक के विषयभूत सत् विशेष का परिचय देता है, इसलिये शुद्ध द्रव्यपर्याय नय है । पर्याय के दोनो भेदों मे से भी काल स्थायी व्यञ्जन पर्याय को मुख्यरूपेण ग्रहण करता है, इसलिये व्यञ्जन पर्याय नय है। तथा ज्ञानाकार मे द्रव्य सत् व पर्याय सत् ऐसे द्वैत मे अद्वैत का सकल्प करता है इसलिये नैगम है । अत इसका 'शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह तो इसका कारण हुआ और व्यञ्जन पर्याय के अस्तित्व का परिचय देना इस का प्रयोजन है ।

४. अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नयः-

अशुद्ध अर्थ पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का सकल्प करना अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय है । अशुद्ध शब्द का अर्थ तो औदयिक

भाव के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता अत वही अर्थ यहा ग्रहण करना। किसी गुण विशेष के औदायिक भाव पर से द्रव्य सामान्य के अखण्ड औदायिक भाव का सकल्प या अनुमान करना ऐसा इसका अर्थ हुआ। तहा विशेष गुण का औदयिक भाव तो विशेषण होता है और द्रव्य का अखण्ड औदयिक भाव विशेष्य होता है। गुण का औदयिक भाव तो अर्थ पर्याय कहलाती है और द्रव्य का औदयिक भाव द्रव्य पर्याय कहलाती है। औदयिक भाव रूप अर्थ पर्याय अशुद्ध पर्यायार्थिक का विषय है और औदयिक भाव रूप द्रव्य पर्याय अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है। इसलिये ही इन दोनो को यहा 'अशुद्ध अर्थ पर्याय' और 'अशुद्ध द्रव्य' इन नामो के द्वारा कहा गया है। इस प्रकार अशुद्ध अर्थ पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य के सकल्प को इस नय का लक्षण बनाया गया है।

जैसे 'इन्द्रिय सुख का प्रत्यक्ष करने वाला ही जीव है' ऐसा संकल्प करने मे इन्द्रिय सुख तो अर्थ पर्याय है और उसका भोग करने वाला ससारी जीव अशुद्ध द्रव्य है। इसलिये यहां अशुद्ध अर्थ पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का संकल्प किया गया है। यद्यपि अर्थ पर्याय रूप इन्द्रिय सुख उस जीव द्रव्य से भिन्न अपनी सत्ता रखती नही, पर उसे पृथक स्वीकार करके लक्षण लक्ष्य भाव रूप द्वैत उत्पन्न किया गया है। ऐसे द्वैत का ग्रहण ही इस नय का विषय है। इसी की पुष्टि व अभ्यास निम्न उदाहरणो पर से होता है।

१ श्लो वा. पु ४। पृ ४३ "जीव मे विषय जनित सुख का सकल्प (अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम है)।"

२. रा वा हि।१।३३।१६६ "विषयी जीव है सो एक क्षण सुखी है (याकू यहू नैगम नय सकल्प करै है)। यहा विषयी जीव है सो अशुद्ध द्रव्य है सो विशेष्य है (तातै मुख्य

भया) । सुख है सो अर्थपर्याय है सो विशेषण है तातै गौण है । यह अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम है ।"

अशुद्ध अर्थ पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का परिचय देने के कारण अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नय है, और ज्ञानाकार के आश्रय अद्वैत मे लक्ष्य लक्षण भेद रूप द्वैत का सकल्प करने के कारण नैगम नय है । इस प्रकार इसका 'अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह तो इस नय का कारण है और अशुद्ध द्रव्य के स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

५. अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याप नैगम नय –

'अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय' के समान ही इसके लक्षण का विस्तार समझना । अन्तर केवल इतना है कि यहा पर्याय रूप से किसी गुण के औदयिक भाव रूप चिरस्थायी व स्थूल व्यञ्जन पर्याय का ग्रहण किया जाता है । यहा भी द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक के विषय वाला ही होता है और पर्याय अशुद्ध पर्यायार्थिक के विषय वाली । इस प्रकार अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय को विशेषण या लक्षण बनाकर उस के आधार पर अशुद्ध द्रव्य रूप लक्ष्य का सकल्प करना ही इस नय का लक्षण है ।

जैसे 'दश प्राणों से जीने वाला ही जीव है' ऐसा कहने मे दश प्राण तो अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय है और उनसे जीने वाला संसारी जीव अशुद्ध द्रव्य है । यहा अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का संकल्प किया गया है । इसी बात की पुष्टि व अभ्यास निम्न उद्धरण पर से होता है ।

१. श्लो वा. ।पु ४ ।पृ ४६ "संसारी अशुद्ध पर्याय पर से जीव का सकल्प करना (अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है) ।

२ रा वा. हि. ।१।३३।१९९ "जीव है सो गुणी है (ताकू यहू नैगम नय संकल्प करै है)। यहां जीव है सो अशुध्द द्रव्य है, सो विशेष्य है तातै मुख्य भया । बहुरि गुणी है सो व्यञ्जन पर्याय है । सो विशेषण है तातै गौण है । यहू अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम है ।"

अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का परिचय देने के कारण अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नय है, और मात्र ज्ञान के आश्रय पर अद्वैत मे 'लक्षण लक्ष्य' भेद रूप द्वैत का संकल्प करने के कारण नैगम नय है । इस प्रकार इसका 'अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है। यह तो इस नय का कारण है और अशुद्ध द्रव्य के स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

७. नैगम नय के भेदो का समन्वय

इस विषय के विस्तृत विवेचन मे उठने वाली कुछ शंकाओं का समाधान अब कर देना योग्य है।

१. **शंका** – द्रव्य पर्याय नैगम के प्रकरण मे शुद्ध द्रव्य व शुद्ध पर्याय का अर्थ 'सत्' सामान्य ही क्यो ग्रहण किया ? क्षायिक भाव क्यों नही ?

उत्तर – सत् स्वभाव सर्व जन सम्मत है और क्षायिक भाव अदृष्ट है इसलिये ऐसा किया है, पर क्षायिक भाव के ग्रहण का निषेध नही है ।

२ **शंका** – शुद्ध द्रव्यपर्याय नैगम मे द्रव्य पर से ही पर्याय का संकल्प करने मे क्यों आया । पर्याय पर से भी द्रव्य का संकल्प क्यो करके नही दिखाया गया ?

उत्तरः– आधार या विशेषण सदा ही परिचित भाव स्वरूप होता है और आधेय या विशेष्य अपरिचित । सत् सामान्य

सर्व परिचित है पर पर्याय के सत् का स्वीकार जरा कठिन पड़ता है, इसलिये उसका प्रमुखत. परिचय देना योग्य ही है। तहां भी त्रिकाली सत् कारण है और क्षणिक सत् कार्य, इसलिये द्रव्य के अस्तित्व को ही विशेषण बनाया जा सकता है। क्षणिक अस्तित्व स्वय असिद्ध होने के कारण विशेषण बनाया जाने योग्य नही है।

३. **शंका** – सूक्ष्म होने के कारण भले ही शुद्ध अर्थ पर्याय छद्मस्थ ज्ञान गम्य न हो पर क्षायिक भाव रूप केवल ज्ञानादि शुद्ध व्यञ्जन पर्याये तो किन्ही ज्ञानी जनो के अनुमान का विषय है।

उत्तर – यह बात ठीक है, अतः क्षायिक भावो का ग्रहण करने पर शुद्ध व्यञ्जन पर्याय को शुद्ध द्रव्य पर्याय का लक्षण बनाया जा सकता है। इसमे कोई विरोध नही। पर यहा विस्तार भय से उसका पृथक ग्रहण नही किया है। अशुद्ध पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का सकल्प कराने वाले अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय की भांति ही यहा भी समझ लेना। या यो कहिये कि इन दोनो मे लक्षण के प्रति कोई विशेषता न होने के कारण उसका पृथक ग्रहण नही किया है।

४. **शंका** – अशुद्ध द्रव्य पर्याय नैगम के कथन मे भी पर्याय पर से ही द्रव्य का संकल्प क्यो कराया गया, द्रव्य पर से भी पर्याय का संकल्प क्यों न कराया गया ?

उत्तर – द्रव्य अनुभव का विषय नही, पर्याय ही है शुद्ध हो कि अशुद्ध। अतः पर्याय पर से ही शुद्ध या अशुद्ध द्रव्यों के स्वभाव का निर्णय किया जा सकता है। पर्यायो के

परिचय के बिना द्रव्य का एकान्त परिचय असम्भव होने के कारण उसे सर्वथा विशेषण नहीं बनाया जा सकता

५. **शंका** – नैगम नय मे भी सर्वत्र वर्तमान काल सूचक सज्ञा व्यवहार हुआ है और पर्यायार्थिक नय भी केवल वर्तमान समय को विषय करता है। तब लोक में प्रचलित भूत व भावि सज्ञा व्यवहार किस नय का विषय बनेगा ?

उत्तरः– ऐसा व्यवहार नैगम नय का विषय ही बनेगा । यद्यपि इस प्रकार का प्रयोग नैगम नय के प्रकरण मे कही भी करके दिखाया नही गया है, परन्तु नैगम नय के द्वैत ग्राहक लक्षणो पर से इस बात को स्पष्ट देखा जा सकता है। "मै कल देहली गया था, या मै कल देहली जाऊँगा" इस प्रकार के सर्व प्रयोगों मे अदृष्ट रूप से द्वैत पढा जा रहा है, क्योकि कल शब्द आज की अपेक्षा रखकर ही प्रवृत्ति पाता है । द्वैत ग्राहक द्रव्यार्थिक नैगम नय मे ऐसा ग्रहण अवश्य किया जा सकता है। क्योकि वहा त्रिकाली पर्यायों मे अनुस्यूत एक द्रव्य की उपलब्धि होने के कारण, अथवा ज्ञान मे संकल्प मात्र उत्पन्न कर लेने के द्वारा, "जो मै कल देहली मे था, वही मै आज यहा हू" ऐसा अनुभव किया जा सकता है । दो पर्यायो मे परस्पर सम्मेल देखे बिना अथवा कल्पना किये बिना ऐसे प्रयोग को अवकाश नही। पर्यायार्थिक नय मे केवल एक वर्तमान पर्याय का ही ग्रहण होने के कारण इस प्रकार का सम्मेल बैठाया नही जा सकता । अत: इस प्रकार के प्रयोग पर्यायार्थिक नय मे गर्भित नही किये जा सकते ।

६. **शंका** – भूत व भविष्यत पर्याये वर्तमान वत् कैसे देखी जा सकती है ?

उत्तर – यह बात भली भांति समझा दी गई है कि नैगम नय का व्यापार वस्तु को त्रिकाली पर्यायों के अखण्ड पिण्ड रूप से देखना है अथवा वस्तु से सद्भाव व असद्भाव की पर्वाह न करके मात्र ज्ञानात्मक संकल्प मे उसके दर्शन करना है ।

जिस ज्ञान मे वस्तु की त्रिकाली पर्यायें फिल्म के फोटुओ वत् वर्तमान में ही पृथक पृथक यथा स्थान जड़ी हुई दिखाई देती है, उसके लिये क्या भूत और क्या भविष्यत् ? वहां तो जो कोई भी फोटो उठाकर विचार करो सो वर्तमान ही है । अथवा ज्ञानात्मक संकल्प में जिस किसी भी बात का विचार करे, सो तत्क्षण प्रत्यक्ष होने के कारण वर्तमान ही है। ज्ञानात्मक संकल्प के लिये भूत व भविष्यत कोई वस्तु है ही नही।

इसी शंका का समाधान श्री राजवार्तिक मे निम्न प्रकार किया है ।—

रा. वा ।१।३३।३।९५ "स्यादेतत् नाय नैगमनयविषय भावि-संज्ञाव्यवहार इति। तन. किं कारणम् ? भूत द्रव्यासन्निधानात् । भूत हि कुमारतण्डुलादिद्रव्यमाश्रित्य राजौदनादिका भाविनी संज्ञा प्रवर्तते, नच तथा नैगमनय विषये किञ्चिद् भूत द्रव्यमस्ति यदाश्रया भाविनी संज्ञा विज्ञायते ।"

अर्थ – शकाकार का कहना है कि वर्तमान मे ही राजकुमार को राजा कहना अथवा तंदुल को भात कहना तो कोई नैगम नय का विषय प्रतीति नही होता, क्योकि यह तो केवल

उन उन पदार्थो मे भावि संज्ञा का व्यवहार मात्र है । इसके उत्तर मे ग्रन्थकार कहते है, कि ऐसा नही है, क्योकि सज्ञाकरण का व्यवहार तो केवल वस्तु भूत पदार्थ में ही होना सम्भव है, जैसे कि राजकुमार को या तदुल को योग्यता के आधार पर राजा व भात कह देना । परन्तु नैगमनय में तो इस प्रकार का कोई वस्तुभूत पदार्थ ही सामने नही है, जिसको आश्रय करके कि इस प्रकार का व्यवहार सम्भव हो सके । इस नय का व्यापार तो मात्र कल्पना करना है ।

७. शंका – केवल कल्पना तो कोई पदार्थ नही, फिर इस नैगम नय का स्वीकार किस प्रकार उपयुक्त है ?

उत्तर.– नयो के विषय मे यह आवश्यक नही कि व्यवहारगत उपयोगिता का ही विचार किया जाये, यहा तो ज्ञान की व्यापकता मे जो जो भी प्रतीति होनि सम्भव है, वह सब ही किसी न किसी नय का विपय है, ऐसा बताना अभीष्ट है ।

राजवार्तिक कार इस शका का समाधान निम्न प्रकार करते है -

रा. वा ।१।३३।४।९५ "स्यादेतत् नैगम नय वक्तव्ये उपकारो नोपलभ्यते, भावि संज्ञा विषये तु राजादावुपलभ्यते, ततो नाय युक्त इति; तन्नकि कारणम् । अप्रतिज्ञानात् नैतदस्माभि, प्रतिज्ञातम् 'उपकारे सति भवितव्यम्' इति । किं तर्हि ? अस्य नयस्य विषय. प्रदर्श्यते । अपि च, उपकार प्रत्यभि मुखत्वादुपकारवानेव ।

अर्थ–शकाकार कहता है कि भाविसंज्ञा मे तो यह आशा है कि आगे उपकार आदि हो सकते है, पर नैगम नय मे तो केवल कल्पना ही कल्पना है, अत यह सव्यवहार के अनुपयुक्त है। इसके उत्तर मे ग्रथकार कहते है कि नयो के विपय के प्रकरण में यह आवश्यक नही है कि उपकार या उपयोगिता का विचार किया जाये। यहा तो केवल उनका विषय वताना है। अथवा सकल्प के अनुसार निष्पन्न वस्तु से आगे उपकारादि की सभावना भी है ही।

८. शंका—(का. पा.।१।२५४।३७६।१०) में से उद्धत —

"यह नैगम नय सग्राहिक और अस्ग्राहिक के भेद से यदि दो प्रकार का है, तो नैगम नय,कोई स्वतत्र नय नही रहता है, क्योकि उसका कोई विषय नही पाया जाता। (अर्थात यदि सग्रह और व्यवहार इन दोनो ही नयो का विषय इसका विषय है, तो इसका अपना कोई स्वतत्र विपय नही रहता। यहा तीन विकल्प हो सकते है।)

(i) नैगम नय का विषय सग्रह है ऐसा नही कहा जा सकता, क्योकि उसको सग्रहनय ग्रहण कर लेता है।

(ii) नैगम नय का विषय विशेष भी नही हो सकता है, क्योकि उसे व्यवहारनय ग्रहण कर लेता है।

(iii) और सग्रह और विशेष के अतिरिक्त कोई विषय भी पाया नही जाता है, जिसको विषय करने के कारण नैगम नय का अस्तित्व सिद्ध होवे ?"

उत्तर—"नैगमनय सग्रहनय और व्यवहारनय के विषय मे एक साथ प्रवृत्ति करता है, अतः वह सग्रह व व्यवहार नय मे अन्तर्भूत नही होता है; क्योकि उसका विषय इन दोनो के विषय से भिन्न है।"

(अर्थात उभय रूप से दोनों नयों के भेद प्रभेदो मे एकत्व की स्थापना करना इस नय का स्वतत्र विषय है।

शंका—'यदि ऐसा है तो दो प्रकार का (सग्राहिक व असग्राहिक) नैगम नय नही बन सकता,?'

उत्तर—"नही, क्योकि, एक जीव मे विद्यमान अभिप्राय आलम्बन के भेद से दो प्रकार का हो जाता है। और अभिप्राय के भेद से उसका आधारभूत जीव दो प्रकार का हो जाता है इसमे कोई विरोध नही है। इसी प्रकार नैगमनय भी आलम्बन के भेद से दो प्रकार का है।"

(इसका तात्पर्य यह है कि जिस समय कोई वक्ता अभेद द्रव्य का आलम्बन करके द्रव्य का सामान्य परिचय देना चाहता है, तो नैगम नय अभेद ग्राही या सग्राहिक हो जाता है। उसी को द्रव्य नैगम कहते है। और जब उसकी पर्याय को आलम्बन करके उसी द्रव्य का विशेष परिचय देना चाहता है तो नैगम नय भेदग्राही या असग्राहिक बन जाता है। उसी को पर्याय नैगम कहते है। परन्तु दोनो बार परिचय उस अखण्ड द्रव्य का ही देने के कारण इसका विषय सग्रह व व्यवहार से पृथक ही रहता है।

९ **शंका**—नैगमनय को द्रव्यार्थिक कैसे कहते हो ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर (ध.। १।८४।७) धवला मे निम्न प्रकार दिया है।

"एते त्रयोऽपि नया. नित्यवादिन:, स्वविषये पर्यायाभावत: सामान्यविशेषकालयोरभावात् ।"

अर्थ:—ये तीनों ही (नैगम, संग्रह व व्यवहार) नये नित्यवादी है, क्योंकि इन तीनों ही नयों के विषय मे सामान्य और विशेष काल का अभाव है । (नित्यवादी होने के कारण ही यह द्रव्यार्थिक है ।)

१० शंका·—नैगमनय यदि द्रव्यार्थिक है तो उसके भेदो मे पर्याय नैगम का ग्रहण करके पर्याय को इसका विषय कैसे बनाया जा सकता है ?

उत्तर.—यद्यपि पर्याय नैगम मे ऊपर से देखने पर तो ऐसा ही प्रतीति मे आता है कि नैगमनय ने वहा पर्याय को अपना विषय बना लिया है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ऐसा नही है। क्योकि पर्यायार्थिकनय उसे कहते है, जिसमे कि केवल एक पर्याय को ही एकत्व रूप से, द्रव्य की अन्य सर्व पर्यायो से पृथक निकाल कर, एक स्वतत्र सत् के रूप मे विचारा जाये । उस विचारणा मे उस समय उससे अतिरिक्त अन्य पर्याय की या अनुस्यूत द्रव्य सामान्य की सत्ता रूप कोई वस्तु प्रतीति मे नही आती । परन्तुयहां नैगमनय में ऐसा प्रतीति होने नही पाता । यहा तो सर्वत्र द्वैत का ग्रहण किया गया है। यह नय द्रव्य के स्वभाव के आधार पर से द्रव्य का, और पर्याय के स्वभाव पर से पर्याय का, तथा इसी प्रकार द्रव्य पर से पर्याय का और पर्याय पर से द्रव्य का विचार करता है ।

पृथक अकेली पर्याय का विचार करना यहा अभिप्रेत नही है । इस द्वैत भाव के ग्रहण के कारण पर्याय को विषय करने पर भी

इसका द्रव्यार्थिकपना नष्ट नही होता। क्योकि जैसा कि पहले बताया जा चुका है, लक्ष्य-लक्षण, विशेष्य-विशेषण अथवा कारण-कार्य आदि द्वैत-भाव द्रव्यार्थिक दृष्टि मे ही उत्पन्न किये जा सकते है। एकत्व ग्रहक पर्यायार्थिक मे ऐसा कोई भेद डाला नही जा सकता। पृथक अकेली पर्याय का विचार करना यहा अभिप्रेत नही है। इस द्वैत भाव के ग्रहण के कारण पर्याय को विषय करने पर भी इसका द्रव्यार्थिकपना नष्ट नही होता। क्योकि जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, लक्षण-लक्ष्य, विशेषण-विशेष्य अथवा कारण-कार्य आदि द्वैत भाव द्रव्यार्थिक मे ही उत्पन्न किये जा सकते है। एकत्व ग्राहक पर्यायार्थिक मे ऐसा कोई भेद डाला नही जा सकता।

११. **शंका**—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक व द्रव्य पर्यायार्थिक नैगम मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—दो धर्मियो मे एकता दर्शक द्रव्यार्थिक नैगम है, दो धर्मो मे एकता दर्शक पर्यायार्थिक नैगम है और धर्मी व उस के किसी धर्म मे एकता दर्शक द्रव्य पर्यायार्थिक नैगम है। सग्रह व व्यवहार इन दोनो के विषयो मे, अर्थात द्रव्य के अभेद स्वरूप व भेद स्वरूप मे गौण मुख्य भाव से एकता दर्शाना द्रव्यार्थिक नैगम का काम है। शुद्ध व अशुद्ध पर्यायो मे गौण मुख्य भाव से एकता दर्शाना पर्यायर्थिक नैगम का काम है और एक ही पदार्थ के सामान्य भाव के साथ उसी की शुद्ध व अशुद्ध पर्याय की एकता दर्शाना द्रव्य पर्यायार्थिक नैगम का काम है।

१२ शंका—सामान्य व विशेष से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—प्रत्येक पदार्थ द्रव्य क्षेत्र काल व भावइस चतुष्टय स्वरूप है। इन चारो ही बातो मे सामान्य व विशेष पढा जा सकता है। अनेक व्यक्तिगत द्रव्यो मे अनुगत

एक जाति द्रव्यात्मक सामान्य है और वह व्यक्ति उसका विशेष है। अनेक सूक्ष्म प्रदेशों में अनुगत एक अखण्ड सस्थान क्षेत्रात्मक सामान्य है और वह एक प्रदेश उसका विशेष है। अनेक पर्यायो मे अनुगत एक त्रिकाली सत् कालात्मक सामान्य है, और एक वर्तमान समयवर्ती पर्याय उसका विशेष है। अनेक शक्ति अशों या अविभाग-प्रतिच्छेदों में अनुगत एक गुण भावात्मक सामान्य है और वह एक शक्ति अश उसका विशेष है।

१३ शंका—सामान्य और विशेप दोनों को ग्रहण करने के कारण नैगम नय को प्रमाणपना प्राप्त हो जायेगा।

उत्तर—नही होता, क्योंकि प्रमाण ज्ञान मे भेदाभेदात्मक समस्त वस्तु का बोध किसी एक धर्म को गौण और किसी एक धर्म को मुख्य करके नही होता, जबकि नैगम नय किसी एक धर्म को गौण और किसी एक धर्म को मुख्य करके वस्तु का ग्रहण करता है।

१० सक्षिप्त परिचय

उपरोक्त सर्व लक्षणों व शका समाधानो पर से यही दर्शाया गया है कि एक अखण्ड वस्तु कितने पड़खों से पढ़ी जा सकती है। केवल अखण्ड पिण्ड निर्विकल्प द्रव्य को देखकर उसका सामान्य परिचय प्राप्त किया जाता है। इसके अन्तर्गत पहिले उसके शुद्ध त्रिकाली एक सामान्य स्वभाव को जान-कर और फिर उसकी त्रिकाली अन्य शुद्धाशुद्ध पर्यायों के संग्रह को दर्शाकर भी उसका परिज्ञान किया जाता है। उसी अखण्ड वस्तु का विभव जानने के लिये शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य की ओर से देखने का अभ्यास, द्रव्य नैगम तथा उसके शुद्ध व अशुद्ध भेदो द्वारा कराया गया। उसी अखण्ड एक अद्वैत वस्तु का विशेष परिचय देने के लिये पर्याय की ओर से भी उसे दर्शाया गया। पर्याय-नैगम व उसके अर्थ

व व्यञ्जन तथा इनके भी शुद्ध व अशुद्ध भेदो द्वारा इस अर्थ की सिद्धि की गई । द्रव्य का इन सर्व पर्यायो से अद्वैत दर्शाने के लिये द्रव्य पर्याय नैगम व उसके शुद्ध व अशुद्ध भेदो का जन्म हुआ ।

और इस प्रकार वस्तु मे अनेक प्रकार से धर्मो की अपेक्षा, धर्मियो की अपेक्षा, धर्म व धर्मी दोनो की अपेक्षा, तथा भूत वर्तमान व भावि कालो की अपेक्षा द्वैत उत्पन्न करके उस एक अखण्ड वस्तु को समझाने का प्रयत्न किया गया । आगे आने वाले सग्रह व व्यवहार नयो द्वारा इसी अखण्ड वस्तु का विश्लेषण करके इसकी कुछ विशेषताओ का परिचय दिया जायेगा, ताकि यह पता चल जाय कि तीनो कालो मे स्थित रहने वाली वह वस्तु अपने रूप बदलती हुई किस प्रकार चित्र विचित्र दिखाई दिया करती है ।

इतना ही नही बल्कि ज्ञान की अचिन्त्य महिमा का प्रदर्शन करने के लिये सकल्प मात्र की शक्ति का परिचय भी इस ज्ञान नय मे दिया गया है । ज्ञान के द्वारा वस्तु का सकल्प करने के लिये यह आवश्यक नही कि वह सकल्प ग्राह्य वस्तु सत् स्वरूप व प्रमाणभूत ही हो । ज्ञान मे तो अनेको व्यर्थ अप्रमाणभूत बाते भी नित्य उदय हो होकर विलीन हुआ करती है, जिनकी सत्ता यद्यपि बाह्य जगत की अपेक्षा असत् है, परन्तु अन्तरग के ज्ञानात्मक जगत की अपेक्षा वह सत् है । इस सत् को ग्रहण करना नैगम नय का ही कार्य है, क्योंकि यह ज्ञान नय है ।

१३

-: संग्रह व व्यवहार नय :-

१. महा सत्ता व अवान्तर सत्ता, २. संग्रह नय सामान्य, ३. संग्रह नय विशेष, ४. व्यवहार नय सामान्य, ५. व्यवहार नय विशेष, ६. संग्रह व्यवहार नय समन्वय

१. महा सत्ता व अवान्तर सत्ता

जैसा की पहिले बताया चुका है, नैगम नय द्रव्यार्थिक या ज्ञान नय होने के कारण अत्यन्त व्यापक है। सकल्प मात्र ग्राही होने के कारण सद्भाव व असद्भाव दोनो इसके विषय है। तहा असद्भाव तो अभावात्मक होने के कारण केवल ज्ञान नय का विषय बन सकता है, पर अर्थ नय का नही। परन्तु सद्भाव तो सद्रूव है, अतः वह ज्ञान व अर्थ नय दोनो का विषय बन सकता है। संग्रह व व्यवहार नय क्योंकि अर्थ नय है, अत. इनको जानने के लिये हमे सद्भाव रूप सत का विश्लेषण करके उसका विशेष परिज्ञान प्राप्त करना होगा। सत् सामान्य के

दो रूप हैं—महासत्ता व अवान्तर सत्ता । इन दोनों के दो रूप हैं—सामान्य व विशेप । एक विश्वव्यापी नित्य सत्ता तो महा सत्ता सामान्य है और अवान्तर सत्ता इसके विशेप हैं । इसी बात का विस्तार आगे किया जाता है ।

अपने अनेक अवान्तर भेदों से अनुगत यह सत् विश्व के रगमंच पर नृत्य करता हुआ कैसे कैसे रूप धारण करके सामने आता है, और जगत के दर्शको को आश्चर्य अथवा धोके मे डाल देता है, और वे कि कर्त्तव्य विमूढ से खडे उसके उन रूपों को पहिचानने मे असमर्थ यही जानने नही पाते, कि वास्तव मे इन सर्व रूपों के पीछे छुपा हुआ था कोन ? ज्योही उन रूपो मे उलझकर वे उस रूप विशिष्ट सत् से प्रेम करने लगते है, त्योही वह अपना रूप वदल कर उनको रूला देता है । वे यह जान नही पाते कि जो विनष्ट हुआ है वह वास्तव मे सत् नही था, वल्कि सत् का एक क्षणिक रूप था । सत् तो अब भी जू का तू है । अत. सत् तथा उसके सर्व रूपों या भेदो का परिचय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि ऐसा किये बिना यह नित्य का रोना व हंसना बन्द नही हो सकता । इसी प्रयो-जन की सिद्धि यह सग्रह व व्यवहार नययुगल, सत् मे द्वैत व अद्वैत उत्पन्न करके करता है ।

वस्तु का यदि कोई एक सामान्य लक्षण हो सकता है, तो वह सत् है, जो चेतन व अचेतन सर्व ही वस्तुओं मे व्यापकर रहता है । अर्थात जो कुछ भी है, वह ही वस्तु है । वह सत् ही दो प्रकार से देखा जा सकता है —महा सत्ता के रूप मे और अवान्तर सत्ता के रूप मे । लोक मे चेतन व अचेतन अनेको पदार्थ हैं जो अपनी अपनी स्वतंत्र सत्ताये रखते है, अर्थात वे सदा से है और सदा रहते रहेंगे । न उनको किसी ने कभी बनाया है और न ही उनका कभी विनाश सम्भव है । यदि दृष्टि विशेष के द्वारा उन सर्व पदार्थों को पृथक

पृथक न देखकर उनमे अनुगताकार सन्मात्र भाव को देखें, अर्थात उनके अस्तित्व मात्र को देखे, तो लोक में 'सत्' के अतिरिक्त और है ही क्या ? क्योकि जो कुछ भी है वह सत् को उल्लधन नही कर सकता । बस इस सत् सामान्य को ही महा सत्ता कहते हैं, और जिन पृथक पृथक पदार्थों मे वह अनुगत है वे सर्व उसके अवान्तर भेद ही अवान्तर सत्ता कहलाते हैं । इन दोनों मे अवान्तर सत्ताये तो वस्तुभूत हैं, क्योकि अर्थ क्रियाकारी है, जैसे जीव की अर्थ क्रिया जानना और पुग्द्ल की अर्थक्रिया घट पट आदि का निर्माण करना है । परन्तु महा सत्ता कोई वस्तुभूत स्वतंत्र पदार्थ नही है, वह तो दृष्टि विशेष मे आने वाली एक कल्पना है, जो सर्व ही भिन्न भिन्न पदार्थों को एक डोरे में पिरोकर उन्हें एकाकार कर देती है। अवान्तर सत्ताओं मे तो द्रव्य, गुण व पर्याय आदि के अथवा उत्पत्ति विनाश व ध्रुवता के भाव पाये जा सकते है, परन्तु महा सत्ता मे इन सबकी कल्पना भी सम्भव नही है। वह तो एक सामान्य भाव मात्र है, जो वस्तुओ के अस्तित्व के प्रति सकेत करता है।

इन दोनों को ही सामान्य व विशेष रूप में देखा जा सकता है। आइये अत्यन्त व्यापक अभेद दृष्टि के द्वारा इस विश्व की सत्ता का निरीक्षण करें । समस्त चेतनाचेतनात्मक इस रंगबिरगे विश्व को एक अखण्ड सत् के रूप मे देखिये । यह समस्त विश्व 'है' इसके अतिरिक्त और कुछ विकल्प करने की आवश्यकता भी क्या ? वह जड़ व चेतन पदार्थों का समूह है, यह विचारने की आवश्यकता भी क्या ? जैसा कुछ भी चित्र विचित्र रूप वाला वह हो, 'वह है या नही' इतना ही विचार कीजिये । स्पष्ट है कि वह तो है ही है । बस यही भाव तो 'महा सत्ता' शब्द का वाच्य है । यह महा सत् अद्वैत है कि द्वैत, ऐसा विचार करने पर वह दोनो ही प्रकार से प्रतिभासित होता है, केवल निर्विशेष एक्यरूप हो ऐसा नही है । अद्वैत व द्वैत रूप देखने के लिये चार विकल्प उत्पन्न होते हैं—द्रव्य की अपेक्षा

द्वैताद्वैत, क्षेत्र की अपेक्षा द्वैताद्वैत, काल की अपेक्षा द्वैताद्वैत और भाव की अपेक्षा द्वैताद्वैत ।

सर्व प्रथम चारो विकल्पो से उसकी अद्वैतता को पढियें, पीछे द्वैत भाव को पढा जायेगा । ऐसा करने पर वह एक, सर्वव्यापी, नित्य व एक्यरूप ही प्रतीति मे आता है। सो कैसे वही वताता हूँ । द्रव्य की अपेक्षा देखने पर, वताइये वह उपरोक्त दृष्टि मे आने वाला महासत् क्या एक है या अनेक ? अनेक पदार्थो मे अनुगत होने के कारण क्या वह खण्डित होकर अनेक रूपो मे बिखर गया है ! उत्तर स्पप्ट है कि नही, वह तो एक अखण्डित सत् ही है । यह द्रव्य की अपेक्षा उसमे अद्वैत हुआ । क्षेत्र की अपेक्षा विचार करने पर वह अधो लोक, मध्य लोक व उर्ध्व लोक रूप से तीन प्रकार का कहा जाने पर भी क्या तीन भागो मे विभाजित हो गया है ? उत्तर स्पष्ट है कि नही वह तो तीनो मे अनुगत एक सर्वव्यापी भाव है । यह क्षेत्र की अपेक्षा अद्वैत हुआ । काल की अपेक्षा विचारने पर एक के पश्चात् एक रूप से होने वाला, सत्युग व कलियुग आदि कालक्रम का व्यवहार होने पर भी, क्या वह 'सत्' क्रमवर्ती अनेक भेदो मे विभाजित हो गया है ? उत्तर स्पष्ट है कि नही वे तो त्रिकाल प्रतीति मे आने वाला एक नित्य भाव है । इसी प्रकार भाव की अपेक्षा विचार करने पर, भिन्न भिन्न पदार्थों के भिन्न भिन्न गुण दिखाई देने पर भी, क्या 'सत्' अनेक गुण रूप हो गया । क्या वह भी चेतन-अचेतन या मूर्त अमूर्त हो गया है ? उत्तर स्पष्ट है कि नही, वह तो इन सर्व भावो मे अनुगत तथा इन सबसे विलक्षण जैसा है वैसा एक्यरूप ही है । जिसे शब्द द्वारा नही कहा जा सकता । यह भाव की अपेक्षा इसका अद्वैत है । इस प्रकार द्रव्यो व भावों के विकल्प से रहित, तथा क्षेत्र व काल की मर्यादा से अतीत वह तो एक, सर्वव्यापी, नित्य व एक्यरूप है । द्वैत दृष्टि से देखने पर यद्यपि वह चेतन अचेतन आदि अनेक पदार्थ रूप दिखने लगता है, पर उपरोक्त अभेद व्यापक दृष्टि मे वह इन सर्व विकल्पो

से परे कोई एक सद्ब्रह्म मात्र अद्वैत तत्व है । यही महा सत्ता शब्द का वाच्य है ।

अब तनिक भेद या द्वैत द्रष्टि उत्पन्न करके देखिये । "वह उपरोक्त सत् क्या सर्वथा एक है" ऐसा विचार करने पर, चेतन अचेतन पदार्थो रूप इसके अवान्तर भेद दृष्टि से ओझल नही किये जा सकते । क्योकि निर्विशेष सामान्य खरविषाण वत् होता है' ऐसा न्याय होने के कारण इन सर्व अवान्तर भदों के अभाव मे, वह सत् अनुगताकार रूप से किन मे रहेगा ? अवान्तर भेदों के अभाव मे उसका भी अभाव हो जायेगा । जैसे आम नीबू आदि वृक्ष विशेषों के अभाव मे वृक्ष सामान्य की सत्ता कोई चीज नही । यह चेतन व अचेतन सत् ही उस महा सत् की अवान्तर सत्ता कहलाती है ।

इन दोनों में से भी चेतन को या अचेतन को यदि पृथक पृथक ग्रहण करे, तो इन्हे भी उपरोक्त प्रकार अभेद व भेद दोनो दृष्टियो से पढा जा सकता है । अभेद द्रव्य दृष्टि से देखने पर पूर्ववत् ही वह चेतन-सत् मुक्त जीव व ससारी जीव आदि अपने अवान्तर भेदो मे अनुगताकार रूप से रहने वाला एक है, क्योंकि चेतन सामान्य की अपेक्षा क्या मुक्त व क्या ससारी सब चेतन है । अभेद काल दृष्टि से देखने पर क्रमवर्ती मनुष्य तिर्यन्चादि या बालक वृद्धादि अनेको अवस्थाओ मे अनुगताकार रूप से नित्य स्थायी है । अभेद भाव की दृष्टि से देखने पर वह चेतन ज्ञान व चरित्रादि अपने अनेक गुणो मे अनुगताकार रूप से रहने वाला, उनके पृथक पृथक स्वरूप से विलक्षण कोई एक्यरूप भाव वाला है । सत्ता के अवान्तर भेदो मे क्षेत्र की अपेक्षा सर्वव्यापी पना नही देखा जा सकता, क्योंकि उनका क्षेत्र अपने अपने भेदो तक ही सीमित है । इस प्रकार द्रव्य व भाव की अपेक्षा निर्विकल्प और काल की मर्यादा से अतीत वह एक नित्य तथा एक्यरूप चिद्ब्रह्म मात्र अद्वैत तत्व है । यही अवान्तर सत्ता शब्द का

वाच्य है । इसी प्रकार पृथक से अचेतन के सम्बन्ध मे भी विचारने पर, उसे एक नित्य तथा एक्य रूप जडब्रह्म मात्र अद्वैत तत्व के रूप में देखा जा सकता है । यह भी अवान्तर सत्ता का विषय है ।

पुन: भेद दृष्टि करने पर चेतन सत् मुक्त व संसारी इस प्रकार से दो भेदों मे विभाजित है, और अचेतन सत् पुग्दल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल इस प्रकार से पाच भेदो मे विभाजित है । इन सर्व ही चेतन व अचेतन के भेदो को यदि पृथक पृथक अभेद सत्ता के रूप मे देखे तो पूर्व वत् ही वे सव ही, अपने अवान्तर भेदो रूप द्रव्यो मे, तथा क्रमवर्ती उन द्रव्यो की पर्यायो मे तथा सहवर्ती उनके अनेक गुणों मे अनुगताकार रूप से रहते हुए, एक, नित्य व एक्यरूप अद्वैत तत्व के रूप मे देखे जा सकते हैं । और इसी प्रकार इनके भी आगे के सर्व अवान्तर भेद प्रभेदो को पृथक पृथक ग्रहण करकरके उन-उन की पृथक पृथक अद्वैत सत्ता को देखा जा सकता है । अभेद दृष्टि से देखे गये सर्व ही सत् अवान्तर सत्ता कहलाते है ।

अपने अपने अवान्तर भेदो मे अनुगत रूप से देखा गया प्रत्येक ही सत् अद्वैत होने के कारण सामान्य है, और उसके वे अवान्तर भेद उसके विशेष हैं । जैसे चेतन अचेतन रूप अवान्तर भेदो मे सादृश्य अस्तित्व रूप महा सत्ता तो सामान्य है और ये चेतन अचेतन उसके विशेष हैं । इसी प्रकार मुक्त व ससारी रूप अवान्तर भेदों मे अनुगत चेतन की अवान्तर सत्ता तो सामान्य है और ये मुक्त व ससारी उसके विशेष है । इस प्रकार महा सत्ता व अवान्तर सत्ताओ की सामान्य व विशेष भावो रूप यह श्रखला तव तक चलती रहती है जब तक कि वह अन्तिम अवान्तर भेद प्राप्त नही हो जाता जिसका कि आगे भेद किया जाना सम्भव न हो । इनमे से सामान्य सत्ता को स्वीकार करने वाला सग्रह नय है और विशेष सत्ता को ग्रहण करने वाला व्यवहार नय है ।

२. संग्रह नय सामान्य

उपरोक्त सर्व वक्तव्य व उदाहरणों पर से संग्रह नय का **लक्षण** निकाला जा सकता है ।

जाति या व्यक्ति रूप से दिखने वाले द्रव्यात्मक द्वैत का, अथवा गुण पर्याय आदि रूप से दीखने वाले भावात्मक द्वैत का, तथा इसी प्रकार क्षेत्र व काल की सीमा का, निरास करके, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारों की अपेक्षा ही, किसी तत्व को अद्वैत देखना संग्रह नय का लक्षण है । इस दृष्टि में महा सत्ता या अवान्तर सत्ता, जिस किसी को भी देखा जाये वह द्रव्य की अपेक्षा एक काल की अपेक्षा नित्य और भाव की अपेक्षा स्व लक्षणभूत एक्यरूप अखण्ड रस मात्र दिखाई देता है । अपनी जाति के अनेक द्रव्यों में एकता की स्थापना करना संग्रह नय का काम है, जैसे 'गाय एक पशु है' ऐसा कहना भले ही व्यक्ति की अपेक्षा वे अनेक हों । संग्रह नय वास्तव मे जाति को देखता है व्यक्ति को नहीं ।

अब इन लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये:—

१. लक्षण नं० १:—(शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय भूत अद्वैत सत्)

१ क. पा० । १ । १८२।२१६।१ "शुद्ध द्रव्यार्थिक पर्यायकलक-रहित बहुभेदः संग्रहः ।"

(**अर्थ**—द्रव्य के अन्दर दीखने वाले गुण व पर्यायों के अनेकों भेदो या अंशो का संग्रह करके, पर्याय कलक रहित एक अखण्ड व अद्वैत द्रव्य की सत्ता को दर्शाने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।)

२. आ१ पा० ।१६।५०१२४ "अभेदरुपतया वस्तुजात सग्रणातीति सग्रह ।"

अर्थ—(अभेद रूप से जो वस्तु की जाति मात्र को समूह रूप से संग्रह करके ग्रहण करे वह संग्रह नय है।)

३. ध०। ६। १७०। ५ "तत्र सत्तादिना य सर्वस्यपर्यायकलकाभावेन अद्वैतत्वमध्यवस्येति शुद्ध द्रव्यार्थिकः स संग्रहः"

(**अर्थ**—व्यवहार नय के द्वारा किये गये द्रव्य के भेद प्रभेदों की अपेक्षा न करके, सत्ता आदि रूप से किये गये, सर्व भेदों के कारण से लगने वाले, पर्याय रूप कलक का निरास करते हुए, उसके अद्वैत पने को ज़ो दर्शाता है ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ही संग्रह नय है।)

४ ध० ।१३।१९९। २ "व्यवहारमनपेक्ष्य सत्तादिरुपेण सकलवस्तु-संग्रहाकः संग्रह नय है।"

अर्थ—व्यवहार नय की अपेक्षा न करके सत्तादि रूप से सकल वस्तु को संग्रह करने वाला अर्थात उस में अद्वैत दर्शाने वाला संग्रह नय है।)"

५ध० ।१।८४।२ विधिव्यतिरिक्तप्रतिषेधानुपलम्भात विधिमात्रमेव तत्वमित्यध्यवसाय: समस्तस्य ग्रहणात्संग्रह.। द्रव्यव्यतिरिक्त पर्यायानुपलाम्भाद् द्रव्यमेव तत्वमित्यध्वसायो वा संग्रहः। एते त्रयोऽपि नया. नित्यवादिन. स्वविषये पर्यायाभावतः सामान्य विशेपकालयोरभावात्।"

(**अर्थ**—विधि रहित प्रतिषेध कोई वस्तु नही इसलिये "विधि अर्थात सत् मात्र ही तत्व है" इस प्रकार वस्तु के अखडत्व का निश्चय करने के कारण इस नय को संग्रह नय कहते है। अथवा द्रव्य से रहित कोई पर्याय उपलब्ध नही

होती इसलिये "द्रव्य ही तत्व है" इस प्रकार का निश्चय संग्रह नय है। यह तीनों नैगम, सग्रह व व्यवहार नये नित्य वादी हैं, क्योकि अपने विषयों को यह अभेद रूप से ग्रहण करते हैं। तीनों मे ही अपने अपन विषय में पर्याय न होने के कारण सामान्य विशेष काल का अभाव है।

६ का. अ.।२७२ "यः सग्रहणाति सर्वं देश वा विविध द्रव्यपर्याय। अनुगमलिंगविशिष्टं सोऽपिनय· संग्रहः भवति ।२७२।"

जो नय सब वस्तुओं को तथा देश अर्थात एक वस्तु के भदो को अनेक प्रकार द्रव्य पर्याय सहित अन्वय लिग से विशिष्ट सग्रह करता है—एक स्वरूप कहता है, वह सग्रह नय है।

७ रा वा ।४।४२।१७।२६१।४ "तत्र सग्रह· सत्त्वविषयः, सकल वस्तुतत्व सत्वे अन्तर्भाव्य सग्रहात् ।"

(**अर्थ**—सग्रह नय वस्तु के सत्व को विषय करता है, क्योकि सकल वस्तु तत्वतः सत्व मे गर्भित हो जाती है।

स० सि० १।३३।५०६ "द्रवति गच्छति तान्स्तान्पर्यायानित्युपलक्षिताना जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां सग्रहः।"

(**अर्थ**—"उन उन पर्यायो को जो प्राप्त होता है सो द्रव्य है' ऐसे लक्षण वाले जीव या अजीव पदार्थ तथा उन सबके भेद प्रभेदों को अभेद करके ग्रहण करन वाला सग्रह नय है।)

२. लक्षण नं० २ (व्यक्ति भेद न करके जाति को एक कहना) -

१ स. म. ।२८।३११ ।७ "सग्रहस्तु अशेषविशेषतिरोधानद्वारेण सामान्यरूपतया विश्वमुपादत्ते ।"

(अर्थ—सग्रह नय सम्पूर्ण विशेष धर्मों की अपेक्षा को छोड़कर उनके तिरोधान द्वारा, सामान्य धर्म की मुख्यता लेकर जितने मे वह सामान्य धर्म रहता हो, उस सम्पूर्ण विषय को ग्रहण करता है । इस प्रकार 'सत्' कहकर सर्व विश्व को, 'जीव' कह कर सम्पूर्ण जीवो को, 'घट' कह कर सम्पूर्ण घटो को ग्रहण कर लेता है ।

रा. वा. ।१।३३।५।९५ "स्वजात्यविरोधेन एकत्वोपनयात् । केषाम् ? भेदानाम् । समस्तग्रहण संग्रहोयथा 'सत्' 'द्रव्य' 'घट' इति । 'सत्' इत्युक्ते सत्तासबन्धार्हाणा द्रव्यपर्यायतद्भेदप्रभेदाना तद्व्यतिरेकात् तेनैकत्वेन संग्रहः । 'द्रव्यम्' इति चोक्ते जीवाजीवतद्भेदप्रभेदाना द्रव्यत्वाविरोधात्तेनैकत्वेन सग्रह । 'घट' इति चोक्ते नामादि भेदात् मृत्सुवर्णादिकारणविशेषाद् वर्णसस्थानादिविकाराच्च भिन्नाना घटशब्दवाच्यानां तदव्यतिरेकादेकत्वेन संग्रहः ।"

(अर्थ.—अपनी अपनी जाति की वस्तुओं को अविरोध रूप से उनके सर्व भेदो मे एकत्व का ग्रहण होने के कारण, समस्त भेदो को एक रूप मे ग्रहण करे सो सग्रह नय है । जैसे 'सत्' 'द्रव्य' 'घट' व इत्यादि कहना । 'सत् ऐसा कहने पर सत्ता के सम्बन्ध से जिनकी प्रसिद्धि होती है ऐसे द्रव्य पर्याय व उनके भेद प्रभेदो का, उस सत् से भेद न होने के कारण उसको एक सत् रूप से ग्रहण करना सग्रह है । 'द्रव्य' ऐसा कहने पर, जीव अजीव तथा उनके भेद प्रभेदो को द्रव्यत्व के साथ अविरोध द्वारा उसको एक द्रव्य रूप से ग्रहण करना संग्रह है । 'घट' ऐसा कहने पर, नामादि के

भेदों से अथवा मिट्टी सोने आदि कारण विशेष भेदो से, अथवा वर्ण व आकार आदि विकारो के भेदो से भिन्न रूप तथा एक घट शब्द के वाच्य उसके सर्व भेद उस एक घट से भिन्न नही होने के कारण, उसको एक घट रूप से ग्रहण करना संग्रह नय है ।

३ रा. वा. हि ।१ ।३३ ।२०० "द्रव्य मे सर्व द्रव्यानि का, पर्यायनि मे सर्व पर्यायनिय, का जीव मे सर्व जीवनि का, पुग्दल मे सर्व पुग्दलनि का सग्रह (सो सग्रह नय है ।)

४ प का ।ता वृ ।७१ ।१२३ "सर्वजीवसाधारण. . . .शुद्धजीव-जातिरूपेण सग्रहनयेनैकश्चैव महात्मा ।"

(अर्थ—सर्व जीव साधारण......शुद्ध जीव जाति रूप से सग्रह नय के द्वारा एक महात्मा रूप से ही ग्रहण करने मे आते हैं ।)

इन सर्व उद्धरणो पर से यही दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि, सग्रह नय द्रव्य के अन्तरंग भेदो अर्थात गुणो व पर्यायो को तथा उसके बाह्य जाति भेदो को सग्रह करके द्रव्य के एकत्व को दर्शाता है । सर्व भेदों को सग्रह करके कहने के कारण यह संग्रह नय है । यह तो इस नय का कारण है । और द्रव्य के भेदों को एकत्व दर्शाना इस नय का प्रयोजन है । जैसे कि स्याद्वाद मञ्जरी में कहा है—

स म ।२८ ।३१५ ।श्लो २ "सद्रूपताऽनतिक्रान्त स्वस्वभावमिद जगत्
उद्धत सत्तारूपया सर्व संगृण्ह्वन् सग्रहो यत ।२।"

अर्थ—सत्व धर्म को नही छोडते हुए सर्व पदार्थ अपने अपने स्वभाव मे अवस्थित है । इस लिये सत्व धर्म की अपेक्षा मुख्य करके सग्रह नय सभी जगत को एक रूप ग्रहण करता है ।

३. संग्रह नय विशेष

सग्रह नय सामान्य के उपरोक्त लक्षण पर से यह बात स्पष्टत: ग्रहण करने मे आती है कि संग्रह नय दो प्रकार की सत्ता को अद्वैत रूप से विषय करता है--- महासत्ता को तथा अवान्तर सत्ता को । विषय भेद की अपेक्षा सग्रह नय के भी इसलिये दो भेद स्वीकार किये गये है- शुद्ध सग्रह या सामान्य सग्रह तथा अशुद्ध सग्रह या विशेष सग्रह । महासत्ता ग्राहक शुद्ध संग्रह है और अवान्तर सत्ता ग्राहक अशुद्ध सग्रह है । इन दोनो के पृथक पृथक लक्षण व उदाहरण आदि देखिये ।

१ शुद्ध संग्रह नय:-

शुद्ध संग्रह नय द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इन चारों ही अपेक्षाओं से जगद्व्यापी एक महासत्ता सामान्य को एक सर्वव्यापी नित्य अद्वैत तत्व के रूप मे ग्रहण करता है । इस दृष्टि मे उस महा सद्ब्रह्म सामान्य के अतिरिक्त इस लोक मे और कुछ है ही नही । सद्ग्राहक इस दृष्टि मे भेद है ही कहा जो कि इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई दे । अत अद्वैतवादियों का सर्व कथन ठीक ही हैं, क्योकि समस्त अवान्तर भेदो का समूह रूप एक अखण्ड तत्व ग्रहण कर लिया गया तब उससे अतिरिक्त उन सर्व भेद प्रभेदो की स्वतत्र सत्ता की प्रतीति को अवकाश कहां रह गया। इस दृष्टि से देखने पर सर्व चेतन व अचेतन पदार्थ एक सत् जाति मे गर्भित हो जाते है । अत: समस्त विश्व एक रूप दीखने लगता है । इस प्रकार एक सामान्य सत् से अतिरिक्त चेतन आदि अवान्तर भदों की भिन्न सत्ता कैसे देखी जा सकती है ? इसी दृष्टि को शुद्ध द्रव्यार्थिक नय भी कहते है । सदद्वैत वादियो के सिद्धान्त का आश्रय यही दृष्टि है । सो इस दृष्टि या नय से देखने पर उनका सिद्धात बिल्कुल सत्य है, यदि वे आगे आने वाली व्यवहार दृष्टि का निषेध न करे तो ।

अव इसी लक्षण की पुष्टि मे निम्न उद्धरण देखिये --

१. वृ. न. च. २०६ "अपर परम विरोधे सर्वमस्तीति शुध्द सग्रहेण ।"

अर्थ--शुध्द व अशुध्द का अविरोध हो जाने पर सर्व अस्ति रूप है, ऐसा शुध्द सग्रह के द्वारा ग्रहण होता है ।

२. नय चक्र गद्य पृ १४ "यदन्योन्याविरोधेन सर्वं सर्वस्य वक्तिय । सामान्य संग्रह प्रोक्तश्चैकनजाति विशेषक ।।"

अर्थ--एक दूसरे मे विरोध किये बिना जो सबको सबका कहता है अर्थात सबको मिलाकर एक अद्वैत महा सत्ता मे गर्भित कर देता है, वह सामान्य या शुध्द संग्रह है। और एक जाति में रहने वाले सर्व व्यक्तियो को एक रूप से कहने वाला विशेष या अशुध्द सग्रह है।

३. आ. प. ।६। पृ ७७ "सामान्य सग्रहो यथा-सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधानि ।"

अर्थ--सामान्य संग्रह तो ऐसा है जैसे कि "सर्व द्रव्य परस्पर मे अविरोधी है" ऐसा कहना। सत् सामान्य मे सब समा जाते है--जड़ हो या चेतन ।

४. स. म. ।२८।३१७।७ " (श्री देवसूरिना) अविशेष विशेषेषु औदासीन्यं भजमान शुद्ध द्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमान पर-सग्रह । विश्वमेक सद विशेषादिति यथा।।"

अर्थ:--श्री देव सेन सूरि के मतानुसार सामान्य व विशेषो में उदासीनता को भजने वाला अर्थात् सामान्य जाति व

विशेष व्यक्तियो की अपेक्षा किये बिना, शुध्द द्रव्य को सन्मात्र मानने वाला शुध्द संग्रह नय है। जैसे 'कोई भी विशेषता न होने के कारण यह सारा विश्व सत् है" ऐसा कहना।

यह इस नय के उध्दरण हुए, अब इसका कारण व प्रयोजन देखिये। विश्व मे स्थित जब सम्पूर्ण पदार्थ अस्तित्व रूप ही है, और यह बात सर्व सम्मत है, तो विश्व मे अस्तित्व सामान्य के अतिरिक्त और रह ही क्या गया। इस सामान्य अस्तित्व का प्रत्यक्ष ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है। यदि यह सामान्य अस्तित्व दृष्टि मे न आता तो इस नय की भी कोई आवश्यकता न होती। वस्तु के अद्वैत स्वभाव को या सर्व के एक सामान्य स्वभाव को दर्शाना इसका प्रयोजन है।

२ अशुद्ध संग्रह नयः—

शुद्ध सग्रहवत् अशुध्द सग्रह भी तत्व की द्रव्य क्षेत्र काल भाव गत अद्वैतता को ही ग्रहण करता है। अन्तर केवल इतना है कि उसका विषय महा सत्ता था और इसका विषय अवान्तर सत्ता है। इस दृष्टि मे चेतन तत्व या अचेतन तत्व एक एक सत्ता वाले है, व नित्य है तथा स्वलक्षण भूत एक अद्वैत स्वभाव वाले है। इसी प्रकार संसारी व मुक्त, त्रस व स्थावर, दो इन्द्रिय आदि पचेन्द्रिय पर्यन्त के जीव अथवा पृथ्वी आदि वनस्पति पर्यन्त की धातु इत्यादि सर्व ही यद्यपि व्यक्ति की अपेक्षा अनेक अनेक है परन्तु एक जाति सामान्य की अपेक्षा वे एक एक है। भले ही व्यक्ति की अपेक्षा वे उत्पत्ति व विनाश युक्त हों पर जाति की अपेक्षा वे त्रिकाली स्थायी है। भले ही व्यक्ति की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वभाव व वर्णादि आकार वाले हो पर जाति की अपेक्षा वे एक स्वभावी है। इस प्रकार द्रव्य काल व भाव तीनों ही अपेक्षाओ से उन सर्व मे तथा अन्य भी अवानन्तर

सत्ताभूत पदार्थो मे अद्वैत दर्शाना इस नय का विषय है। जैसे कि "गाय एक पशु है" ऐसा कहने से सर्व ही प्रकार की सर्व ही गायों का, गाय की जाति सामान्य मे संग्रह करके, उसे एक कह दिया जाता है।

अब इसकी पुष्टि के लिये कुछ आगमोक्त उध्दरण देखिये.–

१. वृ.न च।२०९ "भवति स एव अशुध्द एक जाति विशेष ग्रहणेन।"

अर्थ–वही शुध्द संग्रह का विषय अशुध्द सग्रह का बन जाता है जब कि उसके द्वारा ग्रहण किये गये एक अद्वैत सत् मे अवान्तर सत्ताभूत पृथक पृथक एक एक जाति विशेष की अद्वैतता को ग्रहण किया जाता है।

२. आ.प.।६। पृ. ७७ "विशेष सग्रहो, यथा-सर्वे जीवा परस्परम विरोधिन:"

अर्थ.–विशेष सग्रह नय को ऐसा जानो जैसे कि" सर्व जीव परस्पर मे अविरोधी अर्थात एक है" ऐसा कहना।

३. स.म।२८।३१७।१० "द्रव्यत्वादीनि अवान्तर सामान्यानि मन्वानस्तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमान. पुनरपर संग्रह। धर्माधर्माकाशकालपुद्गल जीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वाऽभेदात् इत्यादिर्यथा।"

अर्थ--द्रव्यत्व पर्यात्व आदि अवान्तर सामान्यो को मानकर उनके भेदों मे मध्यस्थ भाव रखना अपर या अशुद्ध संग्रह नय है। जैसे द्रव्यत्व की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाश, काल पुद्गल, और जीव एक एक है।

अब इस नय के कारण व प्रयोजन बताता हू । सत् रूप से एक होते हुए भी वह महा सत्ता अनेको जाति के पदार्थों रूप देखने मे आती है । इसलिये जब एक को खण्डित करके उसमे अनेक जातीयता का व्यवहार करने मे आता है, तब एक जाति की व्यक्तिगत अनेकता का निरास करके उसमे एकत्व की स्थापना करना इसका कार्य है । जाति की अपेक्षा करने पर उन सर्व व्यक्तियों मे दीखने वाला एकत्व या सग्रह ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है । यदि जाति रूप मे सर्व व्यक्ति एक देखने मे न आये होते तो यह नय भी न होती। तब तो वचन व्यवहार भी असम्भव हो गया होता ।

जैसे कि 'गाय एक पशु विशेष है' ऐसा कहने का व्यवहार है। यदि लोक की सर्व गायों मे यह एक गायपने वाली एक जातीयता न होती तो गाय किसे कहते ? प्रत्येक गाय को पृथक पृथक नाम देना पड़ता । जब एक को गाय कहेगे तो दूसरी को गाय न कह सकेगे, क्योकि एक जातीयता के अभाव मे दोनो का नाम एक होना विरोध को प्राप्त हो जायेगा । अनन्तानन्त जड व चेतन व्यक्तियों के लिये पृथक पृथक शब्द रखकर वचन व्यवहार चलना असम्भव है । यही इस नय की उत्पत्ति का कारण है ।

वस्तुओ के व्यक्तिगत भेदो मे एक जातीयता उत्पन्न करके वचन व्यवहार को सम्भव बनाना तथा व्यक्तिगत भेदों मे एक अभेद जातीयता का परिचय देना इस नय का प्रयोजन है ।

४. व्यवहार नय सामान्य

शुध्द सग्रह नय का लक्षण करते हुए यह बात बताई गई थी कि महासत्ता ग्राहक वह नय जगत को एक अद्वैत सद्ब्रह्म के रूप मे देखता है । इस दृष्टि से देखने पर सदद्वैत वादियो का सिद्धात कि "जगत मे एक सत् ही है, उससे अतिरिक्त सर्व भ्रम है" बिल्कुल सत्य है । भल है केवल यह कि

इसके सहवर्ती दूसरे व्यवहार नय का लोप करने के कारण वे लोग इस अद्वैत सत् का विश्लेषण पूर्वक कथन करने मे अथवा उसे समझने व समझाने मे असमर्थ हं।

काश कि साथ मे रहने वाले उस व्यवहार नय के विषय को भी यथा योग्य रूप मे स्वीकार कर लेते तो वास्तव मे एकान्त से किसी सर्वदा अद्वैत सत् की सत्ता देखी नही जा सकती। वह पूर्व कथित अद्वैत सत् किसी विशेष दृष्टि से देखने पर द्वैत रूप भी दिखाई देता है। अद्वैत सत् का यह अर्थ नही कि कोई संख्या मे एक ही पदार्थ सत् नामका है, जो सकल ब्रह्माण्ड मे व्याप कर रहता है, बल्कि यह है कि सकल वस्तु समूह सामान्य स्वभाव की अपेक्षा सत्स्वरूप है। अर्थात उसके जितने भी अवान्तर भेद प्रभेद हे वे सब ही यथार्थ हैं। उन सर्व भेदों को भ्रम मात्र कहकर किसी एक सख्यक सत् की स्थापना करना केवल कल्पना है सत्य नही, क्योंकि ऐसा प्रत्यक्ष विरुद्ध हैं। जो नित्य प्रतीति मे आता है उसे स्वीकार न करना अपने को धोखा देना है। अत. सर्व ही शुद्ध व अशुध्द द्रव्यार्थिक तथा पर्यायथिक नय के विषयों को स्वीकार करके, यथा योग्य रूप मे इस अद्वैत सत् मे बाह्य मे दृष्ट जाति व व्यक्तिगत भेद तथा उनके अभ्यन्तर स्थित गुण पर्यायादि कृत भेद देखना न्याय संगत है। वे गौण संगत हैं। वे गौण किये जा सकते हैं पर निषिध्द नही।

द्वैत के विना अद्वैत का कोई अर्थ नही, अत: दोनो को वस्तु स्वरूप मे स्थान देना योग्य है। सामान्य के बिना विशेष और विशेष के विना सामान्य गधे के सीग के समान असत् है। जहां विशेष ही नही वहां सामान्य भी किसे कहेगे ? जहा अनेकपना नही वहा एकपना किसे कहेगे। समानपने का नाम ही सामान्य है। पर अनेकता के बिना वह समानता कैसे दृष्ट हो सकेगा। अत.

व्यक्ति या व्यष्टि की अपेक्षा जो तत्व अनेको अवान्तर जातियो मे विभक्त है, तथा एक एक यह अवान्तर जाति भी अनेको व्यक्तियों मे विभाजित है, वही तत्व समष्टि की अपेक्षा एक है। इस प्रकार वस्तु स्वरूप सामान्य विशेष उभय रूप है। इनमें से सामान्य रूप को ग्रहण करने वालासग्रण नय है और विशेष रूप को करने वाला व्यवहार नय है सग्रह नय किसी भी वस्तु को वह महा सत्ता रूप हो या अवान्तर सत्ता रूप, अद्वैत रूप में मे देखता है, और व्यवहार नय उसके द्वारा ग्रहण किये गये उसी अद्वैत महा सत्ता मे व अवान्तर सत्ता मे द्वैत उत्पन्न कर देता है। अद्वैत देखने के कारण संग्रह नय शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है और द्वैत देखने के कारण व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहलाता है। अशुद्ध कहने का तात्पर्य यह नही कि उसका विषय असत् है, बल्कि यह है कि वह भेद ग्राहक है।

सामान्य व विशेष दोनो अंश वस्तु मे साथ साथ रहते हैं, इसलिये उनके ग्राहक सग्रह व व्यवहार नय भी सदा साथ रहते हैं, या यो कहिये कि वे दोनों सगे भाई है। संग्रह के बिना व्यवहार का और व्यवहार के बिना सग्रह का कोई विषय नहीं, जैसे कि पिता के विना पुत्र और पुत्र के बिना पिता का कोई अर्थ नही। द्वैत या भेद करने या विशेष अश को देखने का क्या तात्पर्य है इसी बात को स्पप्ट करता हूं।

एक किसी वस्तु को लेकर उसमे जाति व व्यक्तिगत भेद डाले। उन जाति या व्यक्ति गत भेदों मे से प्रत्येक को पृथक पृथक स्वतंत्र वस्तु रूप से ग्रहण करके पु न उनमे भेद डाले। और इसी प्रकार इन प्रभेदो को भी पृथक पृथक ग्रहण करके पुन उनमे भेद डाले। और इस प्रकार बराबर भेद डालते जाये जब तक कि वह अन्तिम भेद प्राप्त न हो जाये जिस का पुन भेद न किया जा सके। यही वस्तु का विश्लेषण करने का उपाय है। इसी को विभाजन या व्यवहार

करना भी कहते है। यहा यह समझना कि जहां भेद डालने का काम हो वहा तो व्यवहार नय का व्यापार होता है, और जहां उन भेदो मे से किसी एक को पृथक निकाल कर एक जाति रूप स्थापित करने का काम हो, वहां सग्रह नय का व्यापार होता है। यही व्यवहार व संग्रह नय की मैत्री है।

उदाहरण के रूप मे महासत्ता एक अद्वैत सद्ब्रह्म है। वह दो भेद रूप है—चेतन व अचेतन। इनमें से चिद्ब्रह्म अर्थात चेतन दो भेद रूप है—ससारी व मुक्त। इनमे से संसारी भी दो भेद रूप है—त्रस व स्थावर। स्थावर भी पाच भेद रूप है—पृथ्वि, जल, अग्नि, वायु, व वनस्पति। वनस्पती भी दो प्रकार है—साधारण व प्रत्येक। प्रत्येक नाम वाली वनस्पति अनेको प्रकार की है-घास, फल, फूल, पत्र आदि। फल अनेक प्रकार के है सतरा केला अमरूद आदि। एक अमरूद भी यद्यपि एक है परन्तु अनेकों परमाणुओ का पिण्ड होने के कारण अनन्त परमाणुओं रूप से विभाजित किया जा सकता है। आगे परमाणु का भेद नही किया जा सकता। इसी प्रकार जिस किसी भी वस्तु के उत्तरोत्तर भेद प्रभेद करते हुए अन्तिम भेद तक पहुंचा जा सकता है। यहा केवल इतनी बात ध्यान मे रखने योग्य है कि उपरोक्त दृष्टान्त मे अमरूद तक के सर्व भेद तो व्यवहार गत हैं अर्थात सर्व सम्मत है, परन्तु अन्तिम जो परमाणु कृत भेद है वह व्यवहार गत नही है, क्योंकि परमाणु पृथक रह कर किसी प्रत्यक्ष कार्य की सिद्धि करने मे असमर्थ है। इसलिये भेद करने की उपरोक्त प्रक्रिया में यहा अमरूद तक के व्यवहार गत भेदो का ही ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु परमाणु कृत भेद का नही।

भेद भी चार प्रकार से किया जा सकता है-द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा व भाव की अपेक्षा। द्रव्य गत भेदों का कथन ऊपर किया जा चुका है। क्षेत्र कृत भेद प्रदेश भेदको कहते हैं। जीव

पदार्थ असख्यात प्रदेश वाला है, अमरूद नाम का उपरोक्त फल अनन्त प्रदेश या परमाणु वाला है ऐसा क्षेत्र भेद का उदाहरण है। काल कृत भेद पर्याय भेद को कहते है । यद्यपि तात्विक दृष्टि से उपरोक्त द्रव्य गत भेद भी पर्यायिकृत है पर साक्षात बदलते हुए दिखाई न देने के कारण उनमे द्रव्य पने का व्यवहार होता है। मनुष्य की बालक युवा व वृध्द अवस्थाये अथवा उपरोक्त अमरूद की खट्टी, मीठी, ताजी व बासी आदि अवस्थाये काल कृत भेद के अन्तर्गत आती है, क्योकि इनमे होने वाला परिवर्तन प्रत्यक्ष देखा जाने के कारण, इनको स्वतत्र द्रव्य स्वीकार नही किया जाता । इनका व्यवहार अवस्थाओ या पर्यायों रूप से ही करने मे आता है । भाव कृत भेद पदार्थ मे गुण गुणी विकल्प उत्पन्न करके किया जाता है, जैसे "जीव ज्ञान दर्शन आदि गुणो का आधार है, अथवा सत् उत्पाद व्यय व ध्रुव स्वभाव वाला होता है "ऐसा कहना ।

अखण्ड पदार्थ मे चारो ही प्रकार से भेद डालना व्यवहार नय का काम है। उदाहरणार्थ जीव द्रव्य को संसारी मुक्त कहना द्रव्य गत व्यवहार है, जीव द्रव्य को असंख्यात प्रदेश वाला कहना क्षेत्रगत व्यवहार है, मनुष्य सामान्य को बालक युवा व वृध्द तीन अवस्थाओ वाला कहना काल गत व्यवहार है तथा जीव द्रव्य को ज्ञानादि गुणों वाला कहना भावगत व्यवहार है। इन चारों प्रकार के भेदों को तथा मुख्यत: काल कृत भेद को आगे ऋजुसूत्र नय का विषय भी बनाया जायेगा परन्तु इन दोनों नयों के ग्रहण मे महान् अन्तर है, जो आगे यथा स्थान बताया जायेगा ।

संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अभेद विषय के, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव रूप चतुष्ट की अपेक्षा, अवान्तर भेद प्रभेद या विशेष दर्शाना व्यवहार नय का लक्षण है। सत् सामान्य जीव व अजीव के भेद से द्वि रूप है या जीव द्रव्य संसारी व मुक्त के भेद से द्विरूप

है, अथवा द्रव्य गुण पर्यायवान है ऐसा कहना इसका उदाहरण है। अब इसकी पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगमोक्त उध्दरण देखिये।

१ स सि ।१।३३।५१० "सग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः।"

अर्थ – संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ या पदार्थों का विधि पूर्वक व्यवहार करना या भेद करना व्यवहार नय है।

(रा वा ।१।३३।६६)

२. आ प. १६।पृ०१२४ "सग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहार ।"

(**अर्थः**—सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ के भेद रूप से, जो वस्तु मे व्यवहार करे अर्थात भेद उत्पन्न करे वह व्यवहार नय है।

३ स० म० ।२८।३१७।१४ "संग्रहेण गोचरीकृतानामर्थाना विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसंधिना क्रियते स व्यवहारः । यथा यत् सत् तद् द्रव्यं पर्यायो वेत्यादि ।"

(**अर्थ**—सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थो या विषयों मे विधि पूर्वक भेद रूप व्यवहार जिस के अभिसधान द्वारा किया जाता है सो व्यवहार नय है—जैसे "जो सत् है सो द्रव्य रूप या पर्याय रूप होता है" ऐसा कहना।)

४. त० सा० ।१।४६।३८ "सग्रहेण गृहीतानामर्थाना विधिपूर्वकः। व्यवहारो भवेद्यस्माद् व्यवहारनयस्तु सः ।४६।"

(अर्थ —सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थों मे विधि पूर्वक जिस से व्यवहार या भेद किया जाता है वह व्यवहार नय है ।)

५ ध० ।१।८४।४ "संग्रहनयानिक्षिप्तानामथानां विधि पूर्वक मवहरणं भेदनं व्यवहार:, व्यवहारपरतन्त्रो व्यवहार नय इत्तर्थः ।"

(अर्थ —सग्रह नय मे निक्षिप्त अर्थों का विधि पूर्वक भेद करना व्यवहार है। अथवा लौकिक व्यवहार का अनुसरण करने वाला व्यवहार नय है ।

६ क० पा० ।१।२२०।गा. ८६ "दब्बट्ठियणयपयडी सुद्धा सगह-परूवणाविसओ ।।
पडिरूव पुण वयणत्थणिच्छओ तस्य ववहारो ।।८९।।'

(अर्थः—द्रव्यार्थिक नय की शुद्ध प्रकृति सग्रह नय की प्ररुपणा का विषय है। उसके प्रत्येक अर्थात भेद रूप पने के वचनो का निश्चय उसका व्यवहार है।)

७. का० अ० ।२७३ "यत् संग्रहेण गृहीतं विशेषरहितमपि भेदयति सतत। परमाणुपर्यन्त व्यवहारनय भवेत् सोऽपि ।२७३।"

(अर्थ —जो सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये विशेष रहित विषय मे भी सतत भेद करता हुआ परमाणु या अत्यन्त सूक्ष्मता तक पहुँच जाता है, उसे व्यवहार नय कहते है।)

व्यवहार का अर्थ भेद करना है । सग्रह नय के द्वारा भेदो का सग्रह किया जाता है और व्यवहार नय के द्वारा उस सग्रह मे भेद डाला जाता हे इसलिये इसका "व्यवहार नय" ऐसा नाम सार्थक

ही है। यह तो इस नय का कारण हुआ। और वस्तु की विशेषताओं व उसके भेद प्रभेदों का परिचय देना, अथवा संग्रह के विषय पर से कदाचित् ग्रहण कर लिये गये एक अद्वैत ब्रह्म के एकान्त का निरास करके, यथा योग्य रूप से विश्व की अनेकता का परिचय देना इस नय का प्रयोजन है। वैशेषिकों की दृष्टि का आधार यही नय है।

५. व्यवहार नय विशेष — इस नय के दो भेद हैं–शुद्धार्थ भेदक व्यवहार और अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार। अब उनका ही कुछ कथन किया जाता है।

१. शुद्धार्थ भेदक व्यवहार —

शुद्ध संग्रह नय के विषय में भेद डालने वाले नय को शुद्धार्थ भेदक व्यवहार नय कहते है, जैसा कि निम्न उद्धारणों पर से विदित है। शुद्ध संग्रह का विषय एक अद्वैत महा सत्ता है। उसमें भेद डालकर "यह सत् जीव व अजीव के भेद से दो प्रकार का है, या जड़ व चेतन के भेद से द्रव्य सामान्य दो प्रकार का है" ऐसा कहना शुद्ध सग्रह भेदक या शुद्धार्थ भेदक व्यवहार है। इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१. बृ. न. च।२१० "यः सग्रहेण गृहीतं भिनत्ति अर्थमशुद्ध शुद्धं वा। स व्यवहारो द्विविधो शुद्धाशुद्धार्थ भेदकरः।२१०।

(**अर्थ:**—जो शुद्ध संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये शुद्ध अर्थ को भेद रूप करता है सो शुद्धार्थ भेदक व्यवहार नय है।

२. आ. प.।६। पृ ७८ "सामान्यसंग्रह भेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवा जीवाः।

(श्लो वा.।१।३३।५६)

(अर्थ:—सामान्य या शुद्ध सग्रह मे डालने वाला शुद्धार्थ भेदक व्यवहार ऐसा है, जैसे कि "द्रव्य जीव व अजीव के भेद से दो प्रकार का है". ऐसा कहना।

३ नय चक्र गद्य पृ १४ "सामान्यसंग्रहस्यार्थो जीवाजीवादिभेदत.।
भिनत्ति यवहारोऽय शुद्धसग्रहभेदक: ।१।"

अर्थ:—सामान्य सग्रह या शुद्ध सग्रह के अर्थ को जीव व अजीव आदि के भेद से जो विभाजित करता है वह शुद्ध संग्रह भेदक व्यवहार है ।

शुद्ध सग्रह मे भेद डालने के कारण इस नय का "शुद्धार्थ भेदक या शुद्ध सग्रह भेदक व्यवहार" ऐसा नाम सार्थक है। और सत् सामान्य की विशेषता दर्शाकर सदद्वैत मात्र एकान्त का निरास करना, तथा उस सत् की व्यापकता का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

२ अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार नय --

शुद्धार्थ भेदक व्यवहार की भाति ही इस व्यवहार को भीसमझना। अन्तर केवल इतना है कि वह तो शुद्ध संग्रह की विषयभूत महासत्ता को विभाजित करता था और यह अशुद्ध सग्रह की विषयभूत अवान्तर सत्ता को विभाजित करता है। अशुद्ध सग्रह का विषय जो अवान्तर सत्ता है वह अनेक प्रकार है । शुद्धार्थ भेदक व्यवहार ने एक महा सत्ता को जीव व अजीव के भेद से दो रूप कर दिया । इन दोनो का ही पृथक पृथक ग्रहण करके अशुद्ध सग्रह ने इनके अवान्तर भेदों का एक जीव या एक अजीव मे सग्रह कर लिया । इन दोनो की इन अवान्तर अभेद सत्ताओ को पृथक पृथक ग्रहण करके अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार पुन विभाजित कर देता है, अर्थात जीव को

मुक्त व ससारी के भेद से दो रूप और अजीव को पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश व काल के भेद से पाच रूप कर देता है। व्यवहारगत ये सर्व भेद पुनः अशुद्ध सग्रह द्वारा अद्वैत रूप से ग्रहण कर लिये जाते हैं। जैसे कि मुक्त जीव को एक मानना अशुद्ध सग्रह का काम है और इसी प्रकार संसारी को भी। अशुद्ध सग्रह द्वारा गृहित इन दोनो अवान्तर सत्ताओं को अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार पुन विभाजित करके अनेक भेद रूप कर देता है। जैसे कि मुक्त को जम्बुद्वीप मुक्त या धात की खण्ड मुक्त आदि के रूप मे अनेक प्रकार का और ससारी को त्रस स्थावर आदि के भेद से अनेक प्रकार का दर्शाता है।

इसी प्रकार आगे-आगे बराबर अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार द्वारा ग्रहण किये गये भेद प्रभेदों की अभेद सत्ता को ग्रहण करना अशुद्ध संग्रह का काम है, और उसमें भेद डालना इस व्यवहार का काम है। संग्रह व व्यवहार का यह व्यापार तब तक चलता रहता है, जब तक कि यथा योग्य अन्तिम भेद प्राप्त नही हो जाता। इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१. वृ. न. च. ।२१० "यः संग्रहेण गृहीतं भिनत्ति अर्थमशुद्धं शुद्धं वा। स व्यवहारो द्विविधः शुद्धाशुद्धार्थ भेदकरः ।२१०।"

(अर्थः—जो अशुद्ध संग्रह के द्वारा गृहित अशुद्ध या विशेष या भेद रूप अवान्तर सत्ता को पुन भेद रूप करता है वह अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार नय कहलाता है।

२. आ. प. ।६ ।पृ०७८ "विशेषसग्रहभेदको व्यवहारो, यथा जीवा ससारिणो मुक्ताश्च।"

श्लो. वा. ।१।३३।५६

अर्थ—विशेष या अशुद्ध सग्रह भेदक व्यवहार नय को ऐसा जानो जैसे जीवको ससारी व मुक्त ऐसे दो प्रकार का कहना।

३ नय चक्र गद्य। पृ०१४ "विशेषसग्रहस्यार्थौ जीवादौरूपभेदत। भिनत्ति व्यवहारस्त्वशुद्धसग्रहभेदक ।२।"

(**अर्थ**—जीव अजीव आदि भेद रूप जो विशेष संग्रह नय का विषय है, उसे जो विभाजित करता है वह अशुद्ध सग्रह भेदक व्यवहार नय है।

क्योकि अशुद्ध सग्रह की विषयभूत अवान्तर सत्ताओं मे भेद डालता है इसलिये "अशुद्धसंग्रह भेदक या अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार "ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह तो इस नय का कारण है। और विश्व की चित्रता विचित्रता को दर्शाना इसका प्रयोजन है।

यद्यपि सग्रह व व्यवहार नयों मे द्वैताद्वैत का ग्रहण द्रव्यमुखेन ही करने मे आया है, परन्तु क्षेत्र, काल व भाव पर भी समान रूप से इसे लागू किया जा सकता है। जैसे कि द्रव्य या सत् सामान्य को जीव अजीव व मनुष्य तिर्यञ्च आदि भेद करते हुए परमाणु पर्यन्त भेद करना द्रव्यगत द्वैताद्वैत है। अनन्त प्रदेशों से असंख्यात व संख्यात आदि विकल्पों रूप भेद करते हुए एक प्रदेश पर्यन्त भेद करना क्षेत्र गत द्वैताद्वैत है। अनाद्यनन्त काल से लेकर युग, कल्प, वर्ष, मास, व दिन आदि प्रमाण स्थिति वाली पर्यायों रूप से भेद करते हुए एक समय प्रमाण स्थिति वाली पर्याय पर्यन्त भेद करना कालगत द्वैताद्वैत है। किसी भी एक गुण के अनन्त गुणांश या अविभागप्रतिच्छेदों से लेकर असंख्यात संख्यात आदि रूप से भेद करते हुए एक गुणाश पर्यन्त भेद करना भावगत द्वैताद्वैत है। यह चारों ही प्रकार के द्वैताद्वैत इन द्रव्यार्थिक नयों के विषय है।

६. सग्रह व व्यवहार नय समन्वय

यहा तक संग्रह व व्यवहार इन दोनों के लक्षण व उनके भेद आदि दर्शा दिये गये। अब कुछ शकाओं का समाधान करने मे आता है।

१. शंका:-संग्रह नय को शुद्ध द्रव्यार्थिक और व्यवहार नय को अशुध्द द्रव्यार्थिक क्यों कहा जाता है?

उत्तर-संग्रह नय संग्रह रूप प्ररूपणा को विषय करता है, क्योंकि सत्ता या द्रव्य के रूप मे अभेद वस्तु को ग्रहण करता है। इसलिये वह द्रव्यार्थिक अर्थात सामान्य ग्राही नय की शुध्द प्रकृति है। व्यवहार नय सत्ता भेद या द्रव्य भेद से वस्तु को ग्रहण करता है, इसलिये वह द्रव्यार्थिक नय की अशुध्द प्रकृति है।

व्यवहार नय को द्रव्यार्थिक नय की अशुध्द प्रकृति कहने का कारण यह है, कि व्यवहार नय यद्यपि सामान्य धर्म की प्रमुखता से वस्तु का ग्रहण करता है और इसलिये वह द्रव्यार्थिक है, परन्तु फिर भी वह सामान्य अर्थात अभेद मे भेद मानकर प्रवृत्त होता है इसलिये वह द्रव्यार्थिक होते हुए भी उसकी अशुध्द प्रकृति है। इसका यह अभिप्राय है कि सत्ता सामान्य में उत्तरोत्तर भेद करने वाला व्यवहार नय है।

२. शंका:-संग्रह नय केवल सत्ता सामान्य को ही ग्रहण नही करत अपितु उत्तर या अवान्तर भेदो को भी ग्रहण करता है, फिर इसमे व व्यवहार नय मे क्या अन्तर है?

उत्तर:-सग्रह नय के शुध्द संग्रह व अशुध्द संग्रह दो भेद है। शुध्द संग्रह महासत्ता को और अशुध्द संग्रह अवान्तर सत्ता को

ग्रहण करता है। वास्तव मे व्यवहार नय के विषय से इस अशुध्दसग्रह का विषय भिन्न है। क्योंकि व्यवहार का कार्य एक मे अनेकता उत्पन्न करना है, और अशुध्द सग्रह का विषय उन अवान्तर भेदों को पृथक पृथक ग्रहण करके प्रत्येक में एकता को ग्रहण करता है।

उदाहरण के रूप मे व्यवहार नय का कहना है कि जीव द्रव्य मनुष्य तिर्यन्चो आदि के भेद से अनेक प्रकार का है, और सग्रह नय का कहना है कि जीव द्रव्य सामान्य एक ही है। व्यवहार नय का कहना है कि पशु पक्षी आदि के भेद से तिर्यन्च अनेक प्रकार का है और सग्रह नय का कहना है कि तिर्यन्च सामान्य एक है–इत्यादि।

२ **शंका**—व्यवहार नय द्रव्यपर्यायो का आश्रय करके वस्तु मे भेद डालता है, क्योकि मनुष्य तिर्यन्च आदि द्रव्य नही वल्कि द्रव्य पर्याय है। फिर भी इसे द्रव्यार्थिक क्यों कहा, पर्यायार्थिक क्यों नही?

उत्तरः—इस शंका का उत्तार आगम मे निम्न प्रकार दिया है।

ध ।१।पृ. ८४।१६ "ये तीनो हो (नैगम, संग्रह और व्यवहार) नय नित्यवादी है, क्योकि, इन तीनो ही नयो का विषय पर्याय न होने के कारण इन तीनो ही नयो के विषय मे सामान्य और विशेष काल का अभाव है।

इसका तात्पर्य यह है कि व्यवहार नय के द्वारा जिन भेदो का का ग्रहण किया जाता है वे या तो द्रव्य है या द्रव्यपर्याय। एक समय वर्ती अर्थ पर्याय के भेदो को यह ग्रहण नही करता क्योकि वह प्रत्यक्ष नही है। द्रव्य-पर्याय भी यद्यपि पर्याय है पर लौकिक व्यवहार मे उन्हे द्रव्य रूप से ही ग्रहण किया जाता है जैसे कि जन्म

से मरण पर्यन्त रहने वाला मनुष्य एक स्वतंत्र द्रव्य समझा जाता है, परन्तु जीव द्रव्य की पर्याय नही। इसी मनुष्य मे आगे पीछे दीखने वाली बालक युवा व वृद्ध रूप अवस्थायें अवश्य लौकिक दृष्टि स पर्याय रूप मे ग्रहण होती हैं। मनुष्य पर्याय से पहिले यह जीव किस पर्याय मे था और मृत्यु क पश्चात यह किस पर्याय मे चला गया यह प्रत्यक्ष न होंने के कारण उसे पदार्थ समझा जाता है। बालक युवा आदि अवस्थाओं का पूर्वोत्तार कालवर्ती पना स्पष्ट होने के कारण इन्हे पर्याय गिना जाता है। इसीलिये कहा जा सकता है कि व्यवहार नय की विषयभूत मनुष्य आदि पर्यायो मे व्यवहारिक दृष्टि से सामान्य व विशेष काल का अभाव है।

४ **शंका:**—संग्रह नय के विषय मे द्रव्यादि चतुष्टयगत भेद उत्पन्न करना व्यवहार नय का, और व्यवहार नय के भेदों को पुन: अद्वैत रूप से ग्रहण करना संग्रह नय का काम है। पुन. संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये उस अद्वैत पदार्थ मे अवान्तर भेद करना व्यवहार का और व्यवहार गत भेदों को पुन: अद्वैत रूप से ग्रहण करना संग्रह नय का काम है। इस प्रकार की व्याख्या मे अनवस्था का प्रतिभास होता है ?

उत्तर—ऐसा नही है, क्योकि जैसा कि पहिले बता दिया गया है कि इस भेद प्रभेद की सीमा वहा जाकर समाप्त हो जाती है जहां कि अन्तिम भेद प्राप्त हो जाये। अन्तिम भेद से तात्पर्य यहा द्रव्य क्षेत्र काल व भाव का वह अन्तिम खण्ड है जिसका कि पुन: छेद न किया जा सके। द्रव्य का अन्तिम भेद परमाणु है, क्षेत्र का अन्तिम भेद आदि मध्य अन्त रहित एक प्रदेश है, काल का

अन्तिम भेद सूक्ष्म समय है और भाव का अन्तिम भेद भेद गुणाश या अविभाग प्रतिच्छेद है ।

द्रव्यादि चतुष्टय के इन चारों अन्तिम भेद तक पदार्थ को विभाजित कर देने के पश्चात व्यवहार नय थक जाता है, और सग्रह नय भी, क्योकि अब इन अन्तिम भेदों को पृथक पृथक किसी अद्वैत तत्व के रूप मे ग्रहण करने को संग्रह नय के लिये कोई अवकाश नही रह गया है । जब तक सग्रह नय के द्वारा अद्वैत रूप में ग्रहण न कर लिया जाये तब तक व्यवहार नय द्वैत किस मे उत्पन्न करे । अत: इन पृथक पृथक परमाणु आदि अन्तिम भेदो मे भेद करने का व्यापार व्यवहार नय कर नही सकता ।

इन अन्तिम भेदों को सग्रह नय पृथक पृथक अवान्तर सत्ता रूप से क्यो ग्रहण नही कर लेता, इसका उत्तर यही है कि द्वैत होने पर ही अद्वैत की कल्पना हो सकती है । जिन भेदो मे द्वैत किया जाना ही असम्भव है, उन मे अद्वैत का ग्रहण भी असम्भव है ।

५ **शंका**–व्यवहार तो असत्यार्थ है । यह सर्व भेद प्रभेद तो भ्रम मात्र है । एक अद्वैत सत् ही कहना ठीक है। अत. इस व्यवहार नय की क्या आवश्यकता ?

उत्तर:–भाई तेरी शका ठीक है । पर यह तो विचार कि भेदो से सर्वथा निरपेक्ष वह अद्वैत सत् तुझे किमात्मक, कहा व कितने समय के लिये दिखाई देगा । अर्थात द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चतुष्टय से सर्वथा निरपेक्ष तो कोई वस्तु हो ही नही सकती । सत् के लक्षण मे भी तू इनका आश्रय लेकर ही उसे एक, व्यापक, नित्य व स्वलक्षणभूत तत्व कह रहा है । पहिला तो यही भेद चतुष्टय स्वय तुझे दिखाई दे रहा है । क्योंकि यहां एक कहने मे द्रव्य,

व्यापक कहने मे क्षेत्र, नित्य कहने मे काल और स्व-लक्षणभूत कहने मे भाव का ग्रहण निर्विवाद सिद्ध है। यह भी तो द्वैत का ही ग्रहण है।

दूसरी बात यह भी है कि यह जो इतना बडा पसारा दिखाई दे रहा है, भेद के सर्वथा अभाव मे उसे क्या समझेगा ? भले ही भ्रम मात्र कहकर अपना पिण्ड छुड़ाले पर यह पसारा तो सत्य ही रहेगा। भ्रम कहना तो जान बूझकर आंखों पर पट्टी बान्धना है। हा इस सब विचित्रता को किसी अपेक्षा विशेष से यदि भ्रम कहे तो तेरी बात अवश्य स्वीकारनीय हो सकती है, क्योंकि ये सब जड़ व चेतन या प्रकृति व पुरुष के सम्मेल प्राप्त होने वाले क्षणिक बाह्य रूप मात्र है, स्वय कोई नित्य स्वतंत्र सत्ताक नही है।

यह सर्व क्षणिक है। क्षणिक को या विनशने वाले रूप मात्र को सत् मान बैटना भ्रम ही तो है। परन्तु इस प्रकार इन रूपो को भ्रमात्मक तभी तो सिद्ध किया जा सकता है जब कि इनकी किसी अपेक्षा तो सत्ता स्वीकारी जाये। भले इन्हे क्षणिक सत्ता के रूप मे पहिचाने पर यह क्षण भर के लिये है तो अवश्य। सर्वथा न हो, सर्वथा भ्रम हो ऐसा तो नही है। जो दीखता है वह सर्वथा भ्रम नही हो सकता, हा उसके सम्बन्ध मे हमारी यह कल्पना, कि 'यह कोई सत्ताभूत टिकने वाला पदार्थ है', अवश्य असत्य व भ्रम है।

अनुभव सदा पर्याय या बाह्य मे दीखने वाले इन रूपो का ही हो सकना सम्भव है। उस पदार्थ का तो अनुभव या साक्षात तीन काल मे कभी भी होना सम्भव है नही, जिसके कि यह सब रूप है। जैसे कि पहिले बताया जा चुका है अनुभव सदा पर्याय का होता है द्रव्य व गुण का नही। जैसे कि यदि यह कहे कि जीव द्रव्य को देखो पर न तो संसारी को देखना और न मुक्त को, या पशु को देखो पर गाय घोडा आदि न कोई भी रूप न देखना, या स्वाद को चखो पर

खट्टा मीठा आदि न चखना तो बताओ तो सही कि क्या यह सम्भव हो सकेगा ? ऐसा होना असम्भव है। यही कारण है कि विशेषो या भेदो रहित सामान्य को गधे के सीग वत् असत् कहा गया है। विना विशेषो को स्वीकार किये या उनको भ्रम मात्र कहकर उनके प्रति आख मूद लेने से उस सामान्य सत् को कहा व कैसे खोज सकेगे ? इन रूपो मे ही तो वह सत् बैठा हुआ है। इनसे बाहर किसी दूसरे दिव्य देश मे उसका निवास हो ऐसा नही है। अत इन रूपो को भ्रम कहने पर वह सत् भी भ्रम मात्र होकर रह जायेगा। इस लिये उस सत् का ही साक्षात कराने के लिये उसके भेद रूप इन रूपों को दर्शाने वाले इस व्यवहार को स्वीकारना योग्य ही है।

दूसरे केवल सत् नाम के पदार्थ का तो लोक मे व्यवहार चल नही सकता जिसका व्यवहार ही नही चल सकता या जो वस्तु लोक मे कुछ काम ही नही आ सकती उसका वस्तु पना भी क्या ? अतः विना इन रूपों के व्यवहार को स्वीकारे वह सामान्य सत् अवस्तु हो जायेगा अर्थात् बिना व्यवहार के सत् भी अपनी सत्ता को सुरक्षित न रख सकेगा। इस लिये व्यवहार नय के विषय को यथा योग्य रूप से स्वीकारना ही चाहिये। स्याद्वाद मञ्जरी व राज वार्तिक मे यही कहा भी है।

स म ।२८।३११।२३ "व्यवहारस्त्वेवमाह। यथा लोक ग्राहमेव वस्तु अस्तु, किमनया अदृष्टाव्यवह्रियमाण वस्तु परिकल्पन् कष्टपिष्टिकया। यदेवच लोक व्यवहारपथमवतराति तस्यै वानुग्राहक प्रमाणमुपलभ्यते नेतरस्य। न हि सामान्य-मनादि निधनमेक सग्रहाभिमतं प्रमाणभूमिः तथानुभवा-भावात्। सर्वस्य सर्व दर्शित्वप्रसगाच्च। नापि विशेषाः परमाणुलक्षणाः ... लोकव्यापारोपयोगिनामेव वस्तुत्व ... तथा च वाचक मुख्यः (उमास्वामी), "लौकिक सम उपचारप्रायो विस्तृतार्थो व्यवहार "इति।

(अर्थ—"लोक मे ग्रहण की जाने वाली या नित्य ही जानने व देखने मे आने वाली ही वस्तु है" ऐसा व्यवहार का लक्षण है। अदृष्ट तथा व्यवहार मे न आने वाली वस्तु की कल्पना का कष्ट करने से क्या? जो द्रव्य लोक व्यवहार पथ पर चलते है उनको ही ग्रहण करने वाले प्रमाण की उपलब्धि होती है, इसके अतिरिक्त अन्य का प्रमाण ज्ञान कुछ नही है। एक कोई अनादि निधन, संग्रह नय के द्वारा स्वीकारा गया, 'सत्' प्रमाण भूमि को स्पर्श नही करता, क्योकि (रूपो रहित) ऐसे सत् के अनुभव का अभाव है। तथा यदि एक ही सत् स्वीकारा जायेगा, तब तो प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी रूप रंग आदि देख रहा है वह उस अद्वैत सत् को ही देख रहा है। सब ही सत् को देखने के कारण सर्व दर्शी बन बैठेगे, तब तो भगवान के केवल ज्ञान की या उसके सर्व दर्शी पने की क्या विचित्रता रही? परमाणु लक्षण वाला कोई सामान्य से पृथक विशेष हो ऐसा भी नही है। लोक व्यवहार मे आने वाली ही वस्तु होती है। 'वाचस्पति उमास्वामी' ने भी कहा है—

"लौकिक व्यवहार के अनुसार उपचरित अर्थ को बताने वाले विस्तृत अर्थ को व्यवहार कहते है।"

१४

ऋजुसूत्र नय

१. ऋजुसूत्र नय का सामान्य परिचय, २. ऋजुसूत्र नय सामान्य के लक्षण, ३. ऋजु-सूत्र नय के कारण व प्रयोजन, ४. ऋजुसूत्र नय के भेद प्रभेद व लक्षण, ५. ऋजुसूत्र नय सन्बन्धी शंकायें।

१ ऋजुसूत्र नय का सामान्य परिचय

वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है। अनेको भेदों या अंशो में अनुस्यूत या अनुगत एक अद्वैत भाव को सामान्य और उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण भेदो या अशों को विशेष कहते है। 'सत्' सामान्य तत्व है और अनेको जातियो व व्यक्तियो मे विभक्त द्रव्यात्मक भेद, क्षेत्रात्मक प्रदेश, कलात्मक पर्याय और भावात्मक गुण उसके विशेष है । इन विशेषों मे भी पुन: पृथक पृथक सामान्य विशेष कल्पना की जा सकती है। द्रव्य सामान्य तत्व है और मनुष्य तिर्यंचादि परमाणु पर्यन्त के भेद

उसके विशेष है। उस द्रव्य का अनन्त प्रदेशी अखण्ड देश सामान्य क्षेत्र है और असंख्यात संख्यात आदि एक प्रदेश पर्यन्त के भेद उसके विशेष है। उस द्रव्य की त्रिकाल स्थिति सामान्य काल है तथा असंख्यात व संख्यात वर्ष, मास, दिन आदि की स्थिति वाली स्थूल पर्यायों से एक समय प्रमाण स्थिति वाली पर्याय पर्यन्त के भेद उसके विशेष है। उस द्रव्य के ज्ञानादि गुण सामान्य भाव है, तथा उन गुणो के शक्ति अश या अविभाग प्रतिच्छेद उस के विशेष है।

इनमे से सामान्य को ग्रहण करने वाला नय द्रव्यार्थिक है और विशेष को ग्रहण करने वाला नय पर्यायार्थिक है। द्रव्यार्थिक मे भी दो विकल्प है शुद्ध व अशुद्ध या सग्रह व व्यवहार। इन दोनों नयों का युगल पूर्व कथित रूप मे उस सामान्य तत्व मे द्वैताद्वैत दर्शाता हुआ उसे उस अन्तिम विशेष पर्यन्त ले जाता है जिसमे कि आगे द्वैत किया जाना सम्भव न हो। जैसे कि द्रव्य का अन्तिम विशेष है जाति की कल्पना से रहित प्रत्येक व्यक्ति की पृथक सत्ता, क्षेत्र का अन्तिम विशेष है आदि मध्य अन्त रहित एक प्रदेश, काल का अन्तिम विशेष है एक सूक्ष्म समय प्रमाण स्थिति वाली सूक्ष्म पर्याय, और भाव का अन्तिम विशेष है गुण का एक अविभागी प्रतिच्छेद या शक्ति अश।

इन अन्तिम विशेषो मे किसी भी प्रकार द्वैत सम्भव नही होने के कारण इनकी अपनी अपनी पृथक पृथक सत्ता का सम्बन्ध किसी भी प्रकार से अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव से या उसके किसी भी विशेष से नही किया जा सकता। जहा द्वैत ही सम्भव नहीं वहा अद्वैत देखने का प्रश्न ही क्या ? इसलिये यद्यपि इस अन्तिम विशेष से पूर्व के सर्व विशेषो को अद्वैत रूप से सग्रह नय ग्रहण कर लिया करता था, जिसमे कि व्यवहार नय आगे आगे द्वैत करता जाता था, परन्तु इस अन्तिम विशेष को अब वह सग्रह नय अपना विषय नही बना सकता और इसलिये न ही व्यवहार नय का कुछ व्यापार उसमे शेष रह जाता है।

पूर्ण एकत्व गत ये विशेष या अंश ही पर्यायार्थिक नय के विषय है। उसे ही ऋजुसूत्र नय कहते हैं। अद्वैत मे तो द्वैत रहता है पर एकत्व मे अनेकत्व नही रहता। इसलिये अद्वैत ग्राही सग्रह के साथ तो द्वैत ग्राही व्यवहार नय रहता है, परन्तु एकत्व ग्राही ऋजुसूत्र नय के साथ अन्य कोई नही रहता। इसलिये यद्यपि द्रव्यार्थिक अर्थ नय के दो भेद हैं, परन्तु पर्यायार्थिक अर्थ नय एक ही है, इसके भेद नही है। सामान्य मे विशेष रहता है, पर विशेष मे अन्य विशेष नही। इसीलिये द्रव्यार्थिक नय का विषय द्वैत व अद्वैत है तथा पर्याया-र्थिक नय का विषय एकत्व है।

यद्यपि अद्वैत व एकत्व दोनो ही निर्विकल्प होते है परन्तु दोनो मे कुछ अन्तर है। अद्वैत मे द्वैत रहता है, परन्तु उसका विकल्प गौण कर दिया जाता है। जवकि एकत्व मे द्वैत किया ही नही जा सकता, अत. तहा उसे गौण करने का प्रश्न ही नही। अद्वैत की चरम सीमा पर जिस प्रकार संग्रह नय ग्राहक ब्रह्माद्वैतवादी बैठा है इसी प्रकार एकत्व की चरम सीमा पर ऋजुसूत्र नय ग्राहक बौद्ध बैठा है। दोनों ही निर्विकल्प व शुद्ध दृष्टि वाले है।

एकत्व ग्राहक ऋजुसूत्र का विषय दर्शाने के लिये उदाहरण देता हूँ। सर्व परमाणु पृथक पृथक स्वतंत्र द्रव्य है। उन सबका स्वरूप भी जुदा है, अर्थात एक का स्वरूप दूसरे से नही मिलता। वह पर-माणु आदि मध्य अन्त की कल्पना से अतीत एक प्रदेशी है। अनेक परमाणुओ का परस्पर मे स्पर्श ही सम्भव नही, फिर उनके द्वारा कोई अखण्ड स्कन्ध की कल्पना करना निरर्थक है। स्थूल दृष्टि मे दीखने वाले इन स्थूल पदार्थों मे भी सर्व परमाणु अपने स्वतंत्र सत्ता व भिन्न भिन्न स्वभावों मे ही स्थित है, भले ही स्थूल दृष्टि मे उनकी वह पृथकता दिखाई न दे। एक परमाणु का दूसरे परमाणु से द्रव्यात्मक क्षेत्रात्मक कालात्मक कि भावात्मक कोई भी सम्बन्ध नही है। वह

परमाणु केवल एक समय स्थायी है। एक समय के पश्चात उसका निरन्वय नाश हो जाता है, और दूसरा ही कोई परमाणु उत्पन्न होता है। इस प्रकार सत् का विनाश व असत् का उत्पाद होता है, अर्थात जो अव है वह नष्ट हो जाता है और जो नही है वह उत्पन्न हो जाता है। पहिले वाले से उस नवीन उत्पन्न होने वाले का कोई सम्वन्ध नही। रूप रस गन्ध आदि अनेक गुण परस्पर मे सयोग को प्राप्त नही हो सकते, अत. अनेक गुणो का कोई अखण्ड पिण्ड द्रव्य होता हो ऐसा नही है। वह परमाणु तो स्वलक्षणभूत किसी एक अवक्तव्य भाव स्वरूप ही है। इस प्रकार द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो मे एकत्व दर्शाना इस नय का विषय है। इस नय की दृष्टि मे जो बालक था वही वृद्ध नही हुआ है। बालक कोई और था जो विनिष्ट हो गया है और वृद्ध रूपेण कोई और ही उत्पन्न हुआ है। यही एकत्व का अर्थ है।

यद्यपि लौकिक दृष्टि मे यह बात वैठनी कुछ कठिन पड़ेगी, क्योकि उनकी दृष्टि व्यवहार नय प्रमुख रहती है, परन्तु कभी कभी इस एकत्व दृष्टि का भी प्रयोग होता हुआ देखा जाता है। जैसा कि स्वर्ण की भस्म बन जाने पर उसे स्वर्ण कहता हुआ कोई नही देखा जाता, तब तो वह स्वर्ण से विलक्षण कोई अन्य स्वभाव का धारी पदार्थ ही दृष्टि मे आता है। सूक्ष्म दृष्टि करने पर उपरोक्त बात की सत्यता स्वत सिद्ध हो जायेगी। यह अभिप्राय ऋजुसूत्र के अनेको लक्षणो पर से और अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

पर्याय शब्द का अर्थ यद्यपि काल मुखेन ग्रहण करने की रूढि प्रसिद्ध है, परन्तु वास्तव मे पर्याय शब्द का अर्थ अश है, वह द्रव्यात्मक हो या क्षेत्रात्मक हो, या कालात्मक हो या भावात्मक हो। इन चारो प्रकार के अशों का नाम ही पर्याय शब्द का वाच्य है, अतः पर्यायार्थिक ऋजुसूत्र नय इन चारो ही प्रकार के अशो या विशेषों की स्वतत्र सत्ता स्वीकार करता है।

अब ऋजुसूत्र नय के कुछ लक्षण करने मे आते है, जिन पर से

२ ऋजुसूत्र नय सामान्य के लक्षण

कि उपरोक्त कथन और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा। परन्तु उसे समझने के लिये दृष्टि को अत्यन्त सूक्ष्म करना होगा । चारों प्रकार से एकत्व दर्शाने के लिये यद्यपि इस नय के अनेको लक्षण किये जायेंगे, पर वास्तव मे वे सब ही ऊपर कथित एकत्व मे गर्भित हो जायेंगे ।

१ लक्षण न० १—ऋजु का शब्दार्थ सरल या सीधा है । जो सरल या सीधे अर्थको ग्रहण करे वह ऋजुसूत्र नय है, यह इसकी व्युत्पत्ति है । सरल का अर्थ यहा एकत्व ही है। पदार्थ मे द्रव्य गुण पर्यायादि की अपेक्षा भेदाभेद करने से बुद्धि चक्कर मे पड जाती है, अत द्रव्यार्थिक का विषय तो वक्र है । जो कोई भी एक है, वस वही वह है, अन्य के साथ उसका कोई नाता नही है, ऐसा जानना ही सरल व सीधा जानना है। अत इस लक्षण के द्वारा उसी एकत्व का ग्रहण होता है।

२ लक्षण न० २ —वस्तु के द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो अपेक्षाओ से अन्तिम विशेष की स्वतत्र सत्ता को स्वीकारने वाले इस नय की दृष्टि मे विशेषो मे अनुगत सामान्य नाम की कोई वस्तु नही क्योकि उन अन्तिम एकत्वगत विशेषो मे अन्य विशेष नही रहते ।

३ लक्षण न० ३:—द्रव्य की व्यक्ति ही सत्ताभूत है। दो व्यक्तियों मे किसी भी अपेक्षा समानता नही बन सकती, अत जाति नाम की लोक मे कोई वस्तु नही । दो पृथक पृथक पदार्थों का सयोग होना भी असम्भव है, और इसलिये अनेक परमाणुओं का एक स्कन्ध मानना दृष्टि का भ्रम है। तब जीव व शरीरादि के सयोग स्वरूप संसारी जीव को मानना तो कहा अवकाश पा सकता है । द्रव्य आदि मध्य अन्त रहित निरवयव ही होता है, क्योकि अवयव मानने पर तो उसमें द्वैत उत्पन्न किया जा सकता है ।

४ लक्षण न० ४:–एकत्व दृष्टि मे कर्ता-कर्म, कारण-कार्य, तथा आधार आधेय आदि किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नही देखा जा सकता क्योकि जहां एक प्रदेशी एक क्षणवर्ती व एक भावस्वरूप पदार्थ दृष्ट हो वहा किसे द्रव्य कहे, किसे गुण कहे व किसे पर्याय कहें, किसे क्षेत्र कहे, किसे काल कहे व किसे भाव कहे ? वह एक प्रदेश ही तो स्वयं द्रव्य है, अत: इस द्रव्य का यह क्षेत्र या प्रदेश है, ऐसा द्वैत कैसे किया जा सकता है ? क्योकि ऐसा भेद वहां ही सम्भव है जहा कि एक द्रव्य के अनेक प्रदेश हों। एक क्षण वर्ती वह वर्तमान रूप ही तो स्वय द्रव्य है, अत 'यह वर्तमान का रूप इस द्रव्य की पर्याय है' ऐसा भेद कैसे किया जा सकता है, क्योकि ऐसा भेद वहां ही सम्भव है जबकि उस द्रव्य मे उस वर्तमान रूप के अतिरिक्त उससे पहिले व पीछे वाले अन्य रूप भी देखे जाये। स्वलक्षण भूत जो एक भाव, उस स्वरूप ही तो वह द्रव्य स्वय है, अत 'यह गुण इस द्रव्य का है' ऐसा भेद कैसे किया जा सकता है, क्योंकि ऐसा भेद वहा ही सम्भव है जहां कि एक द्रव्य के आश्रित अनेको धर्म या भाव रहते हो।

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इन चारों अपेक्षाओ से जहा एकत्व दिखाई दे रहा है, वहा किसको कर्ता कहे और किसको कर्म, किसको कारण कहे और किसको कार्य, किसको आधार कहे और किसको आधेय ? पदार्थ स्वय एक क्षण स्थिति प्रमाण है, अत: उसकी पर्याय किसको कहेगे। द्रव्य व पर्याय का भेद तो उस द्रव्यार्थिक दृष्टि मे ही देखा जा सकता है, जहां कि द्रव्य त्रिकाल स्थायी है और उसके परिवर्तनशील रूप या अवस्थाये क्षणस्थायी है। परन्तु पर्यायार्थिक दृष्टि मे जहा द्रव्य ही स्वयं वर्तमान रूप स्वरूप है और वर्तमान रूप ही द्रव्य स्वरूप है उस क्षण के पश्चात न द्रव्य की सत्ता है और न रूप की तो वताइये पर्याय की कल्पना किस मे करे। पहिले भी कहा जा चुका है सामान्य मे विशेष रहता है पर विशेष मे अन्य

विशेष नही । अतः विशेष ग्राही दृष्टि मे द्रव्य व पर्याय ये दो बाते ही दिखाई नही दे सकती ।

पर्याय का नाम ही कर्म या कार्य है । पर्याय के अभाव मे किसी भी पदार्थ मे कर्म व कार्य भी कैसे देखा जा सकता है । कर्म ही नही तो कर्ता किसे कहे, क्योकि कर्ता स्वयं कर्म की अपेक्षा रखकर अपना प्रकाश करता है । कार्य ही नही तो कारण किसे कहें, क्योकि कारण स्वय कार्य की अपेक्षा रखकर अपना प्रकाश करता है ।

कर्ता–कर्म व कारण कार्य भाव का व्यवहार दो प्रकार से करने मे आता है–निमित्त नैमित्तिक द्वैत के रूप मे और उपादान उपादेय के रूप मे । निमित्त कर्ता या कारण पर पदार्थ को कहते है । और नैमित्तिक विवक्षित पदार्थ के कार्य या पर्याय को कहते हे । जहा व्यक्तिगत प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र व एक दूसरे से निर्पेक्ष है, तथा विवक्षित पदार्थ मे 'पर्याय' की कोई कल्पना भी नही है तहा निमित्तिक भाव कैसे घटित हो सकता है ? उपादान उपादेय भाव दो प्रकार से माना जाता है–त्रिकाली वह द्रव्य कर्ता या कारण है और उसकी विवक्षित समय की एक पर्याय कार्य है, तथा उसी द्रव्य की पूर्व समय वर्ती पर्याय कारण है और उत्तर समय वर्ती पर्याय कार्य है । जिस दृष्टि मे द्रव्य व पर्याय का भेद नही उसमे पहिले प्रकार से उपादान उपादेय भाव कैसे सम्भव हो सकता है । तथा जिस दृष्टि मे पूर्व और उत्तर समय वाला काल भेद नही, जिस दृष्टि मे पूर्व समय वर्ती पदार्थ सर्वथा विनष्ट हो चुका है और उत्तर समय मे कोई नया स्वतत्र पदार्थ ही उत्पन्न हुआ है, उसमे दूसरे प्रकार से भी उपादान उपादेय भाव कैसे सम्भव हो सकता है ? अत कर्ता–कर्म या कारण कार्य भाव रूप द्वैत को इस दृष्टि मे अवकाश नही । यहा कार्य नाम की ही कोई चीज नही है ।

इसी प्रकार आधार आधेय भाव मे प्रदेशात्मक द्रव्य को आधार कहते है और उसमे आश्रित अनेकों गुणों व धर्मों को उसके आधेय

कहते हैं। जहां द्रव्य का प्रदेश स्वयं भाव स्वरूप और भाव स्वयं द्रव्य प्रदेशस्वरूप है वहां यह आधार आधेय भाव रूप द्वैत भी सम्भव नही हो सकता। इसी प्रकार क्रियमान-कृत, भुज्यमान-भुक्त, बध्यामान-बाध्य, बन्ध्य-बन्धक, बध्य-घातक, दाह्य-दाहक, ग्राह्य-ग्राहक, वाच्य-वाचक आदि अन्य भी अनेकों द्वैत भाव इस एकत्व दृष्टि मे सम्भव नही।

५ लक्षण न. ५ –इसके अतिरिक्त निर्विशेष एकत्व मे द्रव्य-पर्याय द्रव्य-भाव, गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी, अश–अशी अंग-अंगी, विशेषण-विशेष्य, गौण-मुख्य आदि द्वैत भी स्थान नही पा सकते।

६ लक्षण न ६ –तात्पर्य यह कि इस सूक्ष्म निर्विशेष दृष्टि मे भेद सूचक अनेकता को किसी भी प्रकार अवकाश नही। द्रव्य की अपेक्षा भी एकता है। क्षेत्र की अपेक्षा भी एकता है, काल की अपेक्षा भी एकता है, और भाव की अपेक्षा भी यहा एकता है। किसी भी प्रकार अनेकता को यहां अवकाश नही।

७ लक्षण न. ७ –भूत व भविष्यत पर्यायो को छोड़ कर यह नय केवल वर्तमान की एक पर्याय को सत्स्वरूप अंगीकार करता है, क्योकि भूतकाल की पर्याय तो विनष्ट होने के कारण और भविष्यत की अभी अनुत्पन्न होने के कारण अभाव स्वरूप है। असत् अर्थ क्रियाकारी नही हो सकता, अत. उसको वस्तु भूत मानने से क्या लाभ ? वर्तमान पर्याय मात्र ही सत् है। इसीलिये कहना चाहिये कि जो चावल पक रहे है, वे वर्तमान मे पके हुए ही है, क्योकि कुछ अशो मे पाक विशेष वहा मौजूद है। इसका खुलासा आगे इसके उद्धरणो पर से हो जायेगा।

८ लक्षण न. ८ –दूसरी वात यह भी तो है कि एकत्व ग्राहक इस दृष्टिय मे दो पर्यायों को परस्पर मे मिलाकर कोई एक द्रव्य देखा भी

तो नही जा सकता है । अत पूर्वापर पर्यायो मे कोई सम्वन्ध नही । जो बालक है वह बालक ही है-बूढा नही, जो बूढा है वह बूढ़ा ही है बालक नहीं । बालक ही बूढी हुआ है, ऐसा कहना इस दृष्टि मे ठीक नही, क्योकि इससे द्वैत उत्पन्न करना पडता है, जो इस नयको सहन नही । निर्विशेष एक समय गत वस्तु मे अन्य पर्याय की सत्ता दीख भी कैसे सकती है । अत वर्तमान पर्याय मात्र ही क्षण स्थायी सत् है ।

९ लक्षण न ९ –जव आगे पीछे की पर्याय का कोई सम्वन्ध नही । तव किसी पदार्थ का नाम रखते समय भी यह विवेक रखना चाहिये कि नाम रखते समय वह जैसी दिखाई दे, वही नाम उसे उस समय दिया जाये । उत्तर क्षण मे उसका रूप वदल जाने पर वास्तव मे वह वस्तु ही नष्ट हो गई, तव उसे उस पहिले वाले नाम से ही पुकारते रहना क्या युक्त होगा ? राजा पद पर अभिषिक्त को ही राजा कहा जा सकता है, राज्य भ्रष्ट को युवराज को नही ।

नोट –इस प्रकार इस नय को विशद वनाने के लिये इसके ९ लक्षण किये गये । वास्तव मे इन लक्षणों मे एकत्व का प्रतिपादन किया है । इतनी वात अवश्य है कि किसी मे द्रव्यगत एकत्व का, किसी मे क्षेत्रगत एकत्व का, किसी मे भावगत एकत्व का दिग्दर्शन कराया गया है । इसका वे यह अर्थ नही कि ये सर्वलक्षण एक दूसरे से निरपेक्ष कोई स्वतत्र लक्षण है, अत. इन मे विरोध न देखना । कथन को सरल व सम्भव बनाने के लिये ही द्रव्यादि चतुष्टय को पृथक पृथकग्रहण करके लक्षण किये है, वास्तव से ऋजुसूत्र नय के प्रत्येक विपय मे ये सर्व ही लक्षण युगपत घटित होते है, क्योकि द्रव्यादि चतुष्टय विशेपो से सहित कोई एक प्रदेशी अखण्ड क्षणिक स्वलक्षण भूत तत्व ही इसका विपय है ।

यद्यपि दृष्टि की विचित्रता के कारण सम्भवत· यह सर्व कथन पहिले पहिल कुछ अटपटा सा लगे पर सूक्ष्म दृष्टि से जैसे सकेत

किया जाये वैसे ही देखने पर इसको समझने में कोई कठिनाई नही पड़ सकती । सुविधार्थ यहां उपरोक्त सर्व लक्षणों का संक्षेप मे संग्रह कर देना चाहिये ।

१. जो सरल व सीधे विषय को सूचित करे सो ऋजुसूत्र है।

२. सामान्य रहित केवल विशेष की स्वतत्र सत्ता स्वीकार करता है ।

३. द्रव्य की व्यक्ति गत विशेष सत्ता मे सयोगादि तथा भाव-गत विशेष सत्ता मे अनेक स्वभावता सम्भव नही ।

४. क्षण स्थायी विशेष एक सत्ता मे कर्ता-कर्म या कारण कार्य आदि भावो को अवकाश—नही ।

५. द्रव्यादि चतुष्टयात्मक एक अखण्ड निस्सामान्य सत्ता मे विशेषण-विशेष्य या गुण-गुणी आदि भेद सम्भव नही ।

६. सर्वथा एक अखण्ड विशेष के ग्रहण मे द्रव्य की या क्षेत्र या काल की या भाव की अनेकता सम्भव नही ।

७. भत व भविष्यत काल को छोड़कर वस्तु के जन्म से मरण पर्यन्त की वर्तमान पर्याय मात्र की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार करता है ।

८. एक पर्याय मात्र की सत्ता मे पूर्वोपर पर्यायो मे सम्बन्ध स्थापित करना कैसे सम्भव हो सकता है।

९. पदार्थ को नाम भी वर्तमान पर्याय के अनुसार ही दिया जाना चाहिये ।।

इस प्रकार जन्म से मरण पर्यन्त स्थायी निरवयव स्वसंस्थान तथा स्वलक्षणभूत एक स्वभाव स्वरूप कोई सामान्य रहित विशेष जड़ या चेतन व्यक्ति ही स्वतंत्र रूपेण सत् है। यह उक्त लक्षणों का सार है। अब इन सर्व लक्षणों की पुष्टि व विशदता के अर्थ कुछ आगमोक्त वाक्य उद्धृत करता हूं।

१ लक्षण नं० १ (व्युत्पत्ति):-

१ स. सि ।१।३३।५११ "ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयतेति ऋजुसूत्र.।"

अर्थ—सीधे और सरल विषय को सूत्रित करता है, स्वीकार करता है, ऐसा ऋजुसूत्र नय है।

(रा॰ व ।१।३३।७।९६)

२ आ. प. ।१६।पृ. १२५ "ऋजु प्राजल सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः।"

अर्थ—जो सरलता पूर्वक पदार्थों को ग्रहण करे सो ऋजुसूत्र है।

३. ध ।१।पृ ८६।४ "ऋजु प्रगुण सूत्रयति सूच्यतीति तत्सिद्धेः।"

अर्थ—सीधे व सरल विषय को सूत्रित व सूचित करता है, ऐसा ऋजुसूत्र नय है।

(क. पा.।१।द १८५।२२३।२)

२. लक्षण नं २ (सामान्य रहित विशेष ग्राहक).-

१ श्लो. वा ।१।२।१६।१५ "सामान्य द्रव्य से रहित कोरा विशेष भी ऋजुसूत्र से कल्पित किया जाता है।"

२ ध ।१३।१९९।६ "तस्स विसए सारिच्छलक्खणसामाण्णा भावादो ।"

अर्थ–सादृश्य लक्षण सामान्य ऋजुसूत्र नय का विषय नही है।

३. क. पा ।१।ह २७८।३९४।४ "ण च सामाणमत्थि, विसेसेसु अणुगय अतुट्टसरूवसाण्णाग्नुवलंभादो ।"

अर्थः—इस नय की दृष्टि मे सामान्य है ही नही, क्योकि विशेषों मे अनुगत और जिसकी सन्तान नही टूटी है ऐसा नही पाया जाता ।

३ लक्षण नं ३ (द्रव्य की व्यक्तिगत सत्ता में संयोगादि का अभाव—

१. क. पा. ।१।ह १९३।२३०।२ नैकत्वमनापन्नयोस्तौ (सयोग समवायो वास्ति), अव्यवस्थापत्तेः ।ततः सजातीय विजातीय निर्मुक्ताः केवलाः परमाणव एव सन्तीति भ्रान्त स्तम्भादिस्कन्धप्रत्यय । नास्य नयस्य समानमस्ति, सर्वथा द्वयो समानत्वे एकत्वापत्तेः । न कंथचित्स-मानताऽपि, विरोधात् ।ते च परमाणवो. निरवयवाः, ऊर्ध्वाधोमध्यभागाद्यवयवेषु सत्सु अनवस्थापत्ते , परमाणो-र्वाऽपरमाणुत्व प्रसगात् ।"

अर्थ–सर्वथा भिन्न दो पदार्थो मे भी सयोग सम्बन्ध अथवा समवाय सम्बन्ध नही वन सकता, क्योकि सर्वथा भिन्न दो पदार्थो मे संयोग अथवा समवाय सम्बन्ध के मानने पर अव्यवस्था प्राप्त होती है । इसलिये सजातीय और विजातीय दोनो प्रकार की उपाधियो से रहित केवल शुद्ध परमाणु ही है, अतः जो स्तम्भादिरूप स्कन्धो का

प्रत्यय (प्रत्यक्ष) होता है वह ऋजुसूत्र नय की दृष्टि मे भ्रान्त है।

२ स म ।२८।३१३।४ "यदि एक स्वभाव· कथमनेकः अनेकश्चेत्कथमेकः एकानेकयो परस्परपरिहारेणाव-स्थानात्। तस्मात् स्वरूपनिमग्ना परमाणव एव परस्प-रोपसर्पणद्वारेण कथञ्चिन्निचयरूपतामापन्ना निखिलकार्येषु व्यापारभाज इति त एव स्वलक्षण न स्थूलता धारयत् पारमार्थिकमिति। एवमस्याभिप्रायेण यदेव स्वकीय तदेव वस्तु न परकीयम्, अनुपयोगित्वात्।"

अर्थ—एक और अनेक मे परस्पर विरोध होने से एक स्वभाव वाली वस्तु मे अनेक स्वभाव और अनेक स्वभाववाली वस्तु मे एक स्वभाव नही वन सकते। अतएव अपने स्वरूप मे स्थित परमाणु ही परस्पर के सयोग से कथाञ्चित समूह रूप होकर सम्पूर्ण कार्यों मे प्रवृत्त होते है। (अर्थात स्कन्धों मे भी प्रत्येक परमाणु स्वतत्र रहता हुआ ही निज कार्य मे प्रवृत्ति होता है।) इसलिय ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा स्थूल रूप को धारण न करने वाले स्व-रूप मे स्थित परमाणु ही यथार्थ मे सत् कहे जा सकते है। अतएव ऋजुसूत्र की अपेक्षा निजस्वरूप ही वस्तु है। परस्वरूप को अनुपयोगी होने के कारण वस्तु नही कह सकते।

४ लक्षण नं ४ (कर्ता कर्म आदि द्वैत निरास) –

१ रा वा. ।१।३३।७।९७।१२ "कुम्भकाराभाव. शिवकादिपर्याय करेण तदभिधानाभावात्। कुम्भपर्यायसमये च स्वावयवेभ्य एव निर्वृत्ते.।"

अर्थः—इस नय की दृष्टि मे कुम्भकार (अर्थात कर्ता) सज्ञा भी नही दी जा सकती है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि शिवक आदि पर्यायों को करने से उनके कर्ता को 'कुम्भकार' यह संज्ञा तो नही दी जा सकती, क्योकि कुम्भ से पहिले होने वाली शिविकादि पर्यायो मे कुम्भ पना नही पाया जाता। (अर्थात जिस समय शिवकादि की सत्ता थी तब तो कुम्भ उत्पन्न नही हुआ था और जब कुम्भ उत्पन्न हुआ है तब शिवकादि का अभाव हो गया है)।

(कोई यह कहे कि कुम्भ पर्याय को करते समय उसे कुम्भ कार कहा जा सकता है तो ऐसा भी नही है) कुम्भ पर्याय को करते समय भी कुम्भकार नही कह सकते,क्योकि कुम्भ पर्याय की उत्पत्ति तो अपने अवयवो से ही हुई है, कुम्भकार से नही।

(क. पा. ।१।१८६।२२५।१) (ध ।६।१७३।६)

२. ध।६।पृ. १७४।७ "न चास्य नयस्य सामानाधिकरण्यमप्यस्ति, एकस्य पर्यायेभ्य अनन्यत्वात्।"

अर्थ—इस नय की दृष्टि मे सामानाधिकरण्य (एक आधार में समान रूप से रहना) भी नही है, क्योकि, एक द्रव्य पर्यायो से भिन्न नही है।

पृ.३ ध ।६।प्. १७५।२ "कि चन विनाशोऽन्यतो जायते, तस्य जाति हेतुत्वात्।" न च भाव अभावस्य हेतु।"

अर्थः-इस नय की अपेक्षा विनाश किसी अन्य पदार्थ के निमित्त से नही होता, क्योकि उसका हेतु उत्पत्ति ही है। भाव (स्वयं) अभाव का हेतु नही हो सकता।

४ क. पा. ।१।ह १६०।२२६।८ "अस्य नयस्य निर्हेतुको विनाशः ।"
जातिरेव हि भावाना निरोधे हेतुरिष्यते ।
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत पश्चात् स केन व ।"

अर्थ --इस नय की दृष्टि से विनाश निर्हेतुक है, अर्थात उसका कोई कारण नही । "जन्म ही पदार्थ के विनाश में हेतु कहा गया है, क्योकि जो पदार्थ उत्पन्न होकर अन्तर क्षण मे नष्ट नही होता वह पश्चात् किससे नाश को प्राप्त हो सकता है । अर्थात जन्म से ही पदार्थ विनाश-स्वभाव है । उसके विनाश के लिये अन्य कारण की अपेक्षा नही पड़ती ।

५ क पा ।१।ह१६२।२१८।५ "उत्पादोऽपि निर्हेतुक । तद्यथा-नोत्पद्यमान उत्पादयति, द्वितीयक्षणे त्रिभुवनाभाव–प्रसगात् । नोत्पन्न उत्पादयति, क्षणिक पक्षक्षते । न विनष्ट उत्पादयति; अभावाद्भावोत्पत्ति विरोधात् । न पूर्वविनाशोत्तरोत्पादयो समानकालतापि कार्यकारणभाव समर्थिकम् ।" सस्कृत संक्षिप्त लिखी है पर भाषा अर्थ पूरा लिखा है ।)

अर्थः—इस नय की दृष्टि ने उत्पाद भी निर्हेतुक होता है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–जो वर्तमान समय मे उत्पन्न हो रहा है वह तो उत्पन्न करता नही है, क्योकि ऐसा मानने पर दूसरे क्षण मे तीनों लोकों के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है । अर्थात जो उत्पन्न हो रहा है वह यदि अपनी उत्पत्ति के प्रथम क्षण मे ही अपने कार्यभूत दूसरे क्षण को उत्पन्न करता है तो इसका मतलब यह हुआ कि दूसरा क्षण भी प्रथम क्षण मे ही उत्पन्न हो जायेगा । इसी प्रकार द्वितीय क्षण भी अपने कार्य भूत तृतीय क्षण

को उसी प्रथम क्षण मे उत्पन्न कर देगा। इसी प्रकार आगे आगे के कार्यभूत समस्त क्षण मे ही उत्पन्न हो जायेगा और दूसरे क्षण मे नष्ट हो जायेगे। इस प्रकार दूसरे क्षण मे तीनों लोकों के समस्त पदार्थों के विनाश का प्रसग प्राप्त होगा। जो उत्पन्न हो चुका है। वह उत्पन्न करता है, ऐसा कहना भी नही बनता है, क्योंकि ऐसा मानने पर क्षणिक पक्ष का विनाश प्राप्त होता है। अर्थात पदार्थ पहिले ही क्षण मे तो उत्पन्न ही होता है, अतः वह दूसरे क्षण मे कार्य को करेगा, और इसलिये उसे कम से कम दो क्षण तो ठहरना ही होगा। किन्तु वस्तु को दो क्षणवर्ती मानने से ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से अभिमत क्षणिकवाद नही बन सकता। तथा जो नाश को प्राप्त हो गया है वह उत्पन्न करता है, यह कहना भी ठीक नही है, क्योंकि अभाव से भाव की उत्पत्ति मानने मे विरोध आता है। तथा पूर्व क्षण का विनाश और उत्तर क्षण का उत्पाद इन दोनों मे कार्य कारण भाव की समर्थन करनेवाली समानकालता भी नही पाई जाती है।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-अतीत पदार्थ के अभाव से तो नवीन पदार्थ उत्पन्न होता नही है, क्योंकि भाव और अभाव इन दोनों मे कार्यकारण भाव मानने मे विरोध आता है। अतीत अर्थ के सद्भाव से नवीन पदार्थ का उत्पाद होता है, यह कहना भी ठीक नही है, क्योंकि ऐसा मानने पर अतीत पदार्थ के सद्भाव रूप काल मे ही नवीन पदार्थ की उत्पत्ति का प्रसग प्राप्त होता है। दूसरे चूकि पूर्व क्षण की सत्ता अपनी सन्तान मे होने वाले उत्तर अर्थक्षण की सत्ता की विरोधिनी

है, इसलिये पूर्वक्षण की सत्ता उत्तर क्षण की सत्ता की उत्पादक नही हो सकती है, क्योंकि विरुद्ध दो (स्वतत्र) सत्ताओं मे परस्पर उत्पाद्य उत्पादक भाव के मानने मे विरोध आता है। अतएव ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से उत्पाद भी निर्हेतुक होता है, यह सिद्ध हो जाता है। (इसी बात को निम्न उदाहरण पर से पड़ने का प्रयत्न करे।)

६ ध. ।६।६।१७५।८ "कि चन पलालो दह्यते, पलालाग्नि सम्बन्धसमनन्तरमेव पलालस्य नैरात्म्यानुपलम्भात्। न द्वितीयादि क्षणेषु पलालस्य नैरात्मयकृदग्निसम्वन्ध, तस्य तत्कार्यत्वप्रसगात्।" (यद्यपि सस्कृत सक्षिप्त ही उद्धृत की है पर इसका भाषार्थ पूरा है।)

(रा वा ।१।३३।७।९७।२६)

अर्थ—इस नय की दृष्टि मे पलालका दाह नही होता, क्योंकि पलाल और अग्नि के सम्बन्ध के अनन्तर ही पलाल की निरात्मता अर्थात शून्यता नही पाई जाती। द्वितीयादि क्षणो मे पलालकी निरात्मता को करने वाला अग्नि का सम्बन्ध नही है, क्योंकि उसके होने पर पलाल की निरात्मता को उसके कार्य होने का प्रसग आवेगा। (अर्थात जिस समय पलाल व अग्नि का सयोग है तब तो पलाल ही जलकर भस्म नही बनी है,और जब भस्म है उस समय अग्नि नही रही है।)

पलाल अवयवी का दाह नही होता, क्योंकि अवयवी की (इस दृष्टि मे) सत्ता ही नही है। न अवयव जलते है, क्योंकि स्वय निरवयव होने से उनका भी असत्व है। यदि कहा जाय कि पलालकी उत्पत्तिक्षण मे ही अग्नि

का सम्बन्ध हो जाता है, अत॰ वह जल सकता है, सो यह भी ठीक नहीं है, क्योकि ऐसा मानने पर अग्नि का सम्बन्ध होने से वह उत्पन्न ही न हो सकेगा। इसलिये यदि उत्पत्ति के उत्तर क्षण में अग्नि का सम्बन्ध स्वीकार किया जाये तो यह भी सम्भव नही, क्योकि उत्पत्ति के द्वितीय क्षण मे पलालकी सत्ता नष्ट हो जाने से असत्ता के साथ अग्नि के सम्बन्ध का विरोध है। दूसरे जो पलाल है वह नही जलता है, क्योंकि उसमें अग्नि सम्बन्ध जनित अतिशयान्तर का अभाव है। अथवा यदि अतिशयान्तर है भी तो वह पलाल को प्राप्त नही है, क्योंकि उसका स्वरूप पलाल से भिन्न है।

७. क. पा. ।१।१९१।२२८।३ "ततोऽस्य नयस्य **न** बन्ध्य बन्धक-बध्यघातक-दाह्यदाहक-संसारादय. सन्ति"।

अर्थ——इस नय से बन्ध्य बन्धक, बध्य घातक, दाह्य दाहक इस प्रकार के द्वैत भाव अभाव ससार मोक्ष आदि भाव सम्भव नही है।

५ लक्षण नं० ५ (विशेषण विशेष्य द्वैत का अभाव)—

१. ध. ।९ १७४।१ "न कृष्ण: काकोऽस्य नयस्य। कथम् ? य: कृष्ण: कृष्णात्मकमैव, न काकात्मक:, भ्रमरादीनामपि काकताप्रसगात् काकश्च काकात्मको, न कृष्णात्मको, शुल्क काकाभावप्रसंगात्, तत्पित्ता स्थिरुधिरादीनामपि कार्ष्णय प्रसंगात्। ततोऽत्र न विशेषणविशेष्यभाव इति सिद्धम्।"

(क. पा. ।१। १८८।२२६।२) (रा. वा. ।१।३३।७।९७)

अर्थ—कृष्णकाक इस नय का विशेष नही है। कारण कि जो कृष्ण है वह कृष्णात्मक ही है, काक स्वरूप नही है, क्योकि ऐसा मानने पर भ्रमरादिकों के भी काक होने का प्रसंग आवेगा। इसी प्रकार काक भी काकात्मक ही है, कृष्णात्मक नही है, क्योंकि, ऐसा मानने पर सफेद काक के अभाव का प्रसंग आवेगा, तथा उसके पित्त (शरीरस्थ धातु विशेष हड्डी) व रुधिर आदि के भी कृष्णता का प्रसंग आवेगा। इसलिये इस नय की दृष्टि मे विशेषण विशेष्यभाव नही है, यह सिद्ध हुआ।

२. क पा ।१। १६३ । २२६ ।६ "नास्य विशेषणविशेष्य भावोऽपि। तद्यथा–न स तावद्भिन्नयो. अव्यवस्थापन्ते। नाभिन्नयोः, एकस्मिस्ताद्विरोधात्। नाभिन्नयोरस्य नयस्य संयोग समवायो वास्ति, सर्वथैकत्वमापन्नयो परित्यक्त स्वरूपयोस्तद्विरोधात्।"

अर्थ—इस नय की दृष्टि से विशेषण विशेष्य भाव भी नही बनता है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–भिन्न दो पदार्थो मे तो विशेपण विशेष्य भाव बन नही सकता है, क्योकि भिन्न दो पदार्थों मे विशेषणविशेष्य भाव के मानने पर अव्यवस्था की आपत्ति प्राप्त होती है। अर्थात जिन किन्ही भी दो पदार्थो मे (वह विवक्षित) विशेषण विशेष्य भाव हो जायेगा उसी प्रकार अभिन्न दो पदार्थों मे भी विशेषणविशेष्य भाव नही बन सकता है, क्योकि अभिन्न दो पदार्थों का अर्थ एक पदार्थ ही होता है, और एक पदार्थ मे विशेषण विशेष्यभाव (रूप द्वैत) के मानने मे विरोध आता है।

तथा इस नय की दृप्टि मे सर्वथा अभिन्न दो पदार्थों मे सयोग सम्वन्ध अथवा समवाय सम्बन्ध भी

नहीं बनता है, क्योंकि जो सर्वथा एकत्व को प्राप्त हो गये हैं और इसलिये जिन्होंने अपने (स्वतंत्र) स्वरूप को छोड़ दिया है, ऐसे दो पदार्थों मे सयोग सम्बन्ध अथवा समवाय सम्बन्ध मानने मे विरोध आता है ।

९. क. पा. १। १९५-१९६ ।२३०।८ "नास्य नयस्य ग्राह्य ग्राहक-भावोऽस्ति ।.....न सम्वन्ध· तस्यातीतत्वात् ।... ..नास्य शुद्धस्य (नयस्य) वाच्यवाचकभावोऽप्यस्ति ।"

अर्थ—उपरोक्त ही प्रकार इस नय से ग्राह्यग्राहक भाव भी सिद्ध नही हो सकता, क्योंकि कोई भी सम्बन्ध होने के क्षण मे तो कार्य नही होता और उत्तर क्षण मे कार्य होने पर वह सम्बन्ध वाला क्षण बीत चुकता है। इसी प्रकार इस शुद्ध नय मे वाच्य वाचक भाव भी नही माना जा सकता ।

१०. स० म० । २८।३१३ । ७ "एवमस्याभिप्रायेण यदेव स्वकीयम् तदेव वस्तु, न. परकीयमनुपयोगित्वात् ।"

अर्थ—इस नय के अभिप्राय से जो स्वकीय है वही वस्तु है, परकीय नही; क्योकि वह दूसरी वस्तु के लिये अनुपयोगी है, अर्थात उसके लिये कोई भी अन्य सहायक या निमित्त नही हो सकता ।

६ लक्षण नं ६ (अनेकता का निरास) –

१. क पा. १।२७७।३१३ ।५ "एगउवजोगस्स अणेगेसु दव्वेसु अक्कमेण उत्तिविरोहादो । अविरोहो वा ण सो एक्को उवजोगो; अणेगेसु अत्थेसु अक्कमेण वट्टमाणस्स एयन्त विरोहादो । ण च एयस्स जीवस्य अक्कमेण अणेया उवजोगा सभवति; विरुद्धधम्मज्झासेण जीववहुत्वपसंगादो ।"

अर्थ—इस नय की अपेक्षा एक उपयोग की एक साथ अनेक द्रव्यो मे प्रवृत्ति मानने मे विरोध आता है।

यदि कहा जाय कि एक साथ एक उपयोग अनेक द्रव्यों मे प्रवृत्ति कर सकता है, इसमे कोई विरोध नही है, सो भी कहना ठीक नही है, क्योकि ऐसा मानने पर इस नय की अपेक्षा वह एक उपयोग नही हो सकता है, क्योकि जो एक साथ अनेक अर्थों मे रहता है, उसे एक मानने मे विरोध आता है।

यदि कहा जाय कि एक जीव के एक साथ अनेक उपयोग सम्भव हैं, सो भी कहना ठीक नही है, क्योकि विरुद्ध अनेक धर्मो का आधार हो जाने से उस एक जीव को जीवबहुत्व का प्रसग आता है। अर्थात परस्पर मे विरुद्ध अनेक अर्थो को विषय करने वाले अनेक उपयोग एक जीव मे एक साथ मानने से वह जीव एक नही रह सकता है, उसे अनेकत्व का प्रसग प्राप्त होता है।

क्रमशः क. पा. । १ ।१७८ ।३१५ "किमट्ठमेग चेव णाणमुप्पज्जइ, एगसत्तिसहियएयमणत्तादो । एवं संते बहुअवग्गहस्स अभावो होदि चे, सच्च; उजुसुदेसु बहुँ अवग्गहो णात्थित्ति, एयसत्तिसहियएयमणुब्बभुगमादो । अणेयसत्ति सहियमणदव्वब्भुवगमे पुण अत्थि बहुअवग्गहो, तत्थ विरोहाभावादो ।"

अर्थः—**शंकाः**—एक काल में एक ही ज्ञान क्यो उत्पन्न होता है ?

उत्तरः—क्योंकि एक क्षण मे एक शक्ति से युक्त एक ही मन पाया जाता है (अगले क्षण मे उत्पन्न होने वाला मन दूसरा

ही होगा) । इसलिये एक क्षण मे एक ही ज्ञान उत्पन्न होता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो बहु अवग्रह (नाम के मतिज्ञान) का अभाव प्राप्त होता है ?

उत्तर:—यह कहना ठीक है, कि ऋजुसूत्र नयो मे बहु अवग्रह नही पाया जाता है, क्योकि इस नय की दृष्टि से एक क्षण मे एक शक्ति से युक्त एक मन स्वीकार किया गया है। यदि अनेक शक्तियों से युक्त मन को स्वीकार कर लिया जाय तो बहु अवग्रह बन सकता है, क्योकि वहां उसके मानने मे विरोध नही आता है। (परन्तु ऋजुसूत्र की एकत्व दृष्टि मे ऐसा मानना सम्भव नही है। वह द्रव्यार्थिक व्यवहार दृष्टि मे ही सम्भव है।)

२ ध ।१२।३००।१० "सव्वं पि वत्थु एगसखाविसिट्ठं, अण्णहा तस्साभावाप्पसंगादो । ण च एगत्तपडिग्गहिए वत्थुम्हि दुब्भावादीण सभवो अत्थि, सीदुण्हाण व तेसु सहाणव- ट्ठाणलक्खणविरोहदसणादो । ण च एगत्ताविसिट्ठ वत्थु अत्थि जेण अणेगत्तास्स तदाहारो होज्ज। एक्कम्हि खं- भम्मि मूलग्ग मज्झभेएण अणेयत्तं दिस्सदि त्तिभणिदे ण तत्थएयत मोतूण अणेयत्तस्य अणुवलभादो ।ण ताव थभगयमणेयत्तं, तत्थ एयत्तुवलभादो। ण मूलगयमग्गणयं मज्झगय वा, तत्थ वि एयत्तमोत्तूण अणेयत्ताणुवलं- भादो । ण तिण्णमेगेगवत्थूण समूहो अणेयत्तस्स आहारो, तव्वदिरेगेण तस्समूहाणुवलभादो । तम्हा णत्थि वहुत्तं । तेणेव कारणेण ण चेत्थ बहवयण पि।"

अर्थ:—सभी वस्तु एक संख्या से सहित है, क्योकि इसके विना उसके अभाव का प्रसग आता है । एकत्व को स्वीकार करने

वाली वस्तु मे द्वित्वादि की सम्भावना भी नही है, क्योंकि शीत व उष्ण के समान सहानवस्थान रूप विरोध देखा जाता है। इसके अतिरिक्त एकत्व से रहित वस्तु है भी नही, जिससे कि वह अनेकत्व का आधार हो सके।

शंका—एक खम्भे मे मूल अग्र एवं मध्य के भेद से अनेकता देखी जाती है ?

उत्तर—नही; क्योंकि, उसमे एकत्व को छोड़कर अनेकत्व पाया नही जाता। कारण कि स्तम्भ मे तो अनेकत्व की सम्भावना है ही नही, क्योकि उसमे एकता पाई जाती है। मूलगत अग्रगत अथवा मध्यगत अनेकता भी सम्भव नही है, क्योकि उनमे भी एकत्व को छोड़कर अनेकता नही पाई जाती। यदि कहा जाय कि तीन एक एक (आदि मध्य व मूल) वस्तुओं का समूह अनेकता का आधार है, सो यह कहना भी ठीक नही है, क्योकि उससे भिन्न उनका समूह पाया नही जाता। इस कारण इन (ऋजुसूत्र आदि पर्यायार्थिक) नयों कि अपेक्षा बहुत्व सम्भव नही है। इसी लिये बहुवचन भी नही है।

३ ध०। ६।२६६।१ "उजुसुदे किमिदि अणेयसखा णत्थि। एयसद्दस्स एयपमाणस्स य एगत्थं मोत्तूण अणेगत्थेसु एक्ककाले पवुत्तिविरोहादो। ण च सद्द पमाणाणि बहु सत्तिजुत्ताणि अत्थि, एक्कम्हि विरुद्धाणेयसत्तीणं सभवविरोहादो एयसंखं मोत्तूण अणेय सखाभावादो वा।"

अर्थ— **शंका**—ऋजुसूत्र नय मे अनेक सख्या क्यों नही सम्भव है ?

उत्तर—चूंकि इस नय की अपेक्षा एक शब्द और एक प्रमाण की एक अर्थ को छोड़कर अनेक अर्थों में एक काल मे प्रवृत्ति का विरोध है, अतः उसमें अनेक संख्या सम्भव नही है। और शब्द व प्रमाण बहुत शक्तियों से युक्त है नही, क्योंकि एक मे विरुद्ध अनेक शक्तियों के होने का विरोध है; अथवा एक सख्या को छोड़कर अनेक संख्याओं का वहां (उस दृष्टि मे) अभाव है।

७. लक्षण नं० ७ (वर्तमान मात्र ग्राही) :—

१. स. सि १।३३।५१३ "पूर्वान्परास्त्रिकाल विषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयानादन्ते, अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च वर्तमानं समयमात्रम् यद्विषय पर्यायमात्रग्राह्यमयमृजुसूत्र· ।"

(रा. वा. ।१।३३ ।७ ६६) (रा. वा. ।४ ।४२ ।१७ ।२६१ ।५)
(ध ।६ ।१७१ ।७)

अर्थ—यह नय पहिले व पश्चात् होने वाले तीनों कालों के विपयो को ग्रहण न करके वर्तमान काल के विषयभूत पदार्थों को ग्रहण करता है, क्योंकि अतीत के विनष्ट और अनागत के उत्पन्न न होने से उनमे व्यवहार नही हो सकता। वह वर्तमानकाल एक समय मात्र है और उसके विषयभूत पर्याय मात्र को विषय करने वाला यह ऋजुसूत्र नय है।

२ का अ,।२७४ "यः वर्तमानकाले अर्थपर्यायपरिणतमर्थम् । सन्त साधयति सर्वं तदपि नय ऋजुसूत्रनयः जानीहि ।२७४।"

अर्थ—जो वर्तमान काल मे एक समयवर्ती अर्थपर्याय मात्र से परिणत द्रव्य को ही सब कुछ मानता है उसको ऋजुसूत्र नय जानो ।

३. न. दी. ।३।८५।१२८ "ऋजुसूत्रनयस्तु परमपर्यायार्थिक। स हि भूतत्वभविष्यत्वाभ्यामपरापृष्टं शुद्धं वर्तमानकालावच्छिन्नवस्तुस्वरूप परामृशति । तन्नयाभिप्रायेण बौद्धमताभिमतक्षणिकत्वसिद्धि ।"

अर्थ—ऋजुसूत्र नय परम पर्यायार्थिक है। वह भूत व भविष्यत दोनो से अस्पृष्ट शुद्ध वर्तमान काल मात्र मे दीखने वाले वस्तु स्वरूप को परामर्श करता है। उसके अभिप्राय से बौद्धमत मान्य क्षणिकत्व की सिद्धि होती है।

४ स. म. ।२८।३१२।२७ "ऋजुसूत्र पुनरिदं मन्यते। वर्तमानक्षणविवत्यव वस्तुरूपम्। नातीतमनागतं च। अतीतस्य विनष्टत्वाद् अनागतस्यालब्धात्मलाभत्वात् खरविषाणादिभ्योऽविशिष्यमाणतया सकलशक्तिविरहरूपत्वात् नार्थक्रियानिर्वर्तनक्षमत्वम् तद्भावाच्च न वस्तुत्वं। "यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत्" इति वचनात्। वर्तमानक्षणलिङ्गित पुनर्वस्तुरूपं समस्तार्थक्रियासु व्याप्रियत इति तदेव परमार्थिकम्।

अर्थ–वस्तु की अतीत और अनागत पर्यायों को छोड़कर वर्तमान क्षण की पर्यायों को (स्वतत्र सत्ता के रूप मे) जानना ऋजुसूत्र नय का विषय है। वस्तु की अतीत पर्याय नष्ट हो जाती है और अनागत पर्याय उत्पन्न नही होती, इसलिये अतीत और अनागत पर्याय खरविषाण की तरह सम्पूर्ण सामर्थ्य से रहित होकर कोई अर्थक्रिया नही कर सकती, इसलिये अवस्तु है। क्योंकि "अर्थक्रिया करने वाला ही वास्तव में सत् कहा जाता है" ऐसा आगम का वाक्य है, इसलिये वर्तमान क्षण मे विद्यमान वस्तु से ही

समस्त अर्थ क्रिया हो सकती है, इसलिये यथार्थ में वही सत् है।

नोट.—इस अभिप्राय का विशेष स्पष्टीकरण निम्न उद्धरण में प्ररूपित उदाहरण पर से भलीभांति हो सकता है।

५ ध. ।६।१७१।७ "अपूर्वास्त्रिकालविषयानतिशय वर्तमानकाल विषयमादत्ते यः स ऋजुसूत्रः। कोऽत्र वर्तमानकालः? आरम्भात्प्रभृत्या उपरमादेष वर्तमानकालः। एष चानेक-प्रकारः, अर्थ व्यन्जनपर्यायस्थितेरनेकविधत्वात्। तत्र तावच्छुद्धर्जु सूत्रविषयः प्रदर्श्यतेपच्यमान. पक्व। पक्वस्तु स्यातपच्यमान स्यादुपरतपाक इति। पच्यमान इति वर्तमानः पक्व इति अतीत., तयोरेकस्मिन्नवरोधो विरुद्ध इति चेन्न, पचनप्रारम्भप्रथमसमये पाकाशानिष्पत्तौ द्वितीयादिक्षणेषु प्रथम लक्षण इव पाकांशनिष्पत्त्यभावतः पाकस्य साकल्येनोत्पत्तारभावप्रसंगात्। एवं द्वितीयादि-क्षणेष्वापि पाकनिष्पत्तिर्वक्तव्या। ततः पच्यमान पक्व इति सिद्धम्, नान्यथा, समयस्य त्रैविध्यप्रसंगात्। स एवौदन। पक्व. स्यातपच्यमानः इति चोच्यते, सुविशद सुस्विन्नौदने पक्तुः पक्वाभिप्रायात्। तावन्मात्रक्रिया फलनिष्पत्त्युपरमोपेक्षया स एव पक्व ओदनः स्यादु-परतपाक इति कथ्यते। एवं क्रियमाणकृत-भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबद्ध-सिद्धयत् सिद्धादयो योज्याः। तथा यदैव धान्यानि मिमीते तदैव प्रस्थ, प्रतिप्ठान्त्यस्मिन्निति प्रस्थव्यपदेशात्।

(क पा. ।११८५।२३३।३), रा० वा० ।१।३३।७।९७।३),

अर्थ–जो तीनो काल विषयक अपूर्व पर्यायों को छोड़कर वर्तमान काल विषयक पर्याय को (पृथक स्वतंत्र सत्ता के रूप मे। ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र नय है।

शंका –यहा वर्तमान काल का क्या स्वरूप है ?

उत्तर —विवक्षित पर्याय के प्रारम्भकाल से लेकर उसका अन्त होने तक जो काल है वह वर्तमानकाल है । (जैसे जन्म से लेकर मरण पर्यन्त का काल मनुष्य का वर्तमान काल है । और इसी इतने काल स्थायी मनुष्य एक स्वतत्र पदार्थ है)।

अर्थ और व्यञ्जन पर्यायों की स्थिति के अनेक प्रकार होने से यह काल अनेक प्रकार का है । (अर्थ पर्याय का वर्तमान काल एक सूक्ष्म समय मात्र है, और स्थूल व्यञ्जन पर्याय का वर्तमान काल उन उन पर्यायो की हीनाधिक स्थिति प्रमाण है) उसमे पहिले (एक सूक्ष्म समय ग्राही) शुद्ध ऋजुसूत्र नय के विषय को दिखाते हैं—इस नय का विपय 'पच्यमानपक्व' है । पक्वका अर्थ कथाञ्चित पकनेवाला और कथाञ्चित पका हुआ है ।

शंका:—चूकि 'पच्यमान' यह पचन क्रिया के चालू रहने अर्थात वर्तमान काल को और 'पक्व' यह उसके पूर्ण होने अर्थात भूतकाल को सूचित करता है, अत: उन दोनो का एक मे रहना विरुद्ध है ।

उत्तर:—नही, क्योंकि, पचन क्रिया के प्रारम्भ होने के प्रथम समय मे पाकाश की सिद्धि न होने पर प्रथमक्षण के समान द्वितीयादि समयों में भी पाकाश की सिद्धि का अभाव होने से, पूर्णतया पाक की उत्पत्ति के अभाव का प्रसंग आवेगा । इसी प्रकार द्वितीयादि क्षणों मे भी पाक की उत्पत्ति कहना चाहिये । इसलिये पच्यमान ओदन कुछ पके हुए अंश की अपेक्षा पक्व है, यह सिद्ध होता है, क्योंकि, ऐसा न मानने से समय के तीन प्रकार मानने

का प्रसंग आवेगा । वही पका हुआ ओदन कथंचित 'पच्यमान' ऐसा कहा जाता है, क्योंकि, विशद रूप से पूर्णतया पके हुए ओदन में (जो अभी सिद्ध नही हुआ है) पाचक का 'पक्व' से अभिप्राय है । उतने मात्र अर्थात् कुछ ओदनाश में पचन क्रिया के फल की उत्पत्ति के विराम होने की अपेक्षा वही ओदन उपरतपाक अर्थात् कथंचित पका हुआ कहा जाता है ।

इसी प्रकार क्रियमाण कृत, भुज्यमान-भुक्त, बध्यमान-बद्ध और सिद्धयत्-सिद्ध इत्यादि ऋजुसूत्र नय के विषय जानना चाहिये ।

तथा जब धान्यों को मापता है तभी इस नय की दृष्टि मे प्रस्थ (अनाज नापने का पात्र विशेष) हो सकता है, क्योंकि, जिसमे धान्यादि स्थित रहते है उसे निरुक्ति के अनुसार प्रस्थ कहा जाता है ।

६. रा. वा. ।१।३३।७।१७।१६ "यमेवाकाशदेशमवगाढु ससर्थ आत्मपरिणामं वा तत्रेवास्य वसतिः ।"

(क पा ।१।१८७।२२६।१)

अर्थः–इस नय की दृष्टि से वह जितने आकाश देश को अवगाहन करने में समर्थ है, अर्थात् वह आकाश के जितने क्षेत्र को रोकता है, उतने मे ही उसका वास है । अथवा जिन अपने आत्म परिणामो मे वह स्थित है उन्ही में उसका वास है । (नगर ग्रामादि में कहना युक्त नही ।)

८. लक्षण नं० ८. (पूर्वा पर पर्यायों में सम्बन्ध का अभाव)–

१. ध।६।१७६।३ "न शुल्क कृष्णीभवति, उभयोर्भिन्नकालावस्थितत्वात् प्रत्युत्पन्नविषये निवृत्तपर्यायानाभिसम्बन्धात् । एवम् ऋजुसूत्रनयस्वरूपनिरूपणं कृतम् ।"

अर्थ–इस नय की अपेक्षा 'शुल्क कृष्ण होता है' ऐसा भी नही। कहा जा सकता, क्योंकि कृष्ण और शुल्क दोनो पर्यायें भिन्न काल में रहने वाली है, अतः उत्पन्न हुई कृष्ण पर्याय मे नष्ट हुई शुल्क पर्याय का सम्बन्ध नही हो सकता इस प्रकार ऋजुसूत्र नय के स्वरूप का निरूपण किया।

६ लक्षण नं ६ (वर्तमान पर्याय के अनुसार नाम देना) —

१ ध.।६।१७३।५ "यदैव धान्यानि मिमीते तदैव प्रस्थ', प्रतिष्ठन्त्यास्मिन्निति प्रस्थवयपदेशात्।"

(रा वा.।१।३३।७।६७।११)

अर्थ—जब धान्यो को मापता है तभी इस नय की दृष्टि मे प्रस्थ (अनाज मापने का पात्र विशेप) हो सकता है, क्योंकि जिसमे धान्यादि स्थिति रहते है, उसे निरूक्ति के अनुसार प्रस्थ कहा जाता है।

३ ऋजुसूत्र नय के कारण व प्रयोजन

यद्यपि इस प्रकार के एकत्व का ग्रहण कुछ अटपटासा प्रतीत होता है, और समस्त व्यवहार का लोप करता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से तत्व का निरीक्षण करने वाले के लिये न यह अटपटा है और न व्यवहार का लोप करने वाला। उस सूक्ष्म दृष्टि वाले का लक्ष्य लौकिक व्यवहार पर है ही नही, अत. वह व्यवहार उसकी दृष्टि मे भ्रम मात्र है। अटपटा इसलिये नही दीखता कि उस प्रकार से देखने पर वस्तु वैसी ही दिखायी अवश्य देती है।

आप लोगो को भी यह बात तभी समझ मे आ सकेगी जब कि आप वस्तु के अविभागी द्रव्य क्षेत्र, काल व भाव स्वरूप चतुष्टय को लक्ष्य मे लेकर इसे समझने का प्रयत्न करेगे, अन्यथा तो आप

हसने के अतिरिक्त कुछ नही कर सकते, जब कि आपको ऐसी ऐसी बात सुनने मे आयेंगी, कि कौवा काला नही होता, पलाल कभी जलती नही, सफेद वस्तु ही रग कर काली नही हुई है, बालक ही बूढ़ा नही हुआ है इत्यादि ।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तत्व उस प्रकार का दिखाई देता है, यह तो इस नय की उत्पत्ति का कारण है, और वस्तु की सूक्ष्मता को दृष्टि मे रखकर निर्विकलपता की साधना करना इसका प्रयोजन है ।

४. ऋजुसूत्र नय के भेद प्रभेद व लक्षण

ऋजुसूत्र नय जैसा कि पहिले भलीभांति बताया जा चुका है, पर्यायार्थिक अर्थ नय है । पर्याय शब्द यद्यपि परिवर्तनशील क्षणिक अवस्थाओ मे ही रूढ है, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ अंश या वस्तु के विशेष है । वह विशेष चार प्रकार से जाने जाते है—द्रव्य के रूप मे, क्षेत्र के रूप में, काल के रूप में और भाव के रूप मे । द्रव्यात्मक विशेष का नाम द्रव्य की व्यक्ति है, क्षेत्रात्मक विशेष को उस द्रव्य के आकार जानो, कालात्मक विशेष का नाम पर्याय प्रसिद्ध है और भावात्मक विशेष को गुण या धर्म कहते है ।

कोई भी पदार्थ, वह स्थूल हो या सूक्ष्म इन चारों से समवेत होगा ही । ये चारों ही पृथक् पृथक् सामान्य व विशेष के रूप मे देखे जा सकते है । समस्त जातियों व व्यक्तियों से समवेत एक अखण्ड जीवतत्व सामान्य द्रव्य है और कोई भी व्यक्तिगत एक जीव विशेष द्रव्य है । लोक प्रमाण व्यापी उस सामान्य जीवतत्व का सामान्य क्षेत्र है, तथा उस व्यक्ति का अपना वर्तमान संस्थान उस जीव विशेष द्रव्य का विशेष क्षेत्र है । जीव द्रव्य सामान्य की लोक मे त्रिकाल सत्ता सामान्य जीव तत्व का सामान्य काल है और जन्म से मरण पर्यन्त उस व्यक्तिगत जीव की स्थिति उस विशेष जीव द्रव्य का विशेष काल है ।अनेक गुणों से समवेत कोई एक अखण्ड भाव जीव द्रव्य

अर्थ–इस नय की अपेक्षा 'शुल्क कृष्ण होता है' ऐसा भी नही। कहा जा सकता, क्योंकि कृष्ण और शुल्क दोनो पर्यायें भिन्न काल मे रहने वाली है, अतः उत्पन्न हुई कृष्ण पर्याय मे नष्ट हुई शुल्क पर्याय का सम्वन्ध नही हो सकता इस प्रकार ऋजुसूत्र नय के स्वरूप का निरूपण किया।

६ लक्षण नं ६ (वर्तमान पर्याय के अनुसार नाम देना) —

१ ध।९।१७३।५ "यदेव धान्यानि मिमीते तदेव प्रस्थ, प्रतिष्ठन्त्यास्मिन्निति प्रस्थवयपदेशात्।"

(रा वा.।१।३३।७।९७।११)

अर्थ––जब धान्यों को मापता है तभी इस नय की दृष्टि मे प्रस्थ (अनाज मापने का पात्र विशेप) हो सकता है, क्योंकि जिसमे धान्यादि स्थिति रहते है, उसे निरूक्ति के अनुसार प्रस्थ कहा जाता है।

३ ऋजुसूत्र नय के कारण व प्रयोजन

यद्यपि इस प्रकार के एकत्व का ग्रहण कुछ अटपटासा प्रतीत होता है, और समस्त व्यवहार का लोप करता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से तत्व का निरीक्षण करने वाले के लिये न यह अटपटा है और न व्यवहार का लोप करने वाला। उस सूक्ष्म दृष्टि वाले का लक्ष्य लौकिक व्यवहार पर है ही नही, अतः वह व्यवहार उसकी दृष्टि में भ्रम मात्र है। अटपटा इसलिये नही दीखता कि उस प्रकार से देखने पर वस्तु वैसी ही दिखायी अवश्य देती है।

आप लोगो को भी यह बात तभी समझ मे आ सकेगी जव कि आप वस्तु के अविभागी द्रव्य क्षेत्र काल व भाव स्वरूप चतुष्टय को लक्ष्य मे लेकर इसे समझने का प्रयत्न करेगे, अन्यथा तो आप

हंसने के अतिरिक्त कुछ नही कर सकते, जब कि आपको ऐसी ऐसी बात सुनने मे आयेगी, कि कौवा काला नही होता, पलाल कभी जलती नही, सफेद वस्तु ही रग कर काली नही हुई है, बालक ही बूढ़ा नही हुआ है इत्यादि ।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तत्व उस प्रकार का दिखाई देता है, यह तो इस नय की उत्पत्ति का कारण है, और वस्तु की सूक्ष्मता को दृष्टि मे रखकर निर्विकल्पता की साधना करना इसका प्रयोजन है ।

४ ऋजुसूत्र नय के भेद प्रभेद व लक्षण

ऋजुसूत्र नय जैसा कि पहिले भलीभांति बताया जा चुका है, पर्यायार्थिक अर्थ नय है । पर्याय शब्द यद्यपि परिवर्तनशील क्षणिक अवस्थाओं मे ही रूढ है, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ अंश या वस्तु के विशेष है । वह विशेष चार प्रकार से जाने जाते है—द्रव्य के रूप मे, क्षेत्र के रूप मे, काल के रूप मे और भाव के रूप मे । द्रव्यात्मक विशेष का नाम द्रव्य की व्यक्ति है, क्षेत्रात्मक विशेष को उस द्रव्य के आकार जानो, कालात्मक विशेष का नाम पर्याय प्रसिद्ध है और भावात्मक विशेष को गुण या धर्म कहते है ।

कोई भी पदार्थ, वह स्थूल हो या सूक्ष्म इन चारों से समवेत होगा ही । ये चारों ही पृथक् पृथक् सामान्य व विशेष के रूप मे देखे जा सकते हैं । समस्त जातियों व व्यक्तियो से समवेत एक अखण्ड जीवतत्व सामान्य द्रव्य है और कोई भी व्यक्तिगत एक जीव विशेष द्रव्य है । लोक प्रमाण व्यापी उस सामान्य जीवतत्व का सामान्य क्षेत्र है, तथा उस व्यक्ति का अपना वर्तमान संस्थान उस जीव विशेष द्रव्य का विशेष क्षेत्र है । जीव द्रव्य सामान्य की लोक मे त्रिकाल सत्ता सामान्य जीव तत्व का सामान्य काल है और जन्म से मरण पर्यन्त उस व्यक्तिगत जीव की स्थिति उस विशेष जीव द्रव्य का विशेप काल है ।अनेक गुणों से समवेत कोई एक अखण्ड भाव जीव द्रव्य

सामान्य का सामान्य भाव है और उस व्यक्तिगत जीव का कोई स्वलक्षण रूप एकभाव विशेष जीव द्रव्य का विशेष भाव है। यद्यपि पृथक पृथक कहे गये हैं पर वास्तव ये पृथक नहीं है, वल्कि इन चारो मई एक अखण्ड सत् है। तहा भी सामान्य चतुष्टय से समवेत सत् सामान्य कहलाता है और विशेष चतुष्टय से समवेत सत् विशेष कहलाता है।

ऋजुसूत्र नय इस विशेष सत्ता को विषय करता है। इसका सम्बन्ध किसी भी प्रकार से अन्य विशेष से नही मिलाता। यही इस का एकत्व है। एकत्व का यह अर्थ नही कि प्रदेश या काल व भाव से रहित केवल द्रव्य की या द्रव्य भाव से रहित केवल काल की या केवल क्षेत्र की स्वतत्र सत्ता स्वीकार करता हो, वल्कि यह है कि उस सत् के इस चतुष्टय मे अन्य द्वैत उत्पन्न न किया जा सके। चतुष्टय से रहित एकत्व तो खर्विषाण वत् है। इसी चतुष्टय से समवेत सामान्य सत् द्रव्यार्थिक नय का और विशेष सत् पर्यायार्थिक नय का विषय है। यद्यपि पर्यायार्थिक ऋजुसूत्र का कथन काल मुखेन करने में आता है, पर तहा अन्य तीन विशेष भी स्वत. समझ जाने चाहिये।

चूकि "हर प्रकार से अर्थात द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो से ही जो भेद को प्राप्त होवे वह पर्याय है" ऐसा पर्याय का लक्षण है।

यह विशेष भी दो प्रकार का होता है—सूक्ष्म व स्थूल। छद्मस्थ ज्ञान गम्य न हो वह सूक्ष्म है और छद्मस्थ ज्ञान गम्य हो वह स्थूल है। अथवा सर्वथा निर्विशेष हो अर्थात जिस मे किसी भी प्रकार अन्य विशेष न देखा जा सके वह सूक्ष्म है और जो यद्यपि स्थूल लौकिक दृष्टि से एक दिखाई देता हो पर सूक्ष्म दृष्टि से जिस मे अन्य विशेष देखे जा सके वह स्थूल है। परमाणु सूक्ष्म द्रव्य है, उसका निरवयव एक प्रदेश उसका सूक्ष्म क्षेत्र है, उसकी एक समय स्थित अर्थ पर्याय उसका सूक्ष्म काल है और एक अविभागी प्रतिच्छेद प्रमाण उसका स्वलक्षण

भूत स्वभाव उसका सूक्ष्म भाव है। इन चारों विशेषों से समवेत् वह द्रव्य सूक्ष्म सत् है । घट् या मनुष्य स्थूल द्रव्य है, उनका आकार या संस्थान उनका स्थूल क्षेत्र है, उनकी उत्पत्ति से विनाश पर्यन्त की एक स्थिति उनका स्थूल काल है, और उसका लाल रग अथवा इन्द्रिय ज्ञान उनका स्थूल भाव है । इन चारो स्थूल विशेषों से समवेत वह वह-पदार्थ स्थूल सत् है । इसी प्रकार अन्यत्र भी लागू कर लेना । यद्यपि अन्य विशेषों को धारण करने वाले ये स्थूल विशेष सामान्य की ही कोटि मे आ जाते हैं, परन्तु किसी प्रकार उनमे स्थूल एकत्र दिखाई देने के कारण उनको विशेष मान लेने मे कोई विरोध नही आता ।

काल मुखेन कथन करने पर सूक्ष्म विशेष का नाम अर्थ पर्याय है और स्थूल विशेष का नाम व्यञ्जन पर्याय है । विषय भेद से इस नय के भी दो भेद हो जाते है—सूक्ष्म ऋजुसूत्र व स्थूल ऋजुसूत्र । सूक्ष्म विशेष ही अन्य विशेषों से सर्वथा शून्य होने के कारण शुद्ध कहा जाता है, अत: सूक्ष्म ऋजुसूत्र का अपर नाम शुद्ध ऋजुसूत्र भी है । इसी प्रकार स्थूल विशेष अन्य सूक्ष्म विशेषों से समवेत रहने के कारण अशुद्ध कहे जाते हैं, अत: स्थूल ऋजुसूत्र का अपर नाम अशुद्ध ऋजुसूत्र है ।

अब इन भेदो के पृथक पृथक लक्षण देखिये ।

१. सूक्ष्म ऋजुसूत्र या शुद्ध ऋजुसूत्र नय —

उपरोक्त सूक्ष्म सत् की स्वतत्र सत्ता को विषय करने वाला सूक्ष्म या शुद्ध ऋजुसूत्र है । एक सुक्ष्म समय स्थायी, कोई एक निरवयव एक प्रदेशी, स्वलक्षणभूत स्वभाव स्वरूप, व्यक्ति की स्वतत्र सत्ता देखने वाली दृष्टि को सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय कहते है । यद्यपि द्रव्यादि चारों ही अपेक्षाओं से सूक्ष्म विशेपों का यहा ग्रहण होता है, परन्तु

सुविधा के लिये केवल काल गत विशेष के आधार पर ही लक्षण करने मे आता है, अर्थात एक समय स्थायी अर्थ पर्याय प्रमाण ही द्रव्य की सत्ता है, ऐसा इसका लक्षण करने मे आता है। तहा इसके अतिरिक्त शेष तीन विशेषो को भी यथा योग्य रूप मे स्वतः लागू करके ऋजुसूत्र सामान्य के लक्षण की भाति इसका विस्तार कर लेना। यहा द्रव्य की सम्पूर्ण सत्ता इतनी ही है।

अब इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ निम्न उद्धरण देखिये।

१. वृ च. व. ।२११ "य एक समयवर्तिनं ग्रहणाति द्रव्ये ध्रुवत्व-पर्यायम्। स ऋजुसूत्र. सूक्ष्म सर्वः शब्दो यथा क्षणिक. ।२११।"

अर्थः–जो द्रव्य मे एक समयवर्ती ध्रुवत्वपर्याय को अर्थात द्रव्य की केवल एक समय प्रमाण स्थिति को ग्रहण करता है वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र है, जैसे सर्व ही शब्द क्षणिक है ऐसा कहना।

२. नय चक्र गद्य ।पृ १७ "एकस्मिन्समये वस्तुपर्याय यस्तु पश्यति। ऋजुसूत्रे भवेत्सूक्ष्मः स्थूलो स्थूलार्थगोचर.।"

अर्थ—एक समय मे ही जो वस्तु की पर्याय को देखता है, अर्थात एक समय स्थिति प्रमाण ही वस्तु को समझता है वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय है।

३. आ. प. ६।पृ. ७६ "सूक्ष्मऋजुसूत्रो, यथा-एकसमयावस्थायी पर्याय.।"

अर्थ–सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय को ऐसा जानो जैसे एक समयवर्ती सूक्ष्म पर्याय।

४. ध ।६।२४४।१४ "तत्थ सुद्धो विसईकयअत्थपज्जाओ पडि-
क्खण विवट्टमाणासेसत्थो अप्पणो विसयादो ओसारिदसा-
रिच्छ-तब्भावलक्खणसमण्णो ।"

अर्थ—अर्थ पर्याय को विषय करने वाला शुद्ध ऋजुसूत्र नय प्रत्येक क्षण मे परियामन करनेवाले समस्त पपार्थो को विषय करता हुआ, अपने विषय से सादृश्य सामान्य और तद्भावरूप सामान्य को दूर करने वाला है ।

सूक्ष्म पर्याय प्रमाण सत्ता को ग्रहण करने के कारण इस नय का सूक्ष्म ऋजुसूत्र नाम सार्थक है । क्योंकि सूक्ष्म अर्थ पर्याय के एकत्व मे अन्य कोई भी पर्याय का किसी प्रकार भी सम्मेल सम्भव नही इसलिये इसे ही शुद्ध ऋजुसूत्र या परम पर्यायार्थिक नय भी कहते है । यह इस नय का कारण है ।

वर्तमान में जो मनुष्यादि पर्याय स्थूल दृष्टि से बदलती हुई दिखाई देती है वह वस्तुभूत नही है, क्योंकि स्वतत्र रूप से वह कोई पृथक एक पर्याय नही है, बल्कि अनेकों सूक्ष्म अर्थ पर्यायो का एक पिण्ड है । वस्तुभूत तो वह सूक्ष्म अर्थ पर्याय है जो दृष्टि मे नही आती, परन्तु इस स्थूअ पर्याय की कारण है । यह बताना इस नय का प्रयोजन है ।

२ स्थूल या अशुद्ध ऋजुसूत्र नय –

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, विशेष दो प्रकार के होते है—सूक्ष्म व स्थूल । कोई एकक्षण स्थायी निरवयव एक प्रदेशी स्व-लक्षणभूत एक स्वभाव स्वरूप परमाणु या जीव तो सूक्ष्म सत् है, क्योकि इसमे अन्य विशेष किसी प्रकार भी देखे नही जा सकते । अपनी उत्पत्ति से विनाश पर्यन्त दिन मास वर्षादि काल प्रमाण स्थायी, कुछ लम्बाई चौड़ाई मोटाई रूप एक अखण्ड संस्थान वाला,

तथा लाल रग अथवा इन्द्रिय ज्ञान रूप स्वरूप लक्षण भूत कोई एक स्वभाव स्वरूप घट, पट अथवा मनुष्यादि पदार्थ स्थूल सत् है। यद्यपि इन स्थूल सतों को विशेष कहने को जी नही करता क्योकि ये स्वय अन्य विशेषो से सहित दीखते है, जैसे कि जन्म से मरण पर्यन्त तक की मनुष्य की एक स्थिति मे बालक, युवा व वूढापे आदि के अथवा अत्यन्त सूक्ष्म क्षण वर्ती अर्थ पर्यायो के अनेकों अवान्तर विशेष पड़े है, उसके वर्तमान सस्थान में साक्षात सावयव पने व असख्यात प्रदेशीपने के विशेष दिखाई देते है उसके इन्द्रिय ज्ञान मे भी अवग्रह ईहा आदि के अथवा सूक्ष्म अर्थ पर्यायो के अनेको विषय प्रतीति मे आ रहे हैं । इसलिये इन अवान्तर विशेषो की अपेक्षा देखने पर तो वह सामान्य स्वरूप वाला दिखाई देता है, और इसलिये संग्रह नय का विषय बनाया जा सकता है, परन्तु सूक्ष्म विचारणाओं व तर्कणाओ को दवाकर यदि लौकिक व्यवहार दृष्टि से देखे तो ये सर्व विशेष ओझल हो जाते है ।

यदि जीव द्रव्य सामान्य को न देखे तो जन्म से मरण पर्यन्त का मनुष्य दो है या एक ? उसका आकार या सस्थान अनेक है कि एक ? उसकी ८० वर्ष प्रमाण स्थिति एक है कि अनेक ? उसका जानने का स्वभाव एक है कि अनेक ? इस प्रकार प्रश्न करने पर लौकिक जन 'एक' ऐसा ही उत्तर देते है । मनुष्य तो एक है ही, उसका सस्थान भी यद्यपि सावयव है परन्तु क्या वे अवयव पृथक पृथक रह कर सयोग को प्राप्त हुए है, या वह जैसा है वैसा अखण्ड है ? यदि अवयवो को पृथक पृथक माना जायेगा तो मनुष्य को अनेकता का प्रसग प्राप्त होगा अत उसका वह अखण्ड सस्थान एक ही है । उसकी स्थिति भी एक ही है, क्योकि उस मनुष्य का इस स्थिति से पहिले विनाश देखा नही जाता । उसका वह ज्ञान भी पूर्ण स्थिति काल पर्यन्त वह का वही रहता है । इसलिये द्रव्य से या क्षेत्र से या काल से या भाव से वह एक ही सिद्ध होता है । इस

प्रकार सर्व ही स्थूल विशेषों की एकता को ग्रहण करके उसकी सर्वथा स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करने वाला स्थूल ऋजुसूत्र है ।

वह पहिले भव मे देव था या तिर्यन्च अथवा मरण के पश्चात भी कुछ होगा यह प्रत्यक्ष न होने के कारण असिद्ध है, अतः वर्तमान मे जितना कुछ वह दृष्ट हो रहा है उतना ही सत् है । उसके अतिरिक्त भूत व भविष्यत की पर्यायो के साथ उसका कोई सम्बन्ध जोड़ा नही जा सकता । ऐसा स्थूल ऋजुसूत्रनय ग्रहण करता है । व्यञ्जन पर्याय की स्वतंत्र सत्ता इसका विषय है ।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगमोक्त लक्षण भी उद्धृत करता हूं ।

१ वृ. न च ।२१२ "मनुजादियपर्याय. मनुष्य इति स्वकस्थितिषु वर्तमानः । यो भणति तावत्कालं स स्थूलोभवति ऋजुसूत्र. ।२१२।"

अर्थ –अपनी अपनी स्थिति प्रमाण काल मे वर्तमान अर्थात जन्म से मरण पर्यन्त मनुष्यादि पर्यायो को जो उतने काल तक के लिये टिकने वाला एक स्वतत्र पदार्थ मानता है वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है ।

२. नय चक्र गद्य।पृ १४ "एकसस्मिन्समये वस्तुपर्याय यस्तु पश्यति ।
ऋजु सूत्रो भवेत् सूक्ष्मः, स्थूलो स्थूलार्थ गोचरः ।

अर्थ – एक समय मात्र काल मे प्रमाण स्थायी वस्तु की पर्याय को जो स्वतत्र सत्ता के रूप मे देखता है वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र है । इसी प्रकार वर्ष आदि स्थूल काल प्रमाण स्थायी वस्तु की पर्याय जो स्वतत्र सत्ता क रूप मे देखता है वह स्थूल ऋजुसूत्र है ।

३ आ. प ।६।पृ. ७६ "स्थूल ऋजुसूत्रो, यथा–मनुष्यादिपर्याया-स्तदायु प्रमाणकाल तिष्ठन्ति ।"

अर्थ—स्थूल ऋजुसूत्र नय ऐसा मानता है, जैसे कि मनुष्यादि पदार्थ स्व स्व आयु काल प्रमाण ही स्थित रहते हैं। पीछे उनका निरन्वय नाश हो जाता है।

४. ध. ।६।२२४। "असुद्धो उजुसुदणओ सो चक्खुपासियवे-जणयञ्जयविसओ । तेसिं कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्क-स्सेण छम्मासा सखेज्जा वासाणि वा । कुदो ? चाक्खिं-दियगेज्झ वेंजणपज्जायाणमप्पहाणी भूददव्वाणमेत्तियं कालमवट्ठाणुवलभादो ।"

अर्थ—अशुद्ध ऋजुसूत्र नय है वह चक्षु इन्द्रिय की विषयभूत व्यञ्जन पर्यायों को विषय करने वाला है। उन पर्यायों का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से छह मास अथवा संख्यात वर्ष है, क्योंकि, चक्षु इन्द्रिय से ग्राह्य व्यञ्जन पर्यायें, द्रव्य की प्रधानता से रहित होती, हुई इतने काल तक अवस्थित पाई जाती है।

स्थूल समय को विषय करने के कारण इसका नाम स्थूल पर्यायार्थिक नय है। और वह स्थूल समय या व्यञ्जन पर्याय वर्तमान काल रूप या एक पर्याय स्वरूप ग्रहण करने मे आती है, इसलिये ऋजुसूत्र है। अत 'स्थूल ऋजुसूत्र नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है।

क्षणिक सूक्ष्म अर्थ पर्याय प्रमाण कोई भी सत् अप्रत्यक्ष होने के कारण व्यवहार कोटि मे नही आ सकता।

वह लोक मे किसी भी अर्थ क्रिया की सिद्धि करता प्रतीत नही होता। अत-व्यञ्जन पर्याय प्रमाण ही पदार्थ को स्वीकार करना योग्य है। अत. स्थूल पदार्थो की एकता दर्शा कर लौकिक व्यवहार को सम्भव बनाना इस नय का प्रयोजन है।

५. ऋजुसूत्र नय सम्बन्धी शंकाये

इस नय सामान्य व विशेष के उपरोक्त विस्तृत कथन मे उठने वाली कुछ शंकाओं का समाधान यहा कर देना योग्य है।

१. **शंका** – वर्तमान काल प्रमाण निर्विशेष ही वस्तु की सत्ता मानने से, तथा विशेषण-विशेष्य व कार्य कारणादि भावों का सर्वथा अभाव मानने से तो सकल व्यवहार के लोप का प्रसंग प्राप्त होता है।

उत्तर – इस शंका का समाधान आगम में निम्न प्रकार किया है।

क. पा. ।१।ह१९६। २३२ ।२ "सत्येवं सकल व्यवहारोच्छेद. प्रसजतीति चेत्, न, नय विषय प्रदर्शनात्।"

अर्थ:—शंकाकार कहता है कि इस प्रकार सामान्य रहित केवल विशेष की सत्ता मानने पर तो सकल व्यवहार का उच्छेद प्राप्त होता है। इस के उत्तर मे आचार्य कहते है कि नही, क्योकि यहां पर ऋजुसूत्र नय का विषय दिखलाया गया है। (अर्थात यह कथन किसी एक दृष्टि विशेष से देखने पर सत्य प्रतीत होता है। लौकिक दृष्टि से वह दृष्टि विचित्र है, अत उस प्रकार देखते समय उस विचारक व्यक्ति विशेप को लौकिकअभिप्राय शेप रह ही नही जाता। और इसी प्रकार लौकिक अभिप्राय जागृत हो

जाने पर यह दृष्टि रह नही पाती, अत. उसका लोप होने को अवकाश नही)।

वस्तु वास्तव में सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य से रहित विशेष या विशेष से रहित सामान्य खर्विसाण वत् असत् है। अत: इन दोनों कोटियों को युगपत स्पर्श करने वाला ज्ञान ही प्रमाण है। परन्तु यहा तो नय का प्रकरण है। सामान्य विशेषात्मक अखण्ड वस्तु मे से कोई से एक सामान्य या विशेष अग को पृथक निकालकर देखने वाली दृष्टि का नाम नय है, यह पहिले समझाया जा चुका है। अत. सामान्य रहित विशेष को ग्रहण करना नय स्वरूप होने के कारण अनेकान्तवादियों के यहाँ विरोध को प्राप्त नही होता, क्योंकि यहां सामान्यांश ग्राही द्रव्यार्थिक दृष्टि गौण है परन्तु उसका निषेध नही है। बोद्ध मत वत एकान्त क्षणिक या विशेष वादियों वत यदि हमारा कथन भी सामान्य से सर्वथा व सर्वदा के लिये निरपेक्ष हुआ होता तो अवश्य ही आपकी शंका युक्त थी।

२. **शंका**—सामान्य ग्राही द्रव्यार्थिक व विशेष ग्राही पर्यायार्थिक मे क्या अन्तर है ?

उत्तर.—अनेक विशेषो मे अनुस्यूत या अनुगत एक अखण्ड व ध्रुव तत्व को सामान्य कहते है, जैसे बालक, युवा बुढ़ापा तीनों कलात्मक विशेषो मे अनुगत मनुष्य सामान्य तत्व है। अत. सामान्य तत्व में दृष्टि विशेष करने पर भेद भी दिखाई दे सकता है और अभेद भी। इस प्रकार अनेकों विशेषो के द्वैत में अद्वैत करने वाला या एक

अद्वैत सामान्य मे विशेष दर्शक द्वैत करने वाला द्रव्यार्थिक नय है।

परन्तु विशेष में अन्य नही रहता, अत. वहा न द्वैत दर्शाना सम्भव है और न अद्वैत। जितना कुछ वह उस समय दिखाई देता है वही सत् है। उसे विशेष भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विशेष कहना सामान्य की अपेक्षा रखता है। जहा सामान्य दिखाई ही नही देता, वहां उसे विशेष भी कैसे कहा जा सकता है? बस उतना मात्र ही एकत्वगत तत्व सत् है, ऐसा ग्रहण करना पर्यायार्थिक नय का विषय है।

२. शंका –यदि निर्विशेष एक विशेष प्रमाण ही सत को स्वीकार करना पर्यायार्थिक या ऋजुसूत्र नय का विषय है, तो मनुष्यादि स्थूल व्यञ्जन पर्यायें इस के विषय नही बन सकते, क्योकि वे निर्विशेष नहीं है, बल्कि क क्षेत्रात्मक अवयवों व कालात्म अनेकों बालक आदि पर्यायो मे अनुगत होने के कारण वे तो सामान्य तत्व है।

उत्तर –यह कहना सत्य है–परन्तु जैसा कि स्थूल ऋजुसूत्र नय का लक्षण करते हुआ बता दिया है, लौकिक व्यवहार मे स्थूल दृष्टि से देखने पर उस मे एकत्व ही दिखाई देता है, क्योंकि जन्म से मरण पर्यन्त वह मनुष्य वह का वह ही देखा जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर अवश्य उसमे अनेक क्षेत्रात्मक विशेप या प्रदेश और कालात्मक विशेष या अर्थ पर्याये देखी जाती है, परन्तु वे सब विशेष स्थूल दृष्टि के विषय नही। जीव सामान्य के भेद प्रभेद करते हुए स्थूल दृष्टि इन व्यञ्जन पर्यायों पर आकर रुक जाती

है, इसलिये इन्हे अन्तिम स्थूल विशेष स्वीकार कर लिया गया है।

ऋजुसूत्रनय के दो भेद है—सूक्ष्म व स्थूल। तहा सूक्ष्म ऋजुसूत्र की अपेक्षा तो इन्हे निर्विशेष कभी भी कहा नही जा सकता, क्योकि उसका विषय केवल एक प्रदेशी व एक समय स्थायी परमाणु की सूक्ष्म अर्थ पर्याय है। परन्तु स्थूल ऋजुसूत्र का विषय बनने मे इस के लिये कोई विरोध नही आता। यह अनेकान्त की ही कोई अचिन्त्य महिमा है, कि तनिक से दृष्टि के फेर से विरोध भी अविरोध हो जाता है।

४. **शंका**—"यदि ऐसा भी पर्यायार्थिक नय है तो—

"उप्पजति वियंति य भावाणियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्य सव्व सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं ॥९४॥"

(**अर्थ**—जो भाव नियम से उत्पन्न होते व विनशते रहते है वे पर्यायार्थिक नय के विषय है और जो सर्वथा व सदा अनुत्पन्न व अविनष्ट रहते है वे द्रव्यार्थिक नय के विषय है।)

"इस सन्मति सूत्र के साथ विरोध होगा"

(अर्थात यदि उत्पन्न ध्वसि ही भाव नियम से पर्यायार्थिक का विषय है तो छ. मास या सख्यात वर्ष तक टिकने वाले भाव ऋजुसूत्र का विषय न बन सकेगे।)

उत्तर—"(विरोध) नही होगा, क्योकि अशुद्ध ऋजुसूत्र के द्वारा व्यञ्जन पर्याय ही विषय की जाती है और शेष (अर्थ)

पर्याये अप्रधान है । पूर्वापर कोटियों का अभाव होने के कारण उत्पत्ति व विनाश को छोडकर अवस्थान पाया नही जाता ।" (ध० ।९ ।गा० ९४ । पृ० २४४)

भावार्थ-सन्मति सूत्र मे शुद्ध ऋजुसूत्र को दृष्टि मे रखकर बात की गई है, इस लिये उस की बात इस नय से बाधित नही होती । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वह बात ही सत्य है । क्योकि पहिली और पिछली पर्यायों मे समान रूप से प्रतीति में आने वाला द्रव्य है । वही ध्रुव या स्थाई है । सो उन पर्यायों के क्षणिक उत्पाद व विनाश से रहित रहना असम्भव है । अत: क्षणिक उत्पाद व व्यय रूप जो उस का अंश उसे ही सूक्ष्म दृष्टि से पर्यायार्थिक का विषय बनाया जा सकता है ।

शंका–व्यवहार नय का विषय भी व्यञ्जन पर्याय है और स्थूल ऋजुसूत्र का भी । फिर दोनो मे क्या अन्तर है जो व्यवहार नय को द्रव्यार्थिक व ऋजुसूत्र को पर्यायार्थिक कहते हो ?

उत्तर–व्यञ्जन पर्याये उसी समय व्यवहार नय का विषय बन सकती है, जब कि उनमे अनुगत किसी सामान्य द्रव्य मे अनेकों व्यञ्जन पर्याय रूप भेद दर्शाकर, "यह पर्याय इस द्रव्य की है" ऐसा कहा जाये । परन्तु जहा वे पर्याये एकत्व रूप से ग्रहण की जाती है, तब पर्यायार्थिक का विषय बनती है ।

५ शंका– (ध०।९।२६५।२२) "पर्यायार्थिक ऋजु सूत्र के द्रव्य पने की सम्भावना कैसे हो सकती है ?"

उत्तरः–"नही, क्योकि अशुद्ध ऋजु सूत्र नय मे द्रव्य की सम्भावना के प्रति कोई विरोध नही ।"

(ध० ।१२।२६० २१) ;(क० पा० ।१ह।२१३ ।२६३ ।१६)

६. शंका— (ध० । १० । ११ । १६) "तद्भव सामान्य व सादृश्य सामान्य रूप द्रव्य (व्यञ्जन पर्याय) को स्वीकार करने वाला ऋजु सूत्र द्रव्यार्थिक कैसे नही है ?"

उत्तर—"नही, क्योंकि ऋजु सूत्र घट पट व स्तम्भादि स्वरूप व्यञ्जन पर्यायों से परिच्छिन्न ऐसे अपने पूर्वापर भावो से रहित वर्तमान मात्र को विषय करता है, अतः उसे द्रव्यार्थिक मानने मे विरोध आता है।"

(एक पदार्थ जो घट रूप से प्रतीति मे आता है पहिले कभी कुशूल रूप रह चुका है और आगे कपाल भी बन जाने वाला है । भूत और भविष्यत के इन रूपों से निरपेक्ष उस पदार्थ को केवल घट मात्र ही देखना । उसकी उत्पत्ति से पहिले तथा उसके विनाश के पश्चात उस पदार्थ की सत्ता का किसी भी रूप में ग्रहण न होना ऋजुसूत्र दृष्टि है । अतः यह द्रव्य पर्याय को ग्रहण करने पर भी पर्यायार्थिक ही है द्रव्यार्थिक नही ।

७ शंका—शुद्ध द्रव्यार्थिक या शुद्ध सग्रह तथा शुद्ध पर्यायार्थिक या ऋजुसूत्र दोनों मे ही भेदों का निरास करके वस्तु को निर्विकल्प सिद्ध किया गया है । तब दोनों मे क्या अन्तर रहा ?

उत्तर—निर्विकल्पता की अपेक्षा यद्यपि कोई अन्तर नही, परतु अद्वैत व एकत्व का अन्तर है। सग्रह नय शुद्ध अद्वैत को और ऋजुसूत्र शुद्ध एकत्व को सत् रूप से स्वीकार

करते हैं। शुद्ध अद्वैत मे द्वैत रहते अवश्य हैं पर उनको गौण कर दिया जाता है, जब कि शुद्ध एकत्व मे द्वैत रहता ही नही। सामान्य में विशेष रहते है पर विशेष मे अन्य विशेष नही। दोनों ही नय शुद्ध तत्व का निरूपण करते है परन्तु संग्रह उसके शुद्ध सामान्य ग्राही छोर पर बैठा है और ऋजुसूत्र उस ही तत्व के शुद्ध विशेष ग्राही छोर पर बैठा है।

८ **शंका**–पर्याय द्रव्य से अभिन्न ही रहती है अर्थात सामान्य से रहित विशेष कोई वस्तु नही। फिर पृथक पृथक पर्यायों को स्वतंत्र सत्ता रूप से ऋजुसूत्र नय का विषय कैसे बनाया जा सकता है?

उत्तर–यहा पृथक सत्ता का अर्थ द्रव्य निर्पेक्ष सत्ता नही है, परन्तु द्रव्य गौण सत्ता है। पर्याय से निर्पेक्ष द्रव्य और द्रव्य से निर्पेक्ष पर्याय का ग्रहण नय नही है।

नैगम नय के अनेकों द्वैत रूप भेद है। उनको एकान्त रूप से मानने वाले न्याय वैशेषिको का नैगमाभास मे अन्तर्भाव होता है। विशेषो की अपेक्षा न करके अर्थात गौण करके वस्तु को सामान्य रूप से जानने को सग्रह नय कहते है, जैसे जीव कहने से त्रस स्थावर आदि सव प्रकार के जीवो का ज्ञान होता है। संग्रह नय पर संग्रह और अपरसंग्रह के भेद से दो प्रकार की है। सत्ता द्वैत को मानकर सम्पूर्ण विशेषो के निषेध करने को संग्रहाभास कहते है। अद्वैत वेदान्तियो ओर साख्यों का संग्रहाभास मे अन्तर्भाव होता है।

सग्रह नय से जाने हुए पदार्थों के योग्य रीति से विभाग करने को व्यवहार नय कहते है। जैसे जो 'सत्' है वही द्रव्य

या-पर्याय है। इसको सामान्यभेदक और विशेषभेदक के भेद से दो भेद है। द्रव्य और पर्याय के एकान्त भेद को मानना व्यवहाराभास है इसमे चार्वाक दर्शन गर्भित है।

वस्तु की अतीत और अनागत पर्याय को छोड़कर वर्तमान क्षण की पर्याय को जानना ऋजुसूत्र नय है, जैसे इस समय मै सुखी हू या सुख की पर्याय भोग रहा हूं या इस समय मे युवा हू। सूक्ष्म ऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र के भेद से ऋजुसूत्र के दो भेद है। केवल क्षण क्षण में नाश होने वाली पर्याय को मानकर पर्याय के अश्रित द्रव्य का सर्वथा निषेध करना ऋजुसूत्र नयाभास है। बौद्ध दर्शन इसी मे गर्भित है।

इस प्रकार सर्वत्र जानना। वचनो के भाव समझने का प्रयत्न करना। जहा कही भी निरपेक्षता दिखाई दे वहां गौणता का अर्थ समझना, क्योकि पहिले ही अध्याय न० ९ मे नयो की मुख्य गौण व्यवस्था का परिचय दिया जा चुका है।

६ **शंका**–ऋजुसूत्र नय केवल वर्तमान काल को विषय करता है, तव भूत व भावि सज्ञा व्यवहार किस नय का विषय है।

उत्तरः–भूत व भावि संज्ञा का व्यवहार करने में कोई विरोध नहीं है। अन्तर केवल इतना पड़ता है कि यदि वह व्यवहार ऐसा किया गया हो, जिसमे कि भूत या भविष्यत पर्याय का कोई सम्बन्ध वर्तमान पर्याय के साथ दिखाई दे तो वह प्रयोग द्रव्यार्थिक अर्थात नैगम या व्यवहार नय का कहलायेगा, जैसे कि जिसे कल मन्दिर मे देखा

वह आज कलकत्ता गया है । यदि वह व्यवहार ऐसा किया गया हो, जिसमे कि भूत व भविष्यत की पर्याय का सम्बन्ध वर्तमान पर्याय से जुडता प्रतीत न हो तो वह प्रयोग पर्यायार्थिक या जुसूत्र नय का कहलायेगा । जैसे 'वह एक क्षात्र था' 'यह एक डाक्टर है' ऐसा कहना 'जो क्षात्र था वही यह डाक्टर है' ऐसा कहना द्रव्यार्थिक है पर्यायार्थिक नही, क्योंकि पूर्व पर्याय रूप क्षात्र और वर्तमान पर्याय रूप डाक्टर को एक व्यक्ति के अन्तर्गत देखा जा रहा है ।

१५

शब्दादि तीन नय

१. व्यञ्जन नय सामान्य का परिचय, २. तीनो का विषय एकत्व, ३. तीनों में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता, ४. वचन के दो प्रकार, ५. व्यभिचार का अर्थ, ६. शब्द नय का लक्षण, ७. शब्द नय के कारण व प्रयोजन, ८. समभिरूढ़ नय का लक्षण, ९. सम-रूढ नय के कारण व प्रयोजन, १०. एवंभूत नय का लक्षण, ११. एवंभूत नय के कारण व प्रयोजन, १२. तीनों नयों का समन्वय।

ज्ञान नय, अर्थ नय और शब्द नय ऐसे नय सामान्य के पहिले तीन भेद किये गये थे। उनमे से ज्ञान नय का व्याख्यान नैगम नय के नाम से कर दिया गया। अर्थ नय के दो भेद हैं—सामान्य ग्राही

१ व्यञ्जन नय सामान्य का परिचय

द्रव्यार्थिक नय और विशेष ग्राही पर्यायार्थिक नय॥। तहा द्रव्यार्थिक के अद्वैत व द्वैत भाव को ग्रहण करके संग्रह व व्यवहार नयो के नाम से उस का कथन कर दिया गया। पर्यायार्थिक नय का कथन ऋजुसूत्र के नाम से किया गया। अब तीसरा जो शब्द नय उसके कथन का अवसर प्राप्त होता है।

यद्यपि शब्द नय का विषय पूर्व कथित अर्थ नयो से कोई भिन्न ही जाति का है, परन्तु इसका विषय जो शब्द, वह स्वय एक व्यञ्जन पर्याय है द्रव्य नही, अतः इस नय को कदाचित पर्यायार्थिक भी कह दिया जाता है। परन्तु पर्यायार्थिक कहने का ऐसा अर्थ न समझ लेना कि यह नय किसी पदार्थ के विशेषांश को ग्रहण करके वर्तन करता होगा, क्योंकि पदार्थ के अन्तिम अश का ग्रहण ऋजुसूत्र नय के द्वारा हो जाने के पश्चात अव उसमे कोई अवान्तर अश शेष रह नही जाता, जिसको कि शब्द नय का विषय बनाया जा सके।

शब्द नय का व्यापार केवल बोले जाने वाले अथवा लिखे जाने वाले शब्द मे होता है। किस शब्द मे होता है। किस शब्द का प्रयोग किस स्थल पर किस रीति से किया जाना योग्य है, कौन शब्द किस अर्थ का द्योतक है, और किस समय किस पदार्थ को ठीक ठीक क्या नाम दिया जाना चाहिये, जिससे कि श्रोता या पाठक को कोई भी भ्रम उत्पन्न होने न पावे। इस प्रकार शब्द गत उत्तरोत्तर सूक्ष्मता को विषय करने वाले नय को शब्द नय कहते है।

इस शब्द नय के तीन भेद है, जो उत्तरोत्तर एक दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्मता का प्रतिपादन करने वाले है—शब्द नय, समभिरूढ नय और एवंभूत नय। इन तीनों मे परस्पर सूक्ष्मता का कथन तो आगे करेगे, यहां तो केवल इतना ही वताना इष्ट है कि इन्हे

पर्यायार्थिक क्यों कहा जाता है। इस सम्बन्ध मे कुछ आगम वाक्य उद्धृत करता हू।

१ रा वा ।४।४२।१७।२६१।११ "व्यञ्जनपर्यायास्तु शब्द नया"।

अर्थ–शब्द या व्यञ्जननय व्यञ्जन पर्याय को विषय करते है।

२ ध पु १।पृ १३। गा ७ "मूलणिमेणं पज्जवणयस्य उजुसुद्द–वयणविच्छेदो। तस्स दुसद्दादीया साह–पसाहा सहुम भेया।७।"

अर्थ–ऋजुसूत्र वचन का विच्छेद रूप वर्तमान काल ही पर्यायार्थिक नय का मूल आधार है, और शब्दादिक नय शाखा उपशाखा रूप उसके उत्तरोत्तर सूक्ष्म भेद है।

यहा ऐसा तात्पर्य समझना कि वर्तमान समय वर्ती पर्याय को विषय करना ऋजुसूत्र नय है। इसलिये जब तक पूर्वोत्तर पर्यायों मे अनुगत द्रव्य गत भेदो की मुख्यता रहती है तब तक व्यवहार नय चलता है, और जब वर्तमान मात्र काल कृत भेद प्रारम्भ हो जाता है तभी से ऋजुसूत्र नय प्रारम्भ होता है। शब्द समभिरूढ और एवभूत इन तीनो नयों का विषय भी वर्तमान पर्याय मात्र है, द्रव्य नही।

यहा यह शंका की जा सकती है कि शब्द को विषय करने वाले नाम निक्षेप को द्रव्यार्थिक नय मे गर्भित किया गया है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय मे क्षण क्षयी होने के कारण, शब्द व अर्थ की विशेपता से सकेत करना नही बन सकता। ऐसा होने पर शब्द नयों का शब्द व्यवहार कैसे सम्भव हो सकेगा? अत इन नयो को भी द्रव्यार्थिक स्वीकार करना चाहिये। इस शंका का समाधान आगम मे निम्न प्रकार दिया है।

१ ध. ।पु ६।पृ १८३।२४ "अर्थगत भेद की अप्रधानता और शब्द निमित्तक भेद की प्रधानता रखने वाले उक्त नयों के शब्द व्यवहार मे कोई विरोध नही आता" (अर्थात इन नयो का काम केवल वाचक शब्दो मे तर्कणा उत्पन्न करना है, पदार्थ मे भेद या अभेद देखना नही । यही वह दूसरा कारण है, जिसका संकेत कि ऊपर किया गया है । शब्द क्योंकि स्वयं पर्याय है इसलिये इसको विषय करने वाला नय भी पर्यायार्थिक होना चाहिये ।)

यहा पुन शका हो सकती है कि शब्द तो पर्याया वाची ही नही द्रव्य वाची भी होते है, फिर शब्दो को विषय करने वाला नय भी दोनो रूप होनी चाहिये । इसका उत्तर भी आगम मे निम्न प्रकार दिया गया है ।

१.ध ।पु ६ ।पृ १८१।८ "क्रिया और गुणादिक रूप अर्थगत भेद से अर्थ का भेद करने के कारण सग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र नय अर्थ नय है । शेष नय शब्द के पीछे अर्थ ग्रहण मे तत्पर होने से शब्द नय है ।" (और वह शब्द क्योकि पर्याय है, इसलिये इनका अन्तर्भाव मूल दो भेदों के पर्यायार्थिक नय मे मे ही किया जा सकता है ।)

२. ध ।पु. १०।पृ १२।१० "एक तो शब्द नय की अपेक्षा दूसरी पर्याय का सक्रमण मानने मे विरोध आता है । (अर्थात इनका विषय जैसे कि आगे वताया गया है एकत्व है द्वैत नही) । दूसरे वह शब्द भेद से अर्थ के कथन करने मे व्यावृत रहता है । अत. उसमे नाम निक्षेप व भाव निक्षेप की ही प्रधानता रहती है, पदार्थो के भेदो की प्रधानता नही रहती, इसलिये शब्द नय (व्यञ्जन

नय) द्रव्य निक्षेप को स्वीकार नही करता।" (अभिप्राय यह है कि वर्तमान भाव मात्र ग्राहक, भाव निक्षेप का विषय होने पर से इसको पर्यायार्थिक ही कहा जा सकता है द्रव्यार्थिक नही)।

तात्पर्य यह है कि तीनों शब्द नयों का व्यापार शब्दों के दोषों को देखना है, द्रव्य के भेद प्रभेदो को नही। 'अमुक शब्द का क्या अर्थ होना चाहिये, यदि ऐसा अर्थ किया तो यह दोष आयेगा, यदि ऐसा किया तो यह दोष आयेगा, इस प्रकार शब्द को सूक्ष्म, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम दृष्टि से देखना इनका काम है, अत इन्हे शब्द नय कहा जाता है। तीनो शब्द नयों मे 'शब्द नय' नाम की एक स्वतंत्र नय है अत भ्रम निरवारणार्थ तीनों के समूह को बताने के लिये 'व्यञ्जन नय' यह नाम लिया जाता है। इस प्रकार इन नयों का पर्यार्यथिकपना व व्यञ्जनपना सिद्ध है।

२. तीनो का विषय एकत्व

पर्यायार्थिक सिद्ध हो जाने पर यह कहने की आवश्यकता नही रहती कि इनका विषय भी ऋजुसूत्र वत् एकत्व ग्राहक है। व्यञ्जन नयो का मुख्य व्यापार किसी पदार्थ को नाम देना है। नाम वस्तु की कोई न कोई विशेषता देख कर ही रखा जाया करता है, और विशेषता एकत्व स्वरूप होती है। विशेषता भी दो प्रकार की है—सूक्ष्म व स्थूल। तहा सूक्ष्म का तो कोई भी वाचक शब्द ही सम्भव नही है, जो भी शब्द है वे सब स्थूल विशेषता अर्थात व्यञ्जन पर्याय को लक्ष्य मे रखकर प्रगट हुए है, जैसे सत् के अस्तित्व गुण के कारण उसे 'सत्' द्रव्यत्व गुण के कारण 'द्रव्य' और वस्तुत्व गुण के कारण 'वस्तु' कहने मे आता है। अत वस्तु के विशेष को दृष्टि मे रखकर उसे अपने द्वारा वाच्य बनाने वाले सर्व शब्दो का विषय भी सूक्ष्म तर्कणा के द्वारा एकत्वगत ही प्राप्त होगा। यहा भी पूर्वापर पर्यायो

मे या पर्याय व द्रव्य मे या दो भिन्न पदार्थो मे कार्य कारण आदि सम्बन्ध उत्पन्न नही किया जा सकता । यह भी ऋजुसूत्र वत् केवल एक ही सख्या को ग्रहण करता है । कहा भी है:—

क. पा. ।१।३१६।२५ "नैगम सग्रह व्यवहार और स्थूल ऋजुसूत्र ···इन नयों मे कार्य कारण भाव सम्भव है । शब्द समभिरूढ और एवं भूत इन तीनो शब्द नयों····की दृष्टि मे कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति होती है ।

२. ध. ।१२।२६२।२६ "तीनों शब्द नयों की अपेक्षा···· (निमित्त से कार्य की उत्पत्ति नही होती, न ही पूर्व पर्याय से होती है) क्योकि (इन नयो मे) पर्यायों से रहित सामान्य द्रव्य का अभाव है ।"

३ ध. ।१२।सू. १४।पृ. ३०० "(तीनों) ।शब्द और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना (एक) जीव के ही होती है । (नैगम व्यवहारवत् कर्म स्कन्ध के अथवा संग्रह नयवत् बहुत जीवों के नही होती ।"

४. ध. ।१२।३००।२७ "(इन ऋजुसूत्र व तीनों शब्द नयो की अपेक्षा) सभी वस्तु एक संख्या से सहित है, क्योकि इसके बिना उसके अभाव का प्रसग आता है । एकत्व को स्वीकार करने वाली वस्तु मे द्वित्व की सम्भावना भी नही है । क्योकि उनमे शीत व उष्ण के समान सहानवस्थान रूप विरोध देखा जाता है । इसके अतिरिक्त एकत्व से रहित वस्तु है भी नही, जिससे कि वह अनेकत्व का आधार हो सके ।"

५. रा. वा ।१।३३।१०।६६।२ "यथा क्व भवानास्ते ? स्वात्मनीति । कुत. ? वस्त्वन्तरे वृत्यभावात् ।"

अर्थ– जैसे "आप कहा रहते है" ऐसा पूछने पर इन नयों का उत्तर यही होता है कि "अपनी आत्मा मे ही रहता हूँ" क्योंकि एक वस्तु का दूसरी वस्तु मे वर्तन करने का अभाव है।)

६. रा. वा ।५।१२ ।५।४५४ एवभूत नयादेशात् सर्व द्रव्याणि परमार्थतयाऽऽत्मप्रतिष्ठितानि। इति आधाराधेयाभावात् कुतोऽनवस्था ?"

अर्थ –एवभूत नय की अपेक्षा सर्व द्रव्य परमार्थ से अपने स्वरूप मे ही रहते है अन्य मे नही। (इस प्रकार आधार आधेय भाव का अभाव होने के कारण अन्वस्था उत्पन्न नही की जा सकती।

७. रा. वा. ।१।१।२४।८, "नेमौ ज्ञानदर्शनशब्दौ करण साधनौ। कि तर्हि ? कर्तृ साधनौ। ' ' 'कथम् ? एवम्भूत-नयवशात् ।"

अर्थ — इन ज्ञान व दर्शन शब्दो म करण साधन पना नही है। अर्थात् कार्य कारणपना नही है। परन्तु कर्तृ साधनापना है। अर्थात दोनो स्वतत्र रूप से अपने अपने कर्ता आप है। एवभूत नय का ऐसा आदेश है।

जहा एक समय व एक पर्याय मात्र को ही स्वतंत्र सत् रूपेण विषय किया गया हो,उनके अतिरिक्त जहा कोई दूसरा द्रव्य, गुण कि पर्याय दिखाई ही न देता हो, वहा कार्य कारण आदि भावों का द्वैत उत्पन्न किया ही कैसे जा सकता है ?

३. तीनो में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता

जैसा कि पहिले भी सातो नयो की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता दर्शाते हुए बता दिया गया है यह तीनो नये पहिली पहिली की अपेक्षा से अधिक अधिक सूक्ष्म है। इनमे ऋजुसूत्र के विषयभूत अर्थ के वाचक शब्दो

की मुख्यता है, इसलिये इनका विषय ऋजुसूत्र से सुक्ष्म सुक्ष्मतर और सुक्ष्मतम माना गया है ।

इसका कारण यह है कि पूर्व पूर्व नय आगे आगे के नय का हेतु है पूर्व पूर्व विरुद्ध महा विषय वाला और उत्तरोत्तर अल्प अनुकूल विषय वाला है। द्रव्य की अनन्त शक्ति है, इसलिये प्रत्येक शक्ति की अपेक्षा भेद को प्राप्त होकर ये अनेक विकल्प वाले हो जाते है । अर्थात पहिले नय ने जितना पदार्थ विषय कर रखा है उतने पदार्थ को आगे का नय विषय नही करता और आगे का नय जिसे विषय करता है वह विषय पहिले नय मे भी गर्भित है। जैसे:—

ऋजुसूत्र नय शब्द के लिंग संख्या आदि का भेद न करके वर्तमान पर्याय का प्रतिपादन करता है, परन्तु शब्द नय उस एक पर्याय में लिग सख्या आदि के भेद से अर्थ का भेद प्रकाशन करता है। अर्थात ऋजुसूत्र नय पदार्थ की पर्याय और शब्द पर्याय सभी को विषय करता है परन्तु शब्द नय केवल शब्द पर्याय को ही विषय करता है। इसलिये शब्द नय से ऋजुसूत्रनय का विषय अधिक है ।

शब्दनय लिंग सख्या आदि के भेद से ही उस शब्द के अर्थ मे भेद मानता है, समान लिंगादि वाले पर्याय वाची शब्दों मे अर्थ भेद नही मानता जब कि समभिरूढ नय इन्द्र शक्र पुरन्दर आदि समान लिगी पर्याय वाची शब्दों को भी व्युत्पति की अपेक्षा भिन्न रूप से जानता है। शब्द नय मे अर्थ एक ही रहता है और उसके पर्यायि स्वरूप शब्द अनेक होते है। समभिरूढ नय मे यद्यपि एवभूत नय वत शब्द को प्रवृति का कारण नही माना जाता, परन्तु एक शब्द के अनेको अर्थों को छोडकर यह एक ही प्रसिद्ध अर्थ ग्रहण करता है । अतएव शब्द नय से समभिरूढ नय का विषय अल्प है।

समभिरूढ नय सोना बैठना आदि अनेक क्रिया युक्त पदार्थ को एक नाम से घोषित करता है, जब कि एवभूत नय जिस काल मे जो

अर्थ क्रिया हो रही है उसी की अपेक्षा रखकर उसे नाम देती है। जैसे समभिरूढ नय की अपेक्षा पुरन्दर व शचीपति इन्द्र में शव्द गम्य या व्युत्पत्ति गम्य भेद होने पर भी नगरों का विभाग करने की क्रिया न करने के समय भी पुरन्दर शव्द इन्द्र के अर्थ मे प्रयुक्त होता है, परन्तु एवभूत नय की अपेक्षा नगरो का विभाग करते समय ही इन्द्र को पुरन्दर नाम से कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी समभिरूढ नय वर्ण भेद से पर्याय के भेद को स्वीकार नही करता, एवभूत अनेक पदो का समास और 'घ', 'ट' आदि अनेक वर्णों का समास करके शव्द वनाना स्वीकार नही करता। अत. इस अत्यन्त सूक्ष्म एवभूत नय से समभिरूढ नय का विपय अधिक है।

इन तीनो नयो मे एक पदार्थ के वाचक अनेक पर्याय वाची शव्दों को स्वीकार करने वाला शव्द नय कोपकार को इष्ट है। व्युत्पत्ति की अपेक्षा एकार्थ वाची शव्दों मे अर्थ भेद देखने वाला समभिरूढ नय वैयाकरणियो को इष्ट है, और तत्क्रिया परिणत पदार्थ को उस समय के योग्य एक ही नाम देने वाले एव भूत को निरुक्तिकार पसंद करता है।

४ वचन के दो प्रकार—

व्यवहारिक भापा व व्याकरण मे दो प्रकार के शव्दो का प्रयोग करने मे आता है—अभेद वाची व भेद वाची अर्थात सामान्य व विशेप। एक अर्थ के प्रति अनेक पर्यायवाची शव्द सामान्य है और अर्थ प्रति अर्थ निश्चित किये गये शव्द विशेप है। उसी का परिचय निम्न उद्धरण मे दिया गया है।

१ रा. वा।४।४२।१७।२६१।११ "व्यञ्जनपर्यायास्तु शव्दनया द्विविध वचन प्रकल्पयन्ति-अभेदेनाभिधान भेदेन च। यथा शव्दे पर्यायशव्दान्तर प्रयोगेऽपि तस्यैवार्थस्याभिधानादभेद। समभिरूढे वा प्रवृत्तिनिमित्तस्य अप्रवृत्तिनिमित्तस्य च घटस्याभिन्नस्य सामान्येनाभिधानात्। एव-

भूतेषु प्रवृत्तिनिमित्तस्य भिन्नस्यैकस्यैवार्थस्याभिधानात् भेदेनाभिधानम् ।"

अथवा अन्यथा द्वैविध्यम्-एकस्मिन्नर्थेऽनेकशब्द-प्रवृत्ति प्रत्यर्थं वा शब्दविनिवेश इति । यथाशब्दे अनेकपर्यायिशब्दवाच्य एक: । सर्मभिरूढे वा नैमित्तिकत्वात् शब्दस्यैकशब्दवाच्य एक. । एव भूते वर्तमानक्रियानिमित्तशब्द एकवाच्य एक: ।"

अर्थ—शब्द नय व्यन्जन पर्यायो को विषय करता है । वे (तीनों ही शब्द नये) अभेद तथा भेद दो प्रकार के वचन प्रयोग को सामने लाते हैं । तहा अभेद (अभेद वचन का प्रयोग दो प्रकार से हो सकता है—अनेक पर्यायवाची शब्दों द्वारा एक ही वाच्य पदार्थ का कथन करना, तथा एक शब्द से प्रवृत्ति व अप्रवृत्ति निमित्तिक, अनेक पर्यायो से समवेत, एक ही सामान्य पदार्थ का कथन करना) जैसे –

(i) शब्दनय मे पर्याय वाची विभिन्न शब्दो का प्रयोग होने पर भी उसी अर्थ का कथन होता है, अत अभेद है ।

(ii) समभिरूढनयमे घटनक्रियामे परिणत, अपरिणत, अभिन्न ही घट का निरूपण होता है, (अत अभेद है) ।

भेद:–(भेद वचन का प्रयोग एक ही प्रकार से होता है) जैसे—एव भूत मे प्रवृत्ति निमित्त से भिन्न एक ही अर्थ का निरूपण होता है अर्थात भिन्न भिन्न समयो मे भिन्न भिन्न प्रवृत्तियो या पर्यायो से परिणत एक ही द्रव्य के भिन्न भिन्न नाम होते हैं ।

अन्य रीति से भी शब्द प्रयोग के दो प्रकार हैं—एक पदार्थ के वाचक अनेक शब्द और प्रत्येक पदार्थ का वाचक स्वतत्र एक ही शब्द । तहा—

(i) शब्द नय मे अनेक पर्यायवाची शब्दो का वाच्य एक ही होता है ।

(ii) समभिरूढ मे, चूँकि शब्द नैमित्तिक पदार्थ है, अत एक शब्द का वाच्य एक ही होता है । एव भूत वर्तमान निमित्त को पकडता है अत उसके मत से भी एक शब्द का वाच्य एक ही होता है ।

५ व्यभिचार का अर्थ

शब्द नय की व्याख्या प्रारम्भ करने से पहिले यहा, व्यभिचार शब्द से क्या तात्पर्य है, यह समझा देना आवश्यक है, क्योकि यह व्यभिचार दोष ही शब्द नय की व्याख्या का मूल आधार है । जिस धर्म का जिस पदार्थ के साथ सम्बन्ध हो उससे अतिरिक्त किसी दूसरे पदार्थ के साथ भी उसका कथन करना व्यभिचार दोष कहलाता है। जैसे 'शब्द अनित्य है। क्योकि यह जाना जाने योग्य है' ऐसा हेतु व्यभिचारी कहलाता है, क्योकि जाने जाने योग्य पदार्थ तो नित्य भी होते है ।

तीनो व्यञ्जन नये, क्योकि व्याकरण प्रधान नये अर्थात शब्द व अर्थ के वाचक-वाच्य सम्बन्ध की स्थापना करते है, इसलिये इन नयो के विषय के व्यभिचार का क्षेत्र, शब्द का प्रयोग मात्र है । कौन शब्द का प्रयोग किस पदार्थ के लिये करना चाहिये तथा कौन शब्द का लक्षण किस शब्द के द्वारा करना चाहिये इसे शब्द सम्बन्धी विवेक कहते है । इस प्रकार के विवेक रहित जिस किस भी शब्द को जिस किस पदार्थ का वाचक बनाना अथवा जिस किस भी शब्द का अर्थ जिस किस भी अन्य शब्द द्वारा प्रतिपादन करना, यहां

व्यभिचार शब्द का अर्थ है। यह व्यभिचार दोष छः प्रकार का मानने मे आया है—लिंग, व्यभिचार, सख्या व्यभिचार, काल व्यभिचार, कारक व्यभिचार, पुरुष व्यभिचार और उपग्रह व्यभिचार।

स्त्री पुरुष व नपुसक के भेद से लिग तीन प्रकार है। एक वचन, द्वि-वचन और वहुवचन के भेद से संख्या तीन प्रकार है। भूत वर्तमान व भविष्यत के भेद से काल तीन प्रकार है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान व अधिकरण के भेद से कारण छः प्रकार है। प्रथम, मध्यम व उत्तम के भेद से पुरुष तीन प्रकार है। किसी मूल शब्द के पहिले 'अप' 'प्र' 'वि' आदि जोड़ देने को उपग्रह कहते है।

१. विद्या, वनिता आदि शब्द स्त्री लिग है, सूर्य, हाथी आदि शब्द पुल्लिंगी है; पुस्तक, धन आदि शल्द नपुसक लिगी है। यद्यपि हिन्दी व्याकरण मे स्त्री व पुरुष दो ही लिंग स्वीकार किये गये है परन्तु सस्कृत व्याकरण मे उपरोक्त तीनों लिग स्वीकारे गये है। हिन्दी मे नपुसक लिगी शब्द का प्रयोग भी पुल्लिगी व स्त्री लिंगी वत् ही कर दिया जाता है। 'राजा की वनिता' तथा 'राजा का हाथी' इन प्रयोगों से वनिता व हाथी शब्दों का लिंग स्पष्ट जानने मे आता है। 'की' शब्द के साथ वनिता शब्द का प्रयोग और 'का' शब्द के साथ हाथी शब्द का प्रयोग स्पष्ट बता रहा है कि वनिता स्त्री लिंगी शब्द है और हाथी पुल्लिगी। 'राजा की पुस्तक' तथा 'राजा का धन' इन प्रयोगों मे नपुसक लिंगी पुस्तक शब्द का प्रयोग स्त्री लिगी वत् और धन शब्द का प्रयोग पुल्लिंगी वत् कर दिया गया है। संस्कृत व्याकरण मे तीनों जाति के शब्दों के लिये विभक्तियों का पृथक पृथक रूपों का प्रयोग होता है। इस कथन पर से शब्द के लिंग का परिचय दिया गया।

२. एक वस्तु की ओर सकेत करने वाला शब्द एक वचनान्त कहलाता है और इसी प्रकार को वस्तुओ कि और संकेत देने वाला द्वि–वचनान्त तथा वहुत सी वस्तुओ की ओर सकेत देने वाला वहुवचनान्त कहलाता है । जैसे नक्षत्र शब्द एक वचनान्त है, पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है और शतभिषज शब्द वहुवचनान्त है । यद्यपि हिंदी व्याकरण मे एक-वचनान्त व बहुवचनान्त यह दो रूप ही समझे जाते है, परन्तु सस्कृत व्याकरण मे उपरोक्त तीनो वचन स्वीकार किये गये है । इस कथन पर से शब्द के वचन या सख्या का परिचय दिया गया ।

३. वीती हुई अवस्था का वाचक शब्द भूत काल वाचक, वर्तमान अवस्था का वाचक शब्द वर्तमान वाचक, और भविष्यत काल की अवस्था का वाचक शब्द भाविकाल वाचक कहा जाता है–जैसे 'विश्वदृशा' जिसने विश्व देख लिया है यह शब्द भूत काल वाचक है, 'सर्वज्ञ' शब्द वर्तमान काल वाचक है, 'भाविसर्वज्ञ' जो आगे जाकर सर्वज्ञ होगा ऐसा शब्द भविष्यत काल वाचक है । हिन्दी व सस्कृत दोनो ही व्याकरणो मे यह तीन काल स्वीकार किये गये है । इस कथन पर से शब्द के काल का परिचय दिया गया ।

४. जो काम करे सो कर्त्ता, जो कुछ काम किया जाये वह कर्म, जिस के द्वारा किया जाये वह करण, जिसके लिये किया जाये वह सम्प्रदान, जिस से पृथक करके किया जाये सो अपादान और जिस वस्तु के आधार पर किया जाये सो अधिकरण कारक है । जैसे 'सुनार ने तिजोरी मे से स्वर्ण निकाल कर हथौड़े आदि के द्वारा अपने ग्राहक के लिये जेवर वनाया' इस वाक्य मे सुनार कर्त्ता कारक है, जेवर कर्म कारक है, हथौडा आदिकरण कारक है, ग्राहक सम्प्रदान कारक है, तिजोरी अपादान कारक है और सुवर्ण अधिकरण कारक है । हिन्दी तथा सस्कृत दोनो मे ही इन छः-कारको का प्रयोग किया जाता है । अन्तर केवल इतना है कि

हिन्दी वाले प्रयोगों में तो इन कारक भावों का ग्रहण 'ने' 'को' 'के द्वारा' 'के लिये' 'मे से' तथा 'में पर' इन शब्दों के द्वारा किया जाता है, और सस्कृत में उस उस शब्द के साथ उस उस विभक्ति विशेष का प्रयोग करके शब्द का रूप ही बदल दिया जाता है जैसे 'सुनार ने' ऐसा कहने के लिये 'स्वर्णकार' यह शब्द कहा जाता है। इस कथन पर से शब्द के कारक का परिचय दिया गया।

५. 'वह' या 'वे' या कोई भी सज्ञा वाचक शब्द प्रथम पुरुष वाला है। 'तू' या 'तुम' ये दो शब्द मध्यम पुरुष वाले है। 'मै' या 'हम' यह दो शब्द उत्तम पुरुष वाले है। उस उस पुरुष वाचक शब्द को कर्ता कारक रूप से ग्रहण करने पर, जिस जिस क्रिया (verb) का प्रयोग उसके साथ मे किया जाता है उस उस क्रिया का रूप भी तदनुसार ही ग्रहण करने मे आता है। जैसे हिन्दी मे तो 'वह जाता है' 'तुम जाते हो' और 'मै जाता हूँ' इस प्रकार क्रियाओं का प्रयोग होता है, और संस्कृत मे 'सः गच्छामि' 'त्वम् गच्छति' 'अहम् गच्छामि' इस प्रकार क्रियाओं का प्रयोग होता। 'गच्छति' का अथ जाता है, 'गच्छसि' का अर्थ जाते हो और 'गच्छामि का अर्थ जाता हूँ, एसा होता है। क्रिया वाचक शब्दो के इन तीन रूपो को ही तीन पुरुष कहा जाता है। इस कथन पर से शब्द क पुरुष' का परिचय दिया गया।

६. किसी शब्द के साथ 'वि' 'स' 'उप' आदि उपसर्ग जोड़ देने पर सस्कृत व्याकरण के अनुसार उस शब्द के अनुसार उस शब्द के अर्थ मे कुछ फर्क पड़ जाता है। आत्मने पद से परस्मैपद का अर्थ और परस्मैपद से आत्मने पद का अर्थ हो जाता है जैसे 'तिष्ठति' के साथ 'स' उपसर्ग लगाने पर 'सतिष्ठति' नही कहा जा सकता, बल्कि 'सतिष्टते' कहना होगा। इस कथन पर से उपग्रह का परिचय दिया गया।

व्याकरण की अपेक्षा किसी वाक्य मे जिस स्थान पर जो लिग व सख्या आदि प्राप्त हो अर्थात जिस स्थान पर जिस लिग आदि वाचक शब्द का प्रयोग करना युक्त हो, उस स्थान पर उसका प्रयोग न करके किसी अन्य ही लिग आदि वाचक शब्दो का प्रयोग करना शब्द व्यभिचार कहलाता है—जैसे 'अवगमो विद्या' अर्थात ज्ञान विद्या है। यहा पर 'अवगम' शब्द पुल्लिगी और 'विद्या' शब्द स्त्रीलिगी है। वास्तव मे स्त्री लिगी विद्या शब्द का लक्ष्य या विशेष्य भी स्त्री लिगी ही ग्रहण करना चाहिये था, अथवा पुल्लिगी विशेष्य का विशेषण भी पुल्लिगी ही ग्रहण करना चाहिये था, परन्तु ऐसा न करके पुल्लिगी विशेष्य का विशेषण यहा स्त्री लिंगी ग्रहण किया गया है। यही लिंग व्यभिचार है। 'सरस्वती विद्या है' इस प्रयोग मे विशेष्य व विशेषण रूप सरस्वती व विद्या दोनों शब्द समान स्त्री लिगी हे अतः यह प्रयोग निर्दोष है। इसी प्रकार सख्या, काल, कारक, पुरुष, व उपग्रह मे भी समझना।

अन्य लिग के स्थान पर अन्य लिग का प्रयोग लिग व्यभिचार है, अन्य सख्या या वचन के स्थान पर अन्य सख्या या वचन का आयोग सख्या व्यभिचार है, अन्य काल वाचक के स्थान पर अन्य काल वाचक शब्द का प्रयोगकाल व्यभिचार है, अन्य कारक के स्थान पर अन्यकारक काप्रयोग कारक व्यभिचार है, अन्य पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का प्रयोग पुरुष व्यभिचार है। तथा अन्य उपग्रह के साथ पर अन्य उपग्रह का कथन उपग्रह व्यभिचार है।

यहां इन व्यञ्जन नयो के प्रकरण मे सस्कृत व्याकरण की अपेक्षा विचार किया जाता है, हिन्दी व्याकरण की अपेक्षा नही, क्योकि हिन्दी व्याकरण तो उसका अपभ्रंश रूप है अतः शुद्ध नही है। व्यभिचार का यह विषय व्याकरण से सम्बन्ध रखता है, जिसका वस्तार करना इस पुस्तक का विषय नही। अतः सकेत मात्र

ही दिया गया है ताकि नयों को समझने के लिये कोई भूमिका तय्यार हो जाये। अगले उद्धरण इन छहो व्यभिचार दोषो का उदाहरणो द्वारा स्पष्ट प्रतिपादन करते है।

व्याकरण से अनभिज्ञ व्यक्तियों की घरेलू भाषा मे इस प्रकार के व्यभिचार दोष यत्र तत्र देखने को मिलते है। व्याकरण उनका निषेध करके नियम पूर्वक ही शब्दो का प्रयोग करने की रीति दर्शाता है। अर्थात वाक्य वोलते समय इतना विवेक रखना चाहिये कि वक्ता की भाषा मे उपरोक्त व्यभिचार लगने न पाये, अन्यथा वह भापा शुद्ध नही कहलायेगी। समान लिंग, समान संख्या, उपयुक्त कारक, आदि वाले शब्दो का प्रयोग करना ही न्याय सगत है।

इतना होने पर भी सस्कृत व्याकरण मे अनेकों अपवादो को न्याय संगत स्वीकार कर लिया है, जैसा कि निम्न उद्धरणो पर से विदित होता है।

१ लिंगव्यभिचार —

१. ध० । पु १ । पृ० ८७ । ६ "स्त्रीलिंग के स्थान पर पुलिंग का कथन करना और पुलिग के स्थान पर स्त्रीलिग का कथन करना आदि लिग व्यभिचार है। जैसे —

(i) 'तारका स्वाति.' अर्थात स्वाति नक्षत्र तरका है। यहा पर तारका शब्द स्त्रीलिगी और स्वाति शब्द पुल्लिगी है। इसलिये स्त्रीलिगी के स्थान पर पुलिगी कहने से लिंगव्यभिचार है।

(ii) 'अवगमो विद्या' अर्थात ज्ञान विद्या है। यहा पर अवगम शव्द पुल्लिगी और विद्या शब्द स्त्रीलिगी है। इसलिये पुलिंगी के स्थान पर स्त्रीलिगी कहने से लिगव्याभिचार है।

(iii) 'विणा आतोद्यम्' अर्थात वीणा वाजा आतोद्य कहा जाता है । यहां पर वीणा शब्द स्त्रीलिगी और आतोद्य शब्द नपुसक लिगी है । इसलिये स्त्रीलिग के स्थान पर नपुसक लिग का कथन करने से लिग व्याभिचार है ।

(iv) 'आयुधं शक्तिः अर्थात शक्ति एक आयुद्ध (हथियार) है । यहा पर आयुद्ध शब्द नपुसक लिगी और शक्ति शब्द स्त्री लिगी है । इसलिये नपुसकलिग के स्थान पर स्त्रीलिग का कथन करने से लिग व्यभिचार है ।

(v) 'पटोवस्त्रम्' अर्थात पट वस्त्र है । यहा पर पट शब्द पुंल्लिगी और वस्त्र शब्द नपुसकलिगी है । इसलिये पुंल्लिग के स्थान पर नपुसकलिग का कथन करने से लिग व्यभिचार है ।

(vi) 'आयुध परशु· अर्थात फरसा आयुध है । यहा पर आयुध शब्द नपुसकलिगी और परशु शब्द पुंल्लिगी है । इसलिये नपुसकलिग के स्थान पर पुंल्लिग का कथन करने से लिग व्यभिचार है ।"

रा. वा ।१।३३।६।६८।१२। (स सि. ।१।३३।५१७) (क पा. ।पु १।पृ. २३५) (धापु६।पृ १७६)

२. संख्या व्यभिचार —

ध.।पु१। पृ८७।२२ "एकवचन की जगह द्विवचन आदि का कथन करना सख्या व्यभिचार है जैसे—

(i) 'नक्षत्र पुनर्वसू' अर्थात पुनर्वसू नक्षत्र है । यहा पर नक्षत्र शब्द एक वचनान्त और पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है ।

इसलिये एकवचन के स्थान पर द्विवचन का कथन करने से सख्या व्यभिचार है ।

(ii) 'नक्षत्र शतभिषज:' अर्थात शतभिषज नक्षत्र है । यहां पर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त और शतभिषज शब्द बहुवचनान्त है। इसलिये एकवचन के स्थान पर वहुवचन का कथन करने से संख्याव्यभिचार है ।

(iii) 'गोदौ ग्राम.' अर्थात गायो को देने वाला ग्राम है । यहां पर 'गोद' शब्द द्विवचनान्त और ग्राम शब्द एकवचनान्त है । इसलिये द्विवचन के स्थान पर एकवचन का कथन करने से सख्या व्यभिचार है ।

(iv) 'पुनर्वसू पंचतारका.' अर्थात पुनर्वसू पाच तारे हं । यहा पर पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त और पंचतारका शब्द बहुवचनान्त है। इसलिये द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का कथन करने से सख्या व्यभिचार है ।

(v) 'आम्रा.वनम्' अर्थात आमो के वृक्ष वन हैं । यहां पर आम्र बब्द वहुवचनान्त और वन शब्द एकवचनान्त है इसलिये वहुवचन के स्थान पर एकवचन का कथन करने से संख्याव्यभिचार है।

(vi) 'देवमनुष्या: उभौराशी' अर्थात देव और मनुष्य ये दो राशि हैं । यहां पर देवमनुष्य शब्द बहुनचनान्त और राशि शब्द द्विवचनान्त है। इसलिये बहुवचन के स्थान पर द्विवचन का कथन करने से सख्याव्यभिचार है "

(रा० वा० ।१।३३।६।६८।१०), (स० सि० १।३३।५१७), (क० पा०।पु०१।पृ. ३३६), (ध.।पु६पृ१७७)

३. काल व्यभिचार –

१ धा।पु१।पृ८८।१४ "भविष्यत आदि काल के स्थान पर भूत आदि काल का प्रयोग करना कालव्यभिचार है। जैसे ––

(i) "विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' अर्थात जिसने समस्त विश्व को देख लिया है ऐसा इसके पुत्र होगा। यहा पर विश्व का देखना भविष्यत काल का कार्य है, (क्योकि पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात तपश्चरणादि द्वारा सर्वज्ञ बनेगा) परन्त उसका भूतकाल के प्रयोग द्वारा कथन किया गया है। इसलिये यहा पर भविष्यत काल का कार्य भूतकाल मे कहने से काल व्यभिचार है।

(ii) इसी तरह 'भावीकृत्यमासीत्' अर्थात आगे होने वालाकार्य हो चुका। यहा पर भी भविष्यत काल के स्थान पर भूतकाल का कथन करने से कालव्यभिचार है।"

(रा. वा. ।१।३३।६।६८।२१), (स. सि ।१।३३।५२२), (क० पा० ।पु० १।पृ०।२३६), ध० ।पु० ६।पृ० १७७)

४. कारक या साधन व्यभिचार––

१ ध पु।।१।पृ ८८।२० "एक साधन अर्थात एक कारक (या विभक्ति)के स्थान पर दूसरे कारक के आयोग करने को साधन व्यभि चार कहते है। जैसे –

(i) 'ग्राममधिशेते' वह ग्राम मे शयन करता है। यहा पर सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है। इसलिये यह साधन व्यभिचार है।"

(स. सि ।१।३३।५१८) क पा. ।पु. ।१।पृ. २३७), (ध. पु. ६।पृ. १७८)

५. पुरुष व्यभिचार:-

१. ध०।पु०।पृ० ८८ २३ 'उत्तम पुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष और मध्यम पुरुष के स्थान पर उत्तम पुरुष आदि के कथन करने को पुरुष व्यभिचार कहते हैं। जैसे:—

(i) 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि नही यास्यसि यातस्ते पिता' अर्थात आओ ! तुम समझते हो कि मै रथ से जाऊँगा, परंतु तुम क्या जाओगे, तुम्हरा बाप भी कभी रथ मे बैठकर गया है ?" यहां पर 'मन्यसे' के स्थान पर 'मन्ये' यह उत्तम पुरुष का और 'यास्यामि' के स्थान पर 'यास्यसि' यह मध्यम पुरुष का प्रयोग हुआ है। इसलिये पुरुष व्यभिचार है ।

(रा वा. ।१।३३।६।६८।२०), (स. सि. ।१।३३।५१८), (क. पा. ।पु.१।पृ २३७), ध० ।पु. ६ ।पृ १७८)

६. उपग्रह व्यभिचार -

१. ध० ।पु० १।पृ० ८६।१० "उपसर्ग के निमित्त से परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद और आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद के कथन कर देने को उपग्रह व्यभिचार कहते हैं। जैसे —

(i) 'रमते' के स्थान पर 'विरमति', 'तिष्ठति' के स्थान पर 'सतिष्ठते' और 'विशति' के स्थान पर 'निविशते' का प्रयोग किया जाता है।"

(रा. वा. ।१।३३।६।६८।२२), (स. सि. ।१।३३।५२६), (क. पा. ।पु. १।पृ. २३७), ध० ।६।पृ. १७८)

६. शब्द नय का लक्षण

जैसा कि पहिले परिचय देते हुए तथा व्यञ्जन नयों की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता दर्शाते हुए भलीभाति बता दिया गया है, व्यञ्जन नयो का व्यापार शब्द के अर्थ मे अथवा उसका ठीक प्रकार प्रयोग करने मे होता है, ताकि श्रोता को किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न होने पावे। व्यञ्जन नय शब्द को सूक्ष्म दृष्टि से देखता हुआ उसे वाच्य के अधिकाधिक अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता है। व्याकरण सम्बन्धी अनेको दोषो की अपेक्षा रखता हुआ बड़ी सावधानी से शब्द प्रयोग की रीति बताता है। एक मात्रा के हेर फेर से शब्द के वाच्यार्थ मे बहुत अन्तर पड़ जाता है। उसी को दर्शाना इन नयों का काम है। इन मे से यह पहिला शब्द नय अत्यन्त स्थूल है। यद्यपि ऋजुसूत्र की अपेक्षा सूक्ष्म है परन्तु व्यञ्जन नयो की अपेक्षा सब से स्थूल है।

ऋजुसूत्र नय के प्रतिपादन मे अनेकों शब्द गम्य दोष दिखाई देते है, कारण कि वह लौकिक व्याकरण के नियम रूप व्यवहार का अनुसरण करता है। व्याकरण यद्यपि साधारण घरेलु बाल भाषा को बहुत अंश मे निर्दोश बना देता है, परन्तु शब्द गम्य सूक्ष्म दोष उसकी स्थूल दृष्टि मे दिखाई नही देते। जीवन के सूक्ष्म विकल्पो का निरीक्षण करने वाले वीतरागी जन ही उन को स्पर्श कर पाये है।

व्याकरण मे भी यद्यपि शब्द व्यवहार की शुद्धता का विचार रखते हुए अनेकों नियम बनाये गये। विरोधी लिग व सख्या आदि के वाचक शब्दो का परस्पर मे सम्मेल रूप व्याभिचार यद्यपि उसकी दृष्टि मे भी अखरता है, और इसी लिये वह भी समान लिग व समान संख्या आदि वाचक शब्दो का ही प्रयोग युक्त मानता है, परतु लौकिक व्यवहार का सर्वथा लोप होन के भय से अपने नियमो मे यत्र तत्र अनेकों अपवाद स्वीकार करके उनको सहर्ष कलकित कर लेता है। परन्तु वीतराग वाणी को व्यवहार लोप का भय क्यो हो?

वह निर्भिक रूप से व्याकरण मान्य सर्व अपवादो का जोर से निषेध करती है। यही शब्द नय का मुख्य व्यापार है।

पदार्थ या व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा रखे विना केवल शब्द मात्र के आधार पर जो वाच्य पदार्थ का परिचय दे, उसे शब्द नय कहते है, जैसे अग्नि शब्द का उच्चारण करने मात्र से अग्नि पदार्थ का ग्रहण हो जाता है, भले ही अग्नि सामने हो या न हो।

यह शब्द अनेक प्रकार के होते है—भेद ग्राही व अभेद ग्राही, स्त्रीलिगी, पुरुषलिगी नपुसकलिगी, एक वचन, द्विवचन, वहु वचन, कर्ता आदि छ. कारको के वाचक, भूतकाल वाची, वर्तमानकाल वाची, भविष्यतकाल वाची, प्रथम पुरुष वाची, मध्यम पुरुष वाची, उत्तम पुरुष वाची, परस्मैपद रूप और आत्मनेपद रूप। इन सब प्रकार के शब्दों का परिचय पहिले प्रकरण न० ४ व ५ मे दिया जा चुका है।

लौकिक व्याकरण का अनुसरण करने वाला ऋजुसूत्र नय लिग संख्या आदि के व्यभिचारो को व्याकरण के नियमो के अपवाद रूप से स्वीकार कर लेता है, पर शब्द नय को वह सहन नही होते। अतः समान लिग व सख्या वाचक शब्दों को ही एकार्थ वाचक रूप से ग्रहण करता है। जिस प्रकार भिन्न स्वभावी पदार्थ भिन्न ही होते हैं, उनमें किसी प्रकार भी अभेद नही देखा जा सकता उसी प्रकार भिन्न लिंग आदि वाले शब्द भी भिन्न ही होने चाहिये, उनमे किसी प्रकार भी एकार्थता घटित नही हो सकती और इस प्रकार दारा, भार्या, कलत्र यह भिन्न लिग वाले तीन शब्द, अथवा नक्षत्र, पुनर्वसू, शतभिषज्ञ यह भिन्न सख्या वाचक तीन शब्द, और इसी प्रकार अन्य भी भिन्न स्वभाव वाची शब्द, भले ही व्यवहार मे या लौकिक व्याकरण मे एकार्थ वाची समझे जाये परन्तु शब्द नय इनको भिन्न अर्थ का वाचक समझता है।

यहां शका हो सकती है कि इस प्रकार तो लौकिक व्याकरण या शब्द व्यवहार का लोप हो जायेगा। सो इसका उत्तर आगमकारों न निम्न प्रकार दिया है–

स. सि ।१ ।३३ ।५३४ "लोकसमयविरोध इति चेत् ? विरुध्यताम्। तत्त्वमिह मीमास्यते, न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति।"

शंका –इस से लोक समय का (व्याकरण शास्त्र का) विरोध हो जायेगा ?

उत्तर —यदि विरोध होता है तो होने दो, इससे हानि नही, क्योकि यहा तत्व की मीमासा की जा रही है। दवाई कुछ पीडित पुरुषो की इच्छा का अनुकरण करने वाली नही होती।

(रा. वा ।१।३३।६।६८ ।२५)

अत: समान लिग व सख्या वाले शब्दो मे ही एकार्थ वाचकता बन सकती है, जैसे इन्द्र, पुरन्दर, शक्र यह तीनों शब्द समान पुल्लिगी होने के कारण एक 'शचोपति' के वाचक है, ऐसा शब्द नय कहता है।

तात्पर्य यह कि काल कारक लिग संख्या वचन और उपसर्ग के भेद से शब्द के अर्थ मे भेद मानने को शब्द नय कहते है। जैसे बभूव भवति भविष्यति अर्थात होता था, होता है, होगा। ऐसे भिन्न काल वाचक करोति, क्रियते अर्थात करता है, किया जाता है ऐसे भिन्न कारक वाची; तट, तटी, तटम् ऐसे भिन्न लिगी; दारा कलत्रम् ऐसे भिन्न सख्यावाची 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता' अर्थात 'तुम समझते हो कि मै रथ से जाऊगा, इत्यादि, ऐसे भिन्न पुरुष वाची, सतिष्ठते, अवतिष्ठते ऐसे भिन्न उपसर्ग वाले शब्द व्याकरण मे प्रसिद्ध है। इसका यह अर्थ भी न समझ लेना कि काल

कारक आदि के भेद से शब्द के वाच्यार्थ को भी सर्वथा अलग मानने को शब्द नय कहता है। क्योकि ऐसा मानना तो शब्दाभास स्वीकार किया गया है। जैसे सुमेरू था, सुमेरू है, और सुमेरू होगा आदि भिन्न भिन्न काल के शब्द होने से भिन्न-भिन्न अर्थो का प्रपादन करते हैं ऐसा मानना ठीक नही है ।

इस प्रकार शब्द नय को मुख्यत. चार लक्षण ग्रहण किये जा सकते हैं ।

१. व्युत्पत्ति अर्थ से निरपेक्ष केवल शब्द पर से अर्थ का ग्रहण करना ।

२. भिन्न लिंग सख्या आदि वाचक शब्दों के अर्थ मे भेद देखना ।

३. लिग सख्या आदि के व्याभिचार दोष को दूर करना ।

४. समान स्वभावी अनेक पर्यायवाची शब्दों की एकार्थता को स्वीकार करना ।

अब इन्ही लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देता हूँ ।

१ लक्षण नं० १ (निरुक्ति-शब्द पर से अर्थ का ग्रहण)

१. रा. वा० ।१ ।३३।९८ "शपत्यर्थमाह्ययति प्रत्ययतीति शब्दः। उच्चरित: शब्द कृतसंगीते: पुरुषस्य स्वभिधेये प्रत्यय-मादधाति इति शब्द इत्युच्यते ।"

अर्थ—जो शपति अर्थात अर्थ को बुलाता है या उसका ज्ञान कराता है वह शब्द नय है । जिस व्यक्ति ने संकेत ग्रहण किया है उसे अर्थबोध करने वाला शब्द नय होता है ।

(ध ।९ ।१७६ ।५)

२. ध० ।पु० १ ।पृ० ८६ ।६ "शब्दपृष्ठतोऽर्थग्रहणप्रवण: शब्द नय: ।"

अर्थ—शब्द को ग्रहण करने के वाद अर्थ ग्रहण करने मे समर्थ शब्द नय है ।

३ श्ल० वा० ।१।३३ ।७२ "कालकारकलिगसंख्यासाधनपग्रह-भेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्द नय. ।"

अर्थ—काल, कारक, लिंग, संख्या, साधन, उपग्रह, आदि के भेदो से भेद रूप शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थ जो ग्रहण करता है वह शब्द नय है ।

(प्र. क मा. ।पृ० २०६)

४.आ प.१६ ।पृ० १२४ "शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्यय-द्वारेण सिद्ध शब्द: शब्दनय. ।"

अर्थ:—जो शब्द व्याकरण, प्रकृति प्रत्यय आदि से सिद्ध हो उसे शब्द नय कहते है ।

२. लक्षण नं० २ (भिन्न लिंगादि वाले शब्दों का भिन्न अर्थ

१ श्ल वा ।१ ३३। श्ल ६८ "कालादिभेदतोऽर्थस्य भेद य: प्रतिपादयेत् । सोऽत्र शब्दनय. शब्द प्रधानत्वादुदाहृत. ।६८।"

अर्थ—काल सख्या कारक आदि के भेद से जो अर्थ के भेद का प्रतिपादन करे, शब्द प्रधान होने के कारण उसे ही यहा शब्द नय कहा गया है ।

२ प्र. क. मा. ।पृ० २०६ "कालकारकलिगसख्यासाधनोपग्रह-भेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नय: ।"

अर्थ—काल, कारक, लिंग, संख्या, साधन और उपग्रह के भेद से जो भिन्न भिन्न अर्थो को वुलाता है अथात भिन्न अर्थ का ग्रहण करता है वह शब्द नय है ।

(श्ल. वा ।१ ।३३ । ७२)

३ स. भ. त । टी पृ ३१३ "विरोधिलिङ्गसंख्यादिभेदाद्भिन्नस्वभावताम् । तस्यैव मन्यमानोऽय शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ।।

अर्थः-विरोधी लिंग, संख्या आदि के भेद से शब्द भी भिन्न स्वभाव वाले होते है । ऐसा ही जो मानता है वही यह शब्द नय कहलाता है ।

४ श्ल ।पृ० २७२ ।२७३ "ये हि वैयाकरण व्यवहारनयानुरोधेन 'धातु सम्बन्धे प्रत्ययाः' इति सूत्रमारम्य विश्वदृश्वाऽस्य-पुत्रो जनिता, भावीकृत्यमासीदित्यत्र कालभेदेऽप्येकपदार्थ मादृता यो विश्वं दृश्यति सोऽपि पुत्रो जानितेति भविष्य-तकालेनातीतकालस्याभेदोऽभिमत्', तथाव्यवहारदर्शना-दिति । तत्र यः परीक्षायाः मूलक्षते. कालभेदोऽर्थस्या-भेदेऽतिप्रसंगात रावणशंखचक्रवर्तिमोरप्यतीतानागतकाल-योरेकत्वापत्तेः । आसीद्रावणो राजा, शंखचक्रवर्ती भविष्यतीति शब्दयोर्भिन्नविषयत्वात् नैकार्थेति चेत्, विश्वदृश्वा जनितेत्यनयोरपि माभूत तत् एव । न हि विश्वंदृष्टवान् इति विश्वहृशित्वेतिशब्दस्य योऽर्थोऽतीत-कालस्य जनितेति शब्दस्यानागतकालः पुत्रस्य भाविनोऽती-तत्वविरोधात् । अतीतकालस्याप्यनागतत्वाव्यपरोपादे-कार्थताभिप्रेतेति चेत् तर्हि न परमार्थतः कालभेदेप्यभि-न्नार्थं व्यवस्था ।

'एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, स यातस्ते पिता' इति साधनभेदेपि पदार्थमभिन्नमाहताः

"प्रहासे मन्य वाचि युष्मन्मन्यतेरस्यदेकवच्च" इति वाचनात् । तदपि न श्रेयः परीक्षाया, अहं पचामि, त्वपचसीत्यत्रापि असमद्युष्मन्साधनाभेदेऽप्येकार्थतत्वप्रसगात् ।"

क्रमश --

स० त० ।पृ० ३१३ "तथा पुरुपभेदेऽपि नैकान्तिक तद् वस्तु इति, 'एहि मन्ये' इत्यादि । इति चप्रयोगो न युक्तः, अपितु 'एहि मन्य से यथाऽह रथेन यास्यामि' इत्यनेनैव परभावेनैतन्निर्देष्टव्यम् ।

क्रमश --

पा० ।१ ।४। १०६ "प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एक वच्च ।'

क्रमश --

हैम ।३ ।३ । १७ 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेपिता' इति प्रहासे यथाप्राप्तमेव प्रतिपत्ति नात्र प्रसिद्धार्थविपर्यासे किञ्चिन्निबन्धनमस्ति, 'रथेन यास्यसि, इति भावगमनाभिधानात् प्रहासो गम्यते ।' 'न हि यास्यसि इति बहिर्गमनं प्रतिषिध्यते । अनेकस्मिन्नपि प्रहासितरि च प्रत्येकमेव परिहास इति अभिधानवशाद् 'मन्ये' इति एकवचनमेव । लौकिकश्च प्रयोगोऽनुसर्तव्य इति न प्रकारान्तरकल्पना न्याय्या । त्रीणि त्राणि अन्य युष्मदस्यदि ।

अर्थः—यह जो व्यवहार नय के अनुरोध से वैयाकरणियों की ऐसी मान्यता है, कि ' धातु. सम्बन्धे प्रत्यया' अर्थात धातु के अर्थों के सम्बन्ध मे जिस काल मे जो प्रत्यय पूर्व सूत्रों मे बताये गये है वे प्रत्यय उस काल से अन्य काल मे भी हो जाते है, सो ठीक नही है । इस सूत्र के आधार पर

ही वे 'जिसने समस्त विश्व को देख लिया है' अथवा 'आगे होने वाला कार्य हो चुका है' इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करके भविष्यत काल के साथ अतीत काल का अभेद मानते हैं। यहां इन वाक्यों में "भूत भविष्यत काल सम्बन्धी भेद स्पष्ट देखने मे आता है तो भी इस प्रकार के प्रयोगों का व्यवहार देखा जाता है" उपरोक्त प्रकार के प्रयोगों को युक्त दर्शाने के लिये वह यही हेतु दिया करते है। परीक्षा करने पर यह स्पष्ट है कि वास्तव में तो होने वाला पुत्र आगे जाकर विश्व को देखेगा, उत्पन्न होने से पहिले ही जिस ने विश्व को देख लिया है' ऐसा कहना न्याय सगत नही है। अत 'जो विश्व को देखेगा ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा' इस प्रकार का प्रयोग होना चाहिये था। परन्तु केवल व्यवहारिक प्रवृत्ति के आधार पर 'जिसने विश्व को देख लिया है ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा' इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा भविष्य काल मे अतीत काल का अभेद उनकी व्याकरण मे न्याय माना गया है।

परीक्षा की मूल क्षति होने पर भी यदि इस प्रकार का प्रयोग ठीक मान जायेगा तो काल भेद मे भी अर्थ के अभेद का प्रसंग आयेगा और अतीत काल वर्ती रावण तथा अनागत काल वर्ती शंखचक्रवर्ती की एकता मानने का प्रसग प्राप्त होगा। यदि इस दोष को टालने के लिये यह कहा जाये कि 'रावण राजा था, और 'शख चक्रवर्ती आगे होगा' इस प्रकार यहां विषय की भिन्नता है, अतः उपरोक्त एकार्थता का दोष यहां प्राप्त नही होता; तो जिस ने विश्व को देख लिया है' और 'उत्पन्न होगा' इन दोनों मे भी एकार्थता न होवे। भावि पुत्र

की अतीतपने का विरोध होने के कारण, 'जिसने विश्व को देख लिया है' ऐसे विश्वदृशिपने के भूत काल का 'उत्पन्न होगा' इस शब्द के अनागत काल के साथ, एकार्थता नही हो सकती। यदि उपचार या भूतकाल में भविष्यत पने का आरोप करके यह एकार्थता स्वीकार की जायेगी, तो परमार्थ से काल भेद होने पर भी अभिन्न अर्थ की व्यवस्था न हो सकेगी।

इसी प्रकार एक दूसरा प्रयोग हसी मे किया जाता है, आओ ! तुम समझते हो कि मै रथ से जाऊगा, तुम क्या जाओगे, क्या तुम्हारा पिता भी कभी रथ मे बैठकर गया है ? इस प्रकार साधन या कारक भेद मे भी पदार्थ की अभिन्नता स्वीकार की गई है, क्योकि ' प्रहासे मन्य वाचि पुष्पन्मन्यतेरस्मदेकवच्च, अर्थात हसी मे 'मन्य, धातु के प्रकृतिभूत होने पर दूसरी धातुओं में उत्तम पुरुष के बदले मध्यम पुरुष हो जाता है और मन्यसि धातु को उत्तम पुरुष हो जाता है, जोकि एक अर्थ का वाचक है, इस प्रकार का नियमव्याकरण को मान्य है। परीक्षा करने पर यह भी ठीक प्रतीत नही होता, क्योकि ऐसा मानने पर ' मै पकाता हु ' 'तू पकाता है 'इन प्रयोगो मे भी अस्मद और युष्मद साधन का अभेद होने के कारण एकार्थ पने का प्रसग प्राप्त हो जायेगा अर्थात यहां भी 'मे पकाता है' तु पकाता हु, ऐसा कहना पडेगा।

पुरुष भेद मे भी एकार्थता नही की जा सकती क्योकि आओ ? मानते हूँ' ऐसा प्रयोग युक्त नही। बल्कि 'आओ ! तुम मानते हो कि मै रथ से जाऊँगा' इस प्रकार के परम भाव से ही यह निर्देश करना चाहिये।

हंसी में 'मन्य' पद अपपद मे रहने पर अर्थात प्राप्त होनेपर मन्य धातु से उत्तम पुरुष में एकवत् हो जाता है' ऐसा व्याकरण सूत्र है। (परन्तु यह नियम व्यभिचारी होने के कारण अयुक्त है।)

'आओ! मानता हूँ तू रथ द्वारा जायेगा, नही जायगा, तेरा पिता चला गया' इस प्रहास मे यथा प्राप्त जो प्रतिपत्ति है व प्रसिद्ध अर्थ से विपरीत अर्थ करने मे कारण नहीं कही जा सकती। 'रथ से जायेगा' इस प्रकार भाव गमन के कहने से हसी जानी जाती है, और 'नहीं जायेगा' ऐसा कहना निषिद्ध होता है। अनेक हसने वालों में प्रत्येक प्रत्येक की ही हंसी के प्रति सकेत करने के वश से एक वचन का प्रयोग ही युक्त है। 'लौकिक प्रयोग का अनुसरण करना चाहिये' इस तरह की प्रकारान्तर रूप कल्पना करना भी न्याय संगत नही है।

श्लो. वा. ।१।३।७२ "यस्तु व्यवहार नय. कालादिभेदेऽपि अभिन्नमर्थमभिप्रैति तमनूद्य दूषयन्नाह ।"

अर्थः—व्यवहार नय तो कालादिभेदों के रहते हुए भी उन शब्दों का अभिन्न या एक ही अर्थ ग्रहण करता है। यह शब्द नय उसमे दोष निकालकर भिन्न लिंग आदि वाचक शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है।

६. का अ. ।२७५ "सर्वेषां वस्तूना संख्यालिंगादि बहुप्रकारैः । य साधयति ज्ञानत्व शब्दनय तं विजानीहि ।२७५।

अर्थ—जो नय सब वस्तुओं के संख्या लिग आदि अनेक प्रकार से अनेकत्व को सिद्ध करता है उसको शब्द नय जानना चाहिये।

७. वृ. न. च गद्य पृ. १७ "लक्षणस्य प्रवृत्तौ वा स्वभावाविष्टलिगित। शब्दो लिग स्वसंख्या चन परित्यज्य वर्तते ।"

अर्थ—किसी पदार्थ का लक्षण करते हुए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाये, उन्हे उस पदार्थ के स्वभाव से चिन्हित लिग व सख्या आदि को छोडकर नही वर्तना चाहिये ।

वृ. न. च. ।२१४ "अथवा सिद्धे शब्दे क्रियते यात्किमपि अर्थ व्यवहरणम् । स खलु शब्दे विपय: देव शब्देन यथा देव: ।२१८।"

अर्थः—नित्य प्रयोग मे आने वाले शब्दों मे जो कुछ भी अर्थ का भेद करने मे आता है, वह ही शब्द नय का विपय है, जैसे देव शब्द द्वारा केवल 'देव' का ग्रहण होता है ।

आ. प. ।९। पृ ७९ "शब्दनयो यथा दाराभार्याकलत्रं, जल आप· ।"

अर्थ—शब्द नय को ऐसा जानो जैसे दारा, भार्या और कलत्र ये तीनों शब्द या जल व आप ये दो शब्द ।

(यहा ऐसा तात्पर्य समझना कि यद्यपि उपरोक्त शब्द लोक व्यवहार मे एकार्थवाची माने जाते है, परन्तु भिन्न लिगी होने के कारण इन मे अर्थ भेद अवश्य है । 'दारा' शब्द पुलिंगी है, 'भार्या' स्त्री लिगी है और 'कलत्र' शब्द नपुँसक लिगी है और इसी प्रकार 'जल' शब्द नपुँसक लिगी एक वचनान्त है और 'आप:' शब्द स्त्री लिंगी वहुवचनान्त है । अत. इन शब्दों का अर्थ समान नही है ।

स० म० ।२८ ।३१३ ।३० "यथा चाय पर्याय शब्दानामेकमर्थमभिप्रैति तथा तटस्तटीतरम् विरूध्दलिंगलंक्षणधर्माभि-

सम्वन्धाद् वस्तुनो भेदं चाभिधत्ते। नहि विरुद्धकृत भेदमनुभवतो वस्तुनो विरुद्ध धर्मायोगो युक्तः। एव संख्या काल कारक पुरुषादिभेदाद् अपि भेदोऽभ्युपगन्तव्यः। तत्र संख्या एकत्वादिः, कालोऽतीतादिः, कारक कर्त्रादि, पुरुषः प्रथम। पुरुषादिः।

क्रमशः—

स. म. २८।३१६।श्ल ५ उद्धत "विरोधिलिंग संख्यादिभेदाद् भिन्नस्वभावताम्। तस्यैव मन्यमानोऽय शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ॥५॥

अर्थः–जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर परस्पर पर्यायवाची शब्द एक अर्थ को द्योतित करते हैं, वैसे ही 'तट, तटी, तटम्' परस्पर विरुद्ध लिंग, लक्षण, वर्यय वाले शब्दो से पदार्थो के भेद का ज्ञान भी होता है। भेदों को अनुभवने वाली वस्तु को विरुद्ध धर्मो से संयुक्त कहना विरुद्ध नही है। इसी प्रकार संख्या-एकत्व आदि काल-अतीत आदि, कारक-कर्त्ता आदि, और पुरुष-प्रथम पुरुष आदि के भेद से शब्द और अर्थ मे भेद समझना चाहिये। कहा भी है–

(परस्पर विरुद्ध लिंग संख्या आदिक के भेद से वस्तु मे भेद मानने को शब्द नय कहते हैं।)

३. लक्षण नं० ३ (व्याभिचार निवृत्ति)

१ स सि।१।३३।५१७ "लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्द नय।"

अर्थ–लिंग सख्या और साधन आदि के व्याभिचार की निवृत्ति करने वाला शब्द नय है।

त सा. १।४८।३९

२ रा. वा. ।१ ।३३ ।९ ।९८ "सच लिगसंख्यासाधनादिव्यभिचार-निवृत्तिपर. । ....एवमादयो व्यभिचारा अयुक्ताः । कूतः ? अन्यार्थस्यान्यार्थेन सम्वन्धाभावात् । यदि स्यात्, घट· पटो भवतु पटो वा प्रासाद इति । तस्माद्यथालिग यथासस्य यथासाधनादि च न्याय्यभमिधानम् ।"

अर्थ.—शब्दनय लिग संख्या साधनादि सम्वन्धी व्यभिचार की निवृत्ति करता है, अर्थात उसकी दृष्टि से यह व्यभिचार हो ही नही सकते । यह सव व्यभिचार अयुक्त है क्योकि अन्य अर्थ का अन्य अर्थ के साथ सम्वन्ध नही है, अन्यथा 'घट' 'पट' हो जायेगा और 'पट' 'मकान' । अत. यथा लिग यथाचवन और यथासाधन प्रयोग करना ही न्याय है ।

(ध । पु १ ।पृ. ८७, ८९) (ध ।पु. ९ । पृ. १७६ १। क. पा. ।पु०) पृ० २३५ ।१)

४ लक्षण नं० ४ (अनेक शब्दों से एक अर्थ का प्रतिपादन)·—

१. स. वा. ।४ ।४२ ।१ ।२६१ ।१२ "शब्दे पर्यायशब्दान्तरप्र-योगेऽपि तस्यैवार्थस्याभिधानाद: भेद ।"

अर्थ—शब्द नय मे पर्यायवाची विभिन्न शब्दो का प्रयोग होने पर भी उसी अर्थ का कथन होता है अतः अभेद है ।

२ स. म. ।२८ ।३१३ ।२४ "शब्दस्तु रूढ़ितो मावन्तो ध्वनय कस्मिश्चिदर्थे प्रवर्तन्ते, यथाइन्द्रशक्रपुरन्दरादयः सुरपतौ तेषा सर्वेषामप्येकमर्थमभिप्रेति किल, प्रतीतिवशाद् । यथा शब्दाव्यतिरेकोऽर्थस्य प्रतिपाद्यते तथैव तस्यैकत्वमनेकत्व

वा प्रतिपादनीयम् । न च इन्द्रशक्रपुरन्दरादयः पर्याय-शब्दा विभिन्नार्थवाचितया कदाचन प्रतीयन्ते । तेभ्यः सर्वदा एकाकारपरामर्शोत्पत्तेरस्खलितवृत्तितया तथैव व्यवहारदर्शनात् । तस्माद् एक एव पर्यायशब्दानामर्थ इति । शब्धते आहूयतेऽनेनाभिप्रायेणार्थः इति निरुक्तात् एकार्थप्रतिपादनाभिप्रायेणैव पर्यायध्वनीनां प्रयोगात् ।"

अर्थ–रूढ़ि से सम्पूर्ण शब्दों के एक अर्थ मे प्रयुक्त होने को शब्द नय कहते है । जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि सर्व शब्द एक 'सुरपति' अर्थ के द्योतक है । जैसे शब्द अर्थ से अभिन्न है वैसे ही उसे एक और अनेक भी मानना चाहिये । अर्थात जिस प्रकार वाचक शब्द से पदार्थ को अभिन्न मानते है, उसी प्रकार प्रतीति गोचर होने के कारण उन सम्पूर्ण शब्दो के अर्थ के (वाच्यार्थ वाच्यार्थो को) भी एक मान सकते है । इन्द्र शक्र और पुरन्दर आदि पर्याय वाची शब्द कभी भिन्न अर्थ का प्रतिपादन नही करते, क्योंकि उनसे एक ही अर्थ का ज्ञान होने का व्यवहार है । अतएव इन्द्र आदि पर्याय वाची शब्दो का एक ही अर्थ है । जिस अभिप्राय से अर्थ कहा जाये उसे शब्द कहते है । अतएव सम्पूर्ण पर्याय वाची शब्दो से एक ही अर्थ का ज्ञान होता है ।

लक्ष्य लक्षण आदि सयोगो मे लिगादि का व्यभिचार पड जाने

७. शब्द नय के कारण व प्रयोजन

पर वाक्य कुछ अटपटा सा प्रतीत होने लगता है, जैसे कि "ससारी जीव नित्य दु खो मे वर्तने वाली आत्मा है" इस वाक्य मे स्पष्ट प्रतीति मे आ रहा है । जीव की तरफ़ देखने पर तो "दुःखो मे वर्तने वाला आत्मा है" ऐसा कहने को जी करता है और आत्मा की तरफ देखने पर "वाली आत्मा" ही उपयुक्त प्रतीत होता है । इस उलझन को वाक्य मे से दूर करना

आवश्यक है, नही तो वाक्य दूषित दिखाई देता है। इस वाक्य मे जीव लक्ष्य है और आत्मा उसका लक्षण है। दोनों शब्द भिन्न लिग वाले है, यही कारण है कि यह वाक्य दूषित दिखाई दे रहा है। वाक्य मे ९ शब्द प्रयुक्त हुए है। अवश्य ही इन में से कोई शब्द बदलना पड़ेगा ताकि यह वाक्य सुन्दर सा दिखाई देने लगे। विचार करने पर पता चलता है कि 'ससारी, नित्य, दु:खो वाली इन मे से कोई भी शब्द बदल दे, पर समस्या हल नही होती। आओ जीव व आत्मा इन मे से कोई सा शब्द बदल कर देखे। "ससारी जीव नित्य दु.खो मे वर्तने वाला एक चेतन पदार्थ है" इस वाक्य मे अब कोई दोष दिखाई नही देता। 'आत्मा' के स्थान पर उसका एकार्थ वाची 'चेतन पदार्थ' शब्द डाल देने से लक्ष्य व लक्षण दोनो समान लिग वाले हो गये और वाक्य युक्त हो गया। इसी लिये शब्द नय यह नियम स्थापित करता है कि समान लिग सख्या आदि स्वभाव वाले शब्द ही समान अर्थ के वाचक हो सकते है। यही इस नय का कारण है। और इन व्यभिचार दोषो को दूर करके शब्द साम्य की स्थापना करना इसका प्रयोजन है। व्यभिचार दोषो को युक्त मानने से अन्य पदार्थ भी अन्य पदार्थ बन बैठेगा। कहा भी है.—

रा० वा० ।१।३३ ।६।६८।२३ "एवमादयो व्यभिचारा अयुक्ता। कुत. अन्यार्थस्याऽन्यार्थेन सम्बन्धाभावात्। यदिस्यात, घट पटोभवतु पटो वा प्रासाद इति।"

अर्थः—यह सब व्यभिचार अयुक्त है क्योकि अन्य अर्थ से अन्य अर्थ का कोई सम्बन्ध नही है। यदि ऐसा न माना जाये तो 'घट' पट बन जायेगा और 'पट' मकान। अत: यथा लिग यथा वचन और यथा साधन ही प्रयोग करना चाहिये।

वस्तु के वाचक शब्दों सम्बन्धी विवेक कराने वाले व्यञ्जन नयों में से प्रथम शब्द नय ने केवल लिंगादि व्यभिचार दोषों को दूर किया, अर्थात भिन्न लिंग, सख्या व कारक आदि के वाचक शब्दों की एकार्थता का तो विरोध अवश्य किया, परन्तु समान लिंग आदि वाचक शब्दों को सर्वथा एक रूप स्वीकार कर लिया। उन सर्व शब्दो के अर्थ किसी अपेक्षा भिन्न भिन्न भी हो सकते है यह बात उसकी स्थूल दृष्टि मे न आई।

८ समाभिरूढ. नय का लक्षण

समाभिरुढ नय सामने आकर और सूक्ष्मता से उन्ही एकार्थ वाची शब्दो का निरीक्षण करता हुआ यह बताता है कि भले ही रूढ़ि वश ये सर्व शब्द किसी एक पदार्थ के प्रति सकेत करते हो परन्तु इन का वाच्यार्थ वास्तव मे भिन्न भिन्न ही है। लोक मे जितने पदार्थ है उनके वाचक शब्द भी उतने ही है। यदि अनेक शब्दों का एक ही अर्थ माना जायेगा तो उन के वाच्य पदार्थो को भी मिलकर एक हो जाना पड़ेगा, परन्तु ऐसा होना असम्भव है, अतः प्रत्येक शब्द का भिन्न भिन्न ही अर्थ स्वीकारना चाहिये। और इसीलिये यह नय निरुक्ति व व्युपत्ति अर्थ करके प्रत्येक शब्द का पृथक पृथक अर्थ ग्रहण करता है। इस की दृष्टि मे पर्याय वाची शब्दों की सत्ता नही है।

यहा पर यह शका उत्पन्न हो सकती है कि शब्द वस्तु का धर्म नही है, वस्तु व शब्द में आत्यतिकी पृथकता है, फिर शब्दों की एकार्थता से वस्तु मे अभिन्नता कैसे आ सकती है और उसके भिन्न अर्थ स्वीकार कर लेने मात्र से वस्तु मे भिन्नता कैसे उत्पन्न हो सकती है। सो शंका का समाधान पीछे कारण व प्रयोजन बताते समय देगे, वहा से जान लेना।

यहां तो केवल इतना ही जानना पर्याप्त है कि शब्द नय के द्वारा ग्रहण किये गये समान स्वभावी अर्थात समान लिग आदि वाले

एकार्थ वाची शब्दो मे, निरुक्ति या व्युत्पत्ति अर्थ से अर्थ भेद की स्थापना करने वाला समभिरूढ नय है।जैसे इन्द्र 'पुरन्दर' व शक्र यह तीनो शब्द एक देवराज के लिये प्रयोग करने की प्रसिद्धि है परन्तु इसका यह अर्थ नही कि इन शब्दो का अर्थ सर्वथा एक हो। इन्द्र शब्द का अर्थ ऐश्वर्यवान है, अत. जिसके पास परम ऐश्वर्य का भोग विद्यमान हो उसे ही इन्द्र कहा जा सकता है अन्यको नही। और इसी प्रकार 'शक्र' का अर्थ सामर्थ्यवान और'पुरन्दर' का अर्थ पुरो का विभाजन करने वाला है इस प्रकार ये तीनो शब्द भिन्नार्थ वाची है।

भिन्नार्थता का यह तात्पर्य नही कि ये शब्द सर्वथा रूप से ही भिन्न भिन्न व्यक्ति विशेषो के प्रति सकेत करते हो, जैसे कि हाथी, हिरण व घोडा ये तीनो शब्द पृथक पृथक पदार्थों के वाचक है। पर्याय वाची या एकार्थ वाची शब्दो मे इस प्रकार की पृथकता मानना तो समभिरूढाभास कहा गया है।

१ स. म. २८।३१८।२८ "पर्याय शब्दषु निरुक्तिभैदेन भिन्नमर्थं समभिरोहान् समभिरूढ। इन्द्रादिन्द्रः शकनाच्छक्रः पूर्दारणात्पुरन्दर इत्यादिषु यथा। पर्याय ध्वनीनामभिधेयनानात्वमेव कुक्षीकुर्वाणस्तदाभास.। यथेन्द्रः शक्र. पुरन्दर इत्यादय शब्दा भिन्नाभिधेया एव भिन्नशब्दत्वात् करिकुरङ्ग तुरङ्ग शब्दवत् इत्यादि।"

अर्थ— पर्याय शब्दों मे निरुक्ति के भेद से भिन्न अर्थ को कहना समभिरूढ नय है। जैसे ऐश्वर्यवान होने से इन्द्र, समर्थ होने से शक्र, और नगरो का विभाजन करनेवाला होने से पुरन्दर कहना। पर्यायवाची शब्दो को सर्वथा भिन्न मानना समभिरूढ नयाभास है। जैसे करि, कुरग व तुरंग अर्थात हाथी, हिरण, व धोड़ा परस्पर भिन्न है वैसे

ही इन्द्र, शक्र और पुरन्दर इन शब्दो को सर्वथा भिन्न मानना ।

भिन्नार्थता का यहां इतना ही समझना चाहिये कि एक ही व्यक्ति म उन उन शब्द की वाच्यभूत अनेक योग्यताये है,जिन का दर्शन उसी व्यक्ति या पदार्थ मे भिन्न भिन्न समयो पर होना सम्भव है। और इसीलिये स्थूल दृष्टि से देखने पर हम उस एक पदार्थ को उन पर्याय वाची शब्दो मे से किसी एक शब्द का वाच्य बना सकते है।

यद्यपि शब्द नय और समाभिरूढ नय दोनों ही उन पर्याय वाची शब्दो का प्रयोग एक पदार्थ के लिये कर देते है परन्तु दोनो के प्रयोग मे कुछ अन्तर है । पहिला तो व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा न करके उन्हे परमार्थ रूप से एकार्थक स्वीकार करता है और दूसरा उनकी भिन्नार्थता को देखता हुआ उस उस योग्यता के कारण उपचार मात्र से या रूढिवश उन्हे एक पदार्थ वाची मानता है । जैसे भले ही ऐश्वर्य का उपयोग करते समय भी समभिरूढ नय, इन्द्र को रूढिवश पुरन्दर कहना स्वीकार करले परन्तु इतने मात्र से वह यह नही भूल जाता कि यह प्रयोग उपचार मात्र है, वास्तव मे इन्द्र और पुरन्दर शब्द के अर्थ भिन्न भिन्न हैं। हाथी घोडा आदि सर्वथा भिन्नार्थ वाची शब्दों मे तो इस प्रकार का उपचार भी सम्भव नही है।

यह तो अनेक शब्दो की एकार्थता सम्बन्धी बात हुई अव एक शब्द की अनेकार्थता सम्बन्धी वात सुनिये । व्यञ्जन नयों का प्रकरण प्रारभ करते समय प्रकरण नं. ४ मे यह वताया गया था कि वचन दो प्रकार के होते है–भेद रूप और अभेद रूप । एक पदार्थ के वाचक अनेक पर्याय वाची शब्द भेद रूप है। तथा अनेक पदार्थो का एक वाचक शब्द अभेद रूप है।

जैसे एक 'गो' शब्द के 'गाय' 'वाणी' 'पृथिवी' आदी ग्यारह अर्थ शब्दकोष मे प्रसिद्ध है । इन सभी अर्थो मे यदि एक शब्द का प्रयोग

करने का व्यवहार प्रचलित हो जाये, तो आप ही समझ लीजिये कि क्या गडबड हो जायेगी। वक्ता कुछ और श्रोता कुछ और समझ बैठेगा। जैसे वक्ता कहेगा कि 'गाय को पानी पिला दो' और श्रोता समझेगा कि पृथिवी को पानी पिलाने के लिये कहा जा रहा है। अतः बजाये गाय को पानी पिलाने के पृथिवी को पानी से गीली करके चला आयेगा और गाय बेचारी प्यासी ही मर जायेगी।

इसलिये व्यवहारिक प्रयोग मे निश्चित पदार्थ के लिये निश्चित शब्द ही वाचक रूप से स्वीकार करना चाहिये। भले ही उस शब्द के अनेको अर्थ होते हो, परन्तु सबको छोडकर उस शब्द का एक लोक प्रसिद्ध अर्थ ही ग्रहण करना समभिरूढ नय का काम है, जैसे 'गो' शब्द का प्रयोग गाय नाम के पशु के लिये ही होता है, पृथिवी या वाणी के लिये नही।

इस प्रकार समभिरूढ नय के हम निम्न तीन लक्षण कर सकते है।

१. पर्यायवाची शब्दो मे निरूक्ति या व्युत्पत्ति से अर्थ भेद करना।

२ रूढिवश अनेक पर्याय वाची शब्दो का वाच्य एक पदार्थ को मानना।

३. एक शब्द के अनेक अर्थोंछोडकर एक प्रसिद्ध अर्थ ही ग्रहण करना।

अब इन्ही लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१ लक्षण नं. १ (पर्याय वाची शब्दों में अर्थ भेद —)

१. स. सि ।१।३३।५३७ "अथवा अर्थगत्यर्थः शब्द प्रयोगः। तत्रैकस्यार्थस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्याय-शब्दप्रयोगोऽनर्थकः। शब्दभेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनात्यवश्यं भवितव्यमिति । नानार्थसमभिरोहणत्समभिरूढः । इन्दनादिन्द्र. शकनाच्छक्र. पूदीरणात्पुरन्दर इत्येवंसर्वत्र ।"

अर्थ — अथवा अर्थ का ज्ञान कराने के लिये शब्दों का प्रयोग किया जाता है ऐसी हालत मे एक अर्थका एक शब्द से ज्ञान हो जाता है, इसलिये पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना निष्फल है । यदि शब्दों मे भेद है तो उनमे अर्थ भेद भी अवश्य होना चाहिये । इस प्रकार नाना अर्थो का समभिरोहण करने वाला होने से समभिरूढ नय कहलाता है । जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर यह तीन भिन्न शब्दहोने से इन के अर्थ भी भिन्न भिन्न तीन ही होते है । इन्द्र का अर्थ आज्ञा व ऐश्वर्यवान है, शक्र का अर्थ समर्थ है और पुरन्दर का अर्थ नगरों का विभाजन करने वाला है । इसी प्रकार सर्वज्ञ पर्यायवाची शब्दो के सम्बन्ध मे जानना चाहिये ।

(रा. वा ।१।३३।१०।९८।३०) (स त. टी पृ ३१३)

२ ध।पु१।पृ८१।४ "नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः । इन्दनादिन्द्र. पूदीरणात्पुरन्दर. शकनाच्छक इति भिन्नार्थवाचकत्वान्नैतो एकार्थवर्तिन । न पर्याय शब्दा सन्ति भिन्नपदानामेकार्थं वृत्तिविरोधात् । नाविरोध पदानामेकत्वापत्तिरिति । नानार्थस्यभावः नानार्थता ता समभिरूढत्वात्सभिरूढः ।"

अर्थः— शब्द भेद से जो नाना अर्थ मे रूढ होता है, उसे सम-भिरूढ नय कहते है। जैसे 'इन्दनात्' अर्थात परमऐश्वर्य शाली होने के कारण इन्द्र 'पूदीरणात्' अर्थात नगरो का विभाग करनेवाला होने के कारण पुरन्दर, 'शकनात्' अर्थात सामर्थ्यवान होने के कारण शक्र । ये तीनो शब्द भिन्नार्थ वाचक होने से इन्हे एकार्थवर्ती नही समझना चाहिये। इस नयकी दृष्टि मे पर्यायवाची शब्द नही होते है, क्योकि भिन्न पदो का एक पदार्थ मे रहना स्वी-कार करलेने मे विरोध आता है यदि भिन्न पदो मे ऐसा विरोध न हो तो समस्त पदो को एकत्व की आपत्ति आ जावेगी। नाना पदार्थो के भाव अर्थात विशेषता को नानार्थता कहते है और उस नानार्थता के प्रति जो अभि-रूढ है उसे समभिरूढ नय कहते है।

(श्ल. वा।१।३३।७६) (ध ।६।१७६।१) (क पा। पु १। पृ २३६—२४०)

३ स. म. ।२८।३१४।१५ "समभिरूढस्तु पर्यायशब्दाना प्रविभक्त-मेवार्थभभिमन्यते । तद्यथाइन्दनात् इन्द्र. परमैश्वर्यम् इन्द्रशब्दवाच्य परमार्थतस्तद्वत्यर्थे । अतद्वत्यर्थेपुनरुपचार-तो वर्तते । नवा कश्चित् तद्वान् । सर्वशब्दाना परस्पर-विभक्तार्थ प्रतिपादित या आश्रयामिभावेन प्रवृत्यासिद्धे. । एव शकनात् शक्र', पूदीरणात् पुरन्दर इत्यादिभिन्नर्थत्व सर्वशब्दाना दर्शयति । प्रमाणयति च । पर्यायशब्दा अपि भिन्नार्थ. । प्रविभक्तव्युत्पत्तिनिमित कत्वात् । इह ये ये प्रविभक्तव्युत्पत्तिनिमित्तकास्ते ते भिन्नार्थका. । इन्द्रनशु-पुरुषशब्दः । विभिन्न विभक्तिनिमित्तकाश्च पर्यायशब्दा अपि ।अतो भिन्नार्था इति ।"

अर्थ — समाभिरूढ नय पर्याय शब्दो मे भिन्न अर्थ को द्योतित करता है । जैसे इन्द्र, शक्र, और पुरन्दर शब्दो के के पर्यायवाची होने पर भी इन्द्र से परम ऐश्वर्य-वान शक्र से सामर्थ्यवान और पुरन्दर से नगरो को विदारण करने वाले भिन्न भिन्न अर्थो का ज्ञान होता है । वास्तव मे इन्द्र शब्द के कहने से इन्द्र शब्द का वाच्य परम ऐश्वर्य पना इन्द्र मे ही मिल सकता है । जिसमे परम ऐश्वर्य नही है, उसे केवल उपचार से ही इन्द्र कहा जा सकता है । इसलिये जो वास्तव मे परम ऐश्वर्य से रहित है उसे इन्द्र नही कह सकते । अतएव परस्पर भिन्न अर्थ को प्रतिपादन करने वाले शब्दो मे आश्रय और आश्रयी सम्बन्ध नही बन सकता । इसी तरह भिन्न भिन्न व्युत्पत्ति के निमित्त से शक्र और पूर-न्दर शब्द भी भिन्न अर्थ को द्योतित करते हैं । अतएव भिन्न व्युत्पत्ति होने से पर्यायवाची शब्द भिन्न भिन्न अर्थो के द्योतक है । जिन शब्दो की व्युत्पत्ति भिन्न भिन्न होती है वे शब्द भिन्न भिन्न अर्थो के द्योतक होते है, जैसे इन्द्र पशु और पुरुष शब्द । पर्यायवाची शब्द भी भिन्न व्युत्पत्ति होने के कारण भिन्न अर्थ को सूचित करते है ।

४. स म ।२८।३१६।श्ल ६ उद्धत "तथाविधस्य तस्यापि वस्तुनः क्षणवर्तिन. । ब्रूते समभिरूढस्तु सज्ञाभेदन भिन्नताम् ।६।"

अर्थ — तथाविध उस ऋजुसूत्र की विषयभूतक्षवणर्ती वस्तु को समाभिरूढ नय सज्ञा भेद के द्वारा भिन्न भिन्न जानता है ।

५ स म.त. ।६१।४ "समभिरूढनयापेक्षया शब्दभेदाद्ध्रुवार्थभेद-स्तथा अर्थभेदादपि शब्दभेदस्सिद्ध एव । अन्यथा वाच्य वाचकनियम व्यवहार विलोपात् ।"

अर्थः—समभिरूढ नय की अपेक्षा से शब्दभेद के कारण निश्चित रूप से अर्थ मे भेद होता ही है। इसी प्रकार अर्थभेद से शब्दभेद भी सिद्ध ही है। अन्यथा पदार्थ व शब्दके बीच वाच्यवाचक नियम के व्यवहारका लोप हो जायेगा।

६ का अ ।२७६ "य एकैकमर्थं परिणतिभेदेन साधयतिज्ञान। मुख्यार्थं व भाषयति अभिरूढत नय जानी हि ।२७६।"

अर्थ— जो नय वस्तु को परिणाम के भेद से एक एक भिन्न भिन्न भेदरूप सिद्ध करता है अथवा उनमे से मुख्य अर्थ को ग्रहण करके सिद्ध करता है उसको समभिरूढ नय जानना चाहिये।

नय चक्रगद्य पृ १८७ "शब्दभेदेन चार्थस्यभेद तथ्य करोति यः। अर्थभेदात्तथा तस्य भेद समभिरूढक ।"

अर्थः- शब्दभेद के द्वारा जो अर्थ भेद को भी ग्रहण करता है, उसी प्रकार अर्थ भेद से शब्द भेद को जो ग्रहण करता है वह समभिरूढ नय है।

२ लक्षण नं० २ (रूढि वश पर्यायवाची शब्दों में एकार्थता) –

१. स म. ।२८ ।३१८ २८ "पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समाभिरोहत् समभिरूढ.। इन्दनादिन्द्र. शकनाच्छक्र, पूर्दारणात्पुरन्दर इत्यादिषु यथा। पर्यायध्वनीनामभिधेयनानात्वमेव कुक्षीकुर्वाणस्तदाभास। यथेन्द्र. शक्र पुरन्दर इत्यादय शब्दा भिन्नाभिधेया एव भिन्नशब्दत्वात् करिकुरङ्गतुरङ्ग शब्दवद् इत्यादिः।"

अर्थ—पर्याय शब्दो मे निरुक्ति के भेद से भिन्न अर्थ को कहना समभिरूढ नय है। जैसे ऐश्वर्यवान होने से इन्द्र, समर्थ होने से शक्र, और नगरो का विभाग करने वाला होने से पुरन्दर कहना । पर्यायवाची शब्दों को सर्वथा भिन्न मानना समभिरूढ नयाभास है। जैसे करि, कुरग व तुरग अर्थात हाथी, हिरण व घोड़ा परस्पर भिन्न है, वैसे ही इन्द्र, शक्र और पुरन्दर शब्दों को भी सर्वथा भिन्न मानना समभिरूढ़ाभास है।

२ आ. प. ।१९ ।पृ० १२५ "परस्परेणाधिरूढा समभिरूढ़ा शब्द भेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति । यथा शक्र इन्द्रः पुरन्दर इत्यादय समभिरूढाः ।"

अर्थ—परस्पर में अभिरूढ शब्दो मे भेद होते हुए भी जो उन में कथाञ्चित अर्थ भेद स्वीकार नही करता वह समभिरूढ नय है। जैसे शक्र, इन्द्र व पुरन्दर ये तीनो शब्द यद्यपि भिन्न है, और इनका व्युत्पत्ति अर्थ भी भिन्न है, पर तीनो ही एक देव राज के वाचक रूप से प्रसिद्ध है।

(वृ० न० च ।२१५)

३. स. म ।२८ ।३२० ।५ प्रतिक्रियं विभिन्नमर्थ प्रति जानानाद् एव भूतात् समभिरूढस्तदन्यथार्थस्थापकत्वाद् महार्थगोचरः ।"

क्रमश —

स म ।२८ ।३१४।१६ "परमैश्वर्यम् इन्द्रशब्दवाच्य परमार्थस्तद्वत्यर्थे । अतद्वत्यर्थेपुनरूपचारतो वर्तते ।"

अर्थ—समभिरूढ से जाने हुए पदार्थों मे क्रिया के भेद से वस्तु मे भेद मानना एव भूत है, जैसे समभिरूढ की अपेक्षा पुरन्दर

और शचीपति मे भेद होने पर भी नगरों का नाश करने की क्रिया न करने के समय भी पुरन्दर शव्द इन्द्र के अर्थ मे प्रयुक्त होता है, परन्तु एवभूत की अपेक्षा नगरो का नाश करते समय ही इन्द्र को पुरन्दर नाम से कहा जा सकता है ।

वास्तव मे इन्द्र शव्द के कहने से इन्द्र शव्द का वाच्य परम ऐश्वर्य इन्द्र मे ही मिल सकता हे । जिसमे परम ऐश्वर्य नही है उसे केवल उपचार से ही इन्द्र कहा जा सकता ।

४ रा वा ।४।४२ ।१७ ।२६१ ।१२ "समभिरूढे वा प्रवृत्ति निमित्तस्य अप्रवृत्तिनिमित्तस्य च घटस्याभिन्नस्य सामान्येनाभिधानात् ।"

अर्थ—समभिरूढ नय मे घटन क्रिया मे परिणत या अपरिणत अभिन्न ही घट का निरूपण होता है ।

३. लक्षण नं० ३ (एक शब्द का एक ही प्रसिद्ध अर्थ)

१ स सि ।१।३२ ।५३६ "नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढ । यतो नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमभिमुख्येन रूढ. समभिरूढ । गौरित्यय शब्दो वागादिष्वर्थेपु वर्तमान· पशावभिरूढ· ।"

अर्थ—नाना अर्थो का समभिरोहण करने वाला होने से समभिरूढ नय कहलाता है । चूंकि जो नाना अर्थो को 'सम' अर्थात छोड कर प्रधानता से एक मे रूढ होता है वह समभिरूढ नय है उदाहरणार्थ—'गो' इस शब्द के वाणी, पृथिवी आदि ग्यारह अर्थ पाये जाते है, तो भी वह एक पशु विशेष के अर्थ मे रूढ़ होता है ।

(प्र० क० मा० ।पृ० २०६)

२ रा० वा० ।१३३ ।१० ।९८ ।२६ "यतोनानार्थान्समतीत्येकमर्थाभिमुख्येन रूढ़स्तत समभिरूढ । कुत ? वस्त्वतरासंक्रमेण तन्निष्ठत्वात् । कथम् ? अवितर्कध्यानवत् । यथा तृतीय शुक्ल सूक्ष्मक्रियमवितर्कमवीचारध्यानम् अर्थव्यञ्जनयोगसक्रान्त्यभावात् सूक्ष्मकाययोगनिष्ठत्वात् तथा गौरित्यय शब्दो वागादिषु वर्तमानो गव्यधिरूढ । एव शेषेष्वपि रूढिशब्दोऽस्य विषय ।"

अर्थ—अनेक अर्थों को छोडकर किसी एक अर्थ मे मुख्यता से रूढ होने को समभिरूढ नय कहते है । जैसे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्ध्यान अर्थ व्यञ्जन और योग की सक्रान्ति न होने से, मात्र एक सूक्ष्म काययोग मे परिनिष्टित हो जाता है, उसी तरह 'गौ' शब्द वाणी पृथिवी आदि ग्यारह अर्थों मे प्रयुक्त होने पर भी सब अर्थो को छोड़कर मात्र एक स्पस्तादि वाले पशु विशेप अर्थात 'गाय' मे रूढ़ हो जाता है । इसी प्रकार शेप भी सब रूढि शब्द इस नय के विपय है ।

३. रा. वा. ४ ।४२ ।१७ ।२६१ ।१६ "समभिरूढे वा नैमित्तिकत्वात् शब्दस्यैकशब्दवाच्य एक ।"

अर्थ:—समभिरूढ नय चूँकि शब्द नैमित्तिक है, अत उसमे एक शब्द का वाच्य एक ही होता है ।

४. का. अ ।२७६ " मुख्यार्थं वा भापयति अभिरूढ़ त नय जानीहि ।२७६।"

अर्थ—शब्द के अनेक अर्थो मे से मुख्य ही अर्थ को ग्रहण कर सिद्ध करता है उसको समभिरूढ़ नय जानना ।

५. आ. प. ।६ पृ० ८० "समभिरूढ नयो यथा गौ पशु ।"

अर्थ—समभिरूढ नय को ऐसा जानो जैसे गौ एक पशु है, और इस शब्द का अर्थ कुछ नही ।

६ समभिरूढ नय के कारण व प्रयोजन

एक ही शब्द के यदि अनेको अर्थ स्वीकार किये जायेगे तो शब्द के द्वारा श्रोता को निश्चित ही अर्थ का ज्ञान नही हो सकता, इस कारण एक शब्द के अनेको अर्थो को छोड़ कर एक प्रसिद्ध अर्थ मे ही प्रवृत्ति करना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा अर्थ के स्थान पर कदाचित,अनर्थ का ग्रहण हो जाना सम्भव है ।

दूसरे अनेक शब्दो का भी एक ही वाच्य स्वीकार करने पर वह दोष वना रहता है अत अनेक शब्दो का भी एक अर्थ नही होना चाहिये । जितने वाचक शब्द है उतने ही उनके वाच्य अवश्य होने चाहिये । भले ही भिन्न भिन्न गुणों की अपेक्षा से एक ही व्यक्ति के अनेक सार्थक नाम रखे जाने सम्भव हो, जैसे कि भगवान के १००८ अन्वर्थक नाम प्रसिद्ध है, पर उन सर्व शब्दो का व्युत्पत्ति अर्थ एक नही हो सकता है । यदि वाचक शब्दो को अभिन्न माना जायेगा तो वाच्य पदार्थ भी अभिन्न हो जायेगे और इस प्रकार एक पदार्थ के गुण की अन्य पदार्थ मे वृत्ति हो जायेगी । कहा भी है –

१ स सि ।१ ।३३ ।५३६ "यो यत्राधिरूढ: सतत्र समेत्याभिमुख्येना-रोहणात्समभिरूढ यथा भवानास्ते ? अत्मनीति । कुत ? वस्त्वन्तरे वृत्यभावात् । यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीना रूपादीना चाकाशे वृत्ति स्यात् ।"

अर्थ—अथवा जो जहा अधिरूढ है वह वहा 'सम' अर्थात होकर प्रमुखता से रूढ होने के कारण समभिरूढ नय

कहलाता है। यथा-आप कहां से आ रहे है? अपने में से। क्योकि अन्य वस्तु की अन्यवस्तु में वृत्ति नही हो सकती। यदि अन्य की अन्य मे वृत्ति होती है ऐसा माना जाय तो ज्ञानादिक की और रूपादिक की आकाश मे वृत्ति होने लगे।

(रा वा १।३३।१०।६६।२)

२ ध०।पु० १ पृ ८६।५ "न पर्यायशब्दाः सन्ति भिन्नपदानामेकार्थ वृत्ति विरोधात्। नाविरोधः पदानामेकत्वापत्तेरिति।"

अर्थः—इस नय की दृष्टि मे पर्याय वाची शब्द नही होते हैं, क्योकि भिन्न पदों का एक पदार्थ मे रहना स्वीकार कर लेने मे विरोध आता है। यदि भिन्न पदो की एक पदार्थ में वृत्ति हो सकती है इसमे कोई विरोध नही है, ऐसा मान लिया जावे तो समस्त पदों को एकत्व की आपत्ति आ जावेगी।"

शंका—यहा यह शका हो जानी सम्भव है कि शब्द वस्तु का धर्म नही है, क्योकि उसका वस्तु से भेद है। सो ऐसे कि

१. वस्तु वाच्य है और शब्द वाचक।

२. वस्तु भिन्न इन्द्रियो से ग्राह्य है और शब्द भिन्न इन्द्रियो से।

३. वस्तु के कारण भिन्न हैं और शब्द के कारण भिन्न है।

४. वस्तु की अर्थ क्रिया भिन्न है और शब्द की अर्थ क्रिया भिन्न है।

५. शब्द उपाय है और वस्तु उपेय है।

इसके अतिरिक्त इन दोनो मे अभेद मानने पर छुरा और मोदक शब्दो का उच्चारण करने पर क्रम से मुख के कटने और मीठे होने का प्रसग आता है।

अत दोनो मे समानाधिकरण्य न होने से अभेद नही हो सकता। कदाचित शब्द और वस्तु मे विशेपण विशेष्य भाव मानकर यदि शब्द को वस्तु का धर्म स्वीकार करे तो यह भी सम्भव नही है, क्योकि विशेप्य से भिन्न विशेषण नही होता, कारण कि ऐसा मानने मे अव्यवस्था की आपत्ति आती है। अतएव शब्द वस्तु का धर्म न होने से उसके भेद से अर्थ भेद नही हो सकता है ?

इस शका का समाधान धवलाकार ने पुस्तक न० ९ के पृष्ठ न १७९ पर और कपाय पाहुड़ पुस्तक १-पृष्ठ २४१ पर निम्न प्रकार किया है।—

१. ध ।पु९ ।पृ.१७९

उत्तर—"यह कोई दोष नही है, क्योकि, विशेष्य से भिन्न भी वस्त्राभरणादिको के विशेषणता पाई जाती है (जैसे वह लाल कोट वाला व्यक्ति ऐसा कहने से उसी व्यक्ति विशेष का ग्रहण हो जाता है)।

और विशेष्य से विशेषण को एक मानने पर उनमे व्यवच्छेद व्यवच्छेदक (भेद्य व भेदक) भाव मानना भी योग्य नही कहा जा सकता, क्योकि, अभेद मानने पर उसका विरोध है। शब्द अपने से भिन्न समस्त पदार्थो का व्यवच्छेदक (भेद करने वाला) नही हो सकता,

क्योकि उसमें वैसी योग्यता नही है । किन्तु योग्य शब्द योग्य ही अर्थ का व्यवच्छेदक होता है, अतएव अति-प्रसंग नही आता ।

शंका—शब्द और अर्थ के योग्यता कहां से आती है ?

उत्तर.—स्व और पर से उनके योग्यता आती है ।

इस कारण वाचक के भेद से वाच्य भेद भी अवश्य होना चाहिये ।

२. क. पा. ।पु १। पृ० २४१

उत्तर.—जिस प्रकार प्रमाण, प्रदीप, सूर्य, मणि और चन्द्रमा आदि पदार्थ घट पट आदि प्रकाश्यभूत पदार्थों से भिन्न रह कर ही उनके प्रकाशक देखे जाते है, तथा यदि उन्हे सर्वथा भिन्न माना जाये तो उनमे प्रकाश्य प्रकाशक भाव नही बन सकता है, उसी प्रकार शब्द अर्थ से भिन्न होकर भी अर्थ का वाचक होता है ऐसा समझना चाहिये । इस प्रकार जब शब्द अर्थ का वाचक सिद्ध हो जाता है तो वाचक शब्द के भेद से उसके वाच्यभूत अर्थ में भेद होना ही चाहिये ।

इस प्रकार शब्द और अर्थ मे स्वभाविक वाच्य वाचक भाव रूप अभेद तो इस नय की उत्पत्ति का कारण है और वाचक शब्द के अर्थ भेद पर से वाच्य पदार्थ मे भेद देखना इसका प्रयोजन है ।

१० एवं भूत नय का लक्षण

जैसा कि इस के नाम पर से विदित है, यह नय वस्तु को अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से देखता हुआ ही उस का संज्ञा करण करने मे प्रवृति करता है । 'एवं' अर्थात जिस

प्रकार की वस्तु सज्ञा करण करते समय दिखाई देती है विल्कुल वैसा ही नाम उस समय उस वस्तु का रखा जाना चाहिये । अर्थात यह नय वस्तु की वर्तमान क्षण की एक क्रिया विशेप को देखकर ही उसे कुछ नाम देता है । इस की सूक्ष्म क्षणिक दृष्टि में उस समय उसी वस्तु की भूत व भावि काल की पर्यायो का अभाव हो जाता है। यही कारण है कि इस नय को भाव निक्षेप मे निक्षिप्त किया गया है ।

जैसा शव्द वोला जाये वैसा ही उसका वाच्च पदार्थ होना चाहिये । अर्थात व्युत्पत्ति के आधार पर जो कुछ अर्थ समभिरूढ़ नय ने उस शव्द का किया था, विल्कुल उसके अनुरूप परिणत पदार्थ ही उस शब्द का वाच्च हो सकता है, अन्य रूप से परिणत वही पदार्थ उस समय उस शव्द का वाच्य नही वन सकता, और इसी प्रकार जैसी क्रिया से विशिष्ट वह पदार्थ दिखता है उस का वाचक शब्द भी उस समय वैसी क्रिया को दर्शाना वाला ही होना चाहिये । रूढि वश बोले गये शव्दो का यहा सर्वथा लोप है। जैसे 'गो' शब्द का अर्थ 'चलने वाला' ऐसा होता है, अत चलते समय ही उस शव्द का प्रयोग करना चाहिये, वैठे या सोते समय नही ।

प्रत्येक ही चलने वाले पदार्थ मे भी इस का अर्थ नही जा सकता, क्योकि समभिरूढ नय पहिले ही इस के प्रति प्रतिवन्ध लगा चुका है । यहा एवभूत नय मे तो समभिरूढ़ नय के द्वारा स्वीकारे गये अर्थ मे भी भेद करना इष्ट है । समभिरूढ नय को दृष्टि मे गाय नाम का पशु-विशेष 'गाय' है, भले चलती हो कि वैठी भले पुरो को विदारण करने मे प्रवृत्त न हो पर रूढ़ि वश इन्द्र हर समय पुरन्दर भी कहा जा सकता है। एवंभूत ऐसा स्वीकार नही कर सकता । वहां तो चलती हुई गाय को ही 'गो' शब्द का वाच्च बनाता है, वैठने व सोने वाली को नही । इसी प्रकार पुरों का विदारण

करते समय ही इन्द्र 'पुरन्दर' शब्द का वाच्य हो सकता है, पूजा करते समय या ऐश्वर्य का भोग करते समय नही। उस समय तो वह पुजारी व इन्द्र है। इस प्रकार क्रिया भेद पर से वाचक शब्द का भेद और वाचक शब्द के भेद पर से तत्क्रिया परिणत वाच्य पदार्थ का भेद देखने वाला नय एवभूत नय है।

इतना ही नही, इस की सूक्ष्मता तो यहा तक कहने को तय्यार है कि कोई व्यक्ति जिस समय जिस पदार्थ का ज्ञान कर रहा हो, उस समय उस व्यक्ति विशेष को उस पदार्थ के नाम से ही पुकारना चाहिये, जैसे कि गाय को देखने मे उपयुक्त व्यक्ति उस समय 'गाय' शब्द का वाच्य है, मनुष्य या जीव शब्द का नही। कारण कि व्यक्ति तो ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान का सज्ञा करण ज्ञेय के विना किया नही जा सकता जेसे 'घट' ग्राही ज्ञान को घट ज्ञान कहना। एवभूत की एकत्व दृष्टि मे घट व ज्ञान अथवा ज्ञान व ज्ञान धारी जीव ऐसा द्वैत कहा ? अत: घट 'आदि ज्ञेय ही ज्ञान है, और वह ज्ञान ही वह व्यक्ति है, अत घट रूप ही वह व्यक्ति है। अत: व्यक्ति विशेष को 'घट' या 'गाय' कहना उस समय युक्त है।

इतना ही नही इस नय का तर्क तो यहा से भी आगे निकल जाता है। वह द्वैत का सर्वथा निरास करने वाला है। अत: उसकी सूक्ष्म दृष्टि मे 'ज्ञान,' 'वान' इन दो पदो का सम्मेल करके एक 'ज्ञान-वान' शब्द वनाना युक्त नही। अथवा 'आत्म', 'निष्ट' इन दो पदो का समास करके 'आत्मनिष्ट' शब्द वनाना युक्त नही। 'आत्मा' अकेला आत्मा ही हे, आत्मा में निष्ठा पाने वाला ऐसे विशेषण विशेष्य भाव की क्या आवश्यकता हे ? अर्थात प्रत्येक शब्द एक ही अर्थ का द्योतक है सयुक्त अर्थ का नही। जहा पदो का समास सहन नही किया जा सकता वहां अनेक शब्दों के समूह रूप वाक्य कैसे वोला जा सकता, अर्थात एव भूत नय की दृष्टि मे शब्द ही शब्द हे वाक्य न ी।

इतना ही नही एक असयुक्त स्वतत्र शब्द या पद भी वास्तव मे कोई वस्तु नही, क्योकि वह भी 'घ,' 'ट' आदि अनेको वर्णों को मिलाने से उत्पन्न होते है। दो वर्णों को मिलाने मे तो आगे पीछे का क्रम पड़ता है, जैसे 'घट' शब्द में 'घ' पहिले बोला गया और 'ट' पीछे। जो दृष्टि केवल एक क्षण ग्राही है वहा यह आगे पीछे का क्रम कैसे सम्भव हो सकता है। जब 'घ' बोला गया तब 'ट' नही बोला गया और जब 'ट' बोला गया तब 'घ' नही बोला गया। अतः 'घ' व 'ट' यह दोनो ही स्वतत्र अर्थ के प्रतिपादक रहे आवें, इन का समास या सयोग करके अर्थ ग्रहण करने की आवश्यकता नही।

यह भी अभी दोप युक्त है, क्योकि यहा भी 'घ' इस वर्ण मे 'घ' और 'अ' इन दो स्वतत्र वर्णो का सयोग पडा है। घ् और अ मिल कर 'घ' वनता है। अतः 'घ' भी कोई चीज नही। 'घ' ओर 'अ' स्वतंत्र रूप से रहते हुए जो कुछ भी अपने रूप के वाचक होते है वही एव-भूत नय का वाच्य है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और वहा से भी सूक्ष्मतम दृष्टि मे प्रवेश करता हुआ यह नय इस प्रकार केवल एक असयुक्त वर्ण को ही वाचक मानता है।

यहा शका की जा सकती है, कि इस प्रकार तो वाच्य वाचक भाव का अभाव हो जायेगा, और ऐसा हो जाने पर लोक व्यवहार का तो लोप हो ही जायेगा, परन्तु एवभूत नय का भी लोप हो जायेगा, क्योकि वह नय गूगा वत् वन कर रहने के कारण स्वय अपना भी प्रतिपादन करने मे समर्थ न हो सकेगा। और ऐसी अवस्था मे वह नय नाम मात्र को ही 'नय कहलायेगा, परन्तु उस का स्वरूप कुछ न कहा जा सकेगा। इस शका का उत्तर कपाय पाहुड़ पुस्तक १ पृष्ठ २४३ पर निम्न प्रकार दिया है।

क. पा.।१।पृ२४३ **उत्तर**.—यह कोई दोप नही है, क्योकि यहा पर एवंभूत नय का विषय दिखलाया गया है।

तात्पर्य यह कि इस नय का स्वरूप ही इतना सूक्ष्म है, ऐसा यहां शब्दो द्वारा दर्शाया गया। जिन शब्दो व वाक्यो द्वारा यह स्वरूप दर्शाया गया है वे शब्द स्वय एवभूत के विषय भले न हो पर समभिरूढ नय के विषय अवश्य हे। अपना स्वरूप दर्शाने के लिये अपनी लक्षण भूत क्रिया मे ही प्रवृत्ति करना आवश्यक नही। शब्द व वाक्य व्यवहार हर विषय मे लागू होने का व्यवहार प्रचलित है।

इस प्रकार एवभूत नय के हम निम्न ४ लक्षण कर सकते हे :–

१. वाचक शब्द के अनुसार उस का वाच्य और वाच्य पदार्थ के अनुसार उसका वाचक शब्द होना चाहिये।

२ उस उस क्रिया से परिणत पदार्थ ही उस क्रिया रूप शब्द का वाच्य हो।

३ ज्ञेय विशेषण के ज्ञान से परिणत आत्मा का नाम उस ज्ञेय रूप ही होना चाहिये।

४ भिन्न भिन्न वर्णो का, भिन्न भिन्न पदो का व भिन्न भिन्न शब्दो का समास करके पदो का अथवा सयुक्त शब्दो का अथवा वाक्यो का निर्माण नही किया जा सकता।

अब इन्ही लक्षणो की पुष्टी व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१. लक्षण नं १ (शब्द के अनुसार अर्थ और अर्थ के अनुसार शब्द)

1. विशेषावश्यकभाष्य गा १४३ 'वजणमत्थेणेत्थ न वजणेणोभय विसेसेइ। जह घटसद्द चेष्टावया तहा त पि तेणेव।'

अर्थ—व्यञ्जन अर्थात शब्द गत वर्णों के भेद से अर्थ का, और गौ आदि अर्थ के भेद से व्यञ्जन या शव्द का भेद करने वाला एवभूत नय है। अर्थात जिस प्रकार घट शव्द चेष्टा विशेष को दर्शाता है। तव उसका वाच्य अर्थ भी उस चेष्टा विशेष वाला ही होना चाहिये।

२. अनुयोगद्वार सूत्र १४५ "वजण अत्थ तदुभय एवभूओ विसेसेइ।"

अर्थ—व्यञ्जन और अर्थ अर्थात वाचक और वाच्य यह दोनो मे ही एवभूत विशेषता सहित होने चाहिये, ऐसा एव भूत नय वताता है।

(आ० वि० ।७५८)

३. तत्वार्थाधिगमभाष्य ।१।३५ " व्यञ्जनार्थयोरेवभूत· ।"

अर्थ—व्यञ्जन और अर्थ दोनो ही एवभूत है।

४. ध. पु ६ । पृ १८० "वाचकगत वर्णभेदेनार्थस्य गवाद्यर्थभेदेन गवादिशव्दस्य च भेदक. एवभूत ।".

अर्थः—जो शव्दगत वर्णो के भेद से अर्थ का और गाय आदि अर्थ के भेद से गो आदि शव्द का भेदक है वह एवभूत नय है।

(नय० वि० श्ल०।६४) (प्र० क० मा० ।पृ०६८०)

२. लक्षण नं २. (क्रिया परिणत पदार्थ ही शब्द का वाच्य है) –

१ स सि ।१।३३।५४२ "येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवभूत. । स्वाभिप्रेतक्रियापरिणतिक्षणे एव स शब्दो युक्तो

नान्यदेति। यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति। यदैव गच्छति तदैव गौर्न स्थितो न शायित इति।"

अर्थ—जो वस्तु जिस पर्याय को प्राप्त हुई है उसी रूप निश्चय कराने वाले नय को एवभूत कहते है। आशय यह है कि जिस शब्द का जो वाच्य है उस रूप क्रिया के परिणमन के समय ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है अन्य समय मे नही। जब आज्ञा व ऐश्वर्य वाला हो तब ही इन्द्र है। भगवान का अभिषेक करने वाला नही और न पूजा करने वाला ही। जब गमन करती हो तभी गाय है।

(रा वा।१।३३।११।६६।५) (श्ल वा.।१।३३।७५) (प्र क. मा।पृ. २०६) (स. त. टी पृ ३१४)

२ ध।पु १।पृ ६०।५ "तत. पदमेकमेकार्थस्य वाचकमित्यध्यवसाय: एवभूतनय एतस्मिन्नये एको गोशब्दो नानार्थे न वर्तते एकस्यैकस्वभावस्य बहुषुवृत्तिविरोधात्।"

अर्थ—अत एक पद एक ही अर्थ का वाचक होता है। इस प्रकार विषय करने वाले नय को एवंभूत नय कहते है। इस की दृष्टि मे एक 'गो' शब्द नाना अर्थो मे नही रहता है, क्योकि एक स्वभाव वाले एक पद का अनेक अर्थो मे रहना विरुद्ध है।

(ध।पु ६।पृ १८०।७) (रा वा.।४।४२।२६१।१७)

३ स म०।२८।३१५।३ "एवभूत पुनरेवंभाषते। यस्मिन्नर्थे शब्दो व्युत्पाद्यते स व्युत्पत्तिनिमित्तमर्थो यदैव

प्रवर्तते तदैव त शब्द प्रवर्तमानमभिप्रैति, न सामान्येन । यथा उदकाद्याहरणवेलाया योषिदादिमस्तकारूढो विशिष्टचेष्टावान् एव घटोऽभिधीयते न शेप । घटशब्दव्युत्पत्तिनिमित्त शून्य त्वात्, पटादिवत् इति । अतीता भाविनी वा चेष्टामङ्गीकृत्य सामेन्येनैवोच्यते इति चेत्, न । तयोर्विनष्टानुत्पन्नतया शशविपाणकल्पत्वात् । तथापि तद् द्वारेण शब्द प्रवर्तने सर्वत्र प्रवर्तयितव्य:, विशेषाभावात् । किच यदि अतीतवत्स्र्यच्चेष्टापेक्षया घट शब्धोऽचेष्टावत्यपि प्रयुज्यते तदा कपालमृत्पिण्डावपि तत्प्रवर्तन दुर्निवार स्यात्, विशेषाभावात् । तस्माद् यत्रक्षणे व्युत्पत्तिनिमित्त विकल्पमस्ति तस्मिन्नेव सोऽर्थस्तच्छब्दवाच्य इति ।

क्रमश –

स म ।२८।३१६। श्ल ७ उद्धृत एकस्यापि ध्वनेर्वाच्यं सदा तन्नोपपद्यते । क्रियाभेदेन भिन्नत्वाद् एवंभूतोऽभिमन्यते ।७।

क्रमश –

स म ।२८।३१९ शब्दानां स्वप्रवृत्ति निमित्त भूत क्रियाविशिष्टमर्थं वाच्य त्वेनाभ्युपगच्छन् एवभूत । यथेन्दनमनुभवन् इन्द्र शकनक्रियापरिणत शक्र पूर्दारणप्रवृत्त पुरन्दर इत्युच्यते ।”

अर्थ:—अर्थ मे शब्द की व्युत्पत्ति होती है । जिस समय व्युत्पत्ति के निमित्त रूप अर्थ का व्यवहार होता है, उसी समय अर्थ मे शब्द का व्यवहार होता है । जैसे जल लाने के समय स्त्रियो के सिर पर रखे हुए घडे को ही ‘घट’ कह सकते है, दूसरी अवस्थाओ

मे घड़े को 'घट' नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जिस तरह पट को घट नहीं कहा जा सकता उसी तरह घड़े को भी जल लाने आदि कि क्रिया रहित अवस्था में घट नहीं कहा जा सकता। शशविषाण की तरह अतीत और अनागत अवस्थाओं को नष्ट और अनुत्पन्न होने के कारण, अतीत और अनागत अवस्थाओं को लेकर सामान्य से शब्दों का प्रयोग नही किया जा सकता। यदि अतीत और अनागत पर्यायो की अपेक्षा शब्द के वाच्यरूप पर्याय का अभाव होने पर भी घड़े को घट कहा जाये, तो कपाल और मिट्टी के पिंड मे भी घट शब्द का व्यवहार होना चाहिये। अतएव जिस क्षण मे किसी शब्द का व्युत्पत्ति का निमित्त कारण सम्पूर्ण रूप से विद्यमान हो उसी समय उस शब्द का प्रयोग करना उचित है। यह एवंभूत नय है।

वस्तु अमुक क्रिया करने के समय ही अमुक नाम से कही जा सकती है। वह सदा एक शब्द का वाच्य नहीं हो सकती, इसे एवंभूत नय कहते है।

जिस समय पदार्थो में जो क्रिया होती हो उस समय उस क्रिया से अनुरूप शब्दोंसे अर्थ के प्रतिपादन करने को एवंभूत नय कहते है। जैसे परम ऐश्वर्य का अनुभव करते समय इन्द्र, समर्थ होने के समय शक्र और नगरों का विभाग करने के समय पुरन्दर कहना।

४ लघीयस्त्रय श्ल. ४४ "इत्यम्भूतः क्रियाश्रय.।"

अर्थ —इत्थंभूत नय क्रियाश्रित है।

(प्रमाण स० श्ल० ८३) क्त. श्ल. वा प २७४)

५ जैनतर्क भाषा पृ २३ "शब्दाना स्वप्रवृत्तिनि ।मित्तभूतक्रिया विष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवम्भूत.।"

अर्थ—स्वप्रवृत्ति की निमित्तभूत: क्रिया से आविष्ट अर्थ को ही वाच्यरूप से शब्द बताता है, ऐसा एवभूत नय है।

६ विशेपावश्यक भाष्यगा २७४३ "····। जह घट सद्द चेप्टावया तहा त पि तेणेव।"

अर्थ—जिस प्रकार घट शब्द चेष्टा विशेष को दर्शाता है, तो उसका वाच्य अर्थ भी वैसा ही होना चाहिये।

७ का अ ।२७७ "येन स्वभावेन यदा परिणतरूपे तन्मयत्वात्। तत्परिणाम साधयति योऽपि नय: सोऽपि परमार्थ: ।२७७।

अर्थ—वस्तु जिस समय जिस स्वभाव से परिणमनरूप होती है उस समय उस परिणाम से तन्मय होती है। इसलिये उसी परिणाम रूप सिद्ध करता है, वह एवभूत नय है। यह नय परमार्थ रूप है।

८ वृ न च ।२१६ २१९ "यत्करोति कर्म देही मनवचनकाय-चेष्टात:। तत्तत्खलु नामयुत एवभूतो भवेत्स नय ।२१६। प्रज्ञापन भाविभूतेऽर्थे य: सहि भेद पर्याय ।अथ स एवभूत. सभवतो मन्यध्वमर्थेषु ।२९९।

अर्थ—जीव जो जो भी कर्म मनवचनकाय की चेष्टा से करता है, उस उस नाम वाला ही वह होता है, ऐसा एवंभूत नय कहता है।२१६। भावि व भृत पदार्थ मे जो पर्यायों

का भेद रूप से प्रज्ञापन करता है वह एवभूत नय में गर्भित होता है ।२१९।

९. नय चक्र गद्य पृ १८ "यस्मिन्काले क्रियाया च वस्तुजात प्रवर्तते । तथा तन्नामवाच्य स्यादेवभूतो नयो मत: ।"

अर्थ—जिस काल में जो वस्तु जिस क्रिया में वस्तु जात रूप से प्रवर्तती है उस समय वह वस्तु उसी नाम की वाच्य है, ऐसा एवभूत नय का मत है ।

१०. ग. प ।१६। पृ १२५ "एवक्रियाप्रधानत्वेनभूयन इत्येवंभूत।" "एवं अर्थात क्रिया की प्रधानता से जो होता है सो एवभूत है ।

११ अभिधान राजेन्द्र कोष "यत्क्रिया विशिष्ट शब्देनोच्यते, तामेव क्रिया कुर्व द्वस्त्वेवभूतमुच्यते । एवशब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिक: प्रकार., तमेवभूत प्रात्तमिति कृत्वा ततश्चैवंभूतवस्तुप्रतिपाद को नयोऽप्युपचारादेवंभूत । अथवा एव शब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिक. प्रकार, तद्विशिष्टस्यैव वस्तुनोऽभ्युपगमात्तमेवभूत प्राप्त एवंभूत इत्युपचारमन्तरेणापि व्याख्यायते स एवभूतो नय ।"

अर्थ—जिस क्रियाविशिष्ट शब्द के द्वारा कही जाये, उस ही क्रिया को करती हुई वस्तु एवंभूत कहलाती है । 'एव' शब्द का अर्थ चेष्टा व क्रियादिक का रूप दर्शाने वाला है । उस एवंभूत क्रिया को प्राप्त करने वाली वस्तु भी एवभूत है । उस एवभूत वस्तु की प्रतिपादक होने के कारण यह नय भी उपचार से एवभूत कहलाता है ।

अथवा 'एव' शब्द के द्वारा चेष्टा क्रियादिक का प्रकार बताया जाता है। उस क्रिया से विशिष्ट वस्तु का ज्ञान करने के कारण एवभूतपने को प्राप्त यह नय भी एवभूत है। इस प्रकार उपचार के बिना भी इसकी एवभूत संज्ञा है।

३. लक्षण नं ३ (ज्ञान परिणति के आधार पर जीव की संज्ञा) –

१ स सि ।१।३३।५४३ "अथवा येनात्मना येन ज्ञानेन भूत· परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति । यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति।

अर्थ —अथवा जिस रूप से अर्थात जिस ज्ञान से आत्मा परिणत हो उसी रूप से उसका निश्चय कराने वाला नय एवभूत नय है यथा-इन्द्ररूप ज्ञान से परिणत आत्मा इन्द्र है और अग्नि रूप ज्ञान से परिणत आत्मा अग्नि है।

(रा. वा ।१।३३।११।९९।१०)

४ लक्षण नं ४ (वर्णों का सम्मेलन होने से शब्द व वाक्य का भी अभाव है) .—

१ ध ।पु १।पृ. ९०।३ "एव भेद भवनादेवभूत: । न पदाना समासोऽस्ति भिन्नकालवर्तिना भिन्नार्थवर्तिना चैकत्वविरोधात् । न परस्पर व्यपेक्षाप्यास्ति वर्णार्थसख्याकालादिभिर्भिन्नानॉ पदाना भिन्नपदायोगात् । ततोन वाक्यमत्यस्तीति सिद्धम् ।"

अर्थ —एवभेद अर्थात जिस शब्दका जो वाच्य है वह तद्रूप क्रिया से परिणत समय मे ही पाया जाता है। उसे जो विषय

करता है उसे एवभूत नय कहते है। इस नय की दृष्टि से पदो का समास नही हो सकता, क्योकि भिन्न भिन्न काल वर्ती और भिन्न अर्थवाले शब्दों मे एक पने का विरोध है। इसी प्रकार शब्दों मे परस्पर सापेक्षता भी नही है। क्योकि, वर्ण अर्थ, सख्या और कालादिकके भेद सेभेद को प्राप्त हुए पदोंके दूसरे पदों की अपेक्षा नही बन सकती है। जबकि एक पद दूसरे पद की अपेक्षा नही रखता है तो इस नय की दृष्टि मे वाक्य भी नही बन सकता है यह बात सिद्ध हो जाती है।

२. क पा।पु १।पृ २४२।१ "एवम्मवनादेवभूत । अस्मिन्नये न पदानाँसमासोऽस्ति, स्वरूपत कालभेदेन च भिन्नानामेकत्वविरोधात्। न पादानामेककालवृत्ति· समास, क्रमोत्पन्नाना क्षणक्षयिणा तदनुपपत्ते.। नेकार्थे वृत्ति समास, भिन्नपदानामेकार्थे वृत्त्यनुपपत्ते । न वर्णसमासोत्यस्ति, तत्रापि पदसमासोक्तदोषप्रसगात्। तत् एक एववर्ण एकार्थ वाचक इति पदगतर्णमात्रार्थं एकर्थ इत्येवम्भूताभिप्रायवान् एवम्भृतनय।"

अर्थ —'एवम्भूतात्' अर्थात जिस शब्द का जिस क्रियारूप अर्थ है, तद्रूप क्रिया से परिणत समय मे ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है, अन्य समयो मे नही, ऐसा जिस नय का अभिप्राय है उसे एवभूत कहते है। इस नय मे पदो का समास नही होता है, क्योकि जो पद स्वरूप और काल की अपेक्षा भिन्नहै, उन्हे एक मानने मे विरोध आता है। यदि कहा जाहे कि पदो मे एककालवृत्तिरूप समास पाया जाता हे, सो कहना भी ठीक नही है, क्योकि पद क्रमसे से ही उत्पन्न होते है और वे जिस क्षण मे उत्पन्न होते है उसी क्षणमे विनष्ट हो जाते है, इसलिये अनेक पदो का एक-

कालमे रहना नही बन सकता है, पदो मे एकार्थ वृत्ति समास पाया जाता है, ऐसा कहना भी ठीक नही है, क्योकि भिन्न पदो का एक अर्थ मे रहना बन नही सकता है।

तथा इस नय मे जिसप्रकार पदो का समास नही बन सकता है, उसी प्रकार घ, ट आदि अनेक वर्णों का भी समास नही बन सकता है, क्योकि, अनेक पदो के समास मानने मे जो दोष कह आये है वे सब दोष अनेक बर्णो के समास मानने मे भी प्राप्त होते है। इसलिये एवभूत नय की दृष्टि मे एक ही वर्ण एक अर्थ का वाचक है। अत घट आदि पदो मे रहने वाले घ्, ट्, और अ, अ, आदि वर्णमात्र अर्थ ही एकार्थ है, इसप्रकारके अभिप्राय वाला एवभूत नय समझना चाहिये।

११ एवभूत नय के कारण व प्रयोजन

एक समय मे देखने पर वस्तु वैसी ही दिखाई देती है इसलिये उसका नाम भी वैसा ही होना चाहिये। समय वदल जाने पर वस्तु भी वदल जाती है। अत समय वदल जाने पर उसका वाचक शब्द भी अवश्य वदला जाना चाहिये। जो वस्तु इस समय है वह अन्य समय नही रहती, या यो कहिये कि इस समयकी वस्तु वही है अन्य नही, इसीलिये उसके वाचक एक शब्द का अर्थ भी वही है अन्य नही। और इस प्रकार एक अर्थ का वाचक शब्द और एक शब्द का वाच्य अर्थ एक ही होना चाहिये अनेक नही। वाच्य वाचक सम्बन्ध मे क्षण प्रतिक्षण दीखने वाला यह एकत्व ही इस नय का कारण है।

यदि एक शब्द के अनेक अर्थ माने जायेगे तो उस शब्द को सुन कर श्रोता के ज्ञान मे किसी निश्चित अर्थकी सिद्धि न हो सकेगी। इसी प्रकार एक ही पदार्थ के लिए भी यदि भिन्न भिन्न समयो मे एक ही शब्द का प्रयोग करेगे तो भी श्रोता को भ्रम उत्पन्न हुए बिना नही रह

सकता। यदृच्छा से कभी इन्द्र को 'इन्द्र' और 'पुरन्दर' कह देने से भी श्रोता को उस समय वह शब्द सुन कर भ्रम हो सकता है कि सम्भवत. इस समय इन्द्र के सम्बन्ध मे कहा जा रहा है, वह नगर विदारण करता हुआ फिर रहा है, भले ही उस समय वह भगवान की पूजा ही कर रहा हो। इस प्रकार के भ्रम की सम्भावना को दूर करके समभिरूढ के विषय को और भी सूक्ष्म व शुद्ध बनादेना इस नय का प्रयोजन है।

१२ तीनो का सामन्य — अब इन तीनो के विषय मे उठने वाली कुछ शकाओ का सामाधान कर लेना योग्य है।

१ प्रश्न—ऋजुसूत्र नय व शव्द नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—इन दोनो मे सर्वथा भेद हो ऐसा नही है, किन्ही अपेक्षाओ से इनमे अभेद भी है और किन्ही अपेक्षाओ से भेद भी।

(i) ऋजुसूत्र नय का विषय भी एक समयवर्ती पर्याय है ओर शव्द नय का विषय भी। वहा भी एकत्व का ग्रहण है और यहा भी।

(ii) ऋजुसूत्र नय भी किसी वस्तु को जिस किस नाम से कह देता है और शव्द नय भी। दोनो मे वाचक शव्दो सम्बन्धी विवेक का अभाव है।

(iii) ऋजुसूत्र भी अनेको अन्वर्थक व काल्पनिक शव्दो को एकार्थ वाची स्वीकार करता है और शव्द नय भी।

इस प्रकार तो इन दोनो मे अभेद है, अब भेद देखिये।

(i) ऋजुसूत्र का विषय अर्थ व शब्द दोनो पर्याय है, परन्तु शब्द नय का विषय केवल शब्द पर्याय है, अत: उसकी अपेक्षा स्वल्प विषय वाला है ।

(ii) ऋजुसूत्र नय अर्थ प्रधान है और शब्द नय शब्द प्रधान है अर्थात ऋजुसूत्र तो प्रमुखत: पर्याय को ही सूक्ष्म दृष्टि से जानने मे प्रवृत होता है और शब्द नय उस ही पर्याय का सज्ञा करण करने मे । इसका यह अर्थ न समझना कि ऋजुसूत्र नय बिल्कुल गूगा है और शब्द नय अन्धा । यहां केवल प्रमुखता की बात है ।

(iii) ऋजुसूत्र भी अपने विषय भूत पर्याय का प्रतिपादन करता अवश्य है पर शब्द गम्य व वाक्य गम्य दोषो की पर्वाह न करता हुआ । शब्द नय भी उसके विषय को जानकर या ग्रहण करके उसका प्रतिपादन करताहै, पर शब्द गम्य दोषो को दूर करके । ऋजुसूत्र तो लौकिक व्याकरण के नियमो का अनुसरण करता हूआ उसके द्वारा स्वीकृत सर्व अपवादो को स्वीकार कर लेता है, पर शब्द नय व्यवहार के लोप की परवाह न करता हुआ किसी प्रकार के भी शब्द गम्य अपवाद को स्वीकार नही करता । अर्थात ऋजुसूत्र के वक्तव्य मे भिन्न लिङ्ग व सख्या आदि के वाचक पर्याय वाची शब्दो का अर्थ एक समझा जा सकता है पर शब्द नय के वक्तव्य मे ऐसा नही हो सकता । वह समान लिग आदि के वाचक पर्याय वाची शब्दो मे ही एकार्थता स्वीकार करता है पर भिन्न लिगादि वालों मे नही ।

(iv) अत विषय भूत पदार्थ की अपेक्षा तो इन दोनो मे कोई अन्तर नही, वह भी पर्याय को विषय करता है और यह

भी। शब्द की अपेक्षा शब्द नय अपना एक स्वतंत्र विषय रखता है, जिसके साथ द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक किसी भी अन्य नय का कोई प्रयोजन नही ।

२ प्रश्न—शब्द नय और समभिरूढ नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–विषय की अपेक्षा इन मे कोई भेद नही पर शब्द की अपेक्षा भेद अवश्य है।

(i) शब्द नय का विषय भी एक अभेद शब्द पर्याय है और इसका विषय भी वही शब्द पर्याय है।

(ii) वह भी अर्थ प्रधान नही है और यह भी अर्थ प्रधान नही है।

(iii) वह भी एकत्व का ग्रहण करके कार्य कारण आदि भावो को स्वीकार नही करता, और यह भी नही करता।

यह तो इन दोनो मे अभेद है अब भेद सुनिये।

(i) शब्द नय तो समान लिग आदि के वाचक शब्दो मे व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा भेद किये बिना उन्हे सर्वथा एकार्थ वाचक स्वीकार करता है, परन्तु समभिरूढ नय उनमे व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा अर्थ भेद मानता है।

(ii) यद्यपि दोनो ही नय एक पदार्थ को अनेको नामो से पुकारते है अर्थात एक अर्थ के अनेक वाचक शब्द स्वीकार करते है परन्तु इनकी स्वीकृति के क्षेत्र मे महान अन्तर है। शब्द नय तो उन्हे वास्तव मे एकार्थवाचक मानता है पर समभिरूढ़ नय केवल रूढ़ि वश।

(iii) शब्द नय मे एक शब्द के अनेक वाच्य अर्थ होने सम्भव है पर समभिरूढ नय मे एक शब्द का कोई एक रूढ या प्रसिद्ध अर्थ ही ग्राह्य है, इसलिये यहा एक शब्द का एक ही अर्थ होता है, जैसे 'गो' शब्द का अर्थ यहा पशु विशेष ही है, और शब्द नय मे इसी का अर्थ वाणी व पृथिवी भी स्वीकृत है।

(iv) ऋजुसूत्र के विपय मे लिङ्गादि के विषय भेद से भेद करने वाला शब्द नय है और शब्द नय से स्वीकृत समान लिङ्ग कारकादि वचन वाले उन शब्दो मे व्युत्पत्ति भेद से अर्थ भेद करने वाला समभिरूढ है। जैसे परम ऐश्वर्य का भोग करने के कारण इसे इन्द्र कहते है केवल नाम मात्र से नही। यद्यपि शब्द नय भी इसी शब्द का प्रयोग देवराज के लिए करता है पर उपरोक्त व्युत्पत्ति क भेद रखे विना नाम निक्षेप मात्र से या रूढ़ि मात्र से कर देता है, परन्तु समभिरूढ नय इसमे निरूक्ति गम्य विवेक जागृत करके इसे सार्थक बना देता है, काल्पनिक रहने नही देता। शब्द भले बदले न वदले पर भाव आवश्य बदल जाता है।

२ प्रश्न—ऋजु सूत्र नय व समभिरूढ नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर– विषय की अपेक्षा कोई अन्तर नही क्योकि उसकी विषय भूत व्यञ्जन पर्याय ही इसका वाच्य है। अन्तर केवल इतना है कि ऋजुसूत्र अर्थ प्रधान है और समभिरूढ नय शब्द प्रधान। अर्थात वह तो अपने विषय भूत पर्याय का सज्ञाकरण करते समय सार्थक व अनर्थक पने की अपेक्षा से रहित प्रवृति करता है, पर यह नय उसको केवल अन्वर्थक ही नाम देता है।

४ प्रश्न —समभिरूढ नय व एवंभूत नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर — विषय व शब्द दोनों की अपेक्षा ही इनमें वडा अन्तर है ।

(i) समभिरूढ नय का विषय क्रिया निरपेक्ष लम्बी व्यञ्जन पर्याय है और एवंभूत का विषय क्रिया सापेक्ष क्षणिक व्यञ्जन पर्याय है । अर्थात भिन्न भिन्न समयों मे भिन्न भिन्न क्रिया करती हुई भी वह व्यञ्जन पर्याय भूत वस्तु समभिरूढ की दृष्टि मे तो एक ही बनी रहती है, परन्तु एवभूत की दृष्टि में तो क्रिया के साथ साथ वस्तु भी भिन्न भिन्न दीखने लगती है । अर्थात समभिरूढ नय अनेक क्रियाओ मे एकत्व देखता है और एवभूत नय अनेक क्रियाओं मे अनेकत्व देखकर केवल एक समय वर्ती क्रिया से समवेत एक वस्तु को ही विषय करता है ।

(ii) समभिरूढ़ नय मे एक वस्तु मे अनेको क्रियाओं की सभावना होने के कारण एक वस्तु के अनेक अन्वर्थक नाम सम्भव है, परन्तु एवभूत नय में एक ही क्रिया होने के कारण उसका एक ही नाम सम्भव है ?

५ शंका — शव्द का अर्थ के साथ कोई सम्वन्ध नही, क्योकि वह वस्तु का धर्म नही है तो फिर वह अर्थ का व वस्तु का वाचक कैसे हो सकता है, तथा शव्द के दोप से वस्तु कैसे दूषित हो सकती है ।

(इस प्रश्न का उत्तर क. पा.१।ह १६८।२३८। क पा. १ ह २१५।२१६। २६५।२६६ तथा ध६.।१७६।७ मे निम्न प्रकार दिया है ।

उत्तर —"जैसे प्रमाण ज्ञान व अर्थ का कोई सम्वन्ध न होने पर भी वह अर्थ को ग्रहण कर लेता है, वैसे शव्द का अर्थ के

साथ कोई सम्बन्ध न होने पर भी शब्द अर्थ का वाचक हो जाये इसमे क्या आपत्ति है ?" और यदि शब्द व अर्थ मे यह वाच्य वाचक सम्बन्ध स्वीकार है तो शब्द मे दोष आने पर श्रोता के द्वारा ग्राह्य अर्थ मे कैसे दोष न आएगा।

६ प्रश्न—"प्रमाण और अर्थ मे तो ज्ञायक ज्ञेय सम्बन्ध पाया जाता है ?"

उत्तरः—"नही, क्योकि वस्तु की शक्ति की अन्य से उत्पत्ति मानने मे विरोध आता है। अर्थात जो वस्तु जैसी है उसको उसी रूप से जानने की शक्ति को प्रमाण कहते है। वह शक्ति से उत्पन्न नही हो सकती। यदि प्रमाण और अर्थ मे स्व-भाव से ही ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है तो शब्द और अर्थ मे भी स्वभाव से ही वाच्य वाचक सम्बन्ध क्यो नही मान लिया जाता" ?

७ शंका– "शब्द और अर्थ में यदि स्वभाव से ही वाच्य वाचक सम्बन्ध है तो फिर वह पुरुष व्यापार की अपेक्षा क्यों करता है ?

उत्तर–"प्रमाण यदि स्वभाव से ही अर्थ से सम्बद्ध है तो फिर वह इन्द्रिय व्यापार या आलोक (प्रकाश) की अपेक्षा क्यो रखता है ! इस प्रकार शब्द और प्रमाण दोनो मे शंका और समाधान समान है। फिर भी यदि प्रमाण को स्वभाव से ही पदार्थो का ग्रहण करने वाला माना जाता है तो शब्द को भी स्वभाव से अर्थ का वाचक मानना चाहिये।

अथवा यो भी यदि इसका समाधान किया जा सकता है कि शब्द और पदार्थ का सम्बन्ध कृत्तिम है अर्थात पुरुष के के द्वारा किया हुआ है, इसलिये वह पुरुष के व्यापार की अपेक्षा रखता है ।"

शंका—शुद्ध द्रव्यर्थिक या शुद्ध सग्रह के अद्वैत मे तथा इस नय के एकत्व मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—इसका उत्तर ऋजुसूत्र नय के प्रकरण नं. ४ प्रकार न. ७ मे दिया जा चुका है। वहा से देख लेना ।

मंगलाचरण

शब्द ब्रह्म की उपासना द्वारा अवतरित यह पवित्र सरस्वती मेरी दृष्टि की संकीर्णता को धोकर व्यापक स्वच्छ ज्ञान प्रदान करे

-: इति प्रथम भाग समाप्त :-

श्री वीतरागायनमः

नय दर्पण

भाग २

मंगलाचरण

प्रमाण नय निक्षेप से प्रत्यक्ष कर तिहुंलोक सव ।
व्यापक उसी आलोक मे खो भूल जाऊ शोक सब ।।

III आगम पद्धति (वस्तुभूत)

इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध भाग मे वस्तु का सागोपाग चित्रण दर्शाकर उस के सामान्य व विशेष अगों का विशद परिचय दिया जा चुका है । एक अनेक, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य व सत्-असत् आदि अनेकों विरोधी धर्मो को युगपत धारण करने वाली उस जटिल वस्तु को शब्दों द्वारा कहना कितना कठिन है, यह वात भली भांति वहा वताई जा चुकी है । फिर भी गुरु-शिष्य प्रवृत्ति के निमित्त उस को जिस किसी प्रकार भी वक्तव्य बनाना इष्ट है, क्योकि अनिर्वचनीय या निर्विकल्प मात्र कह देने से तीर्थ की प्रवृत्ति चलनी असम्भव है । अत: अवक्तव्य भी उस वस्तु को वक्तव्य वनाने के लिये, उसका विश्लेषण करके उसे अनेको विकल्पो मे विभाजित कर दिया गया । उन मे से किसी एक विकल्प को उठाकर तद्मुखेन उस वस्तु का विवेचन करना नय कहलाता है, यह भी वताया जा चुका है ।

वह नय ज्ञान, अर्थ व शब्द के भेद से तीन प्रकार का होता है । ज्ञान मे ग्रहण किये गये सत् व असत् विकल्पो को आश्रय करके कुछ

कहना ज्ञान नय है। प्रमाणभूत पदार्थ के सामान्य व विशेष अगों को आश्रय करके कुछ कहना अर्थ नय है । तथा विवेचन क्रम में प्रयुक्त शब्दों व वाक्यों में व्याकरण की अपेक्षा दूषणो देखकर उन्हें दूर करना और ठीक ठीक शब्दों आदि का ही प्रयोग करने को कहना शब्द नय है । इन तीनों नयो का विस्तृत विवेचन पूर्वार्ध भाग में शास्त्रीय नय सप्तक के अन्तर्गत किया जा चुका है। अब इस उत्तरार्ध भाग मे नयो के अन्य अनेकों भेद प्रभेदो का क्रम से कथन किया जायेगा। अनेको दृष्टियों से किये गये नय के भेद प्रभेदो का एक चार्ट उसी पूर्वार्ध भाग के अधिकार नं. ९ मे दिया गया था ।

दो प्रमुख पद्धतियो से वस्तु का विवेचन किया जाता है—आगम पद्धति से व अध्यातम पद्धति से। अज्ञान निवृत्ति के अर्थ किसी भी वस्तु का परिचय पाने के लिये जो कथन किया जाता है उसे आगम पद्धति कहते है, और जोवन या आत्म तत्व सम्बन्धित हेयोपादेयता का विवेक कराने के लिये जो कथन किया जाता है उसे अध्यात्म पद्धति कहते है । आगम पद्धति मे भी दो दृष्टिये है—शास्त्रीय दृष्टि और वस्तु को पढने की दृष्टि । इन दोनो मे से शास्त्रीय दृष्टि वाली आगम पद्धति का कथन पहिले किया जा चुका है, अब इस भाग में आगम पद्धति की जो दूसरी वस्तुभूत दृष्टि है उसका तथा अध्यात्म पद्धति का कथन किया जायेगा । तहा नय के भेदों के क्रमानुसार पहिले आगम पद्धति की वस्तुभूत नयो का कथन करना प्राप्त है । इस दृष्टि के अन्तर्गत द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नयों के १६ प्रमुख भेदों का ग्रहण किया गया है, जो कि चार्ट मे स्पष्टत. दिखाये जा चुके है।
उन्ही का कथन अब क्रम पूर्वक किया जायेगा ।

१६

द्रव्यार्थिक नय

(i) द्रव्यार्थिक नय सामान्यः–१. षोडश नय प्रकरण परिचय, २. द्रव्यार्थिक नय सामान्य के लक्षण, ३. द्रव्याथिक नय सामान्य के कारण व प्रयोजन,

(ii) शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिक नयः–४. द्रव्यार्थिक नय के भेद, ५. शुध्द द्रव्यार्थिक नय, ६. अशुध्द द्रव्यार्थिक नय,

(iii) द्रव्यार्थिक नय दशकः– ७. द्रव्यार्थिक नय दशक परिचय, ८. स्व चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, ९. पर चतुष्टय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १०. भेद

निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, ११. भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १२. उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १३. उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १४. परमभाव ग्राहक शुध्द द्रव्यार्थिक नय, १५. अन्वय ग्राहक अशुध्द द्रव्यार्थिक नय, १६. कर्मोपाधि निरपेक्ष शुध्द द्रव्यार्थिक नय, १७. कर्मोपाधि सापेक्ष अशुध्द द्रव्यार्थिक नय, १८, द्रव्यार्थिक के भेद प्रभेदो का समन्वय ।

१५। द्रव्यार्थिक नय सामान्य

षोडश नय प्रकरण परिचय

अधिकार न०।९ के अन्त मे जो नय के भेद प्रभेदो का चार्ट दिया है, उस मे से पहिले आगम पद्धति वाली नयो का कथन करने की प्रतिज्ञा की थी। आगम पद्धति वाली नयों की भी दो श्रेणियें वहा दिखाई गई है–शास्त्रीय नयो की श्रेणी और वस्तुभूत नयो की श्रेणी। उनमे से शास्त्रीय नय सप्तक का कथन हो गया, अव दूसरी वस्तुभूत नयो का कथन चलता है। आगम पद्धति की उपरोक्त दोनो श्रेणियो मे वास्तव मे कोई मूल सैद्धान्तिक अन्तर नही है। अन्तर है केवल उनकी व्याख्यान शैली मे। शास्त्रीय नय सप्तक तो ज्ञान नय, अर्थ नय, और शब्द नय इन तीनो मे परस्पर क्या सम्बन्ध है यह दर्शाता है, तथा साथ ही साथ नयों का आश्रयभूत जो तत्व उसका क्रम पूर्वक

विश्लेषण करता हुआ, उसे स्थूल से सूक्ष्म और फिर सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर व सूक्ष्म तम अवस्था तक पहुँचा कर दर्शा देता है। वस्तुभूत आगम नये ज्ञान व शब्द को छोड कर केवल अर्थ मे प्रवृत्त होते है। इसमे तत्व की स्थूलता व सूक्ष्मता की कोई अपेक्षा नही है। यहां तो वस्तु के सामान्य व विशेष अशो का अत्यन्त विशद परिचय देना इष्ट है।

अधिकार न० ६ मे वस्तु के अशों का व उनके सामान्य विशेष विकल्पो का परिचय दिया गया है। यद्यपि अब तक के सारे कथन का आधार भी वही रहा है, परन्तु नया प्रकरण प्रारम्भ करने से पहिले यहा पुनः उसका सक्षिप्त सा परिचय दे देना योग्य है, क्योकि वस्तु के सामान्य व विशेष ये अग ही इन नयो के प्राण है। वस्तु अनेक नित्य व अनित्य अगो का पिण्ड है। नित्य अगो को गुण और अनित्य को पर्याय कहते है। गुणो व पर्यायो के प्रदेशात्मक अधिष्टान को द्रव्य कहते है। द्रव्य तो द्रव्य है, उसके प्रदेश उसका क्षेत्र है, उसकी पर्याय ही उसका काल है, और गुण उसके भाव है। इस प्रकार सर्व ही अग द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव इन चार विकल्पो मे समा जाते है। ये चारो वस्तु के स्वचतुष्टय कहलाते है। वस्तु इस चतुष्टय से गुम्फित है। चार मे से एक का भी अभाव होने पर वस्तु की महासत्ता या अवान्तर सत्ता सुरक्षित नही रह सकती।

ये चारो ही सामान्य तथा विशेष के रूप मे देखे जा सकते है। जैसे कि एक व्यक्तिगत कोई द्रव्य तो विशेष है और अनेक ऐसे विशेष द्रव्यो मे अनुगत एक जाति को सामान्य द्रव्य कहते है, एक प्रदेश तो विशेष क्षेत्र है और अनेक विशेष क्षेत्रो मे अनुगत द्रव्य का एक अखण्ड सस्थान सामान्य क्षेत्र है; इसी प्रकार एक समय स्थायी पर्याय तो विशेषकाल है और अनेक विशेष कालो मे अनुगत वस्तु की त्रिकाली सत्ता सामान्य काल है, एक गुण तो विशेष भाव है और

अनेक विशेष भावो का पिण्ड कोई एक अखण्ड भाव सामान्य है, अथवा एक अविभाग प्रतिच्छेद तो विशेप भाव है और अनेक विशेप भावो मे अनुगत एक अखण्ड भाव सामान्य है। सामान्य चतुष्टय स्वरूप तत्व सामान्य तत्व कहलाता है और विशेप चतुष्ट स्वरूप तत्व विशेष तत्व कहलाता है। सामान्य और विशेप के मध्य तत्व के अनेको अवान्तर भेद प्रभेद देखे जा सकते है। इस सर्व कथन का विशेष विस्तार वहा अधिकार न० ६ मे देखे।

तहा सामान्य चतुष्टयात्मक तत्व की ही सत्ता को स्वीकार करके विशेष तत्व की सत्ता का तिरस्कार करना द्रव्यार्थिक नय है और विशेष तत्व की सत्ता को ही स्वीकार करके सामान्य तत्व की सत्ता का तिरस्कार करना पर्यायार्थिक नय है। यही इस वस्तुभूत अर्थ नय के मूल दो भेद है, जिनके आगे १६ भेद कर दिये गये है– दस भेद द्रव्यार्थिक नय के और छः भेद पर्यायार्थिक नय के। इन १६ भेदों का कथन ही इस श्रेणी मे किया जायगा। इन मे भी पहिले द्रव्यार्थिक नय तथा उसके सामान्य व विशेष भेदों का कथन करना इष्ट है।

२ द्रव्यार्थिक नय सामान्य के लक्षण

उपरोक्त सकेत पर से यह बात जानी गई है कि सामान्य तत्व की सत्ता को अर्थात् महा सत्ता व अवान्तर सत्ता की भूतपूर्व कथित पदार्थो की एकता को स्वीकार करके विशेष तत्व की उनकी अनेकता का तिरस्कार करना द्रव्यार्थिक नय का विषय है। इसी बात का विशेष स्पष्टीकरण करते है। यद्यपि सामान्य तत्व तो चतुष्टयात्मक है, और इस लिये चारो (द्रव्य क्षेत्र काल व भाव) के आधार पर ही उसकी सामान्यता को ग्रहण किया जाना चाहिये, परन्तु यहा कथन क्रम को सरल बनाने के लिये उनमे से किसी भी एक या दो के आधार पर अपना अभिप्राय समझना पर्याप्त है। तहा शेष मे भी वही अभिप्राय स्वय अपनी बुद्धि से लगा लेना।

अधिकार न० ६ मे वस्तु के सामान्य व विशेष का परिचय देने के लिये जीरे के पानी का दृष्टात दिया गया है । तहा नमक मिर्च आदि तो विशेष है और उस पानी का मिश्रित एक रसरूप विजातीय स्वाद सामान्य है । दार्ष्टान्ति मे ज्ञान, श्रद्धा, चरित्रादि अनेक गुण या स्वभाव, तथा मतिज्ञान आदि अनेकों अर्थ पर्याये, अथवा देव मनुष्यादि अनेको व्यञ्जन पर्याये या स्वकाल, तो विशेष है और उन सब मे अनुस्यूत एक आत्मा नाम पदार्थ सामान्य है । सामान्य का नाम द्रव्य है जो सर्व गुणों व त्रिकाली पर्यायों का एक रसात्मक अखंड पिण्ड है, और इसके विशेष ही पर्याय शब्द के वाच्य है। इस पर्यायो को गौण करके या भूलकर केवल उस सामान्य द्रव्य को ही सत् रूप स्वीकार करना द्रव्यायिक दृष्टि है ।

जीरे के पानी को चखते समय जिस प्रकार केवल एक अखण्ड स्वाद ही चखने मे आता है, नमक मिर्च आदि का पृथक पृथक स्वाद उस समय कोई चीज नही है, इसी प्रकार सामान्य द्रव्य से रहित पृथक पृथक गुण या पर्याय की सत्ता है ही कहा । गुण व पर्याय ही तो मिलकर द्रव्य कहलाते है और द्रव्य गुण पर्याय मयी है, अत. द्रव्य, गुण व पर्याय या द्रव्य क्षेत्र काल व भाव ऐसा द्वैत कहकर वस्तु की सत्ता को विनष्ट क्यो करते है उसे अकेला द्रव्य या वस्तु ही रहने दीजिये । वस्तु मे इस प्रकार का अद्वैत देखना ही इस दृष्टि का विषय है,।

इसी भाव को और अधिक स्पष्ट करने के लिये अधिकार न० १० मे प्रकरण न० ३ के अन्तर्गत वह जीरे के पानी वाला दृष्टान्त एक बार देख लीजिये । प्रश्नोत्तर के फलस्वरूप वहा चार बाते सामने आई थी—

१ —अभेद विजाति प्रकार का स्वाद है ।

२ –कह नही सकता (अवक्तव्य है) पर जानता हूँ।

३ –पृथक पृथक नमक मिर्च रूप नही है ।

४ –अकेले नमक जितना नही है ।

विचार करने पर ये चारो वाते वास्तव मे एक ही है चार नही है। न० २ का अवक्तव्यपना वास्तव में न० १ वाले अभेद स्वाद को ही दर्शा रहा है, स्वाद के अभाव को नही। क्योकि वह जाना जाते हुए भी कहा नही जा सकता, इसलिये उसे अवक्तव्य कहा गया है। सर्वथा न कहा जा सके ऐसा भी नही है। क्योकि यदि ऐसा होने लगे तो गुरु शिष्य सम्बन्ध निरर्थक हो जाए। अत न० ३ व ४ मे उस अवक्तव्य को जिस किसी प्रकार भी वक्तव्य वनाने का प्रयत्न किया गया है। जव "अस्ति" रूप से उसका कथन किया जाना सम्भव न देखा तो 'नास्ति' के द्वारा या 'नेति' के द्वारा कथन करने का ढग अपनाया गया। "इस अग रूप भी नही है," ऐसा कहना उन अगों का अभाव नही दर्शा रहा है वल्कि उसी न १ वाले स्वाद की विजातीयता दर्शा रहा रहा है। तथा न० ४ वाली वात उस एक विजातीय स्वाद की व्यापकता व अनेकता की ओर सकेत कर रही है। इस प्रकार नं० २ से न० ४ न० १ वाली यह तीन वातें वास्तव मे उस वाली वात को ही विशेप स्पष्ट कर रही है, अत: यह चार भी है।

ऊपर के कथन का तात्पर्य है कि यद्यपि द्रव्यार्थिक नय का लक्षण तो वही है जो कि पहिले दर्शा दिया गया अर्थात "विशेप को गौण करके सामान्य को ग्रहण करना द्रव्यार्थिक नय है" परन्तु इसी को विशेष स्पष्ट करने के लिए द्रव्यार्थिक नय के अनेको लक्षण किए जा सकते है, मुख्यत. ६ लक्षण यहा करने मे आते है। और भी अनेकों लक्षणो का परिचय इस नय के भेद प्रभेदो पर से हो जाएगा।

१ : पर्याय या विशेषो के गौण करके जो द्रव्य या सामान्य को ग्रहण करता है, वह द्रव्यार्थिक है ।

२ :—सामान्य द्रव्य ही है प्रयोजन जिसका सो द्रव्यार्थिक है ।

३ :—सामान्य या अभेद द्रव्य के निश्चय को द्रव्यार्थिक कहते है ।

४ —द्रव्यार्थिक अवक्तव्य है । केवल अनुभव गम्य है ।

५ .—सकल गुण गुणी आदि भेदो का निषेध करना द्रव्यार्थिक का लक्षण है ।

६ .—इतना ही मात्र द्रव्य नही है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी है ऐसा विकल्प द्रव्यार्थिक नय का लक्षण है ।

आओ क्रम से इन पाचों लक्षणो की आगम मे खोज करे ताकि इनकी प्रमाणिकता सिद्ध हो जाए और साथ साथ लक्षण भी स्पष्टत दृष्टि मे आ जाए । इन उद्धरणों को ही उपरोक्त लक्षण के उदाहरण समझना । यहा यह बात बता देनी योग्य है कि जैसा कि आगे बताया जाएगा द्रव्यार्थिक नय का दूसरा नाम निश्चय नय भी है । अत: यहा पर आने वाले उद्धरणों मे आपको दोनो शब्द मिलेगे। पहिले दो लक्षणो मे तो आपको द्रव्याथिक शब्द का ही प्रयोग मिलेगा । पर आगे के चार लक्षणों मे निश्चय का प्रयोग भी मिलेगा ।

अब इन लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये ।

१ लक्षण नं० १ (पर्याय या विशेष को गौण करके द्रव्य सामान्य का ग्रहण)

१ वृ न च ।१९० "पर्यायं गौणं कृत्वा द्रव्यमपि च यो हि गृह्णाति लोके । स द्रव्यार्थिको भणितो विपरित. पर्यायार्थिक: ।१९०।"

अर्थ—पर्याय या विशेष को गौण करके जो लोकमे द्रव्य या सामान्य को ग्रहण करता है, वह द्रव्यार्थिक नय है । इससे विपरीत पर्यायार्थिक है ।

२ न दी ।३।८२।१२५ "तत्र द्रव्यार्थिकनय द्रव्यपर्यायरूपमेकानेकात्मकमनेकान्त प्रमाणप्रतिपन्नमर्थं विभज्य पर्यायार्थिकनयविपयस्य भेदस्योपसर्जनभावेनावस्थानमात्रमभ्युनुजानन् स्वविपय द्रव्यमभेदमेव व्यवहारयति ।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय प्रमाण के विषयभूत द्रव्य-पर्यायात्मक, एकानेकात्मक अनेकान्तरूप अर्थका विभाग करके, पर्यार्थिक नय के विषयभूत भेद को गौण करता हुआ, उसकी स्थिति मात्र को स्वीकार कर, अपने विपय द्रव्य को अभेद रूप व्यवहार करता है ।

३ का. अ ।२६९ "य साधयति सामान्यं अविनाभूतं विशेषरूपै. । नानायुक्तिबलात् द्रव्यार्थ. स नय. भवति ।२६९ ।'

अर्थः—जो नय वस्तु को विशेष रूप से अविनाभूत सामान्य स्वरूप को अनेक प्रकार की युक्ति के बल से सिद्ध करता है वह द्रव्यार्थिक नय है ।

४ स. सा ।आ. १३ "द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतयानुभावयतीति द्रव्यार्थिक: ।"

अर्थ— द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु मे द्रव्य को मुख्य रूप से अनुभव करता है वह द्रव्यार्थिक नय है ।

५ श्ल वा ।१ ।६ ।१६ पु० २। पृ.३६१ "तन्नाशिन्यपि नि.शेपधर्माणां गुणतागतौ। द्रव्यार्थिकनयस्यैव व्यापारान्मुख्यरूपत. ।१९।"

अर्थ—जब सम्पूर्ण धर्मो को गौण रूप से जानना अभिप्रेत है और अशीका प्रधान रूप से जानना इष्ट है। तब उस अंशीमे भी मुख्यरूपसे द्रव्यार्थिक नय का ही व्यापार माना गया है।

२ लक्षण न० २ (सामान्य द्रव्य ही है प्रयोजन जिसका)

१ स. सि. ।१ ।६ ।५८ "द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ द्रव्यार्थिक ।"

अर्थः—द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है।

(ध १ ।८३।११) (ध ।९ ।२७० ।१) (नि. सा. ।ता. वृ० १९) (आ प ।१७।पृ० १२१) (प० ध. ।पू० ।५१८)

२. वृ० न च. ।१८९ "द्रव्यार्थिकेषु द्रव्यं पर्याय पर्यायार्थिकेषु विषयः ।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नयों मे द्रव्य और पर्यायार्थिक नयो मे पर्याय विषय है।

३ लक्षण ३ (सामान्य या अभेद द्रव्य के निश्चय को द्रव्यार्थिक नय कहते है।)

१. क पा ।१ ।१८०।२१६ ।७ "तद्भावलक्षणसामान्येनाभिन्नं सादृशलक्षण सामान्येन भिन्नमभिन्नं च वस्त्वभ्युपगच्छन् द्रव्यार्थिक इति यावत् ।

अर्थ--(पूर्वोत्तर पर्यायो मे अनुगत व्यक्तिगत द्रव्य को तद्भाव सामान्य कहते है, और अनेक द्रव्यो तथा उनकी जातियो मे सदृश्य भाव से रहने वाला 'सत्' सादृश्य सामान्य कहलाता है।) ऐसा तद्भाव लक्षण सामान्य की अपेक्षा तो अभिन्न और सादृश्य लक्षण सामान्य की अपेक्षा कथचित भिन्न व कथञ्चित अभिन्न जो वस्तु, उसका स्वीकार करने वाला द्रव्यार्थिक नय है।

२. ध. ।६।१६७।१० "द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवत्तास्तान् पर्यायानिति द्रव्यम्। एतेन तद्भावसादृशलक्षणसामान्ययोर्द्वयोः रपि ग्रहणम्, वस्तुन उभयथापि द्रवणोपलभात्।...

. सदित्येक वस्तु, सर्वस्य सतोऽविशेषात् । . .अथवा सर्वं द्विविध वस्तु जीवाजीवभावाभ्या। . .अथवा सर्व वस्तु त्रिविध द्रव्यगुणपर्यायै.।...एवमेकोत्तर क्रमेण वहिरगान्तरगधर्मिणौ विपाट्येते यावदविभागप्रतिच्छेद प्राप्तविति । एष सर्वेऽप्यनन्तरविकल्प. सग्रहप्रस्तार. नित्य वाचकभेदेनाभिन्नः द्रव्यमित्त्युच्यते । द्रव्यमेवार्थ. प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिक ।"

अर्थ--जो उन उन पर्यायो को प्राप्त होता है, प्राप्त होगा अथवा प्राप्त हुआ है, वह द्रव्य है। इस निरुक्ति से तद्भाव सामान्य और सादृश्य सामान्य (देखो ऊपर वाला उद्धरण) दोनो का ही ग्रहण किया गया है, क्योकि, वस्तु के दोनो प्रकार से भी उन पर्यायो को प्राप्त करना पाया जाता है ।

अब द्रव्य के भेद को कहते है–'सत्' इस प्रकार से वस्तु एक है, क्योकि, सबके सत् की अपेक्षा कोई

भेद नही है, कारण कि सत् से भिन्न कुछ नही है। अथवा सब वस्तु जीव भाव व अजीव भाव आदि के भेद से दो प्रकार है। अथवा सब वस्तु द्रव्य गुण व पर्याय से तीन प्रकार है। इस प्रकार एक को आदि लेकर एक अधिक क्रम से बहिरग व अतरंग (बहिरंग धर्मी अर्थात जीव अजीव आदि द्रव्य और अन्तरग धर्मी अर्थात गुण) धर्मियो का विभाग करना चाहिये, जब तक कि अविभाग प्रतिच्छेद को प्राप्त नही होते है। इस प्रकार सभी अनन्त भेद रूप संग्रह प्रस्तार नित्य व शब्द भेद से अभिन्न होता हुआ द्रव्य कहा जाता है। ऐसा द्रव्य ही है अर्थ अर्थात प्रयोजन जिसका वह द्रव्यार्थिक नय है।

३ ध ।१।१३ गा ८ "...। दव्वट्ठियस्स सव्व सदा अणुप्पण्ण-मविणट्ठ ।८।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे (द्रव्य) सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट स्वभाव वाले है।

४ पं का ।ता वृ०।२७।५७ "द्रव्यार्थिकनयेन धर्मा धर्माकाशद्रव्याणि एकानि भवन्ति जीव पुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि ।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय से धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य एक एक है और जीव पुदग्ल और काल द्रव्य अनेक अनेक है। (यहा तद्भाव सामान्य की अपेक्षा अनेकता का ग्रहण समझना।)

५. स भ त० पृ० ३४ "कालादिभिरष्टविद्याऽभेदवृत्ति· पर्यायार्थिक नयस्य गुणभावेन द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यादुपपद्यते ।"

अर्थ—पर्यायार्थिक नय के गौण होने पर द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता से काल आत्मस्वरूप तथा अर्थ आदि आठ प्रकार से घट आदि पदार्थ मे सब धर्मों की अभेद मे स्थिति रहती है।

६ प्र सा । त प्र । परि। नय नं० १ "तत्तु द्रव्यनयेन पटमात्रवच्चिन्मात्रम् ।"

अर्थ—वह आत्मा द्रव्य नय से पटमात्र की भाति चिन्मात्र है।

७ नय चक्र गद्य । पृ २५ "निश्चयोऽभेदविषय. ।"

अर्थः—निश्चय या द्रव्यार्थिक नय अभेद को विषय करता है।

८. नय चक्र गद्य । पृ०३१ "निश्चयनयस्तूपनय रहितोऽभेदानुपचारैक लक्षणमर्थं निश्चिनोति ।"

अर्थ—निश्चय नय है वह उपनय से रहित अभेद व अनुपचार लक्षण वाले अर्थ का निश्चय करता है।

९. आ. प. १९।पृ १२६ "अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयतेति निश्चयः ।"

अर्थ— अभेद और अनुपचरित रीति से जो पदार्थो का निश्चय करे सो निश्चय नय है।

१० वृ० द्र. स. । टीका । ८ । २१ "तत्काले- तप्तायःपिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चय. ।"

अर्थः—उस समय अग्नि मे तपे हुए लोहे के गोले के समान तन्मय होने से निश्चय कहा जाता है।

११ त अनु।२६ "अभिन्नकर्तृकर्मादिविषयो निश्चयो: नय· ।"

अर्थ—जिसमे कर्ता कर्म आदि सब विषय अभिन्न हो वह निश्चय है।

(अन ध. ।१।१०२।१०८)

१२. प. ध ।पू० ६५ "द्रव्यादेशादवस्थित वस्तु ।"

अर्थ—वस्तु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अवस्थित है ।

१३ प ध पू० ।६१४ "लक्षमेकस्य सतो यथाकथचिद्यथा द्विधाकरणम् । व्यवहारस्य तथा स्यात्तादितरथा निश्चयस्य पुन ।६१४।"

अर्थ—जिस प्रकार एक सत् को जो किसी प्रकार से दो रूप करना व्यवहार का लक्षण है, उसी प्रकार उस व्यवहार नय से विपरीत अर्थ एक सत् को दो रूप न करना निश्चयनयका लक्षण है ।

१४ स पा० ।६ मे प० जयचन्द "जीव को एक नित्यादि कहना द्रव्यार्थिक का विषय है ।"

४ लक्षण नं० ४ (अवक्तव्य है) --

१ प० ध ।पू० ।६२६ "स्वयमपि भूतार्थत्वाद्भवति स निश्चय-नयो हि सम्यक्त्वम् । अविकल्पवदतिवागिव स्यादनुभवैकगम्यवाच्यार्थ ।६२९।"

अर्थ—स्वय ही यथार्थ अर्थ को विषय करने वाला होने के कारण निश्चय से वह निश्चय नय सम्यक्त्व है । बहुरि वह

निर्विकल्प वत् और वचन अगोचरवत् एक स्वानुभव द्वारा ही गम्य है ।

२. प. ध. ।पू. ।६४१, ७४७)

२ प ध. ।उ० ।१३४ "एकः शुद्धनयः सर्वो निर्द्वन्दो निर्विकल्पकः ।" ।१३४।"

अर्थ --सम्पूर्ण शुद्ध नय एक अभेद और निर्विकल्प है ।

५. लक्षण नं० ५ (सकल भेदों के व्यवहार का निषेध करना)

१. रा० वा० ।१ ।३३ ।१ ।९४।२५ "द्रव्यमस्तीति मितरस्य द्रव्य भवनमेव नातोऽन्ये भावविकाराः, नाप्यभाव तद्वयतिरेकेणानुपलब्धेरिति द्रव्यास्तिकः ।"

वृ न. च. ।२६२ "यः स्याद्भेदोपचार धर्माणा करोति एकवस्तुनः । स व्यवहारो भणितः विपरीतो निश्चयो भवति ।२६२।"

अर्थ —जो एक वस्तु मे धर्मो की अपेक्षा भेद का उपचार करता है वह व्यवहार नय है । उससे विपरीत निश्चय नय होता है ।

३ प ध. ।पू।५६८,६४३ "व्यवहार. प्रतिषेध्यस्तस्य प्रतिषेध्यकश्च परमार्थः । व्यवहारप्रतिषेधः स एव निश्चयनयस्य वाच्य स्यात् ।५९८। इदमत्र समाधान व्यवहारस्य च नयस्य यद्वाच्यम् । सर्वविकल्पाभावे तदेव निश्चयनयस्य भद्वाच्यम् ।६४३।"

अर्थ —व्यवहार नय प्रतिषेध्य है, तथा उसका प्रतिपेधक निश्चय नय है, अर्थात जो व्यवहार नय का निषेध है वह

ही निश्चय नय का वाच्य है । यहां यह समाधान है कि व्यवहार नय का जो कोई वाच्य है, वह ही सम्पूर्ण विकल्पो के अभाव मे निश्चय नय का वाच्य है ।

६. लक्षण नं ६ (इतना ही मात्र द्रव्य नहीं है):-

१ प ध ।पू।५९९ "व्यवहार: स यथा स्यात्सद्द्रव्यं ज्ञानवाश्च जीवोवा । नेत्येतावन्मात्रो भवति स निश्चयनयो नयाधिपति: ।५९९।"

अर्थ—जैसे 'सत् द्रव्य है, अथवा ज्ञानवान जीव है' इस प्रकार का जो कथन है, वह व्यवहार नय है । तथा 'इतना ही नही है' इस प्रकार का जो व्यवहार के निपेध पूर्वक कथन है, वही नयो का अधिपति निश्चय नय है ।

३ द्रव्यार्थिक नय सामान्य के कारण व प्रयोजन

द्रव्यार्थिक नय के लक्षण व उदाहरण सम्वन्धी तो वात आ चुकी अब इन लक्षणों का कारण सुनिये । अनेकों शकाये चित्त मे उठ रही होगी । सम्भवत: विचारते हो कि एक ही लक्षण क्यों न किया, छ: लक्षण करने की क्या आवश्यकता हुई । तथा अन्य भी अनेको शंकाये इस स्थल पर तथा आगे आगे इस द्रव्यार्थिक नय के संवध मे उठनी स्वभाविक है । उन सव का समाधान तो अवसर आने पर यथा स्थान किया जायेगा । अत. उनके सवंध मे तो कुछ धैर्य से कामले, और यहां केवल इतना जानले, कि यह छ: लक्षण वास्तव मे छ: नही है, एक ही है । जैसा कि पहिले दृष्टांत के अन्तर्गत स्पष्ट कर दिया गया था, यह छ: वास्तव मे एक अभेद की सिद्धि के लिये है । क्योकि द्रव्य वास्तव मे एक रस ही होता है, सर्व अर्थ व व्यञ्जन पर्यायों का पिण्ड ही होता है, त्रिकाली शुद्ध व अशुद्ध सकल

पर्याये मानो उसके लम्बे इतिहास मे उत्कीर्णी ही गई हों, ऐसा होता है। इसलिये उस द्रव्य की पूर्णत. देखने वाली दृष्टि भी ऐसी ही होनी चाहिये। यही कारण है कि द्रव्य को ग्रहण करने वाली इस दृष्टि को तथा इसका प्रति पादन करने वाले इन अभेद सूचक लक्षणों को द्रव्यार्थिक नय कहा जाता है। बस यही इस नय का या इस प्रकार के लक्षण करने का कारण है।

इस नय का प्रयोजन जिज्ञासु श्रोता या पाठक को वस्तु का यथार्थ या भूतार्थ परिचय दिलाना है। अर्थात् जैसी वस्तु एक रस रूप अखड है वैसा ही चित्रण ज्ञान मे आना चाहिये, इससे विपरीत नही। यह इसका प्रयोजन है। वक्ता या लेखक इस बात को भूला नही है, कि उसने वस्तु की व्याख्या करते या उसे लिखते हुये क्या क्रम अपनाया है। एक एक अग को पृथक पृथक आगे पीछे ही कहने व लिखने मे आया है। यदि इतना ही करके छोड दे तो श्रोता के ज्ञान पर कैसा चित्रण बना रहेगा, यह भी उसे पता है। श्रोता बेचारा बिल्कुल अनभिज्ञ है। वह उतना और उस प्रकार ही तो स्वीकार कर सकता है जितना और जिस प्रकार कि वक्ता उसे बताता है। उसके अतिरिक्त अपनी तरफ से वह उस बताये हुये मे हीनाधिकता कैसे कर सकता है। और यदि ऐसा करने का प्रयत्न भी करेगा तो वह उसकी मर्जी से किया गया ग्रहण क्या उसके लिये सदा सशय का स्थान न बना रहेगा ?

यहा यह प्रश्न हो सकता है, कि जितने भी दृष्टात अब तक देने मे आये है उन सब मे ही व्याख्या का उपरोक्त क्रम रहा है। फिर भी श्रोता या पाठक को कोई भ्रम होने नही पाया है। उष्णता, दाहकता आदि रूप से भेद करके की गई व्याख्या पर से भी श्रोता ठीक ठीक अभेद अग्नि को ही समझ पाया है, इसके स्थान पर किसी और पदार्थ का चित्रण उसके ज्ञान पट पर नही खिचा है। अभेद कहे

बिना भी स्वयं अभेद का ग्रहण हो गया है । जब ऐसा स्वाभाविक रूप से हो ही जाता है तो इस द्रव्यार्थिक नय को कहने की आवश्यकता ही क्या है ? यह तो केवल वाक् गौरव मात्र रहा । और तो इसका मूल्य है नही ।

सो भाई । ऐसा नही है । यह वाक् गौरव मात्र नही है । तेरी शंका भी ठीक है । परन्तु तू शंका करते समय इतना अवश्य भूल गया है कि जिन दृष्टान्तो के आधार पर तूने यहा शका उठाई है वह उन पदार्थों सम्बन्धी है, जिन को तू पहिले से यर्थाथित जानता है । अर्थात् पहिले से उनका अभेद चित्रण तेरे ज्ञान पट पर खिचा हुआ है । परन्तु यहां तो किसी अदृष्ट पदार्थ को बताना अभीष्ट है, है, जो तू पहिले से नही जानता, जिसका यथार्थ चित्रण पहिले से तेरे ज्ञान पट पर नही है । उस चित्रण के अभाव मे अखण्ड द्रव्य को स्वत: कैसे समझ सकेगा ? जितना और जैसा वताया जायेगा वही तो समझेगा; उसके अतिरिक्त और कैसे समझेगा ? बताया जा रहा है खड खंड करके, अत. खण्डों पर से अखण्ड एक रस रूप पिण्ड को कैसे समझेगा ? खण्ड ही तो समझेगा । और यदि ऐसा हुआ तो क्या कोई भी सत्ता भूत वस्तु तू समझ पायेगा ? क्या उस तेरी समझ के अनुरूप खड लोक मे तुझे कदापि देखने को मिलेगे ? और जब वैसा कुछ पृथक पृथक देखने को मिलेगा ही नही तो उस प्रकार का खडित ग्रहण क्या तेरे ज्ञान पर केवल भार मात्र न होगा ? उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा ?

जैसे कि आगम के उद्धरणों पर से पढ कर तथा ज्ञानी जीवो के मुख से सुन कर यह बाते शब्दों मै तो तू जान रहा है, विद्वान लोग भी जान रहे है कि, कार्य उपादान कारण से होता है, "कार्य निमित्त कारण से भी होता है, कार्य पुरुषार्थ के द्वारा भी होता है, कार्य नियति या काल लब्धि के द्वारा भी होता है,

और कार्य भवितव्य के आधीन भी है इत्यादि" । परन्तु इन को अभेद रूप से देखने मे असमर्थ वास्तव मे तुझे इस बात का पता ही नही कि कार्य किस कारण से होता है । और इसीलिये बडे बडे विद्वान भी आज परस्पर मे इन कारणो ही की चर्चा में उलझ कर लड़ रहे हैं। उपादान से कार्य होता सुन कर निमित्तादि शेष चार कारणों का निषेध प्रतीत होने लगता है, निमित्त कारण से होता है सुनकर उपादान व पुरुषार्थ आदि का निषेध भासने लगता है, पुरुषार्थ से होता सुन कर नियति व काल लब्धि केवल कपोल कल्पना सी दीखने लगती है, और नियति से होता सुनकर पुरुषार्थ व निमित्त की आवश्यकता ही रहती प्रतीत नही होती। जैन जगत के सर्व अध्यात्मिक पत्र विद्वानों के लिये इसी विषय पर मानो युद्ध के शस्त्र बने हुए है। जिनके द्वारा वे एक दूसरे पर बराबर प्रहार करते रहने मे ही अपनी महत्ता समझते है। वर्षो चर्चा करते बीत गये परन्तु आज तक भी समाधान न हो सका । फिर तेरी तो बात ही क्या, तू तो ठहरा मन्द बुद्धि ।

इसी शान्ति पथ के अग स्वरूप सम्यकत्व, ज्ञान व चारित्र तीनों मे से कोई तो कहता है कि सम्यकत्व पहिले होता है, जब वह होता है तो ज्ञान चारित्र नही होता । कोई कहता है कि ज्ञान पहिले होता है । कोई कहता है कि चारित्र पहले धारो । कोई आगम ज्ञान के पीछे हाथ धोकर पडा हुआ है, और कोई व्रत धारने व बाह्य के आचरण के पीछे । कोई बाह्य के आचरण को बिल्कुल बेकार बता रहा है, और कोई इसमे अपने जीवन का सार देख रहा है । इत्यादि अनेको बाते आज अध्यात्म मार्ग मे क्या तुझसे से छिपी है ?

विचार तो सही कि यदि दृष्ट पदार्थो वत, यहा भी सब उपरोक्त बातो को परस्पर सम्मेल बैठाकर एक रस रूप ग्रहण कर लिया होता, तो लडाई को कहा अवकाश रह गया था । अदृष्ट विषयो को अभेद रूप से कैसे देखा जा सकता है, वही बात यह द्रव्यार्थिक नय

बताता है। इसके बिना परस्पर बिरोधी बातों का समन्वय बैठना असम्भव है। यदि अभेद रूप से देखने का अभ्यास हुआ होता उपरोक्त कार्य कारण व्यवस्था मे न अकेले उपादान को देखता न अकेले निमित्त को न अकेले पुरुषार्थ को और न अकेली निर्यति को। पाचो का मिला हुआ एक रस रूप कोई अद्वितीय विजातीय कारण ही कार्य व्यवस्था मे सार्थक है, जिस मे उन पांचो को एक ही समय ममान स्थान प्राप्त है, बिल्कुल जीरे के पानी मे पडे मसालो वत्।

वास्तव मे इन सर्व कारणो मे एक अनोखा सम्मेल है। निमित्त है तहा उपादान है और उपादान है तहा निमित्त। निमित्त के बिना उपादान नही और उपादान के बिना निमित्त नही। जहा पुरुषार्थ है वहां नियति अवश्य है। पुरुषार्थ के बिना नियति नही और नियति के बिना पुरुषार्थ नही। पाचो की खिचड़ी जहा बन जाये वह वास्त विक रहस्यार्थ का ग्रहण है जो वास्तव मे अवक्तव्य है। इस अवक्तव्य अभेद भाव की ओर सकेत करना ही द्रव्याथिक नय का प्रयोजन है। यदि यह अभेद द्रव्याथिक दृष्टि उत्पन्न हो गई होती, तो उपादान सुनकर अनुक्त भी निमित्त का ग्रहण और निमित्त सुनकर उपादान का ग्रहण, अथवा पुरुषार्थ सुनकर नियति का ग्रहण और नियति सुन कर पुरुषार्थ का ग्रहण हो जाना अनिवार्य था जैसा कि प्रकाश सुन कर उष्णता का ग्रहण हो जाना अनिवार्य है। उसको पूछने की आवश्यकता नही।

ऐसी महिमा है इस द्रव्याथिक नय की। वस्तु जटिल है, और द्रव्याथिक नय का ग्रहण भी इस लिये जटिल पड़ता है। आज हम नयो का नाम तो जानते है। "यह बात अमुक नय से सत्य है और यह वात अमुक नय सत्य है" ऐसा बराबर कहते भी रहते है। परन्तु कहते हुये भी न स्वयं अपने मन का संशय दूर कर पाते है और न दूसरे के मन का कारण है कि अभेद ग्रहण के अभाव मे जो भी पढ या सुन पाते हैं,

उसे पृथक पृथक स्वतत्र सत् मान वैठते है, जैसे कि चारित्र को ज्ञान से और ज्ञान को चारित्र से पृथक मानने मे आ रहा है। वास्तव मे ज्ञान है सोई चारित्र है और चारित्र है सोई ही ज्ञान है। ज्ञान के विना चारित्र नही और चारित्र के विना ज्ञान नही। आगे पीछे कुछ है नही दोनो एक समय मे है। पर यह रहस्य कैसे समझा जाये। कुछ कठिन समस्या है। यहा यह समझाने का प्रकरण नही है। इस वात का कुछ स्पष्टी करण यदि देखना चाहते है तो इसी लेखक द्वारा निर्मित "शान्ति पथ द्रदर्शन" नाम के ग्रन्थ मे देखने को मिल सकता है।

यहा तो केवल इतना निर्णय करना है कि द्रव्यार्थिक नय वस्तु का रहस्यार्थ समझने के लिये कितना उपकारी है। और इसी लिये आगम मे सर्वत्र इसी पर जोर दिया गया है, इसी को भूतार्थ वताया गया है। और भेदो को प्रति पादन करने वाले व्यवहार नय को अभूतार्थ वताया है। कारण यही है कि यदि वस्तु के रहस्यार्थ को जानना है तो उसे अखण्ड रूप से एक रस करके जानने का ही प्रयत्न कीजिये। खण्डित उन अगो की सत्ता इस लोक मे है ही नही। उन सर्व अगो की स्वतत्र सत्ता आकाश पुष्पवत् है। इसी लिये उनका खण्डित ग्रहण अभूतार्थ है। द्रव्यार्थिक का महान उपकार अव तेरी दृष्टि मे आ गया होगा ऐसी आशा है। द्रव्यार्थिक नय के लक्षण पर अनेको शकाये होनी सम्भव है सो यथा स्थान समाधान किया जाता रहेगा।

१६ शुद्धा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

दिनांक १२-१०-६०

४ द्रव्यार्थिक नय के भेद

यद्यपि द्रव्यार्थिक नय केवल अभेद के प्रति संकेत करता है, और इसलिये इस नय के कोई भेद प्रभेद नहीं होने चाहिये, परन्तु इसका विशेप रूप दर्शाने के लिये आगमकारो ने इसके भी भेद कर दिये

है । गुरु दयालु है । उनकी दृष्टि मे केवल विज्ञजन ही नही है, बल्कि मन्द बुद्धिजन भी है, जो बिना विशेषताओ के जाने वस्तु का स्पष्ट ज्ञान नही कर सकते । बस अनेक अनुग्रह के अर्थ अभेद को भी कोई रूप से दर्शाने का प्रयत्न करते है । मन्द बुद्धियों के लिये कहे गये विस्तृत कथन मे से तो विज्ञजनो का उपकार सहज हो जाता है, परन्तु विज्ञजनो के लिये कहे गये सक्षिप्त कथन मे से मन्द बुद्धि जनो का उपकार नही हो पाता, इसलिये अभेद को भेद करके अनेक प्रकार से दर्शाना इष्ट ही है । इसी प्रयोजन को सिद्धि के अर्थ अब द्रव्यार्थिक नय के कुछ भेद दर्शाते है । इतना यहां अवश्य समझते रहना कि विशेषताये स्पष्ट करने के लिये ही यह भेद बताये जा रहे है इनको समझ कर भी अन्त मे इन्हे फिर अभेद व एक रस करके ही देखना होगा, तब ही परिपूर्ण वस्तु के अनुरूप अपने ज्ञान को बना सकोगे, अन्यथा नही । और इसीलिये इन भेदो को कदाचित द्रव्यार्थिक नाम देना भी उपयुक्त न हो सकेगा । अब उन भेदो को सुनिये ।

वैसे तो द्रव्यार्थिक के अनेको भेद प्रयोजज वश किये जा सकते है । परन्तु यहा तो उनमे से कुछ का ही ग्रहण किया जाना सम्भव है । द्रव्यार्थिक नय द्रव्य के अनुरूप होता है । मुख्यत द्रव्य को दो प्रकार से देखा जा सकता है ।

१. उसे नित्य शुद्ध रूप से अर्थात गुण गणी आदि के भेदो से निरपेक्ष एक अखण्ड भाव रूप से भी देखा जा सकता है और,

२ अनेकों गुण व पर्यायो के भेदो के सापेक्ष उनके समुदाय रूप से भी ।

इन्ही दो को अनेक दृष्टियो से देखा व वर्णन किया जा सकता है। जैसे कि पर्याय भेदो से निरपेक्ष शुद्ध, पर्याय भेदो से सापेक्ष अशुद्ध उत्पाद व्यय निरपेक्ष शुद्ध, उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध इत्यादि। इसलिए द्रव्यार्थिक नय के पहले दो मूल भेद किये गये–शुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुद्ध द्रव्यार्थिक। तथा इनके प्रतिविम्व स्वरूप, आगे दस भेद किये गये–१ उत्पाद व्यय निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक २. उत्पा दव्यय साक्षेप अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ३ भेद' कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक, ४ भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ५. कर्म निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक, ६ कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ७ स्व द्रव्यादि चतुप्ट ग्राही शुद्ध द्रव्यार्थिक, ८ परद्रव्यादि चतुष्टय विच्छेक अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ९ परमपारिणामिक भाव ग्राही शुद्ध द्रव्यार्थिक, १० गुण व त्रिकाली पर्यायो मे अनुगत पिण्ड अन्वय नामवाला अशुद्ध द्रव्यार्थिक।

इन सब भेदो के, क्रम से पृथक पृथक लक्षण उदाहरण व प्रयोजन दर्शाये जायेगे और फिर अन्त मे जाकर उन सबका परस्पर सम्मेल बैठा कर इनको एक अभेद मे गर्भित कर दिया जायेगा। अब इनके पृथक पृथक लक्षणादि सुनिये।

५ शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि वस्तु भले ही वह महासत्ता स्वरूप हो या अवान्तर स्वरूप, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चतुष्टय स्वरूप है। ये चारो ही विकल्प सामान्य व विशेष दो प्रकार से देखे जा सकतेहै। अनेक विशषों या भेदो मे अनुगत एक सत्ता को सामान्य कहते है। सामान्य चतुष्टयस्वरूप द्रव्य समान्य कहलाता है। और विशेष चतुष्टयस्वरूप द्रव्य विशेषकहलाता। इन दोनो मे से विशेष द्रव्य का यहा अधिकार नही है, क्योकि वह पर्यायार्थिक नय का विषय है। सामान्य द्रव्य मे ही द्रव्यार्थिक नय का व्यापार होता है।

विशेष सर्वथा निर्विकल्प होता है क्योकि उसमे अन्य विशेष नही रहते, परन्तु सामान्य कथञ्चित सविकल्प होता है, क्योकि उसमे अनेकों विशेष रहते है । इस सविकल्प सामान्य को दो प्रकार से पढा जा सकता है–विशेषो से निरपेक्ष, तथा विशेषो से सापेक्ष उदाहरणार्थ "गुण व पर्याय वाला द्रव्य होता है" द्रव्य का ऐसा लक्षण करना गुण गुणी आदि भेदो या विशेषो से सापेक्ष है, और गुण पर्याय वाला न कहकर "द्रव्य तो स्वलक्षण स्वरूप स्वय द्रव्य ही है" ऐसा कहना विशेषों से निरपेक्ष है । इन दोनों मे विशेष निर-पेक्ष सामान्य द्रव्य की ही सत्ता को स्वीकार करने वाली दृष्टि द्रव्यार्थिक है और विशेष सापेक्ष सामान्य द्रव्य की सत्ता की स्वीकृति अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

विशेष निरपेक्ष सामान्य द्रव्य को द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा ऐसा कहा जा सकता है:–

द्रव्य की अपेक्षा उसे गुण पर्याय वान या उत्पाद व्यय ध्रुव स्वरूप कहना ठीक नही है, क्योकि वह वास्तव मे गुण व पर्याय के कारण द्वयात्मक अथवा उत्पादादि के कारण त्रयात्मक नही है, वह तो अनिर्वचनीय अखण्ड तथा एक है । क्षेत्र की अपेक्षा उसे अनेक प्रदेश वाला कहना युक्त नही है, क्योकि अनेक प्रदेश कलपना मात्र है, पृथक पृथक सत् नही है, अत: वह तो अखण्ड किसी निज सस्थान या आकार रूप ही है । काल की अपेक्षा उसे भूत वर्तमान भविष्य वाला कहना युक्त नही है, क्योकि इन तीनो कालों सम्बन्धी अपनी पर्यायो सहित रहने वाले किन्ही तीन पृथक द्रव्यो की सत्ता लोक मे नही है, अत वह तो इन सर्व पर्यायों मे अनुगत कोई एक त्रिकाली नित्य तत्व ही है । भाव की अपेक्षा अनेक गुणों वाला कहना युक्त नही है, क्योकि द्रव्य से पृथक अनेक गुणों की सत्ता नही है, अत. वह तो स्वलक्षणभूत किसी निज अखण्ड एक भावस्वरूप

ही है । इस प्रकार एक अखण्ड नित्य स्वलक्षण स्वरूप अद्वैत तत्व विशष निरपेक्ष सामान्य द्रव्य है ।

ऐसा एक अखण्ड सामान्य द्रव्य है प्रयोजन जिसका वह शुद्ध द्रव्याथिक नय है । शास्त्रीय नय सप्तक मे यह सग्रह नय मे गर्भित होता है ।

अन्य प्रकार स भी शुद्ध तत्व को पढा जा सकता है, और वह प्रकार है, उसको पारिणामिक भाव की और से पढ़ने का । पारिणामिक भाव जेसा कि पहिले भली भाति समझाया जा चुका है त्रिकाली शुद्ध ही होता है । उत्पाद व व्यय आदि अपेक्षाओ से सर्वथा रहित उसमे शुद्ध या अशुद्ध पर्याय की कल्पना मात्र को भी अवकाश नही है । क्षायिक भाव की अशुद्धता और इसकी शुद्धता मे अन्तर है, क्योकि क्षायिक भावि की शुद्धता तो अशुद्धता को दूर करके प्रगट होती है, परन्तु इसकी शुद्धता, अशुद्धता से सर्वथा निरपेक्षा त्रिकाली है । ऐसे शुद्ध परिणामिक भाव स्वरूप ही द्रव्य को सत्ता को स्वीकार करना भी शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है । वास्तव मे शुद्ध नय के सर्व ही लक्षणो मे एक यही भाव ओतप्रोत है । सदा शिव वादियो की दृष्टि का आधार शुद्ध द्रव्यार्थिक का यही लक्षण है ।

स्वचतुष्टय के साथ तन्मय स्वलक्षणभूत किसी अनिर्वचनीय व अभेद त्रिकाली शुद्ध पारिणामिक भाव मई वह द्रव्य स्वत. सिद्ध है । उसकी सत्ता मे अन्य किसी पदार्थ की अपेक्षा करने की क्या आवश्यकता अन्य चेतन या अचेतन समस्त पदार्थों की सहायता से रहित नि सहाय तत्व सर्वथा स्वतत्र है । अत. पर द्रव्य, पर द्रव्य का क्षेत्र, पर द्रव्य का काल या पर्याय तथा पर द्रव्य के भाव या गुणो के साथ उसका किसी भी प्रकार का सयोग सम्वन्ध या निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध या कार्य कारण आदि सम्बन्ध स्वीकार नही किया जा सकता । ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

उपरोक्त वक्तव्य पर से इस नय के निम्न ६ लक्षण किये जा सकते है।

१. द्रव्य की अपेक्षा गुण गुणी आदि भेदो से निरपेक्ष वह केवल एक निर्विकल्प अद्वैत अनिर्वचनीय सत्ता को ही ग्रहण करता है।

२. क्षेत्र की अपेक्षा प्रदेश भेद की कल्पना से निरपेक्ष, वह केवल एक अखण्ड सस्थान को ही स्वीकार करता है।

३. काल की अपेक्षा भूत वर्तमान भविष्यत पर्यायो के भेद से निरपेक्ष केवल द्रव्य की त्रिकाली सामान्य सत्ता को ही देखता है।

४. भाव की अपेक्षा अनेक गुणों के समुदायपने से निरपेक्ष किसी स्वलक्षणभूत एक निर्विकल्प भाव को ही ग्रहण करता है।

५. अथवा पर्याय कलक से रहित त्रिकाली शुद्ध पारिणामिक भावस्वरूप ही द्रव्य को देखता है।

६. पर चतुष्टय से निरपेक्ष स्व चतुष्टय स्वरूप उस तत्व का अन्य पदार्थो के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध सहन नहीं करता।

अब इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देता हूँ।

१. लक्षण नं. १ (द्रव्य की अपेक्षा एक है व अनिर्वचनीय है।)

१. आ. प ।१७। पृ. १२१ "शुद्ध द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्ध द्रव्यार्थिकः।"

अर्थ—शुद्ध द्रव्य ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका सो शुद्ध द्रव्यार्थिक है ।

२ प वि ।१।१५७।८४ "शुद्ध वागतिवर्तितत्वमितरद्वाच्यं च त द्वाचक शुद्धादेशमिति प्रभेदजनक शुद्धेतरकल्पित ।"

अर्थ—शुद्ध नय तत्व को अनिर्वचनीय व शुद्ध कहता है, तथा अशुद्ध नय उसी मे भेद उत्पन्न करने वाला है ।

३. प्र. सा त प्र ।२।३३ "शुद्ध द्रव्य निरूपणाया परद्रव्यसपर्का-संभवात्पर्यायाणां द्रव्यान्त: प्रलयाच्च शुद्ध द्रव्य एवात्मावतिष्ठते ।

अर्थ—वास्तव मे शुद्ध द्रव्य के निरूपण मे पर द्रव्य के सम्पर्क का असम्भव होने से और पर्याये द्रव्य के भीतर प्रलीन हो जाने से आत्मा शुद्ध द्रव्य ही रहता है ।

४ प्र सा ।त प ।परि. ।नय न ४७ "शुद्धनयेन केवलमृण-मात्रवन्निरूपाधिस्वभावम् ।"

अर्थ—आत्मा शुद्ध नय से, केवल मिट्टी मात्र की भाति, निरुपाधि स्वभाव वाला है ।

५ प ध ।पू ।७४७, ७५४ "तत्त्वमनिर्वचनीय शुद्धद्रव्यार्थिक-स्य भवति मतम् । गुणपर्ययवद्द्रव्य पर्यायार्थिकनयस्य-पक्षोऽयम् ।७४७। न द्रव्यं नापि गुणो न च पर्यायो निरशदेशत्वात् । व्यक्त न विकल्पादपि शुद्धद्रव्यार्थिकस्य मतमेतत् ।७५४।

अर्थ—"तत्व अनिर्वचनीय है" ऐसा कहना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है। तथा "गुण पर्याय वाला द्रव्य है" ऐसा पर्यायार्थिक नय का पक्ष है ।७४७। "अखण्ड रूप होने के कारण न द्रव्य है", तथा न गुण है, तथा न पर्याय है, तथा न वह वस्तु किसी विकल्प से व्यक्त ही हो सकती है, ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का मत है।

६. पं. ध. ।उ०।३३।१३३ "अथ शुद्धनयादेशाच्छुद्धश्चैक विधोऽपिय. । स्याद्द्विधा सोपि पर्यायान्मुक्तामुक्त प्रभेदत ।३३। जीव: शुद्धनयादेशादस्ति शुद्धोपितत्वत: ।१३३।"

अर्थ—शुद्ध नय की अपेक्षा से जो जीव शुद्ध तथा एक प्रकार का है। वही जीव पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से मुक्त और संसारी जीव के भेद से दो प्रकार का भी है ।३३। वास्तव मे यहा शुद्ध नय की अपेक्षा से जीव शुद्ध भी है ।१३३।

प. ध. ।पू० २१६ "यदि वा शुद्धत्वनयात्राप्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम् । गुणश्च पर्यय इति वा न स्याच्च केवलं सदिति ।२१६।"

अर्थ—अथवा शुद्धता को विषय करने वाले नय की अपेक्षा न उत्पाद है, न व्यय है और न ध्रौव्य है। इसी प्रकार न गुण है और न पर्याय है। केवल एक सत् ही है।

(प. ध. ।पू.। २४७, ७४७)

२ लक्षण नं. २ (क्षेत्र की अपेक्षा अखण्ड है) —

नोट—क्षेत्र की प्रमुखता से आगम मे कथन साधारणत नही किया जाता, क्योकि उसका अन्तर भाव द्रव्य वाली अपेक्षा मे ही हो जाता है, कारण कि गुणो आदि का आधार होने के कारण प्रदेशो को ही द्रव्य कहा जाता है। परन्तु पाठको को अनुक्त भी यह अपेक्षा अपनी वुद्धि से यथा योग्य रूप से लागू कर लेनी चाहिये।

३ लक्षण नं० ३ (पर्याय परिवर्तन निरपेक्ष त्रिकाली सत्ता)—

१. क० पा०।१।१८२ २१६ "शुद्धद्रव्यार्थिक: पर्यायकलकरहित वहुभेद सग्रह ।"

अर्थ—जो पर्याय कलक से रहित होता हुआ अनेक भेद रूप सग्रह नय है वह शुद्ध द्रव्यार्थिक है। अर्थात सर्व पर्यायो का सग्रह करके द्रव्य को एक अखण्ड रूप प्रदान करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

२ प का ।ता वृ।११।२७ "अनादिधिनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिक-नयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा नास्ति ।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय से अनादिनिधन द्रव्य की न उत्पत्ति है और न विनाश।

४ लक्षण न० ४ (भाव की अपेक्षा स्वलक्षणभूत शुद्ध स्वभावी हैं)

१. आ. प ।१५। वृ १११ "शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धस्वभाव ।"

अर्थः—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से तत्व शुद्ध स्वभावी है।

२. प्र. सा । त प्र । पारि। नय न ४७ "शुद्धनयेन केवलमृण्मात्र वन्निरुपाधिस्वभावम् ।"

अर्थः—आत्मा द्रव्य शुद्ध नय से, केवल मिट्टी मात्र की भाति निरुपाधि स्वभाव वाला है ।

३ वृ द्र स ।३।११ "शुद्धनिश्चयतः सकाशादुपादेयभूता शुद्धचेतना यस्य स जीवः ।"

अर्थः—शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा उपादेयभूत यानी ग्रहण करने योग्य शुद्ध चेतना जिसके हो सो जीव है ।

४ स सा ।आ।१६।क १८ "परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैकक । सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वादमेचक ।१८।"

अर्थः—शुद्ध निश्चय से प्रकट ज्ञायक ज्योतिमात्र आत्मा एक स्वरूप है । क्योकि सभी अन्य भावों को दूर करने रूप उसका अपना स्वभाव अमेचक अर्थात शुद्ध एकाकार है ।

५ स सा ।मू।७ "ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दंसण णाण । णावि णाणं ण चरित्त ण दसण जाणगो सुद्धो ।७।"

अर्थः—ज्ञानी के चारित्र दर्शन ज्ञान ये तीन भाव व्यवहार द्वारा कहे जाते है । निश्चय नय से ज्ञान भी नही है, चरित्र भी नही है और दर्शन भी नही है ज्ञानी तो एक ज्ञायक ही है ।

५ लक्षण नं. ५ (त्रिकाली शुद्ध परिणामिक भावस्वरूप ही द्रव्य है)

१ स. सा।मू. १४ "जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णयं णियद । अविसेसमसजुत्त त सुद्धणय वियाणाहि ।१४।"

अर्थ– जो आत्माको बन्ध रहित और परके स्पर्शके रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेप रहित, अन्यके सयोग रहित, ऐसे पाच भाव रूप (केवल त्रिकाली शुद्ध परिणामिक भाव स्वरूप) अवलोकन करता है, उसे शुद्ध नय जानो ।

२. मि सा. ।ता वृ। ४२ "इह हि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवस्य समस्तससारविकरसमुदायो न शमस्तीत्युक्तम् ।"

अर्थ— शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध जीव को समस्त ससार विकारोका समुदाय नही है, ऐसा यहां कहा है ।

(नि. सा. ।ता वृ।४७)

३. वृ द्र. स।४८।२०६ "साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयनय स्त्रीपुरुषसयोगरहित पुत्रस्येव, तेषामुत्पत्तिखे नास्ति ।"

अर्थ– साक्षात शुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षासे, जैसे स्त्री और पुरुषके सयोग के बिना पुत्रकी उत्पत्ति नही होती, इसी प्रकार जीव तथा कर्म इन दोनो के सयोग के बिना राग-द्वेषादि की उत्पत्ति ही नही होती। (अर्थात जब शुद्ध निश्चयके विषयभूत पारिणामिक भाव मे कर्म सयोगादि की अपेक्षा ही नही है, तब वहां रागदि कैसे सम्भव हो सकते है ।)

४ वृ द्र स ।५७।२३६ "नच शुद्धनिश्चयनयेनेति । यस्तु शुद्धद्रव्य-शक्तिरूपः शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणपरमनिश्चय-मोक्ष. सच पूर्वमेव जीवे तिष्ठतीदानी भविष्यतीत्येवंन ।"

अर्थ – शुद्ध निश्चय नय से (मोक्ष) नही है । जो शुद्ध द्रव्यकी शक्तिरूप शुद्ध पारिणामिक परम भाव रूप परम निश्चय मोक्ष है, वह तो जीवमे पहिले ही विद्यामान है, वह परमनिश्चयमोक्ष जीवमें अब होगी ऐसा नही है ।

५ प प्र।१।१।६।१५ "शुद्धनिश्चयनयेन बन्ध मोक्षौ न स्त. ।"

अर्थ –– शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा जीव को बन्ध और मोक्ष ही सम्भव नही ।

६. प्र.।१।६५।७२।६ "व्यवहारेण द्रव्यबन्ध तथैवाशुद्धनिश्चयेन भाव बन्ध तथा नयद्वयेन द्रव्यभावमोक्षमपि यद्यपि जीवः करोति तथापि शुद्धपारिणामिक परमभावग्राहकेन शुद्ध-निश्चयेन न करोत्येव भणति ।"

अर्थ –– व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म वन्ध और अशुद्ध निश्चय नयसे रागादि भावकर्म के वन्ध को तथा दोनो नयों से द्रव्यकर्म व भावकर्म की मुक्तिको यद्यपिजीव करता है, तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभावके ग्रहण करने वाले शुद्ध निश्चय नय से नही करता है, वन्ध और मोक्ष से रहित है ।

७. प ध।३०।४५६ "अस्त्येवं पर्यायादेशाद्वन्धो मोक्षश्च तत्फ-लम । अथ शुद्धः नयादेशाच्छुद्ध सर्वोऽपि सर्वदा ।४५६।

अथ — "पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे बन्ध, मोक्ष और बन्धका फल पुण्य पाप आदि है । परन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे सर्व जीव सदा शुद्ध है ।"

६ लक्षण नं ६. (पर संयोग का निरास)

प्र सा. . त प्र।२।३३ "शुद्ध द्रव्यनिरूपणाया परद्रव्यसंपर्कासमात ....शुद्ध द्रव्य एवात्मावतिष्ठते ।"

अर्थ – शुद्ध द्रव्यके निरूपणमे पर द्रव्यके सम्पर्कका असम्भव होने से आत्मा शुद्ध द्रव्य ही रहता है।

स सा.मू।१४"जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णयं णियद । अविसेत्यदसजुत्त त सुद्धणय वियाणीहि ।१४।"

अर्थ -- जो आत्माको बन्धराहित और परके स्पर्शसे रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष अन्यके सयोग रहित, ऐसे पाच भावरूप अवलोकन करता है, उसे शुद्ध नय जानो ।

पारिणामिक भाव सम्बन्धी लक्षण न. ५ मे निम्न वाते स्पष्ट की गई है जिन को दृष्टि मे रखना अत्यन्त आवश्यक है –

१. शुद्ध निश्चय नय शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का दूसरा नाम है ।

२ यह नय शुद्ध पारणामिक भाव मात्र को ग्रहण करके वर्तता है ।

३. पारणामिक भाव त्रिकाली शुद्ध होता है ।

४. क्षायिक भाव की शुद्धता और उसकी शुद्धता मे महान अन्तर है ।

५. उसमे शुद्ध व अशुद्धि की अपेक्षा ही पड़ नही सकती ।

अर्थ — शुद्ध निश्य नय से तो मोक्ष मार्ग कोई चीज ही नही है। क्योकि जो शुद्ध द्रव्य शक्ति रूप[1] शुद्ध पारणामिकपरम भाव लक्षण[2] वाली, परम निश्चय मोक्ष या त्रिकाली शुद्धता है, वह तो जीव मे पहिले से[3] है ही है। तो वह भविष्यत मे प्राप्त होगी ऐसा प्रश्न[4] ही नही हो सकता ।)

यह तो आगम कथित उदाहरण है, अब अपना उदाहरण सुनिये, जिस पर से कि इन सब उपरोक्त उदाहरणों का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा तथा जिसमे इस नय के कारण व प्रयोजन का भी अन्तर्भाव हो जायेगा । देखिये आपके कमरे मे एक ओरदीपक टिम टिमा रहा है, एक ओर बिजली जलती है और एक ओर से सडक का प्रकाश आ रहा है। कमरा प्रकाशित है। आप वहा बैठेपढ रहे है । आप की पुस्तक पर जो प्रकाश पड़ रहा है उस पर बताईये, दीपक की मोहर लगी हुई है, या बिजली की या आकाश की ? वह तो प्रकाश है । जैसा दीपक मे वैसा ही बिजली मे, और वैसा ही आकाश मे । प्रश्न हो सकता है कि तीनो प्रकाश की जाति मे तो भिन्नता है। ठीक है जाति मे भिन्नता अवश्य है पर पढने मे सहायक बनने के लिये तीनो मे क्या विशेषता है । क्या दीपक के प्रकाश मे बैठ कर आप पढ न सकेगे, शर्त यह कि आपके अपने नेत्र ठीक होने चाहिये ।

इन तीनो मे प्रकाश पना एक ही जाती का है, प्रकाश पने मे तीन पना हो ही नही सकता । दीपक का प्रकाश अल्प है और बजली

का अधिक, परन्तु दीपक के प्रकाश मे प्रकाश पना कुछ कम है और बिजली के प्रकाश मे कुछ अधिक यह बात घटित नही हो सकती। जेसेकि एक अगूर के स्वाद मे तृप्ति कुछ कम है और एक सेर भर अगूरो के स्वाद मे तृप्ति अधिक है, पर दोनो के स्वाद की जाति मे कोई भेद नही कहा जा सकता। अतः कम प्रकाश व अधिक प्रकाश या पीला प्रकाश व सफेद प्रकाश होते हुए भी प्रकाश पने की जाति मे अन्तर पडा नही कहा जा सकता।

इसी प्रकार जीव की पर्याय ससारी हो या मुक्त, अशुद्ध हो कि शुद्ध, उसमे जीव पने की जाती मे कोई भेद पड़ा नही कहा जा सकता। सिद्ध जीव का जीवत्व किसी ओर प्रकार का और ससारी का किसी और प्रकार का, ऐसा नही हो सकता। जीवत्व तो जीवत्व है, उसका क्या ससारो पना और क्या मुक्त पना। जैसे ज्ञान तो ज्ञान है, अल्प हो कि अधिक, निगोदिया का तुच्छ ज्ञान हो या हो केवल ज्ञान, ज्ञान पने मे क्या हीनाधिकता। जिस जाति का पदार्थ प्रकाशन स्वरूप ज्ञान निगोद मे है वैसा ही केवली मे है। दोनो की जाति मे कोई अन्तर नही। और यदि ऐसा ही है तो जीव पने का उत्पाद व्यय भी क्या।

बस इसी प्रकार चेतन या अचेतन किसी भी पदार्थ का पदार्थ पना या वह वह जाति पना तो वह वह रूप ही है, उसमे तो हीनाधिकता आदि का प्रश्न हो नही सकता। इसलिये इस का जन्म व मरण या उत्पाद व व्यय भी क्या? होता ही नहीं। होना शब्द ही घटित होता नही, क्योकि उसकी वहा अपेक्षा ही नही। जब उत्पाद व्यय ही घटित होते नही तो पर्याय कैसे घटित हो सकती है, और पर्यायो के अभाव मे शुद्ध और अशुद्ध कैसे कह सकते है। अत. शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय जो पारिणामिक भाव उसे सर्वत्र उत्पाद व्यय से निरपेक्ष, पर्याय कलको से रहित, शुद्धाशुद्ध कल्पनाओं से अतीत ही कहा

जाता रहा है । उपरोक्त सर्व उदाहरणो मे यही कहा गया है, और आगे भी जहा जहां यह प्रकरण आयेगा, ऐसा ही कहा जाता रहेगा । वहा भावार्थ ठीक ठीक समझ लेना ।

यद्यपि द्रव्य उत्पाद व्यय या पर्यायों से रहित कभी नही रह सकता । क्योंकि उत्पाद उसका स्वभाव है, और गुणों व पर्यायो का समूह उसका स्वरूप व सर्वस्व है । परन्तु देखने का ढंग है । पर्यायों व उत्पाद व्यय सहित को भी पर्यायों व उत्पाद व्यय से रहित देखा जा सकता है । यही बात उपरोक्त उदाहरणों पर से सिद्ध की गई है । प्रत्येक वस्तु के दो पड़खे या दो पहलू होते है, एक उसका बाह्य रूप और एक उसका अन्तरग रूप । बाहर से देखने पर वस्तु के रूप बराबर बदलते हूए दिखाई देते है, जिसके कारण उसकी जाति मे भी भेद पड़ता दिखाई पड़ता है । परन्तु वस्तु के अन्दर यदि दृष्टि को ले जाकर देखे तो वस्तु या उसकी जाति मे कोई परिवर्तन दिखाई न दे सकेगा ।

जैसे सागर का एक तो बाह्य रूप है, और एक अन्दर का वह रूप जो उसकी थाह मे पडा है । ऊपर से देखने पर वह कल्लोलित दिखाई देता है, जवार भाटे रूप दिखाई देता है, तूफान वाला दिखाई देता है, प्रवाहित दिखाई देता है, जिस प्रवाह व तूफान के कारण कि बड़े बड़े जहाज तक उलट जाते है । यह कल्लोले, जवार भाटे, तूफान व प्रवाह वहा न हों ऐसा नही है । वह वहा है ही है । वहाँ सत्य रूप है कल्पित नही । परन्तु उसके अन्दर जाकर देखे तो न कल्लोले है, न जवार भाटे हैं, न तूफान है, न प्रवाह है । जहा जो पानी है सदा से वही है और वही रहेगा । छोटे छोटे जन्तु भी वहा आराम से रहते है । बाधा का प्रश्न नही सागर का यह रूप भी वहा है ही है । यह भी सत्य है कल्पित नही । यद्यपि कुछ विरोध सा दीखता है और प्रश्न उठाता है कि दो विरोधी बाते एक ही स्थान पर कैसे रह

सकती है । पर भाई । शब्दों मे तर्क करने की बजाये वस्तु मे जाकर देख, कि वह वहाँ है या नही । और यदि है तो स्वीकार करते हुए डर क्यो लगता है ? देखना तो इस बात का है कि ऊपर और भीतर के यह दो रूप क्या पृथक पृथक सागर के है या एक ही के । क्या कुछ ऐसी बात वहाँ है कि उसके यह बाहर व भीतर के दो अग स्वतत्र रूप से पृथक पृथक पडे हो ? अर्थात सागर के मध्य कोई एक छत या शामियाना तना हुआ हो, जो उससे ऊपर ऊपर के पानी मे तो कल्लोले रहे और उससे नीचे के मे नही वहा तो ऐसा कोई व्यवस्था है नही । जो पानी ऊपर है वही नीचे । ऊपर से हानी वृद्धि सहित है पर नीचे से नही । यह दोनो ही रूप एक ही अखण्ड सागर के है ।

बस इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ को समझिये । उसके बाह्य रूप मे उत्पाद व्यय, पर्याय, गुण, शुद्धता, अशुद्धता, हीनता, अधिकता सब कुछ सत्य है, पर अन्तरग रूप अर्थात् स्वभाव मे न उत्पाद है न व्यय न गुण है न पर्याय न शुद्धता है न अशुद्धता, हीनता, न अधिकता, वह तो एक अखण्ड व निर्विकल्प भाव मात्र है, यह भी सत्य है । उसका बाह्य व अंतरग रूप दो पृथक पृथक स्वतंत्र पदार्थ हो या इनके बीच मे कोई दीवार या पार्टीशन हो, ऐसा भी नही है । जो स्थिर है वही अस्थिर है । कहने मे भले बाह्य व अन्तरग ऐसे दो भेद आये हो, पर वास्तव मे वहा तो वस्तु एक व अखण्ड है वस्तु का स्वरूप ही जब ऐसा है तो इसमे हम क्या करेगे अतः भाई जैसा है वैसा स्वीकार कर ।

वास्तव मे अखण्ड वस्तु के इन दो पड़खों को पृथक पृथक स्पष्ट दर्शाना ही द्रव्यार्थिक नय मे भेद डालने का प्रयोजन है । उसमे यहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रयोजन वस्तु का अन्तरग रूप या उसका स्वभाव दर्शाना है । जैसा कि आगे आयेगा, अशुद्ध द्रव्यार्थिक का

प्रयोजन उसी वस्तु का बाह्य रूप दर्शाना है। अतः यह दोनो नये एक ही अखण्ड द्रव्यार्थिक नय के दो भेद है, पृथक पृथक स्वतत्र कुछ नही है ।

शुद्धाशुद्ध से निरपेक्ष शुद्धता दर्शाने के कारण तथा गुण गुणी आदि मे अभेद दर्शाने के कारण यह शुद्ध है। तथा द्रव्य के सामान्य पडखे को दर्शाने के कारण द्रव्यार्थिक है। यही इस नय का यह नाम रखने का कारण है। और वस्तु के अन्तरंग रूप अर्थात परिणामिक भाव की ओर तथा निर्विकल्प अभेद की ओर श्रोता का लक्ष्य खेचना इस नय का प्रयोजन है। या यो कहिये कि व्यक्ति मे निज वैभव देखने की या वस्तु मे द्वैत देखने की जो टेव श्रोता को पड़ी हुई है उसका निरास करके उसका लक्ष्य शक्ति पर ले जा कर उसे वस्तु की अद्वैतता का परिचय दिलाना इसका प्रयोजन है ।

६. अशुध्द द्रव्यार्थिक नय

शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की भूमिका मे यह बताया था कि वस्तु का सामान्य रूप दो प्रकार से देखा जा सकता है—विशेष निरपेक्ष और विशेष सापेक्ष । तहा विशेष निरपेक्ष सामान्य पदार्थ की सत्ता को देखना शुद्ध द्रव्या-र्थिक नय है, जिसका कथन किया जा चुका है। विशेष सापेक्ष सामान्य पदार्थ की सत्ता को देखना उसी द्रव्यार्थिक की अशुद्ध प्रकृति है। अर्थात सामान्य पदार्थ मे गुण गुणी आदि का भेद डालकर उस का कथन करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

इस नय का लक्षण शुद्ध द्रव्यार्थिक के लक्षण से बिल्कुल उल्टा है, जैसे कि द्रव्य की अपेक्षा करने पर, जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय गुण, पर्याय आदि से निरपेक्ष एक निर्विकल्प अनिर्वचनीय तत्व को ही द्रव्य कहता था, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त अथवा गुण पर्याय वान कहता है। क्षेत्र की अपेक्षा करने पर, जहाँ शुद्ध द्रव्यार्थिक उसे प्रदेश कल्पना से निरपेक्ष सर्वव्यापी या निज एक

अखण्ड सस्थान रूप कहता था, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही अनेक प्रदेशो वाला कहता है। काल की अपेक्षा करने पर जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, उसे पर्यायो के परिवर्तन से निरपेक्ष नित्य कहता था, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही भूत, वर्तमान व भविष्य की अनन्तो पर्यायो का एक अखण्ड पिण्ड बताता है। भाव की अपेक्षा करने पर जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक उसे अनेक गुणों से निरपेक्ष केवल स्वलक्षण स्वरूप कहता था, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक उसे ही अनेक गुणो का समूह कहता है। पारिणामिक भाव रूप स्वभाव की अपेक्षा करने पर जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे पर्याय कलक रहित नित्य शुद्ध बताता था, वहां अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही अनेकों त्रिकाली पर्यायो में अनुगत एक स्वभावी कहता है। पर पदार्थो के सयोग की अपेक्षा करने पर, जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे पर सयोग से निरपेक्ष बताता है, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक उसे ही पर पदार्थ के सयोग व वियोग आदि से सापेक्ष बताता है। तात्पर्य यह कि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय सर्वत्र व सर्व अपेक्षाओं से द्रव्य को अभेद देखता है, तथा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उस अभेद मे ही भेद देखता है। यही विशेष सापेक्ष सामान्य कहने का प्रयोंजन है।

यहा प्रश्न हो सकता है कि सामान्य स्वरूप होता ही अभेद है तो उसमे भेद डाला कैसे जाता है? सो भाई! वह सर्वथा अभेद हो ऐसा नही है। उसके अनेकों पूर्वोत्तर चित्र विचित्र कार्यो या पर्यायो पर उस मे अनेक गुणो का सद्भाव भी प्रत्यक्ष होता है। गुण व पर्यायो से रहित वस्तु कोई नही है। अत यह गुण व गुणी अथवा पर्याय पर्यायी आदि का भेद भी कथञ्चित वस्तुभूत है। दृष्टि विशेष के द्वारा देखने पर वह प्रत्यक्ष है। बस उसी दृष्टि को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते है। इस नय का अन्तर्भाव शास्त्रीय नय सप्तक के व्यवहार नय मे होता है।

यहा पर ग्रहण किये गये विशेष या भेद वास्तव मे उसी सामान्य द्रव्य को वक्तव्य बनाने तथा उसकी सिद्धि के लिये ही है,

पर्यायार्थिक नय की भांति उन विशेषों की पृथक सत्ता दर्शाने के लिये नही, इसलिये भेद ग्राहक होते हुए भी इसकी द्रव्यार्थिकता विनष्ट नही होती।

इस नय के निम्न दो प्रमुख लक्षण किये जा सकते है।

१. द्रव्य क्षेत्र काल व भाव रूप चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य अनेक भेदों वाला एक सामान्य तत्व है।

२. अनेक भिन्न द्रव्यो मे सयोग अथवा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कार्यकारी है।

अब इन्ही लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ उद्धरण देखिये।

१ लक्षण नं० (चतुष्टम की अपेक्षा अनेक भेदों से संयुक्त द्रव्य)

आ प।१७।पृ १२१ "अशुद्धद्रव्यमेवार्थ. प्रयोजनमस्येति अशुद्ध-द्रव्यार्थिक.।"

अर्थ—अशुद्ध द्रव्य ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। (यहा अशुद्धता से तात्पर्य भेद ग्रहण करना)

२. वृ. द्र. स ४८।२०६ "अशुद्धनिश्चयः शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एवं।"

अर्थ—अशुद्ध निश्चय नय को यदि शुद्धनिश्चय की अपेक्षा देखा जाये तो वह व्यवहार नय ही है। (कारण कि शुद्ध नय का विषय अभेद है और इसका विषय भेद। शास्त्रीय व अध्यात्मिक व्यवहार नय का विषय भी भेद है। अतः दोनों मे समानता है।)

३. क. पा. ।१।१८२।२१६ "अशुद्धद्रव्यार्थिकः पर्यायकलङ्कित-द्रव्यविषय व्यवहारः ।"

अर्थ––जो पर्यायकलक से युक्त द्रव्य को विषय करनेवाला व्यवहार नय है वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

४ प्र सा ।त प्र । परि ।नय न० ४६ "अशुद्धनयेन घटशरावविशिष्टमृण्मात्रवत्सोपाधिस्वभावम् ।"

अर्थ––आत्मद्रव्य अशुद्धनय से घट और राम पात्र से विशिष्ट मिट्टी मात्र की भांति, सोपाधि स्वभाव वाला है ।

५ आ. प ।१५ ।पृ १११ "शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभाव, अशुद्धद्रव्यार्थिककेनाशुद्धस्वभावः ।"

शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्ध स्वभाव है और अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से अशुद्ध स्वभाव है ।

६. वृ० द्र० स. ।४५ ।१९७ "यच्चाभ्यन्तरे रागादिपरिहार स पुनरशुद्धनिश्चयेनेति ।"

अर्थ––जो अन्तरग मे रागादि का त्याग कहा जाता है वह अशुद्ध निश्चय से ही है । (क्योकि शुद्ध निश्चय मे तो रागादि को अवकाश ही नही ।)

७ स. सा ।१४ आत्मा ५ प्रकार से भेद रूप दीखता प. जयचन्द है–कर्म पुग्दल का स्पर्श वाला, नारकादि पर्यायो मे भिन्न भिन्नस्वरूप, शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद बढे भी है और घटे भी है....इससे नित्य नियत दीखता नही, दर्शन ज्ञानादि अनेक गुणो से विशेष रूप, मोहरागद्वेषादि

परिणामो सहित।...यह सब अशुद्ध द्रव्यार्थिक रूप व्यवहार नय का विषय है।

२. लक्षण नं० २ (पर संयोग की सार्थकता)

१. वृ० द्र० स।८।२१ "अशुद्धनिश्चयस्यार्थः कथ्यते—कर्मोपाधि-समुत्पन्नत्वादशुद्धः, तत्काले तत्पाय.पिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चयः, इत्युभयमेलापकेनाशुद्धनिश्चयो भण्यते।"

अशुद्ध निश्चय का अर्थ यह है, कि कर्मोपाधि से उत्पन्न होने के कारण अशुद्ध कहलाता है और उस समय अग्नि मे तपे हुए लोहे के गोले के समान तन्मय होने के कारण निश्चय कहा जाता है। इस रीति से अशुद्ध और निश्चय इन दोनों के मेलाप से अशुद्ध निश्चय कहा जाता है।

२ स सा।६। प० जयचन्द "अन्य सर्व परसयोगी भेद है वे सब, भेद रूप अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विपय है।"

अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये। द्रव्य मे गुण व पर्याय के भेद कथञ्चित सत् है, और पर पदार्थ के सयोग से उत्पन्न होने वाले अशुद्ध औदयिक भावों के साथ भी किन्ही पर्याय विशेपो मे यह तन्मय देखा जाता है। यही सत्य इस नय की उत्पत्ति का कारण हैं। यदि भेद सर्वथा न हुए होते तो इस नय की भी कोई आवश्यकता न होती। तहां अभेद मे भी भेदों का या औदयिक भाव स्वरूप अशुद्ध पर्यायों का आश्रय लेने के कारण तो यह अशुद्ध है, और उनका आश्रय लेकर भी उन पर से द्रव्यार्थिक नय के विपयभूत सामान्य अखण्ड तत्व का ही परिचय देने के कारण द्रव्यार्थिक है। अतः 'अशुद्ध द्रव्यार्थिक' ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है।

शुद्ध निश्चय तो तत्व को सर्वथा निर्विकल्प व अनिर्वचनीय वताता है, परन्तु इस प्रकार तो जगत का कोई भी व्यवहार चल नही सकता । तत्व का सीखना व सिखाना भी असम्भव हो जाये, गुरु शिष्य सम्बन्ध विलुप्त हो जाये। अतः विश्लेषण द्वारा उसमे भेद डालकर कहने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही है । अवक्तव्य को इसी प्रकार वक्तव्य बनाया जा सकता है। यद्यपि इस प्रकार पदार्थ खण्डित हुआ सा प्रतीत होने लगता है, परन्तु साथ साथ शुद्ध द्रव्यार्थिक पर भी लक्ष्य रखे तो, ऐसा नही हो सकता । विशेषों रहित केवल सामान्य खरविषाण वत् असत् है, भेद से निरपेक्ष अभेद असत् है। उस विशेषो सापेक्ष सामान्य तत्व को वक्तव्य बनाकर समझने व समझाने के व्यवहार को सम्भव वनाना ही इस नय का प्रयोजन है।

१५।द्रव्यार्थिक नय दशक

७. द्रव्यार्थिक नय दशक परिचय

अहो ! गुरु देव की उपकारी बुद्धि, कि अदृष्ट पदार्थ को भी मानो जबरदस्ती पिला देना चाहते है। शब्दों की असमर्थता की पर्वाह न करते हुए, तथा अनिर्वचनीय बताकर भी, वचनो के द्वारा ही उसे वह मानो प्रत्यक्ष कराने का प्रयास कर रहे है। ऐसा अपूर्व अवसर प्राप्त करके भी यदि मै वस्तु को पचा न सकू, तो इससे बडा प्रमाद और कौनसा होगा ।

द्रव्यार्थिक नय का प्रकरण चलता है। पहिले वस्तु को सामान्य व विशेप दो भागो मे विभाजित करके, सामान्य सत्ता का ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है तथा विशेष सत्ता का ग्राहक पर्यायार्थिक नय है ऐसा वताया गया। वस्तु की सामान्य सत्ता के दो रूप सामने रखे–विशेप निरपेक्ष और विशेष साक्षेप। इन दोनों रूपों पर से सामान्य वस्तु का अवलोकन करने के कारण उसको विषय

करने वाले द्रव्यार्थिक नय के भी दो भेद हो गये—शुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुद्ध द्रव्यार्थिक। तहां महा-सत्ता या अवान्तर-सत्ता भूत पदार्थो में विशेष निरपेक्ष एक निर्विकल्प सत्ता सामान्य को ग्रहण करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है और विशेष सापेक्ष एक सविकल्प सत्ता समान्य को ग्रहण करने वाला अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। यद्यपि द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इन चारों की पृथक पृथक अपेक्षा लेकर, उन दोनों ही नयों के यथा योग्य अनेकों लक्षण करके, उनके विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु भेदा-भेदात्मक वह वस्तु अब तक भी एक समस्या ही बनी हुई है, ऐसा प्रतीत होता है। अतः उन्ही लक्षणों को कुछ और विशदता की आवश्यकता है। शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयों के पूर्वोक्त अनेको लक्षणो को अत्यन्त विशद बनाने के लिये ही इस नय दशक का जन्म हुआ है। 'नय सामान्य' नाम के ९ वें अधिकार के अन्त मे दिये गये नय चार्ट मे आगम की इन दश द्रव्यार्थिक नयों का नामोल्लेख किया जा चुका है।

वास्तव मे द्रव्यार्थिक नय दशक की अपनी कोई स्वतत्र सत्ता नही है। ये दशों भेद उन्ही शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यार्थिक के पूर्वोक्त लक्षणो मे गर्भित हो जाते है। अन्तर केवल इतना है कि वहां उनका रूप सक्षिप्त था और यहा कुछ विस्तृत है। जैसाकि पहिले अनेकों बार बताया जा चुका है, वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव इस चतुष्टय से गुम्फित है। बस इस नय दशक की स्थापना का मूल आधार वस्तु का यह चतुष्टय ही है। वह किस प्रकार सो ही दर्शाता हूँ।

यह नय दशक पाच युगलों मे विभाजित है—'स्व चतुष्टय ग्राहक व पर चतुष्टय ग्राहक' यह प्रथम युगल है; 'भेद निरपेक्ष द्रव्य ग्राहक और भेद साक्षेप द्रव्य ग्राहक' यह दूसरा युगल है,

उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक और उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक' यह तीसरा युगल है; 'परम भाव ग्राहक और अन्वय ग्राहक' यह चौथा युगल है; तथा 'कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्धता ग्राहक व कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्धता ग्राहक' यह पांचवा युगल है।

इनमे से प्रथम युगल तो चतुष्टय सामान्य को विषय करके केवल इतना बताता है कि यह चतुष्ट वस्तु का अपना ही वैभव है, किसी अन्य का नही। दूसरा तीसरा व चौथा युगल, उस चतुष्टय को खण्डित करके, द्रव्य, काल, व भाव इन तीनों को पृथक पृथक बिषय करते है। क्षेत्र को ग्रहण करने वाले किसी पृथक युगल का ग्रहण नही किया गया है, क्योंकि वह गुण व पर्यायों का अधिष्ठान जो द्रव्य, वह स्वयं ही प्रदेशात्मक माना जाने के कारण, क्षेत्र का उसमे ही अन्तर्भाव हो जाता है। चतुष्टय का प्रथम अग जो 'द्रव्य' उसको पृथक ग्रहण करके, दूसरा नय युगल उसमे गुण गुणी का अभेद व भेद दर्शाता है। चतुष्टय का तीसरा अंग जो 'काल' उसको पृथक ग्रहण करके, तीसरा नय युगल उसमे नित्या व अनित्यता का प्रदर्शन करता है। चतुष्टय का चौथा अग जो 'भाव' उसको पृथक ग्रहण करके, चौथा नय यगल द्रव्य के एक अखण्ड भाव तथा अनेक गुणो के पृथक पृथक भावो के बीच अभेद व भेद की सूचना देता है। इस प्रकार ये पहले चार युगल स्व चतुष्टय का आश्रय करके वस्तु सामान्य का स्वरूप दर्शाते है अर्थात जीव अजीव आदि सब ही द्रव्यो की सामान्य सत्ता की चित्र विचित्रता का प्रतिपादन करते है।

अब पांचवॉ युगल जो कर्मोपाधि निरपेक्ष व कर्मोपाधि सापेक्ष वाला है, वह वस्तु विशेष का प्रतिपादक है, अर्थात द्रव्य सामान्य को न वताकर केवल जीव द्रव्य की विशेषता को बताता है। शास्त्रीय नय सप्तक मे संग्रह व व्यवहार युगल का प्ररुपण करते हुए यह वताया जा चुका है कि द्रव्य या सत् सामान्य के दो

भेद है–जीव व अजीव । जीव के भी दो भेद है–मुक्त व ससारी । यद्यपि ये दोनों कोई स्वतंत्र त्रिकाली द्रव्य नही है, बल्कि एक सामान्य जीव द्रव्य की दो पर्याये है, और इसलिये इन्हे पर्याया-र्थिक नय का विषय बनना चाहिये, परन्तु स्थूल दृष्टि से देखने पर जन्म से मरण पर्यन्त की यह कोई एक पर्याय नही है बल्कि मनुष्यादि अनेक पर्यायों मे अनुमत सामान्य भाव है । अतः इन दोनों को द्रव्य रूप से संग्रह नय ग्रहण कर लेता है । ये दोनो जीव द्रव्य की अवान्तर सत्ताये है । इनमे से मुक्त जीव कर्मोपाधि रहित होने के कारण शुद्ध है। और संसारी जीव कर्मोपाधि सहित होने के कारण अशुद्ध है । मुक्त जीव की इस शुद्धता को दर्शाना कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक का काम है और ससारी जीव की अशुद्धता को दर्शाना कर्मोपाधि साक्षेप अशुद्ध द्रव्यार्थिक का काम है ।

इस प्रकार सामान्य वस्तु मे तो अभेद व भेद दर्शाने की अपेक्षा और विशेष वस्तु मे पर की उपधि कृत अशुद्धता व शुद्धता दर्शाने की अपेक्षा, इन पाचों ही युगलो मे पहिला पहिला तो शुद्ध द्रव्यार्थि-नय कहलाता है, और दूसरा दूसरा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है । इस प्रकार ये दशो भेद शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यार्थिक के ही उत्तर भेद समझने चाहिये । स्व चतुप्टय ग्राहक नय शुद्ध द्रव्यार्थिक है और पर चतुष्टय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक । गुण गुणी आदि भेद निरपेक्ष द्रव्य ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक है और भेद सापेक्ष द्रव्य ग्राहक अशुद्ध, द्रव्यार्थिक । उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्या–र्थिक है । और उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक । परम भाव ग्राहक नय शुद्ध द्रव्यार्थिक है और अन्वय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक । कर्मोपाधि निरपेक्ष क्षायिक भाव ग्राही शुद्ध शुद्ध द्रव्यार्थिक है और कर्मोपाधि सापेक्ष औदयिक भाव ग्राही अशुद्ध द्रव्यार्थिक । इस प्रकार नय दशक का सक्षिप्त परिचय दिया गया । अब इनका पृथक पृथक विस्तार देखिये ।

८ स्वचतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

वस्तु का द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव उस का स्वचतुष्टय कहलाता है। सर्व प्रथम यह देखना है कि वस्तु का यह चतुष्टय वस्तु का ही निज रूप है या किन्ही बाह्य सयोगो का फल है। इस बात का अब तक काफी खुलासा किया जा चुका है, कि वस्तु को भली भाति समझाने के लिये भले ही विश्लेषण के द्वारा उसे इन चारो अगों मे विभाजित कर दिया गया हो, परन्तु वास्तव मे यह विभाजन केवल काल्पनिक है, वस्तुभूत नही, क्योकि वस्तु से पृथक वे चारो कोई अपनी स्वतत्र सत्ता नही रखते। उनका एक रस रूप अखण्ड द्रव्य ही सत् है। अत यह चतुष्टय वस्तु का निज का ही रूप है, अन्य सयोगो का फल नही।

अपने अपने गुण व पर्यायो का अधिष्ठान भूत वह द्रव्य ही स्वयं वस्तु या सत् है। अधिष्ठान होने के नाते उस का कोई न कोई आकार अवश्य होना ही चाहिये, क्योकि आकृति रहित कोई भी काल्पनिक तत्व वस्तुभूत गुणो आदि का आश्रय नही हो सकता। उसका वह आकार या सस्थान ही उसका स्वक्षेत्र है। वस्तु वही है जो कि कुछ अर्थ क्रियाकारी हो। अर्थ क्रिया शून्य द्रव्य कपोल कल्पना मात्र है, जैसे आकाश पुष्प है। पदार्थ मे किसी भी प्रकार का परि-वर्तन आय विना अर्थ क्रिया की सिद्धि असम्भव है, अतः वस्तु स्वभाव से ही परिवर्तन शील होनी चाहिये। प्रति क्षण अवस्था या पर्याय को वदल लेना ही द्रव्य का स्वकाल है। द्रव्य है तो उसका कोई न कोई विशेष स्वभाव अवश्य होना ही चाहिये, क्योकि परिणमन-शील हो जाने पर भी यदि वह किसी विशेष स्वभाव से शून्य है, तो लोक मे उसकी क्रिया किमात्मक दिखाई देगी। यह स्वभाव विशेष ही उस द्रव्य का स्वभाव कहलाता है।

इस प्रकार जैसे एक वस्तु अपने चतुष्टय के साथ तन्मय है, वैसे ही दूसरी तीसरी अन्य अन्य सर्व वस्तुयें भी अपने अपने चतुष्टयो

मे स्वतत्रता से अवस्थित हैं। न कोई वस्तु अपने चतुष्टय का अंश मात्र भी किसी अन्य वस्तु को दे सकती है, और न कोई किसी से कुछ ले सकती है। एक पदार्थ अपना कुछ भी दूसरे को देने में समर्थ ही नही है। अतः वस्तु सर्वदा व सर्वत्र निज चतुष्टय स्वरूप ही रहती है, अन्य चतुष्टय स्वरूप नही होती। उदाहरणार्थ 'घट' नाम का पदार्थ तभी सत्स्वरूप समझा जाता है, जब कि वह अपने ही कम्बु ग्रीवा आदि वाले संस्थान या क्षेत्र को धारण करता हो तथा अपनी ही घटन क्रिया करने के स्वभाव से स्वय युक्त हो। ऐसा नही हो सकता कि उसका संस्थान तो 'पट' जैसा हो और उसका स्वभाव अग्नि जैसा हो। लोक मे इस प्रकार का कोई पदार्थ ही उपलब्ध नही हो सकता।

अतः सिद्ध है कि वस्तु स्वयं अपने चतुष्टय स्वरूप ही होती है, अपने से अतिरिक्त अन्य किसी के भी चतुष्टय स्वरूप नही होती। यह जो उसका स्वचतुष्टय स्वरूप से अवस्थित रहनापना है वही इस प्रकृत स्वचतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु सत् है, या कह लीजिये कि अस्तित्व स्वभाव वाली है। इस प्रकार स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु मे अस्तित्व धर्म की स्थापना करना इस नय का लक्षण है।

अव इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देता हूँ।

१ वृ. न. च।१९८ "सद्द्रव्यादिचतुष्के सद्द्रव्य खलु गृह्णाति योहि। निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरो भवति विपरीत. ।१९८।"

अर्थः—अस्तित्व भूत द्रव्यादि चतुष्टय मे ही द्रव्य के अस्तित्व का जो ग्रहण करता है वह स्वचतुष्टय ग्राहक है।

२. वृ. न. च।२५४ "अस्तिस्वभाव द्रव्यं सद्द्रव्यादिषु ग्राहक नयेन।"

अर्थः—स्वद्रव्यादि चतुष्टय ग्राहक नय से द्रव्य अस्तित्व स्वभाव वाला है।

३. आ प. ।७।७१ "स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति।"

अर्थ—स्व द्रव्यादि चतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक नय को ऐसा जानो जैसे कि यह कहना कि स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु है ही।

इस नय का उदाहरण ऐसा समझना, जैसा कि आम नाम का पदार्थ जानते हुए, स्वत. ही उसका आकार या क्षेत्र, तथा उसकी कच्ची पक्की अवस्थाये या काल तथा उसका स्वाद विशेष या भाव जानने मे आ जाते हे। इन चारों से समवेत ही आम सत् है, इनसे पृथक नही। अथवा आत्मा नाम का पदार्थ जानने के लिये उसका त्रिकाली अस्तित्व, उसके अनेको सस्थान, उसकी आगे पीछे होने वाली मनुष्यादि पर्यायें तथा उसके ज्ञानादि गुण, इन सब का ही ग्रहण होना कार्य कारी है, परन्तु उसके साथ मे रहने वाला जो शरीर उसके आकार या रूप रगादि का ग्रहण करना भ्रमोत्पादक है। क्योकि आत्मा का अस्तित्व अपने ही उपरोक्त चतुष्टय [मे है, शरीर के चतुष्टय मे नही।

क्योकि यह नय स्वचतुष्टय के आधार पर वस्तु के अस्तित्व को दर्शाता है, इसलिये स्व चतुष्टय ग्राहक है क्योकि स्वचतुष्टय ही वस्तु का निज वास्तविक स्वरूप है इसलिये इसे शुद्ध कहा है, तथा क्योकि त्रिकाली सामान्य द्रव्य का परिचय देता है इसलिये द्रव्यार्थिक है।

अत. इस नय का "स्वचतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक" ऐसा नाम सार्थक है ।

स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्वभाव इन चारो से समवेत बिल्कुल पृथक व स्वच्छ तथा निरुपाधि वस्तु को दर्शाना इस नय का प्रयोजन है । या यों कहिये कि वस्तु का प्रतिपादन करते हुए जिन दृष्टान्तों का आश्रय लेकर उसे बताया जाता है, उन पर से लक्ष्य को हटाकर दार्ष्टान्त पर लक्ष्य ले जाना इस नय का प्रयोजन है । दृष्टान्त में तेरा वैभव नही है, अतः भाई ! वहा से हटकर निज शक्तियो व व्यक्तियो मे उसे खोजने का प्रयत्न कर, ऐसा उपदेश यह नय देता है ।

६ पर चतुष्टयग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

वास्तवमे स्वचतुष्टय ग्राहक व पर चतुष्टय ग्राहक एक ही बातको दर्शाते है, अतः ये एक ही हैं । परन्तु कथन पद्धतिके भेद के कारण इन दोनो को पृथक पृथक नय स्वीकार किया गया है । इन दोनो मे केवल इतना अन्तर है, कि वह तो उसी वस्तु का स्वरूप बताता है उसका निज वैभव दर्शाकर, और यह उसी वस्तु का स्व-रूप बताता है उसी पर पड़े हुए आवरण को हटाकर । बिल्कुल उस प्रकार जिस प्रकार कि प्रकाश का आस्तित्व कहो या कहो अन्धकार का अभाव, दोनों का एक ही तात्पर्य है । जो प्रकाशका अस्तित्व है वही अन्धकार का अभाव है । यद्यपि वस्तु रूपसे दोनो एक है, पर कथन क्रममे प्रकाश की निष्कलकता प्रगट करने के लिये अन्धकार का अभाव बताना आवश्यक है । यह न बतायें तो, कदाचित् उन व्यक्ति-योको जिनको की प्रकाश का परिचय नही है, एक ही स्थान मे प्रकाश व अन्धकार दोनों का ग्रहण हो जाना सम्भव है ।

यद्यपि यह बात कुछ असम्भवसी लगती है कि प्रकाश के साथ साथ अन्धकार का भी ग्रहण हो जाये, परन्तु इसका कारण यही है कि

प्रकाश सर्व परिचित है। परन्तु अपरिचित वस्तु को शब्दों.परसे समभते हुए ऐसा प्राय: हुआ ही करता है, कि इप्ट पदार्थ भी कल्पनाका विपय बन जाये। जैसे कि चैतन्य के अस्तितव द्वारा आत्म पदार्थ को दर्शाते हुए यदि साथ साथ शरीर के सम्बन्धका निपेध न करे तो चैतन्यके साथ, अनुक्त भी इस शरीर का ग्रहण आत्मा रूपसे हो जाना सम्भव है। ऐसी भूल कदाचित हो जाये तो आत्म पदार्थ जाना नही जा सकता। बस इसी भूल की सम्भावना को दूर करने के लिये यह आवश्यक है, कि किसी वस्तु का स्वरूप बताया जावे तो उससे अतिरिक्त अन्य वस्तुओ के चतुप्टय को साथ साथ निपेध भी कर दिया जाये।

अत: वस्तु के स्वरूप को दर्शाने के लिये कथन क्रम मे दो बाते आती है—वस्तु के स्वचतुष्टय की स्वीकृति या विधि तथा उससे अतिरिक्त अन्य पदार्थो के चतुष्टय का निपेध। इन मे से पहिली बात तो स्व चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विपय है और दूसरी बात पर चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यर्थिक नय का विपय है। यही इस नय का लक्षण है।

यहा एक बात और ध्यान मे रखने योग्य है कि इस निपेध को बताने के लिये दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जा सकता है—'वस्तु मे पर चतुष्टय की नास्ति है या अभाव है ऐसा कहना पहिला प्रयोग है, और 'पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु की ही नास्ति है या अभाव है' ऐसा कहना दूसरा प्रयोग है। वहां पहिला प्रयोग तो सर्व सम्मत है, परन्तु दूसरा प्रयोग कुछ भ्रमोत्पादक है, और आगम मे मुख्यता से इसी प्रयोग को अपनाया गया है। तहां भ्रम मे पढ़ने की आवश्यकता नही, क्योकि दोनों ही प्रयोगों का अर्थ एक है। जैसे कि या तो यह कह दीजिये कि अन्धकार मे प्रकाश नही है या यह कह दीजिये कि प्रकाश मे अन्धकार नही है। दोनों मे क्या अन्तर है,

केवल भाषा का भेद है। अथवा इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जहा प्रकाश होता है वहा अन्धकार की नास्ति या अभाव होता है । अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्रकाश की अपेक्षा अन्धकार की और अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश की नास्ति है। इसका यह अर्थ न समझिये कि प्रकाश की या अन्धकार की नास्ति कह कर उनका सर्वथा अभाव बताया जा रहा है, बल्कि यही समझिये कि अन्धकार के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से तन्मय प्रकाश नाम के पदार्थ का लोक मे अभाव है, परन्तु स्वद्रव्य क्षेत्र काल और भाव से तन्मय प्रकाश तो सत् ही है । जैसे कि "यहा सिह नहीं है" ऐसा कहने पर यह अर्थ नही निकलता कि यहा हिरण भी नही है । इसी बात को सैद्धान्तिक भाषा मे इस प्रकार कहा जाता है कि स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु अस्ति या अस्तित्व स्वभाव वाली है, और पर चतुष्टय की अपेक्षा वही वस्तु नास्ति या नास्तित्व स्वभाव वाली है। पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु मे नास्तित्व धर्म की स्थापना करना इस नय का लक्षण है।

अब इसी की पुष्टी व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देता हू ।

१. बृ. न. च।१९८ "सद्द्रव्यादिचतुष्के सद्द्रव्यं खलु गृहणाति यो हि।
निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरो भवति विपरीतः १९८।"

अर्थ—अस्तित्वभूत स्वद्रव्यादि चतुष्टयमे ही द्रव्य के अस्तित्वका जो ग्रहण करता है वह स्वचतुष्टय ग्राहक है, और उससे विपरीत परचतुष्टय में द्रव्य के नास्तित्व का ग्रहण पर चतुष्टय ग्राहक है ।

२. बृ. न. च ।२५४....। तदपि च नास्तिस्वभावं पर द्रव्याभिग्राहकेण ।२५४।"

अर्थः-- पर द्रव्यादि ग्राहक नय से वही वस्तु नास्ति स्वभाव वाली है ।

३ आ. प ।७। पृ. ७२ "परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिक को यथा पर-द्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति ।"

अर्थ --परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय को ऐसा जानो जैसे कि पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य को नास्ति कहना ।

पर चतुष्टय की अपेक्षा लेकर वस्तु का निरूपण करने के कारण यह नय पर चतुष्टय ग्राहक कहा जाता है । वस्तु का स्वरूप दर्शाते समय किसी भी प्रकार से पर पदार्थ का आश्रय लेना ही दृष्टि की अशुद्धता है, इसलिये यह नय अशुद्ध है । तथा चतुष्टयात्मक सामान्य वस्तु का स्वरूप दर्शाने के कारण द्रव्यार्थिक है । इस प्रकार "पर चतुष्टय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय" ऐसा इसका नाम सार्थक है ।

"शरीरादि की अपेक्षा आत्मा नाम का कोई पदार्थ लोक मे नही है" या "शरीर के द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप चतुष्टयकी अपेक्षा आत्मा नास्ति स्वभाव वाला है" ऐसा कहना इस नय का उदाहरण है ।

अपरिचित व्यक्ति की दृष्टि से पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अभिप्राय को निकालकर, वस्तु के स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव मई ही उस वस्तु का स्पष्ट परिचय देना इस नय का प्रयोजन है ।

१० भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

नय दशक के प्रथम युगल द्वारा वस्तु को स्वचतुष्टय के साथ तन्मय रहने का नियम दर्शाया गया । अब उसी तन्मयता को अधिक विशद बनाने के लिये, विश्लेषण द्वारा उस चतुष्टय के तीन खण्ड कर लिये गये है-- द्रव्य वक्षेत्र अर्थात प्रदेशात्मक द्रव्य, काल व भाव । इन तीनों खण्डों

को पृथक पृथक ग्रहण करके द्रंव्य मे अद्वैत व द्वैत दर्शाना इन अगले तीन नय युगलों का काम है। उनमे से प्रथम युगल द्रव्य व क्षेत्र अर्थात प्रदेशात्मक द्रव्य को विषय करता है ।

द्रव्य का लक्षण 'गुण पर्याय वाला द्रव्य है, ऐसा किया गया है। लक्षण के शब्दो पर से ऐसा प्रतिभास होता है, कि जैसा कि गुण व पर्याय ये दो स्वतंत्र पदार्थ है, और द्रव्य नाम का तीसरी कोई स्वतंत्र पदार्थ है। उस द्रव्य मे ये गुण व पर्याय दोनों विश्राम पाते है, जैसे कि कुण्डे मे दही। परन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। भले ही शब्दों में लक्षण करने के लिये उपरोक्त तीन शब्दों का प्रयोग किया गया हो, परन्तु ये तीनों कोई स्वतंत्र पदार्थ नही है, एक ही है। गुण पर्यायों का समूह ही द्रव्य है। इन से पृथक उसकी कोई स्वतत्र सत्ता नही। 'गुण पर्यायो का समूह' ऐसा कहना भी ठीक नही है, क्योकि अब भी गुण व पर्याय मे भेद दृष्टि गत होता है, जो असत् है।

तब वह द्रव्य क्या है ? ऐसा विचार करने पर 'पर्यायो मई ही गुण है और गुणों मई ही द्रव्य है, ऐसा कहना ही उचित जंचता है। अर्थात पर्यायों से पृथक गुण व गुण से पृथक पर्याय अथवा गुण से पृथक द्रव्य और द्रव्य से पृथक गुण नही है। सब एक रस है। पर्याय है वही गुण है, गुण है, वही द्रव्य है, द्रव्य है वही गुण व पर्याय है। फिर गुण पर्याय आदि का भेद या द्वैत कहने से भी क्या लाभ ? स्वलक्षणभूत निर्विकल्प अभेद द्रव्य है इस प्रकार सर्व ही गुण-गुणी व पर्याय–पर्यायी आदि के द्वैत भावो या भेदों से निरपेक्ष एक अखण्ड द्रव्य ही सत् है, यह बताना इस नय का लक्षण है। इस नय का अन्तर्भाव पूर्वोक्त सग्रह नय मे होता है ।

उदाहरणार्थ अग्नि यद्यपि उष्णता व प्रकाश वाली कही जाती है, पर क्या उष्णता व प्रकाश की उससे पृथक या अग्नि की उष्णता

व प्रकाश से पृथक कोई सत्ता है ? सब एक मेक है कथन मे ही केवल भेद है, अग्नि मे तो ऐसा कोई भेद है नही । अतः अग्नि को उष्णता आदि के भेद से निरपेक्ष केवल अग्नि ही कहना उचित है ।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

वृ. न. च।१९३ "गुणगुण्यादिचतुष्केऽर्थे यो न करोति खलु भेदं । शुद्ध- स द्रव्यार्थिकः भेदविकल्पेन निरपेक्षः ।१९३।"

अर्थ — गुण–गुणी व पर्याय पर्यायी इस प्रकार चार भेद रूप पदार्थ मे जो भेद नही करता है, वह भेद विकल्पो से निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है ।

२ आ. प।७।पृ७० भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निज गुण पर्याय स्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् ।"

अर्थ — भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय को ऐसा जानो जैसे कि निज गुण पर्याय वाले स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है ।

गुण–गुणी आदि भेद का निरास करने के कारण भेद निरपेक्ष है । भेद रहित होने के कारण ही शुद्ध है, और वस्तु का केवल सामान्य अभेद अग देखा जाने के कारण द्रव्यार्थिक है । इस प्रकार 'भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है । यह इस नयका कारण है ।

भेदो के कथन पर से अभेद को समझना ही वास्तव मे समझना कहलाता है, भेदो में अटक कर उनकी बाते तो करना और अभेद भाव को स्पर्श न करना समझना नही है । जैसे अग्नि कहने पर उसकी ऊष्णता, प्रकाशत्व आदि सब कुछ स्वतः दृष्टि मे आ जाते है,

और इस प्रकार आ जाते है मानो ऊष्णता मे प्रकाश और प्रकाश में अग्नि ओत प्रोत ही पडे है। वैसे ही 'आत्मा' आदि कहने पर भी उसका एक रसात्मक अभेद व सामान्य स्वरूप ग्रहण कराना इस नय का प्रयोजन है। अर्थात द्रव्य को गुण पर्याय मई दिखाना इस नय का प्रयोजन है। या यों कह लीजिये कि भेदो मे अभेद दर्शाना इस का प्रयोजन है।

११ भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

भेद निरपेक्ष द्रव्यार्थिक नय के द्वारा वस्तु को गुणो आदि की कल्पना से निरपेक्ष सर्वथा एक व अखण्ड सामान्य तत्वके रूप मे दर्शाया गया। यहा यह प्रश्न होता है कि क्या वस्तु निर्गुण है? अर्थात क्या वह गुणो व पर्यायो से शून्य है? यदि ऐसी है तो वह आकाश पुष्पवत् असत् है, क्योकि गुणों से शून्य किसी भी द्रव्य की सत्ता लोक मे दिखाई नही देती। यदि द्रव्य मे से गुण पृथक कर लिये जाये तो आप ही बताइये कि क्या शेष रह जायेगा। जैसे कि यदि अग्नि मे से ऊष्णता व प्रकाश निकाल लिये जाये तो क्या वह अग्नि अपना कोई अस्तित्व रख सकेगी? अत: सिद्ध हुआ कि गुण व पर्याय मई ही वस्तु है, इन से पृथक कुछ नही। विशेषों से रहित सामान्य कुछ चीज नही। इसलिये केवल निर्विकल्प सामान्य मात्र तत्व को जानना न जानने के वराबर है।

भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय उस समय तक अधूरा ही है, जब तक कि गुण व पर्यायों आदि के भेद उसमे प्रतिष्ठत हो नही जाते। यद्यपि द्रव्य गुण व पर्याय मे किसी भी प्रकार का प्रदेश भेद नही है, परन्तु उन में स्वरूप भेद अवश्य है। जो द्रव्य है व गुण नही और जो गुण है वह पर्याय नही, क्योंकि इनके पृथक पृथक स्वभावकी प्रतीति होती है। जैसे कि जो अग्नि है वही व उतनी ही ऊष्णता नही है। ऊष्णता अग्नि का एक स्वभाव अवश्य है पर पूर्ण स्वभाव नही। यही द्रव्य व गुण आदि में स्वभाव भेद है।

इस प्रकार प्रत्येक वस्तु मे पडे गुण व पर्याय रूप अंग वस्तु से पृथक किये जाने यद्यपि तीन काल मे भी सम्भव नही, पर ज्ञान की महिमा देखिये कि अपने अन्दर विश्लेषण करके, यह उन सर्व अंगो या भेदो को पृथक पृथक भी यदि चाहे तो देख सकता है । और वस्तु की विशेषताओं को जानने के लिये ऐसा किया जाना अत्यन्त आवश्यक भी है । भले ही वह ज्ञान वस्तु के अनुरूप एक रस स्वरूप न रह जाये, पर उपरोक्त प्रयोजन वश ऐसा किया अवश्य जा सकता है, और किया जाता है । यद्यपि ऐसा करने से वस्तु दूषित हो जाती है पर इससे ज्ञान दूषित नही होता, क्योकि वहा भेदो की कल्पना करते समय भी अभेद सामान्य तत्वका चित्रण धुल नही पाया है । अत ये सर्व भेदोके विकल्प अभेद सापेक्ष ही रहते है । परन्तु क्योकि विचारणाओ का मुख्य आश्रय भेद है अभेद नही, अत. इस विकल्पको भेद सापेक्ष ही कहना होगा ।

यहां भेद के ग्रहण से तात्पर्य पृथक पृथक गुणो आदि को ग्रहण करना न समझना, वल्कि सामान्य वस्तु के अन्दर देखते हुए ही समझना जैसे अग्नि मे ऊष्णता व प्रकाशकत्व आदि । इस प्रकार गुणो व पर्यायो से विशिष्ट वस्तु को देखना इस नय का विषय है । या यो कहलीजिये कि गुण पर्याय वाला द्रव्य को वताना इस नय का लक्षण है । इसका अन्तर्भाव शास्त्रीय व्यवहार नय मे होता है । अव इसी लक्षण की पुष्टी व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१ वृ न च ।१९६ "भेदे सति सम्वन्धं गुणगुण्यादिभि: करोति यो द्रव्य । सोप्यशुद्धो दृष्ट सहित: स भेद कल्पनया ।१९६।"

अर्थः– द्रव्य मे जो गुण गुणी आदि के द्वारा भेद करके उनमे सम्बन्ध स्थापित करता है वही भेद कल्पना सहित अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

२ आ. प।७ पृ. ७१ "भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको, यथा-त्मानो दर्शनज्ञानदयो गुणाः।"

अर्थ — भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है जैसे कि आत्मा के दर्शन ज्ञानादि गुण कहना।

गुण पर्याय वाला द्रव्य है, या ज्ञानवान जीव है या ऊष्णता व प्रकाशकत्व गुणों वाली अग्नि है, ऐसा कहना इस नय के उदाहरण है।

क्योंकि यह वस्तु में भेद डालकर अर्थात 'गुण वाला' ऐसा कह कर उस अभेद वस्तु का परिचय देता है, इसलिये भेद सापेक्ष है। भेद देखना ही दृष्टि की अशुद्धता है, क्योंकि कुण्डे मे दही बत् द्रव्य मे गुणोंका भेद वास्तव में नही है, इसलिये यह नय अशुद्ध है। और सामान्य द्रव्य को दर्शाने के कारण द्रव्यार्थिक है। इसलिये 'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक' ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। उस अभेद द्रव्य मे गुण पर्याय आदि का भेद डालकर, उसे उनके द्वारा प्रतिष्ठित बताना, अर्थात द्रव्य को गुण पर्याय वाला बताना इस नय का प्रयोजन है।

१२ उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

सामान्य चतुष्टय के चारो अगो मे से प्रथम अंग जो 'द्रव्य' उस के आश्रय पर वस्तु में गुण-गुणी आदि का अभेद व भेद, इससे पहिले वाले नय युगल द्वारा दर्शा दिया गया। उस चतुष्टय का दूसरा अग जो 'क्षेत्र' वह स्वयं द्रव्य मे ही गर्भित हो गया, क्योकि प्रदेशात्म होकर ही द्रव्य गुणों का अधिष्ठान हो सकता है। अव उस चतुष्टय का तीसरा अग जो 'काल' उसके आश्रय पर वस्तु मे अभेद व भेद दर्शाने के लिये यह नय युगल आगे आता है।

'सत्' सामान्य का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त होना है। गुण-गुणी भेद वत् यहा भी यही विचारना है, कि क्या उत्पादादिक

ये तीन अंग सत् से पृथक कुछ अपनी सत्ता रखते है । यद्यपि लक्षण मे कहा गया 'युक्त शब्द ऐसा ही घोषित करता है कि उत्पादादिक तीन पृथक पृथक वस्तुओ को संयोग वाला सत् है, जैसे दण्ड के संयोग वाला दण्डी है, परन्तु वास्तव मे ऐसा नही है । उत्पादादि मई ही सत् है, अर्थात सत् वही हो सकता है, जो नित्य परिणमन शील रहे । परिणमन शीलता ही उत्पाद व्यय अर्थात उत्पत्ति व विनाश है, और परिणमन करने वाले उस द्रव्य का जूं का तू बने रहना ही उसका ध्रौव्यत्व है । जो द्रव्य ध्रुव या नित्य है वही अनित्य है । प्रति क्षण वदलने वाली अवस्थाओ को देखे तो वह अनित्य दिखता है, जैसे वालक का वृद्ध हो जाना । बालक अवस्था का विनाश और वृद्ध अवस्था की उत्पत्ति, यही सत् का उत्पाद व व्यय है, सर्वथा नय सत् का उत्पाद व पुराने सत् का सर्वथा विनाश इसका अर्थ नही । परन्तु उन सब अवस्थाओ मे वह रहा तो मनुष्य का मनुष्य ही । वस यही उसका ध्रुवत्व है ।

दृष्टि विशेप के द्वारा उत्पादादि उन तीनो मे से उत्पाद व व्यय को अर्थात अवस्थाओं को लक्ष्य मे न लेकर केवल ध्रुवत्व या सत्ता की नित्यता को भी देखा जा सकता है, जैसे वालक वृद्धादि से निरपेक्ष मनुष्यत्व को हर अवस्था मे जूं का तू देखना । और उत्पाद व्यय रूप परिणमन शील अवस्थाओं से विशिष्ट भी उस ध्रुवत्व को देखा जा सकता है, जैसे कि वालक व वृद्धादि अवस्थाओं से जड़ित उस मनुष्यत्व को देखना । इन दोनो में पहिले प्रकार से देखना इस नय का विषय है । या यों कह लीजिये कि उत्पाद व्यय से निर-पेक्ष सत्ता की नित्यता को देखना 'उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' का लक्षण है इस दृष्टि मे मे उत्पाद व्यय गौण है और ध्रौव्यत्व मुख्य । इसका अन्तर्भाव संग्रह नय मे होता है ।

अव इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१ वृ न च.।१९२ "उत्पाद व्ययौ गौणौ कृत्वा यो हि गृह्णाति केवलां सत्ताम् । भण्यते स शुद्धनयः इह सत्ताग्राहकः समये ।१९२।"

अर्थ—उत्पाद व्यय को गौण करके जो केवल सत्ता को ग्रहण करता है, उसे ही आगम मे सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा गया है ।

२. आ प. ।७। पृ ७० "उत्पादव्यय गौणत्वेन, सत्ताग्राहकः शुद्ध द्रव्यार्थिको यथा द्रव्यं नित्यं"

अर्थ—उत्पाद व्यय गौण सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है, जैसे द्रव्य को नित्य कहना ।

स्वर्ण की शकले कड़ा कुण्डल आदि रूप से बदल जाने पर भी स्वर्ण तो स्वर्ण ही रहा । बाल युवा वृद्धादि रूप से वदल जाने पर भी मनुष्य तो मनुष्य ही रहा । इसी प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि अनेको पर्यायो रूप से परिवर्तन करने वाला जीव तो जीव ही रहा । इस प्रकार उत्पाद व्यय को न देखकर केवल वस्तु की नित्य सत्ता को देखना इस नय का उदाहरण है । यह सत्ता ही उसमे होने वाली अवस्थाओं का मूल कारण है, जिसे न्याय वैशेषिक लोग समवायी कारण कहा करते है । क्योंकि कार्य से पूर्व समयवर्ती पदार्थ को कारण कहा जाता है ।

क्योकि उत्पाद व्यय को मुख्य रूप से ग्रहण नही करता इसलिये उत्पाद व्यय निरपेक्ष है । केवल सत्ता की नित्यता को स्वीकार करने के कारण सत्ता ग्राहक है । निर्विकल्प ग्रहण होने के कारण शुद्ध है । और सामान्य द्रव्य को विषय करने के कारण

द्रव्यार्थिक है। अतः 'उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है यही इस नय का कारण है।

उत्पत्ति व विनाश पाते रहते भी वस्तु का सामान्य स्वभाव कभी भी उत्पत्ति व विनाश पाता नही। वह त्रिकाली ध्रुव है। ऐसी परिवर्तन शील वस्तु मे भी उसकी नित्य सत्ता को ही ग्रहण करना इस नय का प्रयोजन है।

१३ उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

'काल' की अपेक्षा वस्तु का विचार करते हुए प्रकृत नय युगल के प्रथम शुद्ध अंग ने अर्थात् निरपेक्ष सत्ता ग्राहक नय ने वस्तु की एक सामान्य नित्यता का परिचय दिया। यहा विचारना यह है कि क्या वस्तु सर्वथा नित्य है ? वास्तव मे कूटस्थ नित्य कोई भी वस्तु अपनी सत्ता की सिद्धि नही कर सकती है, क्योकि परिणमन के अभाव मे वह स्वय किसी प्रकार भी कार्यकारी सिद्ध नही हो सकती, और अर्थ क्रिया से शून्य वस्तु असत् है। कार्य कारण भाव की सिद्धि भी तब ही हो सकती है जब कि वस्तु को परिणमन शील माना जाये। तथा प्रत्यक्ष द्वारा भी वस्तु परिणमन शील देखी जा रही है। इस प्रकार आगम युक्ति व अनुभव तीनो से ही वस्तु परिणमनशील सिद्ध होती है। अतः सर्वथा नित्य मानना भ्रमोत्पादक है।

वस्तु मे नित्यता है अवश्य, क्योंकि यदि वह न हो तो परिणमन करने पर वस्तु ही बदलकर अन्य रुप बन बन बैठे, अर्थात चेतन वदलकर जड बन बैठे, मनुष्य बदल कर घट बन बैठे, परन्तु ऐसा होना असम्भवहै। जिस प्रकार से बालक युवा व वृद्ध इन सर्व ही परिवर्तन शील अवस्थाओ मे मनुष्यत्व सामान्य वह का वह ही रहता है, इसी प्रकार अपनी परिवर्तनशील,सभी पर्यायों मे त्रिकाली द्रव्य-सामान्य वह का वह ही रहता है। यही उसकी नित्यता है।

तात्पर्य यह कि जो वस्तु नित्य है वही अनित्य भीहै और जो अनित्यहै वही नित्य भीहै। इस प्रकार वस्तुकी सत्ता नित्यानित्यात्मक है, अर्थात उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त त्रयात्मकहै ।

उत्पाद व्यय से निरपेक्ष सत् 'सत्' नही है, उत्पाद व्यय सापेक्ष ही सत् है । इसलिये पूर्व नय का विषय तभी सम्यक हो सकता है जब कि वह इस अपने दूसरे अग के साथ मैत्री करके वर्ते । उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक नय वस्तु कि सत्ता मे उपरोक्त प्रकार त्रयात्मकता देखता है । ऐसा भी नहीहै कि उत्पादिक इन तीनो मे कोई समय भेद हो।जिस समय नवीन पर्याय का उत्पाद है उसी समय पूर्व पर्याय का व्यय है और उसी समय स्वरुप या सत्ता सामान्य से वह ध्रुव भी है। जिस प्रकार कि जिस समय घट पर्याय की अपेक्षा विनाश होताहै उसी समय कपाल पर्याय की अपेक्षा उत्पाद देखा जाताहै और उसी समय मिट्टी की सामान्य सत्ता रुप से वह ध्रुव भीहै ही। इन तीनो मे समय भेद नहीहै और फिर भी यह विरोध को प्राप्त नही होते। यह दृष्टि की ही कोई विचित्रताहै। इस प्रकार उत्पाद व्यय से विशिष्ट वस्तु की ध्रुव सत्ता को दर्शाना इस नय का लक्षणहै। एक अखण्ड सत् मे तीनपना उत्पन्न करने के कारण इसका अन्तर्भाव शास्त्रीय नयो के व्यवहार नय मे होता है ।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धारण देखिये ।

१ वृ. न च. ।१९५ "उत्पादव्ययविमिश्रा सत्तां गृहीत्वाभणति तृतयत्वम् । द्रव्यस्यैकसमये य: सहि अशुद्धो द्वितीय ।१९५।"

अर्थ –उत्पाद व्यय से मिश्रित सत् को ग्रहण करके जो द्रव्य को एक समय में ही तीन पना बताता है, वह ही दूसरा

अशुद्ध नय है अर्थात उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

२ आ.प ।७।पृ ७१ "उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको, यथैकास्मिन् समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् ।"

अर्थ— उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है, जैसे कि एक ही समय मे द्रव्य को उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक बताना ।

उपरोक्त प्रकार से द्रव्य की ध्रुव अखण्डित सत्ता मे उत्पाद व व्यय देखने के कारण यह उत्पाद व्यय सापेक्ष है । उत्पाद व्यय मान लेने पर उसकी नित्यता कुछ कलकित सी हुई प्रतीत होती है इसलिये अशुद्ध है । उत्पाद व्यय वताकर भी सत्ता सामान्य को ही दर्शाने की मुख्यता है इसलिये सत्ता ग्राहक है । सामान्य एक नित्य द्रव्य का परिचय देने के कारण द्रव्यार्थिक है । अत 'उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है । यही इस नय का कारण है ।

इससे पहिले वाले नय के द्वारा वस्तु को उत्पाद व्यय से निरपेक्ष केवल ध्रुव सत्ता रूप दर्शाया गया था । उसे पढकर आपको कही यह भ्रम न हो जाये, कि वस्तु तो कूटस्थ नित्य है, और यह परिवर्तन शील दृष्टि व्यक्तिमे भ्रम मात्र है, दृष्टि का विकार है, आपके इस भ्रम के शोधनार्थ ही उस नय के साथ साथ अनित्यता दशानि वाले इस नय का होना आवश्यक है ! नित्यत्व या ध्रुवत्व तो उस वस्तु का अंग है, पर सम्पूर्ण वस्तु नही । उस के साथ साथ उत्पाद व व्यय भी उसी वस्तु के ही अग है । ये परिवर्तनशील पर्याये भ्रम नही है, बल्कि सत् हैं । इन तीनों अगो से समवेत ही वस्तु है । इस प्रकार

एकान्त नित्यवाद के छेदनार्थ ही यह नय है । यह इसका प्रयोजन जानना ।

१४ परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

द्रव्यार्थिक नय दशक मे अब तक तीन युगलो का कथन हो चुका । प्रथम युगल मे वस्तु के सामान्य स्वचतुष्टय के आधार पर उसका स्वरूप दर्शाया गया । दूसरे युगल मे उस चतुष्टय के प्रथम व द्वितीय अग जो 'द्रव्य' व 'क्षेत्र' उनके आश्रय पर गुण-गुणी आदि मे अभेद व भेद दर्शाकर उसका परिचय दिया गया । तीसरे युगल मे उस चतुष्टय का तीसरा अंग जो 'काल' उसके आश्रय पर उसके उत्पाद व्यय व ध्रौव्यता का प्रतिपादन किया गया । अब उस चतुष्टय का चतुर्थ अग जो 'भाव' उसके आश्रय पर उसका परिचय देना प्राप्त है ।

भाव शब्द अनेको अर्थो मे प्रयुक्त होता है । त्रिकाली शुद्ध व निर्विकल्प पारिणामिक भाव भी है, और क्षायिक औदयिक आदि क्षणिक शुद्ध व अशुद्ध भाव भी भाव है । अपनी त्रिकाली पर्यायो में अनुगत गुण भी भाव है तथा उसकी सूक्ष्म व स्थूल अर्थ व व्यञ्जन पर्याये भी भाव है । रागादि विभाव भाव भी भाव है और वीत-रागता आदि स्वभाव भाव भी भाव है । वस्तु के उत्पादक व्यय ध्रुव-त्व भी उसके भाव है और द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप स्वचतुष्टय भी उसके भाव है---इत्यादि । वस्तु के इन सर्व भावात्मक भेदो के साथ वस्तु के स्वभाव का व्यतिरेक व अन्वय दर्शाना इस नय युगल का काम है । अर्थात उपरोक्त द्वन्दात्मक अनेक गुण पर्यायो आदि रूप भावो से व्यावृत कोई एक निर्द्वन्द विविक्त भाव पर से वस्तु के स्वभाव का परिचय देना परम भाव का काम है, और वस्तु के स्वचतुष्टय भूत अनेक विशेषो के साथ उस व्यावृत भाव का तथा उसके सामान्य चतुष्टय का अनुगताकार दर्शाकर, सर्व ही विशेष भावों मे सामान्य भाव को ओत पोत रूप से दिखाना, इस युगल के दूसरे भेद 'अन्वय ग्राहक' का काम है ।

वस्तु का पुर्ण निर्विकल्प व निर्द्वन्द तथा उपरोक्त सर्व द्वैतरूप भावो से विविक्त वह त्रिकाली भाव क्या है, यह विचारने जाते है तो न गुणो मे ही वह योग्यता दिखाई देती है और न पर्यायों मे ही। पर्याय तो अनित्य होने के कारण तथा गुण अपनी पर्यायो से कलंकित रहने के कारण निर्विकल्प व निंद्वन्द नही कहे जा सकते। इसी प्रकार उत्पादादि भाव भी इस कोटिमे ग्रहण नही किये जा सकते। अब शेष रहा वस्तु का पारिणामिक भाव, सो दृष्टि वहां ही जा कर ठहरती है। क्योकि यह भाव ही, जैसा कि पहिले भली भाति बताया जा चुका है, अत्यन्त विविक्त है। इसमे न अनेक स्वभावी पने को अवकाश है, न प्रदेशो की कोई अपेक्षा है। इसको न काल से सीमित किया जा सकता है और न भाव से इस मे न शुद्धता देखी जा सकती है और न अशु-द्धता। इसमे न गुण प्रतिष्ठित हो पाते है और न पर्याये। इस मे न उत्पाद होता है न व्यय। इन सर्व विकल्पो से व्यावृत वह तो एक अखण्ड व नित्य शुद्ध भाव है, जिस मे न आदि है, न मध्य या अन्त। अर्थात गुण व पर्यायो आदि का निषेध करने के अतिरिक्त जिस का कोई विधि आत्मक लक्षण ही किया नही जा सकता, ऐसा व पारिणा-मिक भाव ही वस्तु के स्वभाव का असल प्रतिनिधि है।

वस्तु का वस्तु पना देखे तो क्या शुद्ध और क्या अशुद्ध। वह तो जब भी जहा भी जिस अवस्था मे भी देखो वस्तु पना ही है। जैसे स्व-र्णत्व का क्या शुद्ध और क्या अशुद्ध, क्या हीन व क्या अधिक। वह तो जब देखो स्वर्णत्व ही है, जिस भी स्वर्ण के जेवर मे देखो स्वर्णत्व ही है। एक रत्ती स्वर्ण मे भी उतना तथा वह ही है और १० तोले के जेवर मे भी उतना तथा वह ही है। 'त्व' प्रत्यय ही जिसका लक्षण है, वही निर्विकल्प तथा अत्यन्त विविक्त पारिणामिक भाव है।

यदि द्रव्य सामान्य के स्वभाव को देखना है तो उसकी सम्पूर्ण शुद्ध व अशुद्ध पर्यायो को अथवा गुण कृत भेदों को दृष्टि से ओझल

करके देखिये। सत् के अतिरिक्त और क्या दीखता है ? इसी प्रकार जीव द्रव्य को देखे तो चिन्मात्र के अतिरिक्त और क्या दिखता है ? न वहा उत्पाद को अवकाश है न व्यय को। उत्पाद व व्यय के विना ध्रुव भी किसे कहे ? अत: वह सत् त्रयात्मक है ही नही। ज्ञान चारित्र आदि गुणों का द्वैत भी उस विविक्त व अछूते चित् सामान्य में कैसे सम्भव हो। अत: वह तो इन सर्व द्वन्दो से पृथक कोई स्व-लक्षण भूत एक स्वभाव वाला ही है। इसके अतिरिक्त और कहे भी क्या ?

तात्पर्य यह कि इस नय के द्वारा वस्तु का केवल एक विविक्त सामान्य त्रिकाली शुद्ध भाव ही स्वभाव माना जाता है, जैसे द्रव्य सामान्य सत् स्वभावी है, जीव ज्ञानस्वभावी है, कर्म व शरीर अचेतन व मूर्त स्वभावी है, कालाणु व पुद्गलाणु एक प्रदेशस्वभावी है इत्यादि। एक द्रव्य के स्वभाव मे अन्य द्रव्य के कर्तत्वादि की कोई भी अपेक्षा ग्रहण नही की जा सकती, क्योकि स्वभाव स्वत: सिद्ध होता है। इसलिये कर्मो के उदय व क्षय आदि की अपेक्षा से रहित जीव का स्वभाव तो त्रिकाली शुद्ध ही है। न उसमे बन्ध था और न दूर हुआ। वह तो पहिले ही से मुक्त था और अब भी मुक्त है। मुक्ति उत्पन्न करने का प्रश्न ही क्या ? अत. ससार व मोक्ष का द्वैत ही टिकता नही। मोक्ष मार्ग कोई चीज नही। स्वत: सिद्ध स्वभाव मे न किसी का कर्ता-पना है और न भोक्तापना न बन्ध है और न मोक्ष, तथा न उनका कोई कारण ही है। साख्य मत मे पुरुष तत्वको त्रिकाली शुद्ध व अपरि-णामी माना है, सो इसी नय की अपेक्षा समझना सर्वथा नही। क्योकि जीव का पारिणामिक भाव वास्तव मे वैसा ही है।

इस प्रकार अन्य सर्व भावो को गौण करके, उन से व्यावृत तथा अत्यन्त विविक्त एक मात्र पारिणामिक भाव के आश्रय पर, द्रव्य का निर्विकल्प परिचय देना इस नय का लक्षण है।

अव इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१ वृ. न. च।११६। "गृहणाति द्रव्यस्वभाव अशुद्धशुद्धोपचार परित्यक्तम् । स परमभाव ग्राही ज्ञाव्तय सिद्धि कामेन ।११९।

अर्थ— अशुद्ध व शुद्ध पने के उपचार से रहित जो केवल द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है, सिद्धि की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओं को उसे ही परम भाव ग्राही नय जानना चाहिये ।

२ आ. प।७।पृ ७२। "परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक को. यथा ज्ञानस्वरूपात्मा। अन्नानेकस्वभावानामध्ये ज्ञानाख्य: परमस्वभावो गृहीत: ।"

अथः— परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय ऐसा है जैसे कि आत्मा को ज्ञानस्वरूप कहना। यहा आत्मा के अनेक स्वभावो मे ज्ञान नाम का परम स्वभाव ही ग्रहण किया गया है ।

३ आ. प ।१५। पृ १०८ "परमभावग्राहकेण भव्या भव्यपारिणामिक स्वभाव: । ..कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभाव ।... कर्मनोकर्मणोर्मूर्त्तस्वभाव. ।.....पुद्गल विहाय इतरेषाममूर्त्तस्वभाव: ।...कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्व ।

अर्थ— परमभाव ग्राहक नय से भव्य और अभव्य ये पारिणामिक स्वभाव है। कर्म व नोकर्म का अचेतन स्वभाव है। कर्म और नोकर्म का मूर्त स्वभाव है। पुद्गल को छोड़कर अन्य पदार्थों का अमूर्त स्वभाव है काल और पुद्गलाणुओं का एक प्रदेश स्वभावीपना है ।

४ वृ. न च. ।११६ "प.खलु जीवस्वभावो नो जनितो नो क्षयेण संभूतः । कर्मणां सजीवो भणितः इह परम भावे न ।११६।'

अर्थः—जीव का जो स्वभाव न कर्मो से उत्पन्न होता है और न कर्मों के क्षय से, वही जीव है, ऐसा परमभाव ग्राही नय कहता है ।

न. दी ।३।८४।१२८। "परमद्रव्यार्थिक नयाभिप्रायविषयः परम-द्रव्य सत्ता तदपेक्षया 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन' सद्रूपेण चेतनानामचेतनाना च भेदाभावात् ।"

अर्थ— परम द्रव्यार्थिक नय के अभिप्राय का विषय परम द्रव्य सत्ता महा सामान्य है । उसकी अपेक्षा से "एक ही अद्वि-तीय ब्रह्म है, यहा नाना—अनेक कुछ नही है" इस प्रकार का प्रतिपादन किया जाता है, क्योकि सद्रूप से चेतन और अचेतन पदार्थो मे भेद नही है ।

६ वृ. द्र. स ।५७।२३६ "यस्तु शुद्धद्रव्यशक्तिरूप शुद्ध पारिणा-मिक परम भावलक्षण परमनिश्चयमोक्षः सच पूर्व मेव जीवे तिष्ठतीदानी भविष्यतीत्येवं न ।"

अर्थ—शुद्ध द्रव्य की शक्तिरूप शुद्ध पारिणामिक परमभावरूप परम निश्चय मोक्ष है वह तो जीव मे पहिले ही विधमान है । वह परम निश्चय मोक्ष अब प्रगट होगी ऐसा नहीं है ।

७ स. सा. ।ता. वृ ।३२० "सर्वविशुद्धपारिणामिक परम भाव ग्राहकेण शुद्धोपादानभूतेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्व–भोक्तृत्व–बध–मोक्षादिकारणपरिणामशून्यो जीव इति सूचितं ।"

अर्थ — सर्व विशुद्ध पारिणामिक परमभावग्राही शुद्धोपादान-भूत द्रव्यार्थिक नय से जीव कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बन्ध तथा मोक्षादि के कारण भूत परिणामो से शून्य है ।

भले ही स्वर्ण का जेवर शुद्ध हो या अशुद्ध, परन्तु उसमे पाया जाने वाला स्वर्णत्व या स्वर्ण का सामान्य स्वभाव न शुद्ध है न अशुद्ध, न हल्का है न भारी । वह तो सब ही जेवरो मे एक का एक है । इस ही प्रकार सर्व ही द्रव्यो का स्वभाव त्रिकाली निरूपाधिक व शुद्ध ही रहता है । यह इसका उदाहरण है ।

परम अर्थात उत्कृष्ट जो पारिणामिक भाव उसको ग्रहण करने के कारण परम भाव ग्राहक है, उस भाव के त्रिकाल शुद्ध होने के कारण शुद्ध है, और उसके आश्रय पर सामान्य द्रव्य का परिचय देने के कारण द्रव्यार्थिक नय है । इस प्रकार "परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय" ऐसा इसका नाम सार्थक है । यही इस नय का कारण है ।

परिर्वतन पाने पर भी वस्तु जूँ की तूँ ही स्वभाव मे स्थित है । उसका कुछ भी विगाड कि सुधार हुआ नही । परिवर्तन तो ऊपर ऊपर का कुछ नृत्य मात्र, वस्तु इससे बिल्कुल अछूती रहती है, ऐसी वस्तु की नित्य महिमा है । यह बताना ही इस नय का प्रयोजन है ।

१५ अन्वय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

अब इस चौथे नय युगल के दूसरे भेद अन्वय ग्राहक नय का कथन करना प्राप्त है । अन्वय का अर्थ अनुगत रूप से रहना है । जिस प्रकार माला मे डोरा सर्व ही मोतीयो मे अनुगत रूप से पिरोया रहता है, जिस के कारण उसका एक्य रूप वना रहता है और मोती विखरने नही पाते, जिस प्रकार क्रमवर्ती वालक व वृद्धदादि अनेक अवस्थाओ में उस मनुष्य का व्यक्तित्व अनुगताकार रूप से ओतप्रोत रहता है,

जिसके कारण कि उसका एक्य रूप बना रहता है, और व बालक वृद्धादि अवस्था बिखर कर पृथक पृथक व्यक्तियों के रूप मे दृष्ट नही हो पाती। उसी प्रकार वस्तु के सम्पूर्ण ही विशेष भावो मे उसका वह वह सामान्य भाव अनुगता कार रूप से ओत प्रोत हुआ देखा जाता है, जिसके कारण उन विशेषो रूप द्वैत मे भी बराबर अद्वैत व एक्य भाव बना रहता है, और वे सर्व विशेष बिखर कर पृथक पृथक सत् नही बन बैठते।

द्रव्य की अपेक्षा सर्व ही अपने अवान्तर भेद रूप विशेप व्यक्तियों मे उसकी एक सामान्य जाति अनुगत रहती है, जिस के कारण वह अनेक होते हुए भी एक कहलाता है, जैसे व्यक्ति की अपेक्षा आम व नीबू आदि अनेक भेदो मे विभक्त उन सर्व का अन्तर्भाव एक वृक्ष की सामान्य जाति मे हो जाता है। क्षेत्र की अपेक्षा किसी भी पदार्थ के सख्यात या असख्यात अनेक प्रदेशो मे उसका एक सामान्य सस्थान अनुगत रहता है, जिसके कारण वह एक कहलाता है और उसके वे प्रदेश बिखर कर पृथक पृथक होने नही पाते, जैसे कि अनत परमाणुओ से निर्मित भी यह शरीर एकाकार है। काल की अपेक्षा आगे पीछे प्रकट होने वाली क्रमवर्ती अनेक अर्थ वे व्यञ्जन पर्यायो मे उस वस्तु के सामान्य त्रिकाली गुणतथा सामान्य त्रिकाली द्रव्य अनुगत रूप से रहते है, जिसके कारण परिवर्तन पाते हुए भी वह जूँ की तूँ बनी रहती है, खण्ड खण्ड होकर अनेक रूप नही हो जाती, जैसे कि बालक व वृद्धादि अवस्थाओ रूप से परिवर्तन पाता हुआ भी वह व्यक्ति जू का तू बना रहता है। इसी प्रकार भाव की अपेक्षा वस्तु के अनेक गुणो मे उसका वही पूर्वोक्त विविक्त सामान्य पारिणामिक भाव अनुगत रहता है, जिसके कारण वस्तु की एक्य रूपता की कोई सीमा बनी रहती है और वह उसको उल्लंधन करके अन्य रूप नही बन सकती, जैसे कि अनेक शरीरो मे क्रम पूर्वक वास कर लेने पर भी मै चेतन का चेतन ही हू, जड नही बन पाया हु। इसी प्रकार सर्वत्र-अनुगत या अन्वय शब्द का अर्थ जानना।

इस नय युगल के प्रथम अग परम भाव ग्राहक नय के अत्यन्त विविक्त जो पारिणामिक भाव उसको ही वस्तु के स्वभाव रूप मे देखा था, परन्तु विचार करने पर गुणो व पर्यायो से अतिरिक्त उस पारिणामिक भाव की कोई स्वतत्र सत्ता प्रतीति मे नही आती । यद्यपि दृष्टि विशेष से सर्व विकल्पो का अभाव करके एक निर्विकल्प भाव के रूप मे पढा अवश्य जा सकता है, पर गुणो आदि से पृथक उसको वस्तु मे खोजा नही जा सकता, क्योकि उत्पाद व्यय रूप उसकी कोई भी अर्थ क्रिया देखने मे नही आती, जैसे कि ज्ञान गुण की जानन क्रिया देखने मे आती है, वह परिणामिक भाव वस्तु के उन अर्थ क्रिया कारी त्रिकाली अनेक गुणो मे ही अनुगत रूप से व्यापकर रहता है, और वहा ही उसे पढा भी जा सकता है । उदाहरणार्थ जीव के ज्ञान गुण मे या श्रद्धा गुण मे या चारित्र व वेदना गुण मे यदि झुक कर देखे तो सामान्य रूप से एक चेतना शक्ति ही दिखाई देती है, इन गुणो से पृथक वह चेतना कुछ नही है ।

अनेक विशेषो मे अनुगत तथा नित्य एक रूप भाव को ही सामान्य कहते है । द्रव्य की अपेक्षा अपने अवान्तर अनेक भेदो मे रहने वाली एक जाति सामान्य द्रव्य कहलाती है । क्षेत्र की अपेक्षा अनेक प्रदेशो मे व्याप कर रहनेवाला एक सस्थान सामान्य क्षेत्र कहलाता है । काल की अपेक्षा अनेक पर्यायो मे व्याप कर रहने वाला एक सत् सामान्य काल कहलाता है । भाव की अपेक्षा अनेक गुणो व पर्यायो मे व्यापकर रहने वाला द्रव्य का एक्य भाव सामान्य भाव कहलाता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव मे इन चारो मे पृथक पृथक तथा इन के समूह रूप अभेद चतुष्टय मे व्यापकर रहने वाली वस्तु की अनुगताकार वह सामान्यता ही इस अन्वय द्रव्यार्थिक नय का विषय है ।

इस से पूर्व वर्ती परम ग्राहक नय मे इन सर्व भेदो से वस्तु स्वभाव की व्यावृत्ति दर्शाई गई थी, और इस अन्वय ग्राहक नय मे

इन सर्व भेदों के साथ वस्तु स्वभाव का अनुगताकार सम्बन्ध दर्शाया गया है। अर्थात् पूर्व नय विविक्तता दर्शाता था और यह नय अन्वय या अनुगताकारिता दर्शाता है। यही दोनो मे अन्तर है। वास्तव मे यह वस्तु को अनेक दृष्टियो से पढने का अभ्यास कराया जा रहा है ताकि आगे जाकर इन सर्व मे से किसी एक दृष्टि विशेष का आश्रय करके इष्ट साधना सम्भव हो सके।

अब इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ वृ. न च।१९७ "नि शेषस्वभावाना अन्वयरूपेण सर्वद्रव्यै। विभावनाभिः य· सोऽन्वयद्रव्यार्थिको भणितः।१९७।"

अर्थ·—सम्पूर्ण स्वभावो का अपने द्रव्यो के साथ अथवा विभावो के साथ जो अन्वयरूपसे रहना देखता है, वह अन्वय दब्यार्थिक नय कहा गया है।

२ आ. प.।७। पृ ७१ "अन्वय द्रव्यार्थिको, यथा गुणपर्यायस्वभावद्रव्यम्।"

अर्थ — अन्वय द्रव्यार्थिक ऐसा है, जैसे कि गुण पर्याय स्वभावी ही द्रव्य है।

३ आ प.।१५।पृ१०७ "अन्वयद्रव्यार्थिक नये नैकस्याप्यनेक द्रव्यस्भावत्व।"

अर्थः— अन्वय द्रव्यार्थिक नय से एक के भी (उस अखण्ड एक पारिणामिक भाव के भी) अनेक द्रव्य स्वभाविपना है।

४ आ प।१७ पृ १२१ सामान्यगुणादयोऽन्वरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति द्रवति व्यवस्थापयतीत्यन्वयद्रव्यार्थिकः।"

चतुष्टय की बद्ध अवस्थाओ मे स्थित पदार्थों का परिचय पाना भी आवश्यक है।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, वस्तु मे शुद्धता व अशुद्धता दो प्रकार से देखी जा सकती है—एक तो वस्तु मे गुण पर्याय आदि विकल्पों कृत अभेद व भेद रूप से, और दूसरी उपरोक्त वन्ध के सद्भाव य अभाव कृत विभाग व स्वभाव के रूप से। इनमे पहिले प्रकार की शुद्धता व अशुद्धता का पर्याप्त विचार चार नय युगलो द्वारा किया जा चुका है। अव दूसरे प्रकार की वद्ध द्रव्य की शुद्धता व अशुद्धता का विचार करना इस पाचवे नय युगल का काम है। क्योकि इस प्रकार का बन्ध केवल जीव व पुद्गल इन दो द्रव्यो मे ही सम्भव है, इसलिये इस नय युगल का व्यापार भी सर्व द्रव्यो मे न होकर इन दो द्रव्यों की विशेषताओ को देखने मे ही होना है।

जीव द्रव्य वन्ध की अपेक्षा दो भेदो मे विभाजित है—ससारी व मुक्त। शरीर व कर्म सयुक्त जीव ससारी है और उनसे वियुक्त मुक्त है बद्ध होने के कारण ससारी जीव अशुद्ध कहलाता है और वन्ध शून्य होने के कारण मुक्त जीव शुद्ध कहलाता है। ससारी जीव के द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो ही अशुद्ध है, और मुक्त जीव के चारो ही भाव शुद्ध है तहा मुक्त जीव की शुद्धता को देखना इस प्रकृत कर्मोपाधि निरपेक्ष नय का काम है, और ससारी जीव की अशुद्धता को देखना इस के सहवर्ती कर्मोपाधि सापेक्ष नय का काम है। अशुद्धता का अर्थ यहा औदयिक भाव है, और इसी प्रकार शुद्धता का अर्थ भी पारिणामिक भाव नही है बल्कि क्षायिक भाव है। क्योकि पट सयोग व वियोग की अपेक्षा इन दोनो ही भावो में है, पारिणामिक भाव मे नही।

भले ही ससारी जीव औदयिक भाव मे स्थित व अशुद्ध हो परन्तु उसे दृष्टि विशेष के द्वारा मुक्त जीव के क्षायिक भाव

वत् शुद्ध देखा जा सकता है। शरीर और नाम रूप कर्मो आदि को यदि दृष्टि से ओझल कर दिया जाये तो वही संसारी जीव किमात्मक दृष्ट होगा ? क्या उसका अभाव दिखाई देगा ? नही पर चतुष्टय स्वरूप सयोगी पदार्थों का तथा रागादि सयोगी भावो का अभाव होने पर भी वस्तु के स्व चतुष्टय का तीन काल मे अभाव होना सम्भव नही है। शरीरादि को जला देने पर भी स्वचतुष्टय से तन्मय जीव द्रव्य की सत्ता अवश्य रहती है। यह सत्ता किमात्मक दिखाई देगी? स्पष्ट है कि शरीरादि तथा रागादि को दृष्टि से दूर करके देखे तो जीव मुक्त वत् शुद्ध दिखाई देगा। बस यही इस कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात कर्मो आदि पर पदार्थो के संयोग का निरास करके सर्व जीवों को मुक्त वत् देखना इस नय का लक्षण है।

यद्यपि यहा केवल जीव द्रव्य पर ही इस नय का प्रयोग करके दर्शाया है, पर पुद्गल द्रव्य पर भी समान रूप से इसका प्रयोग किया जा सकता है, जैसे कि स्थूल पदार्थो मे भी बन्ध विशेष को दृष्टि से ओझल करके शुद्ध परमाणुओ की पृथक पृथक शुद्ध सत्ता को देखा जा सकता है।

अब इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ वृ न च ।१९१ "कर्मणां मध्यगत जीव यो गृहणाति सिद्ध सकारां। भण्य ते स शुद्ध नय खलु कर्मोपाधिनिरपेक्ष: ।१९१।"

अर्थ— कर्मों के मध्यगत ससारी जीव को जो नय सिद्ध जीवों के सदृश्य ग्रहण करता है उसे कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

२. आ प.।७।पृ.६६ "कर्मोपाधिनिरपेक्ष: शुद्ध द्रव्यार्थिक को यथा ससारी जीव सिद्धसदृक शुद्धात्मा ।"

अर्थ:-- कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है, जैसे कि संसारी जीव को सिद्ध के सदृश्य शुद्धात्मा कहना ।

३ नि सा ।ता वृ।१०७ कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्ध निश्चयद्रव्यार्थिकनयापेक्षया हि एमिर्नोकर्मभिर्द्रव्यकर्म-भिश्च निर्म्मुक्तम् ।"

अर्थ -- कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से जीव द्रव्य इन नो कर्मो व द्रव्य कर्मों से निर्मुक्त है ।

शरीर या कर्मो की तथा उपलक्षण से क्षेत्र धनादि की उपाधि को दूर करने के कारण यह कर्मोपाधि निरपेक्ष है, और क्षायिक भाव रूप उसकी शुद्धता को ग्रहण करने के कारण शुद्ध है । काल कृत भेद न करके जीव सामान्य मे ही उपरोक्त भाव ग्रहण करने के कारण द्रव्यार्थिक है । अत 'कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है । यह इस नय का कारण है । संसारी जीव मे भी शुद्धता को दर्शाकर मोक्ष मार्ग के प्रति उत्साह प्रदान करना इसका प्रयोजन है ।

१७ कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

द्रव्यार्थिक नय दशक के इस अन्तिम युगल मे वद्ध वस्तु का स्वरूप दर्शाना इष्ट है । तहा पहिले कर्मोपाधि निरपेक्ष नय के द्वारा समस्त सयोगो व तद्-कृत विभावो को दृष्टि से ओझल करके वस्तु या जीव को क्षायिक भाव रूप शुद्ध देखा गया । अव इस दूसरे कर्मोपाधि सापेक्ष नय द्वारा उसी वस्तु या जीव को सयोगो तथा तद्कृत भावो से विशिष्ट, औदयिक भाव स्वरूप देखा जाता है ।

जो कुछ भी जड़ व चेतन पदार्थों का यह पसारा लोक मे दृष्ट हो रहा है, यह सर्व ही अनेक द्रव्यों के परस्पर बन्ध का फल है। कोई भी पदार्थ अन्य पदार्थों के सयोग से रहित अत्यन्त शुद्ध देखने मे नही आता है। सब ही जीव शरीर धारी है वे मनुष्य हो या तिर्यंच सर्व ही जीव रागी द्वेषी है, वे मनुष्य हो या तिर्यंच। इसी प्रकार सब ही स्थूल जड़ पदार्थ अनेक परमाणुओं के सघात स्वरूप है। इन सयोगो से पृथक कोई भी शुद्ध जीव या शुद्ध परमाणु देखने मे नही आता। अत सिद्ध होता है कि इन सब संयोगो को धारण किये रहना ही वस्तु का स्वभाव है।

और जब उनका स्वभाव ही ऐसा है, तब उसे सयोगी भी क्यो समझा जाये। सयोगो से रहित कोई असंयुक्त पदार्थ दिखाई दे तो उसके मुकाबले मे इसे सयोगी कह सकते हे। परन्तु जिस दृष्टि मे असंयुक्त पदार्थ की सत्ता ही नही उस दृष्टि मे इसे सयोगी भी कैसे कह सकते है? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, कोई इसमे क्या करे। जीव का स्वरूप ही शरीर धारी व रागी द्वेषी है, तथा पुद्गल का स्वरूप ही इन टूटने फूटने वाले स्थूल पदार्थों स्वरूप है।

इस प्रकार की दृष्टि से देखने पर, सर्व ही जीव तथा सर्व ही पुद्गल अशुद्ध ही दिखाई देते है। बस यही कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात सर्व ही जीवो को शरीर व कर्मो के बन्ध से युक्त ससारी रूप वाला या औदयिक भाव स्वरूप देखना इस नय का लक्षण है। इसी प्रकार सर्व ही पुद्गल पदार्थों को परस्पर सघात को प्राप्त स्थूल स्कन्धो रूप देखना भी इस नय का लक्षण है। जीव व पुद्गल दोनो पदार्थों मे क्योकि जीव अधिक पूज्य है, इसलिये आगम मे इस नय युगल के लक्षण जीव मुखेन दिये गये है। तहा अनुक्त भी पुद्गल मुखेन उसका लक्षण उपरोक्त प्रकार समझ लेना।

अब इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ वृ न. च. ।१६४ "भावान्रागादीन्सर्वावे यस्तु जल्पति । स हि अशुद्धोउक्त· कर्मणामुपाधि सापेक्ष. ।१९४।"

अर्थ-- जो सर्व ही जीवो मे रागादि भावो को ग्रहण करता है, वह कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

२. आ प।७।७० "कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको यथा क्रोधादिकर्मजभाव आत्मा ।"

अर्थ — कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है जैसे कि आत्मा को क्रोधादि कर्मज भावस्वरूप कहना ।

कर्मोपाधि सहित जीव को देखने के कारण कर्मोपाधि सापेक्ष है, जीवकी अशुद्धता का प्रतिपादन करने के कारण अशुद्ध है, और कालकृत भेद न करके जीव सामान्य को अशुद्ध रूपेण ग्रहण करने के कारण द्रव्यार्थिक है। अत "कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थि नय" ऐसा इसका नाम सार्थक है । यह तो इस नय का कारण है और सदा शिव पने की कल्पना का निरास करके, वर्तमान की इस अशुद्धता को दर्शा कर, इसे दूर करने तथा शुद्ध स्वरूप मे स्थिति पाने का उपदेश दना इसका प्रयोजन है ।

१८, द्रव्यार्थिक के अनेक भेदो का समन्वय

यहा इस विषय सम्बन्धी बहुत सी शकाये उठ रही हे, जिनका स्पष्टीकरण होना अत्यन्त आवश्यक है । सो ही नीचे किया जाता है।

१. **प्रश्न** —सामान्य द्रव्यार्थिक, शुद्ध द्रव्यार्थिक अशुद्ध द्रव्यार्थिक मे क्या अन्तर है ?

उत्तर —सामान्य विशेषात्मक वस्तु मे विशेष को गौण करके सामान्य का ही मुख्य रूपेण परिचय देने वाला सामान्य

द्रव्यार्थिक नय है। सामान्य का परिचय भी दो प्रकार से दिया जा सकता है—अभेद रूप से तथा भेद रूप से। विशेषों की सर्वथा अपेक्षा ही न करके केवल सामान्य धर्मात्मक ही वस्तु को बताना अभेद विवक्षा है, जैसे सन्मात्र द्रव्य कहना या चिन्मात्र जीव कहना। यही शुद्ध द्रव्यार्थिक का लक्षण है। वस्तु मे सामान्य व विशेष का भेद करके विशेष को लक्षण बना कर गौण करना और सामान्य को विशेष्य बना कर मुख्य करना भेद विवक्षा है। अर्थात विशेषो से विशिष्ट सामान्य को दर्शाना भेद विवक्षा है। जैसे गुण पर्याय वाला द्रव्य है या ज्ञान दर्शन वाला जीव है ऐसा कहना। यही अशुद्ध द्रव्यार्थिक का लक्षण है।

उदाहरणार्थ ज्ञानादि गुणों व मनुष्यादि पर्यायो मे अनुगत निर्विकल्प त्रिकाली जीव सामान्य द्रव्यार्थिक नय का विषय है। उसमे से जीव को चिन्मात्र कह-कर सन्तुष्ट हो जाना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, और उसे ज्ञानादि गुणो व मनुष्यादि पर्यायो का समूह या अधिष्ठान बताकर उसका विशेष स्पष्ट परिचय देना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। यही तीनों मे अन्तर है।

२ **प्रश्न**—द्रव्यार्थिक का लक्षण तो केवल अभेद सामान्य को ग्रहण करना है, फिर इस नय के शुद्ध अशुद्ध आदि अनेक भेद होने कैसे सम्भव है?

उत्तर—उसी अभेद ग्राही द्रव्यार्थिक के विषय को स्पष्ट रीतय: दर्शाने के लिये।

३. प्रश्न—अभेद मे भेद हो ही नही सकता, फिर स्पष्टता दर्शाने के लिये भी भेद कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर—यह बात ठीक है, कि सामान्य तत्व अभेद है, परन्तु सर्वथा अभेद हो ऐसा नही है। यदि ऐसा हुआ होता तो जीरे के पानी के अभेद स्वाद मे से नमक व मिर्च आदि की पृथक पृथक हीनाधिकता का विवेक उत्पन्न करना असम्भव हो जाता। यदि कहो कि यह दृष्टान्त तो यहां लागू नही होता, क्योकि इसमे तो यथार्थत ही नमक मिर्च आदि की पृथकता है, तब दूसरा दृष्टान्त अग्नि का लीजिये।

अग्नि आपके रसोई घर मे भी काम आती है, और आपके कमरे मे जलने वाले दीपक मे भी। रसोई-घर मे बैठकर पढने का विकल्प आपको कभी नही होता, क्या प्रकाश नही है ? और कमरे मे बैठकर दीपक पर हाथ सैकने का विचार नही आता, क्या दीपक की अग्नि मे उष्णता नही है ? रसोई घर मे खाना पकाने का ही विकल्प क्यो होता है ? यदि अग्नि के प्रकशपने व ऊष्णपने मे सर्वथा भेद न हुआ होता तो उनमे भिन्न भिन्न स्थलों पर भिन्न भिन्न जाति के काम लिये जाने सम्भव नही थे।

दूसरी प्रकार से भी—अग्नि की उष्णता को तो आप शरीर के द्वारा जान पाते है और प्रकाश को नेत्र द्वारा। यदि इन दोनो मे सर्वथा भेद न हुआ होता तो आखे मीच लेने पर भी केवल शरीर से ही उष्णता व प्रकाश दोनो का ग्रहण हो गया होता और इसी प्रकार दूर बैठकर अग्नि को देखने मात्र से आख तपने लग गई होती।

इस पर से सिद्ध होता है कि भले ही उष्णता व प्रकाश अग्नि मे ओत प्रोत एक रस रूप होकर पड़े हो, पर इनका प्रयोग व अनुभव भिन्न भिन्न रूप मे हो रहा है । जो उष्णता का प्रयोग व अनुभव है वह प्रकाश का प्रयोग व अनुभव नही है, और इसी प्रकार जो प्रकाश का प्रयोग है वह ऊष्णता का प्रयोग व अनुभव नही है। अतः भले ही क्षेत्र या प्रदेशो की अपेक्षा वे दोनों अभेद हों, परन्तु अपने अपने भाव या स्वरूप की अपेक्षा दोनों मे भेद अवश्य है। वस्तु भेदा-भेदात्मक है। यही दर्शाना तो अनेकान्त की महिमा है।

४. **प्रश्न**—पहिले आप स्वयं ऐसा कह आये है कि भेद रूप तो वस्तु वास्तव मे है ही नही, भेद का ग्रहण वस्तु के अनुरूप नही । इसलिये भेद कल्पना सापेक्ष सर्व ही अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयो का ज्ञान मिथ्या हो जायेगा ?

उत्तर—ठीक है भाई ! ऐसा कहा अवश्य था, पर उसका अभि-प्राय समझना चाहिये, शब्द नही । वहा भेद से तात्पर्य शब्दो मे दीखने वाला प्रादेशिक भेद है, भावात्मक भेद नही । जैसे कि 'कुण्डे मे दही' इस प्रकार द्रव्य मे गुण नही है, फिर भी 'द्रव्य मे गुण है' ऐसा कहा जाता है। 'दण्ड रखने वाला दण्डी' इस प्रकार गुणादिक रखने वाला द्रव्य नही है, फिर भी वह गुणी पर्याय वाला कहा जाता है, । 'धन वाला धनवान' इस प्रकार गुण पर्यायवान द्रव्य नही है, फिर भी वह गुण पर्यायवान कहा जाता है । हाथ पैर आदि शरीर के अग है, इस प्रकार गुण पर्याय आदि द्रव्य के अग नही है, फिर भी द्रव्य को अगी कहा जाता है । तथा अन्य भी अनेको

प्रकार से शब्दो मे जिस जाति का भेद साधारण दृष्टि मे दिखाई देता है, उस प्रकार भेद वाली वस्तु सर्वथा नही है, ऐसा अभिप्राय रखकर ही वहा भेद का निषेध किया था। यदि इस बात का निषेध न करें तो शब्द सुनने वाले या पढने वाले को उपरोक्त प्रकार का भ्रम हुए बिना नही रह सकता, और यदि ऐसा हो जाये तो उसका ज्ञान वस्तु के अनुरूप कैसे कहा जा सकता है। तब तो वह मिथ्या ही होगा।

पर इसका यह अर्थ भी नही कि भेद सर्वथा नही है। भेद अवश्य है, परन्तु उपरोक्त प्रकार का नही, बल्कि अग्नि मे पडे उष्णता व प्रकाशकत्व रूप है। ये भेद वस्तु से कभी पृथक नही किये जा सकते है। ये पहिले पृथक पडे थे, फिर जोडे गये हो, ऐसा भी नही है। या वस्तु के एक कोने मे एक भेद या अग रहता हो और दूसरे कोने मे दूसरा, ऐसा भी नही है। वे तो सारे के सारे अग या गुण पर्याय तो वस्तु के सर्वांग मे व्यापकर एक रस रूप रहते है। पृथक नही किये जा सकते, पर इनका पृथक पृथक कार्य दृष्टि मे आता अवश्य है—जैसे ऊष्णता का काम पकाना और प्रकाश का काम पढाना। बस इन पृथक पृथक कामो को देखकर ही वस्तु मे पडी अनेक शक्तियो का सज्ञाकरण कर लिया गया है। द्रव्य पहिले और गुण पीछे या गुण पहिले और द्रव्य पीछे ऐसा कुछ भेद नही है।

और इस प्रकार भेद है भी और नही भी है। व्याप्य व्यापक पने की या क्षेत्र की अपेक्षा अभेद है, पर अपने अपने स्वरूप अस्तित्व या भाव की अपेक्षा भेद

है। ऐसा ही अनेकान्त वस्तु की महिमा है। उसे पढाने को अनेकान्त सिद्धान्त ही समर्थ है इस प्रकार का ज्ञान वस्तु के अनुरूप ही है, अतः इस प्रकार से भेदो की सापेक्ष स्वीकृति मिथ्या नही सम्यक है।

५ **प्रश्न**—फिर अभेद पर ही जोर क्यो दिया जा रहा है, उसे ही शुद्ध क्यो बताया जाता है ?

उत्तर—क्योकि वस्तु मे तो वास्तव मे वे उपरोक्त रीति से एक रस रूप ही है, पृथक पृथक नही। समझने और समझाने के लिये भेद डालना तो वस्तु की महिमा पर कलक लगाना है, क्योकि वस्तु ऐसी है ही नही। पृथक पृथक उन गुण और पर्यायों की स्वतत्र सत्ता ही इस लोक मे नही है। अतः इस प्रकार का भेद-ज्ञान वस्तु के ठीक ठीक अनुरूप नही है। इसीलिये भेदो के द्वारा जानने का क्रम केवल अभ्यास करने तथा वस्तु की विशेषताओं से परिचय प्राप्त करने को ही है, वस्तु को वैसी पृथक पृथक भेदों वाली समझने के लिये नही। यही कारण है कि भेदो को अशुद्ध बताकर उनका निषेध किया गया है।

६. **प्रश्न**—अशुद्ध द्रव्यार्थिक भी विशेषों से विशिष्ट सामान्य को जानता है और प्रमाण ज्ञान भी, फिर इन दोनो मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—यद्यपि साधारण दृष्टि से तो ऐसा ही प्रतीत होता है मानो इन दोनो मे कुछ अन्तर न हो, परन्तु वास्तव मे इन दोनों मे महान अन्तर है। प्रमाण ज्ञान मे गौण मुख्य व्यवस्था नही होती, अतः वह सामान्य व विशेष

दोनो को युगपत निर्विकल्प रूप से ग्रहण करता है। अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय मे गौण मुख्य व्यवस्था होती है, अत वह विशेष को गौण करके सामान्य को ही मुख्यत. जानता है । यद्यपि विशेषो का भी ग्रहण करता है, परन्तु ग्रहण करने के लिये नही, वल्कि सामान्य का परिचय पा लेने पर उनका त्याग कर देने के लिये।

अथवा प्रमाण मे सामान्य व विशेष एक रस रुप देखे जाते है और अशुद्ध द्रव्यार्थिक मे उसे सामान्य से पृथक कल्पित करके अर्थात अभेद मे भेद डालकर, उन भेदो वाला उस सामान्य को कहा जाता है । विशेषो वाला बताने पर भी दृष्टि सामान्य की ओर हो झुकी हुई है विशेष की ओर नही, जैसे पगडी वाला कहने पर दृष्टि उस व्यक्ति को ही पकड़ती है, पगड़ी को नही।

७ **प्रश्न**—सत्ता ग्राहक शुद्ध नय को उत्पाद व्यय रहित कसे कहा जा सकता है जबकि उत्पाद व्यय से रहित कोई वस्तु ही नही है ?

उत्तर—यह तो दृष्टि की विचित्रता है । वस्तु के दो रूप है एक बाह्य व दूसरा अन्तरग। उसका बाह्य रूप तो पर्यायो से चित्रित है, अत वह तो परिवतन शील दिखता है, परन्तु अन्तरग रूप सामान्य स्वभाव रूप है। स्वभाव त्रिकाली होता है । जैसे कुण्डल कड़े आदि का उत्पाद व व्यय होते हुए भी केवल स्वर्ण की इच्छा करने वाले को न कडा दिखाई देता है न कुण्डल। वह तो पहिले भी स्वर्ण ही दखता था अब भी स्वर्ण ही देखता है । उसी प्रकार सत् के बाह्य रूप का भले उत्पाद हो कि व्यय,

विचारना तो यह है कि वस्तु के अस्तित्व का क्या विनाश या उत्पाद हो सका है ? उसका अस्तित्व तो पहिले भी था और अब भी है । बस इस प्रकार की दृष्टि का नाम ही उत्पाद व्यय निरपेक्ष ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि है ।

८ **प्रश्न**.—अशुद्ध पर्यायो मे वर्तमान द्रव्य को भी परमभाव ग्राहक नय शुद्ध कैसे देख सकता है ?

उत्तरः—जैसे कर्दम मिश्रित जल को, जल पने की अपेक्षा देखने पर स्वच्छ जल ही प्रतीति मे आता है, या ताम्र मिश्रित अशुद्ध स्वर्ण को स्वर्ण के मूल्य की अपेक्षा देखने पर सर्राफ को शुद्ध स्वर्ण ही दिखाई देता है, कर्दम या ताम्र नही, उसी प्रकार अशुद्ध भी द्रव्य को उसके त्रिकाली स्वभाव या पारिणामिक भाव की अपेक्षा देखने पर वह सदा एक रूप शुद्ध ही प्रतीति मे आता है, अशुद्ध नही ।

९ **प्रश्नः**—आगम मे गुणो को अन्वय तथा पर्यायो को व्यतिरेकी बताया गया है, फिर अन्वय द्रव्यार्थिक द्वारा पर्यायो का ग्रहण कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर.—यहा अन्वय का अर्थ गुण नही है, बल्कि अनुगत व अनुस्यूत रूपेणसामान्य भाव है। वस्तु का अखण्ड एक स्वभाव उसके सर्व अगो मे चाहे व गुण हो या पर्याय अनुस्यूत रूपेणा व्याप्त रहता है, जैसे कि जीव का चिद्-स्वभाव उसके ज्ञान चारित्र आदि सर्व गुणो तथा रागादिक सर्व पर्यायो मे व्याप्त है यदि ऐसा न हो तो ज्ञान मात्र ही चेतन गुण हो, उसकी पर्याये अर्थात मति ज्ञान आदिक अचेतन हो जाये, या चारित्र आदि अन्य गुण व उनकी पर्यायें अचेतन हो जाये । परन्तु ऐसा

होना प्रत्यक्ष बाधित है । अत द्रव्य का एक अखण्ड स्वभाव उस के ही गुणो व पर्यायो मे अन्वय रूप से रहता है, ऐसा ग्रहण इन नय द्वारा हो ज ता है ।

१० **प्रश्न**–परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय और कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—पहिला जो परम भाव ग्राहक है वह जीव सामान्य को त्रिकाली शुद्ध देखता है और दूसरा जो कर्मोपाधि निरपेक्ष है वह उसे ही सादि शुध्द देखता है ।

११ **प्रश्न**–कर्मोपाधि निरपेक्ष व कर्मोपाधि सापेक्षमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—पहिला भेद जीव की क्षायिक भाव स्वरूप सिध्दवत् शुध्द देखता है और दूसरा भेद उसे ही औदयिक भाव स्वरूप ससारी वत् अशुध्द देखता है ।

१२ **प्रश्न**– नय युगलो को दर्शाने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—वस्तु मे जहा अभेद बैठा है वहा ही भेद भी है । जहा नित्यता है वहा ही अनित्यता भी है, जो सर्व भेदो व विशेषो से व्यावृत्त है वही सर्व विशेषो मे अनुस्यूत भी है, जो क्षायिक भाव स्वरूप शुध्द है वही औदयिक भाव स्वरूप अशुध्द भी है, इस प्रकार एक ही सामान्य पदार्थ मे विरोधी धर्मों को युगपत प्रकाशित करना इस नय युगलो का प्रयोजन है, और यही अनेकान्त है ।

१७

पर्यायार्थिक नय

१. पर्यायार्थिक नय सामान्य का लक्षण
२. पर्यायार्थिक नय का कारण व प्रयोजन
३. पर्यायार्थिक नय के भेद प्रभेद,
४. पर्यायार्थिक नय विशेष के लक्षणादि,
५. पर्यायार्थिक नय के भेदों का समन्वय ।

१. पर्यायार्थिक नय सामान्य का लक्षण

आगम पद्धति के अन्तर्गत दूसरी जो वस्तु भूत नयो की श्रेणी है, उनमे से द्रव्यार्थिक नय का विस्तृत वर्णन कर दिया गया । अब पर्यायार्थिक नय का वर्णन प्राप्त है, क्योंकि मूल नये दो ही है–द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक पर्यायार्थिक नय का वर्णन भी यद्यपि शास्त्रीय नय सप्तक के अन्तर्गत ऋजुसूत्र नय के नाम से किया जा चुका है, परन्तु इस श्रेणी

मे उस ही को अधिक विशेषता के साथ कहना इष्ट है । मूल भूत लक्षण की अपेक्षा ऋजुसूत्र नय व पर्यायार्थिक नय मे कोई अन्तर नही है । जिस प्रकार सामान्य चतुष्टय स्वरूप सामान्य द्रव्य की सत्ता को स्वीकार करने वाला द्रव्यार्थिक नय है, उसी प्रकार विशेष चतुष्टय स्वरूप विशेष दव्य की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार करने वाला पर्याया-र्थिक नय है । जिस प्रकार द्रव्यार्थिक नय में विशेष चतुष्टय की स्व-तत्र सत्ता अवस्तु है, उसी प्रकार पर्यायार्थिक नय मे सामान्य चतुष्टय की स्वतत्र सत्ता अवस्तु है, सामान्य व विशेष चतुष्टय का कथन पहिले अधिकार न. ६ के प्रकरण न. ३ व चार में किया गया है, वहा से जान लेना ।

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव ये वस्तु के स्व चतुष्ट कहलाते है । इन चारो का व्यापक रूप सामान्य कहलाता है और व्याप्य रूप विशेष कहलाता है । जैसे द्रव्य की अपेक्षा सर्व द्रव्यमयी, क्षेत्र की अपेक्षा सर्व व्यापी, काल की अपेक्षा त्रिकाली स्थायी और भाव की अपेक्षा सर्व भाव स्वरूप एक अद्वैत सत् सामान्य है, वही द्रव्यार्थिक नय का विषय है । और द्रव्य की अपेक्षा एक व्यक्ति, क्षेत्र की अपेक्षा एक प्रदेशी, काल की अपेक्षा केवल वर्तमान एक समय स्थायी और भाव की अपेक्षा स्वलक्षण भूत किसी एक अविभागी भाव स्वरूप, एसे पृथक पृथक अनन्त सत् विशेष है, वही पर्यायार्थिक नय का विषय है ।

पर्यायाथिक नय द्रव्य मे या क्षेत्र मे या काल मे या भाव मे किसी भी प्रकार का भेद करना सहन नही करता । एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यके साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकारना द्रव्यार्थिक का काम है पर्यायार्थिक का नही । इसी प्रकार एक प्रदेश के साथ अन्य किसी प्रदेश का स्पर्श भी द्रव्यार्थिक स्वीकार कर सकता है, पर पर्यायार्थिक नही । पूर्वोत्तर पर्यायो मे किसी प्रकार का सम्बन्ध मानना भी द्रव्या-र्थिक का ही काम है, पर्यायार्थिक का नही । उसकी दृष्टि मे तो वर्त-

मान मे जितना व जो कुछ भी वह है उतना मात्र ही सत् है। न वह भूत काल मे था और न भविष्यत मे रहेगा। इसी प्रकार अनेक भावो या गुणो का समूह भी द्रव्यार्थिक ही मान सकता है, पर पर्यायार्थिक नही।

और इस प्रकार दो द्रव्यो के बीच निमित्त नैमित्तक सम्बन्ध या जीव व शरीरादि के बीच कोई सश्लेप सम्बन्ध पर्यायार्थिक नय की दृष्टि मे सम्भव नही। अनेक परमाणु बन्ध कर स्कन्ध का निर्माण नही कर सकते। किसी भी द्रव्य मे एक से अधिक प्रदेश की कल्पना व्यर्थ है। एक समय वर्ती शुद्ध द्रव्य मे आगे पीछे पर्यायो का प्रगट हो होकर विनष्ट होना असम्भव है, अत. एक द्रव्य मे अनेक पर्याये नही देखी जा सकती। पर्याय नही बल्कि द्रव्य ही क्षण भर के बाद विनष्ट हो जाता है। एक द्रव्य मे अनेक गुण या भावो का अवस्थान कल्पना मात्र है।

पर्यायार्थिक नय पूर्णत. एकत्व ग्राही है। सत् मे द्वित्व देखना दृष्टि का भ्रम है, क्योंकि दो मिल कर तीन काल मे एक नही हो सकते। दो है तो दो ही रहेगे। और यदि ऐसा ही है तो द्वित्व मे एक सत्ता कैसे देखी जा सकती है? भले ही स्थूल दृष्टि मे अनेक द्रव्यो वा अनेक प्रदेशो का संयोग अनेक पर्यायो की अटूट श्रखला और अनेक भाव परस्पर मे मिलकर अखण्ड व एक प्रतीत होते हो, पर वास्तव मे तो उन सबकी सत्ता पृथक पृथक है, अन्यथा उनमे अनेकता देखी जानी असम्भव थी।

यह पर्यायार्थिक नय का सामान्य परिचय है, जिसका विस्तार ऋजुसूत्र नय के अन्तर्गत किया गया है। इसी का विशद स्पष्टीकरण करने के लिये निम्न मे इसके अनेको पृथक पृथक लक्षण किये गये है।

<u>१. लक्षण नं० १</u> – निर्विशेष किसी एक विशेष चतुष्टय की ही सत् स्वीकार करके सामान्य चतुष्ट की सत्ता से इन्कार करना

इसका व्यापक लक्षण है । जैसे कि वर्तमान काल वर्ती कोई आदि मध्य अन्तरहित एक प्रदेशी स्वलक्षण भाव स्वरूप परमाणु ही एक सत् है, यह दीखने वाले लम्बे काल स्थायी अनेक प्रदेशी अनेक भाव स्वरूप स्थूल पदार्थ वास्तव मे एक नही अनेक है । इसी लक्षण में इस के सर्व अन्य लक्षण गर्भित है। केवल स्पष्टीकरण करने के अर्थ ही अनेक लक्षण किये गये है। विशेष का नाम पर्याय है । यद्यपि पर्याय शब्द द्रव्य के कालाँश अर्थात परिवर्तन पाने वाली अवस्थाओं या अशोका नाम प्रसिद्ध है, परन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। पर्याय शब्द का साधारण अर्थ है अश या विशेप, वह द्रब्य की अतेक्षा हो या क्षेत्र की अपेक्षा हो या काल की अपेक्षा हो या भाव की अपेक्षा हो ऐसा चतुष्टयात्मक विशेष या पर्याय ही है प्रयोजन जिसका वह पर्यायार्थिक नय है । फिर भी कथन को सरल वनाने के लिये पर्यायार्थिक का कथन कालांश रूप पर्याय मुखेन ही करने मे आता है। तहा शेप वचे द्रव्याश क्षेत्राश व भावाश को स्वय लागू कर लेना चाहिये ।

२ लक्षण नं २ – उपरोक्त प्रकार चतुष्टय विशेष की ही स्वतत्रता को ग्रहण करने के कारण इसकी दृष्टि मे कोई एक द्रव्य–एक ही प्रदेश तथा एक ही समय व एक ही भाव की सत्ता वाला होना चाहिये । यहा द्वित्व को अवकाश नही । आगे पीछे की पर्यायो मे परस्पर कोई सम्वन्ध स्थापित नही किया जा सकता । उसे पर्याय या विशेप क्यो कहते हो, वह तो एक स्वतत्र सत् है । विशेष या पर्याय नाम उसी समय धरा जा सकता है जब कि अनेको मे अनुस्यूत कोई एक सामान्य दृष्टि मे आ रहा हो। सामान्य के अभाव मे विशेष किसे कहे ? अत. जिसे हम पर्याय कहते है वही तो सत् या द्रव्य है। पूर्व समय की पर्याय पूर्व समय का द्रव्य था जो विनष्ट हो चुका है। उस का सम्वन्ध इस वर्तमान के द्रव्य से क्या है ? इसी प्रकार भविष्य का द्रव्य कुछ अन्य ही होगा। कुत्ते मनुष्य व देव इन तीन पर्यायो में अनुगत कोई एक जीव सामान्य नाम का द्रव्य लोक मे नही है। कुत्ता

एक स्वतत्र द्रव्य था जो विनष्ट हो गया। मनुष्य एक स्वतत्र द्रव्य है जो वर्तमान मे हमारे सामने है, और देव एक स्वतत्र द्रव्य है जो आगे उत्पन्न होगा। इसी प्रकार गुण व गुणी अथवा विशेषण व विशेष्य भाव रूप द्वैत भी कैसे सम्भव है ? वह द्रव्य भाव या गुण मात्र ही तो है। गुण है वही द्रव्य है और द्रव्य है वही गुण है। अत दो नाम देने व्यर्थ है। यह गुण इस द्रव्य का है, ऐसा नही कह सकते। इसी प्रकार क्षेत्र मे भी समझना।

•

लक्षण नं २ — अन्य पर्यायों को अत्यत निरस्त करके उत्पन्न होने वाली यह एकत्व दृष्टि जब द्वैत देखती ही नही तो कारण–कार्य अथवा कर्ता–कर्म आदि वाले द्वैत को यहा अवकाश ही कैसे हो सकता है ? अत. इस दृष्टि मे कोई भी कार्य बिना किसी कारण के स्वतः उत्पन्न होता है। उस को किसी अन्तरङ्ग या बाह्य कारण की अथवा कर्ता की अवश्यकता नही। अत. निमित्त या उपादान कारण इन दोनो का ही इस दृष्टि मे अभाव है। यह भाव स्वीकार करते हुए कुछ बाधा अवश्य होती है पर एकत्व दृष्टि मे होता ऐसा ही है।

उस की सिद्धि भी इस युक्ति पर से की जा सकती है। कार्य नाम पर्याय का है और कारण नाम द्रव्य, गुण व पर्याय तीनों का। 'यह न होता तो कार्य कैसे होता' इस प्रकार के तर्क द्वारा जिस की सत्ता दिखाई दे उसे ही कारण कहते है। द्रव्य रूप कारण दो होते हैं–एक उपादन दूसरा निमित्त। सयोग विशेष को प्राप्त दूसरा द्रव्य निमित्त कारण कहलाता है। उपादान कारण उसे कहते है जिस मे से कि कार्य या पर्याय प्रगट हो, अर्थात द्रव्य को उपादान कारण कहते हैं, क्योंकि पर्याय–द्रव्य मे ही प्रगट होती है, इससे बाहर नही। 'वह न हों तो पर्याय कहा प्रगट होगी' ऐसे तर्क द्वारा इस के कारण पने की सिद्धि हो जाती है।

दूसर प्रकार से भी कदाचित उपादान कारण कहा जा सकता है, और वह यह कि जिस पूर्व की पर्याय ने हट कर उस अगली पर्याय को द्रव्य मे प्रवेश करने की आज्ञा दी, वह पूर्व की पर्याय भी अपने से अगली पर्याय के लिए कारण कही जा सकती है, क्योकि 'वह व्यय न होती तो अगली पर्याय कैसे उत्पन्न होती' इस तर्क के द्वारा इस कि सिद्धि होती है। जैसे अन्धकार का विनाश न होता तो, यहा अन्धकार का विनाश भी प्रकाश होने मे कारण अवश्य है ।

इस प्रकार त्रिकाली द्रव्य, और पूर्व समय की एक पर्याय तो कारण कोटी मे आते है और एक वह पर्याय जो कि विचारणा या कथन का विषय बनी हुई है, कार्य कोटी मे आती है। जिस पर्यायार्थिक दृष्टि मे केवल एक ही द्रव्य तथा केवल एक ही पर्याय की पृथक सत्ता का ग्रहण हो रहा है, उस दृष्टि मे अन्य द्रव्य कौन और पूर्व की पर्याय भी कौन ? दोनो ही का वहा तो अभाव है । फिर कारण किसे कहे ? क्या अभाव को ? सो तो सम्भव नही है, क्योकि अभाव का विचार भी क्या ? अकेला कार्य ही कार्य है। अतः इस दृष्टि मे कारन के बिना ही कार्य की उत्पत्ति होती है।

यहा ऐसा तर्क उत्पन्न हो सकता है कि कारण के अभाव मे कार्य का भी अभाव हो जायेगा, तो वह दृष्टि तुरन्त पुकार उठती है कि ऐसा नही हो सकता, क्योकि जो बात वर्तमान विचारणा का विषय बनी हुई है, जो इस समय मुझे स्पष्ट दीख रही है उस का अभाव मै स्वीकार ही कर सकता । फिर प्रश्न होता है कि कोई न न कोई तो कारण होना ही चाहिये, तब उत्तर यही आता है कि जब न द्रव्य कारण है, और न पूर्व की अन्य पर्याय कारण है, तो परिशेष न्याय से वह एक क्षणवर्ती द्रव्य अकेला ही स्वयं कार्य रूप है और स्वय अपना कारण भी है। पर्यायार्थिक दृष्टि के इस एकत्व भाव को कही क्षणिक उपादान भी कहने मे आता है । तात्पर्य यह कि पर्यायार्थिक

नय की अपेक्षा द्रव्य स्वय अपने कारण से या अपनी उस समय की योग्यता से ही उत्पन्न होता है, उसे दूसरे निमित्त या उपादान कारण की आवश्यकता नहीं ।

द्रव्यार्थिक की तरफ तो शुद्ध अद्वैत ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक की तरफ शुद्ध एकत्व ग्राही शुद्ध पर्यायार्थिक नय दोनों मे ही कारण कार्य भाव को अवकाश नही, क्योकि दोनों मे ही निर्विकल्प तत्व का ग्रहण है, निर्विकल्पता मे द्वैत का होना विरूद्ध है । कार्य कारण भाव रूप द्वैत को अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय बनाया जा सकता है, पर उपरोक्त दोनो शुद्ध नयों का नही ।

लक्षण नं ४ — परन्तु अनेकान्त वाद मे पक्षपात को अत्यत निषेधा गया है । अत इस प्रकार का एकत्व ग्रहण उसी समय सम्यकता को प्राप्त हो सकता है जब कि अन्तरङ्ग ज्ञान कोष मे उस के साथ रहने वाला द्वैत भी पड़ा हो । भले उस समय के उपयोग या विचारणा या कथन विशेष मे उस को प्रवेश की आज्ञा न मिले परन्तु लब्ध रूप से उन्तरग मे उसकी स्वीकृति अवश्य हो रही है, जैसे कि पहिले 'मुख्य गौण व्यवस्था' नाम के दसवे अध्याय मे स्पष्ट किया जा चुका है । अत यहा द्रव्यार्थिक के विषय भूत द्वैत या अद्वैत की गौणता है उस का अभाव नही । द्रव्य को गौण करके पर्याय का मुख्य रूप से कथन करने वाली दृष्टि को पर्यायार्थिक नय कहते है । द्रव्य को अस्वीकार करके या उसका सर्वथा निषेध करने वाली एकान्त दृष्टि पर्यायार्थिक नही पर्यायार्थिक भास है, जैसे जन साधारण के द्वारा मनुष्य को जीव कहा जाना । जन्म से पहिले भी यह कुछ था और मरण के पश्चात भी कुछ होगा इस बात की स्वीकृति का वहां सर्वथा अभाव है । क्षण क्षण होने वाली पर्यायो को मान कर पर्याय के आश्रय भूत द्रव्य का सर्वथा निषेध करना पर्यायार्थिक नय नही नया भास है ।

लक्षण नं० ५ — यद्यपि उत्पन्न और विनष्ट होने वाली पर्याय है द्रव्य नही परन्तु जिस दृष्टि मे उस पर्याय के अतिरिक्त अन्य की सत्ता ही दीखती नही उस मे तो उस पर्याय का विनाश होने पर सत्ता का ही विनाश हो जाना स्वभाविक है । जैसे कि नित्य कहने मे आता है कि मनुष्य जन्मा और मर गया, जीव उत्पन्न हुए और विनष्ट हो गए, एटम बौम्ब से असख्यात प्राणियो का सहार हो जाता है । अत इस दृष्टि मे द्रव्य ही उत्पन्न ध्वंसी है ।

उपरोक्त प्रकार पर्यायार्थिक नय के निम्न प्रकार पांच मुख्य लक्षण किये जा सकते है —

१. पर्याय ही है प्रयोजन जिसका सो पर्यायार्थिक नय है ।

२. निर्विशेष चतुष्टय मे किसी प्रकार भी गुण-गुणी आदि द्वित्व या द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अनेकता सम्भव नही ।

३. क्षण स्थायी विशेप एक सत्ता मे कर्ता कर्म या कारण-कार्य आदि भावो को अवकाश नही ।

४. द्रव्य को गौण करके पर्याय को ही मुख्य रूपेण ग्रहण करना पर्यायार्थिक नय है ।

५. द्रव्य को ही उत्पन्न ध्वसी या क्षणिक मानना पर्यायार्थिक दृष्टि है ।

पर्यायार्थिक नय सम्बन्धी उदाहरणो के लिये देखिये आगे द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय समन्वय । अब इन लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित लक्षण भी उद्धृत करता हूं ।

१ लक्षण नं० १ (पर्याय ही है प्रयोजन जिसका):—

१ स. सि ।१।६।२८ "पर्यायोऽर्थ. प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिक: ।"

अर्थ—पर्याय ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका सो पर्यायार्थिक है ।

(नि. सा । ता वृ. । १९) (स. सि ।१।३३।५०२) (आ. प. ।१८ ।पृ १२२)

२. रा. वा १।३३।१।९५।९ "पर्यायोऽर्थ· प्रयोजनमस्य वाग्विज्ञानव्या वृत्तिवन्धन व्यवहार प्रसिद्धे रीति पर्यायार्थिक· ।"

अर्थ—शव्द और ज्ञान इन दोनो के व्यावृति निवन्धन व्यवहार की प्रसिद्धि रूप जिस नय का प्रयोजन पर्याय है वह पर्यायार्थिक नय है ।

३. ध ।१।८४।१। "पर्याय एवार्थ· प्रयोजनमस्यति पर्यायार्थिक: ।" (ध. ।९।१७०।३)

अर्थ—पर्याय ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका सो पर्यायार्थिक है ।

२ लक्षण नं० २ (गुण गुणी आदि द्वित्व का निरास) –

१. रा वा १।३३।१।९५।३ "पर्याय एवार्थोऽस्य रूपाद्युत्क्षेपणादिलक्षणो न ततोऽन्यद् द्रव्यमिति पर्यायार्थिक· ।"

अर्थः—रूपादि कोई एक गुण ही है लक्षण जिसका, अथवा उत्क्षेपण अवक्षेपण (ऊपर या नीचे फेकना) आदि क्रिया ही है लक्षण जिसका ऐसी पर्याय या वस्तु का विशेष

ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका, वह पर्यायार्थिक नय है। इस दृष्टि में उस गुण अथवा क्रिया से अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य नाम के पदार्थ की सत्ता नही है। (यहा गुण गुणी या पर्याय पर्यायी भाव का निरास किया गया है)

२. प्र. सा. । त. प्र. । परि। नय न २ "तत तु....पर्यायनयेन तन्तुमात्रवद्दर्शनज्ञानादिमात्रम् ।"

अर्थः—उस आत्मा को यदि पर्यायार्थिक नय से देखे तो वह दर्शन ज्ञान मात्र है। अर्थात ज्ञान या दर्शन इन से अतिरिक्त अन्य आत्मा नाम का कोई पदार्थ ही लोक मे पाया नही जाता । जैसे कि तन्तु मात्र ही एक सत् है । इसके अतिरिक्त वस्त्र कोई वस्तु नही। (यहा भी गुण गुणी भाव रूप द्वैत का निषेध किया गया है।)

३. रा. वा ।१।७।३।३८ "औपशमिकादिभावपर्यायो जीव इत्युच्यते पर्यायादेशात् ।"

अर्थ—पर्यायार्थिक नय से औपशमादिक भाव स्वरूप पर्याय ही जीव है, उस से भिन्न कुछ नही। (यहा भी पर्याय-पर्यायी भाव का द्वित्व हटाया गया है।)

४. ध० ।१।८५।३ "ऋजुसूत्रवचनविच्छेदो मूलाधारो येषां नयाना ते पर्यायार्थिका· । विच्छिद्यतेऽस्मिन् काल इति विच्छेद. । ऋजुसूत्रवचनं नाम वर्तमान वचन, तस्य विच्छेद. ऋजु-सूत्र वचन-विच्छेद· । सकाल मूलाधारो येषा नयाना ते पर्यायार्थिका. । ऋजुसूत्रवचनविच्छेदारभ्य आ एकसमया द्वस्तुस्थित्यध्यवसायिन: पर्यायार्थिका इति यावत् ।"

अर्थ—ऋजुसूत्र नय के प्रतिपादक वचनो का विच्छेद जिस काल मे होता है, वह (काल) जिन नयो का मूल आधार है वे पर्यायार्थिक नय है। विच्छेद अथवा अन्त जिस काल मे होता है उस काल को विच्छेद कहते है। वर्तमान वचन को ऋजुसूत्र वचन कहते है, और उसके विच्छेद को ऋजुसूत्र वचन विच्छेद कहते है। वह ऋजुसूत्र के प्रतिपादक वचनो का विच्छेद रूप काल जिन नयो का मूल आधार है उन्हे पर्यायार्थिक नय कहते है। अर्थात ऋजुसूत्र के प्रतिपादक (वर्तमान) वचनों के विच्छेद से लेकर एक समय पर्यन्त वस्तु की स्थिति का निश्चय करने वाला पर्यायार्थिक नय है। (अर्थात जिस समय उस क्षणिक पदार्थ का प्रतिपादन समाप्त करने मे आये उस समय से आगे की एक समय मात्र वस्तु की स्थिति उस नय का विपय है)

३ लक्षण ३. (कार्य-कारण भाव का अभाव):—

रा वा. ।१।३३।१।९५।४ "अथवा अर्यते गम्यते निष्पद्यत इत्यर्थ: कार्यम्। द्रवति गच्छतीति द्रव्य कारणम्। द्रव्यमेवार्थोऽस्य कारणमेव कार्यं नार्थान्तरम्, न च कार्यकारणयो. कश्चिद्रूपभेद. तदुभयमेकाकारमेव पर्वाङ्गुलि द्रव्यवदिति द्रव्यार्थिक परि समन्तादाय पर्याय। पर्याय एवार्थ· कार्यमस्य न द्रव्यम् अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पणत्वेन व्यवहाराभावात्, स एवैक· कार्यकारणव्यपदेश भागिति पर्यायार्थिक।"

अर्थ:—जो गमन करे या निष्पन्न हो उसे कार्य कहते है। जो द्रवण करे या गमन करे उसे द्रव्य कहते है। वह द्रव्य

ही कारण है। इस प्रकार द्रव्य ही जिसका अर्थ है ऐसा वह कारण ही स्वय कार्य है। कार्य उस कारण से पृथक कुछ नही है। इसलिये कार्य और कारण इन दोनो मे किसी भी प्रकार का भेद नही है। "वे दोनो एकाकार ही है, जिस प्रकार कि अगुलि व उसके पर्व एक ही वस्तु है, पृथक पृथक नही। इस प्रकार कार्य व कारण मे अद्वैत देखना तो द्रव्यार्थिक नय है।

सब ओर से ग्रहण की जाये सो पर्याय है। वह पर्याय ही स्वय कार्य है, द्रव्य नही, क्योकि अतीत पर्याय वाला द्रव्य तो विनष्ट हो चुका है और अनागत पर्याय वाला द्रव्य अभी उत्पन्न नही हुआ है, इसलिये इन दोनो के व्यव्हार का अभाव है। वह वर्तमान पर्याय वाला द्रव्य ही कार्य व कारण दोनो सज्ञाओ को धारण करता है।" ऐसा है अर्थ या प्रयोजन जिसका वह पर्यायार्थिक नय है।

नोटः—(इस लक्षण सम्वन्धी अन्य अनेको उद्धरण ऋजुसूत्र नय के प्रकारण न. २ मे लक्षण न. ४ के अन्तर्गत देखिये।)

४ लक्षण नं० ४ (द्रव्य गौण पर्याय मुख्य):—

१ वृ. न च।१९० "पर्यये गौण कृत्वा द्रव्यमपि च यो हिगृह्णाति लोके। सद्रव्यार्थिको भणि तो विपरीत. पर्यायार्थिक नय ।१९०।"

अर्थ—पर्याय को गौण करके द्रव्य को ही अर्थात सामान्य अद्वैत द्रव्य की सत्ता को ही लोक मे जो ग्रहण करता है वह

द्रव्यार्थिक नय है । इससे विपरीत पर्यायार्थिक नय है । अर्थात द्रव्य को गौण करके पर्याय की सत्ता को ही लोक मे जो ग्रहण करता है, वह पर्यायार्थिक नय है ।

२ का अ। २७०"य: साधयति विशेपान् बहुविध सामान्य सयुतान् सर्वान्। साधन लिङ्गवशादो पर्याय विपयनयो भवति ।२७०।"

अर्थ—जो नय अनेक प्रकार सामान्य सहित (उसे मात्र गौण करके) सर्व विशेप को उनके साधन के लिग के वश से सिद्ध करता है, वह पर्यायार्थिक नय है ।

३. स. सा आ.।१३ "द्रव्यपर्यायात्म के वस्तुनि .पर्याय मुख्यत यानुभावयतीति पर्यायार्थिक ।"

अर्थ—द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु मे पर्याय को ही मुख्य रूप से जो अनुभव करता है, सो पर्यायार्थिक नय है ।

४. प. घ।पू.।५१९ "अंशा. पर्याया इति तन्मध्ये विवक्षितोऽश: स: । अर्थोयस्येति मत· पर्यायार्थिक नयस्त्वनेकश्च ।५१९।"

अर्थ—अश नाम पर्याय का है । इसलिये इन अशो मे से विवक्षित जो अश है, वही एक अश या पर्याय ही है प्रयोजन जिसका ऐसा यह पर्यायार्थिक नय मानने मे आया है तथा वह अनेक प्रकार का है।

५. क. पा ।१।ह१८१।२१७।२"सादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्न च द्रव्यार्थिकाशेप विषयं ऋजुसूत्रवचनविच्छेदेन पाटयन् पर्यायार्थिक इत्यवगन्तव्य: ।"

अर्थ—सादृश्य लक्षण सामान्य से (द्रव्य से) भिन्न और अभिन्न रूप जो द्रव्यार्थिक नय का समस्त विषय है, ऋजुसूत्र वचन के विच्छेदरूप काल के द्वारा (वर्तमान काल के द्वारा) उसका विभाग करने वाला पर्यायार्थिकनय है, यह उक्त कथन का तात्पर्य जानना चाहिये।

५. लक्षण नं ५ (द्रव्य उत्पन्न ध्वंसी है) —

ध ।१।१३।गा ८ "उप्पजंति वियति य भावाणियमेण पज्जव णयस्स। . ।८।"

अर्थ—पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ नियम से उत्पन्न होते है और नाश को प्राप्त होते है ।

२ ध ।६।४२०।५ पज्जवट्ठियणयावलवणेण पडिसमय पुध पुध सम्मत्तभावे जीविददुचरिमसमओ त्ति पडिवज्जतस्य तदुवलभा।"

अर्थ—पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से प्रत्येक समय पृथक पृथक सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने पर जीवन के द्विचरम समय तक भी सम्यक्त्व की उत्पत्ति पाई जाती है।

३. प ध ।पू।२४७ "पर्यायादेशत्वात्स्त्युत्पादो व्ययोऽस्ति च ध्रौव्यम्। द्रव्यार्थदेशत्वान्नाप्युत्पादोव्ययोऽपि न ध्रौव्यम् ।।२४७।।"

अर्थ—पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से द्रव्य का उत्पाद भी है, व्यय भी है, और ध्रुव भी है। परन्तु द्रव्यार्थिकनय से उसका न उत्पाद है, न व्यय है और न ध्रुव है।

२ पर्यायार्थिक का कारण व प्रयोजन

कोई भी नय वाक्य पूरे के पूरे द्रव्य का प्रतिनिधित्व करता हुआ ही प्रगट हुआ करता है। भ्रम निवारणार्थ उन वाक्यो को नयो के नाम वाले शीर्षक प्रदान किये गये है। यहा 'पर्यायार्थिक' ऐसे शीर्षक वाले वाक्यो का प्रकरण है। अत यहा वस्तु की पर्याय को अर्थात किसी एक विशेप को सम्पूर्ण पदार्थ के रूप मे स्वीकार करने वाले वाक्यो का परिचय दिलाना अभीप्ट है।

यही कारण है कि इस नय के पाच लक्षण किये गये, जिन के आधार पर यह ही दर्शाया गया है कि अभेद रूप से एक अखण्ड वस्तु का प्रतिपादन न करके, अथवा उसे गौण करके, किसी एक भेद या विशेप को ही उसका प्रतिनिधि वना कर अर्थात एक पर्याय को ही मुख्य करके पुरी वस्तु के प्रतिपादन करने की शैली को पर्यायार्थिक नय कहते है। जव एक पर्याय को ही पूरा द्रव्य कहा जायेगा तो द्रव्य ही वदलता हुआ कहा जाना अनिवार्य हो जायेगा, क्योकि पर्याये वरावर वदलती है। वदलने वाली पर्याय जव वस्तु का प्रतिनिधित्व करेगी तो वस्तु ही वदलती हुई दिखाई। इसलिये पर्यायार्थिक नय से वस्तु ध्रुव न होकर उत्पन्न ध्वसी वन बैठती है।

उत्पन्न ध्वसी दीखने पर ही कार्य कारण भाव जागृत हो जाते है, क्योकि कार्य क्षणिक पर्याय को कहत है। जब पूरा द्रव्य एक पर्याय रूप ही कहा जा रहा है तो वही कार्य रहा और वही कारण।

वस तो एक पर्याय को ही लक्ष्य मे लेकर कहने मे यह पाचो वाते क्योकि वस्तु मे दीख रही है, अत पाचो ही लक्षण पर्यायार्थिक के कहे जाने ठीक ही है। दूसरे इस का 'पर्यायार्थिक' ऐसा नाम भी पर्यायो रूप से द्रव्य के प्रतिपादन का संकेत करता हुआ अपनी सार्थकता स्वय दर्शा रहा है। यह इस नय का कारण हुआ।

अव प्रयोजन सुनिये। अभेद वस्तु भले ही जानी जा सके पर न तो कह कर श्रोता को समझाई जा सकती है और नही स्वय उस पर विशेष विचार किया जा सकता है, न ही तर्क आदि द्वारा उसकी सिद्धि की जा सकती है। अभेद को दर्शाने का या विशेष्य को दर्शाने का एक मात्र साधन विशेषणो की व्याख्या करना है, जैसा कि अमेरिका के फल को दर्शाने का एक मात्र साधन उसके रूप रस गन्ध आदिक को समझाना ही है। विशेषण कहो या पर्याय एक ही वात है। अत पर्यायो को पृथक पृथक रूप से वस्तु का प्रतिनिधि वना कर श्रोता के लिये तथा वस्तु की विशेपताये जानने के लिये अत्यन्त उपकारी है। इस प्रकार के उपकार की सिद्धि न हुई होती तो अखण्ड वस्तु को खण्डित करने की मुर्खता कौन करता किसी भी बात को समझने व समझाने का सकल लौकिक व्यवहार इसी नय के आश्रय पर चल रहा है, यह न हो तो समझने व समझाने का व्यवहार ही समाप्त हो जाये, गुरु शिष्य सम्बन्ध भी रहने न पाये, मोक्ष व मोक्ष मार्ग का भी लोप हो जाये, वड़ा अनर्थ हो जाये, तीर्थ की प्रवृत्ति रूक जाये, और न जाने क्या क्या हो जाये। अत इस का उपकार स्वीकार करने योग्य है, विशेषत वर्तमान की इस निकृष्ट अवस्था मे जव कि जीवन मे कल्याण की प्राप्ति करना अभीष्ट है। एक अदृष्ट पदार्थ सम्वन्धी परिचय प्राप्त करना है जो विना पर्यायार्थिक की सहायता के होना असम्भव है, यही इस नय का प्रयोजन है। अर्थात वस्तु की विशेषताओ या अगो का पृथक पृथक परिचय दिलाना इस का प्रयोजन है।

इस प्रकार पर्यायार्थिक समान्य का कथन समाप्त हुआ, अव इसी की विशेषता दर्शाने के लिये इसके कुछ भेद प्रभेदो का कथन किया जायेगा। यह बात अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिये कि ये सर्व ही भेद काल मुखेन कहे जायेगे। द्रव्य क्षेत्र व भाव पर भी यथा योग्य रीतय स्वय लागू कर लेना।

३ पर्यायार्थिक नय के भेद प्रभेद

पर्यायार्थिक नय का आधार पर्याय है वह व्यञ्जन पर्याय हो कि अर्थ पर्याय, स्थूल पर्याय हो कि सूक्ष्म पर्याय, लम्बे समय तक दीखने वाली पर्याय हो या अल्प समय तक दीखने वाली पर्याय, शुद्ध पर्याय हो या अशुद्ध पर्याय। इन सब पर्यायों को हम स्थूल रूप से चार कोटियों मे विभाजित कर सकते है। अनादि अनन्त पर्याय अनादि सान्त पर्याय, सादि अनन्त पर्याय, और सादि सान्त पर्याय।

यद्यपि पर्याय सादि सान्त ही होती है परन्तु अनेक पर्यायो के समूह रूप व्यञ्जन पर्याय की अपेक्षा उपरोक्त चारो भेद देखे जा सकते है। उसमे अनादि पर्याय तो पुद्गल द्रव्य की उस व्यञ्जन पर्याय को कहते है, जो सूक्ष्म रूप से परिणमन शील रहने पर भी वाह्य मे सदा जू की तूं दिखाई देती रहती है। इस स्थूल पर्याय का प्रत्येक क्षणिक परिणमन पूर्व पूर्व के सदृश ही रहते रहने के कारण इसमे कोई स्थूल विसदृशता दिखाई नही देती, और इसीलिये अनादि से अनन्त काल तक एक की एक ही वनी रहती है, इसी से अनादि अनन्त पर्याय कहलाती है—जैसे अकृत्रिम स्कन्धो रूप, सुमेरु, चन्द्र, सूर्य, चैत्यालय व प्रतिमा आदि, जिनमे चन्द्र सूर्य की नित्यता तो प्रत्यक्ष है, पर अन्य पदार्थों की केवल आगम गम्य है। जीव पदार्थ मे ऐसी कोई अनादि अनन्त पर्याय देखने मे नही आती, क्योकि ससार दशा मे उसमे कभी भी सदृश परिणमन नही होता।

अनादि सान्त पर्याय जीव के औदयिक भाव को कहते है। क्योकि प्रत्यक प्राणी सदा से अशान्त है। वह कव पहिले पहिल अशान्त या अशुद्ध हुआ था यह कहना असम्भव है। जीव की अशुद्धता का आदि खोज निकालना असम्भव होने के कारण वह अनादि है। परन्तु यदि भव्य है तो किसी न किसी दिन इस अशुद्धता का अन्त करके शुद्ध व शान्त हो सकता है। ऐसे जीव की अशुद्धता

का अन्त दिखाई देता है अत वह सान्त है । इस प्रकार एक साधारण ससारी जीव की अशुद्धता, वह ही है उसका औदयिक भाव, वह अनादि सान्त है। जड या पुद्गल की अनादि सान्त कोई पर्याय प्रतीति मे नही आती, क्योकि परमाणु पृथक हो होकर पुन पुन बन्धता रहता है ।

सादि अनन्त पर्याय क्षायिक भाव को कहते है, जो उत्पन्न होने के पश्चात फिर विनष्ट नही होता । जैसे सिद्ध भगवान की पूर्ण शुद्ध पर्याय किसी विशेष समय मे उनके तपश्चरण आदि के द्वारा प्रगट तो अवश्य हुई थी पर उसका विनाश कभी नही होता । अर्थात उसका आदि तो है पर अन्त नही । इसलिये वह सादि अनन्त पर्याय है पुद्गल मे यह भी दिखाई नही देती, क्योंकि परमाणु शुद्ध होने के पश्चात् पुनः अशुद्ध हो जाता है ।

सादि सान्त पर्याय दो प्रकार की होती है––क्षण मात्र को रह कर समाप्त हो जाने वाली तथा अधिक काल तक रह कर समाप्त होने वाली । क्षण मात्र स्थायी भी दो प्रकार की है––एक समय मात्र स्थिति को रखने वाली तथा ७।८ (सैकेन्ड) टिकने वाली । एक समय मात्र टिकने वाली पर्याय तो प्रत्येक गुण के प्रतिक्षण के स्वाभाविक परिवर्तन को कहते है, जो स्थूल ज्ञानियो की दृष्टि मे नही आ सकता । यह तो केवल ज्ञान के ही गम्य है । इसे षट् गुण हानि वृद्धि रूप स्वाभाविक क्षणिक पर्याय या सूक्ष्म अर्थ पर्याय कहते है । कुछ क्षण स्थायी पर्याय औपशमिक भाव रूप है । श्रद्धा व चरित्र मे यह बात कदाचित सम्भव है कि यह पूर्ण निर्मल दशा मे सात या आठ क्षण के लिये रहकर पुन मलिनता को प्राप्त हो जाते है । यह औपशमिक भाव भी इतने थोडे समय के लिये रहता है कि हम स्थूल ज्ञानी उसे नहीपकड़ सकते, अवधि ज्ञान के द्वारा कदाचित वह पकड़ी जानी सम्भव है । पुद्गल मे भी यह अवश्य

देखी जा सकती, क्योकि कोई परमाणु अल्पकाल मात्र रह कर पुन. वन्ध जाता है ।

अधिक काल स्थायी सादि सान्त पर्याय भी दो प्रकार की है–एक पूर्ण अशुद्ध औदयिक भाव रूप और एक शुद्धाशुद्ध क्षायोपशमिक भाव रूप ओपशमिक रूप से शुद्धता को प्राप्त होकर पुन. औदयिक भाव मे प्रवेश करके इसका प्रारम्भ करता है, और फिर वड़े लम्वे काल पश्चात अर्थात कई भवो पश्चात पुन· औपशमिक भाव को प्राप्त होकर उसका अन्त करता है। एक तो ऐसा औपशमिक भाव के साथ लगा हुआ औदयिक भाव सादि सान्त है । दूसरा क्षायोपशमिक भाव से भी च्युत होकर औदयिक भाव मे प्रवेश पाता हुआ उसका प्रारम्भ करता है, और यथा योग्य हीनाधिक समय तक वहा रह कर पुन. क्षायोपशमिक भाव मे प्रवेश पाता हुआ उसका अन्त करता है । इस प्रकार दूसरा क्षायोपशमिक के साथ लगा हुआ औदयिक भाव है । तथा स्वप क्षायोपशमिक भाव भी क्योकि औदयिक का अन्त करके क्षायोपशमिक और क्षायोपशमिक का अन्त करके औदयिक वरावर कुछ कुछ काल पश्चात उदय होते रहा करते है। इनके काल का कोई नियम नही । दोनो ही के सम्वन्ध मे अनेक विकल्प हो सकते है। दो चार क्षण रह कर समाप्त हो जाये, कुछ मिनिट, कुछ घन्टे, कुछ दिन, महिने या वर्ष रह कर समाप्त हो जाय अथवा कुछ भव तक वरावर वना रह कर समाप्त हो जाये । इस प्रकार सादि सान्त पर्याय औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, और औदयिक भाव तीनो रूप है। इनका काल यथा योग्य रोति से स्वयं जान लेना । ये सर्व विकल्प पुद्गलात्मक जड़ पदार्थ मे भी यथा योग्य रूप से देखे जा सकते है, क्योकि वहा वरावर परमाणु से स्कन्ध और स्कन्ध से परमाणु बनते रहते है।

औपशमिक भाव तो सादि सान्त शुद्ध भाव है, क्षायोपशमिक भाव सादि सान्त शुद्धाशुद्ध भाव है और औदयिक भाव सादि सान्त अशुद्ध भाव है।

इन चारो प्रकार की पर्यायी को निम्न चार्ट पर से पढ़ा जा सकता है ।
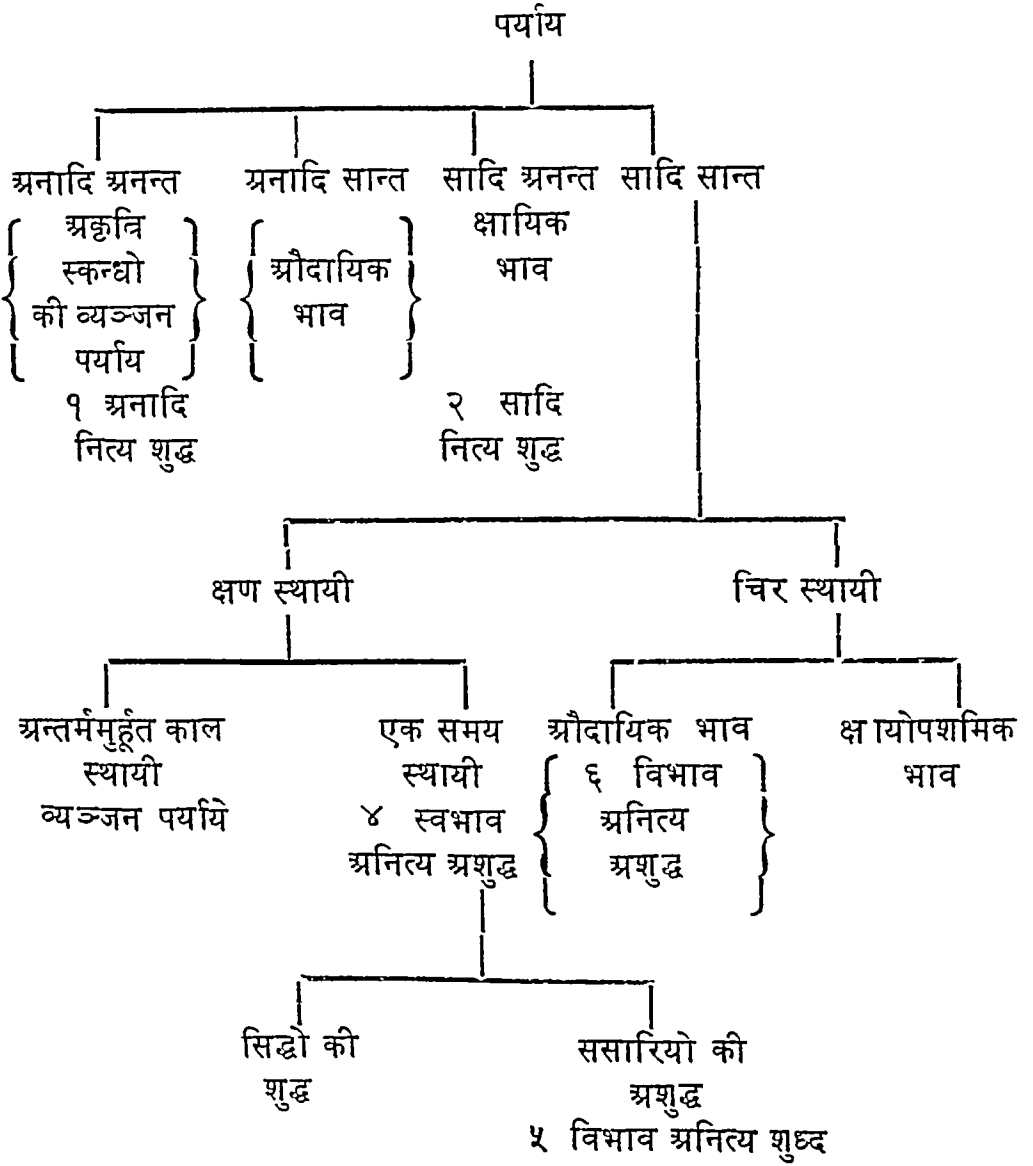
इस प्रकार यद्यपि पर्यायो को और भी अनेकों भेदो मे विभाजित किया जा सकता है, परन्तु सबका अन्तर्भाव इन ही मे हो जायेगा । आगम मे इन्ही को निम्न नामो के द्वारा कहा गया है ।

१ अनादि नित्य शुद्ध,   २ सादि नित्य शुद्ध .
३. स्वभाव अनित्य शुद्ध,   ४. स्वभाव अनित्य अशुद्ध.
५. विभाव अनित्य शुद्ध,   ६. विभाव अनित्य अशुद्ध.

जसा कि ऊपर चार्ट मे भी दिखा दिया गया है—ये छहों उपरोक्त भेदो मे गर्भित हो जाती है। न. १ वाली अनादि नित्य शुद्ध तो उपरोक्त अनादि अनन्त मे समा जाती है और न २ वाली सादि नित्य शुध्द उपरोक्त सादि अनन्त मे। नं. ३ वाली स्वभाव अनित्य शुद्ध कोई पर्याय विशेष नही है वल्कि पर्याय उत्पन्न होने का एक त्रिकाली स्वभाव है अत. उसका इन भेदों मे कोई स्थान नही। न. ४ वाली स्वभाव अनित्य अशुद्ध उपरोक्त एक समय स्थायी सादि सान्त मे चली जाती है। न ५ वाली विभाव अनित्य शुद्ध ससारियो की एक समय स्थायी सादि सान्त मे गर्भित हो जाती है और नं ६ वाली विभाव अनित्य अशुध्द औदयिक भाव रूप चिर स्थायी सादि सान्त मे समा जाती है। अत आगम कथित यह भेद पदार्थ मे दीखने वाली पर्यायों से निरपेक्ष कोई स्वतत्र सत्ता नही रखते।

अव इन के पृथक पृथक लक्षण आदि दर्शाने मे आते है।

१ अनादि नित्य (शुद्ध) पर्यायार्थिक नय —

यद्यपि वस्तु की सर्व पर्याय सूक्ष्म दृष्टि से सादि सान्त ही होती है, परन्तु जिस प्रकार अर्थ पर्याय की अपेक्षा व्यञ्जन पर्याय अधिक काल तक रहती प्रतीति मे आती है, उसी प्रकार वस्तु की कुछ व्यञ्जन पर्याये ऐसी भी है जो अनादि नित्य रूप से जानने मे आती है। जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, व्यञ्जन पर्याय वास्तव मे कोई स्वतत्र पर्याय नही बल्कि अनन्तो अर्थ पर्यायो का सामूहिक फल है। जैसे कि हमारे ज्ञान की वृद्धि जो एक वर्ष पश्चात हमारी दृष्टि मे आई है वह वृद्धि कोई एक पर्याय नही है वल्कि प्रत्येक क्षण होने वाली वृद्धियो का एक सामूहिक रूप है। इस दृष्टान्त मे वस्तुभूत पर्याय या परिणमन तो वही है

जो कि क्षण क्षण प्रति हमारे ज्ञान मे वृद्धि रूप से हुई है । १०० डिग्री से बुखार १०२ डिग्री पर पहुचा । यह २ डिग्री की वृद्धि क्या एक वृद्धि है या अनेको क्षणिक वृद्धियों का समूह । विचार करने से पता चलेगा कि बुखार की वृद्धि यह नही है बल्कि वह है जो कि प्रत्येक क्षण थोडी थोडी उत्पन्न हुई है सो इस क्षणिक हानि या वृद्धि को तो उस उस गुण की अर्थ पर्याय कहते है, और इन के सामूहिक व चिर काल पीछे बीतने वाले रूप को व्यञ्जन पर्याय कहते है । अर्थ पर्याय को आगम भाषा मे षट् गुण हानि वृद्धि रूप कहा है, जिस का अर्थ पर्याय से प्रगट उस गुण के शक्ति अशो मे प्रत्येक क्षण होने वाली हानि वृद्धि के अतिरिक्त कुछ नही ।

उपरोक्त वक्तव्य पर से सिद्ध हुआ कि पर्याय तो वास्तव मे क्षण स्थायी है, पर इन का समूह चिर काल स्थायी सा हमारी स्थूल दृष्टि मे देखने मे आता है । अर्थ पर्याय को पकडने की शक्ति हम मे नही । यदि इन अर्थ पर्यायो मे होने वाली सूक्ष्म वृद्धि या हानि इस प्रकार होती रहे, कि कभी तो हानी हो जाये और कभी लग भग उतनी ही वृद्धि हो जाये तो उन का सामूहिक रूप ज्यो का त्यो ही तो रहेगा । भले प्रत्येक क्षण हानि वृद्धि हुई हो पर सामूहिक रूप मे से कोई स्थूल हानि वृद्धि देखने मे न आ सकेगी । जैसे कि यदि १००० मे से ५० घटा दे, फिर ५५ बढ़ा दे, फिर ५२ घटा दे, फिर ४७ बढा दे तो शेष क्या रहेगा ? ज्यों के त्यो हजार । क्या हानि वृद्धि नही हुई ? क्षणिक हानि वृद्धि अवश्य हुई पर इस प्रकार, कि हानि–वृद्धि के बराबर रही, और इसी लिये सर्व हानि वृद्धि होते हूए भी चिर काल पश्चात दिखने वाली उन का सामूहिक फल ज्यो का त्यो बना रहा । इस प्रकार की स्थूल व्यञ्जन पर्याय को सदृश्य व्यञ्जन पर्याय कहते है ।

बहुत से पदार्थो मे ऐसी सदृश्य व्यञ्जन पर्याये सर्वदा देखने को मिलती है । अर्थात बहुत से पदार्थ लोक मे ऐसे है जो स्थूलत: बदलते

हुए दिखाई नही देते जैसे चन्द्र, सूर्य, सुमेरु आदि। स्थूल दृष्टि मे न दीखने का यह अर्थ नही कि उन मे परिवर्तन हुआ ही नही। परिवर्तन तो अवश्य हुआ पर हानि और वृद्धि समान हो जाने के कारण उन की बाह्य सामूहिक रूप व्यञ्जन पर्याय ध्रुव दिखाई देती रही। अनादि काल से इन पदार्थो का ब्रह्म रूप ऐसा ही है और अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा। या यो कह लीजिये कि इन की व्यञ्जन पर्याय अनादि नित्य है। यह पर्याय केवल पुद्गल मे ही सम्भव है जीव मे नही, क्योंकि जीव अनादि से कर्म बन्धन सहित अशुद्ध है शुद्ध नही।

ऐसे पदार्थो मे दीखने वाली स्थायी द्रव्य पर्याय या व्यञ्जन पर्याय को विषय करना इस अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय का लक्षण है। अब इस की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१. वृ न. च.।२०० "अकृत्रिमाननिथनान् शशिसूरादीना पर्यायान् ग्राही। य. सोऽनादिनिधनो जिनभणित. पर्यायार्थिक.।"

(अर्थ— चन्द्रमा व सूर्य आदि पदार्थो की अनादि अनिधन अकृत्रिम पर्यायो को ग्रहण करने वाले नय को जिन देव ने अनादि नित्य पर्यार्थिक नय कहा है।)

२. आ.प.।८।पृ. ७३ "अनादिनित्य पर्यायार्थिक को यथा पुद्गल पर्यायो नित्यो मेर्वादि.।"

(अर्थ— अनादि नित्य पर्यायार्थिक ऐसी जानो जैसे कि पुद्गल की नित्य पर्याय मेरु आदि।)

३. नय चक्र गद्य पृ ६ "पर्यायार्थी भवेन्नित्याऽनादीत्यर्थ गोचरः। चन्द्रमेरुभूशैललोकादे प्रतिपादक.।"

(अर्थ — अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय चन्द्रमा सूर्य मेरु पृथिवी पर्वत लोक आदि का प्रतिपादक है ।)

अनादि नित्य दीखने के कारण यह अनादि नित्य है । सदृश है इस लिये ध्रुव है और इसीलिये यह शुद्ध कहा जा सकता है । क्योंकि पर्याय को ग्रहण करता है इसलिये पर्यायार्थिक है । अत· “अनादि नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय” ऐसा इस का नाम सार्थक है । यह तो इस का कारण हुआ । सदृश परिणमन का परिचय देना इस का प्रयोजन है ।

२ सादि नित्य (शुद्ध) पर्यायार्थिक नय —

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, क्षायिक भाव सादि, अनन्त या सादि नित्य पर्याय होती है, क्योकि यह पर्याय जीव मे कभी उत्पन्न तो अवश्य होती है पर इस का विनाश कभी नही होता है– जैसे सिद्ध भगवान । यह पर्याय जीव मे ही होनी सम्भव है, पुद्गल मे नही क्योकि पुद्गल की पूर्ण शुद्ध पर्याय या उस का क्षायिक भाव स्कन्ध से परमाणु बनना है स्कन्ध से परमाणु पृथक हो कर शुद्ध बन तो जाता है पर वह सदा परमाणु ही रूप से पड़ा रहेगा यह निश्चय नही । आगे पीछे वह पुन. स्कन्ध बनकर अशुद्धता को प्राप्त हो जाता है । अत· पुद्गल मे यह सादि नित्य पर्याय देखने को नही मिलती । इस क्षायिक भाव रूप सादि अनन्त पर्याय को ग्रहण करने वाले नय को सादि नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं । इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथिक उद्धरण देखिये ।

१. वृ न. च।२०१ “कर्मक्षयादुत्पन्नोऽविनाशी यो हि कारणाभावे । इदमेवमुच्चरन् भण्यते, स सादि नित्य नयः ।२०१।”

(**अर्थ**— कर्मो के क्षय से उत्पन्न तथा कारण का अभाव हो जाने पर सदा रहने वाली ऐसी जो क्षायिक भाव रूप पर्याय है, उस को विषय करने वाले नय को सादि नित्य नय कहते हैं ।)

२. आ. प ।८। पृ ७३ "सादि नित्यपर्यायार्थिकको यथा सिद्ध पर्यायो नित्य.।"

(**अर्थ**-- सादि नित्य पर्यायार्थिक ऐसे है जैसे कि "सिद्ध पर्याय नित्य है" ऐसा कहना ।)

नय चक्र गद्य पृ ६ "पर्यायार्थो भवेत्सादि·"व्यये सर्वस्य कर्मण: । उत्पन्न सिद्ध पर्याय ग्राहको नित्य रूपक ।२।"

(**अर्थ:**-- सादि नित्य रूपक पर्यायार्थिक नय सर्व कर्मों के क्षय से प्रगट होनें वाली सिद्ध पर्याय का ग्राहक है ।)

क्योकि सादि नित्य पर्याय को ग्रहण करता है इसलिये इसका "सादि नित्य" ऐजा नाम सार्थक है । यह तो इसका कारण है । जीव के पूर्ण शुद्ध क्षायिक भाव का परिचय देना इस नय का प्रयोजन है ।

३. स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय:-

वस्तु नित्यानित्यात्मक स्वभाव वाली है । स्वभाव अन्य पदार्थ की सहायता आदि की अपेक्षा नही रखा करता, इसलिये वस्तु स्वय तथा स्वत सिद्ध ऐसी ही है । स्वभाव का नाम ही पारिणामिक भाव है, जिसका विस्तृत परिचय कि पहले दिया जा चुका है । स्वभाव होने के नाते उसे भी नित्यानित्य माना गया है । उसके नित्य रूप का परिचय ही पहिले अधिकार न ७ मे दिया गया है, तथा परम

भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय मे उसका ग्रहण किया गया है। यहा इस नय के अन्तर्गत उसी का अनित्य स्वभाव ग्राह्य है।

यहा यह जानते रहना चाहिये की स्वभाव शक्ति का नाम है, व्यक्ति का नही, अत पारिणामिक भावरूप यह अनित्यता भी पदार्थ की एक सामान्य व त्रिकाली शक्ति है, किसी एक क्षणिक पर्याय रूप व्यक्ति नही। फिर भी नित्यानित्य अखण्ड स्वभाव का यह एक अश या विशेष ही तो है, पूर्ण स्वभाव तो नही। नित्यता व अनित्यता दोनो ही वस्तू के अश होते है, परन्तु नित्यवाला अश सामान्य कहा जाता है और अनित्य वाला अंश विशेष, क्योकि नित्यता अनेको क्षणिक अशो मे अनुस्यूत रूप से सर्वदा वह की वह पाई जाती है, परन्तु अनित्यता मे प्रति क्षण नवीनता देखी जाती है, भले व सूक्ष्म हो कि स्थूल। एक त्रिकाली सामान्य स्वभाव का विशेष होने के कारण अनित्य स्वभाव को यहा पर्याप कहा गया है, क्योकि विशेष का नाम पर्याय है। पर्याय शब्द से तात्पर्य यहा न अर्थ पर्याय से है और न व्यज्जन पर्याय से। वे दोनो तो एक सूक्ष्म या स्थूल क्षण पर्यन्त रहकर विनष्ट हो जाती है। यहा तो पर्याय शब्द से तात्पर्य वस्तु का त्रिकाली पारिणामिक अनित्य स्वभाव है। यह पर्याय है अर्थ या प्रयोजन जिसका, वह 'स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय' है।

यहा प्रश्न किया जा सकता है कि पारिणामिक भाव को पहिले सर्वथा नित्य व पर्यायों से निरपेक्ष बताया गया है, फिर यहां उसमे अनित्यता की बात क्यो कही जा रही है? सो ऐसा नही है, क्योकि यहा वाली अनित्यता भी वास्तव मे नित्य ही है, क्योकि प्रतिक्षण परिणमन करते रहना वस्तु का त्रिकाली नित्य स्वभाव है। यहा नित्यता का अर्थ कूटस्थपना ग्रहण न करना, बल्कि वस्तु मे सर्वदा ही पाया जाने वाला कोई स्वभाव ग्रहण करना है। जिस

प्रकार वस्तु मे ध्रुवता सर्वदा पाई जाती है, उसी प्रकार उसमे परिणमन भी सर्वदा पाया जाता है। जिस प्रकार नित्यता उसका स्वभाव है उसी प्रकार अनित्यता भी उसका स्वभाव है ।

उदाहरणार्थ एक ऐसी अग्नि शिखा को देखिये जो अत्यन्त प्रचड है, तथा धधक रही है। इसे स्थिर कहोगे या अस्थिर ? स्पष्ट है कि स्थिर भी है और अस्थिर भी। इसकी लपटे बराबर ऊपर की ओर ही उठ रही है, दाये बाये को नही जाती, तथा ऊपर भी हानि वृद्धि रहित सदा उतनी ही ऊची दिखाई दे रही है, कभी वह लपट छोटी हो जाये और कभी बड़ी ऐसा दिखाई नही देता। इसलिये तो वह स्थिर है। परन्तु उतनी तथा वैसी की वैसी रहते हुए भी वह चित्र लिखितवत कूटस्थ नही है, बल्कि बराबर लहरा रही है, धधक रही है, इसलिए अस्थिर है। यहा इसकी अस्थिरता वायु से ताड़ित दीपक की चचल लौवत नही है, बल्कि समान धाराप्रवाही लहरोंवत् है, इसीलिये इस अस्थिरता को नित्य भी कहा जा सकता है। (इसी प्रकार त्रिकाली ध्रुव व निर्विकल्प व अखण्ड पारिणामिक भाव) परिणमन स्वभावी होने के कारण बराबर धधक रहा है, चकचका रहा है। बस पारिणामिक भाव का यही त्रिकाली अनित्य स्वभाव ही प्रकृत नयका विपय है।

अर्थात त्रिकाली द्रव्य सामान्य की ध्रुवसत्ता से निरपेक्ष, केवल उत्पाद व्यय की एक धाराप्रवाही सन्तति के रूप मे वस्तु को देखना, स्वभाव अनित्य शद्ध पर्यायार्थिक नय है। या यों कह लीजिये कि यह नय सत्ता सामान्य के नित्य अश को गौण करके उसके अनित्य अश को ही लक्ष्य मे रखता है।

इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित लक्षण उद्धृत करता हू ।

१. वृ. न. च । २०२ "सत्ताऽ मुख्य रूपे उत्पादव्ययौ हि ग्रहणाति यो हि । स हि स्वभावानित्योग्राही खलु शुद्ध पर्यायार्थिक । २०२"

अर्थ—सत्ता को गौण करके जो केवल उत्पाद व्यय को ग्रहण करता वह ही निश्चय से स्वभाव अनित्य ग्राही शुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

२. नय चक्र गद्य । पृ ६ "स्वभावागुरुलघुत्वादि द्रव्याणा क्षय भगिना । व्रतेऽनित्य स्वभावोऽसौ पर्यायार्थिक निर्मल. ।३"

अर्थ—अगुरुलघुत्वादि ही क्षणभगी द्रव्योका स्वभाव है, ऐसा जो कहता हे वह स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

अर्थ पर्याय रूप से प्रतिक्षण सूक्ष्म उत्पाद व्यय होते रहना, अर्थात प्रत्येक क्षण सूक्ष्म अर्थ पर्याय का प्रगट करते रहना वस्तु का स्वभाव है, क्योकि अन्य निमित्त कारणो की अपेक्षा न करके यह स्वत ही होता है । वस्तु के इस स्वभाव को ग्रहण करने वाला होने के कारण इस नय के नाम के साथ स्वभाव विशेपण लगाया गया । वस्तु का अखण्ड स्वभाव या सत् सामान्य यद्यपि नित्यानित्यात्मक है, परन्तु उसके नित्य अश को छोड़कर केवल अनित्य अंश को ग्रहण करता है, इसलिये यह नय अनित्य कहलाता है । क्योकि अन्य से निरपेक्ष केवल अपने अगुरुलघुत्व गुण के ही कारण से उत्पन्न होता है इसलिये यह स्वभाव तथा उसे ग्रहण करने वाला नय शुद्ध है । सामान्य से रहित विशेष अश को पर्याय कहते है, अत. ध्रुव निरपेक्ष यह उपरोक्त अनित्यता का अश पर्याय शब्द का वाच्य है, इसलिये इसका ग्राहक यह नय भी पर्यायार्थिक है । अत. इस

नय का 'स्वभाव अनित्य शुद्ध पार्यायार्थिक' ऐसा नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। और वस्तु के सहज त्रिकाली परिणाम स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

४. स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय—

स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक वत् ही इसका लक्षण समझना। दोनो मे सूक्ष्म सा ही अन्तर है। जिस प्रकार स्वभाव अनित्य शुद्ध नय वस्तु के सहज अनित्य स्वभाव को बताता है उसी प्रकार स्वभाव अनित्य अशुद्ध नय किसी भी एक पृथक पर्याय को अनित्य दर्शाता है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्', सत् का लक्षण ही उत्पादव्यय ध्रुव रूप है, फिर चाहे वह सत् त्रिकाली हो या क्षणिक। जिस प्रकार वस्तु का त्रिकाली सत् प्रतिक्षण एक पर्याय से उत्पन्न होता है, पूर्व पर्याय से विनाश पाता है, और 'उत्पत्ति व विनाश पाने वाला यही वह है' ऐसी एक अनुस्यूति रूप द्रव्य की प्रतीति से ध्रुव रहता है, उसी प्रकार एक पर्याय का क्षणिक सत् भी उस पर्याय रूप से उत्पन्न होता हुआ, एक क्षण पश्चात् उसी पर्याय रूप से विनष्ट होता हुआ और एक क्षण के लिये उसी पर्याय रूप से ध्रुव टिका रहता हुआ दिखाई देता है। अत द्रव्य व पर्याय दोनो ही सत् है, दोनो के सत् मे एक ही लक्षण घटित होता है।

द्रव्य का सत् तो सम्पूर्ण पर्यायो मे अनुस्यूत रहने के कारण शुद्ध कहा जाता है परन्तु पर्याय का एक क्षण मात्र को ही दर्शन देकर विलुप्त हो जाने के कारण अशुद्ध कहा जाता है। जिस प्रकार त्रिकाली सत् द्रव्य का स्वभाव है उसी प्रकार क्षणिक सत् पर्याय का स्वभाव है। यह क्षणिक सत् ही इस नय का विषय है अर्थात एक पृथक पर्याय मे उत्पादव्यय और ध्रुव ये तीनो दर्शाना ही स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय का लक्षण है। इसी का दूसरा नाम

सद्भाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक भी है। सर्व ही द्रव्यो मे इसे लागू किया जा सकता है। आग पर रखे ओदन कुछ पक रहे है और कुछ पक चुके है' ऐसा कहना इसका उदाहरण है। इसीकी पुष्टि व अभ्यास के लिये निम्न उद्धरण देखिये।

१ वृ.न. च।२०३ "यो गृह्णात्येकसमये उत्पादव्ययध्रुवत्व सयुक्तम् स सद्भावानित्योऽशुद्ध पर्यायार्थिक नय।२०३।

अर्थ—जो एक समय मे ही वस्तु को उत्पादव्यय ध्रुवत्व तीनो से युक्त ग्रहण करता है, वह सद्भाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

२ आ.प।८।पृ ७४ "सत्तासापेक्षस्वभावो ऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा एकस्मिन्समये त्रयात्मक. पर्याय.।"

अर्थ— सत्ता सापेक्ष स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक को ऐसा जानो जैसा कि पर्याय एक समय मे ही उत्पाद व्यय ध्रुव रूप त्रयात्मक है ऐसा कहना।

३. नय चक्र गद्य पृ ६ स्वभावाऽनित्यकोऽशुद्ध पर्यायार्थो भवेदल ध्रौव्योत्पत्ति व्ययाधीन द्रव्य स्वीकुरुतेऽध्रुव।४।"

अर्थ—स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक उत्पत्ति व्यय व ध्रुव इन तीनों के आधीन रहने वाले द्रव्य को अध्रुव स्वीकार करता है।

द्रव्य के त्रिकाली सत् की भाति ही पर्याय का यह क्षणिक सत् अनित्य है। क्षणिक कारण ही अशुद्ध है। पर्याय रूप होने के कारण पर्यायार्थिक का विषय है। अन्य निमित्त कारणो की अपेक्षा नही

रखता इसलिए स्वभाव है । अतः स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय ऐसा नाम सार्थक है । यह इसका कारण है । प्रत्येक पर्याय का जुदा भी सत् देखा जा सकता है, यह बताना इसका प्रयोजन है ।

स्वभाव अनित्य शुद्ध व स्वभाव अनित्य अशुद्ध में क्या अंतर है, यह आगे शंका समाधान मे बताया जाएगा ।

५. विभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नयः--

विभाव भी और शुद्ध भी, इन दोनों का मेल कैसा ? विभाव तो सर्वथा अशुद्ध ही होता है ? ऐसा नही है भाई ! दृष्टि की विचित्रता है । विभाव मे मे भी कथञ्चित शुद्धता देखी जा सकती है । यद्यपि रसात्मक भाव को ग्रहण करने पर तो वह अशुद्ध ही प्रतीत होगी परन्तु पर्याय का सामान्य एक अनित्य स्वभाव ग्रहण करने पर उसमे शुद्ध व अशुद्ध के विशेपण की कोई आवश्यकता नही रह जाती । शुद्ध शब्द का दो अर्थों मे प्रयोग होता है--अशुद्धता को टालकर शुद्धता का व्यक्त होना पहिली शुद्धता है, और वस्तु का सामान्य स्वभाव शुद्ध व अशुद्ध दोनो से निरपेक्ष दूसरी शुद्धता है । सो यहां पहिली शुद्धता से नही बल्कि दूसरी से प्रयोजन है । सो कैसे वही दर्शाता हू ।

पर्याय शुद्ध हो या अशुद्ध, क्षायिक हो या औदयिक है तो पर्याय ही, है तो क्षणिक ही, है तो उत्पाद व्यय स्वरूप ही । पर्याय का पर्यायपना किसमें कम है और किसमें अधिक ? पर्याय तो उत्पन्न ध्वन्सी भाव को कहते है । सो हर पर्याय ही उत्पन्न ध्वंसी है । अतः पर्याय के इस उत्पन्न ध्वसी सामान्य स्वभाव की अपेक्षा क्षायिक व औदयिक दोनों ही पर्यायें समान हैं, शुद्ध व अशुध्दता की कल्पना से निरपेक्ष शुध्द है ।

इस दृष्टि से देखने पर ससारी व सिध्द दोनों ही दशाओ मे जो कोई भी पर्याय लब्ध होती है वह शुध्द ही है। फिर भी दोनो मे कुछ विवेक उत्पन्न कराने के लिये या लक्ष्य लक्षण भाव दर्शाने के क लिए विभाव विशेषण लगा दिया है । जिसका यह तात्पर्य है कि इस दृष्टि से देखने पर संसारी जीवो को पर्याय भी जो कि विभाव कहलाती है, सिध्दों की पर्यायो वत् ही शुध्द है । यहा संसारियो की विभाव पर्याय लक्ष्य है और सिध्दो की पर्याय की शुध्दता लक्षण है।

अव इसी लक्षण की पुष्टि के अर्थ कुछ आगम कथित उध्दरण देखिये ।

१ वृ न.च ।२०४ "देहिना पर्यायान् शुध्दान् सिध्दाना भणति सदृशान् । य. सोऽनित्य शुध्द· पर्यायग्राही भवेत्स नयः २०४ ।"

अर्थ— ससारी जीवो की पर्यायो को अर्थात विभाव पर्यायों को जो सिध्दो की शुध्द पर्यायो के सदृश कहता है वह अनित्य शुध्द पर्यायग्राही नय है ।

२. आ प ।८।पृ ७४ "कर्मोपाधिनिरपेक्ष स्वभावोऽनित्य शुध्द पर्यायार्थिको यथा सिध्द पर्यायसदृशा. शुध्दा संसारिणा पर्याया ।"

अर्थ— कर्मोपाधि निरपेक्ष स्वभाव अनित्य शुध्द पर्यायार्थिक नय को ऐसा जानना जैसे कि सिध्द पर्याय के सदृश ही ससारियो की भी पर्याय शुध्द ही होती है ऐसा कहना ।

३.नय चक्र गद्य ।पृ ६ "विभावेऽनित्य शुध्दोऽयं पर्यायार्थो भवेदल संसारी जीवनिकायेषु सिध्दसदृशपर्यय. ।५।

अर्थ:- विभाव अनित्य अशुध्द यह पर्यायार्थिक नय ऐसा होता है, जैसे कि संसारी जीवों मे भी सिध्दों के सदृश ही पर्याय का होना ।

ससारी जीवों को लक्ष्य वनाकर लक्षण किया जा रहा है, इस-लिये विभाव विशेपण लगाया । पर्याय ग्राही होने के कारण अनित्य तथा पर्यायार्थिक है । तथा शुध्दता व अशुध्दता से निरपेक्ष सामान्य पर्यायपने को ग्रहण करने के कारण शुध्द है । अतः इसका विभाव अनित्य शुध्द पर्यायार्थिक नय ऐसा नाम सार्थक है । यह तो इस नय का कारण है । और शुध्द व अशुध्द दोनो द्रव्यो मे पर्याय के क्षणिक-पने की अपेक्षा समानता को दर्शाना इसका प्रयोजन है ।

६ विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय —

जीव या पुद्‌गल का औदयिक भाव विभाव भाव कहलाता है । वह औदयिक भाव या तो सादि सान्त होता है या अनादि सान्त इस लिये वह अनित्य ही होता है । कर्मोपाधि के निमित्त से ही उत्पन्न होता है इसलिये अशुद्ध कहा जाता है । ऐसी विभाव अनित्य पर्याय को ग्रहण करने वाले नय को विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते है । चारों गति के जीव तथा पुद्‌गल स्कन्ध अशुद्ध द्रव्य हैं । उनकी व्यञ्जन व अर्थ सर्व पर्यायें अशुद्ध व विभाव रूप होती हैं । क्योकि वे दूसरे के सयोग की अपेक्षा रखती है । अतः यह नय इन दोनो प्रकार की अशुद्ध पर्यायों को लक्ष्य करता है ।

इस प्रकार की अशुद्ध पर्याये जीव व पुद्‌गल दोनों मे सम्भव है । जीव के औदयिक भाव का परिचय पहिले दे दिया जा चुका है । उसकी वे रागादि रूप पर्याये ही अशुद्ध है । पुद्‌गल स्कन्ध पुद्‌गल की विभाव अनित्य अशुद्ध पर्याय है । इस पर्याय को विषय करने वाला नय विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ अब आगम कथित उद्धरण देखिये ।

१ वृ न च।२०५ "भगत्यशुद्धाँश्चतुर्गतिजीवाना पर्यायान्यो हि । भवति विभावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिक नय ।२०५।"

अर्थ — चतुर्गति के जीवो की अशुद्ध देव नारक आदि या अन्य स्थूल व्यञ्जन पर्यायो को ग्रहण करने वाले नय को विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते है ।

२ आ.प।८।पृ ७५ "कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा ससारिणामुत्पत्ति मरणेस्तः ।"

अर्थ —कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव अर्थात विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय ससारी जीवो के जन्म मरण से प्रकट होने वाली पर्यायो को अर्थात स्थूल व्यञ्जन पर्यायो को ग्रहण करता है ।

३ नय चक्र गद्य। प ६ "विभावो ऽनित्याशुद्धोन्य: पर्यायार्थो गदेत्पर देवादीना च पर्यायमनित्याशुद्धक यथा ।६।"

अर्थ — विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय उस शुध्द पर्यायार्थिक से अन्य है । देवादिकों की पर्याये अनित्य व अशुध्द है ऐसा यह नय बताता है ।

स्वभाव से विपरीत होने के कारण अर्थात ससारियो के या पुद्गल स्कन्धो के औदयिक भाव रूप होने के कारण विभाव है । सादि सान्त होने के कारण अथवा पर्याय होने के कारण अनित्य है ।

कर्मोपाधि सापेक्ष होने के कारण अथवा अनुभवात्मक विभाव रस स्वरूप होने के कारण अशुद्ध है। अतः इसका विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय ऐसा नाम सार्थक है। यह इसका कारण है। जीव व पुद्गल के दृष्ट व औदयिक भावों का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

५ पर्यायार्थिक नय समन्वय — यहा तक पर्यायार्थिक नय के लक्षणादि दर्शाये गये, अब कुछ शकाओ का समाधान कर देना योग्य है।

१ **प्रश्नः**—उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक मे क्या अन्तर है ?

उत्तरः—द्रव्यार्थिक मे तो उत्पाद व्यय विशिष्ट वस्तु की त्रिकाली ध्रुव सत्ता का ग्रहण मुख्य है और उसका परिणमन गौण है, तथा पर्यायार्थिक मे उस त्रिकाली ध्रुव सत्ता से निरपेक्ष वस्तु का त्रिकाली परिणमनशील स्वभाव मुख्य है।

२ **प्रश्न**—उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय व स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—द्रव्यार्थिक मे उत्पाद व्यय से विशिष्ट त्रिकाल सत्ता प्रधान है और उसका परिणमन गौण है, तथा पर्यायार्थिक मे उत्पाद व्यय से विशिष्ट एक पर्याय की क्षणिक सत्ता प्रधान है। अर्थात द्रव्यार्थिक तो त्रिकाल वस्तु को उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त कहता है और पर्यायार्थिक एक समय की पर्याय को कथञ्चित उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त कहता है।

३ **प्रश्न**—स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय व स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय तो वस्तु सामान्य के त्रिकाली परिणमन स्वभाव को दर्शाता है, जिस की धारा कि एक क्षण को भी कभी भग होने नही पाती, और स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय उस वस्तु की किसी एक क्षणिक पर्याय के परिणमन स्वभाव को दर्शाता है। अनादि से अनन्त काल तक प्रतिक्षण वस्तु मे पर्यायो का उत्पाद व्यय होते रहना तो उसका परिणमन स्वभाव है, और एक पृथक पर्याय का उत्पाद, उसी की एक समय स्थिति और तत्पश्चात उसी का व्यय यह पर्याय का परिणमन स्वभाव है ।

४ **प्रश्न**—त्रिकाली स्वभाव को ग्रहण करने के कारण स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायाथिक का अन्तर्भाव द्रव्यार्थिक मे हो जायेगा ?

उत्तर—नही, क्योकि पर्यायार्थिक का विपय वस्तु की पर्यायो का निरन्तर पना है, कोई एक सामान्य तत्व नही, तथा इसके विपरीत द्रव्यार्थिक नय का विषय उस पर्याय सन्तति मे अनुस्यूत एक सामान्य तत्व है, वे पर्यायें नही । उदाहरणार्थ एक माला लीजिये, जिसमे अनेक मोतियो की पक्ति एक डोरे मे पिरो कर एक बनादी गई है । तहा माला तो द्रव्य है, मोतियो की पक्ति उसकी त्रिकाल पर्याय सतति है, और डोरा उन पर्यायो मे अनुस्यूत सामान्य तत्व है । पर्यायार्थिक का विषय यहा मोतियो की पक्ति है और द्रव्यार्थिक का विषय उन मोतियो की

पंक्ति है और द्रव्यार्थिक का विषय उन मोतियों की पक्ति से विशिष्ट डोरा यही दोनों मे अन्तर है ।

५ **प्रश्न**—अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय सामान्य व पर्यायार्थिक नय सामान्य मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—द्रव्यार्थिक वस्तु के सामान्याश को ग्रहण करता है और पर्यायार्थिक विशेषाश को । भले ही अशुद्ध द्रव्यार्थिक मे अनेको विशेषो से विशिष्ट सामान्य का ग्रहण किया गया है, पर वहा सदा सामान्य ही प्रधान रहता है, विशेष नही । तथा पर्यायार्थिक मे विशेष से अतिरिक्त सामान्य अवस्तुभूत है, अत: तहा विशेष ही सर्वदा प्रधान है ।

उदाहरणार्थ अशुद्ध द्रव्यार्थिक की द्वैत दृष्टि में तो 'यह गुण या पर्याय इस द्रव्य की है' ऐसा भेद आ सकता है, परन्तु पर्यायार्थिक मे इसको अवकाश नही क्योकि उसकी सर्वथा एकत्व दृष्टि मे केवल क्षणिक पर्याय ही सत् है, जिस मे अन्य कोई विशेष दिखाई देता ही नही । सामान्य मे तो विशेष होता है पर विशेष मे अन्य नही होता, इसलिये सामान्य मे तो 'यह विशेष इस सामान्य का है' ऐसा कहा जा सकता है, परन्तु विशेष मे जब अन्य कुछ है ही नही तो कौन को किसका कहे । अत: पर्यायार्थिक मे द्वैत सम्भव नही । जब कि अशुद्ध द्रव्यार्थिक मे वह स्पष्ट है । यही दोनो मे अन्तर है ।

दूसरे प्रकार से कहे तो यो कह सकते है कि जिसमे वहीपने की प्रतीति होती रहे वह द्रव्यार्थिक

नय है, जैसे 'यह भील उन्ही भगवान वीर का जीव है, जो आज सिद्धालय मे विराजित है, ऐसा कहना द्रव्यार्थिक नय का विषय है, क्योकि इसमे पूर्वोत्तर पर्यायों का परस्पर मे सम्बन्ध देखा जाता है। तथा 'भगवान वीर तो भगवान ही है, कौन कहता है कि वह भील है या भील थे' ऐसा कहना पर्यायार्थिक नय का विषय है, क्योकि भगवान की वर्तमान पर्याय को ही सत् रूप से देखते हुए, पूर्वोत्तर पर्यायों के सम्बन्ध का निरास किया जा रहा है। यही दोनो मे अन्तर है।

६. **प्रश्न**—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक नयों व प्रमाण के विषयो को दृष्टान्त द्वारा कुछ स्पष्ट करे ?

उत्तर—यद्यपि निर्विकल्प होने के कारण प्रमाण ज्ञान का कोई उदाहरण नही हो सकता परन्तु स्थूलरूपेन एक दृष्टान्त देता हू, जिस पर से इन तीनो के अन्तर का कुछ आभास हो सकता है।

देखो कल्पना करो कि एक दिन अजायबघर (Museum) देखने गये। हाल के द्वार मे प्रवेश करते ही आपने वहा पर फैली सर्व वस्तुओ को सामान्य रूप से एक ही दृष्टि मे देखा। एक सामान्य सा चित्रण आपके हृदय पट पर अंकित हो गया, पर उन्हे 'पृथक पृथक तथा कहा कहा क्या क्या रखा है' ऐसी विशेषता न जान सके, और सहसा ही कह उठे कि यहा तो बहुत कुछ देखने को है। पर क्या है, ऐसा देखने की इच्छा है।

अब आप हाल मे एक सिरे से घूमकर नम्बर वार एक एक वस्तु को पृथक पृथक देखने लगे। और इस प्रकार

दो घण्टे तक देख चुकने के पश्चात् जब उसी द्वार पर पुन. लौट आये तो द्वार से बाहर निकलते हुए आप सन्तुष्ट थे, और कह रहे थे कि यहा तो बड़ी चित्र विचित्र वस्तुओ का सग्रह है, तथा वह सग्रह भी बड़ी सुन्दरता से यथा स्थान सजाया हुआ है।

उपरोक्त दृष्टान्त मे एक ही विचित्र गृह को देखने मे आपके ज्ञान को तीन परिस्थितियों मे से गुजरना पड़ा। पहिली परिस्थिति द्वार मे प्रवेश करते समय की है, दूसरी स्थिति हाल मे घूमते समय की है, और तीसरी स्थिति द्वार से बाहर निकलते समय की है, पहली स्थिति मे विशेषताओं से रहित केवल एक सामान्य का ग्रहण है। "यहां तो बहुत कुछ है" केवल इस प्रकार का एक सामान्य स्वीकार है। यहा स्थिति विशेष गौण और सामान्य प्रकार की है।

दूसरी स्थिति मे पृथक पृथक एक एक विशेष वस्तु का ग्रहण है, पर सामान्य का स्वीकार मात्र है। अर्थात ऐसा सा प्रतीति मे आ रहा है कि यह उस सामान्य का ही एक अग है। ऐसा होता हुए भी यहाँ द्वैत रूप विचारण, (अर्थात इसमे यह है ऐसी विचारणा) का अभाव है जो कुछ उस समय देख रहे हो बस उसी के साथ एकत्व को प्राप्त हो गये हो, उस समय दूसरा कुछ भी जानन का विकल्प नही। यह है सामान्य गौण विशेष मुख्य की स्थिति।

तीसरी स्थिति मे सामान्य व विशेष दोनो का एक साथ ग्रहण हो रहा है। कुछ और देखने की इच्छा

शमन हो चुकी है; यह सामान्य व विशेष दोनों के युगपत ग्रहण की अद्वैत स्थिति है। इसे आप स्वय कह कर बता नही सकते, अत· सर्वथा अवक्तव्य है। यद्यपि यह तीसरी स्थिति पहली स्थिति से कुछ मिलती सी प्रतीति होती है, पर इनमें बडा अन्तर है, जो जाना सकता है पर कहा नही जा सकता।

बस पहिली स्थिति का ज्ञान द्रव्यार्थिक नय का ज्ञान है, दूसरी स्थिति का ज्ञान पर्यायार्थिक नय का ज्ञान है और तीसरी स्थिति का ज्ञान द्रव्यार्थिक व पर्याया-र्थिक दोनो के युगपत ग्रहण रूप प्रमाण ज्ञान है। इस प्रकार यद्यपि प्रमाण ज्ञान द्रव्यार्थिक सरीखा सा दीखता है पर इन मे महान अन्तर है।

इसी प्रकार अध्यात्म प्रकरण मे—मनुष्य, मुनि व अर्हंत इन तीन अवस्थायो मे रहने वाला एक मनुष्य सर्व साधारण जन की दृष्टि मे एक मनुष्य मात्र है। गृहस्थावस्था मे उसके साथ व्यवहारिक सम्बन्ध रखने वाले की दृष्टि मे उसकी मनुष्य रूप सत्ता उस ही समय तक थी। मुनि हो गया तो उससे कुछ नाता न रहा और इसलिये उस की दृष्टि मे वह अब लोक में ही रहा नही। इसी प्रकार आहार दान करने वाले गुरु भक्त की दृष्टि मे 'वह पहिले गृहस्थ था' यह आता नही, तथा 'अर्हंत होगा' यह भी उसे भान नही। समवशरण मे बैठे व्यक्ति की दृष्टि मे वह अर्हन्त ही है। परन्तु उस मनुष्य की दृष्टि मे जो कि जन्म से निर्वाण पर्यन्त उस के साथ रहा, वह अकेला

ही तीन रूप तथा तीन रूपों वाला वह अकेला एक विशेष मनुष्य है ।

इस प्रकार एक ही मनुष्य को अनेको रूप से देखा गया । मुनि आदि रूप अवस्थाओं के बहुमान रहित केवल मनुष्य सामान्य का ग्रहण द्रव्यार्थिक नय रूप समझो, पृथक पृथक गृहस्थ, मुनि व अर्हन्त रूप से उसका ग्रहण पर्यायार्थिक नय रूप समझो, और तीनो अवस्थाओ में ओत प्रोत उसका अद्वैत रूप से ग्रहण प्रमाण का विषय समझो ।

इनमे से पहिला विशेष गौण सामान्य का ग्रहण है, दूसरा सामान्य गौण विशेपों का ग्रहण है और तीसरा सामान्य विशेष का युगपत ग्रहण है। यही तीनो मे अन्तर है । पहिला ग्रहण द्रव्यार्थिक नय रूप है और दूसरा ग्रहण पर्यायार्थिक रूप है और तीसरा ग्रहण प्रमाण रूप है ।

७. **प्रश्न**--इसी द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक व प्रमाण की परस्पर मैत्री को किसी आगम विषय पर लागू करके दिखाइये ?

उत्तर—बहुत सुन्दर वात है । देखो कार्य व्यवस्था सम्वन्धी वात जो शान्ति पथ प्रदर्शन के अन्तर्गत सवेरे को चलती है, उसमे पाच समवाय वताये गये—स्वभाव, निमित्त, पुरुषार्थ, नियति व भवितव्य । इनको निम्न प्रकार से नयो मे गर्भित किया जा सकता है ।

स्वभाव के अन्तर्गत वहा बताया है कि वस्तु परिवर्तन शील है । अत. स्वभाव को यहां उत्पाद व्यय

सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय कहना होगा इस नय की अपेक्षा वस्तु उत्पन्न ध्वसी है ।

पुरूषार्थ वस्तु का क्षण क्षण नया नया प्रयत्न विशेष है । सो पर्यायार्थिक का विषय है । इस नय की अपेक्षा जो पुरुषार्थ अब है वह अगले क्षण मे नही है ।

भवितव्य पुरुषार्थ का फल है अर्थात वस्तु की प्रत्येक क्षण का नया नया कार्य या पर्याय है अत. यह भी पर्यायार्थिक नय का विषय है, क्योकि, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा वस्तु अब कुछ और पर्याय वाली है और अगले क्षण किसी और पर्याय वाली है ।

नियति मे तीनो काल की सम्पूर्ण पर्यायों का यथा स्थान जड़ित एक अखण्ड रूप ग्रहण किया गया है, जो टकोत्कीर्ण वत निश्चित है, आगे पीछे नही किया जा सकता है, केवल साक्षी भाव मात्र से देखा जा सकता है । इसे भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय कहना होगा, क्योकि इस नय की अपेक्षा वस्तु त्रिकाली पर्यायो की विचित्रताओं से तन्मय दीखती है ।

निमित्त को यहां स्वीकार नही किया जा सकता, क्योंकि वह सयोग है । यहा आगम पद्धति मे वस्तु का निज वैभव मात्र ही दर्शाना अभीष्ट है । अत यहा तो उसका निषेध ही किया जाता है, जिसका ग्रहण परचुष्टय विच्छेदक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय करता है । हा अध्यात्म पद्धति के अन्तर्गत अवश्य उसका ग्रहण कर लिया गया है । वहा उसे विषय करने वाला नय का नाम असद्भूत व्यवहार है, क्योकि, उस नय की दृष्टि से एक द्रव्य अन्य के कार्य मे सहायक होता है ।

इस प्रकार इन पाचो मे कोई अग द्रव्यार्थिक का विषय है और कोई पर्यायार्थिक का। इनमे से एक नय के विषय को भी निकाल ले तो शेष चार से कार्य व्यवस्था की सिद्धि होती नही, इसी कारण पॉचो अंग परस्पर मिल कर रहे तो सम्यक है और किसी एक का भी निषेध करके रहे तो मिथ्या है। इनका परस्पर सम्मेल कैसे है सो कहा नही जा सकता पर जाना जा सकता है। "शान्तिपथ प्रदर्शन" नाम ग्रन्थ मे इस विषय का काफी विस्तार दिया है। वस्तु को व्यवह्रियतेति निक्षेप:। व्यवहार, तीन प्रकार, शब्द ज्ञान व अर्थ। अर्थ दो प्रकार भवर्तमान व वर्तमान। शब्द व्यवहार चार प्रकार होता है। अतत्दुगुणे, अतद्राकारे, अदकाले तद्गुणे, तदाकारे तदाकाले।

८. **प्रश्न**—नयों के पृथक पृथक ग्रहण मे सम्यक् व मिथ्यापनना दर्शाओ ?

उत्तर—जिसने अखण्ड द्रव्य का परिचय पा लिया, अर्थात जिसका परिपूर्ण वस्तु सम्बन्धी सागोपाग प्रमाण ज्ञान विद्यमान है, ऐसे ज्ञानी के लिये तो केवल सामान्य का ग्रहण अथवा केवल एक पर्याय मात्र का ग्रहण भी सम्यक् है, क्योकि भले ही उस समय की विचारणा रूप उपयोग मे न सही पर ज्ञान कोष मे लब्ध रूप से अन्य विशेष तथा आश्रयभूत ध्रुव सत्ता भी उसी समय पडी रहती है। परन्तु उसके सागोपाग ज्ञान से शून्य अज्ञानी जन तो सामान्य का ग्रहण करते समय विशेषों का निषेध करने के कारण, और एक एक पर्याय का पृथक पृथक ग्रहण करते समय अन्य पर्यायों का तथा उस सामान्य ध्रुव

सत्ता का निषेध करने के कारण, कोरी कल्पना ही करते है, वस्तु को देख नही सकते । अत. उनका दोनो ही प्रकार का ग्रहण मिथ्या है ।

एक पर्याय का सम्बन्ध जिसे अन्य पर्यायो के साथ दिखाई नही देता, उसकी दृष्टि मे तो पर्याय विनशने पर वस्तु का ही समूल नाश हो गया, अब उसकी सत्ता ही लोक मे न रही । उपजने वाली वस्तु तो कोई और ही है जिसकी सत्ता पहिले किसी रूप मे भी थी ही नही । ऐसी एकान्त मान्यता के कारण उसका सर्व ज्ञान व सर्व कथन मिथ्या है, क्योकि सर्वथा सत् का विनाश और असत् का उत्पाद पाया नही जाता । जैसे मनुष्य सामान्य से रहित युवा अवस्था मात्र का उत्पाद पाया नही जाता ।

कार्य व्यवस्था मे भी इसी प्रकार सम्यक व मिथ्या ग्रहण होना सम्भव है । पाचों अगों का समन्वयात्मक एक अखण्ड रूप ग्रहण करने वाला कोई ज्ञानी तो उसके सम्बन्ध मे जो भी कहे सो सम्यक है। कार्य की निष्पत्ति मे पुरुषार्थ की सफलता कहे या कहे नियति की, स्वभाव की सफलता कहे या कहे निमित्त की, सब सम्यक् है । क्योकि भले ही उस समय की विचारण रूप उपयोग मे या कथन मे एक की सफलता से अतिरिक्त अन्य अगो की सफलता स्थान न पा सके, पर उसके अभिप्राय मे उनका निषेध नही है, कारण कि उसके ज्ञान कोष मे पाचो बाते युगपत पडी है । दूसरी ओर अज्ञानी का वही कहना मिथ्या है, क्योकि पुरुषार्थ की सफलता मे वह नियति का कोई स्थान नही देखता और नियति की सफलता मे पुरुषार्थ को कुछ नही समझता। इसी

प्रकार स्वभाव की सफलता मे निमित्त का और निमित्त की सफलता मे स्वभाव को वह कोई मूल्य नही गिनता। कारण कि जिस अंग को वह वर्तमान मे कह रहा है, उसके ज्ञान मे उतना ही स्वीकार है, इसके अतिरिक्त अन्य अगों का नही।

अत: भाई! ज्ञान को व्यापक बना कर सर्व ही अगी या वस्तु के विशेषों को यथा योग्य रूप मे जान कर, उस वस्तु का एक अखण्ड चित्रण ज्ञान पट पर बनाने का प्रयत्न कर, जिसके होने पर कि तू प्रत्येक बात का ठीक ठीक रहस्य समझने व समझाने मे सफल हो सके। यही है अनेकान्त वाद का महात्म्य।

अध्यात्म पद्धति

१८

निश्चय नय

१. अध्यात्म पद्धति परिचय, २. अध्यात्म नयों के भेद प्रभेद, ३. निश्चय नय सामान्य का लक्षण, ४. निश्चय नय सामान्य के कारण व प्रयोजन, ५. निश्चय नय के भेद प्रभेद, ६. नय का लक्षण, ७. शुद्ध निश्चय नय के कारण व प्रयोजन, ८. एक देश शुद्ध निश्चय नय का लक्षण, ९. एक देश शुद्ध निश्चय नय के कारण व प्रयोजन, १०. अशुद्ध निश्चय नय का लक्षण, ११. अशुद्ध निश्चय नय के कारण व प्रयोजन; १२. निश्चय नय सम्बन्धी शंका समाधान ।

१. अध्यात्म पद्धति 'परिचय

जैसा की पहिले बताया गया है, नयो की स्थापना दो दृष्टियों या पद्धति से की गई है—आगम पद्धति से और आध्यात्म पद्धति से । वस्तु

सामान्य का तथा उसके अनेकों अगोपागो का, उनके भेद का, व अभेद का शुद्धता का व अशुद्धता का इत्यादि परिचय मात्र देना आगम पद्धति का काम है, और जीव या आत्म पदार्थ का परिचय देकर उसमे हेयोपादेय बुद्धि जागृत कराना आध्यात्म पद्धति का काम है । आगम पद्धति के अन्तर्गत नय के अनेको भेद प्रभेदो का विस्तृत कथन हुआ, अव अध्यात्म पद्धति सम्बन्धी नयों का कथन सुनिये ।

वस्तु को जान लेना मात्र पर्याप्त नहीं है, वल्कि साथ मे यह भी जनना आवश्यक है कि यह मेरे लिये लाभदायक है कि हानि कारक, हेय है कि उपादेय । हेयोपादेयता के विवेक बिना केवल जानना तो ज्ञान का भार मात्र है. जिस प्रकार कि सर्प को, "यह सर्प है, विषैला होता है इत्यादि" जानकर भी यदि यह न जाना जाये कि "जीवन का घातक है अत· हेय है," तो वह जानकारी किस काम आयेगी । तव तो सर्प से अपनी रक्षा की जानी सम्भव न हो सकेगी । जानने का प्रयोजन तो दु·खो से बचना व सुख पूर्वक जीवन विताना है । इस प्रयोजन कि सिद्धि के बिना जानना किस काम का, अत वह जानना ही कहा नही जा सकता । इसी कारण प्रत्येक नय के साथ उसका प्रयोजन बताया गया । वहा तो प्रयोजन का सम्बन्ध केवल जानने से है और यहा ग्रहण व त्याग द्वारा दु.ख निवृत व सुख प्राप्ति से है ।

शान्ति प्राप्ति ही जीवन का एक मात्र प्रयोजन है अत. हमे वस्तु को इसी दृष्टि से जानना चाहिये, केवल जानने मात्र के लिये नही । अध्यात्म इस दृष्टि की पूर्ति करता है । वह हमे दुख: के कारणो से हटाकर सुख के कारणो का परिचय देता है । शान्ति या अशान्ति दोनो का सम्बन्ध अन्तरङ्ग की विचारणाओ से है । विचारणाओ का आधार ज्ञान है और ज्ञान का आधार ज्ञेय या

वस्तु है । अत वस्तु के सारे अगो का परिचय पा लेने के पश्चात वह जानना भी आवश्यक है कि इन सर्व अगो में से कौन से अंग ऐसे है जिनका विचारना शान्ति के लिये बाधक है ।

जानी तो बहुत बाते जाती है, पर सबको उपकारी नही माना जाता। कुछ बाते त्यागने के लिये जानी जाती है और कुछ अपनाने के लिये । विप को भी जाना जाता है पर त्यागने के लिये और अमृत को भी जाना जाता है पर ग्रहण करने के लिये । शत्रु को भी जाना जाता है पर उससे बचने के लिये और मित्र को भी जाना जाता है। पर उसके साथ हसने बोलने के लिये। हिसा को भी जाना जाता है पर अहितकारी व अकर्तव्य समझने के लिये और अहिसा को भी जाना जाता है पर हितकारी व कर्तव्य समझने के लिये । आगम पद्धति ने हम को वस्तु भूत अगो का परिचय तो दे दिया परन्तु यह नही बताया कि इन मे से कौन से अग त्याज्य है अर्थात विचारणा के विपय बनाने योग्य नही है और कौन से ग्राह्य है अर्थात विचारणा के विपय बनाने योग्य है । कौन से अंगों की विचारणा शान्ति की बाधक है और कौन से अंगो की विचारणा शान्ति की साधक है । कौन से अगो का ज्ञान उन से बचने के लिये है और कौन से अंगों का ज्ञान विचारणा में अवकाश पाने के लिये है । कौन से अंग अकर्तव्य भूत है और कौन से कर्तव्य भूत है इत्यादि ।

अध्यात्म पद्धति, आगम पद्धति के ज्ञान की इस कमी को पूरा करती है । इसका स्वतत्र विषय नही है क्योकि ऐसा कोई विपय ही शेष नही रहा जिसका परिचय की आगम पद्धति ने न दिया हो । द्रव्य का, गुण का व पर्याय का, द्रव्य की जातियों का, गुण की जातियो का, पर्यायो की जातियो का, नित्यता का व अनित्यता का, वस्तु के स्व व पर चतुष्टय का, शुद्धता का व अशुद्धता का इत्यादि सर्व ही बातो का अनेक पडखो से परिचय वह दे चुकी है । अब

उन ही जानी हुई बातो मे हेय व उपादेय का, इष्ट का व अनिष्ट का, कर्तव्य का व अकर्तव्य का विवेक करना ही शेष है, वही काम अध्यात्म पद्धति करती है। अत. इसका विषय भी आगम पद्धति वाला ही है। अन्तर दोनो के कारण व प्रयोजनो मे है जैसा कि आगे प्रकरण वश दर्शाया जायेगा। प्रयोजन भेद के कारण उन की नयो के नामो मे भी भेद है पर विषय भेद नही है।

इसलिये यहा यह अवश्य जान लेना चाहिये कि चर्चा मात्र का विषय बनाने वालो के लिये अध्यात्म पद्धति की नय नही है बल्कि जीवन मे उतारने वालों के लिये है। चर्चा मात्र की रूचि वालो के लिये तो आगम नय है। अध्यात्म नय को चर्चा का विषय बनाना कदाचित जीवन के लिये अहितकारी हो जाता है। क्योंकि विचारणाओ मे परिवर्तन करने का प्रयत्न किये बिना उनके आधार पर बाह्य मे ही कुछ परिवर्तन करके स्वच्छन्द का पोषण करने लगता है। जैसे कि व्यवहार को हेय बताने का प्रयोजन तो यहा विचारणाओं मे उसका आश्रय छुडाना है, परन्तु साधारणत' ऐसा नही होता। लौकिक दिशा की २४ घण्टे को नित्य उठने वाली विचारणाये तो जू की तू बनी रहती हैं, हा धर्म सम्बन्धी कुछ बाह्य क्रियाओं को हेय मानकर अवश्य छोड बैठता है। इससे तो लाभ की बजाय हानि हो गई। निश्चय को उपादेय बताने का प्रयोजन पर पदार्थो से लक्ष्य हटाकर स्व पर लगाने का है। दूसरे के दोषो व कर्तव्य अकर्तव्यो को न देखकर अपने दोष व कर्तव्य एव अकर्तव्यों को देखना है। परन्तु ऐसा तो नही हो रहा है। चर्चा प्रेम बन्धु इसके आधार पर दूसरो के ही दोष ढूढ कर उन से द्वेष करने लगते हैं। दूसरो पर आक्षेप, कटाक्ष व व्यंग करने लगते है, सो तो प्रयोजन नही है। अपने दोष देखकर उन्हे दूर करने का प्रयोजन है। उसकी सिद्धि के बिना निश्चय नय का ज्ञान तो साधक की बजाये बाधक बन बैठा है।

'निश्चय नय से ठीक है, व्यवहार नय से ठीक नही है, निश्चय नय से यह बात गलत है, व्यवहार से तो करने योग्य है ही है, इत्यदि'

यह चर्चा केवल नाम मात्र की चर्चा है। इसे आध्यात्म पद्धति का ज्ञान नही कहते। वल्कि, "यह व्यवहारिक अग वस्तु मे अवश्य सत्य है, पर तेरी विचारणाओ मे इनके द्वारा क्योंकि रागादि उत्पन्न हो रहे है, अत इनको वर्तमान की इस निकृष्ट दशा मे विचारणाओ मे अवकाश मत दे, तथा निश्चय भूत अंग ही क्योकि विचारणा का विषय बनकर रागादि के परिहार का कारण वनते है अत उन ही को वर्तमान विचारणाओ मे अवकाश दे' इस प्रकार की चर्चा स्वय अपने साथ करके, व्यवहारिक अंगो पर से विचारणाओं को हटाने तथा निश्चय अगो पर उन्हे केन्द्रित करने का प्रयत्न करना ही अध्यात्म पद्धति की चर्चा है।

वस्तु में तो सारे ही अग अपने अपने स्थान पर यथा योग्य रूप से सच्चे है, इसलिये वहां अर्थात वस्तु के उन अगों मे से किन्ही को सत्यार्थ व किन्ही को असत्यार्थ बताना प्रयोजनीय नही और नही ऐसा हो सकता है, क्योकि वस्तु मे से किसी भी अग का अभाव किया जाना असम्भव है। तथा उन सर्व प्रकार इसी अगो के ज्ञान मे भी किन्ही अंगो को सत्यार्थ या किन्ही अगो को असत्यार्थ मानना युक्त नही है। ज्ञान तो वस्तु के अनुरूप ही होना चाहिये। अत. आगम पद्धति के आधार पर जाने गये वस्तु के सारे अग तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान के सब विकल्प तो सत्यार्थ ही है, भले वह निश्चय भूत सामान्य अग हो या कि व्यवहार भूत विशेप। ज्ञान शान्ति व अशान्ति मे कारण नही है वल्कि उस ज्ञान सम्बन्धी आचरण रअर्थात चारित्र ही शान्ति व अशान्ति का कारण है। अत अध्यात्म पद्धति मे कराया जाने वाला हेयो पादे-यता का या कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक वस्तु व ज्ञान की सत्यार्थता या असत्यार्थता बताने के लिये नही, बल्कि चारित्र की सत्यार्थता व असत्यार्थता बताने के लिये है। या यो कहिये कि आगम पद्धति का विपय तो वस्तु तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान है चारित्र नही, और अध्यात्म पद्धति का विषय चारित्र है वस्तु या तत्सम्बन्धी ज्ञान नही क्योकि ज्ञान मे हेयोपादेयता नही होती चारित्र मे ही होती है।

चारित्र भी दो प्रकार का है—अन्तरंग चारित्र व बाह्य चारित्र । अन्तरंग चारित्र का विषय तो वह विचारणाये है जो कि ज्ञान मे पडे किन्ही निर्णयों के आधार पर नित्य उठा करती हैं । विचारणा व ज्ञान मे इतना ही अन्तर है कि विचारणा उपयोग स्वरूप है और ज्ञान लब्ध स्वरूप अर्थात ज्ञान तो वह सामान्य जानकारी है जो अन्तरग मे पड़ी रहा करती है और विचारणा वह विकल्प है जो कि उस जानकारी के किसी अंग विशेष के आधार पर उठ उठ कर दबा करती है । जैसे इस समय आप को ज्ञान तो बहुत बातो का है, अपने धन व व्यापार का भी है और इस नगर का भी, विश्व मे प्रगति शील विज्ञान का भी और चन्द्र सूर्य का भी' प्रयोजन भूत का भी है और अप्रयोजन भूत का भी परन्तु विचारणा तो केवल नय ज्ञान प्राप्त करने की है । यहां से उठकर जाओगे तब व्यापार सम्बन्धी या भोजन करने सम्बन्धी हो जायेगी । विचारणा बदल जायेगी पर क्या ज्ञान भी बदल जायेगा ? या यों कह लीजिये कि ज्ञान की ही प्रगट अनुभवनीय पर्यायों का नाम विचारणा है । वही अन्तरग चारित्र का विषय है । ज्ञान बाधक नही पर विचारणा बाधक है, जिस प्रकार कि युद्ध का अन्दर मे पड़ा ज्ञान बाधक नही परन्तु "यदि युद्ध हो गया तो क्या होगा, सब विनश जायेगा, कैसे रक्षा करुगा—इत्यादि" इस प्रकार की युद्ध सम्बन्धी वर्तमान विचारणा ही चित्त को अशान्त कर देती है । अत. विचारणा को बाधक बताया जा रहा है । शान्ति की प्राप्ति के लिये यह विवेक उत्पन्न करना चाहिये कि कौनसी विचारणाओ से शान्ति मिलती है और कौनसी से अशान्ति, सो तो अन्तरंग चारित्र का ज्ञान है । और अशान्ति वाली विचारणाओ का परिहार करके शान्ति सम्बन्धी विचारणाये करना उस अन्तरग चारित्र का पालन है । उस अशान्ति सम्बन्धी विचारणाओ मे निमित्त रुप बाह्य पदार्थों का त्याग व शान्ति सम्बन्धी विचारणाओ मे निमित्त रुप बाह्य पदार्थों का ग्रहण सो बाह्यचारित्र है ।

इन दोनो प्रकार के चारित्रो मे से अन्तरङ्ग चारित्र ही प्रधान है, क्योकि वह ही वास्तव मे बाह्य चारित्र का कारण है। अन्तरंङ्ग मे वैराग्य होने पर धारा गया ही बाह्य चारित्र कार्य कारी है। अन्तरङ्ग के वैराग्य का आधार विचारणाये हैं और विचारणाओं का आधार ज्ञान है। ज्ञान मे तो सब कुछ स्वीकार है। प्रश्न उठता है कि क्या विचारणा उस जाने हुए वस्तु स्वरूप जिस किसी भी अग के सम्बन्ध मे कर लेने से काम चल जायेगा ? नही ऐसा नही है। ज्ञान तो प्रमाण है, वह तो अखण्ड है, अखण्ड वस्तु के अनुरूप है, इसलिये वह तो अनेकान्त रूप है। परन्तु विचारणा क्षणिक विकल्प है, वह नय रूप है, एक खण्ड रूप है, पूर्ण वस्तु के अनुरूप नही, इसलिये वह एकान्त है। अनेकान्त जाना जा सकता है पर विचारा नही जा सकता। साधना पूर्ण हो जाने पर तो विचारणा, ज्ञान के साथ घुल मिल कर एक हो जाती है, अत: तब तो यह प्रश्न ही नही हो सकता कि क्या विचारा जाये। वहा तो अखण्ड वस्तु ही मानो विचारणा का विषय बन चुका है। पर साधना की अल्प अवस्था मे ऐसा होना सम्भव नही है। तब कैसे साधना प्रारम्भ करे ?

इसी प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ हमे उस पूर्ण ज्ञान के खण्डो को दो भागों मे विभाजित करना होगा—एक राग प्रवर्धक अग और दूसरे राग प्रशामक अग। वास्तव मे ज्ञान के वे अग तो राग प्रवर्धक है न प्रशामक, मेरे अपने विकल्प ही राग प्रवर्धक या प्रशामक है। अत कारण मे कार्य का उपचार करके यहा उन अगो को राग प्रवर्धक कहा जा रहा है। जिन के आश्रय पर उठने वाली विचारणाये अधिक चचल व पर वस्तु के ग्रहण त्याग रूप होने लगे। और उन अगो को राग प्रशामक कहा जा रहा है जिन के आश्रय पर उठने वाली विचारणाओ की चचलता मद पड़ जाये और वह बाहर से हट कर अन्दर की ओर अधिकाधिक झुकने लगे। बस इन दोनों ही अगो का नाम यहा इस अध्यात्म पद्धति मे व्यवहार व निश्चय नय है।

निश्चय व व्यवहार कोई स्वतत्र नये नही है । पूर्वोक्त आगम पद्धति की सग्रह नय का नाम ही यहा निश्चय नय है और वहा वाली व्यवहार नय का नाम ही यहा व्यवहार नय है । अपने गुण पर्यायो से तन्मय अखण्ड वस्तु के अद्वैत भाव को विषय करने के कारण निश्चय नय की विचारणा निर्विकल्प है अर्थात् उस विचारण के अतिरिक्त अन्य विकल्प को वहा अवकाश नही । अखण्डित एक वस्तु को खण्डित करके अनेको भेदो रूप चित्र विचित्र द्वैत भावों को विषय करने के कारण व्यवहार नय की विचारणा सविकल्प व चचल है । अर्थात उस नय सम्बन्धी विचारणा के अतिरिक्त वहा अच्छे बुरे या मेरे तेरे की कल्पनाओं का प्रवेश स्वत हो जाता है । इसलिये अध्यात्म पद्धति में निश्चय नय राग प्रशामक और व्यवहार नय राग प्रवर्धक माने गए हैं । इन अगो को किस प्रकार जीवन मे अपनाया जाये यह तो इस ग्रन्थ का विपय नही है । हां उन अगो का विषय परिचय देने के लिये, प्रत्येक अग के कितने भेद प्रभेद किये जा सकते हैं और प्रत्येक भेद मे एक दूसरे की अपेक्षा कितना हीन या अधिक हेय व उपादेय पना है, यही बताना यहा अभीष्ट है ।

आगम-पद्धति की भाति यहा भी प्रत्येक नय का स्वरूप समझकर अन्त में उसका कारण व प्रयोजन अवश्य बताया जायेगा, जो विशेष ध्यान देने योग्य है । क्योकि कारणव प्रयोजन पर ध्यान दिये बिना वह हेयोपादेयता का विवेक होना असम्भव है । अत· अध्यात्म नयो का मुख्य अर्थ उस कारण व प्रयोजन मे ही छिपा हैं । उस पर ध्यान न देने के कारण ही यह विषय केवल चर्चा तक ही समाप्त हो कर रह गया है, जीवननोपयोगी बन नही पाया है । अब इन अध्यात्म नयों को पढ़ कर जीवन मे सरलता व साम्यता जागृत करे ऐसी भावना है ।

२ अध्यात्म नयो के भेद प्रभेद

आगम पद्धति की भांति यहाँ भी 'नय' प्रमाण के अंग का नाम है । प्रमाण ज्ञान पूर्ण वस्तु के चित्रण का नाम है । इस चित्रण को यहा भी दो भागों में विभाजित

किया जा सकताहै—सामान्य भाग व विशेष भाग या अभेद चित्रण व भेद चित्रण। उस मे अभेद चित्रण का नाम निश्चय नय है और भेद चित्रण का नाम व्यवहार नय है। अर्थात वहा जिसका नाम शुद्ध द्रव्यार्थिक या सग्रह नय था उसी का नाम वहा निश्चय नय है और जिसका नाम अशुद्ध द्रव्यार्थिक या व्यवहार नय था उसी का नाम यहा व्यवहार नय है। इतना विशेष है कि स्थूल ऋजुसूत्र का विषय भी यहा व्यवहार नय मे गर्भित हो जाता है। अर्थात निश्चय नय तो द्रव्यार्थिक ही है परन्तु व्यवहार नय द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक दोनो है, क्योकि इसमे द्वैत व एकत्व दोनों का ग्रहण करने मे आता है। दोनो के नामो मे ही अन्तर है, पर विषय व लक्षणो मे वस्तु भूत अन्तर नही है। हा उनके उत्तर भेदो के लक्षणो मे अवश्य अन्तर है।

वहा शुद्धता और अशुद्धता का अर्थ था वस्तु की त्रिकाली एकता और उसकी त्रिकाली अनेकता। परन्तु यहाशुद्धता और अशुद्धता का अर्थ है शुद्धपर्याय व अशुद्ध पर्याय। वहा शुद्धता व अशुद्धता का सम्बन्ध ज्ञान की शुद्धता व अशुद्धता से था और यहा पर्यायो की शुद्धता व अशुद्धता से है। वहा अखण्ड ज्ञान को शुद्ध व खण्डित ज्ञान को अशुद्ध या निर्विकल्प ज्ञान को शुद्ध और विकल्पात्मक ज्ञान को अशुद्ध माना जाता था पर, यहा क्षायिक भाव रूप पर्याय को शुद्ध और औदयिक भाव रूप पर्याय को अशुद्ध माना जाता है। वहा ज्ञान की शुद्धता व अशुद्धता (अभेद व भेद) के कारण द्रव्यार्थिक नय के शुद्ध व अशुद्ध दो भेद किये थे और यहा पर्याय विशेषकी शुद्धता व अशुद्धता के कारण नय सामान्य के दो भेद किये गए है। आगम पद्धति मे कोई भी नय सत्यार्थ व असत्यार्थ नही था, क्योकि वे सब के सब वस्तु भूत थे। परन्तु यहा कोई नय सत्यार्थ है ओर कोई असत्यार्थ। वहां व्यवहार नय के द्वैत का आधार वस्तु के अपने अंग थे, पर यहा उसका आधार वस्तु के अंगो के अतिरिक्त पर सयोग भी है।

जैसा कि पहले वताया जा चुका है जीव मे चार प्रमुख भाव है-पारिणामिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक, व औदारिक। बस पृथक

पृथक इन चारों भावो से तन्मय द्रव्य को भी चार कोटियो मे विभाजित किया जा सकता है और उस अभेद द्रव्य को विषय करने वाले निश्चय नय के भी इसलिये चार भेद हो जाते है । परम शुद्ध पारिणामिक भाव ग्राहक परम शुद्ध निश्चय नय, शुद्ध क्षायिक भाव ग्राहक शुद्ध निश्चय नय, क्षयोपशमिक भाव की एक देश शुद्धता ग्राहक एक देश शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध औदायिक भाव ग्राहक अशुद्ध निश्चय नय । यहा सर्वत्र उस भाव के ग्राहक से तात्पर्य उस उस भाव से तन्मय या अभेद द्रव्य सामान्य या द्रव्य पर्याय विशेष ही समझना, वह वह भाव या गुण पर्याय मात्र नही ।

वस्तु मे द्वैत भी दो प्रकार से देखा जा सकता है–एक तो गुण–गुणी व पर्याय–पर्यायी रूप से वस्तु के निज अंगो की पृथक पृथक सत्ता स्वीकार करके उनका स्वामी द्रव्य को बताना अथवा द्रव्य व उन भावो मे लक्ष्य लक्षण तथा विशेष्य विशेषण भाव रूप द्वैत उत्पन्न करना । दूसरे दो पृथक सत्ता धारी द्रव्यो मे बाहर का कुछ निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध देख कर लक्ष्य लक्षण रूप से अथवा कर्ता-कार्य रूप से उनकी अद्वेतता की स्थापना करना ।

द्रव्य के अन्दर रहने वाले गुण व पर्याय आदि अग यद्यपि द्रव्य क्षेत्र, काल भाव रूप स्व चतुष्टय की अपेक्षा अभिन्न है परन्तु सज्ञा सख्या लक्षण व प्रयोजन की अपेक्षा भिन्न हे । जैसे कि गुण की सज्ञा या नाम कुछ और है और द्रव्य की कुछ और, एक द्रव्य मे रहने वाले गुण व पर्याय की सख्या अनेक है ओर द्रव्य की एक; द्रव्य का लक्षण कुछ और है और पर्याय का लक्षण कुछ और; द्रव्य का प्रयोजन त्रिकाली एक रस रूप सत्ता है, और गुण व पर्याय का प्रयोजन खडित व क्षणिक सत्ता है । सर्वथा भिन्न न हुए होते तो भेद डाला जाना भी अशक्य था । परन्तु सज्ञादि चार अपेक्षाओं से भिन्नता होने के कारण उनमे कथञ्चित भेद का ग्रहण किया जा सकता है ।

वस्तु के यह अग तो सज्ञादि की अपेक्षा भिन्न होते हुए भी स्व चतुष्ट की सपेक्षा अभिन्न है, इसलिये इनमे वस्तु का अग पना सद्भूत या सत्यार्थ है। परन्तु भिन्न द्रव्यो मे तो स्व चतुष्टय की अपेक्षा ही भिन्नता है, अत उनको वस्तु के अग समझना असद्भूत व असत्यार्थ है-। इसलिये उस उस द्वैत को ग्रहण करने वाली व्यवहार नय को भी दो भेद हो जाते है—सद्भूत व असद्भूत।

वस्तु के सद्भूत अग शुद्ध व सशुद्ध के भेद से दो प्रकार है, अतः उन उनके ग्रहण करने से सद्भूत व्यवहार भी दो प्रकार का हो जाता है, शुद्ध सद्भूत व अशुद्ध सद्भूत। बाह्य पदार्थो का उपचरित अद्वैत भी दो प्रकार का है स्थूल व सूक्ष्म अर्थात दूरवर्ती पदार्थो के साथ जैसे धन कुटुम्ब आदि के साथ जीव की एकता, तथा निकट वर्ती पदार्थो के साथ जैसे शरीर के साथ जीव की एकता। स्थूल अद्वैत तो स्थूल उपचार है और सूक्ष्म अद्वैत इषत् उपचार या अनुपचार है। इस प्रकार उसको ग्रहण करने वाले असद्भूत व्यवहार के भी दो भेद हो जाते है—उपचरित असद्भूत व अनुपचरित असद्भूत।

उपरोक्त प्रकार यहा नयो के निम्न भेद किये गए है।

१ मूल भेद—निश्चय व व्यवहार

२. निश्चय के भेद—परम शुद्ध निश्चय, शुद्ध निश्चय, अशुद्ध निश्चय व एक देश शुद्ध निश्चय।

३. व्यवहार के भेद—शुद्धसद्भूत या अनुपचारित सद्भूत, अशुद्ध सद्भूत या उपचरित सद्भूत, उपचरित असद्भूत व अनुपचरित असद्भूत।
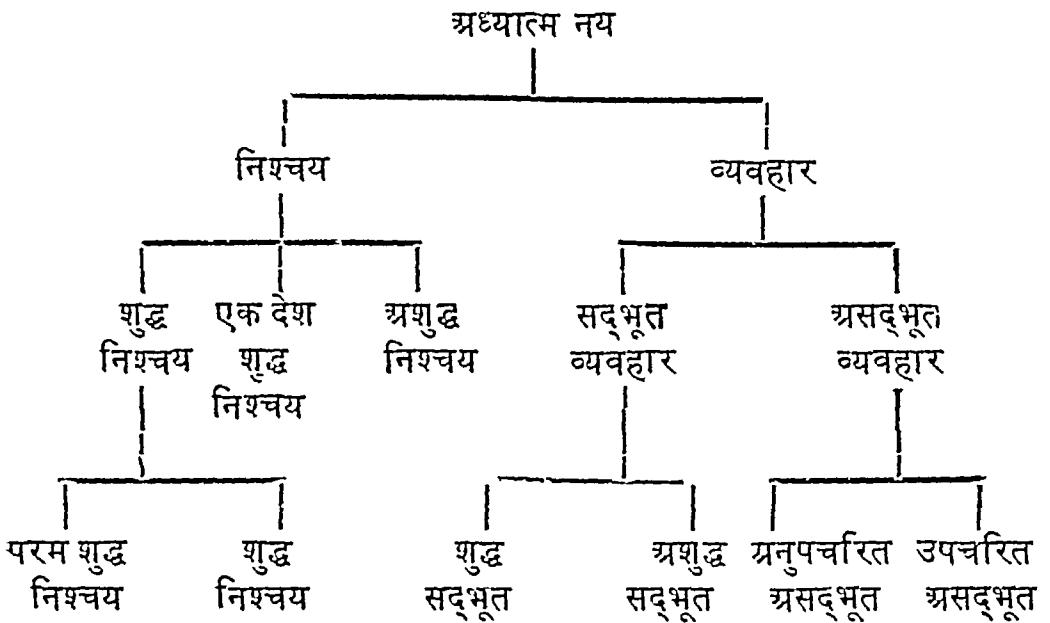
अब इन्ही के पृथक पृथक लक्षण, उदाहरण, उद्धरण, कारण व प्रयोजन दर्शाने मे आयेगे। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि लक्षण व कारण मे तो अन्तर है परन्तु प्रयोजन सब नयो का एक ही है—अर्थात पर पदार्थो व पर सयोगी भावो से अपनी विचारणाओं को हटाकर निश्चय नय के विषय भूत निज स्वभाव पर लगाना ही सर्वत्र प्रयोजनीय है, क्योकि वही हित रूप है ।

३ निश्चय नय सामान्य का लक्षण

निश्चय का अर्थ है निश्चय करना या निर्णय करना या निश्चित रूप से दृढता पूर्वक जानना या जैसा है वैसा अर्थात सत्य जानना । वस्तु के अपने अग भले ही वे शुद्ध हो कि अशुद्ध उनके साथ ही तन्मय रहने वाली वास्तव मे वस्तु है अन्य सयोगो के साथ तन्मय रहनेवालीनहीं । ऐसी वस्तु का ज्ञान या निर्णय हो निश्चय नय है यह तो निश्चय का शब्दार्थ है ।

२. अब निश्चय का अर्थ वस्तु की ओर से भी विचारे तो कहना होगा कि अपने सम्पूर्ण अगो के साथ तन्मय या अभेद रहने वाली ही वस्तु है उसके पृथक पृथक भेद अर्थात गुण व पर्याये वस्तु

भूत नही है या गुण पर्यायों से पृथक रहने वाली वस्तु वस्तुभूत नही है। निःसंशय यही यथार्थ बात है। अत. अभेद वस्तु का ग्रहण निश्चय है। निश्चय का यह लक्षण द्रव्यार्थिक सामान्य के लक्षण से मिलता है अन्तर केवल इतना है वहा त्रिकाली द्रव्य सामान्य का परिचय देना मुख्य था पर यहा त्रिकाली द्रव्य के अतिरिक्त उसकी द्रव्य पर्यायो को भी कदाचित द्रव्य के स्थान पर ग्रहण कर लिया जाता है। तात्पर्य यह कि गुण-गुणी मे अभेद अथवा पर्यायो या विशेषो से तन्मय अखण्डित द्रव्य का अद्वैत भाव दर्शाना ही इस नय का वाच्य है। जैसे जीव को ज्ञानात्मक कहना अथवा ज्ञान ही जीव हैं और जीव ही ज्ञान है ऐसा कहना। जिस वाक्य मे द्वैत का किञ्चित भी प्रतिभास न हो गुण व पर्याय को द्रव्य रूप या द्रव्य व पर्याय को गुण रूप वताया जा रहा हो उस वाक्य को निश्चय नय का विषय समझना।

३. इसी लक्षण को अन्य प्रकार से भी कहा जा सकता है। क्योकि वस्तु के साथ तन्मय रहने वाले उसके अपने गुण या पर्याय भले शुद्ध हो कि अशुद्ध वस्तु के आश्रय पर रहते है पर सयोग के आश्रय पर नही। इसलिये निजाश्रित भावो के साथ ही द्रव्य सामान्य का अभेद आधार आधेय या कर्ता कर्मादि सम्वन्ध ग्रहण करना निश्चय नय का लक्षण है।

"केवल ज्ञान जीव का एक शुद्ध भाव है या केवल ज्ञान जीव का एक शुद्ध ज्ञान है" ऐसा कहना निश्चय नय का वाच्य नही है, क्योंकि यहा जीव का ज्ञान ऐसा भेद कथन है सो तो व्यवहार नय है। निश्चय नय तो अभेद ग्राही है। अर्थात गुण व गुणी मे अभेद दर्शाता है। अत केवल ज्ञान से तन्मय, या केवल ज्ञान रूप से परिणत या केवल ज्ञान रूप जीव है अथवा केवल ज्ञान स्वयं जीव ही है ऐसा कहना निश्चय नय है केवल ज्ञान जीव का गुण और केवल ज्ञान ही जीव है।

इन दोनों लक्षणों मे महान अन्तर है। पहले वाक्य में तो ज्ञान गुण जीव का लक्षण है 'जीव का' ऐसा कहना द्वैत रूप है क्योकि 'का' शब्द का प्रयोग दो पृथक पृथक वस्तुओं मे हूआ करता है जैसे राम की घड़ी । परन्तु दूसरे वाक्य मे ज्ञान ही जीव ऐसा कहने पर "ज्ञान है सो जीव है, जीव है सो ज्ञान है दोनों तन्मय है" ऐसा अद्वैत ग्रहण होता है । अत. पहिला वाक्य व्यवहार नय का है और दूसरा निश्चय नय का है । स्वाश्रित भावो से तन्मय पाने का यही भावार्थ है। स्वाश्रित भावों के अन्तर्गत कर्ता कर्म व भोक्ता भोग्य आदि सम्पूर्ण सम्वन्धो का भी अभेद ग्रहण हो जाता है। 'जैसे जीव अपने ही शुद्ध या अशुद्ध भावो का कर्ता या भोक्ता है' ऐसा कहना निश्चय है ।

जहा गुण व गुणी मे अभेद दर्शा कर बात कही जा रही हो वहा तो निश्चय नय का व्यापार समझना और जहां गुण व गुणी मे भेद दर्शाकर बात कही जा रही हो वहा सद्भूत व्यवहार का व्यापार समझना। इतना ही सद्भूत व्यवहार व निश्चय मे अन्तर है। यह बात ध्यान मे न रही तो सद्भूत का लक्षण आने पर यह संशय हुए बिना नही रह सकता कि सद्भूत व्यवहार तो निश्चय नयवत् ही है । वह निश्चय नय के निकट अवश्य है। क्योंकि वस्तु की अपने गुण पर्यायो को ही ग्रहण करता है, परन्तु निश्चय नय नही है क्योकि वस्तु से उनको अभेद करके उनके साथ तन्मय रहने वाली वस्तु को प्रमुखत· ग्रहण नही करता, उन भेदो वाला ही प्रमुखत· ग्रहण करता है ।

इसप्रकार निश्चय नय के तीन लक्षण किये गये·—

१. एवभूत या सत्यार्थ ग्रहण निश्चय है ।

२. गुण गुणी मे अ[illegible] निश्चय नय है।

३. स्वाश्रित वस्तु का ग्रहण निश्चय नय है

इन तीनो मे न. १ वाला लक्षण तो निश्चय का शब्दार्थ मात्र है। इसलिये सामान्य निश्चय व उसके उत्तर भेदों मे नं. २ व ३ वाले लक्षणो का ही प्रमुखत ग्रहण करने मे आता है। शुद्ध व अशुद्ध त्रिकाली व क्षणिक, सर्व व कोई एक अग से तन्मय वस्तु सामान्य निश्चय नय का विषय हैं, पारिणामिक भाव से तन्मय वस्तु परम निश्चय नय का विषय है। क्षायिक भाव से तन्मय वस्तु शुद्ध निश्चय नय का विषय है, क्षयोपशमिक भाव की एक देश शुद्धता से तन्मय वस्तु एक देश शुद्ध निश्चय नय का विषय है, और औदायिक भाव से तन्मय वस्तु अशुद्ध निश्चय नय का विषय है। अव इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथिक उद्धरण देखिये। यहा इतना अवश्य समझना कि निश्चय नय तो जैसी अखण्ड वस्तु है, वैसी की वैसी को निरूपण करता है, उसमे भेद डालता नही, न ही किसी अन्य को अन्य मे मिलाकर कहता है, इसलिये इसका कथन परमार्थ व सत्यार्थ है उपचार नही है। इसी से ज्ञानी जन सदा इस नय अर्थात इसके विषय भूत स्व अगो के साथ तन्मय ध्रुव पदार्थ का आश्रय करना ही शान्ति मार्ग के लिये सर्वदा उपादेय वतलाते है।

अब इन लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१लक्षण नं. १ (एवं भूत या सत्यार्थ निरुपण)

१ श्ल वा । पु २। ५८५। ८ "निश्चय नय तो एवभूत नय है।"

(रा. वा. हिन्दी। १। ७। ६५)

२. स. सा । ता. वृ. ।३४ "नियमान्नियश्चयान्-मन्तव्यम्।"

(नि. सा. । मू १५६)

(अर्थ–नियम से या निश्चय से ऐसा मानना चाहिये।)

३. स. सा.। २४१। प. जयचन्द "जहा निर्बाध हेतु से सिद्ध होय सो ही निश्चय है।"

४. प्र. सा.। ता. वृ.। २। १ "संशयादि रहितत्वेन निश्चयः।"

(अर्थः–संशय आदि रहित होने के कारण निश्चय है।)

५. वृ. द्र. स.। टी.। ४१।१६४ "श्रद्धाना रूचिनिश्चय इदमेवेत्थमवेति"

(अर्थ–श्रद्धा की रुचि ही निश्चय है जैसे कि "यही है ऐसे ही है" इस प्रकार का निर्णय)

६. मो. मा. प्र.।७।१७।३६६।२ "साचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार।"

७. मो पा. प्र.।७।१७।३६८।८ "निश्चय नय करि जो निरूपण किया होय ताकों तो सत्यार्थ मान ताका श्रद्धान अगीकार करना

८. मो. मा. प्र.।६।७।४।६।१६ "सत्यार्थ का नाम ही निश्चय है।"

९. चिद्विलास।१४।५२-५६ (काल लब्धि, भवितव्य, व व्यक्त रूप न जाने गये स्वभाव मे आस्तिक्य बुद्धि निश्चय कहलाता है।)

लक्षण न. २ (अभेद द्रव्य)

१. आ. प.।१६।१२७ "अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चयेतीति निश्चयः।"

अर्थ–(अभेद व अनुपचार के द्वारा वस्तु का जो निश्चय कराता है सो निश्चय नय है।)

२. नय चक्र गद्य पृ. २५ "निश्चयोऽभेद विषयः।"

(**अर्थ**–निश्चय अभेद विषयक है।)

३ नय चक्र गद्य ।५३१ "निश्चयन्यस्तूपनयरहितोऽ भेदानुपचारैकलक्षणमर्थं निश्चिनोति।"

(**अर्थ**–निश्चय नय तो उपनय रहित है क्योंकि वह तो अनुपचार रूप एक अभेद लक्षण वाले अर्थ का निश्चय कराता है।)

४. वृ. द्र. स. । टी।२।२१ "तत्काले तप्तायंपिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चय.।

(**अर्थः**–उस समय तप्त लोहपिण्डवत तन्मय रूप होने के कारण निश्चय है। अर्थात जिस प्रकार तप्त लोह पिण्ड अग्नि के साथ तन्मय हो जाता है उसी प्रकार अपने गुण व पर्यायो के साथ तन्मय हुआ द्रव्य निश्चय नय का विषय है।)

५. त. अनु. ।पू.।२६ "अभिन्नकर्तृ कर्मादि विषयो निश्चयो नय।.. २९।

(**अर्थ**–अभिन्न कर्ता कर्मादि विषयक निश्चय नय है।)

(अन ध. ।१।१०२।१०८)

६. प. ध. पू. ६१४ "लक्षणमेकस्य सतो यथा कथचिद्यथा द्विधाकरणम्। व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुन·।६१४।"

(अर्थः–जिस प्रकार एक सत् को जिस किस प्रकार से दो रूप करना व्यवहार नय का लक्षण है, उसी प्रकार उस व्यवहार नय से विपरीत अर्थात एक सत् को दो रूप न करना निश्चय नय का लक्षण है।

७. का. अ.।३११-३१२।प जयचन्द "अभेद धर्म को प्रधानता से निश्चय का विषय कहते है।"

लक्षण नं २ के उदाहरण

जैसे कि निम्न उदाहरणो मे जीव तथा उसके गुण पर्यायो को एकमेक करके दर्शाया है।

१ स सा ।मू।२७७ आत्मा खलु मम् ज्ञानात्मा मे दर्शन चारित्रंच। आत्मा प्रत्याख्यानं आत्मा मे सवरो योग. ।२७७।"

(अर्थ.–निश्चय कर मेरा आत्मा ही ज्ञान है, मेरा आत्मा ही दर्शन व चारित्र है। मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरा आत्मा ही सवर और योग है, ऐसा निश्चय नय कहता है।

२.पं. का ।ता. वृ ।२७।५७।१ शुद्धनिश्चयनयेनामूर्त (जीव) धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्तानि।"

अर्थः–शुद्ध निश्चय नय से जीव भी अमूर्त है और धर्म अधर्म आकाश व काल ये चारो भी अमूर्त है।

३.प का. ता वृ ।२७।६० "निश्चयेन केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धोपयोगे न युक्त त्वादुपयोग विशेषतो भवति।"

अर्थ–निश्चय नय से केवल ज्ञान दर्शन रूप शुद्धोपयोग से युक्त् या तन्मय होने के कारण जीव उपयोग विशेषण वाला है अर्थात उपयोग लक्षण वाला है।

३ लक्षण नं. ३ (स्वाश्रित भाव निश्चय है) —

१ स सा ।आ। २७२ "अत्माश्रितो निश्चयनय· पराश्रितो व्यवहार नय ।

(नि सा। ता वृ।१५९)

(**अर्थ**:— पराश्रित भाव व्यवहार है और स्वाश्रित भाव निश्चय है।)

२. स. सा. ।आ ।५६ "निश्चय नय स्तु द्रव्याश्रितत्वात्केवलस्य जीवस्य स्वाभाविकं भावमवलम्ब्योप्लवमान· परभाव परस्य सर्वमेव प्रतियेधयति ।"

(**अर्थ**.— निश्चय नय तो द्रव्याश्रित होने के कारण केवल जीव के स्वाभाविक भावों को आश्रय करके उत्पन्न होता है। और पर के सर्व ही पर भावो का प्रतिषेध करता है।)

३· मो. मा. प्र।७।१७।३।३६६।१ "निश्चय नय तिन (भावनि) कौ यथावत निरूपण करै है, काहूं कौ काहूविषै न मिलावे है। (अर्थात एक हो द्रव्य के भाव को उस ही स्वरूप निरूपण करना सो निश्चय नय है)"

लक्षण नं ३ के कुछ उदाहरण

जैसे कि निम्न उद्धारणो मे जीव के सर्व ही शुद्ध या अशुद्ध अपने भाव निश्चय नय के विषय बना कर दर्शाये गये है।

१. प्र. सा. न. प्र. ।२।६७ "रागपरिणामंस्यैवात्मा कर्ता तस्यैवो-पदाताहाता चेत्येप शुद्ध द्रव्य निरूपणात्मको निश्चय नय. ।"

(अर्थ-- राग परिणाम का ही आत्मा कर्ता है, उसका ही उप-दाता या हाता है अर्थात उस का ही देने वाला या नाश करने वाला है। ऐसा शुद्ध (केवल) द्रव्य निरूपणात्मक निश्चय नय है। निश्चय नय से घट पट का कर्ता हर्ता नही है।)

२. नि. सा.। ता वृ. ९ "निश्चयेन भाव प्राणधारणत्वाज्जीव.।"

(अर्थ-- भले ही व्यवहार से चार प्राणो करके जीव हो पर निश्चय से तो चैतन्य भाव प्राण को धारण करने से ही वह जीव कहलाता है ।

३. प. का.।ता. वृ. ।२७।६० "निश्चयेन केवल ज्ञान दर्शन रूप शुद्धोपयोगेन . . . युक्तत्वादुपयोग–विशेषतो भवति ।"

(अर्थ –निश्चय से केवल ज्ञान व केवलदर्शन रूप शुद्धोपयोग सहित होने के कारण जीव का लक्षण उपयोग किया जाता है। तथा इसी प्रकार आगे भी) 'भाव प्राण धारण करने के कारण जीव है, चित् स्वरूप होने के कारण चेतयिता है, अपृथाभूत उपयोग से उपलक्षित होने के कारण उपयोग गुण वाला है, भाव कर्मो अर्थात राग द्वेषादि भावों के आश्रव आदिकों मे स्वय ही ईश्वरपने को प्राप्त वह प्रभु है, पौद्गलिक कर्मों के निमित्त भूत राग द्वेषादि आत्म परिणामों का कर्ता होने के कारण कर्ता है, शुभाशुभ कर्म निमित्तक सुख: दु:खों को भोगने के कारण भोक्ता है,

लोक मात्र है, रूप रहित स्वभाव वाला होने के कारण मूर्त नही है, पुद्गल परिणामों के अनुरूप निज चैतन्य परिणामो का आत्मा के साथ सयुक्त होने के कारण वह सयुक्त है ।"

(अर्थात इन सर्व निज के अपने गुणो व शुद्धाशुद्ध पर्यायो के कारण ही वह उन उन विशेषणो वाला कहा जा सकता है, निमित्त रूप शरीर तथा अन्य वाह्य पदार्थों के करने या सयोग को प्राप्त होने के कारण नही । ऐसा निश्चय नय बताता है ।)

४ प्र सा.।त. प्र परि.। नय न॰ ४५ तत्तु. . . .निश्चय नयेन केवल वध्यमान मुच्यमान बन्ध-मोक्षोचितस्निग्ध रूक्षत्व गुण परिणत परमाणु वद्वन्धमोक्षयोरद्वैददुवर्ति ।"

अर्थ -- आत्म द्रव्य निश्चयनय से बन्ध और मोक्ष मे अद्वैत का अनुसरण करने वाला है । अकेले वध्यमान और मुच्यमान ऐसे वन्धमोक्षोचित स्निग्धत्व रूक्षत्व गुण रूप परिणत परमाणु की भांति ।

५. वृ. द्र स ।टी ।३।११ "सत्ताचैतन्यबोधादि. शुद्ध भाव प्राणा निश्चयेनेति ।"

(**अर्थ** -- निश्चय से तो सत्ता चैतन्य या ज्ञानादि ही जीव के शुद्ध भाव प्राणा है, इन्द्रिय आदि नही ।)

६. वृ द्र. स ।टी।८। २२ "(निश्चयेन) शुद्धाशुद्ध भावना परिणममानानामेव कर्तृत्वं ज्ञातव्यं, न च हस्तादि व्यापाररूपाणामिति ।"

अर्थ.— निश्चय नय से परिणमन करते हुए शुद्ध अशुद्ध भावों का कर्तृत्व ही जीव मे जानना चाहिये और हस्तादि व्यापाररूप परिणमनो का कर्तापना नही समझना चाहिये ।

७ वृ. द्र स. ।टी।१६। ५७ "स्वकीय शुद्ध प्रदेशेषु. . . .निश्चय-नयेन सिद्धास्तिष्ठन्ति ।"

अर्थ —निश्चय नय से अपने शुद्ध प्रदेशों मे मे ही सिद्ध भगवान तिष्ठते है, उर्ध्व लोक मे नही ।)

८ रा वा. ।१ ।७।८।३८ "योऽसौ जीवात्मा पारिणामिक स्त-त्साधनो जीवो निश्चयनयेन ।"

अर्थ — निश्चय नय से जीव अपने अनादि परिणामिक भावों से ही स्वरूपलाभ करता है ।

भावार्थ -निश्चय नय के इन लक्षणो मे सामान्य रूप से जीव के अपने भावो के साथ उसका कर्ता भोक्ता आदि पना दर्शाया गया है, शरीर व शरीर की क्रियाओं के साथ नही । इसलिये स्वाश्रित भावो को अर्थात स्वाश्रित भावों के साथ तन्मय द्रव्य को निश्चय नय का वाच्य बताया गया । वे स्वाश्रित परिणाम चार प्रकार के हो सकते है—१ सम्पूर्ण शुद्धाशुद्ध की अपेक्षाओं से रहित पारिणामिक भाव २. त्रिकाल सम्पूर्ण गुण ३. क्षायिक भाव रूप शुद्ध पर्याय तथा ४. औदयिक व क्षयोपशमिक भाव रूप अशुद्ध पर्यायें यहा निश्चय सामान्य का लक्षण किया जा रहा है, अत: अपने सर्व भावो को ग्रहण कर लेता है, भले ही वह भाव त्रिकाली हो कि क्षायिक शुद्ध हो कि अशुद्ध ।

इस के भेद प्रभेद करने के पश्चात अवश्य इन चारो प्रकार के निज भावों मे से एक एक भाव एक एक नय का विषय बन जायेगा । परम

शुद्ध निश्चय नय का विपय तब केवल पारिणामिक भाव होगा, शुद्ध निश्चय नय का विपय केवल क्षायिक भाव होगा एक देश शुद्ध निश्चय नय का विपय केवल क्षयोपशम भाव होगा अर्थात क्षयोपशम भाव मे रहनै वाला शुद्धाश होगा, और अशुद्ध निश्चय नय का विपय केवल औदयिक भाव तथा क्षयोपशम भाव मे रहने वाला अशुद्धाश होगा। यहा सामान्य निश्चय नय का प्रकरण होने से सर्व ही वे भाव इस के विषय है क्योकि यहाँ केवल इतना दिखाना अभीष्ट है कि यह सारे भाव वस्तु के निज आश्रितभाव है।

४. निश्चय नय के कारण व प्रयोजन

जैसी वस्तु है उस को वैसी ही जानना निश्चय है। निश्चित रूप से वस्तु भेद रूप नही है। भले ही अपेक्षाओ द्वारा उसमे भेद देखे जा सकते हो परन्तु इस प्रकार ज्ञान के विकल्पो के द्वारा उसमे भेद पड नही जाते। जैसे अग्नि मे से भले भिन्न भिन्न समयो मे प्रकाश ऊष्णत्व आदि को प्रमुखत. प्रयोग मे लाने के विकल्प जागृत होते हो पर अग्नि मे प्रकाश व ऊष्णत्व सदा एक रस रूप ही रहते है ऐसा निश्चित रूप से कहा जा सकता है। भले ही दो पदार्थ परस्पर मे मिलकर एकमेक से हुए दीखते हो परन्तु वे पृथक ही रहते है, एक के गुण दूसरे मे मिलने नही पाते। जैसे कि ताम्बे के साथ मिलकर स्वर्ण भले कुछ लाल सा दीखता हो पर वास्तव मे वह पीला ही रहता है यह निश्चत रूप से कहा जा सकता है। वस्तु के इस अभेद व स्व-गुण समवेत पने का निश्चय कराने के कारण इस नय को निश्चय नय कहते है। यह तो इस नय का कारण है। कहा भी है।

१. प. ध.।पू.।६६३ "अपि निश्चयस्य नियत हेतु. सामान्य मात्रमिह वस्तु।"

अर्थ—वस्तु सामान्य मात्र एक अद्वैत सत् है, इसी प्रकार का निश्चय ही निश्चय नय का नियत हेतु है।

वस्तु के या विश्व के बाह्य क्षणिक रूपो या पर्यायो पर दृष्टि रहने पर तो विकल्पो की चचलता वनी रहती है। चचल ज्ञेय के आधार पर ज्ञान भी स्वभाव से चंचल ही रहेगा। इस की स्थिरता के लिये आधार भी स्थिर ही होना चाहिये। तथा अपूर्ण ज्ञेय के आधार पर विचारणाओ मे सशय वना रहना स्वाभाविक है। नि सशय ज्ञान के लिये आधार भी पूर्ण होना चाहिये। विकल्पो की चंचलता व सशय ही अशान्ति के कारण है। नि सशय स्थिर चित्तता ही शान्ति का लक्षण है। शान्ति व अशान्ति का सम्बन्ध वर्तमान विचारणा है। अत. यदि विचारना का आधार पूर्ण अभेद द्रव्य को वनाया जाये तो उसमे सशय व चचलता का प्रवेश नही हो सकता। इसी का नाम शान्ति है। ऐसी पूर्ण अभेद वस्तु को दर्शाना क्योकि निश्चय नय का काम है अत· इसका आश्रय लेना ही शान्ति मार्ग मे प्रयोजनीय है। कहा भी है--

१ नय चक्र गद्य। पृ० ६९-७० "यथा सम्यव्यवहारेण मिथ्या व्यवहारो निवर्तते, तथा निश्चयेन व्यवहारविकल्पोऽपि निवर्तते यथा निश्चय नयेन व्यवहार विकल्पोऽपि निवर्तते तथा स्वपर्यवसित भावेनैकत्व विकल्पोऽपि निवर्तते। एव हि जीवस्य योड सौ स्वपर्यवस्ति स्वभाव स एव नय पक्षातीत।"

अर्थः—जिस प्रकार सद्भूत व्यवहार से निमित्ताधीन असद्भूत व्यवहार की निवृत्ति होती है, उसी प्रकार निश्चय से व्यवहार के द्वैतरूप विकल्पो की भी निवृत्ति हो जाती है जिस प्रकार निश्चय से व्यवहार विकल्पो की निवृत्ति होती है उसी प्रकार निज चैतन्य की अद्वैत भावना से या अनुभव मे तल्लीन हो जाने से, निश्चय नय के एकत्व वाले विकल्प की भी निवृत्ति हो जाती है। इस

प्रकार जो यह स्व भावना रूप अद्वैत स्वभाव है वह ही समस्त नय पक्षो से अतीत केवल अनुभव गम्य निजानन्द रस है। अर्थात साधक को इस प्रथम भूमिका मे व्यवहार से हटकर निश्चय का आश्रय करना प्रयोजनीय है। इसका अभ्यास हो जाने पर निज अद्वैत स्वभाव मे खो-कर शान्ति रस मे लीन हो जायेगा।

२ प० प्र०।मू।७१ "देहस्य दृष्ट्वा जरामरण मामय जीवकार्षी। य अजरामर. ब्रह्मपर: त आत्मान मन्यस्व ।७१।"

अर्थ:—भो आत्मन् ! तू देह को देख कर जन्म मरण से भय मतकर। क्योंकि जो अजर व अमर परम ब्रह्म तत्व यह अन्तर मे प्रकाशमान है वही आत्मा है ऐसा तू मान। अर्थात व्यवहार दृष्टि तो वाह्य की ओर लक्ष्य को ले जाती है, जिस से भय व शोक उत्पन्न होते हैं। अत साधक को निश्चय दृष्टि के वाच्य इस अन्तर तत्व का आश्रय लेना योग्य है।

३. स० सा०।मू।१४ "य पश्यति आत्मॉन अवद्धमस्पृष्टमनन्यक नियत। अविशेपमसयुक्त तं शुद्धनय विजनिहि।१४।"

अर्थ—जो आत्मा को अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष व असंयुक्त देखती है अर्थात समस्त व्यवहारिक भेदो व सयोगो से परे एक नियत अखण्ड रूप से देखता है वही शुद्ध नय जानना चाहिये।

भावार्थ—इस प्रकार व्यवहारिक विकल्पो को अपने लिये अनिष्ट समझ कर उन का त्याग कर, तथा निश्चय के वाच्य भूत निज अखण्ड व अद्वैत चैतन्य तत्व पर

लक्ष्य कर। ताकि समस्त विकल्पो से युक्त उस परम अवस्था का उपभोग करने मे सफल हो सके, ऐसा निश्चय नय का प्रयोजन है।

५ निश्चय नय के भेद प्रभेद

निश्चय नय क्योकि एक रस रूप अखण्ड तत्व को दर्शाता है इस लिये वास्तव मे इस के भेद प्रभेद किये जाने युक्त नही, क्योकि इस का कोई भेद परिपूर्ण वस्तु को विपय न कर सकेगा। परिपूर्ण वस्तु ही निश्चय रूप से या सत्यार्थ रूप से वस्तु कही जा सकती है, और ऐसी परिपूर्ण वस्तु शब्द द्वारा कही नही जा सकती। अत निश्चय नय वास्तव मे अवक्तव्य है। द्रव्यार्थिक नय के अन्तर्गत यह बात अच्छी तरह स्पष्ट की जा चुकी है। अध्याय १६ प्रकरण २ लक्षण न. ४। फिर भी इस का स्पष्ट परिचय देने के लिये जिस प्रकार द्रव्यार्थिक नय के अनेको भेद प्रभेद किये जाते है उसी प्रकार यहा भी प्रयोजन वश भेद करक इसको जिस किस प्रकार समझाने का प्रयत्न करते है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह सब भेद व्यवहार नय रूप ही समझे जाने चाहिये और ऐसा आगम मे स्वीकार भी किया गया है (देखो अध्याय १६। प्रकरण ६। लक्षण न. १.)। परन्तु फिर भी वे भेद कथञ्चित निश्चय नय रूप ही बने रहते है क्योकि उन सभो मे किसी न किसो प्रकार गुण-गुणी अभेद वाला लक्षण घटित होता रहता है। निश्चय के इन भेदो व व्यवहार नय मे क्या अन्तर है इस प्रश्न का उत्तर तो व्यवहार नय के प्रकरण के अन्त मे दिया गया है वहा से जान लेना। यहां तो इतना ही जानना पर्याप्त है कि यहा सर्वत्र अपने गुण पर्यायो व कर्ता कर्म आदि भावों से अभिन्न एक रस रूप द्रव्य को दर्शाना मुख्य है, और वहा इस अद्वैत तत्व को खण्डित करके इसे ही गुण पर्यायो आदि वाला बताकर द्वैत दर्शाना मुख्य है।

जड व चेतन दोनो ही द्रव्य शुद्ध व अशुद्ध दशा मे रहते है। जड की शुद्ध दशा परमाणु है और अशुद्ध दशा स्कन्ध है। जीव की शुद्ध दशा क्षायिक भावो के साथ तन्मय सिद्ध दशा है और अशुद्ध दशा औदयिक व क्षायोपशमिक भावो के साथ तन्मय ससारी दशा है। इन दोनो के अतिरिक्त जीव की एक तीसरी दशा भी है जो कि साधक की दशा है। वह आशिक शुद्ध होती है और आशिक अशुद्ध, जिस प्रकार कि पकता हुआ भात आशिक पका हुआ है और आशिक कच्चा। इस दशा का नाम एक देश शुद्ध है। बस इन तीन दशाओ के आधार पर निश्चय नय के तीन भेद कर दिये गये–शुद्ध निश्चय, अशुद्ध निश्चय, और एक देश शुद्ध निश्चय। इन तीनो के अतिरिक्त एक चौथा भेद भी है जो त्रिकाली स्वभाव रूप है। यह पर्याय रूप नही है बल्कि पर्यायो से निरपेक्ष केवल स्वभाव रूप है। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के वाच्च जो पारिणामिक भाव उस के साथ तन्मय द्रव्य ही परम या साक्षात शुद्ध निश्चय का विषय है।

६ शुध्द निश्चय नय का लक्षण

कदाचित प्रयोग करते समय इस चौथे भेद के नाम के साथ साधारणत 'परम' या 'साक्षात' इन विशेषणो का प्रयोग नही किया जाता। केवल शुद्ध निश्चय नय ही कह देते है। अत आगम मे शुद्ध निश्चय का प्रयोग दो अर्थो मे किया जाता है–एक पारिणामिक भाव ग्राहक और दूसरा क्षायिक भाव ग्राहक। द्रव्यार्थिक नय के प्रकारण मे केवल पारिणामिक भाव ग्राहक को ही शुद्ध विशेपण लगाया था, परन्तु यहा उसके अतिरिक्त क्षायिक भाव ग्राहक नय के साथ भी शुद्ध विशेषण लगाया गया है। अत दोनो शुद्ध निश्चय नयो मे विवेक रखना योग्य है। आगम मे यह नाम देख कर अपनी बुद्धि से यह जान लेना चाहिये कि यह परम शुद्ध का कथन है या केवल शुद्ध का। यदि त्रिकाली स्वभाव को दर्शाते हुए शुद्ध निश्चय नय का प्रयोग किया है तो समझ

लेना कि यहा परम शुद्ध से तात्पर्य है और यदि क्षयिक भाव को दर्शाते हुए शुद्ध निश्चय का प्रयोग किया है तो समझ लेना कि केवल शुद्ध निश्चय से तात्पर्य है।

इन दोनों मे से परम शुद्ध निश्चय नय का लक्षण तो वही है जो कि शुद्ध द्रव्यार्थिक का है (देखो अध्याय म १६ प्रकरण न. १४), केवल प्रयोजन मे भेद है जो कि आगे बताया जायेगा। परन्तु सामान्य शुद्ध निश्चय नय का लक्षण है क्षायिक भाव से तन्मय रहने वाला उस समय का द्रव्य। अध्यात्म मे क्योकि आत्म द्रव्य की मुख्यता रहती है अत लक्षण करते हुए सदा जीव को दृष्टि मे रखा जाताहै। यद्यपि पुद्गल पर भी इन नयो को तथा आगे की व्यवहार नयो को लागू किया जा सकता है परन्तु आगमकारो की ऐसी प्रवृत्ति नही रही है। आगे आने वाले सर्व ही आगम के उद्धरणो मे आप जीव को ही निश्चय नय का कि व्यवहार नय का विषय बनाया गया देखेगे। वहा ऐसा भ्रम न कर लेना कि जड पदार्थ इन नयो का विषय ही नही है। अपनी वुद्धि से यथा योग्य उन पर भी लागू किया जा सकता है।

सामान्य निश्चय नय की भाति यहा भी गुण व गुणी मे अभेद तो निश्चित रूप से स्वीकारा ही जाना चाहिये, अन्यथा तो यह लक्षण निश्चय का न होकर व्यवहार का हो जायेगा। 'ज्ञान मात्र ही जीव है' व 'ज्ञान वान जीव है' इन दोनो वाक्यो का तात्पर्य एक रहते हुए भी दोनो मे महान अन्तर है। पहला गुण व गुणी का अभेद करके केवल जीव द्रव्य की विशेषता दर्शा रहा है और दूसरा गुण व गुणी का भेद करके वा दोनो को पृथक पृथक स्वीकार करके एक को दूसरे का स्वामी बता रहा है। अत इन दोनो वाक्यो मे पहिला वाक्य निश्चय नय का है और दूसरा व्यवहार नय का। यहा क्योकि शुद्ध निश्चय नय का लक्षण करना है अत शुद्ध गुण अर्थात त्रिकाली भाव से तन्मय रहने वाला द्रव्य पर्याय अर्थात क्षायिक भाव

से तन्मय रहने वाले द्रव्य, की सत्ता को ही स्वीकारना इस नय का विषय है। इस नय के तीन लक्षण किये जा सकते है।

१. समस्त भेदो से निरपेक्ष एक अभेद नित्य सत् या पारिणामिक भाव स्वरूप ही द्रव्य को वताना परम निश्चय नय का लक्षण है। इसका कथन शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के लक्षण मे आ चुका है। (देखो अध्याय न १६ प्रकरण न. १४)।

२. त्रिकाली शुद्ध पारिणामिक भाव के साथ तन्मय रहने के कारण उस ही के साथ द्रव्य सामान्य का अभेद, आधार आधेय, या कर्ता कर्मादि सम्बन्ध ग्रहण करना इसका लक्षण है।

३ यह दो लक्षण तो त्रिकाली जीव सामान्य पर लागू होते है। परन्तु यदि जीव को मुक्त व ससारी ऐसे दो भागो मे विभाजित करके इन्हे पृथक पृथक द्रव्यो के रूप मे देखे तो मुक्त जीव शुद्ध है क्योंकि क्षायिक भावो का पिण्ड है और ससारी जीव अशुद्ध है क्योकि औदायिक व क्षायोपशमिक भावो का पिण्ड है। यद्यपि यह दोनों भेद जीव द्रव्य नही कहे जा सकते, बल्कि उसकी पर्याय है, परन्तु अशुद्ध सग्रह नय की अपेक्षा अवान्तर सत्ता रूप होने के कारण इन्हे भी द्रव्य स्वीकार करके निश्चय नय का विषय बनाया जा सकता है। तथा शुद्ध निश्चय का विषय तो शुद्ध जीव अर्थात मुक्त जीव है और अशुद्ध निश्चय नय का विषय अशुद्ध जीव अर्थात ससारी जीव है। मुक्त जीव की तन्मयता क्षायिक भावो से है, इसलिये केवल ज्ञानादि क्षायिक भावो से तन्मय जीव का स्वरूप वताना शुद्ध निश्चय नय का लक्षण है।

यहा 'जीव' शब्द का अर्थ त्रिकाली जीव न समझ कर सादि अनन्त मुक्त जीव समझना ।

संक्षेप से इन लक्षणों को इस प्रकार कहा जा सकता है.—

१ त्रिकाली शुद्ध भाव के साथ तन्मय द्रव्य सामान्य का ग्रहण शुद्ध निश्चय नय है ।

२. क्षायिक भावो के साथ तन्मय द्रव्य सामान्य का ग्रहण शुद्ध निश्चय नय है ।

इन दोनों लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये । उदाहरण भी उनमे ही आ जायेगे ।

१ लक्षण नं १ त्रिकाली पारिणामिक भाव के साथ तन्मय द्रव्य सामान्यः—

१ पं का । ता. वृ ।१।४।२१ "शुद्ध निश्चयेन स्वस्मिन्नेवाराध्याराधक भाव इति ।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय नय से अपने मे ही आराध्य व आराधक भाव है। अर्थात पर्याय आराधक है और द्रव्य आराध्य है ।

२ प का ।ता वृ ।२७।६०।१३ "शुद्ध निश्चयेन सत्ता चैतन्य बोधादि शुद्ध प्राणैर्जीवति, तथा शुद्ध ज्ञान चेतनया . . युक्तत्वात् चेतयिता ।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय से तो जीव सत्तामात्र से अथवा चैतन्य या ज्ञानादि शुद्ध प्राणों से जीता है, तथा शुद्ध ज्ञान चेतना-युक्त होने के कारण चेतयिता कहलाता है ।

३ प. प्र. टीका ।२१।३६ "शुद्ध निश्चय नयेन तु भेदनयेनस्व देहाद्भिन्ने स्वात्मनि वसति ।"

अर्थ—शुद्ध जिश्चय नय से तो यदि भेद करके भी देखा जाये तो भी जीव अपने आत्मा मे ही वसता है, घर या ग्रामादि मे नही।

४. नि० सा० । ता० वृ।६ "शुद्ध निश्चयेन सहज ज्ञानादि परम स्वभाव गुणानामाधार भूतत्वात्कारण शुद्ध जीव. ।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय से सहज ज्ञानादि परम स्वभावभूत गुणो का आधार होने के कारण उस पारिणामिक भाव स्वरूप चेतना को कारण-शुद्ध जीव कहते है।

५ प० ध० । ३०।३३ "अर्थ शुद्ध नयादेशाच्छुद्धश्चैक विधोपि य । .।३३।"

अर्थ—शुद्ध नय से तो आत्मा शुद्ध तथा एक ही प्रकार का है।

६ वृ० द० स०।१६।५३ "योऽसौ रागादिरूपो भाववन्धः कथ्यते सोऽपि शुद्धनिश्चयनयेन पूद्गलबन्ध एव ।"

अर्थ—वेरागादि भाव वन्ध भी शुद्ध निश्चय नय से पुद्गल वन्ध ही है।

भावार्थ—त्रिकाली पारिणामिक भाव मे रागादि है ही नही फिर उन्हे जीव कैसे कह सकते है, अत· निमित्त भूत कर्मो के ही कहने पड़ते है।

७ प० प्र०।टीका।६४।७१।१० "संसारिक सुख दु.खं....शुद्ध निश्चय नयेन कर्मजनितं भवति।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय नय से संसारिक सुख दुःख कर्म जनित है जीव जनित नही । क्योकि पारिणामिक भाव स्वरूप शुद्ध चेतना मे उन का अभाव है ।

नोट—यह लक्षण परम शुद्ध निश्चय नय का है इस का विशेष विस्तार शुध्द द्रव्यार्थिक नय के प्रकरण मे किया गया है, वहा से जान लेना (देखो अध्याय न. १६ प्रकरण न १४) यहा तो केवल उसके कुछ उदाहरण मात्र दे कर दिखाए है ।

यहा इतना ही अभिप्राय जानना है कि आगम मे जहां कही भी इस प्रकार जीव की अशुद्ध पर्यायो को जीव का न कह कर कर्मो का कहा जाता है वहा परम शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा ही कहा जाता है, सर्वथा नही । नय ज्ञान से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति उस को सर्वथा मान कर अपराध करते हुए भी अपने को अपराधी नही मानते, और इस प्रकार अपना अहित करते रहते है । पारिणामिक भाव की ओर लक्ष्य है जिसका, उस को ही रागादि भाव कर्मो के दीखते है, सर्व साधारण व्यक्ति गत जीवो को नही । क्योंकि वे तो अपने अन्दर उस समय परम शुद्ध निश्चय नय के विषय बने हुए भी नही है । अतः इस लक्षण को जान कर स्वच्छन्द पोषण करना युक्त नही । पारिणामिक भाव को लक्ष्य मे रखने वाले जीव के हृदय मे तो स्वाभाविक रूप से सर्व सत्व मैत्री उछलती है, तब उस की हिंसा आदि महान अपराधो मे प्रवृत्ति होना कैसे सम्भव हो सकता । क्योकि पारिणामिक भाव मे तो उसे स्व व पर सभी सामान रूप से प्रभु के आवास दिखाई देते है । प्रभु दिखाई देते है ।

२ लक्षण नं २ (क्षायिक भाव के साथ तन्मय द्रव्य सामान्य)

१. प का. । ता. वृ । २७।६० "शुद्ध निश्चयेन केवल ज्ञान-दर्शन रूप शुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोग विशेषता भवति

मोक्ष मोक्ष कारण रूप शुद्ध परिणाम परिणमन समर्थत्वात्प्रभुर्भवति, शुद्ध भावाना परिणामान्तं कर्तृत्वात्कर्ता भवति शुद्धात्मोप्तवीतराग परमानन्द रूप सुखस्य भोक्तृत्वाद्भोक्ता भवति ।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय नय से केवल ज्ञान व दर्शन रूप (क्षायिक) शुद्धोपयोग से युक्त होने के कारण जीव उपयोग लक्षण वाला है, मोक्ष व मोक्ष के कारण (क्षायिक) शुद्ध परिणाम रूप परिणमन करने मे समर्थ होने के कारण प्रभु है, शुद्ध भावो रूप (क्षायिक) परिणामों को करने के कारण कर्ता है, शुद्धात्मा से उत्पन्न वीतरागपरमानन्द रूप (क्षायिक) सुख का भोक्ता होने के कारण भोक्ता है ।)

२. प का. । ता. वृ. । ६१।११३ "शुद्ध निश्चयेन केवल ज्ञानादि शुद्ध भावा स्वभाव भण्यते ।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय से केवल ज्ञानादि (क्षायिक) शुद्ध भाव जीव के स्वभाव कहे जाते है ।

३ व० च० गद्य पृ २५ "निरुपाधि विपय शुद्ध निश्चयत, यथा केवल ज्ञानादि जीव इति ।"

अर्थः—शुद्ध निश्चय नय का विपय निरुपाधि है, जैसे केवल ज्ञानादि क्षायिक भाव ही जीव है, ऐसा कहना ।

४ वृ० न० च०।११५ "शुद्धो जीव स्वाभावो यो रहितो द्रव्य भाव कर्मभि । स शुद्ध निश्चयत. समासित शुद्ध ज्ञानिभि- ।११५।"

अथः—जीव का शुद्ध स्वभाव वह है जो द्रव्य व भाव कर्मों से रहित हो। ऐसा शुद्ध ज्ञानी जनों ने शुद्ध निश्चय नय का लक्षण किया है।

५ वृ० द्र० सं०।टीका।६।१८ "शुद्ध निश्चय नयात्पुनः शुद्धम खण्ड केवल ज्ञान दर्शन द्वयं जीवलक्षणामिति।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय से शुद्ध अखण्ड केवल दर्शन ज्ञान जीव का लक्षण है।

६ वृ० द्र० स०।टीका।६।२३ "शुद्ध निश्चय नयेन तु परमात्म स्वभाव सम्यक् श्रद्धानज्ञानानुष्ठानोत्पन्न सदानन्दैक लक्षणं सुखामृतं भुक्त इति।"

अर्थः—शुद्ध निश्चय नय से तो परमात्म स्वभाव के सच्चे श्रद्धान ज्ञान चारित्र द्वारा उत्पन्न ध्रुव आनन्द लक्षण का धारक जो सुखामृत उसे ही जीव भोगता है।

आ प ।११।पृ।१२६ 'तत्र निरुपाधि गुणगुण्य भेद विषयकः शुद्ध निश्चयो यथा केवल ज्ञानादयो जीव इति।"

अर्थ—निरुपाधिक (शुद्ध) गुण गुणी को अभेद।रूप विषय करने वाला शुद्ध निश्चय नय है। जैसे जीव को शुद्ध केवल ज्ञानादि रूप कहना।

भावार्थ—इन सर्व लक्षणो मे क्षायिक शुद्ध भावो रूप ही जीव सामान्य को बताया गया है। कारण यही है कि इस दृष्टि मे जीव की शुद्ध व्यञ्जन पर्याय ही इस समय मुख्य है। अत. उस रूप ही मानो द्रव्य उसे दिखाई दे

रहा है। लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य भावो का ग्रहण नय की एकान्त दृष्टि मे सम्भव नही। अत द्रव्य सामान्य को उस एक लक्षित भाव रूप ही बता देना न्याय युक्त है।

७ शुद्ध निश्चय नय के कारण व प्रयोजन

क्योकि गुण व गुणी मे अभेद करके केवल गुणी अर्थात अभेद द्रव्य को विषय करता है इसलिये तो निश्चय है। और त्रिकाली शुद्ध पारिणामिक भाव के साथ या क्षणिक शुद्ध क्षायिक भाव के साथ अभेद दर्शाता है इसलिये शुद्ध है। अत "शुद्ध निश्चय नय" इसका यह नाम सार्थक है। यह तो इस नय का कारण है। अव प्रयोजन देखिये।

लोक के सर्व प्राणी ही जब शुद्ध ज्ञान व चेतना या सत् स्वभावी है तो फिर " यह छोटा यह वडा, यह राजा यह रंक, यह भगवान यह भक्त, यह मनुष्य ओर यह चीटी, यह अमुक देश जाति का ओर यह अमुक देश जाति का" ऐसा द्वैत करना कैसे सम्भव है ? अत भो चेतन। तू सव ही प्राणियों म एक सामान्य प्रभु के दर्शन कर। मैं-तू व मेरा-तेरा के भावो को दवाने का प्रयत्न कर। सव ही ब्रह्म स्वरूप है, ऐसा जानकर हृदय मे साम्यता को धारण कर। ऐसे भाव चित्त मे जागृत कराना तथा सर्व सत्व मैत्री का पाठ पढ़ाना तो परम शुद्ध निश्चय नय का सामान्य प्रयोजन है। लौकिक व्यवहार मे यह दृष्टि बने रहने के कारण, इस नय के आधार पर साधना करने वाले का लौकिक जीवन सदा प्रेम मय वना रहता है। स्वच्छन्द होकर हिसा आदि मे प्रवृत्ति करना तथा कह देना कि 'सव प्रभु है, कौन किसे मारता है' इत्यादि तो इस नय की साधना नही है। जव तक सव की प्रसन्नता मे अपनी प्रसन्नता तथा सब की पीड़ा मे अपनी पीडा दीखती नही तब तक सर्व सत्व मैत्री या एकत्व की बात कहना केवल शाब्दिक जमा खर्च है। इस नय का यह प्रयोजन नही है।

इस के अतिरिक्त पारमार्थिक प्रयोजन तो वही है जो कि निश्चय सामान्य मे बताया गया है । व्यवहार पर से हट कर निश्चय पर लक्ष्य को ले जाने से तो व्यवहारिक विकल्प मिट कर एकत्व मे स्थिति होती है । और इस नय को लक्ष्य मे लेने से वह एकत्व का विकल्प भी मिट कर निज अखण्ड चैतन्य स्वभाव मे स्थिति होती है । फलस्वरूप परमानन्द का स्वाद जीवन को उस समय के लिये तथा परम्परा रूप से सदा के लिये शान्त बना देता है ।

यह तो परम शुद्ध निश्चय नय का प्रयोजन है । केवल शुद्ध निश्चय नय का भी यही प्रयोजन है । सिद्ध प्रभु ही वास्तव मे जीव है अत मै भी तो ऐसा ही हू, क्योकि सर्व जीव सिद्ध तुल्य है यदि मै सिद्ध तुल्य हू तो यह राग आदि के विकल्प मुझे किस लिये आते है ? भो चेतन ! तू बाहर की महिमा क्या देखता है, तू भगवान की महिमा भी क्यों देखता है, अपनी ही महिमा को देख । तू वर्तमान मे पूर्ण प्रभु है, अन्य सर्व प्राणी भी पूर्ण प्रभु है । अत कर्तव्य तो यह है कि समस्त रागादिक या अभिलाषाओ से मुक्त होकर निज अन्तर रसास्वाद मे निमग्न रहा कर । परन्तु यदि कदाचित राग की उत्पत्ति वश लौकिक व्यापारो में ही जाना पडे, तो उनमे रस न ले उदासीनता पूर्वक ही सर्व लौकिक कार्य कर । सम्पर्क म आने वाले सर्व छोटे बडे व्यक्तियो मे प्रभुत्व के दर्शन करता हुआ सब के साथ प्रेम का व्यवहार कर ।

इन प्रयोजनो की सिद्धि जीवन मे न हो और आध्यात्म नय वाले शुद्ध नय की चर्चा मात्र करे तो शुद्ध नय का यथार्थ ग्रहण कहा नही जा सकता । उस प्रकार की अपनी दृष्टि बन जाने को नय का ग्रहण कहते है । ऐसी दृष्टि बन जाने पर स्वाभाविक रूप से ही लौकिक व आलौकिक दोनो दिशाओ मे उपरोक्त प्रयोजनो की सिद्धि हो जाती है । कहा भी है –

स० सा० । आ० । ७२ " यत्वात्यास्रवयो र्भेदज्ञानमपि नास्रवेभ्यो निवृत्त भवति तज्ज्ञानमेव न भवतीति ज्ञानांशो ज्ञान-नयोऽपि निरस्त ।"

अर्थः— जो आत्मा और आस्रवो का भेद ज्ञान है वह भी आस्रवो से निवृत्त न हुआ तो वह ज्ञान हो नही है। ऐसा कहने से मिथ्या प्रमाण ज्ञान के अश मिथ्या ज्ञान नय का निराकरण हुआ ।

ऐक देश शुद्ध निश्चय नय के लक्षण उदाहरण कारण व प्रयोजन

८ ऐक देश शुद्ध निश्चय नय का लक्षण

भी उस केवल शुद्ध निश्चय नय वत ही है। अन्तर केवल इतना है कि शुद्ध निश्चय नय तो पूर्ण शुद्ध क्षायिक भावो के साथ जीव की तन्मयता या अभेद देखता है और यह क्षायोपशमिक भाव मे रहने वाले केवल शुद्ध अश के साथ जीव की तन्मयता या अभेद देखता है। शान्ति पथ का एक साधक शुद्ध निश्चय नय के लक्ष्य पर जू जूँ जीवन मे अभ्यास करता हुआ ऊचे ऊचे बढता है तूँ तूँ उसका जीवन अधिक अधिक शान्त होता जाता है। यह ठीक है कि पूर्ण शान्ति मे अभी स्थिरता हुई नही, परन्तु जितनी कुछ भी हुई है वह शान्ति है या अशान्ति, उतने अश मे अभिलाषाए हे या सन्तोष ? कहना होगा कि उतने अश मे तो वह शान्त व सन्तुष्ट है। उतना अश अपने अन्दर पूर्ण है कि अधुरा ? कहना होगा कि उतना अश तो पूरा ही है ।

जैसा कि खोटे स्वर्ण मे रहने वाला स्वर्णाश अपने अन्दर मे पूरा शुद्ध है या कम शुद्ध ? ४ तोले सोने मे ६ माशा ताबा मिला यद्यपि पूरी की पूरी ४½ तोले की डली तो आशिक शुद्ध व आशिक अशुद्ध है, परन्तु क्या उसमे रहने वाले ४ तोले वाले भाग को भी आशिक शुद्ध कहोगे ? जब दृष्टि मे ही उसके दो टुकड़े कर दिये तो

आशिक का प्रश्न ही कहा रह गया उस डली के यदि बाहर मे दो टुकड़े करके पृथक पृथक रख दिये जाये–ऐक तो ४ तोले के स्वर्ण भाग का टुकड़ा और दूसरा ६ माशे के ताम्र भाग का टुकड़ा तो बताओ उस ४ तोले वाले टुकड़े मे आशिक शुद्धता है या पूर्ण शुद्धता कहना होगा की पूर्ण शुद्धता । बजाये बाहर मे पृथक पृथक टुकड़े करने के यदि अन्तरग दृष्टि में ही उसके टुकड़े करके उन्हे उपरोक्त प्रकार पृथक पृथक रखे तो, क्या ४ तोले वाले स्वर्ण भाग मे आशिक स्वर्ण दिखाई देगा या पूरा स्वर्ण ? कहना होगा कि वहा भी बाह्य वत् पूरा ही स्वर्ण दिखाई दे रहा है । आंशिक शुद्धता का ग्रहण तो तभी तक होता है जब तक कि उसे पूरे के पूरे ४½ तोले को एक पदार्थ या एक डली समझते रहें ।

इसी प्रकार अधपके भात मे भी जितना कुछ पक चुका है उतना तो पूरा का पूरा ही पका हुआ है और जितना कच्चा है उतना पूरा का पूरा कच्चा ही है। अभेद रूप देखने पर ही आशिक पका हुआ दीखता है । पर यदिपाक भाग की दृष्टि मे पृथक स्थापना कर ली जाये, तो वह भाग तो अपने अन्दर पूरा का पूरा पका हुआ है । यद्यपि स्वर्ण वत बाहर मे इस पाकांश को भात मे पृथक करके रखा जाना सम्भव नही है परन्तु दृष्टि में ऐसा किया जाना सम्भव है ।

इसी प्रकार साधक जीव की आशिक शान्ति व शुद्धता भी दृष्टि मे पृथक स्थापित करके देखी जा सकती है, भले बाहर मे उसे पृथक करना असम्भव हो । देखना तो यह है कि पृथक स्थापा हुआ व शुद्धता का भाग अपने अन्दर पूर्ण शुद्ध है कि आशिक शुद्ध बस समस्या सुलझ गई । भले ही सारे जीव को देखने पर उस मे आशिक या एक देश शुद्धता दिखाई देती हो पर इस एक देश शुद्धता वाले भाग को उस से पृथक निकाल कर देखने पर वह पूरा शुद्ध ही दिखाई देगा । यही दृष्टि एक देश दृष्टि कहलाती है ।

इस एक देश दृष्टि मे वारी वारी भले शुद्ध भाग को पृथक ग्रहण करके जीव को पूर्ण शुद्ध कहलीजिये या अशुद्ध भाग को पृथक ग्रहण करके जीव को पूर्ण अशुद्ध कह लीजिये । जिस प्रकार कि स्वर्ण भाग को ग्रहण करके ४ तोला पूरा स्वर्ण कह लीजिये या ताम्र भाग को ग्रहण करके ६ माशे पूरा ताम्बा कह लीजिये । एक देश दृष्टि मे दोनो ही अपने अपने स्थान पर पूरे पूरे दिखाई देगे । शुद्धाश को पृथक ग्रहण करने वाली यह एक देश दृष्टि ही एक देश शुद्ध निश्चय नय कहलाती है । इस दृष्टि से साधक अवस्था मे भी जीव सिद्धो वत पूर्ण शुद्ध ही ग्रहण करने मे आता है । अत: कहा जा सकता है कि यह साधक पूर्ण शुद्धोपयोग का कर्ता तथा अनन्त परमानन्द का भोक्ता है ।

आगम मे क्योकि जीवो को ऊचे उठाने की भावना प्रमुख है अत· यहा एक देश शुद्ध निश्चय नय का कथन तो आ जाता है पर एक देश अशुद्ध निश्चय नय का कथन नही किया जाता । अपनी वुद्धि से हम एक देश अशुद्ध निश्चय नय को भी स्वीकार कर सकते है । जितनी कुछ नय आगम मे लिखी है उतनी ही हो ऐसा नियम नही । वहा तो एक सामान्य नियम वता दिया है । उसके आधार पर अन्य नय भी यथा योग्य रूप से स्थापित की जा सकती है । जिस प्रकार साधक के क्षायोपशमिक भाव को एक देश शुद्ध निश्चय नय से क्षायिक वत् पूर्ण शुध्द कहा जाता है उसी प्रकार उस को एक देश अशुध्द निश्चय नय से औदयिक वत् पूर्ण अशुध्द भी कहा जा सकता है । इसमे कोई विरोध नही ।

एक देश शुद्ध निश्चय नय व शुध्द निश्चय नय के उदाहरणो मे कुछ अन्तर नही है, जैसा कि निम्न उध्दरण पर मे जाना जाता है ।

१ प प्र । टीका । ६४।७१।१० "ससारिक सुखदु:ख यद्यप्यशुध्द निश्चयनयेन जीवजनित तथापि शुध्द निश्चयनयेन कर्म-जनित भवति ।"

अर्थ—अशुध्द निश्चय नय से संसारिक सुख दु.ख यद्यपि जीव जनित है। परन्तु शुध्द निश्चय नय से कर्म जनित है। (यह शब्द निश्चय का उदाहरण है)

२. वृ द्र. सं. । टीका । ४८।२०५ "रागद्वेषादय कि कर्मजनिता. किं जीवजनिता इति । तत्रोतर. . . .विवक्षितेक देश शुध्द-निश्चयेन कर्मजनिता भण्यते, तथैवा शुध्द निश्चयेन जीव जनिता इति ।"

अर्थ—'रागद्वेषादिक कर्म जनित है या कि जीव जनित है' ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते है कि विवक्षित एक देश शुध्द निश्चय नय से तो कर्मजनित है और अशुध्द निश्चय नय से जीव जनित है ।

दोनों ही उध्दरणों में औदायिक को कर्म जनित बताया जा रहा है, परन्तु एक मे उसे शुध्द निश्चय का विषय बनाया है और दूसरे मे एक देश शुध्द निश्चय का । अत: दोनों के लक्षण व उदाहरण एक ही समझना ।

उपरोक्त उध्दरणो मे से नं. २ वाले उध्दरण पर से यह बात भी स्पष्टत: जानने मे आती है कि वहा जो उन रागादिकों को अशुध्द निश्चय का विषय बना कर जीव का बताया है, वह एक देश अशुद्धता की अपेक्षा ही है, पूर्ण अशुद्धता की अपेक्षा नही । फिर भी यहा एक देश अशुध्द निश्चय का निर्देश न करके अशुद्ध निश्चय का ही निर्देश किया है । इसी प्रकार आगे अशुध्द निश्चय के उध्दरणों मे सर्वत्र औदयिक व क्षायिपशमिक दोनों भावो को अशुद्ध निश्चय का विषय बनाया जायेगा । वहा अपनी तरफ से यथा योग्य रूप से क्षायोपशमिक भावों का ग्रहण करते समय एक देश अशुध्दता समझ

लेना। विस्तार भय से एक देश अशुध्द निश्चय नय को पृथक ग्रहण न करके अशुध्द निश्चय मे ही गर्भित कर दिया गया।

यहा सक्षेप मे एक देश शुध्द निश्चय नय का लक्षण इस प्रकार किया जा सकता है.——

१. एक देश शुध्दता से तन्मय द्रव्य सामान्य को पूर्ण शुध्द देखना एक देश शुद्ध निश्चय नय है।

अव इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उध्दरण देखिये। उदाहरण भी उन्हीं मे आ जायेगे।

१ वृ. द. स.।टी।८।२२ "अनन्तज्ञान सुखादि शुद्ध भावानां छद्मस्थावस्थाया भावना रूपेण विवक्षितैकदेश शुद्ध निश्चयेन कर्त्ता, मुक्तावस्थाया तु शुद्ध नये नेति।"
अर्थः–एक देश शुद्ध निश्चय से छद्मस्थ अवस्था मे ही भावना रुप से अनन्त ज्ञान सुखादि शुद्ध भावो का कर्ता है और शुद्ध नय से मुक्तावस्था मे।

२ वृ. द्र. स.।टी।४८।२०६ "विवक्षितैकदेश शुद्ध निश्चयेन कर्म जनिता (रागादया) भण्यन्ते।"

अर्थ–विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से रागादि भाव कर्म जनित है जीव जनित नही।

भावार्थः–शुद्ध और अशुद्ध अशो से मिश्रित साधक की अवस्था मे से यदि उसमे पडे हुए शुद्धाश को देखने के लिये जाये तो सिद्धो के शुद्ध भाव मे और इस शुद्ध भाव मे क्या अन्तर है? खोटे सोने मे पडा हुआ शुद्ध स्वर्ण का अश और शुद्ध सोने मे पडा

हुआ शुद्ध स्वर्ण, दोनो मे क्या अन्तर है ? और यदि ऐसा ही है तो उस समय गौण रूप से दीखने वाली उस अशुद्धता को किस की कहे यदि जीव मे देखने लगेगे तो उस का वह शुद्धाश दृष्टि मे न आ सकेगा। भले ही वह रागादि जीव की विभाविक पर्याय हो पर इस समय तो उसकी शुद्धता ही दिखाई दे रही है, अत: रागादि जीव के नही कहे जा सकते। तो फिर किसके कहे ? निमित्त भूत कर्मो के। सिद्धो मे तो रागादि है ही नही इस लिये वहा तो सर्वथा यह प्रसग उत्पन्न ही नही होता।

३. वृ. द्र. स. । टी । ५५ । २२४ "निष्पन्न योग पुरुषापेक्षया तु शुद्धोपयोग लक्षणविवक्षितैकदेश शुद्ध निश्चयो ग्राह्य: ।"

अर्थ—निश्पन्न योग पुरुष की अपेक्षा अर्थात ध्यान निमग्न पुरुष की अपेक्षा तो शुद्धोपयोग लक्षण, विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय से, वहा भी ग्रहण किया जाने योग्य है।

४ वृ. द्र. स. । टी. । ५७ । २३६ "विवक्षितैक देश शुद्ध निश्चयेन पूर्व मोक्षमार्गो व्याख्यातस्तथा पर्याय मोक्ष रूपो मोक्षोद्धपि । नय शुद्ध निश्चयेनेति ।"

अर्थ.—एक देश शुद्ध निश्य नय से पहिले मोक्ष मार्ग का व्याख्यान किया है, उसी प्रकार पर्याय रूप मोक्ष भी है परन्तु शुद्ध निश्चय नय से नही है।

भावार्थ—लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने पर मार्ग नही रहा करता। जब तक लक्ष्य पर नही पहुंचता, साधक दशा मे स्थित है तभी तक मार्ग है। एक देश शुद्ध निश्चय नय साधक के शुद्धाश को विषय करता है। इस

लिये मोक्ष मार्ग इसी नय का विषय हो सकता है। साक्षात शुद्ध नय तो मुक्त जीव की शुद्धता को विषय करता है, अत उसकी अपेक्षा मोक्ष होता है मोक्ष मार्ग नही। साधक की आशिक शुद्ध पर्याय को भी यहा एक देश की अपेक्षा मोक्ष कहा गया है।

६ एक देश शुद्ध नय के कारण व प्रयोजन

क्योकि जीव के आशिक या एक देश शुद्धता को ग्रहण करता है इस लिये तो यह एक देश शुध्द नय है। और क्योकि उस शुद्धाग से तन्मय जीव द्रव्य सामान्य को ही पूर्ण शुद्ध मानता है इस लिये निश्चय नय है। अत. "एक देश शुध्द निश्चय नय" इस का नाम सार्थक ही है। प्रयोजन क्षायिक भाव वाले शुद्ध नश्चय के समान ही समझना। साधक हर समय यह विचारता रहता है कि यह जो तेरे अन्दर मे धीमी धीमी उज्वलता दिखाई देती है, यह तेरा असली स्वरूप है। इस ही मे अधिकाधिक स्थिर रहने का प्रयन्त कर। यह जो रागादि भाव आते प्रतीत होते है वे तो इससे विपरीत स्वभाव वाले कुछ पृथक पृथक से यो ही इस उज्ज्लता के ऊपर तैरते हुए इसे ढकने का निष्फल प्रयास कर रहे है। इनकी तरफ मत देख। उस उज्ज्वलता की ओर ही निरन्तर देख। तू वर्तमान मे सिद्ध है। अब और क्या शेष रहा जो तुझे चाहिये फिर चिन्ता व इच्छायें क्यों? और इस प्रकार एक देश शुद्धता पर दृष्टि को स्थिर करने का अभ्यास करता हुआ वर्तमान मे मोक्षका आनन्द लेने लगता है तथा आगे जा कर साक्षात रूप से उसे प्राप्त कर लेता है।

१० अशुध्द निश्चय नय का लक्षण

शुद्ध निश्चय नय की भाँति अशुद्ध निश्चय नय का भी लक्षण है। अन्तर केवल इतना है कि वहा तो शुध्द भाव के आधार पर जीव द्रव्य का दर्शन कराया जा रहा था और यहा अशुद्ध भाव के आधार पर जीव को दर्शाया जाये गा। वहा तो क्षायिक भावों के साथ तन्मय रहने वाले को जीव कहा गया है और यहा औदायिक व क्षयोपशमिक भावों के अशुद्धाश के साथ तन्मय रहने वाले को जीव कहा जाता है। अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय और अशुद्ध निश्चय नय मे बड़ा अन्तर है। वहा तो गुण गुणी मे भेद दर्शाना इष्ट था, पर यहा द्रव्य के साथ उसकी अशुद्ध पर्याय का अभेद दर्शाना इष्ट है। क्योकि निश्चय नय सामान्य का लक्षण गुण व गुणी मे अभेद दर्शाना ही है।

स्वाश्रित भावों या पर्यायो के साथ तन्मय रहने के कारण निश्चय नय है। शुद्ध भाव भी जीव के अपने है और अशुद्ध भी। यह वात पृथक है कि शुद्ध निश्चय से अशुद्ध रागादि विकारो को जीव का भाव स्वीकारा नही जाता। वह तो इसलिये कि अपने विषय भूत शुध्द द्रव्य पर्याय मे वह दिखाई ही नही देते, बिलकुल उसी प्रकार जिस प्रकार की शुध्द द्रव्यार्थिक के विषय भूत पारिणामिक भाव मे वह दिखाई नही देते थे। परन्तु अशुद्ध निश्चय नय की दृष्टि मे तो जीव साक्षात रूप से रागादिको के साथ तन्मय दीखता है। अत. उस दृष्टि मे वे जीव के ही अपने भाव है जड कर्म के नही।

अशुद्ध औदायिक भावो से तन्मय द्रव्य सामान्य को ही पूर्ण अशुध्द देखना इस नय का लक्षण है।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये:—

१ वृ. द्र स. । टी. । ६ । २१ "अशुद्धनिश्चयस्यार्थ. कथ्यते–कर्मोपाधि समुत्पन्नत्वाद शुद्ध तत्काले तप्ताय. पिण्ड वत्तन्मयत्वाच्च निश्चय, इत्युभयमेलापकेनाशुद्ध निश्चयो भण्यते ।"

अर्थ—अशुद्ध निश्चय नय का अर्थ कहते है–कर्मोपाधि से उत्पन्न होने के कारण जीव के साथ रागादि भाव अशुद्ध है और उस समय तप्त लोह पिण्डवत उस जीव के साथ तन्मय या अभेद होने के कारण निश्चय है। इस प्रकार दोनो के मिलान से रागादिक को जीव स्वरूप कहना अशुद्ध निश्चय से ठीक है ।

२ अन. ध । १ । १०३ । १०८ "... । . .अशुद्धश्च रागाद्या एवात्मेत्यस्ति निश्चय. । १०३ ।"

अर्थ—रागादि ही आत्मा है या रागादि आत्मारूप है ऐसा कहना अशुद्ध निश्चय नय है ।

३ प्र सा. । ता वृ । ८ अशुद्धात्मा तु रागादिना अशुद्ध निश्चयेना शुद्धोपादान कारण भवतीति ।"

अर्थ:—अशुद्ध निश्चय नय से अशुद्ध ससारी आत्मा रागादि के द्वारा अशुद्ध भावो का उपादान कारण होता है ।

४ प्र सा । ता वृ । परि. "अशुद्ध निश्चय नयेन सोपाधिस्फटिक-वत्समस्त रागादि विकल्पोपाधि सहितम् ।"

अर्थ—अशुद्ध निश्चय नय से सोपाधि स्फटिकवत् समस्त रागादि विकल्पो सहित है। अर्थात जिस प्रकार हरे, पीले डाक के सयोग को प्राप्त स्फटिक उज्वल होती हुई

भी उस समय हरी पीली ही दीखती है सो अशुद्ध निश्चय दृष्टि से दीखती है, उसी प्रकार कर्मों के सयोग को प्राप्त आत्मा भी वास्तव मे शुद्ध रहते हुए भी उस समय रागादि रूप ही दीखता है, सो अशुद्ध निश्चय दृष्टि से ही दीखता है। पारिणामिक भाव या स्वभाव ग्राही शुद्ध निश्चय दृष्टि मे तो स्फटिक या आत्मा अब भी अपने अपने उज्वल व चैतन्य स्वभावरूप ही है।

५ नि. सा। ता वृ.। १८ "आत्मा हि अशुद्ध निश्चय नयेन सकल मोह राग द्वेषादिभाव कर्मणां कर्ता भोक्ता च।"

अर्थः–अशुद्ध निश्चय नय से आत्मा सकल मोह रागद्वेषादिभाव कर्मो का कर्ता व भोक्ता है।

६ प क.। ता वृ.। २७। ६०. "अशुद्ध निश्ययेन क्षयोपशमिकौदयिक भाव प्राणैर्जीवति इति जीवो भवति। कर्म कर्म फलरूपया चाशुध्द चेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति। मति ज्ञानादिक्षयोपशमिकाशुध्दोपयोगेन युक्तत्वादुपयोग विशेषता भवति ससार ससारकारण रूपाशुद्ध परिणाम परिणमन समर्थत्वात् प्रभु भाव कर्म रूप रागादि भावानाॅ कर्तृत्वात्कर्ता भवाति।. इन्द्रियजनित सुखदुखानाच भोक्तृत्वाद्भोक्ता भवति।"

अर्थ–अशुद्ध निश्चय से जीव क्षयोप शमिक व औदयिक भाव प्राणो से जीता है इसलिये जीव है। कर्म चेतना व कर्म फल चेतना युक्त होने के कारण चेतयिता है। मति ज्ञानादि क्षयोपशमिक अशुद्धोपयोग सेयुक्त होने के कारण उपयोग लक्षण वाला है। ससार

व ससार के कारण अशुद्ध परिणामो रूप से परिणमन करने की सामर्थ्य वाला होने के कारण प्रभु है। भाव कर्म जो रागादिक भाव उनका करने वाला होने के कारण कर्ता है। इन्द्रियजनित सुख दु:खो को भोगने वाला होने के कारण भोक्ता है। अर्थात् कर्म जनित अशुद्ध परिणामो स्वरूप जीव को बताना अशुद्ध निश्चय नय का विषय है।

७ प. का. ता। वृ। ६१। ११३ "अशुद्ध निश्चयेन रागादयोऽपि स्वभावा भण्यते।"

(अर्थ—अशुद्ध निश्चय नय से रागादि भी जीव के स्वभाव) है।

८ प. प्र.। टी.। १। ६। १५ "भाव कर्म दहन पुनरशुद्ध निश्चयेन"

अर्थः—भाव कर्मो का दहन अशुद्ध निश्चय नय से है। क्योकि अशुद्ध निश्चय नय मे ही उसका अस्तित्व स्वीकारा जाता है। जहा अस्तित्व है वहा ही विनाश सम्भव है। शुद्ध निश्चय नय मे उनका अस्तित्व ही स्वीकारा नही जाता, विनाश किसका होगा।

९. प प्र. टी। ७। १४। ६ "अशुद्ध निश्चय नय सम्बन्ध. मति ज्ञानादि विभाव गुण नरनारकादि विभाव पर्याय सहित (जीव:)।"

अर्थ—अशुद्ध निश्चय का सम्बन्ध ऐसा है जैसे कि जीव को मति ज्ञानादि विभाविक गुण पर्याय और नर नारकादि विभाविक व्यन्जान पर्यायो सहित कहना।

१० प्र.।टी।६४।७१।१० "संसारिक सुख दुःखं यद्यप्य शुद्ध निश्चय नयेन जीव जनितं तथापि शुद्ध निश्चयेन कर्म जनितं भवति।"

अर्थः—संसारिक सुख दुःख यद्यपि अशुद्ध निश्चय नय से जीव जनित हैं, क्योंकि उस समय जीव के साथ पर्याय रूप से तन्मय हैं, परन्तु शुद्ध निश्चय नय से वे कर्म जनित हैं, क्योंकि उस दृष्टि से जीव के स्वभाव में वे दीखते ही नहीं।

११. वृ. द्र.स.।टी.।३।११ "भावेन्द्रियादिः क्षयोपशमिक भाव प्राणाः पुन रशुद्ध निश्चयेन।"

अर्थ—भाव इन्द्रिय आदि क्षयोपशमिक भाव प्राण अशुद्ध निश्चय नय से है, क्योंकि वे जीव की अशुद्ध गुण पर्याय हैं।

१२ वृ.द्र.स.।टी।८।२१ "भाव कर्म शब्द वाच्य रागादि विकल्प रूप चेतन कर्मणाम शुद्ध निश्चयेन कर्त्ता भवति।"

अर्थ—भाव कर्म शब्द के वाच्य जो रागादिक विकल्प रूप चेतन के अपने विभाविक या अशुद्ध परिणाम हैं उनका कर्ता वह अशुद्ध निश्चय नय से है।

१३. वृ.द्र.सी.टी.।६।२३ "अशुद्ध निश्चय नयेन हर्ष विषाद रूपं सुख दुःखंच भुक्ते।"

अर्थ:—अशुद्ध निश्चय नये से तो जीव हर्ष विषाद रूप संसारिक सुख दुःखों का भोक्ता भी है, क्योंकि वे उसकी अपनी ही विभाविक पर्याय है।

१४ वृ द्र स. टी. । १६ । ५३ "अशुद्ध निश्चयेन योऽसौ रागादि रूपो भाव बन्धः कथ्यते सोऽपि शुद्ध निश्चय नयेन पुद्गलबन्ध एव ।"

अर्थः—"अशुद्ध निश्चय नय से जो यह रागादि रूप भाव बन्ध कहा गया है वह शुद्ध निश्चय नय से पुद्गलवन्ध ही है।

१५ वृ द्र स. । टी । ४५ । १९७ "यच्चाभ्यन्तरे रागादि परिहार. स पुनरशुद्ध निश्चये नेति ।"

अर्थः—यह जो अन्तरग के रागादिक का परिहार करना भी कहा जाता है सो भी अशुद्ध निश्चय नय से ही है ।

भावार्थ—होने वाली वस्तु का ही परिहार भी किया जा सकता है। जो बस्तु है ही नही उसका परिहार क्या करे। शुद्ध निश्चय की स्वभाव दृष्टि मे तो रागादि है ही नही अतः उनका त्याग भी उस दृष्टि मे ग्रहण नही किया जा सकता। त्याग करने के पश्चात् जो शुद्धक्षायिक पर्याय प्रगट होती है वह भले शुद्ध पर्याय ग्राहक शुद्ध निश्चय नय से जीव की कह दी, जाये। परन्तु राग का त्याग होने से पहिले वाली उसके परिहार की साधना तो जब तक अधूरी है तब तक शुद्ध निश्चय नय का विषय बन नही सकती। जितकी आशिक शुद्धता प्रगट हुई है वह एक देश शुद्ध निश्चय नय का विषय अवश्य है परन्तु जितनी रागादि की अशुद्धता परिहार करने के लिये अभी अवशेष है वह तो अशुद्ध निश्चय का ही विषय वन सकती है, क्योंकि वह अशुद्ध पर्याय है। परिहार अस्तित्व की अपेक्षा रखता है इस कारण अशुद्ध है ।

१६ वृ. न. च.।११४"ते चैव भाव रूपा जीवे भूता क्षयोपशमाच्च ते भवन्ति भाव प्राणा अशुद्ध निश्चय नयेन ज्ञातव्या । ११४।"

अर्थ —वे भाव रूप है क्योकि जीव म उत्पन्न होते है और क्षयौपशम द्वारा होते है, इसलिये उन मति ज्ञानादि को जीव के भाव प्राण कहते है, ऐया कथन अशुद्ध निश्चय नय का जानना चाहिये ।

१७ आ प ।१६।व, १३० "सोपाधिकविषयोऽशुद्ध निश्चयो, यथा मति ज्ञानादयो जीव इति ।"
(नय चक्र गद्य पृ. २५)

अर्थ =-सोपाधिक भाव अशुद्ध निश्चय के विषय है, जैसे कि मति ज्ञानादिक को जीव कहना ।

११. अशुद्ध निश्चय नय के कारण व प्रयोजन

क्योकि जीव क अशुद्ध भावो को ग्रहण करता है इसलिये तो अशुद्ध है, और क्योकि जीव के अपने ही भावो के साथ उस की तन्मयता दर्शा रहा है इसलिये निश्चय नय है । दोनो बातो के मिलने से इसे अशुद्ध निश्चय नय का कहना ठीक ही है । यह तो इस नय का कारण है ।

अशुद्ध भावों का परिहार कराके शुद्ध भावो मे स्थिरता कराना इसका प्रयोजन है । शुद्ध निश्चय नय से रागादिक विकारी भाव, कर्मो के बताये गये है, जिसे सुनकर यह भ्रम हो सकना सम्भव है कि यह क्रोधादि मेरे तो है ही नही, मै तो वर्तमान मे भी पूर्ण परब्रह्म स्वरूप शुद्ध ही हू । यदि ऐसा हुआ तो महान अनर्थ होगा, क्योंकि इस प्रकार कहते रहना और अपने अपराधो को स्वीकार न करके स्वच्छन्द का पोषण करते रहना, तो, स्व व पर दोनों के लिये

अहितकारी है। शुद्ध निश्चय नय का प्रयोजन स्वच्छन्द का पोषण कराना तो नही था पर क्या करे इस जीव को ऐसी टेव पडी है। यह अपराध करता हुआ भी अपने को अपराधी कहलाना नही चाहता ।

अशुद्ध निश्चय नय जीव को उस के अपराधो का स्वीकार कराता है। स्तम्भ मे यह रागादि भाव देखे नही जाते तो जड़ कर्म मे कैसे हो सकते है ? शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि मे तो दिखाई नही देते थे इसलिये उन को जीव का स्वीकारा न जाता था, पर इस नय की दृष्टि मे तो वे दिखाई देते है । दिखाई ही देते है तो किस के कहें। जीव के न कहे तो क्या कर्मो के कहे ? सो तो सम्भव नही है क्योंकि साक्षात रूप से यह भाव चेतन रूप है। अत भाई ? इनका कर्ता स्वतन्त्र रूप से तू स्वय है, ऐसा अपना अपराध स्वीकार करके इन को दूर करने का प्रयत्न कर । पद पद पर अपना अपराध स्वीकार करता चल, यही इन्हे दूर करने का उपाय है। क्योकि स्वीकार अकेला नही हो रहा है, उसके साथ निन्दन गर्हण भी है ।

रागादिक तो तेरा स्वभाव नही है, तो फिर इनमे क्यो रमता है इन का निषेध करके इनसे दूर अन्तर मे पडे उस परम शुध्द स्वभाविक चैतन्य विलास को लक्ष्य मे क्यो नही लेता, जो शुध्द निश्चय नय का विषय है। इस प्रकार अशुध्दता से हटाकर शुद्ध स्वभाव मे स्थिरता कराना इस नय का प्रयोजन है।

१२ निश्चय नय सम्बन्धी शका समाधान — अब इस नय सम्बन्धी कुछ शंकाओ का समाधान करता हू।

१ **शंका**—आगम पद्धति व अध्यात्म पद्धति मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—आगम पध्दति मे द्रव्य सामान्य का कथन किया जाता है, और अध्यात्म पध्दति मे केवल जीव या आत्म द्रव्य का । आगम पध्दति मे हेयोपादेय की विवक्षा से रहीत पदार्थ को केवल जानने मात्र का प्रयोजन रहता है, परन्तु अध्यात्म पध्दति मे स्व-पर तथा हेय-उपादेयका विवेक कराना प्रधान है ।

२ **शंका**—आगम पध्दति के द्रव्यार्थिक नय मे और अध्यात्म पध्दति के निश्चय नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—द्रव्यार्थिक नय भी द्रव्य के सामान्य व अभेद अंश को ग्रहण करता है, तथा निश्चय नय भी । शुध्द द्रव्यार्थिक भी उसे सम्पूर्ण भेद व विशेषो से निरपेक्ष एक अनिर्व-चनीय तत्व रूप से ग्रहण करता है और शुध्द निश्चय नय भी । इस प्रकार तो दोनों में कोई अन्तर नही । परन्तु उपरोक्त निर्विकल्पता के अतिरिक्त निश्चय नय गुण गुणी मे अभेद दर्शाकर भी अपने सम्पूर्ण भेदों के साथ तन्मय द्रव्य सामान्य को दर्शाता है, जिस प्रकार से कि द्रव्यार्थिक नय नही दर्शाता । दूसरे अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उस तत्व मे गुण-गुणी का भेद डाल देता है पर अशुद्ध भी निश्चय नय इस प्रकार का भेद स्वीकार नही करता । इस पद्धति मे भेद दर्शाना काम व्यव-हार नय का है । इस प्रकार दोनों मे अन्तर है ।

३ **शंका**:—शुद्ध निश्चय नय व एक देश शुद्ध निश्चय नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—शुध्द निश्चय नय का विषय विशुद्ध पूर्ण शुद्ध व्यक्ति अर्थात क्षायिक भाव से तन्मय द्रव्य है, और एक देश

शुद्ध निश्चय नय का विषय आंशिक शुध्द व्यक्ति अर्थात क्षायोपशमिक भाव के शुध्दांश से तन्मय द्रव्य है। शुद्धता के अंश के आधार पर यह द्रव्य को पूर्ण शुद्ध ही कल्पित करता है।

४. **शंका**—इस प्रकार शुद्ध व अशुद्ध निश्चय नय द्रव्य को विषय करने वाले न रहे, क्योंकि शुद्ध जीव या अशुद्ध जीव वास्तव मे त्रिकाली जीव द्रव्य नही है, बल्कि उसकी कोई व्यञ्जन पर्याये है ?

उत्तरः—बात ठीक है। यद्यपि शुध्द व अशुध्द जीव त्रिकाली जीव नही है, परन्तु फिर भी इनको द्रव्य ही कहा गया है, पर्याय नही। कारण कि ये दोनो ही जीव पदार्थ के किसी व्यवहार गम्य एक रूप वाले नही है। इनमे अनेक रूपों या द्रव्य पर्यायो का संग्रह रहने के कारण अनेकता पाई जाती है। इसीलिये पहिले इन को संग्रह नय का विषय बना कर दर्शाया गया है। अत शुध्द व अशुध्द निश्चय नय सामान्य को या द्रव्य को ही ग्रहण करने वाले रहे, विशेष या पर्याय को नही।

५ **शंकाः**—वस्तु स्वरूप की अपेक्षा तो निश्चय नय कि व्यवहार नय दोनो ही सच्ची है, फिर एक निश्चय नय को ही उपादेय क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—ज्ञान की अपेक्षा तो दोनो ही समान रूप से उपादेय है, क्योंकि वस्तु के भेद व अभेद तथा उपादान व निमित्त दोनो ही अंग जानने योग्य है। परन्तु चारित्र की अपेक्षा या मोक्ष मार्ग की अपेक्षा साधक को सब ही अंग उपयोगी पड़ते हो ऐसा नही है। साधना की अपेक्षा

तो एक निश्चय नय ही उपयोगी है, क्योकि इस के द्वारा वस्तु का केवल अभेद व निर्विकल्प सामान्य रूप ही देखा जाता है । निर्विकल्पता के ग्रहण से ज्ञान निर्विकल्प और विकल्पों के ग्रहण से ज्ञान विकल्पात्मक हो जाता है । निर्विकल्प ज्ञान ही निराकुल होने के कारण मुमुक्षु को इष्ट है ।

दूसरे प्रकार से इस की उपादेयता यो भी जानी जा सकती है, कि यह नय निमित्तों आदिक रूप पर के आश्रय का निपेध करके, गुण व दोष सब कुछ उस एक द्रव्य के ही वताता है । इसलिये निश्चय नय से अपने ही जीवन के गुण दोषो का भलीभाति परिचय पा कर, कोई एक मुमुक्ष जीव दोषों को टालने व गुण उपजाने का प्रयत्न करने के लिये अग्रसर होता है । अपने जीवन से अनभिज्ञ केवल व्यवहार नय गम्य निमित्तों की सामर्थ्य को जानने से अपने जीवन का शोधन असम्भव है । इसलिये भी निश्चय नय को उपादेय कहा जाता है ।

वास्तव में नय तो ज्ञानरूप होने के कारण दोनो ही उपादेय है, हेय व उपादेय तो उन के विषय है, ऐसा जानना । इस प्रश्न के सम्बन्ध मे आगम मे भी काफी चर्चा की गई है । जिसमे से कुछ वाक्य यहा उध्दृत करता हू । सक्षेप कथन करने के लिये यहा मूल वाक्य न देकर उनका अनुवाद मात्र देना ही पर्याप्त समझा गया है ।

१. प्र. । ता वृ । २ । ९७ शका—निश्चय नय का कथन किया गया । वह उपादेय । कैसे होती है ?

उत्तर--आत्मा रागादिक अपने भावो ['को ही करता है द्रव्य कर्मो को नही। रागादिक अपने भावों को ही जव वन्ध का कारण जानता है तव रागादिक के विनाशार्थ निज शुद्ध आत्मा को भाता है, जिससे रागादि का विनाश होता है। रागादि के विनाश से आत्मा शुद्ध होता है। इसलिये इसे उपादेय कहा जाता है। अर्थात रागादिक को जब तक अपना अपराध न समझे तव तक उन्हे कैसे त्यागे ?

२. स सा. वृ ४६. शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्धात्मा (या सामान्य आत्मा) जनने मे आया है वह ही उपादेय है ऐसा मानकर ,समाधि मे स्थित हो कर सर्व प्रकार से उसका ध्यान करना योग्य है। अर्थात इस अभिप्राय से वह उपादेय है।

३. स० सा०। आ०। १८.। क० १२२ यहा ऐसा तात्पर्थ जानना कि निश्चय या शुद्ध नय हेय नही है। क्योकि उसके ग्रहण करने से तो बन्ध नही होता है परन्तु उसका त्याग करने से बन्द अवश्य होता है।,

४ पा० प्र० भू। ७१ देह को देख कर जीव को जन्म मरण का भय नही करना चाहिये। 'जो यह अजर व अमर परब्रह्म अत्तर मे प्रकाशमान है। उसे ही तू आत्मा मान'। इस प्रकार दर्शाकर यह नय जीव को भयमुक्त करता है इसलिये उपादेय है।

५.नय. चक्र गद्य पृ ६६-७० जिस प्रकार सम्यक् या सद्भूत व्यहारव से मिथ्या या असद्भूत व्यवहार की निवृत्ति होती है उसी प्रकार निश्चय से समस्त व्यवहार के विकल्पो

की भी निवृत्ति हो जाती है। जिस प्रकार निश्चय से व्यवहार विकल्पों की भी निवृत्ति होती है उसी प्रकार शुद्ध निश्चय के विषय भूत स्वभाव की भावना से निश्चय के एकत्व या अभेद द्रव्य के विकल्प की भी निवृत्ति हो जाती है। इस प्रकर जो यह जीव का शुद्ध स्वभाव है सो ही सर्व नय के पक्षो से अतीत है। अर्थात शुद्ध निश्चय नय ऐसा वताता है इसलिये वह उपादेय है।

६ पं. ध.।पू ।६६३. कर्म कलंकरहित आत्म स्वभाव को जान कर उस शुद्धातात्मा की सिद्धि होना इस का फल है, इसलिये यह नय उपादेय है।

७ मो. मा.प्र.।७।१७।३।३६६।१२. निश्चय नय तिन (व्यवहारिक भेदो) ही को यथावत निरूपण करै है, काहूको काहू विषै न मिलावै है। ऐसे ही श्रद्धान तै सम्ययक्त्व हो है, तातै याका श्रद्धान करना।

८. नय. चक्र. गद्य।पृ. ३२. निश्चय नय परमार्थ प्रतिपादक होने के कारण भूतार्थ है। यहा ही आत्मा को विश्रा त अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। अत. उपादेय है।

१६

व्यवहार नय

१ व्यवहार नय सामान्य का परिचय, २ उपचार के भेद व लक्षण, ३ व्यवहार नय सामान्य का लक्षण, ४ व्यवहार नय के कारण प्रयोजनादि, ५ व्यवहार नय के भेद प्रभेद, ६ सद्भूत व्यवहार का लक्षण, ७ सद्भूत व्यवहार के कारण व प्रयोजन, ८ शुध्द सद्भूत व्यवहार, ९ अशुध्द सद्भूत व्यवहार, १० असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, ११ असद्भूत व्यवहार नय के कारण प्रयोजनादि, १२ उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, १३ अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय, १४ व्यवहार नय सम्बन्धी शंका समाधान ।

१ व्यवहार नय समान्य कापरिचय

अध्यात्म पद्धति के दूसरे प्रमुख तथा सर्व परिचित नय का नाम व्यवहार नय है। भले ही नाम लेकर न सही पर विषय भूत आश्रय की अपेक्षा सर्व साधारण के यही नय नित्य प्रयोग मे आ रहा है नैगमादि सात नयों के अन्तर्गत जिस व्यवहार को कह आये है, उसी का इस व्यवहार नय के प्रकरण मे अनेक भेद प्रभेदों द्वारा विस्तार करने मे आयेगा। क्योंकि व्यवहार नय द्वैत भाव को ग्रहण करता है,और द्वैत अनेक प्रकार से किया जा सकता है। व्यवहार अर्थात वि अव १ हार अर्थात विशेष प्रकार से निश्चित रूप मे

विधिपूर्वक भेद डालना सो व्यवहार है। यह नय वस्तुकी अखडता मे भेद डालता है इसलिये व्यवहार कहलाता है क्योकि वास्तव में तो वस्तु अखण्ड है, अतः गुण पर्याय आदि का भेद करके उसकी व्याख्या करने का जो ढग व्यवहार नय का विषय है, वह उपचार कहने मे आता है। जो वस्तु उस प्रकार की न हो पर किसी प्रयोजन वश उस प्रकार की कहने मे आये उसे उपचार कहते है। उस उपचार का प्रतिपादक होने के कारण इस नय को असत्यार्थ व अभूतार्थ माना जाता है, औरइसी लिये ज्ञानी जन सदा उसका अर्थात उसके विषय भूत भेद कल्पनाओ का आश्रय छोड़ने को कहते रहते है।

२ उपचार के भेद व लक्षण

व्यवहार नय का कथन प्रारम्भ करने से पहले यहां उपचार के भेद प्रभेदों का परिचय पाना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वही व्यवहार नय के लक्षण मूल आधार है। यह उपचार दो प्रकार करने मे आता है–पदार्थ मे भेद करके द्रव्य व उसके अंगो के बीच स्वामी व सम्पत्ति रूप सम्बन्ध स्थापित करना, जैसे ज्ञान जीव का गुण है ऐसा कहना, और दूसरा उनमे कर्ता कर्म या कारण कार्य आदि भावों की स्थापना करना–जैसे जीव ज्ञान द्वारा जानता है ऐसा कहना। दूसरा उपचार है दो भिन्न पदार्थो को एकमेक करके एक का स्वामित्व सम्बन्ध दूसरे के साथ स्थापित करना जेसे यह घर उस व्यक्ति का है ऐसा कहना और उनमें कर्ता कर्म या कारण कार्य आदि भावो की स्थापना करना जैसे इस घर मे वह रहता है ऐसा कहना। उपचार दो प्रकार का हुआ। उसी

का विशेष विस्तार आगम कथित निम्न उध्दरणो के द्वारा दर्शाने मे आया है।

१. आ. प. । १९ । पृ. १२७, "असद्भूतव्यवहार एवोपचार. ।"

अर्थ—असद्भूत व्यवहार को ही उपचार कहते है यह उपचार निम्न नव प्रकार का है।

२. आ० प० १९ । १२७ "अन्यत्र प्रसिध्दस्य धर्मस्य अन्यत्र समारोपणम सद्भूत व्यवहारः ।"

अर्थ—अन्यत्र प्रसिध्द धर्म को अन्यत्र समारोपण करके, कहना सो असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे कर्म सहित जीव को मूर्तीक तथा जड कहना अथवा कार्माण रूप परिणत पुद्रगल द्रव्य को चैतन्य या अमूर्तिक कहना । इसी का विशेष विस्तार निम्न भेद प्रभेदो पर से जाना जा सकता है ।

३ आ. प. ।१९। पृ १२७ "द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये गुणोपचारः, द्रव्ये द्रव्योपचारः गुणे द्रव्योपचारः, गुणे पर्यायोपचारः, पर्याये द्रव्योपचारः पर्यायगुणोपचार इति नवविधोऽ सद्भूत व्यवहार स्यार्थो द्रष्टव्य ।"

अर्थः—अन्य द्रव्य का अन्य द्रव्य मे, अन्य गुण का अन्य गुण मे, अन्य पर्याय का अन्य पर्याय मे, अथवा द्रव्य का गुण मे, द्रव्य का पर्याय मे, गुण का द्रव्य मे, गुण का पर्याय मे, पर्याय का द्रव्य मे, पर्याय का गुण मे, इस प्रकार असद्भूत व्यवहार नय का विषय भूत यह उपचार नौ प्रकार है।

नोट---यह नव प्रकार का उपचार भी स्वजाति विजाति व मिश्रके भेद से ३ भागो मे विभाजित हो जाता है जैसे:-

४. आ. प ।१०।पृ ८२ "असभ्दूतव्यवहारस्त्रेधा । स्वजात्यासद्भूत व्यवहारो, यथा परमाणु बहु प्रदेशीति कथनमिव्यादी । विजात्या सद्भूत व्यवहारो,यथा मूर्तं मतिज्ञायनंतो मूर्त्त द्रव्येण जनितम् । स्वजाति विजाति-"त्यासद्भूत व्यवहारो, यथा ज्ञेये जीवे ऽजीवे ज्ञानमिति कथनम्, ज्ञानस्य विषयात् ।

अर्थ:—असद्भूत व्यवहार नय के भी तीन भेद है-सजाति, विजाति और सजाति विजाति । जो अपने सजातीय पदार्थो मे अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप करे उसे सजाति असद्भूत व्यवहार नय कहते है । जैसे परमाणु को बहुप्रदेशी कहना, क्योकि उसमे अन्य परमाणुओं से मिलने की शक्ति है ।

जो विजाति पदार्थो मे अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म को अन्यत्र समारोप करे, वह विजाति असद्भूत व्यवहार नय है, जैसे मतिज्ञान को मूर्तीक कहना वयोकि वह मूर्त पदार्थो के निमित्त से होता है ।

जो स्वजाति व विजाति दोनों पदार्थो मे अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म को अन्यत्र समारोपण करे वह सजाति-विजातिअसद्भूत व्यवहार नय है । जैसे ज्ञेय रूप जीव ओर अजीव पदार्थों के ज्ञान को घट ज्ञान, पट ज्ञानादि रूप से ज्ञान कहना, क्योकि वे ज्ञान के विषय होते है ।

(वृ. न. च. । २२३.) सजाति विजाति के परस्पर सम्मेलन से यह उपचार यथा योग्य रूप से अनेक विकल्प रूप हो जाता है। उनमे से कुछ विकल्पों का परिचय अगले उद्धरणो मे दिया गया है।

५. आ. प. । १० पृ । ८४ "स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहारो, यथा पुत्रदारादि मम् । विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहारो, यथावस्त्राभरणहेमरत्नादि मम् । स्वजातिविजात्युप चरिता सद्भूत व्यवहारो, यथा देश राज्य दुर्गादि मम् ।"

अर्थ —स्वजाति पदार्थो मे निमित्ति व प्रयोजन के वश से उपचार करना स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार है जैसे पुत्र, स्त्री मेरे है ऐसा कहना । यहा चेतन पदार्थो मे चेतन के स्वामित्व का आरोप है विजाति पदार्थो मे उपचार करना विजाति असद्भूत व्यवहार है जैसे वस्त्रा भूषण स्वर्ण रत्नादि मेरे है ऐसा कहना । यहां अचेतन पदार्थो मे चेतन के स्वामित्व का आरोप है ।

स्वजाति विजाति असद्भूत व्यवहार नय उसे कहते है जो सजाति-विजाति वाले मिश्र पदार्थों मे उपचार करे जैसे देश राज्य व दुर्गादि मेरे है, ऐसा कहना यहा चेतन अचेतन के समूह रूप पदार्थो मे चेतन के स्वामित्व का आरोप है ।

(वृ. न. च. । २४१-४४३.) स्वजाति विजाति के परस्पर सम्मेलन से उपचार यथा योग्य रूप से अनेक विकल्पात्मक हो जाता है । उनमे से कुछ विकल्पो का परिचय इस अगले उद्धरण मे दिया जाता है ।

वृ. न. च. । २२६–२३१. १. स्वजातीय, पर्याये स्वजाति पर्याया रोपणो ऽसद्भूत व्यवहारः (यथा) दृष्ट्वा । व प्रतिविबं भवति स चैवैष पर्यायः । स्वजात्य सद्भूतोप चरितो निज जाति पर्यायः । २२६–१ । २ विजाति गुणे विजाति गुणा रोपणो ऽसद्भूत व्यवहारः यथा मूर्तमिह मतिज्ञान मूर्तिमद द्रव्येण जनितं यस्मात् । यदि न हि मूर्तम् ज्ञान तर्हि कि स्खलितं मूर्त्तेन । २२६–२ । ३. स्वजाति विजाति द्रव्ये स्वजाति विजाति गुणा रोपणो । ऽसद्भूत व्यवहारः (यथा) ज्ञेयं जीवमजीव तदपि च ज्ञान खलु तस्य विषयात् । यो भणत्येतादृशं व्यवहारः सोऽसद्भूत (२२७-१ । ४. स्वजाति द्रव्ये स्वजाति विभाव पर्याया रोपणोऽ सद्भूत व्यवहारः (यथा) परमाणुरेक प्रदेशी बहु प्रदेशी य जल्पति यो हि । स व्यवहारो ज्ञेयो द्रव्ये पर्यायो पचारः । २२७–२ । ५. स्वजाति गुणे स्वजाति द्रव्या रोपणोऽ सद्भूत व्यवहारः (यथा) रूपमपि भणति द्रव्य व्यवहारोऽन्यार्थ सम्भूतः । स खलु यथो पदेश गुणेपु द्रव्याणामुपचारः । २२८ । ६. स्वजाति गुणे स्वजाति पर्याया रोपणोऽ सद्भूत व्यवहारः (यथा) ज्ञानमपि हि पर्यायः परिणमनस्तु ग्रृहते यस्मात् । व्यवहार· खलु जल्प्यते गुणेषूप चरित पर्यायः ॥ २२९ ॥ ७. स्वजाति विभाव पर्याये स्वजाति द्रव्यारोपणोऽ सद्भूतो पचरि· । (यथा) दृष्द्वा स्थूलस्कंध पुद्गल द्रव्यमिति जल्प्यते लोके । उपचार, पर्याये पुद्गल द्रव्यस्य भणति व्यवहारः । २३० । ८. स्वजाति पर्याये स्वजाति गुणा रोपणोऽ सद्भूत व्यवहारः (यथा) दृष्द्वा देह स्थानं वर्ण्यमानं भवत्युत्तमं रूपम् । गुणोपचारो भणितः पर्याये नास्ति सन्देहः । २३१ ।”

अर्थ १. स्वजाति मे स्वजाति पर्याय आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार इस प्रकार जानो जैसे–दर्पण के प्रतिविव को देखकर यह प्रतिबिम्व दर्पण की ही पर्याय है ऐसा कहना । यहा स्वजर्गत द्रव्य की पुद्रगलात्मक पर्याय मे स्वजाति प्रतिबिम्व रूप पुगद्रलात्मक पर्याय का उपचार किया है ।

२ विजाति गुण मे विजाति गुण का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार इस प्रकार जानो जैसे–मूर्तिमान इन्द्रियो के निमित्त से उत्पन्न होने के कारण मतिज्ञान को मूर्त कहना । तथा ऐसा तर्क उपस्थित करना कि यदि यह ज्ञात मूर्त नही है तो मूर्त द्रव्यों स वाधित क्यों हो जाता है । यहा अमूर्तिक गुण मे विजातीय मूर्तिक गुण का उपचार किया गया है ।

३ स्वजाति विजाति द्रव्य में स्वाजाति विजाति गुण का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार इस प्रकार जानों, जैसे जीव व अजीव को ज्ञेय रूप से विपय करने पर ज्ञान को ही, जीव ज्ञान व अजीव ज्ञान कह देना– यथा घट ज्ञान, पुत्र ज्ञान इत्यादि । यहा चेतन ज्ञान मे चेतन व अचेतन रूप स्वजाति व विजाति ज्ञेयो का उपचार किया गया है, ४. स्वजाति द्रव्य मे स्वजाति विभाव पर्याय का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार ऐसा जानो जैसे–परमाणु यद्यपि एक प्रदेशी है परन्तु बहु प्रदेशी स्कन्ध मे बन्धने की शक्ति रखने के कारण इसे बहु प्रदेशी कहा जाता है । यहा पुद्रगल द्रव्य रूप परमाणु मे स्वजाति पुद्गल पर्याय रूप परमाणु

मे स्वजाति पुगद्गल पर्याय रूप स्कन्ध का उपचार किया गया है।

६. स्वाजाति गुण मे स्वजाति पर्याय का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार ऐसा जानो जैसे–ज्ञान भी एक पर्याय है क्योंकि यह परिणमन करने के द्वारा ही ग्रहण करने मे आता है। पर्याय मतिज्ञान को ज्ञान कहना। यहां ज्ञान गुण मे स्वजाति ज्ञान पर्याय का उपचार किया गया है। ७. स्वजाति विभाव पर्याय मे स्वजाति द्रव्यका पर्याय का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार इस प्रकार जानो जैसे–दर्पण के प्रतिबिंब को देखकर यह प्रतिबिम्ब दर्पण की ही पर्याय है ऐसा कहना। यहा स्वजाति द्रव्य की पुद्गलात्मक पर्याय मे स्वजाति प्रतिबिम्ब रूप पुद्गलात्मक पर्याय का उपचार किया है।

२. विजाति गुण मे विजाति गुण का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार इस प्रकार जानो जैसे–मूर्तिमान इन्द्रियों के निमित्त से उत्पन्न होने के कारण मतिज्ञान को मूर्त कहना। तथा ऐसा तर्क उपस्थित करना कि यदि यह ज्ञान मूर्त नही है तो मूर्त द्रव्यो से बाधित क्यों हो जाता है। यहां अमूर्तीक गुण मे विजातीय मूर्तीक गुण का उपचार किया गया है।

३. स्वजाति विजाति द्रव्य मे स्वजाति विजाति गुण का आरोपण-रूप असद्भूत-व्यवहार या उपचार इस प्रकार जानों, जैसे जीव व अजीव को ज्ञेय रूप से विषय करने

पर ज्ञात को ही, जीव ज्ञात व अजीव ज्ञात कह देना— यथा घट ज्ञान, पुत्र ज्ञान इत्यादि। यहा चेतन ज्ञान मे चेतन व अचेतन रूप स्वजाति व विजाति ज्ञेयों का उपचार किया गया है, ४. स्वजाति द्रव्य मे स्वजाति विभाव पर्याय का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार ऐसा जानो जैसे—परमाणु यद्यपि एक प्रदेशी है परन्तु बहु प्रदेशी स्कन्ध मे बन्धने की शक्ति रखने के कारण इसे बहु प्रदेशी कहा जाता है। यहॉ पुद्गल द्रव्य रूप परमाणु मे स्वजाति पुद्गल पर्याय रूप स्कन्ध का उपचार किया गया है ।

५. स्वजाति गुण मे स्वजाति द्रव्य के आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार ऐसा जानो—जैसे मूर्त गुण के कारण द्रव्य को ही मूर्त कहना। यहा पुद्गल के मूर्त गुण मे स्वजाति पुद्गल द्रव्य का उपचार किया है ।

६. स्वजाति गुण मे स्वजाति पर्याय का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार ऐसा जानो जैसे—ज्ञान भी एक पर्याय है क्योकि यह परिणमन करने के द्वारा ही ग्रहण करने मे आता है। अर्थात मति ज्ञान को ज्ञान कहना। यहा ज्ञान गुण मे स्वजाति ज्ञान पर्याय का उपचार किया गया है।

७. स्वजाति विभाव पर्याय मे स्वजाति द्रव्य का आरोपण रूप असद्भूत—व्यवहार या उपचार ऐसा जानो जैसे—स्थूल स्कन्ध को देखकर 'यही पुद्गल द्रव्य है' ऐसा लोक मे माना जाता है। यहा स्कन्ध रूप पुद्गल पर्याय में स्वजाति पर्याय का उपचार किया गया है ।

८. स्वजाति पर्याय में स्वजाति गुण का आरोपण रूप असद्भूत व्यवहार या उपचार ऐसा जानो जैसे--देह के वर्ण विशेष को देखकर 'यह उत्तम रूप वाला है' ऐसा कहना। यहां वर्ण या रूप गुण की एक पर्याय विशेष मे स्वजाति रूप गुण की एक पर्याय विशेष मे स्वजाति रूप गुण का उपचार किया गया है।

तथा इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना जैसे कि--

६. वृ. न च. । ११३ "मनोवचन काय इन्द्रियाण्यानपानप्राणा आयुष्क च यज्जीवे । तदसद्भूतो भणति हु व्यवहारो लोक मध्ये । ११३ ।"

अर्थः--मन, वचन, काय, पांच इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास व आयु इन दस प्राणों से जो जीता है वह जीव है' ऐसा असद्भूत व्यवहार नय से लोक में कहा जाता है। यहा पुद्गल द्रव्यात्मक पर्यायों मे विजाति जीव द्रव्य की जीवत्व पर्याय का आरोपण किया गया है।

७. आ. प. । १५ । पृ. १०८ "असद्भूत व्यवहारेण कर्म नो कर्मणोरपि चेतन स्वभाव. । . . . जीवस्याप्य सद्भूत व्यवहारेण मूर्त स्वभाव ।...असद्भूत व्यवहारे णोपचरित स्वभाव. ।"

अथ:--असद्भूत व्यवहार नय से कर्म व नो कर्म भी चेतन स्वभावी है, और जीव भी अचेतन व मूर्त स्वभाव वाला है । इसी प्रकार असद्भूत व्यवहार नय से उपचरित स्वभाव है यहा पुद्गल द्रव्य मे विजाति चेतन गुण का और चेतन द्रव्य मे विजाति अचेतन वा मूर्त गुण का आरोप किया है।

८. प. ध. । पू०. ५३० स यथा वर्णादिम । मूर्त द्रव्यस्य कर्म किल मूर्तम् । तत्सयोगत्वादिह मूर्ताः क्रोधादयोऽपि जीव भावाः । ५३० ।"

अर्थ —वर्णादिमान मूर्त द्रव्यों से निर्मित कर्म ही यद्यपि मूर्त है जीव के भाव नही, फिर भी उनके सयोग से उत्पन्न होने के कारण जीव के क्रोधादि भावो को भी सिद्धान्त में मूर्त कह दिया जाता है ।

यहा स्वपर्याय मे विजाति द्रव्य का आरोप किया है । गुण गुणी आदि रूप से नही बल्कि कर्ता कर्मादि रूप से भी यह सब उपचार करने मे आते हैं ।

९. आ. पा. ।१९। पृ. १२८"सश्लेप , परिणाम परिणामी सम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेय सम्बन्ध , ज्ञानज्ञेय सम्बन्धः, चारित्रचर्या- सम्बन्धश्चेत्यादि सत्यार्थः असत्यार्थ. सत्यासत्यार्थश्चेत्यु- पचरितासद्भूतव्यवहार नयस्यार्थः ।"

अर्थः—सश्लेष सम्बन्ध, परिणाम परिणामी सम्बन्ध, श्रद्धा श्रद्धेय सम्बन्ध, ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध, चारित्र चर्या सम्बन्ध इत्यादि प्रकार के अनेको सम्बन्ध सत्यार्थ अर्थात स्वजाति द्रव्यो मे भी हो सकते है, असत्यार्थ अर्थात विजाति द्रव्यो मे भी हो सकते है, तथा सत्यासत्यार्थ अर्थात उभय या स्वजाति व विजाति के समूह रूप द्रव्यो मे भी हो सकते है । ये सब प्रकार के सम्बन्ध ही उपचरित अस- द्भूत व्यवहार नय के विषय है ।

इनके अतिरिक्त यह उपचार अनैकों प्रकार करने मे आता है ।

जैसे

(१) कारण मे कार्य का उपचार यथा दुख के कारण रूप हिंसादि पापो को ही दुख कहना या प्राणो के कारण भूत धन व अन्न को ही प्राण कहना।

(२) कार्य मे कारण का उपचार यथा घट के कारण से उत्पन्न होने वाले ज्ञान कार्य को ही घट ज्ञान कहना।

(३) अल्प मे पूर्णता का उपचार जैसे अणुव्रत को ही महाव्रत कहना या अधिक घूमनेवाले व्यक्ति को सर्वगत कहना।

(४) भावि मे भूत का उपचार जेसे कर्म क्षपणा के अभाव मे भी आठवे गुणस्थान मे स्थित जीव को क्षपक कहना। तथा इसी प्रकार अन्य भी।

३. व्यवहार नय सामान्य का लक्षण इस प्रकार लोक मे एक द्रव्य मे दूसरे द्रव्य का, एक गुण मे दूसरे गुण का, एक पर्याय मे दूसरी पर्याय का, एक जाति के द्रव्य गुण पर्यायो मे भिन्न जाति के द्रव्य गुण पर्यायो का परस्पर स्वामित्व सम्बन्ध या कर्ता कर्मादि सम्बन्ध जोड़कर आरोपण करने का व्यवहार प्रचलित है। यही उपचार व्यवहार नय का विषय है।

वास्तव मे देखा जाये तो द्रव्य गुण पर्याय के एक रस रूप अखण्ड द्रव्य में "यह द्रव्य और यह उसका गुण या पर्याय, तथा यह द्रव्य या गुण कारण और यह पर्याय कार्य" ऐसा भेद करना युक्त नही है। एक ही अखण्ड पदार्थ मे किस को किस का स्वामी या किस को किस का कर्ता कहे? इसलिये एक पदार्थ मे भेद डालकर कथन करने को उपचार कहते है। और इसी प्रकार दो भिन्न पदार्थो

मे उपरोक्त प्रकार एकत्व दर्शाना भी युक्त नही है। पृथक पदार्थो मे या जो सर्वदा साथ रहने वाले या किये कराये जाने वाले नही है उनमे, 'यह उसका है, या इसका वह कर्ता या भोक्ता है, ऐसा कहना बनता नही । भले ही लौकिक व्यवहार मे इस प्रकार के उपचारो का नित्य प्रयोग करने मे आता हो पर वह यथार्थ नही है क्योंकि वस्तुभूत नही है ।

इस प्रकार व्यवहार नय के निम्न तीन लक्षण हैः–

१. एक अखण्ड पदार्थ मे भेद का उपचार करना ।

२. अनेक पृथक पदार्थो मे अभेद का उपचार करना ।

३. लौकिक रूढि के प्रयोगों को सत्य मानना ।

इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उदाहरण देखिये ।

१. लक्षण नं १ (अभेद में भेद.–

१ न. च. गद्य। पृ. २५. "भेदोपचाराभ्यां वस्तु व्यवहरतीति व्यवहार ।"

अर्थ– भेद व उपचार द्वारा वस्तु मे जो भेद डालती है, सो व्यवहार है ।

२ प ध. । २। ५२२. "व्यवहरण व्यवहारः स्यादिति शब्दार्थो न परमार्थः । स यथा गुणगुणिनोरिह सदभेदे भेदकरणां स्यात् । ५२२ ।"

अर्थ–व्यवहरण अर्थात भेद करने को व्यवहार कहते हैं। यह भेद शाब्दिक ही होता है परमार्थ य वस्तुभूत नहीं । वह

ऐसा है जैसे कि सत् रूप से गुण व गुणी मे अभेद होते हुए भी उनमे भेद करना ।

३. गो. सा. जी. । मू । ५७२ । १०१६ "व्यवहारश्च विकल्पो भेदस्तथा पर्ययित्येकार्थः । . . . . । ५७२ ।"

(अर्थ.—व्यवहार, विकल्प, भेद या पर्याय ये सब एकार्थ वाची है ।)

४. वृ. न. च ।२६२ "यः स्याभ्देदोपचार धर्भाणां करोति एक-वस्तुनः । स व्यवहारो भणितः. . . . ।२६२ ।"

अर्थ.– जो एक अखण्ड वस्तु के धर्मो का भेदोपचार करता है वह व्यवहार कहलाता है ।

५. अन. ध. ।१।१०१।१०८ "कर्त्राद्या वस्तुनो भिन्नायेन निश्चय सिद्धये । साध्यन्ते व्यवहारोऽसो. . . . ।१०२"

अर्थ—निश्चय नय को सिद्ध करने के लिये जीवादिक पदार्थों मे कर्ता कर्मादि कारकों को जो भिन्न रूप से बताने वाला है उसको व्यवहार नय कहते है ।

६. द. पा. । २ । पं. । जयचन्द पृ. ५ । २५ "एक देश को प्रयोजन वश तै सर्वदेश कहना सो व्यवहार है ।"

७. प. ध ।पू. । ५९९ "व्यवहारः स यथा स्यात्सद्द्रव्यं ज्ञानवांश्च जीवो वा । . . . . ।५९१"

(अर्थ—व्यवहार तो ऐसा है जैसे कि द्रव्य सत् या जीव को ज्ञानवान कहना ।)

८. स. सा. । आ. ।१६ । क. १७ "दर्शनज्ञानचारित्रेस्त्रिभिः परिण-तत्वतः । एको पि त्रि स्वभावत्वाद व्यवहारेण मेचकः १७ ।"

(अर्थ—एक होते हुए भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों के द्वारा परिणत होने के त्रिस्वभाव के कारण व्यवहार से आत्मा मेचक अथवा भेद रूप है।)

९. पं. क.। भाषा।४७।९४ "एक वस्तु मे भेद दिखाया जाये उसका नाम एकत्व व्यवहार कहा जाता है।

२. लक्षण न. २ (भेद रूप भिन्न द्रव्यों में अभेदोपचार):-

१. स. सा आ। ।२७२ "पराश्रितो व्यवहारनय."

(अर्थ–दूसरे द्रव्य के आश्रित कथन करना व्यवहार नय है।)

२. त. अनु।२९ "व्यवहारनयो भिन्नकर्तृकर्मादिगोचरः।२९।"

अर्थः—व्यवहार-नय भिन्न द्रव्यो मे कर्ता कर्म आदि बताता है।)

३ श्ल. वा.।पु.२।पृ.५८५।८ "दो द्रव्य के सम्मेल से बने अशुद्ध द्रव्य को जानना रूप प्रयोजन को धारने वाला व्यवहार नय है।"

अन्य वस्तु मे अन्य वस्तु का आरोपण अन्य के

न. ४. द. पा.।२।प जयचन्द पृ. ५।२६ "निमित्त तै तथा प्रयोजन के वश तै करिये सो भी व्यवहार है।"

५. प. का. भाषा।४७.।९४ "जहा पर भिन्न द्रव्यो मे एकता का सम्बन्ध दिखाया जाये उसका नाम पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है।"

६. प्र. सा.।त. प्र।२।९७ 'यस्तु पुद्गलपरिणामात्मककर्म स एंव पुण्यपापद्वैत, पुद्गल परिणाम स्यात्मा कर्ता, तस्योप-

दाता हाता चेति, सो शुद्ध द्रव्य निरुपणात्मको व्यवहार नयः।"

(अर्थ—जो कि पुद्गल की पर्याय रूप कर्म है वह ही पुण्य व पाप है। उन पुग्द्रल पर्यायों का कर्ता, उपदाता या हाता अर्थात घातक यह आत्मा है, ऐसा अशुद्ध द्रव्य का निरुपण करने वाला व्यवहार नय है।

७. नि. सा.। ता. वृ.। ९ "व्यवहारेण द्रव्य प्राण धारणाजीवः।
(अर्थः—व्यवहार नय से द्रव्य प्राणो को धारण करने के कारण जीव है।)

८. प.का.।ता. वृ.।२७।६० द्रव्य प्राण धारण करने से जीव है। का भावार्थ भाव कर्मो के निमित्त भूत पुद्रगल कर्मों को करने से कर्ता है। शुभाशुभ कर्मो के फलस्वरूप इष्टानिष्ट विषयों की भोगने से भोक्ता है। देह मात्र है। कर्मो के साथ एकमेक रहने के कारण मूर्त हैं। चैतन्य परिणामों के अनुरूप पुद्रगल परिणाम रूप जो कर्म उनसे सयुक्त होने के कारण कर्म सयुक्त है। ऐसा जीव का स्वरूप व्यवहार नय से है।

९. मो. मा. प्र.। ७।१७।३।३६९। ८ "व्यवहार नय स्वद्रव्य परद्रव्य को वा तिनके भावनिकौ, वा कारण कार्यादिककौं काहू कौ काहू मे मिलाकर निरूपण करै है।"

१०. स. सा.। मू.। ५९. "तथा जीवे कर्मणां नो कर्मणां चदृष्ट्वा वर्णं। जीवस्यैष वर्णो जिनैर्व्यवहारत उक्तः। ५९॥"

अर्थ—जैसे पथिकों के चलने के कारण "यह सडक चलती है" ऐसा कहा जाता है वैसे ही जीव में कर्मों व नो कर्मों या शरीर के वर्ण को देख कर "यह जीव का रंग है" ऐसा व्यवहार नय से कहा गया है।

३ लक्षण न. ३ (लौकिक रूढि)—

१. स. सा. । आ० । ८४ "कुलालः कलशं करोत्यनुभवति चेति लोकानामनादि रूढोऽस्ति ताव द्वयवहार।"

अर्थ—कुलाल या कुम्हार कलश बनाता है तथा उसे भोगता है ऐसा कहना लोगों की अनादि रूढ़ि है, सो ही व्यवहार है।

२. प० ध० । ५० । ५६७ "अस्ति व्यवहारः किल लोकानाम यमलब्धबुद्धित्वात् । योऽयमनुजादि वपुर्भवति सजीवस्ततोप्यन न्यत्वात् । ५६७ ।"

अर्थ—अलब्ध बुद्धि साधारण लोगों का यह कहना व्यवहार है कि यह जो मनुष्यादिकों का शरीर है वह जीव है क्योंकि यह जीव के साथ एकमेक होकर रहता है, उससे अन्य नही है।,

४ व्यवहार नय सामान्य के कारण व प्रयोजन

क्योकि अभेद वस्तु में भेद डाल कर कथन करता है इसलिये इस का 'व्यवहार' ऐसा नाम सार्थक है। वस्तु सर्वथा एक हो ऐसा नही है। एक ही वस्तु मे भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य देखने मे आते हैं, जैसे एक ही आम मे रस व रूप व गन्ध व स्पर्श चार बातें देखने मे आती हैं

तथा एक जीव मे ज्ञान व सुख दुःख आदि देखने मे आते हैं। यह भिन्न भिन्न बाते भले ही अभेद रूप से एक द्रव्य मे एकमेक हुई पड़ी हों पर इन का अनुभव व स्वाद भिन्न रूप से ग्रहण करने मे आता है, तथा उन भिन्न भिन्न कार्यो से हमारे एक प्रयोजन की नही बल्कि भिन्न भिन्न प्रयोजनों की सिद्धि होती है। जो प्रयोजन एक कार्य से सिद्ध होता है वह उस से ही सिद्ध होता है दूसरे से नही—जैसे स्वाद का विषय पूरा करने का प्रयोजन आम के रस से ही सिद्ध होता है उसके रंग से नहीं। इस प्रकार का भेद दीख अवश्य रहा, है, इस लिये वस्तु मे भेद डालकर समझा या समझाया जाना अवश्य सम्भव है, भले ही वस्तु रूप से वे भेद पृथक पृथक न किय जा सके। बस यही इस नय की उत्पत्ति का कारण है, क्योंकि यदि यह भेद सर्वथा वस्तु मे न होते तो भेद ग्रहण करने वाला ज्ञान भी न होता। फिर यह नय भी कहा से आता।

यद्यपि वस्तु की अखण्डता को कलकित करके कहने वाला यह नय असत्यार्थ है। क्योकि वस्तु न तो वैसी भेद रूप वास्तव मे है जिस प्रकार की कि शब्दों द्वारा यह कहता है, न ही अभेद द्रव्य मे कर्ता कर्म आदिक भाव उत्पन्न किये जा सकते है। जीव ज्ञान है और ज्ञान जीव है, फिर कौन किसको जाने, सब एक मेक ही तो है। जिसको जानता है वह भी जीव है और जो जानता है वह भी जीव है और जिसके द्वारा जानता है वह भी जीव है, फिर किसको कर्ता कहे, किसको कर्म कहे और किसको कारण कहे। तथा दो भिन्न भिन्न द्रव्यो में एकत्व दर्शाना भी असत्यार्थ है, क्योकि तीन काल मे दो द्रव्य मिल कर एक बनने कभी सम्भव नही। एक पदार्थ को दूसरे का कर्ता या स्वामी कहना वस्तु की शक्ति व स्वभाव की स्वीकृति से इन्कार करना है। वस्तु स्वभाव की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र रूप से अपने गुण व पर्यायों की ही

स्वामी है किसी अन्य वस्तु की नही, और स्वतत्र रूप से प्रत्येक क्षण परिवर्तन पाती हुई अपनी पर्यायो की ही कर्ता है किसी दूसरी वस्तु की नही, और स्वतत्र रूप से अपने स्वभाव द्वारा ही अपनी पर्यायो को उत्पन्न करती रहने के कारण अपनी ही उन पर्यायो की कारण है अन्य की नही । फिर भी लोक मे अन्य द्रव्य का अन्य के साथ कर्ता कर्म, कार्य कारण या स्वामित्व सम्बन्ध जोड़ने की अनादि रूढि है, जो भले ही लौकिक व्यवहार की अपेक्षा या कर्म धारा की अपेक्षा सत्य व प्रयोजनीय हो पर पार लौकिक व्यवहार की अपेक्षा या ज्ञान धारा की अपेक्षा तो असत्य व अप्रयोजनीय ही है । अत. स्व मे भेद डालने के कारण तथा पृथक पदार्थों मे एकत्व स्थापित करने के कारण, दोनो ही कारणो से यह व्यवहार नय असत्यार्थ व अभूतार्थ है । इसी लिये ज्ञानी जनसदा इसका आश्रय छोडने को कहते है । शान्ति मार्ग के अन्दर भी यह वाधक है क्योकि इसके आश्रय से राग व विकल्प उत्पन्न होते है ।

फिर भी यह सर्वथा हेय हो ऐसी बात नही । भले ही चारित्र की अपेक्षा यह हेय हो पर ज्ञान की अपेक्षा तो यह उपादेय ही है । क्योकि एक प्राथमिक अनिष्णात व्यक्ति को किसी भी अदृष्ट व अपरिचित वस्तु का परिचय इसकी सहायता के बिना कैसे दिया जा सकता है ? अभेद वस्तु तो शब्द गोचर नही, और समझने व समझाने का साधन एक मात्र शब्द है । वस्तु सामने हो तो चलो दिखाकर बिना वोले ही समझा दी जाये पर आत्मा जैसी अदृष्ट वस्तुको तो सर्वथा विना वोले वताया ही नही जा सकता । दृष्ट वस्तुको भी केवल देखकर ही पहिले पहिल समझा नही जा सकता, जैसे स्वर्ण को देखने मात्र से अथवा रेडियो मे पड़े तारों के जाल को देखने मात्र से क्या उसकी विशेपतायें या वनावट समझ मे आ सकती है ? अत: प्राथमिक अवस्था मे कोई भी पदार्थ, दृष्ट हो कि अदृष्ट, विना बताये समझौ या

समझाया नही जा सकता। या यह कह लीजिये कि गुरू व शिष्य के मध्य शब्द ही एक मात्र माध्यम या सहारा है। शब्द व्यवहार के बिना गुरू शिष्य सम्बन्ध ही हो नही सकता। और गुरू शिष्य सम्बन्ध के बिना लौकिक कि पार लौकिक कोई भी मार्ग की प्रवृति हो नहीं सकती।

अत: शब्द व्यवहार अत्यन्त उपकारी है। शब्दो द्वारा अभद आत्मवस्तुको न जाने तो निश्चय नय का विषय किसे कहेगे। अत: शब्द व्यवहार द्वारा ही तो निश्चय के विषय में प्रवृति होनी सम्भव है। फिर शब्द व्यवहार की बिल्कुल उपेक्षा कैसे की जा सकती है? यदि शब्द व्यवहार न हो तो निश्चय नय भी न हो, या यह कहिये कि यदि व्यवहार नय न हो तो निश्चय नय भी कोई वस्तु न रहे, क्योंकि निश्चय सीधे रूप मे शब्द गम्य नहीं व्यवहार नय का भेद रूप विषय ही शब्द गम्य है। इसी लिये व्यवहार नय को ज्ञान का साधन कहा जाता है और निश्चाय नय के ज्ञान को साध्य।

ज्ञान की भाति चारित्र मे भी समझना। समस्त संकल्प विकल्पों का अभाव करके एक मात्र, अन्तस्तत्व मे अद्वैतता को प्राप्त उपयोग की स्थिरता ही वास्तव मे चारित्र है। पर प्राथमिक जनों के लिये क्या एकदम ऐसा किया जाना सम्भव है? चारित्र के अनेकों प्रवृत्ति रूप भेदो अर्थात व्रत समिति गुप्ति आदि के अन्तरंग विकल्पो, तथा अनेकों निवृति रूप भेदों अर्थात उन व्रतादि मे बाधक बाह्य वस्तुओं के त्यागों, के अभ्यास के बिना कोई चाहे कि मै वह अभेद निश्चय चारित्र प्राप्त करलू सो असम्भव है। कहा जा सकता है, पर किया नही जा सकता। लक्ष्य मे लिया जा सकता है पर बिना अभ्यास-मार्ग के प्राप्त नही किया ज सकता। वह अभ्यास मार्ग तो आंशिक निवृत्ति रूप व आशिक प्रवृत्ति रूप है-या यों कहिये कि

उस वास्तविक अभेद चारित्र के अंश या भेद रूप है । इसी, लिये जब उस यथार्य पूर्ण अखण्ड चारित्र को निश्चय चारित्र कहते है तो उसके आशिक अग या भेद रूप इस अभ्यासगत चारित्र को व्यवहार चारित्र कहते है । बिना व्यवहार चारित्र के अभ्यास को अगीकार किये निश्चय अभेद चारित्र अगीकार किया जाना असम्भव है । अत यहां भी व्यवहार चारित्र साधन है और निश्चय चारित्र साध्य है ।

सम्यक्त्व के विषय मे भी शुद्धात्मानुभव रूप निश्चय सम्यक्त्व तो अदृष्ट है, अत. उससे पहिले साक्षात शुद्धात्मस्व रूप वीतराग देव, शुद्धात्म की प्रवृति स्वरूप वीतराग गुरू तथा शुद्धात्म की प्रतिपादक वीतराग वाणी इन तीनो बाह्य पदार्थो का श्रद्धान रूप व्यवहार सम्यक्त्व होना अत्यन्त आवश्यक है । क्योकि उनके दर्शन से ही शुद्धात्म रूप निश्चय सम्यक्त्व का दर्शन होता है, उन पर श्रद्धान करने से ही उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करने के प्रति रूचि जागृत होती है । इस प्रकार व्यवहार सम्यक्त्व साधन है और निश्चय सम्यक्त्व साध्य है ।

सिद्ध हुआ कि ज्ञान की अपेक्षा या चारित्र की अपेक्षा या सम्यक्त्व की अपेक्षा तीनो ही प्रकार से व्यवहार नय साधन है और निश्चय नय साध्य है । बिना ज्ञान के श्रद्धा या लक्ष्य भी बनना असम्भव है अत: उस लक्ष्य को बनाने के लिये भी प्राथमिक अवस्था मे व्यवहार नय का आश्रय अत्यन्त आवश्यक है । इस प्रकार उस व्यवहार नय का उपकार कैसे भूला जा सकता है । निश्चय नय की सिद्धि के लिये या तीर्थ प्रवृति के लिए प्राथामिक अवस्था मे व्यवहार ही आश्रय करने योग्य है । हा पीछे से जू जू लक्ष्य के निकट पहुंचता रहता है तू तू उसका आश्रय छूटता जाता है और निश्-चय या अभेद का आश्रय प्रगट होता जाता है । पूर्णता हो जाने पर

व्यवहार कां आश्रय पूर्णतः छूट जाता है और निश्चय का आश्रय पूर्णताः हो जाता है। तब तो निश्चय व व्यवहार का विकल्प भी उठाया नहीं जा सकता।

सब कुछ कहने का तात्पर्य यह है कि लक्ष्य तो पूर्णता का होता है, अतः श्रद्धा, रूचि व लक्ष्य मे तो निश्चय नय ही प्रधान व ग्राह्य है और व्यवहार नय हेय है। परन्तु अल्प भूमिकाओं की प्रवृत्ति के मार्ग में व्यवहार नय भीप्रधान व ग्राह्य है। यही इस नय का प्रयोजन है।

परन्तु यह बात कहनी उसी समय सार्थक है जबकि लक्ष्य निश्चय पर से न डिगे। निश्चय व व्यवहार नय का अर्थ यहां तीनों प्रकार से जानना योग्य है। ज्ञान की अपेक्षा निश्चय का अर्थ है अभेद वस्तु का ज्ञान, चारित्र की अपेक्षा निश्चय का अर्थ अभेद रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि और, सम्यक्त्व की अपेक्षा निश्चय का अर्थ है अखण्ड ज्ञायक स्वभावी शुद्धात्मा का श्रद्धान। इसी प्रकार ज्ञान की अपेक्षा व्यवहार का अर्थ है एक वस्तु मे गुण गुणी के द्वैत रूप ज्ञान अथवा निमित नैमितिक दो पदार्थो का कथांचित अद्वैत रूप ज्ञान, चारित्र की अपेक्षा व्यवहार का अर्थ है विकल्पात्मक भेद चारित्र अर्थात अन्तरंग मे व्रत समिति आदि को पालने का विकल्प तथा बाह्य मे देव शास्त्र गुरू आदि शुभ निमित्तो के ग्रहण का विकल्प अथवा विषय भोगों के कारणभूतअशुभ निमित्तों के त्याग का विकल्प; और सम्यक्त्य की अपेक्षा व्यवहार का अर्थ है देव शास्त्र गुरू आदि बाह्य पदार्थो के प्रति दृढ़ श्रद्धान। ज्ञान, चरित्र, व सम्यक्त्व तीनों का यह व्यवहारिक रूप उसी समयसार्थक है जबकि दृष्टि बराबर उस अखण्ड वस्तु तथा निर्विकल्प चारित्र तथा अखण्ड ज्ञानस्वामी शुद्धात्मा रूप निश्‍चय पर टिकी रहे। इसे ही कहते है निश्चय सापेक्ष व्यवहार का सम्यक् ग्रहण।

नयों की परस्पर सापेक्षता का क्या अर्थ है यह बात अध्याय नं. ९ मे दर्शाई जा चुकी है ।

यहा व्यवहार नय का उपकार दर्शाने के लिये कुछ आगम वाक्यो का अनुवाद उद्धृत करता हू ।

नय चक्र गद्य । पृ शका व्यवहार की असत्य कल्पना किस लिये करते हो (पृ. ३१) ?

उत्तर –उस व्यवहार के विकल्पो से छटने तथा रत्नत्रय की सिद्धि के अर्थ (पृ. ३१) । स्वभाव से निरपेक्ष बुद्धि को मूढता कहते है, उस मूढता की निवृति के अर्थ (पृ. ५२) । असत् कल्पना की निवृत्ति के अर्थ (पृ. ५३) । व्यवहारत्व के भेदो को श्रद्धेय रूप से उपादेय समझने के अर्थ (पृ. ६८) ।

२. वृ. द्र. स । टी. । ४२ । १८३ "निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मद्रव्यं उपादेय: । शेषं च हेयमिति सक्षेपेण हेयोपादेय भेदेन द्विघा व्यवहार ज्ञानमिति ।"

(अर्थ –निश्चय से स्वकीय शुद्धात्म द्रव्य उपादेय है और शेष सब हेय है, इस प्रकार सक्षेप मे हेयोपादय रूप द्वैत ज्ञान को व्यवहार कहते है)

३. मो. मा. प्र. । ७ । १७५ निश्चय के अंगीकार कराने कों व्यवपृ. ३७० । १२ हार का उपदेश देते है ।

४. पु सि उ. । ८ "व्यवहार निश्चयो यः प्रबुध्य तत्वैन भवति

मध्यस्थः। प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकल शिष्यः।८।"

(अर्थ—व्यवहार तथा निश्चय इन दोनो नयों को जानकर जो वस्तुतः अर्थात अन्तरग अभिप्राय या लक्ष्य में मध्यस्त हो जाता है, वही शिष्य देशना का अर्थात इन नयों के उपदेश का अविकल फल प्राप्त करता है।)

५ व्यवहार नय के भेद प्रभेद

व्यवहार नय के दो प्रमुख लक्षणों पर से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि व्यवहार नय दो प्रकार का है—एक तो अखण्ड वस्तु मे भेद डालकर एक को अनेक भेदों रूप देखने वाला, और दूसरा अनेक वस्तुओं मे परस्पर एकत्व देखने वाला। पहिले प्रकार का व्यवहार सभ्दूत कहलाता है, क्योंकि वस्तु गुण पर्याय सचमुच ही उस वस्तु के अग हैं। दूसरे प्रकार का व्यवहार असद्भूत कहलाता है, क्योंकि अनेक वस्तुओं की एकता सिद्धान्त विरूद्ध व असत्य है।

यह सद्भूत व्यवहार नय भी आगे दो भेदो मे विभाजित कर दिया गया है—शुद्ध सद्भूत और अशुद्ध सद्भूत। शुद्ध द्रव्य मे भेद देखने वाला शुद्ध सद्भूत है और अशुद्ध द्रव्य मे भेद देखने वाला अशुद्ध सद्भूत। इसी प्रकार असद्भूत व्यवहार नय भी दो प्रकार का है—उपचरित असद्भूत और अनुपचरित असद्भूत। संश्लेष सम्बन्ध रहित या प्रदेशों से भिन्न धन मकान अदि के साथ जीव का एकत्व करने वाला तो उपचरित असद्भूत है और संश्लेष सम्बन्ध सहित शरीर या कर्मी के साथ जीव का एकत्व करने वाला अनुपचरित असद्भूत है, क्योंकि पहिला एकत्व बहुत स्थूल उपचार है और दूसरा कुछ सूक्ष्म। इस प्रकार व्यवहार नय के भेद निन्म चार्ट पर से पढ़े जा सकते हैं।
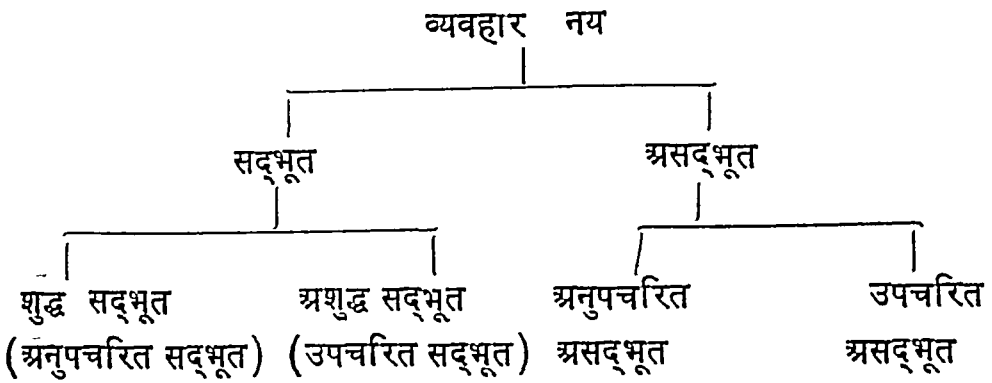
६. सद्भूत व्यवहार का लक्षण

जैसा कि इसके नाम पर से ही जाना जा रहा है, सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण उन भेदो को विषय करना है जो कि वस्तु मे सत् रूप से दिखाई दे । अत. वस्तु मे गुण-गुणी व पर्याय-पर्यायी के भेदोपचार द्वारा एक अखण्ड वस्तु मे द्वैत उत्पन्न करके 'यह वस्तु अमुक गुण पर्याय वाली है, या इतने प्रकार की है' ऐसा कहना सद्भूत व्यवहार नय है । 'ज्ञान मात्र ही जीव है' व 'ज्ञान जीव का गुण है अथवा जीव ज्ञानवान है' इन दोनों वाक्यो का भावार्थ एक होते हुए भी उनके शब्दार्थ मे महान अन्तर है। पहिला वाक्य जीव व ज्ञान की तन्मयता का परिचय देने के कारण निश्चय नय का वाच्य है, और दूसरा गुण–गुणी का द्वैत करने के कारण अथवा स्वामी सम्पत्ति या लक्ष्य लक्षण भाव रूप द्वैत करने के कारण सद्भूत व्यवहार नय का वाच्य है । जैसा कि निन्म उदाहरणो पर से प्रगट है ।

१. आ प । १६ । पृ १२६ "गुणगुणिनो सज्ञादि भेदात् भेदक: सद्भूत व्यवहार: ।"

(**अर्थ:**—गुण व गुणी मे नाम भेद द्वारा भेद डालने वाला सद्भूत व्यवहार है । अर्थात वास्तव मे तो जो जीव हैं, वही ज्ञान है, पर हम इन दोनो को पृथक-पृथक शब्दो

से कहते है। एक वस्तु मे यह नाम कृत अनेकता उत्पन्न करना भी योग्य नही। पर यह भेद किसी अपेक्षा वस्तु मे दिखाई अवश्य देता है इसलिये सद्भूत है।)

२ आ. प.।१६पृ.१३० तत्रैक वस्तुविषय: सद्भूत व्यवहार: ? (यथा वृक्ष एकैव तल्लग्ना.शिखाभिन्ना: परन्तु वृक्ष एव, तथा सद्भूतव्यवहारो गुणगुणिभेदकथंन)

(पृष्ट नोट।)।

(अर्थ--एक वस्तु विषयक सद्भूत व्यवहार है। जैसे कि वृक्ष एक ही वस्तु है। उसमे लगी शाखाये भिन्न-भिन्न है परन्तु सब वृक्ष ही है। इस प्रकार एक वृक्ष मे "यह वृक्ष की शाखाये" ऐसा कहना उसमे भेद डालना है। वैसे ही सद्भूत व्यवहार एक अखण्ड वस्तु मे गुण व गुणी का भेद कथन करता है।)

३ आ प।१६।पृ १२७ "गुणगुणिनो पर्याय पर्यायिणो: स्वभावस्वभाविनो: कारककारकिणोर्भेद. सद्भूत व्यवहार स्यार्थ:।"

(अर्थ --गुण व गुणी का, पर्याय व पर्यायी का, स्वभाव व स्वभाववान का, कारक व कारकी का भेद सद्भूत व्यवहार का विषय है।)

४ प. ध.। ५२५ "सद्भूतस्तद्गुण इति व्यवहारस्तत्प्रवृत्तिमात्रत्वात् ।५२५।"

(अर्थ--विवक्षित वस्तु के गुण का नाम सद्भूत है और उस गुण की प्रवृत्ति मात्र का नाम व्यवहार है । अर्थात स्वचतुष्टय से अभेद होते हुए भी संज्ञा संख्यादि भेदों के कारण कथन मात्र से समझाने के लिये गुण गुणी भेद करने की प्रवृत्ति सद्भूत व्यवहार है।)

७ सद्भूत व्यवहार के कारण व प्रयोजन

वस्तु के अपने वस्तु भूत भेदों का कथन करने के कारण तो यह सद्भूत है और भेद डालकर कहने के कारण व्यवहार है। अतः 'सद्भूत व्यवहार' ऐसा नाम सार्थक ही है ।यह तो इस नय का कारण है । तथा अभेद वस्तु की प्रतीति करना इसका प्रयोजन है, जैसे की "जो स्वभाव एक जीव का है वही सर्व जीवों का है" इस प्रकार का भेदोपचार एक जाती के द्रव्यो मे स्वभाविक अभेद सिद्ध करता है तथा विजाति अन्य द्रव्यो से उसका स्वभाविक भेद सिद्ध करता है। इस प्रकार स्व व पर द्रव्य की पहिचान करके पर द्रव्य से निवृत्ति और स्व द्रव्य मे प्रवृति की जानी सम्भव है। यही इस नय का प्रयोजन है। शुध्द व अशुध्द सद्भूत इसके दो भेद हो जाते हैं, क्योकि द्रव्य, शुद्ध व अशुध्द दो अवस्थाओ में पाया जाता है ।

८ शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय

सामान्य द्रव्य मे अथवा शुद्ध द्रव्य में गुण-गुणी व पर्याय-पर्यायी का भेद कथन करने वाला शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है। तहा गुण तो त्रिकाली सामान्य भाव ोने के कारण शुद्धता व अशुद्धता से निरपेक्ष शुद्ध ही होता है जैसे ज्ञान गुण सामान्य । परन्तु पर्याय शुद्ध व अशुद्ध दोनों प्रकार की होती है। इन दोनों मे से यहां शुद्ध सद्भूत व्यवहार के द्वारा केवल शुद्ध पर्याय का ही ग्रहण किया जाता है । अशुद्ध पर्याय का ग्रहण करना अशुद्ध सद्भूत व्यवहार का काम है । शुद्ध पर्याय भी दो

प्रकार की है–सामान्य व विशेष। प्रतिक्षण वर्ती षट् गुण हानि वृद्धि रूप सूक्ष्म अर्थ पर्याय तो सामान्य शुद्ध पर्याय है और क्षायिक भाव विशेष शुद्ध पर्याय है, जैसे केवल ज्ञान।

सामान्य द्रव्य मे तो सामान्य गुण व गुणी का, अथवा सामान्य शुद्ध पर्याय व पर्यायी का अथवा विशेष शुद्ध पर्याय व पर्यायों का यह तीनों ही भेद देखे जाने सम्भव है, परन्तु शुद्ध द्रव्य मे अर्थात शुद्ध द्रव्य पर्याय मे केवल विशेष शुद्ध पर्याय व पर्यायी का ही भेद देखा जा सकता है। क्योकि शुद्ध द्रव्य पर्याय मे त्रिकाली सामान्य द्रव्य के अथवा सामान्य पर्याय के दर्शन असम्भव है।

"जीव ज्ञानवान है या उसकी षट् गुण हानि वृद्धि रूप स्वाभाविक सामान्य पर्याय वाला है" ऐसा कहना द्रव्य सामान्य मे गुण-गुणी व पर्याय-पर्यायी का भेद कथन है। "जीव केवल ज्ञान दर्शन वाला है" या वीतरागता वाला है"यह द्रव्य सामान्य मे शुद्ध गुण शुद्ध गुणी व शुद्ध पर्याय-शुद्ध पर्याय का भेद कथन है। "सिध्द-भगवान केवल ज्ञान केवल दर्शन वाले है या वीतरागता वाले है" यह शुध्द द्रव्य या शुद्ध द्रव्य पर्यायी मे शुद्ध गुण-शुद्ध गुणी व शुद्ध पर्याय-शुद्ध पर्यायी का भेद कथन है। ये सब ही शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय के उदाहरण है। इसे अनुपचरित सद्भूत भी कहते है क्योकि गुण सामान्य तो पर सयोग से रहित होने के कारण तथा क्षायिक भाव सयोग के अभाव पूर्वक होने के कारण अथवा स्वभाव के अनुरूप होने के कारण अनुपचरित कहे जाने युक्त है।

अब इन्ही की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१. वृ. द्र. सं।टी।६।१८ "केवल ज्ञान दर्शनं प्रति शुद्ध सद्भूत शब्द वाच्योऽनुपचरिसद्भूत व्यवहारः।"

अर्थ:--केवल ज्ञान व केवल दर्शन के प्रति शुद्ध-सद्भूत-शब्द से वाच्च अनुपचरित-सद्भूत व्यवहार है।

(यहा जीव सामान्य का लक्षण करने के लिये उसमे शुध्द गुण का उसके साथ भेद कथन किया है।)

२ आ. पा.।१०। पृ. ८१ "शुद्धसद्भूतव्यवहारो यथा शुद्ध गुण शुद्धगुणिनो शद्ध.पर्यायशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् ।"

(**अर्थ**--शुद्धसद्भूत व्यवहार को ऐसा जानो जैसे कि शुद्ध गुण व शुद्ध गुणी मे या शुद्ध पर्याय व शुद्ध पर्यायी मे भेद कथन करना है। शुद्धगुण व शुद्धगुणी का भेद तो" ज्ञान जीव का गुण है।" ऐसा सामान्य द्रव्य का स्वभाव दर्शाता है। और शुद्धपर्याय व शुद्ध पर्यायी का भेद "केवल ज्ञान जोव का गुण है।" ऐसा विशेष द्रव्य या सिद्ध पर्याय गत जीव का स्वभाव दर्शाता है।)

३. आ. प.।११प्. १३१ "निरूपाधिगुणगुणीनी र्भेदविषयोऽनुपः चरितसद्भूतव्ययहारो यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुण.।"

(**अर्थ**--निरूपाधि गुण व गुणी मे भेद विषयक अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है, जैसे जीव के केवल ज्ञानादि गुण कहना। यह कथन क्षायिक भाव रूप शुद्ध पर्याय को अपेक्षा जानना।)

४. नय. चक्र गद्य। २१ "संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभिर्भित्वा शुद्धद्रव्ये

गुणगुणीविभागेकेलक्षण कथनम् शुद्धसद्भूतव्यवहारोपनयः ।"

(अर्थः—संज्ञा लक्षण व प्रयोजनादि के द्वारा भेद करके शुद्ध द्रव्य मे गुण व गुणी का विभाग रूप एक लक्षण कहना शुद्धसद्भूत व्यवहार वाला उपनय है। यह कथन भी क्षायिक भाव की अपेक्षा जानना ।)

५. वृ. न. च. । २२० "गुणगुणीपर्यायिद्रव्ये कारक सद्भावतास्त्र द्रव्येषु ततो ज्ञात्वा भेद क्रियते सद्भूतशुद्धिकरः ।"
(अर्थः—गुण व गुणी, पर्याय व पर्यायी, तथा कारक भाव इतनी बातों को द्रव्यो मे जानकर शुद्धसद्भूत उनमें भेद करता है।

प्र. सा. । ता. वृ. । परि. "शुद्धसद्भूतव्यवहारनयेन शुद्धस्पर्शरस गन्धवर्णानामाधारभूत पुद्गलपरमाणु वत्केवलज्ञानादि शुद्धगुणानामाधारभूतं (आत्मा) "

(अर्थ—शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय से शुद्ध स्पर्श रस तथा वर्णादि गुणोंके आधार भूत शूद्ध पुदगल परमाणू वत्, केवल ज्ञानादि शूद्ध गूणों अर्थात क्षायिक भावों का आधारभूत आत्मा है।

नि. सा. । ता. वृ. २८ "परमाणुपर्यायः पुग्दलस्य शुद्धपर्यायः परम-पारिणामिकभावलक्षणः वस्तुगतषट्प्रकारहानिवृद्धिरूप- अति सूक्ष्म- अर्थपर्यायालकः सादिसनिधनोऽपि परद्रव्य- निरपक्षेत्वाच्छुध्द सद्भूतव्यवहारनयात्मकः ।"

अर्थ:—परमाणु पुग्दल की शुध्द पर्याय है, क्योकि वह पारिणामिक भाव लक्षण वालो वस्तुगत षट्गूण हानि वृध्दि रूप अति सूक्ष्म अर्थ पर्याय रूप है। वह सादिसान्त पर्याय अवश्य है परन्तु पर द्रव्य से निरपेक्ष है। इसलिये उस षट गूणहानिवृध्दिरूप शूध्द पर्याय वाले परमाणू को पुद्गल द्रव्य बताना शूध्द सद्भूत व्यवहार नय है।

यह तो इस नय के लक्षण व उदाहरण हुए अब कारण व प्रयोजन देखिये। क्योकि शुध्द द्रव्य मे भेद डालता है इसलिये तो शुद्ध है। वस्तु मे अपने ही अगो या भेदों को ग्रहण करता है इसलिये सद्भूत है, तथा अभेद वस्तु मे भेद डालता है इसलिये व्यवहार है। इस प्रकार 'शुध्द सद्भूत व्यवहार नय' ऐसा नाम सार्थक है। क्योंकि परद्रव्य की अपेक्षा व उपचार से रहित है इसलिये इसे अनुपचरित भी कहना सार्थक ही है। यह तो इस नय का कारण है। और शुध्द स्वभाव से परिचय पाकर उसकी ओर झुकने का प्रयत्न करना इसका प्रयोजन है।

९ अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय

शुद्ध सद्भूत व्यद्भूवहार नय वत् ही यहां भी समझना। अन्तर केवल इतना है कि यहा सामान्य गुण वपर्याथ रूप स्वभाव भावों की अपेक्षा भेद डाला जाना सम्भव नही है, क्योकि वे अशुद्ध नही होते। द्रव्य सामान्य मे अथवा अशुद्ध द्रव्य पर्याय रूप अशुद्ध द्रव्य मे अशुद्ध गुणो व अशुद्ध पर्यायो के आधार पर भेदोपचार द्वारा गुण–गुणी, पर्याय–पर्यायी व लक्षण लक्ष्य आदि रूप द्वैत उत्पन्न करना अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है। अशुद्ध गुण व पर्यायें औदायिक भाव रूप होते है जैसे ज्ञान गुण की मति ज्ञानादि पर्यायें, चारित्र गुण की राग द्वेषादि पर्यायें तथा वेदन गुण की विषय जनित सुख दुखादि पर्यायें।

'जीव सामान्य मतिज्ञान वाला है या राग द्वेषादि वाला है' यह द्रव्य सामान्य की अपेक्षा अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय के उदाहरण है। 'संसारी जीव मति ज्ञान वाला है या राग द्वेषादि वाला है' यह द्रव्य पर्याय की अपेक्षा अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय के उदाहरण है। इसे उपचरित सद्भूत भी कहते हैं। क्योंकि पर सयोगी वैभाविक औदयिक अशुद्ध भावों का द्रव्य के साथ स्थायी सम्बन्ध नही है, न उसके स्वभाव से उनका मेल खाता है अत: वे उपचरित भाव कहे जाने योग्य है।

अब इन्ही को अभ्यास व पुष्टि के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देता हूं।

१ वृ. द्र स. । टी. । ६ । १८. "छद्मस्थ ज्ञानदर्शनापरिपूर्णापेक्षया पुनरशुद्ध सद्भूतवाच्च उपचरित सद्भूत व्यवहार।"

अर्थ–छद्मस्थ जीवों का ज्ञान दर्शन अपरिपूर्णता की अपेक्षा अशुद्ध सद्भूत का वाच्य उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है।

२ आ प १० । पृ ८१ अशुद्ध सद्भूत व्यवहारो यथा अशुद्ध गुणाऽ शुद्ध गुणिनोरशुध्द पर्यायाऽशुध्द पर्यायिणोर्भेद कथनम्।"

अर्थः–अशुध्द सद्भूत व्यवहार ऐसा है जैसे कि अशुध्द गुण व अशुध्द गुणी मे तथा अशुध्द पर्याय व अशुध्द पर्यायी मे भेद कथन करना।

३ आ प । १६ । पृ १३१. "तत्र सोपाधि गुण गुणिनोर्भेद

विषयः उपचरितसद्भूत व्यवहारो यथा जीवस्य मतिज्ञाना दयोगुणाः।"

अर्थ--सोपधि गुण व गुणी का भेद विषयक उपचरित सद्भूत व्यवहार है, जैसे कि जीव के मति ज्ञानादि गुण है' ऐसा कहना।

४. न. चक्र गद्य । पृ २१ "अशुद्ध द्रव्ये गुण गुणी विभागैक लक्षणं कथयन् अशुद्ध सद्भूत व्यवहारोपनयः।"

अर्थ--अशुद्ध द्रव्य मे गुण गुणी का विभाग रूप एक लक्षण कहना अशुद्ध सद्भूत व्यवहारवाला उपनय है।

५ प्र. सा । वृ. ता । परि. "अशुद्ध सद्भूत व्यवहारयेन अशुद्ध स्पर्शरसगन्धवर्णाधार भूतद्वयणुकादि स्कन्धवन्मति-ज्ञानादि विभाव गुणा नामाधार भूत (आत्मा)।"

अर्थः—अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय से अशुद्ध स्पर्श रस गन्ध तथा वर्ण के आधार भूत द्वयणुकादि स्कन्ध वत् मति ज्ञानादि विभाव गुणो का आधार भूत आत्मा है।

६. नि सा । ता वृ ६ "अशुद्ध सद्भूत व्यवहारेण मतिज्ञानादि विभाव गुणानामाधारभूतत्वादशुद्ध जीव.।"

अर्थ—अशुद्ध सद्भूत व्यवहार से मति ज्ञानादि विभाव गुणो का आधार भूत होने के कारण अशुद्ध जीव है।

यह तो इन नय के लक्षण व उदाहारण हुए अब कारण व प्रयोजन देखिये। क्योकि अशुद्ध द्रव्य को विषय करता है इसलिये

अशुद्ध है, उस द्रव्य के अपने ही अगो या पर्यायो को ग्रहण करता है इसलिये सद्भूत है तथा उस द्रव्य मे भेद डाल कर कथन करता है इस लिये व्यवहार है। अतः इसका 'अशुद्ध सद्भूत व्यवहार' यह नाम सार्थक ही है। पर द्रव्यों के सयोग की अपेक्षा का उपचार होने के कारण इसके विषय भूत अशुद्ध पर्यायों को उपचरित कहना भी सार्थक ही है। यह तो इस नय का कारण है। और वर्तमान भावों या पर्यायों की अशुध्दता को जान कर इन बाह्य के नाम रूप कर्मो तथा बाह्य सयोगों से दृष्टि हटा कर, अन्तरंग शुध्द चैतन्य विलास की ओर लक्ष्य ले जाना इसका प्रयोजन है।

१० असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण

दो भिन्न द्रव्यों में अनेक अपेक्षाओं से एकत्व का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे कि शरीर को या धन, मकान, आदिक को जीव का कहना या इनका कर्ता धर्ता जीव को कहना। वस्तुतः देखने पर ऐसा कथन असत्य व असद्भूत है इसीलिये इस प्रकार के भेद कथन को असद्भूत व्यवहार नय कहते है। लौकिक वचन व्यवहार सब इसी नय पर आधारित है, क्योकि अन्तरंग अखण्ड तत्व से अनभिज्ञ लौकिक जनों को बाह्य के संयोगो मे ही सार्थकता दीखती है।

दो पदार्थो मे यह एकत्व का उपचार प्रमुखतः ९ प्रकार का है–द्रव्य का द्रव्य मे, गुण का गुण मे, पर्याय का पर्याय में, द्रव्य का गुण मे, द्रव्य का पर्याय मे, गुण का द्रव्य मे, गुण का पर्याय मे, पर्याय का द्रव्य मे, पर्याय का गुण मे। भिन्न द्रव्य भी तीन प्रकार के हो सकते है–सजातीय, विजातीय व उभय। एक ही द्रव्य में भेद डाल कर वह उपचार करना तो सद्भूत का विषय है। और पृथक पृथक सजातीय द्रव्यो मे या विजाति द्रव्यों मे वही नौ प्रकार का उपचार करना असद्भूत का विषय है। जैसे कि एक जीव के गुण या पर्याय आदि का आरोप उसी जीव द्रव्य मे करना या एक पुद्गल

परमाणु के गुण या पर्याय का आरोप उसी परमाणु मे करना तो सद्भूत व्यवहार है, परन्तु एक जीव के गुण पर्याय का आरोप अन्य जीव के गुण पर्याय मे करना अथवा किसी पुद्गल द्रव्य के गुण पर्याय में करना असद्भूत का विषय है । "मै सिध्द भगवान तुल्य हूँ" ऐसा कहाता सजातीय द्रव्यारोपण है और "मैं पञ्चेन्द्रिय जीव हू" ऐसा कहना विजातीय द्रव्यारोपण है । "मै केवलज्ञान वाला हू" ऐसा कहना सजातीय द्रव्य मे सजातीय गुणारोपण है और "मै मूर्त हूं" ऐसा कहना सजातीय द्रव्य मे विजातीय गुणारोपण है । 'वह नगर पति है' ऐसा कहना स्वजाति द्रव्य मे उभय द्रव्यारोपण है । उपचार के अनेक भेद प्रभेदो का विस्तार पहिले प्रकरण नं. २ मे दिया जा चुका है, वहा से देख लेना ।

दो द्रव्यों मे यह ९ प्रकार का उपचार करके एक दूसरे मे स्वामित्व सम्बन्ध की या कर्ता–कर्म सम्बन्ध की, या भोक्ता–भोग्य सम्बन्ध की तथा अन्य भी सम्बन्धों की स्थापना करना असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है । जहां एक द्रव्य मे गुण गुणी आदि रूप से द्वैत उत्पन्न करना भी उपचार है तहां भिन्न द्रव्यों के गुण पर्यायो में अद्वैत का तो बहुत बड़ा उपचार हुआ । इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये ।

१ आ प. । १९ वृ १२७ "अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्य अन्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहार । असद्भूत व्यवहार एवोपचार: ।"

अर्थ—अन्यत्र अर्थात् अन्य द्रव्य मे प्रसिध्द जो उसके धर्म उनका अन्य द्रव्य मे समारोपण करना असद्भूत व्यवहार है । असद्भूत व्यवहार का नाम ही उपचार है ।

२ नय चक्र गद्य । प ६३. "भिवन्नस्तुविषयोऽसद्भूत व्यवहारः ।"

अर्थ—यह उपरोक्त नौ प्रकार का उपचार यदि एक ही वस्तु के द्रव्य गुण पर्यायो के साथ करने मे आये तो वह सद्भूत व्यवहार है परन्तु भिन्न वस्तु विषयक यही उपचार असद्भूत व्यवहार है ।

३ वृ. न. च. । २२३ "अन्येषामन्यगुणो भण्यतेऽसद्भूत स्त्रिविधस्तौद्वावपि । सजातिरितरोमिश्रो ज्ञातव्यस्त्रिविधभेद युतः ।२२३ ।

अर्थ:—अन्य द्रव्य के गुणो व पर्यायों आदि का अन्य द्रव्य के गुण पर्यायों में उपचार करना असद्भूत व्यवहार है । सजाति, विजाति व मिश्र के भेद से वह उपचार भी तीन प्रकार का है ।

नोट.—उपर के सब लक्षण सैध्दान्तिक भाषा ने लिखे जाने के कारण कुछ कन्ठिन से प्रतीत होते है, परन्तु ऐसा नही है क्योंकि इस प्रकार के उपचार हमारे नित्य के व्यवहार में आ रहे हैं । उदाहरणार्थ नीचे के उध्दरण देखिये ।

१पं. ध. पू । ५३०. "सयथा वर्णादिमतो मूर्त द्रव्यस्य कर्म किल मूर्तम् । तत्संयोगत्वादिह मूर्ताः क्रोधादयोऽपि जीव भावाः । ५३० ।"

अर्थ:—उसे ऐसा जानना जैसे कि वर्णादिमान मूर्त द्रव्यों से

निर्मित कर्म ही यद्यपि मूर्त हैं जीव के भाव नही, फिर भी उनके सयोग से उत्पन्न होने के कारण जीव के क्रोधादि भावों को भी सिध्दान्त मे मूर्त कह दिया जाता है । यहा स्व पर्याय मे अन्य द्रव्य के गुण का आरोप है ।

२ वृ न च । ११३ "मनोवचन काय इन्द्रियाण्यानपान प्राणा आयुश्कच यज्जीवे । तदसद्भूतो भणति हु व्यवहारो लोक मध्ये । ११३ ।"

अर्थः--मन, वचन, काय, पाच इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, व आयु इन दस प्राणो से जो जीता है वह जीव है, ऐसा असद्भूत व्यवहार नय से लोक मे कहा जाता है । यहा पुद्गल द्रव्य मे जीव के जीवत्व गुण का आरोप किया है ।

३. आ. पृ । १५। पृ. १०८ "असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतन स्वभावः । .... । ....जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतन स्वभावः ।.... जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तस्वभाव. । .... । असद्भूतव्यवहारेणोपचरित-स्वभावः ।"

अर्थ—असद्भूत व्यवहार नय से कर्म व नोकर्म भी चेतन स्वभावी है । जीव का भी असद्भूत व्यवहार नय से अचेतन मूर्त व उपचरित स्वभाव है । यहा पुद्गल मे जीव के गुण का और जीव मे पुद्गल के गुण का आरोप किया गया है ।

११ असद्भूत व्यवहार के कारण प्रयोजनादि

इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना । एक मे दूसरे का आरोप करना ही असद्भूत कहलाता है । इसी प्रकार का असत्य आरोप करने के कारण यह असद्भूत है, और भिन्न द्रव्यो मे सम्बन्ध जोड़ने के कारण व्यवहार है ।

इसीलिये इस नय को असद्भूत व्यवहार कहना सार्थक ही है । यह तो इस नय का कारण है । और पर द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न होने वाले विभाव भावों का परिचय पाकर इनको दृष्टि से ओझल करके एक अखण्ड स्वभाव की आराधना करना इसका प्रयोजन है ।

पर द्रव्यों का सम्बन्ध भी दो प्रकार से हो सकता है—सश्लेष सम्बन्ध व संयोग सम्बन्ध । प्रदेशों से एकमेक सम्बन्ध को सश्लेष सम्बन्ध कहते हैं—जैसे दूध व पानी का सम्बन्ध या जीव व शरीर या कर्मों का सम्बन्ध । प्रदेश भेद वाला सम्बन्ध सयोग सम्बन्ध कहलाता है—जैसे दण्डन्दण्डी सम्बन्ध या शरीर—वस्त्र सम्बन्ध । संश्लेष सम्बन्ध सूक्ष्म है क्योकि अध्यात्म दृष्टि के बिना देखा नही जा सकता और सयोग सम्बन्ध स्थूल है, क्योंकि साधारण दृष्टि से भी देखा जा सकता है ।

यह दोनो प्रकार के ही सम्बन्ध रूप उपचार असद्भूत व्यवहार के विषय है, अत: विषय भेद से इस नय के भी दो भेद हो जाते है—स्थूल उपचार ग्राहक उपचरित असद्भूत और सूक्ष्म उपचार ग्राहक अनुपचरित असद्भूत । अब इन दोनो के पृथक—पृथक लक्षणादि करते है ।

१२. उपचरित असद्भूत व्यवहार नय

भिन्न द्रव्यो मे उपचार करना तो असद्भूत नय सामान्य का विषय है । इस उपचार मे भी उपचार करना अर्थात् पर सयोग सम्बन्ध वाला स्थूल उपचार करना उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है, जैसे वस्त्र व धन आदि बाह्य पदार्थों का स्वामी या इनका कर्ता भोक्ता जीव को कहना । वस्त्र या धन आदि के साथ यदि कुछ सम्बन्ध है भी तो शरीर से है, जीव से नही, हॉ शरीर का सम्बन्ध किसी प्रकार जीव से है । वस्त्र का सम्बन्ध शरीर से है और शरीर का

सम्बन्ध जीव से इस प्रकार वस्त्रादि का सम्बन्ध जीव से कहना वास्तव मे सम्बन्ध का सम्बन्ध है, या परम्परागत सम्बन्ध है, यही उपचार का उपचार है। यही स्थूल उपचार उपचरित असद्भूत का विषय है। इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ वृ न च ।२४० "उपचारादुपचार सत्यासत्येपूभयार्थेपु । सजातीतरमिश्रेषु उपचरित करोति उपचार. । २४० ।"

अर्थ —स्वजाति विजाति व मिश्रित पदार्थों मे परस्पर पूर्वोक्त ९ प्रकार से उपचार का भी उपचार करना उपचरित व्यवहार है।

२ आ प । १९ । पृ १२७ "असद्भूतव्यवहार एवोपचार, उपचारादण्युपचारं य: करोति स उपचरितासद्भूत व्यवहार. ।"

अर्थ —असद्भूत व्यवहार तो ९ प्रकार के उपचार को कहते है। उस उपचार का भी उपचार जो करता है सो उपचरित असद्भुत व्यवहार है। तात्पर्य यह है कि (देखो नीचे का उद्धरण)

१०. आ. प. ।१९ । पृ१२८ "सश्लेषसम्बन्ध., परिणामपरिणामीसम्बन्ध:, श्रद्धाद्धेयसम्बन्ध:, ज्ञानज्ञेयसम्बन्ध., चारित्रचर्यासम्बन्धश्चेत्यादि सत्यार्थ., असत्यार्थ:, सत्यासत्यार्थश्चेत्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयस्यार्थ. ।"

अर्थ:—संश्लेष सम्बन्ध, । सम्ब
श्रद्धेय सम्बन्ध, ज्ञे , चारित्र चय
इत्यादि अनेको प्र ।

सम्बन्ध जीव से इस प्रकार वस्त्रादि का सम्बन्ध जीव से कहना वास्तव मे सम्बन्ध का सम्बन्ध है, या परम्परागत सम्बन्ध है, यही उपचार का उपचार है। यही स्थूल उपचार उपचरित असद्भूत का विषय है। इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ वृ न च ।२४० "उपचारादुपचारं सत्यासत्येषूभयार्थपु । सजातीतरमिश्रेषु उपचरित करोति उपचारः । २४० ।"

अर्थ —स्वजाति विजाति व मिश्रित पदार्थों मे परस्पर पूर्वोक्त ९ प्रकार से उपचार का भी उपचार करना उपचरित व्यवहार है।

२ आ प । १९ । प. १२७ "असद्भूतव्यवहार एवोपचार., उपचारादप्युपचार य. करोति स उपचरितासद्भूत व्यवहार: ।"

अर्थ —असद्भूत व्यवहार तो ९ प्रकार के उपचार को कहते है। उस उपचार का भी उपचार जो करता है सो उपचरित असद्भुत व्यवहार है। तात्पर्य यह है कि (देखो नीचे का उद्धरण)

१०. आ. प. ।१९ । प.१२८ "संश्लेषसम्बन्ध., परिणामपरिणामीसम्बन्ध:, श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्ध:, ज्ञानज्ञेयसम्बन्ध., चारित्रचर्यासम्बन्धश्चेत्यादि सत्यार्थ:, असत्यार्थ:, सत्यासत्यार्थश्चेत्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयस्यार्थ: ।"

अर्थ:—संश्लेष सम्बन्ध, परिणाम परिणामी सम्बन्ध, श्रद्धा श्रद्धेय सम्बन्ध, ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध, चारित्र चर्या सम्बन्ध, इत्यादि अनेकों प्रकार के सम्बन्ध—सत्यार्थ अर्थात स्व-

जाति द्रव्यों मे भी हो सकते है, असत्यार्थ अर्थात् विजाति द्रव्यों भीं हो सकते है, तथा सत्यासत्यार्थ अर्थात् उभय या स्वजाति व विजाति के समूह रूप द्रव्यों मे भी हो सकते है। यह सब प्रकार के सम्बन्ध ही उपचरित असद्भूत व्यवहार का विषय है।

१. उदाहरणार्थ स्वजाति द्रव्यों में उपचार इस प्रकार है:-

१ वृ २ च । २४२ "पुत्रादिबन्धुवर्गोऽहं च मम सम्पदादि जल्पन् । उपचारासद्भूत.स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्य· । २४२ ।"

अर्थ:—पुत्रादि बन्धु वर्ग तो मैं हूं और यही मेरी सम्पदा है ऐसी कल्पना या कथन स्वजाति द्रव्यों मे उपचरित असद्भूत व्यवहार जानना चाहिये।

(आ. प. । १० । पृ ८४)

२. नय चक्र गद्य। पृ. २३ "पुत्रमित्रकलत्रगोत्रादिभि: ममेदं जीव सम्बन्धिन इति।"

अर्थ·—पुत्र, मित्र, कलत्र व गोत्रादि मेरे है यह स्वजाति द्रव्यो मे उपचार है। क्योंकि मै भी जीव हूं और मेरे सम्बन्धी पुत्र मित्र आदि भी जीव हैं।

२, इसी प्रकार विजातीय द्रव्यों में भी:-

३ वृ. न. च. । २४३ आभरणहेमरत्नवस्त्रादि ममेति जल्पन् । प्रचरितासद्भूतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्य: । २४३ ।"

अर्थ:—आभरण, हेम, रत्न, वस्त्रादि के साथ 'मेरे है' इस

प्रकार का सम्बन्ध विजाति द्रव्यों मे उपचरित असद्भूत व्यवहार जानना चाहिये। क्योंकि मैं तो जीव हू और यह सब अजीव है।

(आ. प. । १० । पृ ८४

४. नि सा । ता. वृ । १८ "उपचारितासद्भूतव्यवहारण घट-पटसशकटादीनां कर्ता।"

अर्थ—उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट पट रथ आदि का यह जीव कर्ता है। सो भी विजाति उपचार है।

५ वृ. द्र स । टी । ६ । २३ "उपचरितासद्भूतव्यवहारण इष्टानिष्टपञ्चेन्द्रियविषयजनितसुखदुख चभुवते।"

अर्थ—उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से इष्टानिष्ट पञ्चेन्द्रिय विषय जनित सुख दुख को जीव भोक्ता है।

६ वृ. द्र स. । टी १६ । ५७ "उपचरितासद्भूतव्यावहारेण (सिद्धभगवन्त) मोक्षशिलाया तिष्ठन्ति।"

अर्थ—उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से सिद्ध भगवान मोक्ष शिला पर विराजते है।

७ वृ द्र स. । टी । ४५ । १९६ "योऽसौ बहिर्विषये पञ्चेन्द्रिय विषयादि परित्याग स उपचरितासद्भूत व्यवहारेण।"

अर्थ:—यह जो बाह्य विषय रूप पञ्चेन्द्रिय विषय आदि का परित्याग है सो उपचरित असद्भूत व्यवहार से है।

(२) इसी प्रकार का उपचार उभय द्रव्यों में समझना। उभय द्रव्य उसे कहते है जिसमे जीव व अजीव दोनो का समूह पाया जाता हो, जैसे नगर ग्रामादि।

८ वृ. न. च. । २४१. "देशपतिः देशस्थः अर्थपतिर्यः तथैव जल्पन् ।
मम देशो मम द्रव्यं सत्यासत्यमपि उभयार्थम् । २४१ ।"

अर्थ—देशपति, देश का निवासी, अर्थपति, तथा मेरा देश, मेरा द्रव्य, इस प्रकार के द्रव्यों का उच्चारण उभयार्थ उपचार है। क्योंकि "देश" कहने से जीव व अजीव सवके स्वामित्व का युगपत ग्रहण हो जाता है और इसी प्रकार अर्थ या द्रव्य इन सामान्य वाची शब्दों से भी।

(ग्रा. प. । १० । पृ ८४.)

९ प्र. सा. । ता. वृ. । परि "उपचरितासद्भूत व्यवहारनयेन काष्ठवसनाद्युपविष्ट देवदत्तवत्समवशरण स्थित वीतराग सर्वज्ञवद्वा विवक्षितैक ग्राम गृहादि स्थितम् (आत्मा) ।"

अर्थ:—काष्ठ के आसन आदि पर बैठे हुए देवदत्तवत् या समवशरण मे स्थित वीतराग सर्वज्ञवत् आत्मा को किसी एक विवक्षित ग्राम या घर आदि मे स्थित कहना उभयार्थ उपचारित असद्भूत व्यवहार है।

यह तो इसके लक्षण व उदहारण हुए, अब कारण व प्रयोजन देखिये। उपचार का उपचार होने के कारण उपचरित है; और भिन्न द्रव्यों में एकत्व का उपचार होने के कारण असद्भूत व्यवहार है। इस नय का मुख्य विषय जीव कर्म सयोग है जो बाह्य निमित्त कारण से होता है। इस लिये कारण रूप उन वाह्य द्रव्यो को भी जीव का कह दिया जाता है। यह इस नय का कारण है। क्योकि यह सयोग न होता तो ससार व मोक्ष भी न होता, तब इस नय का कोई विषय भी न होता।

इस बन्ध का कारण जीव के पुण्य पाप रूप कार्य है। इन कार्यो को त्यागने से ही मोक्ष होता है, ऐसा यह नय बताता है। अत.

बुद्धिमान जनो को इन सब कर्मो से परे, निश्चय नय के विषय भूत, एक मात्र अभेद ज्ञाता दृष्टभाव रूप निज चैतन्य तत्व की शरण मे जाना योग्य है । यह इस नय का प्रयोजन है ।

१३ अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय

उपचार का उपचार न करके केलव उपचार कथन को असद्भूत व्यवहार या अनुपचरित व्यवहार कहते है । या यों कहिये कि सश्लेष सम्बन्ध वाले अनेक पदार्थो में एकत्व की स्थापना करना अनुपचरित असद्भूत है । संश्लेष सम्बन्ध मे बहुत स्थूल उपचार न होने के कारण यह अनुपचार या किंचित उपचार है जैसे "जीव शरीर व कर्मो का कर्ता व भोक्ता है" ऐसा कहना । शरीर व कर्मो के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ जीव के साथ सश्लेष सम्बन्व को प्राप्त नही है, अत: इन दोनो के साथ ही जीव का स्वामित्व व कारक सम्बन्ध दर्शाने वाला यह नय है । इसको केवल असद्भूत व्यवहार भी कहते है । इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१. आ. प. । १६ । पृ. १३२ "संश्लेष सहित वस्तु सम्बन्ध विषयोऽनुपचरितासद्भूत व्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति ।"

अर्थ—भिन्न वस्तुओ मे संश्लेष सहित सम्बन्ध के विषय करने वाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार है जैसे शरीर को जीव का कहना ।

(नय चक्र गद्य पृ. २५) (अन. ध. । १ । १०६ । ११०) (वृ.द्र.स. । १६ । ५३)

१. प्र. सा । ता. वृ. परि. उदाहन्रणार्थं अनुपचरितासद्भूत व्यवहारनयेन द्वयणुकादिस्कन्ध संश्लेष सम्बन्ध स्थित पुद्गल परमाणुवत्परमौदारिक शरीरे, वीतराग सर्वज्ञ वद्वा विवाक्षतैकदेहस्थितम् ।"

अर्थ —अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्वयणुक आदि स्कन्ध मे सश्लेष सम्बन्ध रूप से स्थित पुद्गल परमाणु वत् तथा परम औदारिक शरीर मे स्थित वीतराग सर्वज्ञवत, यह आत्मा किसी एक विवक्षित देह मे स्थित है।

२. वृ. द्र. स. । टी । ८ । २१ "अनुपचरिताऽसद्भूत व्यवहारेण ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मणामादि–शब्देनौदारिक वैक्रियकाहारक शरीरत्रयाहारादिषड पर्याप्तिऽ–योग्य पुद्गल पिण्ड़रूपनोकर्मणां . . .कर्त्ता भवाति ।"

(प. का. । ता. वृ. । २७ । ६०)

अर्थ —अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मो का तथा आदि शब्द से ग्रहण किये गये औदारिक वैक्रियक व आहारक इन तीन शरीरों के आहारदि रूप षट् पर्याप्ति के योग्य पुद्गल पिन्ड, वही है नो कर्म, उन सब का जिव कर्ता है ।

३. नि. सा. । ता. वृ. । १८ आसन्नगतानुपचारितासद्भूतव्यहारन्‍ नयाद् द्रव्यकर्मणाॅ कर्त्ता तत्फलरुपाणा सुखदु खाना भोक्ता च । . . . .नोकर्मणां कर्ता (भोक्ता च) ।"

(अर्थ —आसन्न गत अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव द्रव्य कर्मो का कर्ता तथा उसके फल रुप सुख दु.खों का भोक्ता है। तथा नो कर्मों का भी कर्ता व भोक्ता है ।)

४ प प्र. । टी. । ७ । १ ४ । ६ "अनुपचरितासद्भूतव्यवहार सम्बन्धः द्रव्यकर्मनोकर्मरहितं (जीवः) ।"

(**अर्थ** --अनुपचरित असद्भूत व्यवहार के सम्बन्ध से जीव द्रव्य कर्म व नो कर्म से रहित है।

भावार्थ-यहा यह भ्रम उत्पन्न न करना कि कर्मो का संयोग तो ठीक इस नय का विषय बन सकता है, पर उस से रहित शुद्ध जीव तो शुद्ध निश्चय का विषय है। उस को कैसे इस नय का विषय बनाया जा सकता है ? यद्यपि स्थूलत: देखने मे तो ऐसा ही प्रतीत होता है, पर वास्तव में ऐसा नही है । नय तो अपेक्षा को कहते हैं । अपेक्षा तो दोनों प्रकार से की जा सकती है--सम्बन्ध के सद्भाव की तथा सम्बन्ध के अभाव की ।यहा सम्बन्ध के अभाव की अपेक्षा लेकर जीव को इस नय का विषय बनाया गया है। यहा वास्तव मे जीव द्रव्य को मुख्यता ग्रहण न करके कर्मो के अभाव की मुख्यता है । कर्मों से निरपेक्ष पारिणामिक भाव के साथ तन्मय दिखाया होता अथवा कर्मों के अभाव की बात न कह कर केवल ज्ञानादि क्षायिक भावों से तन्मय दिखाया होता तो शुद्ध निश्चय का विषय बन जाता है, परन्तु यहा तो कर्मो के अभाव को जीव का स्वभाव दर्शाने की बात है, जो स्पष्टत उपचार दिखाई दे रहा है, क्योंकि जिसमे कर्मो के सद्भाव की अपेक्षा नही वहाँ कर्मो के अभाव की अपेक्षा भी कैसे की जा सकती है ।

४ प प्र । टी १। ६।३१। 'द्रव्य कर्म दतनम अनुपचरितासद्भूत व्यवहारनयेन ।

(**अर्थ** --द्रव्य कर्म का दहन कहना अनुपचरित असद्भुत व्यवहार नय से ठीक है । (उपरोक्त प्रकार ही यहा भी समझना) ।)

६ प. प्र । टी.।१४।२३।१६ "अनुपचरिता सद्भूतयवहारनयेन देहाम्दिन्न (आत्मा ।")

(**अर्थ** —अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से आत्मा देह से भिन्न है ।)

तात्पर्य यह कि जहा पर शरीर व कर्मों सहित य रहित की, उनके कर्ता पने या विनाशकपने की, उनको भोगने या उनको त्यागने आदि की कोई भी अपेक्षा हो वहां अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का विषय समझना ।

शरीर व कर्मो का जीव के साथ या परमाणु का स्कन्ध के साथ या इसी प्रकार अन्यत्र भी एक पदार्थ का दूसर के साथ दीखने वाला सश्लेष सम्बन्ध ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है । यदि सश्लेष सम्बन्ध कोई वस्तुभूत विषय न हुआ होतातो यह नय भी न होता । सश्लेष सम्बन्ध को या निकट सम्बन्ध को दर्शाने के कारण ही यह अनुपचार है, तथा भिन्न पदार्थो मे एकत्व दर्शाने के कारण असद्भूत व्यवहार है । यह इस नय का कारण है ।

कर्मोदय से उत्पन्न होने वाली सर्व पर्याय वास्तव मे हेय है । उन की अपेक्षा से दूर निज शुद्ध द्रव्य का निश्चय करना ही सम्यक्त्व है । इस प्रकार परम तत्व मे अचलित वृति कराना इस नय का प्रयोजन है ।

शंका:—फिर एक परमार्थ या निश्चय नय का ही कथन करना था, व्यवहार नय का कथन क्यो किया ?

उत्तर —क्योंकि प्रथम भूमिका मे किसी अनिष्णात व्यक्ति को वस्तु स्वरूप समझाने का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही । तथा ज्ञानी के लिये भी वस्तु को अधिका-धिक विशेष रूप से देखने या दर्शाने मे इसका उपकार

भुलाया नही जा सकता। निश्चय नय का विषय अभेद या निर्विकल्प है, अत: वह केवल अनुभव मे देखा जा सकता है, पर अधिकाधिक विशेषताओ का परिचय पाने के लिये विचारा नही जा सकता। उस अभेद विश्व का परिचय इस व्यवहार के द्वारा ही प्राप्त होता है, अत प्राथमिक जनों के लिये यह अत्यन्त उपकारी है।

चारित्र की अपेक्षा भी प्राथमिक भूमिकाओं मे पूर्ण वीतराग अभेद चारित्र के अंग भूत विशेष भेदो के आधार पर से ही अभ्यास पथ पर आगे बढा जाना सम्भव है। अत: ज्ञान व चारित्र दोनो दिशाओ मे ही यह साधन है और निश्चय साध्य। व्यवहार से ही निश्चय ज्ञान या निश्चय चारित्र की सिध्दि होती है।

शंका.—व्यवहार व निश्चय दोनो का विषय परस्पर विरोधी है' अत: दोनो मे परस्पर सापेक्षता रखते हुए उनका ग्रहण कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर--दोनो नयो के विषय को बारी बारी निर्णय करके, वस्तु को माध्यस्थ भाव से भेद व अभेद रूप युगपत देखना ही दोनो नयों का युगपात ग्रहण है। ऐसे वस्तु के ग्रहण मे विधि निषेध नही होता, साम्यता होती है। इसीलिये निश्चय या वयवहार दोनों के पक्ष ही साधक के लिये निषिध्द है। वस्तु का निर्णय हो जाने पर दोनो का ही आश्रय छोडकर पक्षातिक्रान्त हो जाना योग्य है। यही दोनो का यथार्थ ग्रहण है। क्योकि अखण्ड वस्तु अब साम्य भाव से देखी जा रही है, उसमे व्यवहार के विषय भूत भेद भी दिखाई दे रहे है, और निश्चय का

विषय भूत अभेद भी दिखाई दे रहा है । वहाँ किसी का भी निषेध या मुख्यता नही है । जैसे अग्नि को देखने पर उसी समय बिना विकल्प उठाये भी स्वत: उसके उष्णता आदि सर्व अंगो का ग्रहण हो जाता है ।

१४ व्यवहार नय सम्बन्धी शका समाधान

अब व्यवहार नय के सम्बन्ध मे उठने वाली कुछ शंकाओं कासमाधान कर देना योग्य है ।

शंका –आगम पद्धति की सात नयो मे ग्रहण की गई व्यवहारनय व इस व्यवहार नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर –पहली व्यवहार नय का विषय केवल द्रव्यार्थिक था और इसका विषय द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक दोनों । कारण कि पहिली का व्यापार तो सग्रह नय के अभेद बिषय में भेद कर देना मात्र था परन्तु उनमे व भेदो मे से किसी को भी पृथक सत्ता रूप से स्वीकार करना नही । और इस दूसरी का व्यापार अभेद द्रव्य मे उसकी द्रव्य पर्यायो की अपेक्षा अथवा गुण गुणी आदि की अपेक्षा भेद करना भी है और भिन्न भिन्न पर्यायो की पृथक सत्ता देख कर उन्हे एक दूसरी से निरपेक्ष स्वतत्र पदार्थ स्वीकार करना भी । जैसे 'जीव दर्शन ज्ञान आदि गुण वाला है' ऐसा कहना भी व्यवहार का विषय है और 'मनुष्य कोई और जाति का पदार्थ है और कीड़ा कोई और जाति का पदार्थ है' ऐसा कहना भी व्यवहार है ।

पहले व्यवहार का क्षेत्र केवल वस्तु व उसके अंग थे और इस व्यवहार का क्षेत्र वस्तु व उसके अगो के अतिरिक्त पर संयोग भी है, अर्थात भिन्न द्रव्यो मे कर्ता भोक्ता आदि भावों को देखना भी इसका विषय है ।

शंका –सद्भूत व्यवहार नय व निश्चय नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर –सद्भूत व्यवहार नय वस्तु के अद्वैत भाव मे गुण गुणी आदि रूप द्वैत उत्पन्न करके उनके मध्य लक्ष्य लक्षण भाव दर्शाता है जैसे 'जीव ज्ञानवान है' और निश्चय नय सम्पूर्ण अगो से तन्मय अखण्ड द्रव्य को देखते हुए किसी एक अग, गुण या पर्याय मात्र ही द्रव्य को वताकर लक्ष्य व लक्षण मे अभेद करता है। जैसे जीव ज्ञान मात्र है अथवा केवल ज्ञान ही जीव है," ।

शंका –व्यवहार नय को असत्यार्थ कहकर छोड़ने के लिये क्यो कहा जाता है ?

उत्तर –क्योंकि यह वस्तु को जैसी है वैसी निरूपण नही करता। या तो उसको खण्डित करके उसमे द्वैत उत्पन्न कर देता है या भिन्न भिन्न पदार्थो को एकमेक मान लेता है। ऐसी मान्यता से भ्रम दूर होने नही पाता। वह लौकिक रूढि का प्रदर्शन करता है। परमार्थ इससे दूर रहता है।

———

२०

विशुद्ध अध्यात्म नय

१. विशुद्ध अध्यात्म परिचय, २ निश्चय नय, ३. व्यवहार नय सामान्य,

४. सद्भूत व्यवहार नय सामान्य, ५. उपचरित अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय,

६. सद्भूत व्यवहार नय सामान्य, ७. उपचरित अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय,

८. शंका समाधान

अब तक जिस प्रकार अध्यात्म का परिचय दिया गया वह
१ विशुद्ध अध्यात्म अत्यन्त स्थूल है, क्योकि उसमे सर्वत्र उपचारो का
परिचय ग्रहण करना कोई दोष नही। संसारी व मुक्त जीव यद्यपि जीव द्रव्य नही है जीव की द्रव्य पर्याय है फिर भी उन्हे वहा द्रव्य स्वीकार कर लिया गया है। इसी प्रकार केवल ज्ञान व मति ज्ञान यद्यपि ज्ञान गुण नही है ज्ञान की व्यञ्जन पर्यायें है, फिर भी उन्हे वहा गुण स्वीकार कर लिया गया है। ग्रन्थाधिराज समयसार की अत्यन्त विशुद्ध अध्यात्म दृष्टि ऐसे उपचार को सहन नही करती। यहां द्रव्य का अर्थ अपने सम्पूर्ण त्रिकाली वा क्षणिक भावो से तन्मय एक अद्वैत सत् है। भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय मे ग्रहण किये

गए अखण्ड तत्व को ही द्रव्य कहना न्याय है। इस दृष्टि मे जीव को मनुष्य व तिर्यञ्च आदि कहना अथवा ससारी या मुक्त आदि कहना सम्भव नही। जीव त्रिकाली जीव ही है इससे अतिरिक्त कुछ नही। वही निर्विकल्प द्रव्य यहा अभेद ग्राही निश्चय नय का विषय है।

गुण शब्द भी यहां पर्याय के प्रति सकेत नही करता बल्कि त्रिकाल एक सामान्य भाव को ही ग्रहण करता है। 'ज्ञान' ज्ञान ही है मति ज्ञान व केवल ज्ञान नही। ज्ञान कभी हीन या अधिक भी नही होता 'ज्ञान' ज्ञान को ही जानता है। ज्ञेय को जानता है ऐसा कहना भी युक्त नही। ऐसा निर्विकल्प गुण सामान्य ही निर्विकल्प द्रव्य का लक्षण बनाया जा सकता है। अत व्यवहार नय मे गुण गुणी भेद ही यहा ग्रहण किया जाता है, पर्याय पर्यायी भेद नही।

पहले वाली अध्यात्म पद्धति स्थूल है क्योकि वहां की असद्भूत व्यवहार नय भिन्न सत्ताधारी द्रव्यो मे स्व व पर का विवेक उत्पन्न कराती है। पर यह सूक्ष्म दृष्टि एक ही पदार्थ के दो भिन्न भावों मे स्व व पर का विवेक कराती है। वहा द्रव्यो की पृथकता सग्रह व व्यवहार नय का विषय है और यहा दो भावो की पृथकता ऋजुसूत्र नय का विषय है। यह दृष्टि पदार्थ के अपने अन्दर पड़ी उस सूक्ष्म सन्धि को देखती है जो लौकिक स्थूल दृष्टि मे आनी असम्भव है। प्रज्ञाछैनी के द्वारा ही उस सूक्ष्म सन्धि का साक्षात्कार किया जा सकता है।

पदार्थ के स्वभाव अर्थात पारिणामिक भाव को लक्ष्य मे लेकर पदार्थ का विचार करने पर ही यह रहस्य समझा जा सकता है, उसकी शुद्ध व अशुद्ध व्यञ्जन पर्यायो को लक्ष्य मे लेने से नही। अतः विशुद्ध अध्यात्म का परिचय पाने के लिये अत्यन्त स्थिर दृष्टि

की आवश्यकता है । चंचल दृष्टि मे उसका प्रवेश नही, क्योकि प्रसग आने पर वह दृष्टि अपने लक्ष्य से बहक जाती है । 'ज्ञान' से तन्मय होने के कारण आत्मा का काम जानने के अतिरिक्त और कुछ नही' इस बात को स्वीकार कर लेने पर भी, 'घट बनाना कुम्हार का काम नही' जब ऐसा समझाने का अवसर आता है तो तुरन्त वह दृष्टि अपने पूर्व के लक्ष्य पर से बहक कर इस चिन्ता मे पड जाती है कि 'कुम्हार के बनाये बिना घट कैसे बना ।' अर्जुन को लक्ष्य साधते समय जिस प्रकार कौवे की आख के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न देता था, भले ही वहां वृक्षादि अनेको पदार्थ पड़े हो, इसी प्रकार पदार्थ का लक्ष्य साधते हुए तुम्हे भी उसके पारिणामिक भाव के अतिरिक्त कुछ भी अन्य दिखाई न देना चाहिये, भले ही वहा निमित्त नैमित्तिक अनेको संयोग पड़े हो । ऐसे स्थिर लक्ष्य मे निमित्त नैमित्तिक भाव भी अभेद द्रव्य के अपने अन्दर ही देखा जाता है, जैसे कि समयसार की १०० वी गाथा मे बताया गया है कि 'ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी घट बना नही सकता । उपादान रूप से तो नही पर निमित्त रूप से भी नही बना सकता । अज्ञानी निमित्त रूप से यदि कुछ कर सकता है तो केवल घट बनाने का विकल्प कर सकता है, इसके आगे कुछ नही ।' अत इस सूक्ष्म दृष्टि को समझने के लिये अब लक्ष्य को स्थिर कीजिये ।

लोक मे छः द्रव्य है । इन मे से धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये चार तो त्रिकाली शुद्ध है, परन्तु जीव व पुद्गल किसी विशेष शक्ति से युक्त है, जिसके कारण यह अपने स्वभाव के अनुरूप भी कार्य कर सकते है और इसके विपरीत किसी भिन्न जाति रूप भी । इस शक्ति को आगम भाषा में 'वैभाविक शक्ति' नाम से कहा गया है । यहा 'वैभाविक शक्ति' इस शब्द का अर्थ पर्याय न समझ लेना । क्योकि शक्ति त्रिकाली भाव को कहते है ।

त्रिकाली भाव दो प्रकार के होते हैं—गुण रूप शक्ति रूप । गुण

को हम शक्ति कह सकते है, पर शक्ति को गुण नही क्योकि गुण प्रतिक्षण कोई न कोई कार्य करता ही रहता है, परन्तु शक्ति वस्तु में पडी रहती है, यदि अनुकूल सामग्री मिली तो वह अपना असर दिखा दती है, नही तो पड़ी रहती है। उदाहरणार्थ ईन्धन मे उसका भूरा आदि रग व उसकी कठोरता आदि स्पर्श तो गुण है, क्योकि इनका कोई न कोई कार्य अर्थात पर्याय हर समय उसमे देखने को मिलती है, और अग्नि के द्वारा जल जाने की शक्ति है, क्योकि उसका काम हर समय दिखाई नही देता। अग्नि का सयोग मिला तो जल गया, नही मिला तो नही जला। न जलने वाली हालत मे क्या उसकी शक्ति कही चली गई ? नही उसमे ही है। इसी प्रकार जीव व पुग्द्रल मे चलाने व फिरने की शक्ति है, पर इसका यह अर्थ नही कि वह हर समय चलते ही रहे। चाहे तो चले और चाहे तो न चले। उन्हे प्रत्येक समय चलना ही पडे ऐसा नही है। इसी कारण उसे आगम मे क्रियावती नाम की शक्ति कहा गया है, गुण नही।

जीव मे ज्ञान तो गुण है क्योंकि हर समय—निगोद या सिद्ध दोनो अवस्थाओ मे यह जानता है। उसका जानने का कार्य एक समय को भी रूकता नही। पर क्रोध करने का उसमे गुण नही है शक्ति है, क्योकि चाहे तो क्रोध करे चाहे तो न करे। क्रोध न करते समय उसकी वह शक्ति कही चली नही जाती, शक्ति होने का यह अर्थ भी नही की हर समय उसे क्रोध करना ही पड़े। सिद्ध भगवान मे वह शक्ति केवल शक्ति रूप से पड़ी है भले ही उन्हे कभी क्रोध करने का अवसर प्राप्त न हो, विल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि ससारी जीव मे भव्यत्व शक्ति 'शक्ति' रूप से पड़ी है भले उसे सिद्ध बनने का अवसर भी प्राप्त न हो।

इस शक्ति को 'स्वभाव' या 'धर्म' इस नाम से भी कहा जाता जाता है। 'गुण' को हम शक्ति, स्वभाव या धर्म कुछ भी कह

सकते । जीव में रागद्वेषादि रूप परिणमने की शक्ति है और पुद्गल में स्कन्ध रूप परिणमने की । इन दोनों द्रव्यों मे इस प्रकार से परिणमने की शक्ति का नाम वैभाविक शाक्ति है । इसके कारण ही ये दोनों द्रव्य शेष चार द्रव्यों की अपेक्ष कुछ विचित्रता रखते हैं वास्तव में यही शक्ति इस लोक के मूल पसारे का कारण है । यदि यह न होती तो सब ही द्रव्य अपनी स्वभाविक अवस्था मे रहते । पुदगल भी इन्द्रियों का विषय न बना होता । सब अदृष्ट रहते । इसी प्रकार जीव भी बन्ध को प्राप्त न हुआ होता । अतः संसार व मोक्ष न होता ।

इस शक्ति विशेष के कारण जीव व पुद्गल दोनों द्रव्यों में दो प्रकार के क्षणिक भाव या पर्याय देखने को मिलती है—स्वभाव पर्याय व विभाव पर्याय । अकेला परमाणु व उसके स्पर्शादि गुण पुद्गल के स्वभाव भाव है और स्कन्ध व उसके स्पर्शादि गुण विभाव भाव है । सिद्ध भगवान व उसके केवल ज्ञानादि गुण जीव के स्वभाव भाव है और संसारी जीव व उसके क्रोधादि गुण विभाव भाव है । 'स्वभाव भाव' निज भाव या स्वभाव कहलाते है और 'विभाव भाव' पर भाव कहलाते है । इस प्रकार एक ही द्रव्य के अपने भावो मे स्व व पर का विभाजन इस सूक्ष्म दृष्टि का कार्य है ।

इन स्व व पर भावो के कारण उनसे तन्मय द्रव्य में भी किञ्चित विजातीयता का आभास होने लगता है । यहां पुदगल को छोड कर जीव द्रव्य मे ही उस विजातीयता की सिद्धि करते है । पुदगल मे यथा योग्य स्वयं लगा लेना । जीव द्रव्य एक विचित्र पदार्थ है क्योंकि स्व व पर दोनों को जानने मे समर्थ है । जानना मात्र ही हुआ होता तो कोई हर्ज न होता । यहा जानने के साथ साथ कुछ और भाव भी पैदा होता है । स्व को जानते हुए तो इसे स्व व पर दोनों ही दिखाई देते है, किन्तु पर को जानते हुए इसे स्व दिखाई

नही देता । स्व को जानते समय यह स्व स्वरूप के साथ तन्मय होता है और पर को जानते हुए यह उसके साथ तन्मय सा हो जाता है । तन्मय का अर्थ यहा उस पदार्थ रूप बन जाना नही है, वल्कि अपने को भूलकर केवल उस पदार्थ की सत्ता को देखना मात्र है। अथवा ज्ञेय पदार्थ मे परिवर्तन होने पर अपने भावो मे भी तदनुसार परिवर्तन करना इसका अर्थ, जैसे कि फूल खिल जाने पर कुछ हर्ष व उसके मुरझा जाने पर कुछ विपाद सा होना। इस कारण चेतन रहते हुए भी उसमे चेतन भाव व जड भाव दोनों देखे जा सकते है । वात वडी विचित्र है पर दृष्टि विशेष सी समझी अवश्य जा सकती है ।

जीव पदार्थ मे ज्ञान गुण ही प्रमुख है, अन्य सव उसका विस्तार है । चेतन के सव गुण चेतन है अर्थात ज्ञानात्मक व अनुभवात्मक है। ज्ञान तो ज्ञान है ही, श्रद्धा भी ज्ञानात्मक है और चारित्र भी, क्योंकि ज्ञान के ही निः सशय रूप को श्रद्धा और उसी के स्थित रूप को चारित्र कहते है । सुख भी ज्ञानात्मक है क्योकि अनुभाव नाम ज्ञान का ही है। इसी कारण आत्मा को चित्पिण्ड कहा जाता है। या यो कहिये कि ज्ञान मात्र ही आत्मा है। अत. ज्ञान के कार्यों को ही ज्ञान का विषय वनाना अभीष्ट है ।

यद्यपि ज्ञान का कार्य जानना है, पर इसके साथ कुछ और भाव भी सलग्न है । जानना दो प्रकार का होता है—एक केवल जानना और दूसरा कल्पना विशेष के साथ जानना । अजायबघर मे रखी वस्तुओ को जानना केवल जानने का उदाहरण है। और घर मे पड़ी वस्तुओ को जानना कल्पना सहित जानने का उदाहरण है। अजायब घर मे प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्थान पर सुन्दर लगती है ।और घर की वस्तुओं मे कोई सुन्दर और कोई असुन्दर लगती है । अजायब घर

मे कोई वस्तु इष्ट अनिष्ट या तेरी मेरी नही। पर घर की अस्तुओं मे कोई इष्ट है और कोई अनिष्ट, कोई मेरी है और कोई तेरी। अजयब घर की वस्तुऐं न ग्राह्य है ओर न त्याज्य न कोई बनाने योग्य है और न विगाड़ने योग्य। पर घर की वस्तुओं मे कोई ग्राह्य है और कोई त्याज्य, कोई बनाने योग्य है और कोई बिगाड़ने योग्य। इसी लिये अजायब घर की वस्तुओं का जानना तो कर्ता भोक्ता की कल्पनाओ से अतीत जानना मात्र है और घर की वस्तुओं को जानना कर्ता भोक्ता की कल्पनाओ सहित होने के कारण जानने के साथ साथ कुछ और भी है। ज्ञान के पहले जाति के कार्य को ज्ञान क्रिया कहते है और दूसरी जाती के जानने की क्रिया को कर्ता क्रिया कहते हैं। पारि भाषिक शब्द याद रखना। ज्ञान क्रिया ज्ञाता दृष्टा भाव रूप है और कर्ता क्रिया क्रोधादि विकारो रूप। ज्ञान क्रिया ज्ञान के पारिणामिक भाव के साथ या चेतन के साथ तन्मय होने के कारण चेतन भाव है और कर्ता क्रिया जड़ पदार्थो के करने धरने के विकल्पों से तन्मय होने के कारण जड भाव है।

इन दोनों जाति की क्रियाओं मे ज्ञान एक समय मे एक ही कार्य कर सकता है, क्योंकि उपयोग ज्ञान की क्षणिक पर्याय है, और एक समय मे एक ही ज्ञान की दो पर्याय हो नही सकती हैं। इसलिये ज्ञान क्रिया के सद्भाव मे कर्ता क्रिया और कर्ता क्रिया के सद्भाव में ज्ञान क्रिया होनी असम्भव है। अर्थात क्रोध के समय ज्ञाता दृष्टा पने की साम्यता और साम्यता के समय क्रोधादि होने असम्भव है।

ज्ञान क्रिया से तन्मय चेतन ज्ञाता कहलाता है और कर्ता क्रिय से तन्मय चेतन कर्ता कहलाता है। इसका कारण भी यह है कि ज्ञान का अपने पारिणामिक भाव के अनुरूप कार्य ही ज्ञान की जाति का कार्य कह जा सकता है। कर्ता भोक्ता की

कल्पनाये ज्ञान के पारिणामिक भाव की जाति की नही होने के कारण उन्हे ज्ञान की जाति का कार्य नही कहा जा सकता । ज्ञान भाव से तन्मय ज्ञान का कार्य ज्ञान कहलाता है और कल्पनाओं या विकल्पो से तन्मय ज्ञात का कार्य विकल्प कहलाता है । इस प्रकार एक ज्ञान के दो भेद कर दिये गए एक ज्ञान व दूसरा विकल्प ।

पहले भेद अर्थात ज्ञान क्रिया से तो मै ज्ञाता इस ज्ञेय को जानता हूं, ऐसा भाव वना रहता है, परन्तु कर्ता क्रिया मे ज्ञान स्वय ज्ञाय के साथ तन्मय होकर यह भूल जाता है कि मै जानने वाला भी कोई हू । उसको ज्ञेय पदार्थ या उसकी पर्याय ही दिखाई देती है, ज्ञाया–ज्ञेय का भेद नही रहता । यद्यपि ज्ञेय सम्वन्धी विकल्प से तन्मय है, ज्ञेय से नही, परन्तु 'यह विकल्प है और ज्ञेय मुझ से भिन्न है, उसके परिवर्तन पाने से मुझे कुछ हानि लाभ नही, ऐसा भी ज्ञान उस समय नही होता । स्व पर का विवेक सर्वथा लुप्त हो जाता है । इसलिये उस ज्ञान की स्व पदार्थ के साथ तन्मय होने के कारण स्वभाव है और कर्ता क्रिया पर पदार्थ के साथ तन्मय होने के कारण परभाव है ।

यही विशुद्ध अध्यात्म का भेद विज्ञान है, जिसको ग्रहण करना अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि मे ही सम्भव है । एक ज्ञान मे ही विवक्षा वश स्व व पर का द्वैत उत्पन्न कराया गया है । साधारण अध्यात्म मे स्व व पर की कल्पना स्थूल थी, पर यहा स्व पर की व्याख्या अत्यन्त सूक्ष्म है । वह द्रव्यार्थिक का विषय था और यह पर्यायार्थिक ऋजुसूत्र का विषय है, कारण कि ज्ञान क्रिया के साथ तन्मय रहने वाला ज्ञाता व्यक्ति कोई और है, और कर्ता क्रिया से तन्मय रहने वाला कर्ता व्यक्ति कोई और । जो ज्ञाता है वह कर्ता नही और जो कर्ता है वह ज्ञाता नही । इस विशुद्ध दृष्टि मे स्व पदार्थ का क्या

अर्थ है और पर पदार्थ का क्या अर्थ है यह समझने के पश्चात अब मूल विषय पर आइये । यहा भी मूल नये दो ही हैं–निश्चय व व्यवहार । व्यवहार नय के भेद भी वही है–उपचरित अनुपचरित सद्भूत व असद्भूत । उनके लक्षण भी वही हैं । अन्तर केवल इतना है कि यहां द्रव्य शब्द का अर्थ त्रिकाली सामान्य द्रव्य है, और गण शब्द का अर्थ भी त्रिकाली सामान्य गुण है, उनकी शुद्ध व अशुद्ध पर्याय नही । इसी कारण निश्चय नय के यहा कोई उत्तर भेद नहीं हैं । स्व पदार्थ व पर पदार्थ की व्यारख्या में भी यहां उपरोक्त प्रकार अन्तर है । अब क्रम पूर्वक इन नयों के लक्षण आदि दर्शाने में आते हैं ।

२. निश्चय नय

यहा भी निश्चय नय का वही लक्षण है, जो कि पहले वाली अध्यात्म पद्धति मे कर आये है, अर्थात अपने सम्पूर्ण गुणों व पर्याय से तन्मय द्रव्यमें अभेद देखना निश्चय नय का लक्षण है । इतना विशेष है कि आगम पद्धति की द्रव्यार्थिक नय वत् यहां द्रव्य को शुद्ध व अशुद्ध मे विभाजित नहीं किया जा सकता, और इसीलिये यहां इस नय के शुद्ध निश्चय व अशुद्ध निश्चय ऐसे दो भेद नही किये जा सकते । जबकि पहले वाला निश्चय नय, शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य पर्यायों को द्रव्य रूप से और गुणो की शुद्ध या अशुद्ध पर्यायो को गुण रूप से स्वीकार करके, उसके साथ तन्मय द्रव्य को ग्रहण करने के कारण, दो भेद रूप कर दिया गया है । विशुद्ध अध्यात्म के इस प्रकरण मे द्रव्य शब्द का अर्थ भेद निरपेक्ष त्रिकाली द्रव्य सामान्य है और गुण शब्द का अर्थ शुद्ध व अशुद्ध पर्यायो से निरपेक्ष त्रिकाली गुण सामान्य है । अत. यहा न तो गुण की व्याख्या पर्यायो पर से की जा सकती है, और न द्रव्य की व्याख्या गुण पर से । इसका विषय पूर्ण निर्विकल्प है ।

निर्विकल्पता 'मे गुण से तन्मय द्रव्य' इतना कहने को भी अवकाश नही, क्योकि अभेद प्रदर्शक होते हुए भी इस वाक्य मे गुण

व द्रव्य का द्वैत देखा जाता है 'सत् मात्र द्रव्य है, याज्ञा 'न मात्र जीव है' ऐसा कहना इस पद्धति मे व्यवहार समझा जाता है । लक्ष्य लक्षण भेद के बिना भेद ही नही किया जा सकता फिर इस निश्चय नय का लक्षण कैसे करे ? 'द्रव्य जैसा है वैसा ही है' बस ऐसा कहना ही इस नय का लक्षण है । इसी को और अधिक स्पष्ट करना हो तो 'व्यवहार गत विकल्पों का निषेध करना ही इसका लक्षण है' ऐसा समझ लीजिये ।

तात्पर्य यह है कि 'ज्ञान जीव का लक्षण है' ऐसा कहना व्यवहार है, तब 'ज्ञान मात्र ही जीव नही है, ऐसा कहना निश्चय है । 'ज्ञान दर्शन चारित्र आदि गुणो का पिण्ड जीव है' ऐसा कहना व्यवहार है, तब 'ज्ञान दर्शन चारित्र ऐसा त्रयात्मक जीव नही है वह तो इन सब भेदो से निरपेक्ष है, ऐसा कहना निश्चय है । अर्थात द्रव्य का परिचय देते समय जो कोई भी विकल्प व्यवहार नय उत्पन्न करे उसका निषेध कर देना मात्र इसका लक्षण किया जा सकता है । भेद ग्रहण के बिना विधि आत्मक लक्षण होना असम्भव होने के कारण निषेधात्मक लक्षण किया गया है । इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१. प.ध. ।५९८–६४४. "व्यवहार: प्रतिपेध्यस्तस्य प्रतिषेधकश्च परमार्थ· । व्यवहार प्रतिषेध- स एवं निश्चय नय- यस्य वाच्य: स्यात् । ५९८, । व्यवहार: स यथा स्यात्सद्रवय ज्ञान वाच्य जीवो वा नेत्येतन्मात्तो भवति स निश्चयनयो नयाधिपति· । ५९९. लक्षण मेकस्य सतो यथाकथचिद्यथा द्विधाकरणम् । व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुन: । ६१४। इदमत्र निदानं किल गुण व द्रवयं यदुक्त मिह सूत्रे । अस्ति गुणस्ति द्रवयं तद्योगादिह लव्धामित्यर्थात । ६३४।

तदसत् गुणोस्ति यतो न द्रव्य नोभयं न तद्योगः।
केवल मद्वैतसत् भवतु गुणो व तदेव सद्द्रव्यम् ।
६३५ । नैवं यतोस्ति भेदोऽनिर्वचनीये नयः स
परमार्थ. तस्मात्तीर्थस्थितये श्रेयान् कचित्स स
वावदूकोऽपि । ६४१ । इदमत्र समाधान व्यवहारस्य
च्र नयस्य यद्वाच्यम् । सर्वविकल्पाभावेत तदेव निश्चय
नयस्य यद्वाच्यम् । ६४३ ।"

क्रमश त. प. । ३ १३४. "एक शुद्ध नय.सर्वोनिर्द्वन्दो
निर्विकल्पक. । १३४ ।"

अर्थ—व्यवहार नय प्रतिसेध्य है ,तथा उसका प्रतिषेधक
निश्चय नय है । अर्थात व्यवहार नय,का निषेध करना ही
निश्चय नय का वाच्य है । ५९८ । जैसे 'सत् द्रव्य
है' अथवा 'ज्ञानवान जीव है' इस प्रकार का कथन
करना वयवहार नय है । तथा 'इतना ही मात्र नही
है' इस प्रकार का व्यवहार का प्रतिषेध करने वाला
जो कथन है वही नयो का अधिपाति निश्चय नय
है । ५९९ । जिस प्रकार एक सत् को किसी भाति
अर्थात गुण पर्यायों आदि वाला बतला कर द्वैत रूप
करना व्यवहार नय का लक्षण है उसी प्रकार
व्यवहार नय से विपरीत अर्थात अद्वैत सत् मे द्वैत न
करना निश्चय नय का लक्षण है । ६१४ ।

निश्चय से व्यवहार नय अभूतार्थ है। इसका कारण यह है
कि सूत्र मे द्रव्य को जो गुण वाला कहा है, उसका अर्थ करने
से ऐसा प्रतीत होता है, मानों पहले गुण जुदा थे द्रव्य जुदा, पीछे
से द्रव्य के साथ गुण का योग हुआ, इसलिये वह गुण वाला

कहलाने लगा । ६३४ । परन्तु यह बात ठीक नही, क्योकि न तो अकेले गुण की कोई सत्ता है, न अकेले द्रव्य की सत्ता है न सयोग सम्वन्ध वाले इन दोनो की सत्ता है । केवल एक अद्वैत सत् है । इस सत् को चाहे गुण कहो अथवा द्रव्य एक ही बात है क्योकि वे भिन्न नही है । ६३५ ।

इस प्रकार शुद्ध नय सर्वत निर्द्वन्द व निर्वकल्प है । १३४ ।

परमार्थ नय तो अनिर्वचनीय है इसलिये तीर्थ की स्थिति के लिये भेद ग्राहक व्यवहार नय को किसी समय कार्यकारीमाना जाता है । ६४१ । यहा यह तात्पर्य है कि व्यवहार नय का जो कोई भी वाच्य है, वही सम्पूर्ण विकल्पो का अभाव होने पर निश्चय नय का ग्राच्य बन जाता है । ६४३ ।

भले ही समझने व समझाने के लिए लक्ष्य लक्षण व गुण गुणी आदि भेद करके कथन करने मे आये परन्तु वस्तु वास्तव मे अभेद व निर्विकल्प ही है, जो वचन के गोचर नही हो सकती । यदि यह नय सामने आकर व्यवहारिक द्वैत का निरास न करे तो उसके द्वारा स्थापित किये गये द्रव्य गुण व पर्याय आदि भेदो की पृथक सत्ता की स्वीकृत्ति को कौन रोक सकता है ? यह तो इस नय का कारण है और कर्म कलक से रहित ज्ञानात्मक निर्विकल्प आत्म तत्व की सिद्धि द्वारा सम्पूर्ण विकल्पो का अभाव करके ज्ञाता दृष्टा भाव मे स्थिति पाना इस नय का प्रयोजन है ।

जैसा कि पहले नैगमादि नयो के अन्तर्गत वयवहार नय के ३. व्यवहार नय सामान्य प्रकरण मे बताया जा चुका है, व्यवहार का लक्षण भेद करना है । विधि पूर्वक द्रव्य मे गुण–गुणी तथा लक्ष्य लक्षण आदि रूप भेद या द्वैत उत्पन्न करना इस नय का लक्षण है । यही लक्षण पहले भी सर्वत्र ग्रहण करने मे आया है । यहा इतना विशेष है कि द्रव्य की शुद्ध व अशुद्ध पर्यायों से निरपेक्ष

त्रिकाली द्रव्य सामान्य को ही यहा द्रव्य समझा जाता है। और इसी प्रकार व्यज्जन पर्यायों से निरपेक्ष गुण सामान्य के त्रिकाली स्वभाव को ही यहा गुण समझा जाता है। इसी कारण पर्याय पर्यायी भेद को यहां अवकाश नही। गुण सामान्य पर से द्रव्य सामान्य का परिचय देना ही इसका काम है।

द्रव्यों मे जीव पुदगलादि भेद करके द्रव्य सामान्य का लक्षण करना अथवा जीव द्रव्य में ससारी मुक्त आदि जाति भेद न करके जीव-सामान्य का लक्षण करना अथवा पुदगल द्रव्य मे परमाणु स्कन्ध आदि जाति भेद न करके पुदगल सामान्य का लक्षण करना ही इस नय का व्यापार है। अत. उन उन द्रव्यो के सामान्य गुणों को ही यहा लक्षण रूप से ग्रहण करने मे आता है। जैसे 'द्रव्य का लक्षण सत् है' अथवा 'जीव का लक्षण ज्ञान है। अथवा 'पुदगल का लक्षण स्पर्श है' इत्यादि।

इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ अव कुछ उद्धरण देखिये-

१. प ध।पू.।५२२-५२३. "व्यवहारण व्यवहार. स्यातिति शब्दार्थतो न परमार्थः। स यथा गुण गुणिनो रिह सदभेदे भेद करण स्यात् ५२२ साधारण गुण इति यदि वाऽसा धारणः सतस्तस्य। भवति विवक्ष्यो हियदा व्यवहार-नयास्तदा श्रेयान्। ५२३।" व्यवहार सयथा स्यात्सदृव्यं ज्ञानवाँच्य जीदो वा।...। ५९९।"

अर्थः—विधि पूर्वक भेद करने का नाम व्यवहार है। यह लक्षण शब्दार्थ रूप समझना परमार्थ रूप नही। अर्थात संज्ञा, संख्या, लक्षण प्रयोजन की अपेक्षा ही इस प्रकार का भेद किया जाना सम्भव है, द्रन्य क्षेत्र, काल, भाव,

की अपेक्षा नही। क्योंकि यहा गुण व गुणी मे सत् रूप से अभेद होते हुए भी भेद करने को व्यवहार नय कहते हैं। ५२३। जिस समय इस सत् के साधारण या सामान्य गुण अथवा असाधारण या विशेष गुण इन दोनो मे से कोई एक गुण भी विवक्षित होता है उस समय निश्चय से व्यवहार नय ठीक कहलाता है।५२३। इसका उदाहरण ऐसे समझो जैसे 'द्रव्य सत है' अथवा 'ज्ञानवान जीव है' ऐसा कहना। ५९१।

अभेद वस्तु मे भी, उसको भिन्न भिन्न कार्यों पर से, गुणो रूप इन भेदो का कथञ्चित ग्रहण अवश्य हो रहा है। यदि सर्वथा न हुआ होता तो गुण–गुणी का विकल्प भी होना असम्भव था। वस्तु मे इस प्रकार के कथञ्चित भेद का सद्भाव ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है। परिचित भेदो के आधार पर उनसे तन्मय अभेद तथा यथार्थ द्रव्य सामान्य का परिचय देना इसका प्रयोजन है। या यों कहिये कि अनन्त धर्मात्मक एक धर्मीके अस्तित्व की प्रतिति करना इसका प्रयोजन है।

वस्तु मे दो प्रकार भेद देखे जा सकते है–स्वभाविक अगो अर्थात गुणो व उनके स्वभाविक कार्यो के आधार पर तथा विभाविक अंगो के अर्थात पर सयोगी निज भावों के आधार पर। इस प्रकार विषय भेद से इस नय के भी दो भेद हो जाते है–सद्भूत व असद्भूत। इनके लक्षण व भेदादि ही अब आगे दिखाये जायेगे।

४. सद्भूत व्यवहार नय सामान्य

व्यवहार नय सामान्य वत् सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण भी वस्तु मे गुण गुणी भेद करना है। यहा भी पर्याय पर्यायी को अवकाश नही। अन्तर केवल इतना है। कि यहां द्रव्य सामान्य मे जाति भेद दर्शाना अभीष्ट है। इस-लिये पृथक पृथक द्रव्यो के विशेष गुणो को यहां लक्षण रूप से ग्रहण

किया जाता है, सामान्य गुणो को नही । कारण यह है कि सामान्य गुणो पर से द्रव्य सामान्य के स्वभाव का परिचय पाया जा सकता है। परन्तु एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य की पृथकता नही दिखाई जा सकती। जैसे कि 'द्रव्य सत् है' ऐसा कहने से 'जीव होकि पुद्रगल सब ही सत् है। इनमे जाति भेद नही है' इस प्रकार का ग्रहण होता है। और यदि ऐसा हो जाये तो सर्व सकर दोष का प्रसग आये अर्थात सब द्रव्य मिलकर एक हो जाये, तव बन्ध व मोक्ष भी किसे कहे ।

'सत्' या अस्तित्व द्रव्य का साधारण या सामान्य गुण है। अर्थात प्रत्येक द्रव्य सत् रूप तो है ही, परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ और भी है। जैसे जीव सत् होते हुए भी ज्ञान वान जड नही या रूप रस गन्ध वाला नही, और इसी प्रकार पुद्रगल सत् होते हुए भी जड़ या रूप, रस, गन्ध वाला है ज्ञानवान नही,। इसी भाति लोकमे जाति भेद से छ. द्रव्यो की सत्ता आगम सिद्ध है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल । छहो ही सत् है। परन्तु भिन्न भिन्न स्वभाव को धरने वाले हैं। उनके काम भी भिन्न भिन्न जाति के है—जीव का काम जान ना है, पुद्गल का काम जीव के शरीरो का निर्माण करना है, धर्म द्रव्य का काम जीव पुद्गल को गमन करने मे सहायता देना तथा अधर्म द्रव्य का काम उन्हे रुकने मे सहायता देना, आकाश द्रव्य का काम सर्व द्रव्यों को रहने के लिये स्थान देना है और काल द्रव्य का काम सब द्रव्यों को परिवर्तन करने मे सहायता देना है। इस प्रकार एक द्रव्य का काम दूसरे की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न जाति का है, इसी पर से उन द्रव्यों की भिन्न जातीयता का निर्णय होता है। द्रव्य के इस प्रकार के भिन्न जातीय स्वभावों को ही असाधारण या विशेष गुण कहते हैं ।

इन गुणो के आधार पर पृथक पृथक द्रव्यो का परिचय देकर उनमें विभिन्नता दर्शाना इस नय का काम है अर्थात एक अद्वैत सत् को खण्डित कर देना इसका काम है। इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ प ध । पू । ५२५–५२६ "व्यवहारनयो द्वेधा: सद्भूतस्वत्थ भवेदसद्भूत. । सद्भूतस्तमुङ्गुण इति व्यवहारस्त त्प्रवृत्तिमात्रत्वात् । ५२५ । अत्र निंदानच यथा सद्साधारण गुणो विवक्ष्य स्यात् । अविवक्षितोऽथवापि चसत्सा-धारण गुणो न चान्यतरात् । ५२६ ।"

अर्थः—सद्भूत तथा असद्भूत इस भाति व्यवहार नय दो प्रकार का है। उसमे से विवक्षित वस्तु के गुण का नाम सद्भूत है तथा इन गुणो की प्रवृत्तिमात्र का नाम व्यवहार है। प्रवृत्ति का अर्थ यहा सज्ञा सख्यादि की अपेक्षा कथन मे भेद डालना समझना, वस्तु मे नही, । ५२५ । इस प्रवृति मे कारण यह है कि जिस प्रकार यहा 'सत्' अर्थात द्रव्य सामान्य के किसी असाधारण या विशेष गुण की विवक्षा करने मे आती है उस प्रकार सत् के किसी साधारण या सामान्य गुण की विवक्षा करने मे नही आती। और इसी प्रकार अन्य भी कोई पर्याय आदि की विवक्षा करने मे नही आती। तात्पर्य है कि व्यवहार सामान्य मे तो सामान्य व विशेष दोनो गुणो का ग्रहण होता था पर सद्भूत मे केवल विशेष गुणो का ही ग्रहण करके द्रव्य विशेष का परिचय दिया जाता है। ५२६ ।

द्रव्यो मे प्रत्यक्ष होने वाली उपरोक्त विजातीयता इस नय की उत्पत्तिका कारण है। क्योकि यह विजातीयता न होती तो इस नय का कोई विषय भी न होता। विषय के अभाव मे नय का भी अभाव होता। द्रव्य मे रहने वाले यह विशेष गुण सद्भूत है अर्थात

वस्तु के वास्तविक अग है काल्पनिक नही। इसलिये इस नय का नाम सद्भूत है और गुण गुणी भेद करने के कारण व्यवहार है। स्वभाव भेद पर से द्रव्यो की भिन्न जातीयता का निर्णय करके पर द्रव्यो का निषेध तथा स्व द्रव्य मे प्रवृत्ति करना ही योग्य है। यही वताना इस नय का प्रयोजन है।

५. उपचरित अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय

जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है यह विशुद्ध अध्यात्म पद्धति पर्याय पर्यायी भेद नही करती। गुण सामान्य पर से द्रव्य सामान्य का और गुण विशेष पर से द्रव्य विशेष का परिचय देती है। 'ज्ञान वाला जीव है' ऐसा कहना सद्भूत सामान्य का विषय है क्योकि ज्ञान जीव का विशेष गुण है सामान्य नही। ज्ञान गुण मे किसी भी प्रकार का विकल्प विशेष उत्पन्न न करके ज्ञान सामान्य को ही जीव का लक्षण कहना तो अनुपचरित सद्भूत वयवहार समझना। ज्ञान गुण मे ज्ञेय सम्वन्धी कुछ उपचार कर देने पर यही लक्षण उपचरित सद्भूत व्यवहार का कहलायेगा। सो कैसे वही बताता हू।

जिस प्रकार गुणो के आधार पर द्रव्य की विशेषता दर्शाये बिना द्रव्य का परिचय देना असम्भव है, इसी प्रकार किसी भी गुण की विशेषता दर्शाये बिना गुण का परिचय देना असम्भव है। गुण का परिचय प्राप्त किये बिना श्रोता उसके आधार पर द्रव्य का परिचय भी कैसे पा सकेगा? अत ऐसी अवस्था मे उपरोक्त अनुपचरित लक्षण अपने प्रयोजनादि की सिद्धि करने मे समर्थ न हो सकेगा। जिस प्रकार निश्चय नय के वाच्यभूत निर्विकल्प का परिचय देने से पहिले द्रव्य की विशेषता दर्शाने वाले व्यवहार नय का आश्रय लेना आवश्यक है, इसी प्रकार गुण के आधार पर द्रव्य का परिचय देने से पहिले गुण की विशेषता को दर्शाना अत्यन्त आवश्यक है।

यहा जीव द्रव्य की मुख्यता से कथन चलता है। उसका परिचय देने के लिये अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय ने उसके विशेष गुण 'ज्ञान' को आधार बनाया है। इस ज्ञान गुण की विशेषता दर्शाना ही उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। ज्ञान नाम जानन स्वभाव का है। जानना किसी ज्ञेय का होता है। ज्ञेय को जाने विना ज्ञान किसको कहे ? 'ज्ञान तो ज्ञान ही हैं' ऐसा कहने से कोई क्या समझे ? 'जो घट पट आदि को जानता है उसे ज्ञान कहते है' ऐसा बताने पर ही ज्ञान शब्द का अर्थ प्रतिती मे आता है। अर्थात ज्ञान का लक्षण करने के लिये या ज्ञान की विशेषता दर्शाने के लिये आवश्यक ही ज्ञेय का अवलम्बन लेना पडता है। ज्ञेय को जानते हुए भी 'ज्ञान' ज्ञान रूप ही है ज्ञेय रूप नही, परन्तु ज्ञेय के प्रतिबिम्ब के बिना ज्ञान का कोई अर्थ भी नही है। इस प्रकार यद्यपि ज्ञान व ज्ञेय पृथक पृथक पदार्थ है परन्तु प्रयोजन वश ज्ञेय का उपचार ज्ञान मे करके इस मे घट या पट रूप ज्ञेयो की उपाधि लगाई जाती है अर्थात ज्ञान सामान्य को 'घट ज्ञान' या 'पट ज्ञान' कहा जाता है। इसी का नाम उपचार है।

'ज्ञेयो को जानने वाला ज्ञान या ज्ञेयाकार रूप से प्रतीति मे आने वाला जो यह ज्ञान है, वही जीव द्रव्य का लक्षण है' ऐसा कथन करना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। इसी लक्षण को पुदग्लादि अन्य द्रव्यो पर भी यथा योग्य रीतय लागू किया जा सकता है—जैसे "यह जो स्पर्श, रस, गन्ध, आदि भाव नित्य ज्ञान के अनुभव करने मे आते है वही पुदग्ल का लक्षण है" ऐसा कहा जा सकता है। इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

पं. ध. । पू. । ५३५-५४० "स्यादादिमो यथान्तर्लीना या शक्तिरस्ति यस्य सतः । तत्तत्सामान्यतया निरूप्यते चेद्विशेषनिरपेक्षम् ।५३५। इदमत्रोदाहरण ज्ञानं जीवोपजीवि जीवगुणः । ज्ञेयालम्बनकाले न तथा ज्ञेयोपजीवि स्यात् ।५३६। घटसदभावे हि यथा घटनिरपेक्ष चिदेव जीवगुणः । अस्ति घटाभावेऽपि च घट निरपेक्षं चिदेव जीवगुणः ।५३७। उपचरितः सद्भूतो व्यवहार. स्यान्नयो यथा नाम् । अविरुद्धं हेतुवशात्परतोऽप्युचर्यते यतः स्वगुणः" ।५४०।

अर्थ— जिस प्रकार जिस पदार्थ की जो अन्तर्लीन शक्ति है, उस को जाति के सामान्यपने से अर्थात किसी भी विशेषता का आवलम्वन न लेकर उसके द्वारा पदार्थ का जो सामान्य निरूपण करने मे आता है वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है ।५३५। जैसे कि ज्ञान जीव का जीवोपजीवी अर्थात चेतन गुण है । ज्ञेय को विषय करते हुए भी वह जीवोपजीवी ही रहता है, ज्ञेयोपजीवी नही हो जाता ।५३६। क्योंकि जिस प्रकार घट के सद्भाव मे घट की अपेक्षा न करके केवल चैतन्य ज्ञान ही जीव का गुणहै, इसी प्रकार घट के अभाव मे भी घट की अपेक्षा न करके मात्र ज्ञान ही जीव का गुण है ।५३७। अर्थात ज्ञान को सदा ज्ञान ही कहते रहना, ज्ञेय का उपचार न करना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय का विषय है ।

परन्तु अविरोध पूर्वक किसी हेतु वश से अपने गुणो मे भी पर सज्ञा वाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का विषय है ।५४०।

ज्ञेय के उपचार के विना ज्ञान को ही ज्ञान कहता है इसलिये अनुपचार है। ज्ञान जीव का अपना गुण है इसलिये सद्भूत है और गुण-गुणी का भेद ग्रहण करता है इसलिये व्यवहार है। इस प्रकार 'अनुतचरित सद्भुत व्यवहार नय' यह नाम सार्थक है। ज्ञेय के अवलम्वन के बिना ज्ञान का स्वरुप दर्शाना अशक्य है इसलिये ज्ञान मे ज्ञेय का उपचार करने मे आता है। क्योंकि ज्ञेय को जानते हुए भी ज्ञान ज्ञान ही रहता है ज्ञेय नही हो जाता, फिर भी उसे ज्ञेय का ज्ञान कहने मे आता है इसलिये यह नय उपचरित है। ज्ञान जीव द्रव्य का अपना गुण है इसलिये सद्भूत है और गुण-गुणी का भेद ग्रहण करने के कारण व्यवहार है। इस प्रकार 'उपचरित सद्भुत व्यवहार नय' यह नाम सार्थक है। यह तो इस नय का कारण है। द्रव्य के अस्तित्व की प्रतीति करना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार का प्रयोजन है और ज्ञान ज्ञेय के सकर दोष का निवारण करते हुए दोनो का अविनाभावीपना दर्शाना उपचरित सद्भृत व्यवहार नय का प्रयोजन है अथवा ज्ञेय का अवलम्वन छुड़ा कर ज्ञान मात्र का अवलम्वन कराना अर्थात ज्ञाता दृष्टा भाव मात्र जागृत कराना इन दोनों नयो का एक प्रयोजन है।

६ असद्भूत व्यवहार नय सामान्य

जैसा कि पहले ही विशुद्ध अध्यात्म पद्धति का परिचय देते समय बताया जा चुका है जीव पुगद्ल इन दो द्रव्यो मे वैभाविक नाम की विशेष शक्ति है जिसके कारण इनका परिणामन कथञ्चित निज पारिणामिक भाव के साथ तन्मय उसके अनुरूप भी होता है और कथञ्चित पर पदार्थों के साथ तन्मय उनके अनुरूप भी होता है। पहले वाले परिणमन को स्वभाविक और दूसरे वाले को विभाविक कहा जाता है। ज्ञान की 'ज्ञान क्रिया' जीव का स्वभाविक भाव है और उसकी क्रोध आदि भाव रूप या राग द्वेषादि रूप 'कर्त्ता क्रिया' विभाविक भाव है। इसीप्रकार परमाणु व उसकी शुद्ध पर्याये पुगद्ल के स्वभाविक भाव है और स्कन्ध व उसकी

अशुद्ध पर्याये विभाविक भाव है । यहा जीव की प्रमुखता से ही कथन करने मे आयेगा । तहां पुद्गल पर यथा योग्य रूप से स्वय लागु कर लेना ।

पहिली अध्यात्म पद्धति के अन्तर्गत भी असद्भुत व्यवहार नय का कथन आ चुका है । अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ निमित्त नैमित्तिक भावो या कर्त्ता कर्मादि भावो का उपचार करना वहा इस नय का लक्षण बताया गया है । यहाॅ भी वही लक्षण समझना । अन्तर केवल स्व व पर पदार्थो की व्याख्या मे है । वहा स्व व पर पदार्थ द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि का विषय था और यहा उसी का विचार पर्यायार्थिक दृष्टि से किया जाता है । अर्थात वहां तो भिन्न जातीय गुणों से तन्मय द्रव्य 'पर पदार्थ' का वाच्य था और यहा भिन्न जातीय पर्याय से तन्मय द्रव्य 'पर पदार्थ' का वाच्य है । वहा पर पदार्थ का अर्थ था शरीर व घट पट आदि पदार्थ, और यहा पर पदार्थ का अर्थ क्रोधादि विभाविक भाव क्योकि ये ज्ञान का जो वास्तविक कार्य ज्ञाता दृष्टा पना है, उससे भिन्न जाति के है । इस बात का खुलासा पहले ही इस पद्धति का परिचय देते समय किया जा चुका है ।

जिस प्रकार वहाॅ 'घट' 'पट' आदि पर पदार्थो का स्वामी या कर्त्ता आदि जीव को कहना असद्भुत व्यवहार नय का लक्षण था, उसी प्रकार यहा भी क्रोधादि विभाव भावों रूप पर पर्यायों का स्वामी व कर्त्ता आदि जीव को कहना असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है । इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१ प. ध ।पू । ५२९-५३० "अपि चाऽसद्भुतादि व्यवहारान्तो नयचभवति यथा ।अन्य द्रव्यस्य गुणा सजायन्ते बलात्तदन्यत्र ।५२९ । स यथा वर्णादिसतो मुर्तद्रव्स्य कर्म किल मुर्त्तम् । तत्सयोगप्वादिह मूर्ता क्रोधादयोऽपि जीव भावा । ५३० ।"

अर्थ :— अन्य द्रव्य के गुण वल पूर्वक अर्थात उपचार सामर्थ्य से उससे भिन्न द्रव्य के कहने मे आते है अर्थात अन्य द्रव्य मे आरोपित करने मे आते है वही सद्भुत व्यवहार नय का लक्षण है । ५२९ । उदाहरणार्थ वर्णादिमान होने के कारण अर्थात पुद्गल द्रव्य से निर्मित होने के कारण अष्ट कर्म तो ठीक ही मूर्त है । परन्तु जीव मे उत्पन्न होने वाले क्रोधादि भाव यद्यपि मूर्त नही है फिर भी उन मूर्त कर्मो के सयोग सम्वन्ध की विशेपता से उन्हे मूर्त कहने मे आता है । ५३० ।

विभाव भाव कभी भी विना पर सयोग के उत्पन्न नही होते । वह वस्तु के स्वभाव के अनुरूप नही होते । इसलिये उन्हे वस्तुभूत नही माना जा सकता । जिस प्रकार चान्दी से मिश्रित स्वर्ण सफेद दिखाई देता है तब वह सफैदी सोने की ही कहने मे आती है । पर यह व्यवहार वस्तु भूत सत्य नही है, असद्भूत है, क्योकि स्वर्ण अव भी सफेद नही है पीला ही है । इसी प्रकार क्रोधादि भाव ज्ञान जाति के दिखाई न देने के कारण पुदग्ल के कहने आते है, पुदग्ल कर्मो को इनका कर्ता भी कहा जाता है । परन्तु वह व्यवहार वस्तुभूत सत्य नही है, असद्भूत है, क्योकि वे अब भी चेतन के है कर्मो के नही । जीव व इनमे क्षणिक तन्मयता होते हुए भी इनमे भेद ग्रहण किया जा रहा है इसलिये व्यवहार है । अत. इस नय का 'असद्भूत व्यवहार नय' यह नाम सार्थक है ।

जीव व पुद्गल मे अन्तर्लीन वैभाविक शक्ति विशेष इस नय की उत्पत्ति का कारण है । क्योकि यदि यह न होती तो आकाश वत् यह द्रव्य भी त्रिकाल स्वभाव मे स्थित रहते । तब यह नय किसको-विपय करता । इस प्रकार के व्यवहार को असत्य व असद्भूत स्वीकार करके जिस प्रकार कोई व्यक्ति उस स्वर्ण को शोध कर शुद्ध

स्वर्ण की प्राप्ति कर सकता है, उसी प्रकार क्रोधादि भावों को अपने स्वभाव की अपेक्षा असत्य स्वीकार करके कोई व्यक्ति इनके लक्षण को त्याग कर सम्यग्दृष्टि हो सकता है। विभाव भाव को असत्य या असद्भूत समझे विना उन्हे कैसे त्यागे ? यही इस नय का प्रयोजन है, अर्थात 'कर्ता क्रिया' को छुड़ा कर 'ज्ञान क्रिया' का आलम्बन कराना इस नय का प्रयोजन है।

इस नय के भी पूर्ववत् उपचरित व अनुपचरित दो भेद हो जाते है, क्योकि यह क्रोधादि भाव भी सूक्ष्म व स्थूल दो प्रकार के है।

७ उपचरित व अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय — स्थूल अध्यात्म पद्धति मे अन्य द्रव्यों का अन्य द्रव्य के साथ कर्ता कर्म या स्वामित्व आदि सम्बन्ध जोडना असद्भूत व्यवहार नय का विषय बताय गया है। परन्तु यहा पर एक ज्ञान मे ही स्व व पर भावो का विभाग करके जीव ज्ञान का क्रोधादि भावो के साथ कर्ता कर्म या स्वामित्व सम्बन्ध जोड़ना असद्भूत व्यवहार नय का विषय बताया गया है। वे क्रोधादि भाव दो प्रकार के अनुभव करने मे आते है—बुद्धि गोचर व अबुद्धि गोचर। तहा बुद्धि गोचर भाव तो स्थूल है अत: उसका ग्रहण करना तो स्थूल व्यवहार है या उपचरित है, और अबुद्धि गोचर भाव सूक्ष्म है, अत. उनका ग्रहण करना सूक्ष्म व्यवहार है या इपत् उपचार है। इसी से बुद्धि गोचर क्रोधादि रूप पर भावो को जीव का कहना उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है और अबुद्धि गोचर उन्ही भावो को जीव का कहना अनुपचरित असद्भूत व्यवहार है।

१ प.ध।पू।५४६-५४९ उपचरितोऽसद्भूतो व्यवहारख्यो नय. स भवति यथा।

क्रोधाद्या औदयिकाच्चियतज्येद् बुद्धिजा विवक्षया स्यु.।५४९।

अपि वाऽसद्भूतो योऽनुपचरिताख्यो नय
स भवति यथा ।
क्रोधाद्या जीवस्य हि विवक्षिताश्चेद
बुद्धि भवाः ।५४६।"

अर्थ–उपचरित असद्भूत व्यवहार इस नाम से कहा जाने वाला नय इस प्रकार है, जैसे कि जीव के बुद्धि गम्य क्रोधादि औदयिक भावो की विवक्षा होती है। ।५४९। और जो यह अनुपचरित असद्भूत इस नाम का वाच्य नय है वह इस प्रकार है जैसे कि जीव के अबुद्धि गम्य क्रोधादि भावों को जीव का कहना ।५४६।

२. प. ध. ।३०।६०६। विमृश्यैतत्परं केज्यिद्सद्भूतोपचारतः ।
राग व ज्ञानमात्रास्ति सम्यक्त्वं तद्वदीरितम ।९०९।

अर्थ—कोई कोई आचार्य मात्र ऐसा विचार करके जिस प्रकार असद्भूत उपचार नय से ज्ञान को राग वाला कहत हैं उसी प्रकार सम्यक्त्व को भी राग वाला कह देते है।

३ वृ द्र स ।६।१८ "कुमति कुश्रुत विभंगत्रये पुनरुपचरितासद्भूत व्यवहार ।"

अर्थ—कुमति कुश्रुत और विभग इन तीनो को ज्ञान कहना उपचरित सद्भूत व्यवहार है।

क्रोधादि पर भावों को जीव का कहने के कारण असद्भूत है। स्थूल भावों को ग्रहण करने के कारण उपचार और सूक्ष्म भावो को ग्रहण करने के कारण अनुपचार है। भेद करने के कारण व्यवहार है। अतः 'उपचरित व अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय' यह

नाम सार्थक है। असद्भूत सामान्य वत् जीव पुदग्ल मे अन्तर्लीन वैभाविक शक्ति विशेष ही इन नयो की उत्पत्ति का कारण है। बाह्य संयोगों के अभाव मे भी उस शक्ति का कार्य प्रतिक्षण जीव में उस समय तक बराबर चलता रहता है जिस समय तक मोह का सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। अर्थात दसवे गुण स्थान के अन्त समय तक वह बरावर अपना असर दिखाती रहती है। ध्यानस्थ दशा तक मे भी भले क्रोधादि भाव व्यक्त न होने पावे पर इतने मात्र पर से यह नही समझा जा सकता कि उस शक्ति का विनाश हो चुका है। यदि ऐसा समझले तो साधना पूरी करने के प्रति उत्साह समाप्त हो जाये। बस यही अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का कारण है। और सूक्ष्म से सूक्ष्म उन विभाव भावो के प्रति सावधान रहते हुए, उनके त्याग के प्रति, समय प्रति समय उद्यमशील बने रहना इस नय को जानने का प्रयोजन है।

स्थूल क्रोधादि भाव वाह्य संयोग के बिना तीन काल मे होते नही। पर संयोग के विना अकेली वैभाविक शक्ति वैसे भाव उत्पन्न करने मे असमर्थ है। अत बाह्य पदार्थो का सयोग स्थूल विभाव ग्राहक उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का कारण है। बुद्धि गोचर स्थूल क्रोधादि के आधार पर बुद्धि के अगोचर सूक्ष्म क्रोधादि भावों के अस्तित्व की प्रतीति होती है। यही इस नय का प्रयोजन है। अथवा क्रोधादि भावो से हट कर 'ज्ञान क्रिया' मे स्थिति पाना इन दोनो भेदों को जानने का प्रयोजन है।

८ शका समाधान —इस विषय सम्बन्धी कुछ शकाओं का समाधान भी यहा कर देना योग्य है।

१ शका —दोनों अध्यात्म पद्धतियों मे क्या अन्तर है?
उत्तर —देखो इसी अधिकार का प्रकरण नं. १

२ शका –नय का लक्षण ज्ञान का विकल्प है और प्रमाण का लक्षण निर्विकल्प ज्ञान। इस प्रकार निश्चय नय को निर्विकल्प कहने से उसे प्रमाणपने का प्रसग प्राप्त होगा ?

उत्तर –ऐसा नही है, क्योकि निर्विकल्प भी यह निश्चय कथञ्चित विकल्पात्मक है। विकल्प दो प्रकार के होते है–विधि-रूप व निषेधरूप। यहा विधिरूप विकल्प भले न हो पर निषेध रूप विकल्प अवश्य है। 'जीवज्ञानवान है' यह विकल्प तो विधिरूप है और 'जीव ज्ञान मात्र ही नही है' यह विकल्प निषेध रूप है। व्यवहार नय मे विधि रूप विकल्प होता है और निश्चय नय मे व्यवहार के प्रतिषेध रूप विकल्प होता है। प्रमाण मे विधि व निषेध दोनो प्रकार के विकल्प को अवकाश नही। वह तो रसास्वादन रूप है। अत. निश्चय नय को प्रमाणपना प्राप्त नही हो सकता।

३ शका –व्यवहार नय सामान्य व सद्भूत व्यवहार इन दोनो मे क्या अन्तर है ?

उत्तर :– व्यवहार नय सामान्य का काम तो द्रव्य सामान्य अथवा द्रव्य विशेष के अस्तित्व की प्रतीति कराना मात्र है, उन मे परस्पर भेद दर्शाना नही। परन्तु सद्भूत व्यवहार नय उसके विषय में द्वैत उत्पन्न कर के एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से पृथक दर्शाता है। यदि सद्भूत व्यवहार नय न हो तो सर्व द्रव्यो मे जाति भेद व व्यक्ति भेद करना सभव न हो सके। सर्व संकर दोष का प्रसंग आये। एक अद्वैत ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ भ्रम दीखने लगे। या तो एक सर्व व्यापी चेतन हो या एक

सर्व व्यापी अचेतन। इसलिये दोनो के विषय मे अन्तर है।

४. शका – सद्भूत व्यवहार नय व असद्भूत व्यवहार नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर – सद्भूत व्यवहार की प्रवृति तो त्रिकाली भाव सामान्य पर से अर्थात गुणों पर से छहो द्रव्यों की विशेषता का परिचय देने मे होती है, और असभुद्त व्हार नय की प्रवृति जीव व पुद्गल इन दो ही द्रव्यों की वैभाविक शक्ति का परिचय देने मे होती है। या यो कहिये कि सभुद्त व्यवहार नय द्रव्यार्थिक है और असभुदत व्यवहार नय पर्यायार्थिक है, क्योकि वह त्रिकाली भाव को ग्रहण करता है और यह क्षणिक भाव को। वह ज्ञान सामान्य पर से जीव के ज्ञाता दृष्टा पने के स्वभाव का परिचय देता है और यह कर्ता क्रिया पर से उस के विभाव का परिचय देता है। वह ग्राह्य अग का परिचय देता है और यह त्याज्य अग का।

परिशिष्ट

अन्य अनेकों नय

१. नयों के असख्यात भेद, २. नयो के भेद प्रभेदो का प्रदशक चार्ट
३. सर्व नयो का मूल नयो मे अन्तर्भाव ।

१ नयो के असख्याते भेद — आगम व अध्यात्म पद्धति के आधार पर द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक तथा निश्चय व व्यवहार यही दो मूल नये होती है । वास्तव मे वस्तु का पूर्ण स्वरूप इन दो भेदो मे समाप्त हो जाता है, फिर भी उन का विशेष स्पष्टी करण करने के लिये उनके अनेको भेद प्रभेद करके दर्शाये गये है । परन्तु नय इतनी ही हो ऐसा नही है । प्रकृत ग्रन्थ मे जो नाम दिये है वे सग्रह नय की अपेक्षा समझना, अर्थात एक एक नय के अन्तर्गत वस्तु के अनक विभिन्न अगो का ग्रहण हो जाता है । वैसे तो नयो की सख्या नही की जा सकती, क्योकि नय वस्तु के अगो के ज्ञान को कहते है और वस्तु अनन्त धर्मात्मक है । अत नय भी अनन्त ही है । परन्तु ज्ञान मे जाने गये वे सम्पूर्ण अंग वचन के विषय नही बनाये जा सकते, क्योकि वचन सख्यात मात्र है । अत कथन को अपेक्षा भी नयों के सख्याते भद किये जा सकते है । वचन यद्यपि सख्यात ही है, परन्तु मानसिक विकल्प असख्यात तक सम्भव है । जितने तरह के वचन विकल्प उतने ही नय हो सकते है इसलिये नय के उत्कृष्ट भेद असख्यात तक हो सकते है । इसलिये विस्तार से नयो का प्ररूपण नही किया जा सकता । एक से लेकर नयों के अनेको भेद किये गये है । जैसे :—

१. सामान्य से शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा नय एक भेद है।

श्ल. वा. ।१।३६।२ "सामान्यादेशतस्तावदेक एव नयः स्थित ।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थ विशेष व्यञ्जनात्मकः ।।

अर्थ--सामान्य प्ररूपणा की अपेक्षा नय एक ही है।

२. सामान्य और विशेष की अपेक्षा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये नय के दो भेद हैं। सामान्य और विशेष को छोड़ कर नय का कोई दूसरा विषय नही होता। अतः सम्पूर्ण नैगमादिनयों का इन्ही दो नयो मे अन्तर्भाव हो जाता है।

श्ल वा ।१।३३।३ "संक्षेपाद् दौ विशेषेण द्रव्यपर्याय गोचरौ।"

अर्थः—संक्षेप से नयों के दो भेद है–द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक।

सन्मति तर्क ।१।३ की अभयदेव सूरि कृत टीका "परस्पर विभक्त्त सामान्य विशेष विपयत्वात्
द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकावेव नयौ,
न च तृतीय प्रकारान्तरमस्ति यद्विषयो
ऽन्यस्ताभ्यां व्यक्तिरिक्तो नयः स्यात्।"

अर्थ--परस्पर भेद करके सामान्य और विशेष को विपय करने के कारण द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक यह दो ही नय होते है। तीसरा कोई भी ऐसा प्रकार नही है, जो कि उन दो के अतिरिक्त अन्य किसी नय का विषय वन सके।

३. संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र इन तीन अर्थनयो मे एक शब्द नय को मिला कर नय के चार भेद होते है।

समवायाग टीका "नैगमनयो द्विविधः सामान्यग्राही विशेष ग्राही च। तत्र यः सामान्यग्राही स संग्रहेऽन्तभूतः विशेष ग्राही तु व्यवहारे। तदेवं संग्रहव्यवहार ऋजुसूत्र शब्दादित्रयं चैक इति चत्वारो नयः।"

अर्थ:--नैगम नय दो प्रकार की है--सामान्य ग्राही और विशेष ग्राही। तहा जो सामान्य ग्राही है वह तो संग्रह नय मे अन्तर्भूत है और जो विशेष-ग्राही है वह व्यवहार नय मे अन्तर्भूत है। इस प्रकार सग्रह, व्यवहार व ऋजुसूत्र तथा तथा शब्दादि तीनो मिल कर एक व्यञ्जन नय इस प्रकार नय चार है।

४. नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द नय के भेद से नय पाच प्रकार के होते है।

तत्वार्थाधिगम भाष्य १।३४ "नैगम सग्रह व्यवहारर्जूसूत्र शब्दा नया ।"

अथ--नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द ये पाच नय है। (यहा भाष्यकार ने साप्रत, समभिरूढ और एवभूत को शब्द नय के भेद स्वीकार किये है।)

५. जिस समय नैगम नय सामान्य को विषय करता है उस समय वह सग्रह नय मे गर्भित होता है, और जिस समय विशेप को विषय करता है उस समय व्यवहार मे गर्भित होता है, अतएव नैगम-नय का सग्रह और व्यवहार मे अन्तर्भाव करके सिद्धसेन दिवाकर ने छ नयो को माना है। ---सग्रह, व्यवहार ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ व एवभूत।

विशेपावश्यक भाष्य।४५य "सिद्धसेनीया: पुन षडेव नयानभ्युपणन्तव्य.। नैगमस्य सग्रह व्यवहारयोस्तर्भाव विवक्षणात्।"

अर्थ—सिद्ध सेन द्विवाकर ने नैगम नय का संग्रह व व्यवहार नयो मे अन्तर्भाव करके छः नय माने है।

६. नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋज्युसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एव भूत के भेद से नय के सात भेद होते है। यह मान्यता श्वेताम्वर व दिगम्बर दोनो को मान्य है।

त स् ।६।३३ "नैगम सग्रह व्यवहारर्जुसूत्र शब्द समभिरूढैव भूता नया· ।३३।

अर्थ—नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋज्यू सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत इस प्रकार यह सात नय है।

स्थानागसूत्र ।४६६। "साकितेणए ? सत्तमूलणया पणत्ता। त जहा णेगमे संगहे ववहारे उज्जुसुए सद्दे समभिरूढे एवंभूए।"

अर्थ—वे नय कौनसे है। सात मूल नय बताए गये है। यथा नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजूसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत।

(भगवती सूत्र ।४६६)

७. इसी प्रकार तत्वार्थाधिगम भाष्य १।३४,३५ में नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, तथा साप्रत, समभिरूढ और एवंभूत ये शब्द के तीन विभाग करने से नयों के आठ भेद होते है।

८. द्रव्यानुयोगतर्कणा ।८।११ मे नैगम संग्रह आदि सात प्रसिद्ध नयो मे द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय मिला देने से नयों की संख्या नौ हो जाती है। इन नयों के मानने वाले आचार्यो का खण्डन द्रव्यानुयोग तर्कणा मे मिलता है।

९. नैगम के नौ भेद करके सग्रह आदि छः नयो को मिलाने से इलावा ।१।३३।४८ मे नयो के १५ भेद बताये है ।

१०. नय चक्र ।१८६-१८८ में निश्चय नय के २८ और व्यवहार नय के ८ भेद मिलाकर नयो के ३६ भेद होते है—द्रव्यार्थिक के दश, पर्यायार्थिक के छ., नैगम के तीन, सग्रह के दो, व्यवहार के दो, ऋजुसूत्र के दो, शब्द, समभिरूढ व एवभूत ।

११. विशेषावश्यक भाष्य ।२२६४। मे प्रत्येक नय के सौ सौ भेद करने पर नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द इन पाच नयो के मानने से नयो के ५०० और सात नयो के मानने से सात सौ भेद होते है ।

१२. प्रवचन सार तत्व प्रदीपिका टीका परिशिष्ट मे निम्न ४७ नयो का उल्लेख है, जिनक अन्तर्भाव मूल नयो मे ही किया जा सकता है ।

१. द्रव्य नय, २. पर्याय नय, ३. अस्ति[illegible]त्व नय, ४. नास्तित्व, ५. अस्तित्व-नास्तित्व नय. ६ [illegible] [illegible]क्तव्य नय, ७. अस्तित्व अवक्तव्य नय। ८. नास्तित्व अवक्तव्य नय, ९. अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य नय, १०. विकल्प नय, ११. अविकल्प नय, १२. नाम नय, १३. स्थापना नय, १४ द्रव्[illegible] नय, १५. भाव नय, १६ सामान्य नय, १७. विशेष नय, १८. नित्य नय, १९. अनित्य नय, २०. सर्वगत नय, २१. असर्वगत नय, २२. शून्य नय, २३. अशून्य नय, २४. ज्ञानज्ञेय द्वैत नय, २५. ज्ञानज्ञेय अद्वैत नय, २६. नियति नय, २७. अनियति नय, २८. स्वभाव नय, २९. अस्वभाव नय, ३० काल नय, ३१. अकाल नय, ३२. पुरुषाकार नय, ३३. दैव नय, ३४. ईश्वर नय, ३५. अनीश्वर नय, ३६. गुणी नय, ३७. अगुणी नय, ३८. कर्तृ नय,

२१. अन्य अनेकों नय

१. नयों असंख्याते भेद
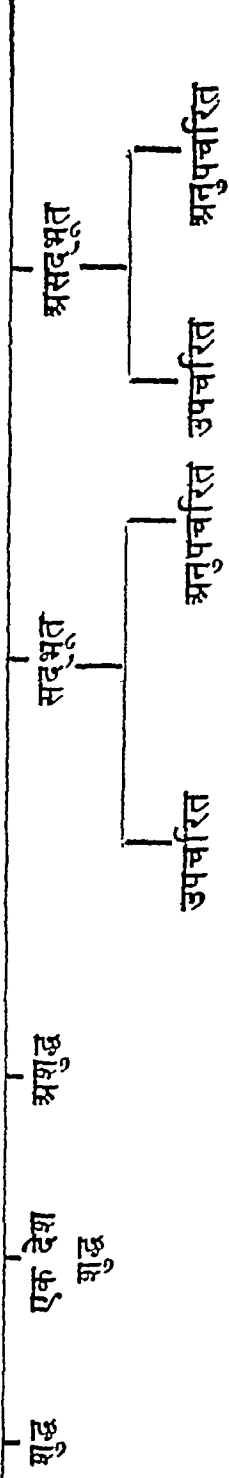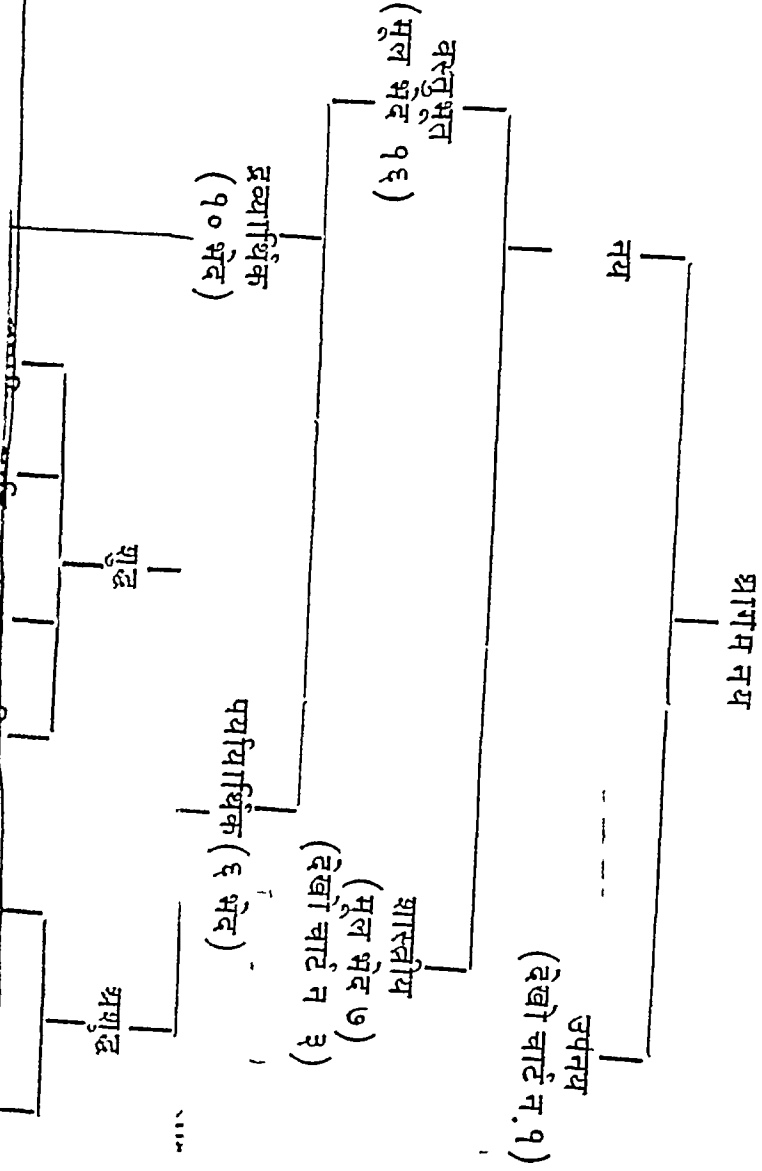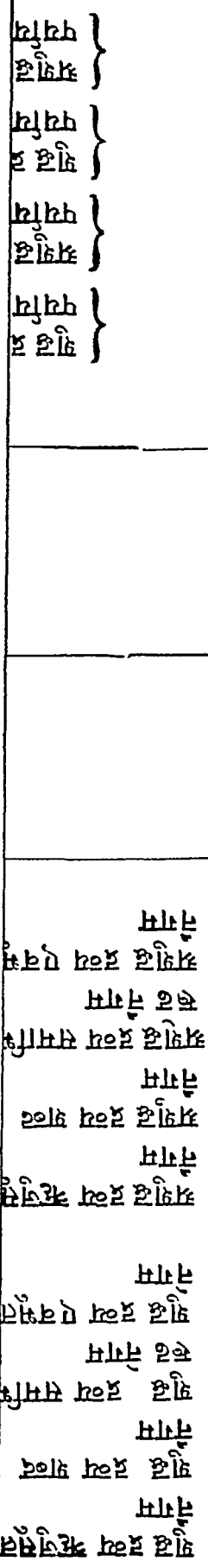
- शुद्ध
- एक देश शुद्ध
- अशुद्ध
- सद्भूत
  - उपचरित
  - अनुपचरित
- असद्भूत
  - उपचरित
  - अनुपचरित

२१. अन्य अनेको नय

१. नयो असख्याते भेद

(चार्ट नं २):—

२१. अन्य अनेको नय

(चार्ट नं. ३) –

- शुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्र नैगम
- शुद्ध द्रव्य शब्द नैगम
- शुद्ध द्रव्य समभिरूढ नैगम
- शुद्ध द्रव्य एवंभूत नैगम
- अशुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्र नैगम
- अशुद्ध द्रव्य शब्द नैगम
- अशुद्ध द्रव्य समभिरूढ नैगम
- अशुद्ध द्रव्य एवंभूत नैगम

- ज्ञान
- ज्ञेय
- ज्ञान ज्ञेय

- शब्द व्यञ्जन
- समभिरूढ
- एवभूत

- शब्द — अर्थ व्यञ्जन
- समभिरूढ — अर्थ व्यञ्जन
- एवभूत — अर्थ व्यञ्जन

- शब्द समभिरूढ
- शब्द एवभूत
- समभिरूढ एवमूत

१. नयों के असंख्याते भेद

- शुद्ध द्र पर्याय
- अशुद्ध पर्याय
- शुद्ध द्र पर्याय
- अशुद्ध पर्याय

३९ अकर्तृ नय, ४० भोक्तृ नय, ४१ अभोक्तृ नय, ४२ क्रिया नय, ४३ ज्ञान नय, ४४ व्यवहार नय, ४५ निश्चय नय, ४६ अशुद्ध नय, ४७ शुद्ध नय ।

१३. वास्तव मे जितने प्रकार के वचन विकल्प हे उतने ही नय हो सकते हे । वचन यद्यपि सख्यात मात्र ही है, परन्तु उन वचनों सम्बन्धी मानसिक विकल्प असख्यात तक होने सम्भव है । अतः नय के भी असख्यात पर्यन्त भेद किये जा सकते है ।

ध ।पु.१।पु.।१६ "एवमेतेन संक्षेपेण नयाः सप्त विधा । अवान्तर भेदेन पुनरसख्येया. ।"

अर्थ—इस प्रकार सक्षेप से यह सात प्रकार । अवान्तर भेद से यही असख्यात होते है ।

ध ।पु१।पृ८०। "जीवदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा
गा६७ जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति पर समया ।।"

अर्थ —जितने भी वचन पथ है उतने ही नय वाद होते है, और जितने नयवाद है उतने ही परसमय या मिथ्यात्व होते है ।

(गो का।मू।८९४) (बृ.न च।१८४) (क पा ।पु१।पृ२४५।गा. ९३) (ध।पु. ९पृ।१८२।गा ५८)

इन सब भेद प्रभेदो का परस्पर संयोग अगले चार्टो पर से पढा जा सकता है ।

२. सर्व नयो का मूल नयो को अन्तर्भाव

जैसा कि पहिले बताया गया है, मूल नय तो दो ही हैं —द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक । इनका विशेप विस्तृत परिचय आगम व अध्यात्म दोनो पद्धतियो की अपेक्षा दिया जा चुका है । अब आगे जितने कुछ भी अन्य अन्य नाम वाले नय सामाने आते है, उन सब का पृथक पृथक विस्तार करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती । यदि पूर्वोक्त मूल नयो को भलीभाति समझ लिया गया है तो जितने कुछ भी अभिप्राय या नय लोक मे हो सकते है, उन सब का किसी न किसी प्रकार इन्ही मूल भेदो मे अन्तर्भाव करके उनका विशेष भाव समझा जा सकता है। उन मूल भेदो से बाहर कोई भी नय हो नही सकता, क्योकि सामान्य व विशेष तथा शुद्ध व अशुद्ध, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव से बाहर लोक मे कुछ भी शेप नही रहता, जो कि इन से पृथक अपनी कोई स्वतत्र सत्ता रखता हो ।

इसीलिये यहा पुर्वोक्त असख्याते भेदो मे से नं १२ मे बताये गये प्रवचनसार के ४७ नयो को उन मूल नयो मे गर्भित करके दर्शाया जाता है, ताकि किसी भी नय को गर्भित करने का अभ्यास भी हो जाये, और नयो के भाव समझ लेने की परीक्षा भी हो जाये । इन नयो मे न. ३ से लेकर न. ९ तक के अस्तित्व आदि ७ नये पुर्व कथित सप्त भगी का ग्रहण करके उत्पन्न हुए है । न. १२ से नं. १५ तक के नाम, स्थापना आदि चार नये अगले अधिकार मे प्ररूपित निक्षेपो का ग्रहण करके प्रगट हुए है । और न २८ से नं. ३३ तक के स्वभाव आदि छ नये वस्तु की स्वतत्र कार्य व्यवस्था के पाच समवायो का आश्रय करके कहे गये हे, जिनका विस्तृत विवेचन 'शान्ति-पथ-प्रदर्शन' नाम ग्रन्थ मे किया गया है ।

१. द्रव्य नय

"आत्म द्रव्य द्रव्य नय से पट मात्र की भाति केवल चिन्मात्र है" ऐसा द्रव्य नय का लक्षण किया है । लक्षण स्वयं बोल कर बता रहा

है कि यहां द्रव्य नय से तात्पर्य **'आगम पद्धति का शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह नय'** तथा अध्यात्म पद्धति का **'शुद्ध निश्चय'** नय है, क्योकि द्रव्य को त्रिकाली पारिणामिक भाव स्वभावी दर्शाया जा रहा है ।

२. पर्याय नय —

"आत्मा पर्याप नय से वस्त्र के पृथक् पृथक् तन्तुओ वत् दर्शन ज्ञान चरित्र रूप है" इस लक्षण पर से नि.सशय यह पता चलता है कि यहा पर्याय नय का लक्ष्य आगम पद्धति की **'अशुध्द द्रव्यार्थिक या व्यवहार'** नय केप्रति और अध्यात्म पद्धति के **'सद्‌भूत व्यवहार'** नय के प्रति है । क्योकि यहा गुण गुणी भेद का ग्रहण है ।

३ अस्तित्व नय —

"आत्मद्रव्य अस्तित्व नय से स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अस्तित्व वाला है । जिस प्रकार कि लोह द्रव्यमई वाण स्वक्षेत्र से कमान के बीच मे रखा गया तथा स्वकाल से धनुष पर खेचा गया तथा स्व-भाव से लक्ष्योन्मुख है ।" स्व चतुष्टय से अद्वैतता दर्शाने के कारण आगम पद्धति के **'स्व चतुष्ट ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह नय में'** तथा अध्यात्म पद्धति के **'निश्चय नय'** मे इस लक्षण का अन्तर्भाव होता है ।

४. नास्तित्व नय —

"आत्मद्रव्य नास्तित्व नय से पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से नास्तित्व वाला है । जिस प्रकार पहिले वाला तीर अन्य तीर के द्रव्य की अपेक्षा से लोहमई नही है अर्थात उस लोहे का नही है जिस लोहे का कि अन्य तीर है, अन्य तीर के क्षेत्र की अपेक्षा से डोरी और कमान के बीच मे रखा हुआ नही है अर्थात जिस कमान के बीच मे अन्य तीर रखा है उसी कमान मे यह नही रखा है, अन्य

तीर के काल की अपेक्षा से खेची गई स्थिति मे नही है अर्थात जिस समय वह अन्य तीर खंचा गया था उसी समय यह खेचा हुआ नही है, और अन्य तीर के भाव की अपेक्षा से लक्ष्योन्मुख नही है अर्थात जिस प्रकार से वह अन्य तीर लक्ष्योन्मुख है उसी प्रकार से यह नही है, वैसे ही आत्मा नास्तित्व नय की अपेक्षा परचतुष्टय से नास्तित्व वाला है"। पर चतुष्टय का निषेध रूप द्वैत करने के कारण आगम पद्धति को **'पर चतुष्ट ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक व व्यवहार नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'असद्भूत व्यवहार' नय मे इस लक्षण का अन्तर्भाव होता है। क्योकि पर चतुष्टय का सयोग व वियोग दोनो को ही वह नय ग्रहण करता है।

५. अस्तित्व नास्ति नय ---

"आत्मद्रव्य अस्तित्व नास्तित्व नय से क्रमश स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अस्तित्वनास्तित्व वाला है--लोहमई तथा अलोहमई, कमान और डोरी के वीच मे रखा हुआ तथा कमान और डोरी के वीच मे नही रखी हुआ, साधित अवस्था मे रहा हुआ तथा साधित अवस्था मे नही रहा हुआ और लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले तीर की भाती।" यह लक्षण अस्तित्व व नास्तित्व दोनों के विधि निषेधात्मक द्वैत रूप है इसलिये आगम पद्धति के **'नैगम नय या'** "सामान्य द्रव्यार्थिकनय" मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'सामान्य निश्चय' नय मे गर्भित होता है।

६ अवक्तव्य नय—

"आत्म द्रव्य अवक्तव्य नय से युगपत स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अवक्तव्य है– लोहमई तथा अलोहमई, डोरी व कमान के वीच मे रखा हुआ तथा डोरी व कमान के वीच मे नही रखा हुआ, साधित अवस्था मे रहा हुआ तथा साधित अवस्था मे नही रहा हुआ,

लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले तीर की भाँति।" यह लक्षण द्रब्य के अनिर्वचनीय अखण्ड भाव का प्रदर्शन करता है इसलिये आगम पद्धति के '**शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह**' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**शध्द निश्चय**' नय मे गर्भित होता हैं।

७ अस्तित्व अवक्तत्य नय --

"आत्म द्रव्य आस्तित्व अवक्तव्य नय की अपेक्षा स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव से तथा युगपत स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अस्तित्व वाला अवक्तव्य है। -(स्व चनुष्टय से) लोहमई, डोरी और कमान के बीच मे रखा हुआ, साधित अवस्था मे रहा हुआ और लक्ष्योन्मुख ऐसा, तथा (युगपत स्वपर चतुष्टय से) लोहमई तया अलोहमई, डोरी और कमान के बीच मे रखा हुआ तथा डोरी और कमान के बीच मे नही रखा हुआ, साधित अवस्था मे रहा हुआ तथा साधित अवस्था मे नही रहा हुआ, लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले तीर की भाति।" यह लक्षण भी आगम पद्धति के तो 'सामान्य **द्रव्यार्थिक अथवा नैगम**' नयों मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**सामान्य निश्चय**' में गर्भित होता है, क्योकि नय नं० ३ व ६ का संयोगी रूप होने के कारण द्वैताद्वैत का ग्राहक है।

८ नास्तित्व अवक्ततय नय --

"आत्मद्रव्य नास्तित्व अवक्तव्य नय की अपेक्षा पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से तथा युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से नास्तिव वाला अवक्तव्य है-(पर चतुष्टय से) अलोहमई, डोरी व कमान के बीच मे नही रखा हुआ, साधित अवस्था मे नही रहा हुआ तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे, तथा (युगपत स्वपर चतुष्टय से) लोह मई तथा अलोह मई, डोरी व कमान के बीच मे रखा हुआ तथा डोरी और कमान के बीच मे नही रखा हुआ, साधित अवस्था मे रहा हुआ तथा

साधित अवस्था मे नही रहा हुआ, लक्ष्यन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले वाले तीर की भाति।" पूर्ववत् ही यह लक्षण भी आगम पद्धति के **'सामान्य द्रव्यार्थिक अथवा नैगम'** नयो मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'सामान्य निश्चय,** नय मे गर्भित होता है।

६ अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य नय –

"आत्मद्रव्य अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य नय की अपेक्षा क्रमश स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव से, पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से तथा युगपत स्वपर द्रव्यक्षेत्र काल भाव से अस्तित्ववाला नास्तित्ववाला अवक्तव्य है–(स्वचतुष्टय से) लोह मई, डोरी व कमान के बीच मे रखे हुए, साधित अवस्था मे रहे हुए, तथा लक्ष्योन्मुख ऐसे, (और पर चतुष्टय से) अलोह मई, डोरी व कमान के बीच मे नही रखे हुए, साधित अवस्था मे नही रहे हूए तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे, (और युगपत स्वपर चतुष्टय से) लोह मई तथा अलोह मई, डोरी व कमान के बीच मे रखे हूए तथा डोरी व कमान के बीच मे नही रखे हूए, साधित अवस्था मे रहे हूए तथा साधित अवस्था मे नही रहे हुए, लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले वाले तीर की भाति। "पूर्व नय न० ७ वत ही यह लक्षण भी आगम मे पद्धति के **'सामान्य द्रव्यार्थिक अथवा नैगम'** नयो मे तथा अध्यात्म पद्धति के **सामान्य निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

१०. विकल्प नय —

"आत्मद्रव्य विकल्प नय से बालक कुमार और वृद्ध ऐसे एक पुरुष की भाति सविकल्प है।" अभेद द्रव्य मे द्वैत उत्पन्न करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व व्यवहार'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के सद्भूत व्हवहार नय मे गर्भित होता है।

११ अविकल्प नय —

"आत्मद्रव्य अविकल्प नय से एक पुरुष मात्र की भाति अविकल्प है। यह लक्षण अभेद द्रव्य को ग्रहण करने के कारण आगम पद्धति के **'भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुद्ध निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

१२. नाम नय —

"आत्मद्रव्य नाम नय से नाम वाले की भांति शब्द ब्रह्म को स्पर्श करने वाला है।" यह लक्षण, वाच्य वाचक द्वैत को ग्रहण करने के कारण आगम पद्धति के **'अशुद्ध द्रव्यार्थिक व्यवहार'** नय मे तथा अध्यातम पद्धति के **'व्यवहार सामान्य'** नय मे गर्भित होता है। पर्याय रूप शब्द को विषय करने के कारण आगम पद्धति के **'पर्यायार्थिक व शब्द नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'व्यवहार' नय मे गर्भित होता है। (देखो अध्याय न० २२ प्रकरण न० ८)

१३ स्थापना नय —

"आत्मद्रव्य स्थापना नय से मूर्तिमान की भांति सर्व पुद्गलो का अवलम्बन करने वाला है।" दो द्रव्यो मे अद्वैत करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'अशुद्ध द्रव्यार्थिक व व्यवहार नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'असद्भूत व्यवहार'** नय मे गर्भित होता है। (देखो अध्याय न० २२ प्रकरण न० ८)

१४. द्रव्य नयः—

"आत्मद्रव्य नय से बालक सेठ की भाति और श्रमण राजा की भाति अनागत व अतीत पर्याय प्रति भासी है।" आगे पीछे की पर्यायों मे एकत्व का ग्रहण करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के

'**अशुध्द द्रव्यार्थिक व भूत भावि नैगम**' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के **निश्चय नय**' सामान्य मे गर्भित होता है। द्रव्य पर्याय का ग्रहण करने के कारण कथञ्चित **पर्यायार्थिक नय व स्थूल ऋजु सूत्र**' मे भी गर्भित किया जा सकता है। (देखो अध्याय न० २२ प्रकरण न० ८)

१५ भाव नयः—

"आत्मद्रव्य भावनय से पुरुष के समान प्रवर्तती स्त्री की भाति, तत्काल की पर्याय रूप से उल्लसित प्रकाशित व प्रतिभासित होता है।" किसी एक पर्याय विशेषसे तन्मयद्रव्य की उतनी ही सत्ता देखने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के '**पर्यायार्थिक व एवंभूत**' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**अशुद्ध निश्चय नय**' मे गर्भित होता है। द्रव्य पर्याय को विपय करने की अपेक्षा आगम पद्धति के '**अशुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुध्द संग्रह**' मे भी गर्भित किया जा सकता है।
(देखो अध्याय न० २२ प्रकरण न० ८)

१६ सामान्य नयः-

"आत्मद्रव्य सामान्य नय से हार, माला या कण्ठी के डोरे की भाति व्यापक है।" अनेक पर्यायो मे अनुस्यूत एक त्रिकाली द्रव्य को विपय करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के '**शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह**' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**शुध्द निश्चय**' नय मे गर्भित होता है।

१७ विशेष नयः—

"आत्मद्रव्य विशेष नय से उस माला के एक मोती की भाति अव्यापक है।" पृथक पृथक पर्यायो की स्वतत्र सत्ता स्वीकारने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के '**पर्यायार्थिक व ऋजुसुत्र**' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**व्यवहार नय**' मे गर्भित होता है।

१८ नित्य नयः—

"आत्मद्रव्य नित्यनय से नट की भाति अवस्थायी है।" राम रावण आदि रूप अनेक स्वागो मे एक ही नट की प्रतीति होती है, इस प्रकार से अनेक पर्यायो मे अनुस्यूत एक त्रिकाली द्रव्य को विषय करने के कारण नय न १६ वत् यह लक्षण आगम पद्धति के **'सत्ता ग्राहक शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

१९ अनित्य नयः—

"आत्मद्रव्य अनित्यनय से राम रावण की भाति (नट) अनवस्थायी है।" पृथक पृथक पर्यायो की स्वतत्र सत्ता स्वीकारने के कारण यह लक्षण भी नय न. १७ वत् आगम पद्धति के **'पर्यायार्थिक व ऋजुसूत्र'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'व्यवहार नय'** मे गर्भित होता है।

२० सर्वगत नयः—

"आत्मद्रव्य सर्वगत नय से खुली हुई आख की भाति सर्व वर्ती है।" ज्ञान की परपदार्थो मे व्यापकता दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय नही। अध्यात्म पद्धति मे यह **'असद्भूत व्यवहार'** नय मे गर्भित होता है।

२१ असर्वगत नयः—

"आत्मद्रव्य असर्वगत नय से मिची हुई आख की भांति आत्मवर्ती है।" आत्म द्रव्य के साथ ही ज्ञान की तन्मयता दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'भेद निरपेक्ष शुध्द द्रव्यार्थिक व सग्रह नय'** म तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

२२. शून्य नय —

"आत्मद्रव्य शून्य नय से शून्य घर की भाति अकेला भासे है।" कर्म व शरीरादि से निरपेक्ष शुद्ध जीव को दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'कर्म निरपेक्ष शुध्द द्रव्यार्थिक व शुध्द संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

२३ अशून्य नव —

"आत्मद्रव्य अशून्य नय से लोगो से भरे हुए वाहन की भाति मिलित भासे है।" कर्म व शरीर सहित जीव द्रव्य को दर्शाने के कारण, इसका अन्तर्भाव आगम पद्धति के 'कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहार'** नय मे गर्भित होता है।

२४ ज्ञानज्ञेय अद्वैत नय —

"आत्म द्रव्य ज्ञानज्ञेय अद्वेत नय से वहुत वडे ईन्धन के समूह रूप से परिणत अग्नि की भाति एक है।" ज्ञान तथा ज्ञेयाकार उसकी पर्याय मे अद्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'भेद निरपेक्ष शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

२५. ज्ञानज्ञेय द्वैत नय —

"आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेय द्वैत नय से पर के प्रतिबिम्बो से संपृक्त दर्पण की भांति अनेक है।" ज्ञान मे उसकी पर्याय की अपेक्षा भद दर्शाने के कारण इसका अन्तर्भाव आगम पद्धति के 'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक' मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'असद्‌भूत व्यवहार'** नय मे गर्भित होता है।

२६ नियति नय —

"आत्मद्रव्य नियतिनय से नियत स्वभाव वाला भासता है–जैसे ऊष्णता अग्नि का नियमित स्वभाव है।" स्वभाव की नित्यता दर्शाने के कारण आगम पद्धति के 'सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक' नय मे और अध्यात्म पद्धति के 'शुद्ध निश्चय' नय मे गर्भित किया जा सकता है।

२७ अनियति नय--

"आत्मद्रव्य अनियति नय से अनियत स्वभाव वाला भासता है–जैसे अनियमित ऊष्णता वाला जल।" स्वभाव की अनित्यता दर्शाने के कारण आगम पद्धति के 'उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'अशुद्ध सद्भूत व्यवहार' नय मे गर्भित होता है।

२८ स्वभाव नय —

"आत्मद्रव्य स्वभाव से संस्कार का निरर्थक करने वाला है–जिसकी नोक किसी ने बनाई नही ऐसे काटे के भाति।" निमित्त नैमित्तिक भावों से निरपेक्ष त्रिकाली शुद्ध स्वभाव का ग्रहण करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'स्व चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति की **'शुध्द निश्चय'**नय मे गर्भित होता है।

२९ अस्वभाव नयः—

"आत्मद्रव्य अस्वभाव नय से सस्कार को सार्थक करने वाला है–लुहार के द्वारा निकाली गई है नोक जिस मे ऐसे तीर की भाति।" पर पदार्थकृत निमित्त नैमित्तिक भावों मे अद्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति में गर्भित नही किया जा सकता। अध्यात्म पद्धति में यह **'असदभूत व्यवहार'** नय में गर्भित होता है।

३० काल नय —

"आत्मद्रव्य कालनय से, जिसकी सिद्धि समय पर आधारित है ऐसा है–जैसे कि गर्मी के दिनो के अनुसार स्वतः पकने वाला आम्र-फल।" प्रत्येक पर्याय के स्वतंत्र उत्पाद व व्यय स्वभाव को ग्रहण करने के कारण यह लक्षण 'उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुद्ध सद्भूत व्यवहार' नय मे गर्भित होता है।

३१ अकाल नय —

"आत्मद्रव्य अकाल नय से, जिस की सिद्धि समय पर आधारित नही है ऐसा है–समय से पहले ही कृत्रिम गर्मी से पकाये गये आम्रफल वत्।" 'जब निमित्त मिले तभी कार्य हो जाये' ऐसा [illegible] कर्ता कर्म भाव जोड़ देने के [illegible] पदार्थों के साथ नही है [illegible] कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय [illegible] अध्यात्म पद्धति मे यह 'असदभूत व्यवहार' नय मे गर्भित होता है।

३२ पुरुषाकार नय —

"आत्मद्रव्य पुरुषाकार नय से, जिसकी सिद्धि यत्न साध्य है ऐसा है–पुरुषार्थ करके संगतरे के वृक्ष को प्राप्त करने वाले पुरुषार्थ वादी वत्।" द्रव्य की पूर्वा पर पर्यायो मे ही कर्ता कर्म रूप द्वैत उत्पन्न करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक तथा व्यवहार नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'सदभूत** व्यवहार नय' मे गर्भित होता है।

३३ दैव नय —

"आत्मद्रव्य दैवनय से, जिसकी सिद्धि अयत्न साध्य है–पुरुषाकार वादी के द्वारा प्राप्त किये गये संगतरे के वृक्ष में से जिस को भाग्य वश रत्न प्राप्त हो गया है ऐसे दैववादी की भांति।" कर्मो को अर्थात्

पर द्रव्य को कार्य की सिद्धि मे कारण मानने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय नही । अध्यात्म पद्धति मे यह **'अनुपचरित असद्भुत व्यवहार'** नय मे गर्भित होता है ।

३४ ईश्वर नय —

"आत्मद्रव्य ईश्वर नय से परतन्त्रता भोगने वाला है– धाय के आधीन खानपान आदि क्रिया करते हुए पथी बालक की भाति ।" पर पदार्थ का आश्रय दर्शाने के कारण यह लक्षण भी आगम पद्धति का विषय नही । अध्यात्म पद्धति मे यह **'असद्भुत व्यवहार'** नय का विषय है ।

३५ अनश्विर नय.—

"आत्मद्रव्य अनश्विर नय से स्वतत्रता भोगने [illegible] वाला है–हिरण को स्वच्छन्दता से फाड़ कर खाने [illegible] निज भावो मे ही [illegible] सिंह की भाँति ।" द्रव्य के [illegible] कर्म रूप द्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'स्व चतुष्टय ग्राहक शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह'** नय में तथा अध्यात्म पद्धति के **'निश्चय नय सामान्य'** मे गर्भित होता है ।

३६ गुणी नयः—

"आत्मद्रव्य गुणी नय से गुणग्राही है–शिक्षक के द्वारा जिसको शिक्षा देने मे आती है ऐसे कुमार की भांति ।" एक द्रव्य के गुण को दूसरे मे उपचार होने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय नही । अध्यात्म पद्धति मे यह **'असद्भूत व्यवहार'** नय मे गर्भित होता है ।

३७ अगुणी नय-—

"आत्मद्रव्य अगुणी नय से केवल साक्षी ही है–शिक्षक के द्वारा शिक्षण प्राप्त करनेवाले कुमार के प्रेक्षक अर्थात देखनेवाले की भाति ।"

निज शुद्ध पारिणामिक भाव दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय व शुद्ध संग्रह नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुद्ध निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

३८ कर्तृ नय —

"आत्म द्रव्य कर्तृ नय से रगरेज की भाति रागादि परिणाम का करने वाला है।" निज अशुद्ध परिणामो का कर्ता कर्म रूप अद्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय व अशुद्ध संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'अशुद्ध निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

३९. अकर्तृ नय —

"आत्मद्रव्य अकर्तृ नय से केवल साक्षी ही है—अपने कार्य मे प्रवृत्त रगरेज के प्रेक्षक अर्थात देखने वाले किसी व्यक्ति वत्।" नय न ३७ वत् यह लक्षण भी आगम पद्धति के **'परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय व शुद्ध संग्रह नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुद्ध निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

४० भोक्तृ नय —

"आत्मद्रव्य भोक्तृ नय से (इन्द्रिय जन्य) सुख दुख आदि को भोगने वाला है—हितकारी व अहितकार अन्न को खाने वाले रोगी वत्।" विपय जनित अशुद्ध भावो का भोक्ता बताने के कारण नय न. ३८ वत् यह लक्षण भी आगम पद्धति के **'कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुद्ध संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'अशुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

४१ अभोक्तृ नय —

"अत्मद्रव्य अभोक्तृ नय से केवल साक्षी ही है—हितकारी व अहितकारी अन्न को खाने वाले रोगी के प्रेक्षक अर्थात देखने वाले

वत् ।" लक्षण नं. ३७ वत् यह भी आगम पद्धति के **'परम भाव ग्राहक शुध्द द्रव्यार्थिक नय व शुध्द संग्रह नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है ।

४२ क्रिया नय.—

"आत्मद्रव्य क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि प्राप्त करने वाला है—स्तम्भ के द्वारा सर फूट जाने पर दृष्टि रूपी निधान को प्राप्त करने वाले अन्धे वत् ।" पर पदार्थ के निमित्त से कार्य की सध्दि दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पध्दति का विषय नही है । अध्यात्म पद्धति की **'असद्भुत व्यवहार'** नय मे इसका अन्तर्भाव होता है ।

४३ ज्ञान नय.—

"आत्मद्रव्य ज्ञाननय से विवेककी प्रधानता से सिद्धि प्राप्त करने-वाला है—चने की मुट्ठी देकर चिन्तामणि खरीदने वाले ऐसे किसी घर के कोने मे बैठे हुए व्यापारी वत् ।" निज शुध्द भावो का कर्ता कर्म भाव दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुध्द संग्रह'** नय, मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है । क्योकि यहां शुद्ध भाव का कर्ता पना है ।

४४ व्यवहार नय—

"आत्म द्रव्य व्यवहार नय से बन्ध और मोक्ष के विषै द्वैत का अनुसरण करने वाला है—बान्धने व छोड़ने वाले ऐसे अन्य परमाणु के साथ संयुक्त व वियुक्त होने वाले अन्य परमाणु वत् ।" दो भिन्न पदार्थो का संयोग दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का

विषय नही । अध्यात्म पद्धति मे यह **'अनुपचरित असद्‌भुत व्यवहार'** नय मे गर्भित होता है ।

४५. निश्चय नय—

"आत्मद्रव्य निश्चय नय से बन्ध और मोक्ष के विषै अद्वैत का अनुसरण करने वाला है—अकेले ही बन्धने व छूटने वाले ऐसे बन्ध-मोक्षोचित स्निग्धरूक्षत्व गुण से परिणत परमाणु वत् ।" निज औदायिक व क्षायिक भावो के साथ द्रव्य का अद्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह नय'** मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'शुध्द निश्चय नय'** सामान्य म गर्भित होता है ।

४६. अशुध्द नय—

"आत्मद्रव्य अशुद्ध नय से घट और रामपात्र से विशिष्ट मिट्टी मात्र वत् सोपाधि स्वभाव वाला है ।" औदयिक आदि भावो के साथ द्रव्य का स्पर्श दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुध्द संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'अशुध्द निश्चय नय'** मे गर्भित होता है ।

४७ शुध्द नय—

"आत्मद्रव्य शुध्द से केवल मिट्टी मात्र वत् निरुपाधिस्वभाव वाला है ।" औदायिकादि भावो से निरपेक्ष क्षायिक भाव के साथ द्रव्य का स्पर्श कराने के कारण यह लक्षण आगम पध्दति के **'कर्म निरपेक्ष शुध्द द्रव्यार्थिक व शुध्द संग्रह'** नय मे तथा अध्यात्म पध्दति के **'शुध्द निश्चय'** नय मे गर्भित होता है ।

२२

निक्षेप

१. नय व निक्षेप मे अन्तर, २. निक्षेप सामान्य ३. निक्षेप के भेद प्रभेद, ४. नाम निक्षेप, ५. स्थापना निक्षेप, ६. द्रव्य निक्षेप, ७. भाव निक्षेप, ८. निक्षेपों के कारण प्रयोजनादि, ९. निक्षेपो का नयों मे अन्तर्भाव ।

१ नय व निक्षेप मे अन्तर नयो का विस्तार पूर्वक कथन करने के पश्चात्, अब इस ग्रन्थ मे आगम प्रसिद्ध एक अन्य विषय का भी सग्रह कर देना योग्य समझता हू, क्योंकि उस विपय का सम्बन्ध भी वस्तु के प्रतिपादन या ज्ञान प्राप्ति से ही है । यद्यपि वह विषय स्वयं कोई नय नही है, परन्तु नय की ही जाति का है। उस विषय को 'निक्षेप' कहा गया है । 'निक्षेप' शब्द नि उपसर्ग पूर्वक क्षिप धातु से बना है, जिसका व्युत्पत्ति अर्थ निक्षिप्त करना होता है । आशय यह है कि लोक मे जितना भी शब्द व्यवहार होता है, उसका विभाग द्वारा वर्गीकरण करना ही निक्षेप का काम है । नय विषयी है अर्थात वस्तु को विषय करने वाला या जानने वाला है, किन्तु निक्षेप शाब्दिक विषय विभाग का ही प्रयोजक है, इस लिये इन दोनों मे मौलिक भेद है । निक्षेप केवल यह बताता है कि हमने जिस शब्द या वाक्य का प्रयोग किया है, वह किसी विभाग मे सम्मिलित किया जा सकता है, किन्तु नय उस शब्द प्रयोग मे जो आन्तरिक मानस परिणाम या अभिप्राय काम कर रहा है उसका उद्घाटन करता है। वह बतालाता है कि यह शब्द प्रयोग किस दृष्टिकोण से समीचीत है । अथवा अन्य प्रकार भी नय व निक्षेप मे भेद है। गुण सापेक्ष तथा

सविपक्ष तो नय होता है और मात्र गुण का आक्षेप निक्षेप कहलाता है। तात्पर्य यह कि जहां कोई पदार्थ सामने हो और उस मे गुण पर्यायें आदि देख कर, उनकी अपेक्षा रखते हुए उसका प्रतिपादन किया जा रहा हो वहा तो नय का व्यापार समझना; परन्तु जहा कोई पदार्थ ही सामने न हो और केवल कल्पनाओ द्वारा, वस्तुभूत गुणो की अपेक्षा न करके उस का प्रतिपादन किया जा रहा हो वहा निक्षेप का व्यापार समझना, जैसे कल्पना मात्र से ही किसी को इन्द्र कह देना, भले ही वह भूखा मरता हो। कहा भी है–

प ध ।५।७४० "सत्यं गुणसापेक्षो सविपक्ष सच नयं स्वयं क्षिपति।
य इह गुणाक्षेप: स्पादुचरित केवलं स निक्षेप ।७४०।"

अर्थ––गुणो की अपेक्षा से उत्पन्न होने वाला तथा विपक्ष की अपेक्षा रखने वाला तो नय है। और जो यहां उपचार से 'इस प्रकार का यह है' ऐसा केवल गुणों का आक्षेप करने वाला है, वह निक्षेप है, जिसकी व्युत्पत्ति स्वय क्षिपति होती है।

२ निक्षेप सामान्य इस प्रकार नय व निक्षेप मे क्या अन्तर है यह दर्शाकर अब निक्षेप का सामान्य लक्षण कहते हैं। नि उपसर्ग पूर्वक क्षिप धातु से निक्षेप शब्द बनता है। इसका व्युत्पत्ति अर्थ होता है 'निश्चय मे क्षेपण करना या डालना'। अर्थात किसी वस्तु को निश्चय मे या निर्णयात्मक ज्ञान मे स्थापित करना या क्षपण करना ही निक्षेप कहलाता है। या यो कह लीजिये कि किसी भी वस्तु का निश्चय करने या कराने के लिये जो कुछ भी उपाय प्रयोग मे आते हैं वे ही निक्षेप शब्द के वाच्य है। अथवा वस्तु का जिस जिस प्रकार से लोक मे व्यवहार किया जाता है वह सब निक्षेप कहलाता है।

वह व्यवहार तीन प्रकार से करने मे आता है––वस्तु के वाचक शब्द के रूप में, ज्ञान मे उस वस्तुकी की गई कल्पना के रूप मे

तथा अर्थ या पदार्थ के रूप में । अर्थात वस्तु का व्यवहार तीन प्रकार का है—शब्द, ज्ञान व अर्थ । अर्थ या पदार्थ भी दो प्रकार का है—अवर्तमान व वर्तमान । वस्तु की भूत व भावि पर्याये अवर्तमान अर्थ है और वर्तमान पर्याय से विशिष्ट वह वस्तु वर्तमान अर्थ है । इस प्रकार वस्तुगत व्यवहार चार प्रकार का हो जाता है—शब्द, ज्ञान, अवर्तमान पदार्थ व वर्तमान पदार्थ । किसी शब्द या नाम के द्वारा उस वस्तु की कल्पना मात्र कर लेना जैसे किशतरञ्ज की गोटो मे हाथी धोड़े आदि की कल्पना कर लेना, यह दूसरा ज्ञान गत व्यवहार है । किसी अवर्तमान बस्तु मे ही उस वस्तु का व्यवहार कर लेन तीसरा व्यवहार है जैसे कि युवराज को राजा कहना अथवा वर्तमान मे जो मुनि है उसे राजा कहना । किसी वर्तमान या सद्भावात्मक वस्तु को ही वस्तु कहना यह चौथा व्यवहार है, जैसे कि राजा को ही राजा कहना । वस्तु को जानने या जानने के लिये ये चार ही प्रकार के व्यवहार प्रयुक्त होते है । इन मे से शब्द-गत पहिला व्यवहार नाम निक्षेप कहलाता है, कल्पना या ज्ञान-गत दूसरा व्यवहार स्थापना निक्षेप कहलाता है, अवर्तमान अर्थ-गत तीसरा व्यवहार द्रव्य निक्षेप कहलाता है और वर्तमान अर्थ-गत चौथा व्यवहार भाव निक्षेप कहलाता है । इन का विशेषे विस्तार आगे किया जायेगा ।

दूसरे प्रकार से निक्षेप का लक्षण यो भी किया जा सकता है, कि वक्ता व श्रोता के बीच वस्तु का व्यवहार शब्द के आधीन है । शब्द वास्तव मे किसी वास्तु का संज्ञा कारण मात्र है अर्थात किसी वस्तु का वाचक होता है । वस्तु व शब्द के बीच वाच्य वाचक भाव का व्यवहार सर्व सम्मत है । इसलिये कहा जा सकता है कि शब्द वस्तु का प्रतिनिधि है, या यों कह लाजिये कि शब्द मे वह वस्तु निक्षिप्त कर दी गई है । अत: वस्तु को बतलाने के उपाय स्वरूप शब्द व्यवहार को ही यहां निक्षेप नाम से कहा गया समझ लेना । पहिले भी कहा जा चुका है कि निक्षेप शाब्दिक विषय विभाग का प्रयोजक

है। शब्द प्रयोग का वह व्यवहार चार प्रकार से करने मे आता है— अतद्‌गुण मे, अतदाकार मे, अतत्काल मे तथा इन तीनो से विपरीत तद्‌गुण तदाकार व तत्काल मे। गुण आदि की अपेक्षा किये विना भी वस्तु का अपनी इच्छा से जो कुछ भी नाम रख देना अतद्‌गुण वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे निर्धन व काले कलूटे व्यक्ति का नाम इन्द्र चन्द्र रख देना, अथवा किसी व्यक्ति के फोटो या प्रतिमा मे ही उस व्यक्ति के नाम का व्यवहार करना। वस्तु के आकार की पर्वाह न करके उसमे किसी अन्य वस्तु के नाम का व्यवहार करना अतदाकार वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे कि शतरञ्ज की गोटो को हाथी घोडा आदि कहने का व्यवहार प्रचलित है। वस्तु की वर्तमान पर्याय की पर्वाह न करके उसे उसके भूत या भावि रूप से कह देना अतत्काल वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे कि युवराज को राजा कहना या राज्य त्यक्त मुनि को राजा कहना। वर्तमान मे सद्‌भाव स्वरूप किसी पदार्थ को उसके गुण तथा आकार तथा काल के अनुरूप ही नाम देना, तद्‌गुण तदाकार व तत्काल वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे कि राजा को ही राजा कहना। इन चार प्रकार के शाब्दिक व्यवहारों के अतिरिक्त पाचवा कोई व्यवहार नही है। इन्ही चार के अनेको उत्तर भेद हो जाते है, जिनका परिचय आगे दिया जायेगा। यह सर्व शाब्दिक विषय विभाग ही निक्षेप कहलाता है। इन मे से पहिला व्यवहार नाम निक्षेप है, दूसरा स्थापना निक्षेप, तीसरा द्रव्य निक्षेप और चौथा भाव निक्षेप। इन चारों का विशेष विस्तार आगे किया जायेगा।

अब निक्षेप के लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१०. स. सि।१।१।३५ "निक्षिप्यतेति निक्षेप स्थापना।"

अर्थ:—जिसके जो निक्षिप्त किया जाय ऐसी स्थापना ही निक्षेप कहलाती है।

अब इन निक्षेप के अनेको भेद प्रभेदों का प्रदर्शन करता हूं ।

{ छुटा हुआ शरीर } { छुड़ाया गया शरीर } { छोडा गया शरीर } { पदार्थ } { पदार्थों के साथ वर्तने वाला शरीर }

छोडा गया शरीर:
- भक्त प्रत्याख्यान (स्व पर सेवा सहित)
  - उत्तम (१२ वर्ष)
  - मध्यम (मध्य के)
  - जघन्य (अन्तर्मुहुर्त)
- इगिनी (केवल स्व सेवा) सहित
- प्रायोपगमन (सर्वथा सेवा रहित)
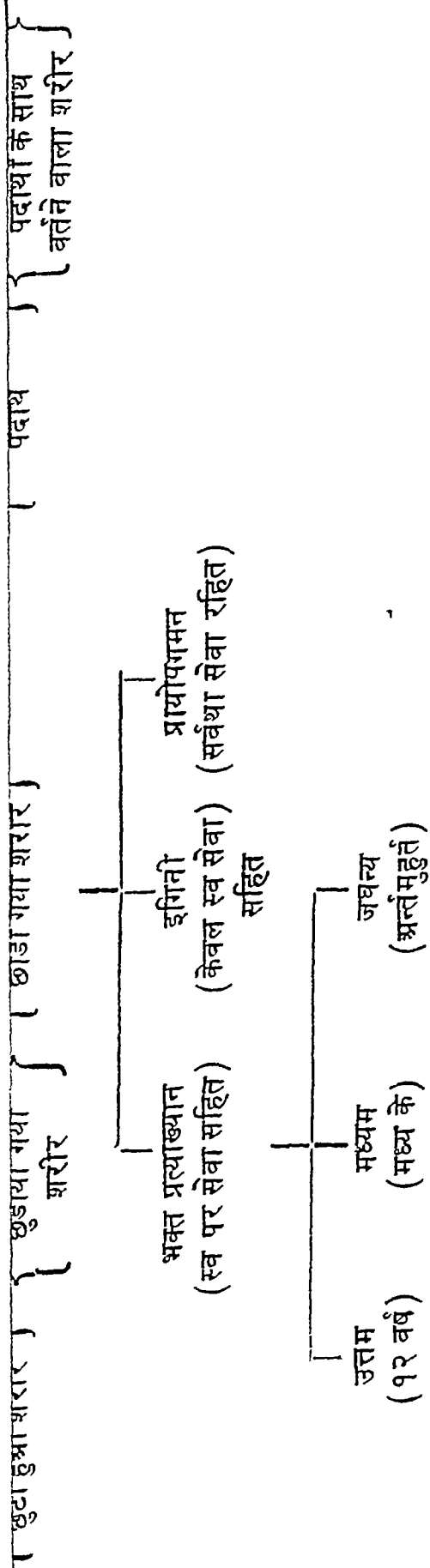
२ नय चक्र गद्य । पृ. ४८ "वस्तु नामादिषु क्षिपतीति निक्षेपः ।"

अर्थ:—वस्तु का नामादिकों मे क्षेपण करे सो निक्षेप है ।

३ ध. पू.१। श्ल २। पृ.१० "जो किसी एक निश्चय या निर्णय मे क्षेपण करे, अर्थात अनिर्णीत वस्तु का उसके नामादिक द्वारा निर्णय करावे, उसे निक्षेप कहते है ।"

(धापु१३ ।पृ. ३ ।१५).

४ धापु६।पृ. १७ "नामादिके द्वारा वस्तु में भेद करने के उपाय को निक्षेप कहते हैं ।"

(धापू ३।१७)

५ धापु.१।श्ल१२।पृ १७ "ज्ञानं प्रमाण इत्याहुरूपायो न्यासित्युच्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्ततोऽर्थ परिग्रहः ।।११।"

अर्थ:—सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते है, नामादिके द्वारा वस्तु मे भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते है, और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है । इस प्रकार युक्ति से अर्थात प्रमाण नय और निक्षेप के द्वारा पदार्थ का ग्रहण अथवा निर्णय करना चाहिये ।

(ति प.।१।८३) (ध.।पु.३।गा.१५।पृ १८)

६. ध.।पू.४।पृ २ "संशय विपर्यय व अनध्यवसाय मे अवस्थित वस्तु को उनसे निकाल कर जो निश्चय मे क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते है । अथवा बाहरी पदार्थ के विकल्प को निक्षेप कहते है । अथवा अप्रकृत का निराकरण करके प्रकृत का प्ररूपण करने वाला निक्षेप है ।

(ध ।पु.१३।पृ.१९८) (ध.।पु ६।. पृ.१४०।१३)

इन्ही सब भेद प्रभेदो के लक्षण आदि करने मे आते है।

४ नाम निक्षेप गुणों आदि की अपेक्षा किए बिना किसी व्यक्ति या किसी वस्तु को अपनी मर्जी से जो कोई भी नाम दे देना नाम निक्षेप कहलाता है, क्योकि उस शब्द को सुनकर श्रोता उस वस्तु का ग्रहण ज्ञान मे कर लेता है। ऐसे शब्दो के, व्याकरण के आधार पर निरूक्ति अर्थ नही किए जा सकते, जैसे किसी अन्धे का नाम नैन सुख रख देना। इस शब्द का अर्थ यद्यपि नेत्रवान है परन्तु यहां इसका अर्थ ग्रहण नही होता, बल्कि उस नाम वाले व्यक्ति विशेष का ही ग्रहण होता है, भले ही वह अन्धा क्यो न हो। हमारे और आपके सब नाम नाम–निक्षेप से रखे गये है। अत. नाम निक्षेप केवल कल्पना है सत्य नही।

द्रव्य वाची, पर्याय वाची, गुण वाची इत्यादि अनेको प्रकार के शब्द या नाम होने सम्भव है, इसीलिये नाम निक्षेप के भी अनेको अन्तर भेद हो जाते है, जैसे जाति वाचक नाम, सयोग वाचक नाम, समवाय द्रव्य वाचक नाम, गुण वाचक नाम, क्रिया वाचक नाम, प्रत्यय वाचक नाम, अभिधान वाचक नाम। इन सब के पृथक पृथक लक्षण निम्न उद्धरणो पर से जानना।

१. नाम निक्षेप सामान्य–

१ स. सि।१।५।४५ "अतदगुणे वस्तुनि संव्यवहारार्थं पुरुषकारात्रियुज्यमान सज्ञाकर्म नाम।"

अर्थ—सज्ञा के अनुसार गुण रहित वस्तु मे व्यवहार के लिये अपनी इच्छा से की गई सज्ञा को नाम कहते है।

२. रा. वा।१।५।१।२८ "निमित्तादन्यत्रिमित्तं निमित्तान्तरम्, तदनपेक्ष्य क्रियमाणा सज्ञा नामेत्युच्यते। यथा परमैश्वर्थ

लक्षणेन्दन क्रियानिमित्तान्तरानपेक्षं कस्यचित् 'इन्द्र' इति नाम।"

अर्थः—शब्द प्रयोग के जाति गुण क्रिया आदि निमित्तों की अपेक्षा न करके की जाने वाली सज्ञा 'नाम' है। जैसे परम ऐश्वर्य रूप इन्दन क्रिया की अपेक्षा न करके किसी का भी इन्द्र नाम रख देना नाम निक्षेप है।

(स. सा. ।१३। आ. कलश ८ की टीका) (त. सा. ।१।१०।११) (गो. क ।मु।५२) (श्ल. वा. ।पु. २।पृ २६१) (प्र. सा. ।त प्र ।परि नय नं.१२) (वृ. न. च। २७२।)

२. अब नाम निक्षेप के उत्तर भेदों के लक्षण देखियेः-

१ ध। पु. १। पृ १७।१७ **१. जाति नामः**—तद्भाव और सादृश्य लक्षण वाले सामान्य को जाति कहते है।—जैसे 'गौ', 'मनुष्य', 'घट', 'पट', 'स्तम्भ' और 'वेत' इत्यादि जाति निमित्तक नाम है। क्योकि ये सज्ञाये गौ मनुष्यादि जाति मे उत्पन्न होने से प्रचलित है।

२ **संयोग द्रव्य नाम**—अलग अलग सत्ता रखने वाले द्रव्यो के मेल से जो पैदा हो उसे संयोग द्रव्य कहते है।—जैसे दण्डी छत्री, मौली इत्यादि संयोग द्रव्य निमित्तक नाम है, क्योंकि दंडा, छतरी, मुकुट इत्यादि स्वतंत्र सत्ता वाले पदार्थ है, और इन के संयोग से दण्डी, छत्री, मौली इत्यादि नाम व्यवहार मे आते है।

३ **समवाय द्रव्य नाम**—जो द्रव्य मे समवेत हो अर्थात कथंचित तादात्म्य रखता हो उसे समवाय द्रव्य कहते है।—जैसे गलगण्ड, काना, कुबड़ा इत्यादि समवाय द्रव्य निमित्तक नाम है। क्योकि जिस के लिये 'गलगण्ड' इस नाम का उपयोग किया है उससे गले का गण्ड

मित्र सत्ता वाला नही है। इसी प्रकार काना कुबडा आदि नाम समझ लेना चाहिये।

४ गण वाचक नाम—जो पर्याय आदिक से परस्पर विरूद्ध हो अथवा अविरूद्ध हो उसे गुण कहते है।—जैसे कृष्ण, रूधिर इत्यादि गुण निमित्तक नाम है, क्योकि कृष्ण आदि गुणों के निमित्त से उन गुण वाले द्रव्यो मे ये नाम व्यवहार मे आते है।

५. क्रिया नाम—परिस्पन्द अर्थात हलन चलन रूप अवस्था को क्रिया कहते है।—जैसे गायक नर्तक इत्यादि क्रिया निमित्तक नाम है, क्योकि गाना, नाचना इत्यादि क्रियाओं के निमित्त से गायक नर्तक आदि नाम व्यवहार मे आते हैं।

६. अर्थ नाम—एक व बहुत जीव तथा अजीव से उत्पन्न प्रत्येक व सयोगी भगों के भेद से 'अर्थ' आठ प्रकार का है। अर्थात एक जीव, नाना जीव, एक अजीव, नाना अजीव, एक जीव एक अजीव, नाना जीव नाना अजीव, एक जीव नाना अजीव, एक अजीव नाना जीव इस प्रकार अर्थ नाम आठ प्रकार से कहा जा सकता है।

७. प्रत्यय निबन्ध नाम—इन आठ अर्थो मे उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यय निबन्धन नाम कहलाता है।

८. अभिधान निबन्ध नाम—जो संज्ञा शब्द-प्रवृत्त होकर अपने आपको जतलाता है वह अभिधान निबन्धन कहा जाता है।

५. स्थापना निक्षेप

गुणो आदि की अपेक्षा किये बिना किसी अन्य वस्तु को कल्पना मात्र से किसी अन्य वस्तुरूप मानकर उसे वह नाम देदेना स्थापना निक्षेप है, क्योकि यहां अन्य वस्तु मे अन्य वस्तु की स्थापना की गई है। जैसे कि खेल खेलते हुए बच्चे किसी लड़के में

तो चोर की स्थापना करके उसे चोर स्वीकार कर लेते हैं और किसी मे सिपाही की कल्पना करके उसे सिपाही स्वीकार करलेते हैं। जब तक खेल खेलते है तब तक बराबर चोर सिपाही ही समझते रहते है। वास्तव मे वे चोर सिपाही नही है, पर कल्पना मात्र से ही उनमे चोर सिपाही की स्थापना की गई है। स्थापना निक्षेप से उन्हे चोर सिपाही कहना ठीक है पर नाम निक्षेप से नही।

यद्यपि दोनो ही दशाओ मे अर्थात नाम व स्थापना निक्षेपों मे गुणो से निरपेक्ष नाम लिये गये है परन्तु फिर भी दोनों मे अन्तर है। नाम निक्षेप मे पूज्य पूजक व निंद्य निन्दक भाव उत्पन्न नही हो सकता, पर स्थापना निक्षेप मे होता है। जैसे किसी का नाम 'राजा' रख देने से उसकी राजा वत् विनय नही की जाती, परन्तु नाटक मे किसी को राजा मान लेने पर उसकी राजा वत् विनय की जाती है। दूसरे नाम निक्षेप की प्रवृति केवल शब्द मे होती है और स्थापना निक्षेप की प्रवृत्तिअसली पदार्थ के अनुरूप दूसरे पदार्थ मे। अत. नाम निक्षेप की अपेक्षा यह सत्य के कुछ निकट है।

यह स्थापना निक्षेप दो प्रकार का होता है—सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। किसी ऐसी वस्तुमे स्थापना करना जिसमे कि उस असली वस्तु की कुछ आकृति आदि रूप से अनुरूपता पाई जाये, सद्भाव स्थापना कहलाती है, जैसे भगवान की आकृति रुप बनाई गई या महात्मा गान्धी की आकृति रूप बनाई गई पत्थर की मूर्ती को भगवान यामहात्मा गाधी वत् ही मानने का, तथा उसकी असली भगवान व महात्मा गान्धी वत् ही पूजा व विनय करने का व्यवहार प्रचलित है। आकृति से निरपेक्ष जिस किसी वस्तु में भी जिस किसी वस्तु की कल्पना कर लेना असद्भाव स्थापना है, जैसे शतरज की गोटो में किसी को हाथी और किसी को घोड़ा कहने का व्यवहार है। तथा अन्य प्रकार से भी बाह्य वस्तु के आश्रय पर इसके अनेको भेद किये जा सकते है, जो निम्न उद्धरणों मे दिये गये है।

१. स्थापना निक्षेप सामान्य —

१. स सि।१।५।४५ "काष्टपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना ।"

अर्थ—काष्ट कार्म, पुस्तकर्म, चित्रकर्म, और अक्षनिक्षेप आदि मे 'यह वह है' इस प्रकार स्थापित करने को स्थापना कहते हैं ।

२ रा वा।१।५।२।२८ "सोऽयमित्यभिसम्बन्धत्वेन अन्यस्य व्यवस्थापनामात्र स्थापना । यथा परमैश्वर्यलक्षणो य शचीयतिरिन्द्र, 'सोऽयम्' इत्यन्यवस्तु प्रतिनिधियिमानं स्थापना भवति ।"

अर्थ—'यह वही है' इस रूप से तदाकार या अतदाकार किसी भी वस्तु मे किसी अन्य वस्तु की स्थापना करना स्थापना निक्षेप है, यथा—इन्द्राकार प्रतिमा मे इन्द्र की स्थापना करके 'परमऐश्वर्य लक्षण वाला शची पति जो इन्द्र है वह यही (प्रतिमा) है, इस प्रकार अन्य वस्तु मे प्रतिनिधीयमान भाव को स्थापना कहते है ।

(स सा।१३।आ कलश ८ की टीका) (त.सा.।१।११।११) (प्र. सा।त.प्र.।परि.।नय न. १३) (वृ. न च.।२७३) (गो. क।मू.।५३।५३)

२. स्थापना निक्षेप के उत्तर भेद—

१ ध।पु. १।पृ. २०।१ "वह स्थापना निक्षेप दो प्रकार का है—सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। इन दोनो मे से—

१ सद्भाव स्थापना—जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार को धारण करने वाली वस्तु मे सद्भाव स्थापना समझना चाहिये ।

२ **असद्भाव स्थापना**—तथा जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार से रहित वस्तु में असद्भाव स्थापना जानना चहिये।

(वृ न चा।२७३) (ध।पु.१३।पृ. ४२।५)

२. ध.।पु. १३।पृ ६।स् १० "जो वह स्थापना स्पर्श है वह काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म, लयनकर्म, शैलकर्म, गृहकर्म भित्तिकर्म, दन्तकर्म, और भेडकर्म इनमे; तथा अक्षवराटक एवं इनको लेकर इसी प्रकार और भी जो एकत्व के संकल्प द्वारा स्थापना अर्थात् बुद्धि मे स्पर्शरूप से (यहां 'स्पर्श' का प्रकरण द्वारा अतः स्पर्श पर निक्षेप लागू किये जा रहे है) स्थापित किये जाते है वह सब स्थापना स्पर्श है।१०।

१, **काष्ठकर्म**—दो पैर, चार पैर, विना पैर और बहुत पैर वाले प्राणियों की काष्ठ मे जो प्रतिमाये बनाई जाती है उन्हें काष्ठकर्म कहते है।

२, **चित्रकर्म**—जब ये ही चार प्रकार की प्रतिमाये भित्ति (दीवार) वस्त्र, और स्तम्भ आदि पर रागवर्त अर्थात वर्ण विशेषो के द्वारा चित्रित की जाती है तब उन्हे चित्र कर्म कहते है।

३. **पोतकर्म**—घोडा, हाथी, मनुष्य, स्त्री, वृक और बाघ आदि की वस्त्र विशेष मे उकेरी गई प्रतिमाओ को पोतकर्म कहते है।

४. **लेप्यकर्म**—मिट्टी खड़िया और बालू आदि के लेप से जो प्रतिमाए बनाई जाती हे उन्हे लेप्यकर्म कहते है।

५. **लयनकर्म**—शिला स्वरूप पर्वतों से अभिन्न जो प्रतिमायें बनाई जाती हैं उन्हे लयन कर्म कहते है।

६ **शैलकर्म** —पृथक पडी हुई शिलाओ मे जो प्रतिमाये बनाई जाती है, उन्हे शैल कर्म कहते है ।

७ **गृह कर्म** —गोपुरो के शिखरो से अभिन्न ईंट और पत्थर आदि के द्वारा जो प्रतिमाये चिनी जाती है उन्हे गृह कर्म कहते है ।

८ **भित्ति कर्म** —भित्ति से अभिन्न तृणों से जो प्रतिमाये बनाई जाती है उन्हे भित्ति कर्म कहते है ।

९ **दन्तकर्म** —हाथी के दाँत मे जो प्रतिमाये उत्कीर्ण की जाती है उन्हे दन्तकर्म कहते है ।

१० **भेंड कर्म** —से घड़ी हुई प्रतिमाओ को भेड कर्म कहते है ।

(ध ।पु ।९ 'मे भेड सुप्रसिद्ध है' ऐसा कहकर छोड़ दिया है । अत. भेड के भाव के अर्थ भासता नही ।)

११ **अन्य भी** —आदि शब्द से कासा, ताबा, चादी और सुवर्ण आदि द्वारा साचे मे ढाली गई प्रतिमाए भी ग्रहण करनी चाहिये । इस प्रकार सद्भाव स्थापना के आधार का कथन हुआ ।

१२ **असद्भाव स्थापना के भेद** —द्यूतकर्म की स्थापना मे जो अय पराजय के निमित्त भूत छोटी कौडियां और पाँसे होते है उन्हे **अक्ष** कहते है, और इनके अतिरिक्त कौड़ियो को **वराटक** कहते । है इस प्रकार इन दोनो पदो के द्वारा असद्भाव स्थापना का विषय दिखलाया है ।

(ध । पु ९। पृ २४९। ५)

वर्तमान मे तो अमुक गुण किसी मे दिखाई न दे पर पहले कभी

६. द्रव्य निक्षेप

वह गुण उसमे था अवश्य या भविष्यत मे वह गुण उसमे प्रगट होने वाला है अवश्य, ऐसी स्थिति वाले किसी व्यक्ति

को वर्तमान मे ही उस गुण वाला कह देना द्रव्य निक्षेप है, जैसे पहले कोई डाक्टर था और अब डाक्टरी का काम छोड़कर कपड़े की दुकान करता है, तो भी बराबर हम उसे डाक्टर साहब ही कहते रहते है, या कोई लडका अभी डाक्टर बना तो नही है पर आगे बन जाएगा क्योंकि वह डाक्टरी पढ़ रहा है, तब भी उस लडके को हम कदाचित डाक्टर साहब कह देते है ।

स्थापना निक्षेप और द्रव्य निक्षेप दोनो मे ही वर्तमान की अपेक्षा गुणो का अभाव है परन्तु फिर भी इन दोनो मे महान् अन्तर है। स्थापना निक्षेप मे तो न वह गुण पहिले कभी थे और न आगे कभी उत्पन्न होने की सम्भावना है पर द्रव्य निक्षेप मे यद्यपि उस गुण का वर्तमान मे अभाव है पर भूत या भविष्यत मे उसकी सम्भावना अवश्य है। स्थापना निक्षेप तो उसी जाति के पदार्थो मे भी किया जा सकता है, और भिन्न जाति के पदार्थ मे भी । जैसे रामलीला मे रामचन्द्रजी की स्थापना किसी चेतन लड़के मे की जाती है और उन्ही की स्थापना मन्दिर मे रखी अचेतन प्रतिमाओ मे भी की जाती है। परन्तु द्रव्य निक्षेप मे उस जाति के पदार्थ मे ही नाम का आरोप किया जाता है, जैसे डाक्टर किसी चेतन मनुष्य को ही कह सकते है, किसी मनुष्य की प्रतिमा को नही । अतः स्थापना की अपेक्षा द्रव्य निक्षेप सत्य के अधिक निकट है ।

द्रव्य निक्षेप के अनेकों भेद प्रभेद हो जाते है, और इसलिए यह विषय कुछ कठिन सा प्रतीत होता है । परन्तु यदि उपरोक्त लक्षण पर दृष्टि स्थिर रखी जाए तो उसके समझने मे कोई कठिनता न पड़ेगी । लोक मे मुख्यत. दो जाति के पदार्थ है—एक चेतन और दूसरे जड । जड़ पदार्थ भी दो प्रकार के है—एक चेतन के साथ रहने वाला शरीर और दूसरे अन्य दृष्ट पदार्थ । वास्तव मे तो यह सब दृष्ट पदार्थ भी कभी पहले किसी जीव के शरीर अवश्य रह चुके है, जैसे कि

यह स्तम्भ पृथिवी कायिक जीव का मृत शरीर है और यह चौकी बनस्पति कायिक का । जीव के साथ रहने वाला शरीर भी दो प्रकार का है—एक अदृष्ट कार्माण शरीर और दूसरा यह दृष्ट औदारिक शरीर । चेतन पदार्थ को जीव कहते है सो तो ज्ञानात्मक है । औदारिक शरीर को शरीर कहते है । कार्माण शरीर को कर्म कहते है । अन्य सब दृष्ट पदार्थो को नो कर्म कहते है ।

भले ही जड क्यों न हो, परन्तु कर्म नो कर्म, व शरीर तीनो ही जीव के साथ मिल कर या तो पहले कभी रह चुके है या आगे रहेंगे, इसलिए इनमे भी उपचार से जीव के गुणों का आरोप किया जाना सम्भव है । अत: जीव, शरीर, कर्म, नो कर्म यह चारों ही द्रव्य निक्षेप के विषय बन सकते है ।

इसी कारण द्रव्य निक्षेप के मूल मे दो भेद हो जाते है—आगम व नो आगम । आगम का अर्थ जीव है, क्योंकि उसमे आगम या शास्त्र का ज्ञान प्रकट होना सम्भव है । नो आगम जड़ पदार्थ को कहते है भले ही साक्षात ज्ञान स्वरूप न हो पर ज्ञानवान जीव का साथी अवश्य है । 'नो' का अर्थ 'किञ्चित' होता है । 'नो आगम' का अर्थ है किञ्चित 'शास्त्र ज्ञान रूप' ज्ञाता का सो शरीर है ।

आगम द्रव्य निक्षेप का विषय वह जीव है जो किसी शास्त्र विशेष को जानता तो अवश्य है पर वर्तमान मे उसका उपयोग नही कर रहा है, हा भूत व भविष्यत काल मे उसका उपयोग अवश्य करता था या करेगा । ऐसे उस ज्ञाता को कदाचित उस शास्त्र का ज्ञाता कहा जाने का व्यवहार है जैसे—समायिक सम्बन्धी सर्व प्रक्रियाओ का जानकार भले ही वर्तमान में समायिक न कर रहा हो, फिर भी सामायिक शास्त्र का ज्ञाता कहा जाता है । ऐसा कहना आगम-द्रव्य-निक्षेप का विषय है, क्योकि आगम का अर्थ जीव है, ऐसा हम बता चुके है ।

उसी जीव का शरीर भी उपचार से सामायिक का ज्ञाता कहा जा सकता है। सो वह नो आगम-द्रव्य-निक्षेप का विषय है। या यो कहिये कि वर्तमान उपयोग रहित आगम के ज्ञाता जीव को 'ज्ञाता' कहना तो आगम-द्रव्य-निक्षेप है और उसके शरीर को ज्ञाता कहना नो आगम-द्रव्य-निक्षेप है। आगम या नो आगम तो इसलिये है कि जीव या जीव का शरीर है, और द्रव्य निक्षेप इसलिये है कि वर्तमान मे उपयोग रहित है, पर भूत व भविष्यत मे उसकी सम्भावना अवश्य है।

आगम-द्रव्य-निक्षेप के उपयोग की सम्भावना की अपेक्षा, तीन भेद हो जाते है—भूत, वर्तमान व भावि। पहिले कभी उपयोग कर चुका है उस जीव को वर्तमान मे 'ज्ञाता कहना भूत आगम द्रव्य निक्षेप है। वर्तमान मे साक्षात् रूप से तो उपयोग नही है परन्तु करने की तैयारी कर रहा है, उस जीव को वर्तमान मे ज्ञाता कहना वर्तमान आगम द्रव्य निक्षेप है। इसी प्रकार जो भविष्यत काल मे उपयोग करेगा ऐसे जीव को वर्तमान मे 'ज्ञाता' कहना भावि आगम-द्रव्य-निज्ञेप है।

नो आगम द्रव्य निक्षेप के मूल मे तीन भेद किये जा सकते है—ज्ञायक शरीर, भव्य व तद्व्यतिरिक्त। वर्तमान अनुपयुक्त ज्ञाता के भूत वर्तमान व भावि शरीरो को 'ज्ञाता' कहना ज्ञायक शरीर नो आगम है। वर्तमान मे तो ज्ञाता नही परन्तु आगे ज्ञाता होने वाला है ऐसे भावि ज्ञाता के वर्तमान शरीर को ज्ञाता कहना भव्य नो आगम है। भावि-ज्ञायक-शरीर-नो आगम और भव्य नो आगम मे इतना अन्तर है कि पहिले मे तो जीव वर्तमान मे ज्ञाता है, परन्तु उसका शरीर भावि है और दूसरे मे वह जीव भविष्यत काल मे ज्ञाता होगा अर्थात जीव तो भावि ज्ञाता है और उसका शरीर वर्तमान है। तीसरा भेद तद्व्यतिरिक्त है, अर्थात ज्ञाता जीव व उसके शरीर से अतिरिक्त

जो कुछ भी अन्य पदार्थ उस वर्तमान ज्ञाता के स्वामित्व मे पड़े है उन सबको 'ज्ञाता' कहना तद्वयतिरिक्त नो-आगम-द्रव्य-निक्षेप है । वे पदार्थ कर्म व नो कर्म के भेद से दो प्रकार के हो जाते है । ज्ञानावरणादि कर्मो को 'कर्म' कहते है और धन आदि बाह्य पदार्थो को 'नो कर्म' कहते है ।

वर्तमान ज्ञाता के तीनो कालो के शरीरो की अपेक्षा, ज्ञायक शरीर नो आगम के तीन भेद हो जाते है—भूत, वर्तमान व भावि । वर्तमान मे उपयोग रहित ऐसे ज्ञाता जीव का भूत कालीन शरीर कदाचित 'ज्ञाता' कहा जा सकता है जैसे मारीच के शरीर को भगवान वीर कहना । यह भूत-ज्ञायक-शरीर नो आगम-द्रव्य-निक्षेप का विषय है । और इसी प्रकार उसी ज्ञाता के वर्तमान शरीर को 'ज्ञाता' कहना वर्तमान-ज्ञायक-शरीर-नो आगम-द्रव्य-निक्षेप का और उसी के भावि शरीर को 'ज्ञाता' कहना भावि-ज्ञायक-शरीर-नो आगम-द्रव्य-निक्षेप का विषय है । वर्तमान मे उपयुक्त न होने के कारण यह द्रव्य निक्षेप है, शरीर का ग्रहण होने के कारण नो आगम है, वर्तमान वाले ज्ञाता के शरीरो का ग्रहण होने से ज्ञायक शरीर है । इसलिये इसका नाम 'ज्ञायक शरीर नो आगमद्रव्य निक्षेप' कहना युक्त है ।

ज्ञायक के तीनो कालों सम्बन्धी शरीरों मे से भूत कालीन शरीर भी तीन प्रकार का होता है—च्युत, च्यावित, व त्यक्त । आयु पूर्ण हो जाने पर छूटे हुए शरीर को च्युत कहते है । आत्म हत्या द्वारा या किन्ही रोग आदि बाह्य कारणों से छुड़ाये गए शरीर को च्यावित कहते है । और समाधि मरण द्वारा छोडे गये शरीर को त्यक्त कहते है । ये तीनों ही शरीर मृत हो जाने के कारण भूत कालीन है । इन मे से भी अन्तिम जो त्यक्त शरीर है वह तीन प्रकार का है—भक्त प्रत्याख्यान समाधि द्वारा छोड़ा हुआ, इगिनी समाधि द्वारा छोड़ा हुआ और प्रायोपगमन समाधि द्वारा छोड़ा गया ।

आहार को धीरे धीरे कम करते हुए शरीर को कृश करके, वीतराग भाव से शरीर के त्याग ने को समाधि कहते हैं। आहार कम करने की अपेक्षा तीनो ही समाधियो मे कोई अन्तर नही है। अन्तर केवल बाह्य सेवा व वैयावृत्ति मे है। मृत्यु आने से पहिले समाधि गत उस शरीर की स्वयं भी सेवा कर लेता है और दूसरे से भी करा लेता है, वह भक्त प्रत्याख्यान समाधि है। दूसरे से सेवा नहीं कराता पर स्वयं कर लेता है व इंगिनी समाधि है। न दूसरे से सेवा कराता है और न स्वयं ही करता है। काष्ठ वत् एक कर्वट पर पड रहता है, और इसी अवस्था मे शरीर को त्याग देता है, वह प्रायोपगमन समाधि है। इन तीनो मे से प्रथम जो भक्त प्रत्याख्यान समाधि है, वह तीन प्रकार है–उत्तम, मध्यम व जघन्य। १२ वर्ष तक धीरे धीरे आहार कम करते रहकर शरीर को छोड़ना उत्तम है। अन्तिम समय आ जाने पर केवल अन्तर्मुहूर्त मात्र के लिये आहार छोड़कर शरीर का त्याग करना जघन्य है। और मध्य गत हीनाधिक काल पर्यन्त यथा शक्ति आहार कम करते हुए शरीर को छोड़ना माध्यम है। उस उस प्रकार से छोडे गए शरीर को 'ज्ञाता' कहना उस उस नाम वाला भूत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य निक्षेप है।

जैसा कि पहिले बताया गया है, शरीर के अतिरिक्त भी कुछ जड़ पदार्थ लोक मे है, जो न जीव है और न जीव के शरीर, इन से अतिरिक्त ही कुछ है, इसलिये वे तद्व्यतिरिक्त कहलाते है। इसमे दो जाति के पदार्थ गर्भित है–कर्म व नो कर्म। ज्ञानावरणादि कर्मो का नाम 'कर्म' है और सर्व दृष्ट जड़ पदार्थ 'नो-कर्म' है।

कर्मो को ज्ञाता कहना कर्म तद्व्यातिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप है और नो कर्मो को अर्थात धन मकान आदि को ज्ञाता कहना नो कर्म तद्व्यातिरिक्त नो-आगम द्रव्य निक्षेप है। नो कर्म भी दो प्रकार का होता है–लौकिक व लोकोत्तर। रागादि के पोषक पदार्थ लौकिक

नो कर्म है, या यो कहिए कि ससार के लौकिक व्यापारो मे काम आने वाले धन आदिक पदार्थ लौकिक है, और मोक्षमार्ग के लोकोत्तर व्यापार मे काम आने वाले चैत्यालय आदि पदार्थ लोकोत्तर है। यह दोनो ही तीन तीन प्रकार है—सचित्त आचित्त और मिश्र। जीवित शरीर को सचित कहते है। निर्जीव पदार्थ को अचित्त कहते है। सचित्त और अचित्त के समूह को मिश्र कहते है।

ये तीनो ही जाति के पदार्थ लौकिक व लोकोत्तर दोनो ही दिशाओं मे यथा योग्य रूप से काम आते है। पिता पुत्र आदि या कुटुम्बी जनो के शरीर लौकिक सचित्त नो कर्म है। धन मकानादि लौकिक अचित्त नो कर्म है। तथा कुटुम्ब सहित धनादि से भरा हुआ घर लौकिक मिश्र नो कर्म है। क्योंकि यह तीनो ही जाति के पदार्थ राग पोपक है, और लौकिक व्यापार मे ही काम आते है, इसलिए इनको ज्ञाता कहना उस उस जाति का लौकिक नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य निक्षेप है।

आचार्य व साधु आदि के शरीर लोकोत्तर सचित्त नोकर्म है शास्त्र चैत्यालय आदि लोकोत्तर अचित्त नोकर्म है, तथा शास्त्र पढाते हुए गुरु या साधुओं सहित मन्दिर लोकोत्तर मिश्र नोकर्म है। क्योकि ये तीनो हो जाति के पदार्थ वीतरागता के पोषक है, तथा मोक्ष सम्बन्धी व्यापार मे काम आते है, इसलिए इनको ज्ञाता कहना लोकोत्तर नो कर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य निक्षेप है।

यहा यह शका हो सकती है कि जीव को ज्ञाता कहना तो कदाचित ठीक भी है, क्योकि ज्ञान उसका गुण है, परन्तु शरीरो या धन आदि पदार्थों को ज्ञाता कहना तो बिल्कुल युक्त नही है। सो ऐसी आशंका योग्य नही, क्योकि किसी व्यक्ति के चित्र को भी 'यह अमुक व्यक्ति है' ऐसा कहने का व्यवहार देखा जाता है, अथवा रिक्शा वाले को बुलानेके लिये 'ओ रिक्शा' इस प्रकार बुलाने का व्यवहार भी देखा

जाता है । गुण-गुणी सम्बन्ध, पर्याय पर्याय सम्बन्ध अथवा निमित्त नैमित्तिक व स्वामित्व सम्बन्ध, इन सर्व प्रकार के सम्बन्धो रूप द्वैत अद्वैत देखना द्रव्यार्थिक नय का कामहै । अत इस दृष्टि मे शरीरों आदि को भी 'ज्ञाता' कह देंना विरोध को प्राप्त नही होता । सारांश यह कि जीव को, या उसके शरीर को, या उसके ज्ञानावरणादि कर्मो को, या उसके धन कुटुम्बादि को, उस जीव सामान्य के साथ कोई न कोई सम्बन्ध होने के कारण उसी 'जीव रूप या उस की किस पर्याय रूप कह देना द्रव्य निक्षेप है । क्योकि द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिक नय का विषय है ।

अब द्रव्य निक्षेप सामान्य व विशेष के लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ निम्न उद्धरण देखिये ।

१. द्रव्य निक्षेप सामान्य —

१. स.सि.।१।५।४६ "गुणैर्गुणान्वा द्रुतगत गुणैर्द्राष्यते गुणान्द्रोष्यतीति व द्रव्यम् ।"

अर्थ—जो गुणो को प्राप्त हुआ था अथवा जो गुणो को प्राप्त होगा उसे द्रव्य कहते है ।

२. रा.वा.।१।५।३,४।२८ "अनागतपरिणामविशेष प्रतिगृहीताभिमुख द्रव्यम् । अयद्भाविपरिणामप्राप्ति प्रति योग्यतामादधान तद् द्रव्यभित्युच्यते । अ अथवा अतद्भाववाद्रव्यायित्युच्यते । यथेन्द्रार्थमानीत काष्ठमिन्द्रप्रतिमापर्यायप्राप्तिं प्रत्यभिमुख 'इन्द्र.' इत्युच्यते ।"

अर्थः—अनागत परिणाम विशेष को ग्रहण करने के अभिमुख द्रव्य होता है । अर्थात आगामी पर्याय की योग्यता वाले उस पदार्थ को द्रव्य कहते है जो उस समय उस पर्याय के

अभिमुख हो। जैसे इन्द्र प्रतिमा के लिए लाये गये काष्ठ को भी इन्द्र कहना।

३. ध.पु.१।पृ.२०।२३ "आगे होने वाली पर्याय को ग्रहण करने के सम्मुख हुए द्रव्य को (उस पर्याय की अपेक्षा) द्रव्य निक्षेप कहते है। अथवा वर्तमान पर्याय की विवक्षा रहित द्रव्य को द्रव्य निक्षेप कहते हैं। वह आगम व नोआगम के भेद से दो प्रकार का है।"

(स.सा.।१३।आ.कलश८कीटीका) (त.सा।१।१२।११) (प्र सा।त.प्र.। परि०।नयन.१२) (वृ.न.च।२७४)

२. आगम द्रव्य निक्षेप —

१ ध.।पु १।पृ२०।२७ "आगम, सिद्धात और प्रवचन ये शब्द एकार्थ वाची है।····मगल प्राभृत अर्थात मंगल विषयक शास्त्र को जानने वाला किन्तु वर्तमान मे उस के उपयोग से रहित जीव को (अर्थात चेतन द्रव्य को) आगम द्रव्य मगल कहते है।"

(इस के तीन भेद किये जा सकते है—भूत वर्तमान व भावि क्योकि वह जीव भूतकाल मे उपयोग वाला हो चुका है, अथवा वर्तमान मे कुछ उपयोग वाला और कुछ अनुपयोग वाला है तथा भविष्यत काल मे उपयोग वाला हो जायेगा।

(स सि।१।५।४८) (रा०व।१।५।६।२९) (रल वा।पु २।पृ २६७) (गोक मू।५४।५३) (वृ न च।२७४)

३. नोआगम द्रव्य निक्षेप सामान्य —

१ ध.।पु १।पृ.२०।२७ "आगम से भिन्न पदार्थ को नोआगम कहते हैं।···नोआगम द्रव्य मगल तीन प्रकार का है--ज्ञायक शरीर, भव्य व तद्व्यतिरिक्त।"

४. ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य निक्षेप —

१. ध ।पू.१।पृ. २१।२२ "**ज्ञायक शरीर** नो आगम द्रव्य मगल भी तीन प्रकार का समझना चाहिये । मगल विषयक शास्त्र का अथवा केवल ज्ञानादि रूप मगल पर्याय का (वर्तमान मे) आधार होने से भावि शरीर, वर्तमान शरीर, और अतीत शरीर, इस प्रकार ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य निक्षेप के तीन भेद हो जाते है ।"

क्रमश–२. ध ।पू.१।पृ.२२।२६ "उन मे अतीत शरीर के तीन भेद हैं–च्युत च्यावित व त्यक्त ।

च्युत:–कदलीघात मरण के बिना कर्म के उदय से झड़ने वाले आयुकर्म के क्षय से पके हुए फल के समान अपने आप पतित शरीर को च्युत शरीर कहते है ।

च्यावित:–कदलीघात के द्वारा आयु के छिन्न हो जाने से छूटे हुए शरीर को च्यावित शरीर कहते है ।

त्यक्त:–त्यक्त शरीर तीन प्रकार का होता है–प्रायोपगमन विधान से छोड़ा गया, इगिनी विधान से छोडा गया और भक्त प्रत्याख्यान विधान से छोड़ा गया । इस प्रकार इन निमित्तो से त्यक्त शरीर के तीन भेद हो जाते है ।"

क्रमश—ध।पू.१।पृ.२३।१५ "**प्रायोपगमन**—अपने और पर के उपकार की अपेक्षा रहित समाधि-मरण को प्रायोपगमन विधान कहते हैं ।"...

इंगिनी—जिस सन्यास मे अपने द्वारा किये गये उपकार की अपेक्षा रहती है, किन्तु दूसरे के द्वारा किये गये उपकार की अपेक्षा सर्वथा नही रहती उसे इगिनी समाधि कहते है ।...

भक्त प्रत्याख्यान –जिस सन्यास मे अपने और दूसरे (दोनो) के द्वारा किये गये उपकार की अपेक्षा रहती है उसे भक्त प्रत्याख्यान सन्यास कहते है ।"

(स सि ।१।५।४६) रा. वा.।१।५।७।२६) (गो क.।मू ५६-६१)

५. भव्य नो आगम द्रव्य निक्षेप—

१ ध.।पु १।पृ २६।१६ "जो जीव भविष्यत काल मे मंगल शास्त्र का जानने वाला होगा अथवा मगल पर्याय से परिणत होगा उसे (अर्थात उसके वर्तमान शरीर को मगल कहना या ज्ञाता कहना) भव्य नो आगम द्रव्य निक्षेप कहते है ।"

(स सि ।१।५।५०) (रा. वा ।१।५।७।२६) (गो. क,।मू.।६२)

६. तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप--

१ धपु। १। पृ २६।२५ "कर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मगल और नो कर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मंगल के भेद से तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य मगल दो प्रकार का है ।

कर्म तद्व्यतिरिक्त--उनमे जीव के प्रदेशों से वन्धे हुए तीर्थ कर नाम कर्म को कर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य मंगल कहते है, क्योंकि वह भी मगल पने का सहकारी कारण है।

नोकर्म तद्व्यतिरिक्त—नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य मगल दो प्रकार का है–एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर ।

उन दोनो मे से **लौकिक मंगल** सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है । इन मे श्वेत सरसो, जल से भरा हुआ कलश, वन्दनमाला, छत्र, श्वेतवर्ण, और दर्पण आदि अचित्त द्रव्य मगल है । और वाल कन्या तथा उत्तम जाति का घोड़ा आदि सचित्त मगल है ।

अलकार सहित कन्या आदि मिश्र मंगल समझने चाहिये । यहां पर अलंकार अचित्त और कन्या सचित्त होने के कारण अलकार सहित कन्या को मिश्र मगल कहा है ।

लोकोत्तर मंगलः—भी सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है । अरहत आदि का अनादि और अनन्तस्वरूप जीव-द्रव्य सचित लोकोत्तर नोआगम तद्वयतिरिक्त द्रव्य मगल है । यहा पर केवल ज्ञानादि मगल पर्याय युक्त अरहंत आदिक का ग्रहण नही करना चाहिये, किंतु उनके सामान्य जीव द्रव्य का ही ग्रहण करना चाहिये, क्योकि वर्तमान पर्याय सहित द्रव्य का भाव निक्षेप मे अन्तर्भाव होता है ।....कृत्रिम और अकृत्रिम चेत्यालयादि अचित लोकोत्तर नोआगम तद्वयतिरिक्त द्रव्य मंगल है । उन चैत्यालयो मे स्थित प्रतिमाओ का इस निक्षेप मे ग्रहण नही करना चाहिये, क्योकि उनका स्थापना निक्षेप मे अन्तर्भाव होता है । ....उक्त दोनो प्रकार के सचित्त और अचित्त मगल को मिश्रमगल कहते है ।"
(गो.क ।मू व जी प्र.। ६३-७१)

७ भाव निक्षेप

द्रव्य निक्षेप का कथन हो चुका अब भाव निक्षेप का स्वरूप कहते है । वही ज्ञाता जीव यदि वर्तमान मे उसके उपयोग से भी सहित हो जाए तो वही जीव भाव निक्षेप का विषय बन जाता है, क्योकि साक्षात कार्य रूप से परिणत द्रव्य को भाव कहते है । इस मे कोई भी उपचार नही है । जैसा काम करहा है वैसा नाम लेदेते है, जैसे रोगी की परीक्षा करते समय ही डाक्टर को डाक्टर कहना, या शिकार खेलते हुए ही किसी व्यक्ति को शिकारी कहना, अन्य कुछ काम करते हुए को नही । द्रव्य निक्षेप मे उस उस व्यक्ति मे कार्य करने की योग्यता मात्र या सम्भावना मात्र को देख कर ही उस उस का वह वह नाम रख देना सहन कर लिया जाता था, भले ही वह कार्य उस समय न कर रहा है । परन्तु भाव निक्षेप मे तो उस उसको वह नाम देना उसी समय सम्भव है, जब कि वह वह कार्य कर रहा हो,

अन्य समयों मे नही । इसलिये ऐसा नाम साक्षात रूप से सत्य है । द्रव्य निक्षेप का विषय अनेक पर्यायों का पिण्ड द्रव्य है और इसका विषय केवल एक समय की पर्याय वाला द्रव्य है । इस कारण द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा यह अधिक सूक्ष्म व सत्य है ।

उपयोग की योग्यता केवल जीव मे ही है शरीर मे नही, इसलिये इस निक्षेप मे केवल जीव पदार्थ ही ग्रहण किया जाता है शरीर नही । इसके भी दो भेद है–आगम भाव निक्षेप और नोआगम भाव निक्षेप । वर्तमान मे उस उस विषय सम्बन्धी शास्त्र के उपयोग मे लगा हुआ जीव उस उस विषय सम्बन्धी आगम भाव निक्षेप का विषय है । और शास्त्र की अपेक्षा न कर के उसके अर्थ मे उपयुक्त जीव नोआगम भाव निक्षेप का विषय है । जैसे सामायिक शास्त्र के अध्ययन मे उपयुक्त जीव आगम भाव सामायिक है, और स्वतत्र रूप से सामायिक शास्त्र के अर्थ का विचार करने वाला जीव नोआगम भाव सामायिक है ।

क्योंकि साक्षात कार्य परिणत जीव ही इसका विषय है इसलिये यहा कर्म, नोकर्म, व शरीर का ग्रहण नोआगम मे भी नही किया जा सकता कर्म फल का ग्रहण हो सकता है, पर वह भी जीव विपाकी का, पुद्गल विपाकी का नही । क्योकि जीव विपाकी का व्यापार ही जीव मे होता है, पुद्गल विपाकी का व्यापार शरीर मे होता है, जिसे उपयोग रूप नही कहा जा सकता ।

नो आगम भाव निक्षेप के दो भेद हो जाते है–उपयुक्त व तत्परिणत । शास्त्र का आश्रय लिये बिना केवल आगम के शब्दार्थ मे उपयुक्त जीव को ज्ञाता कहना उपयुक्त नोआगम भाव निक्षेप है, और स्वय उसरूप परिणत हो गया हो उसको ज्ञाता कहना तत्परिणत नोआगम भाव निक्षेप है । जैसे 'सामायिक इस प्रकार की जाती है' इत्यादि रूप सामायिक सम्बन्धी अर्थ का विचार करने वाला व्यक्ति सामायिक के विषय मे उपयुक्त कहलाता है और सामायिक

करते हुए साम्य भाव में स्थित व्यक्ति सामायिक रूप से परिणत कहलाता है ।

अब इन्ही लक्षणों की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये ।

भाव निक्षेप सामान्यः—

१. स. सि ।१।५।४६ "वर्तमान पर्यययोपलक्षितं द्रव्यं भावः ।"

अर्थः—वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते है ।

२ रा वा.।१।५।८।२६ "वर्तमानतत्पर्यायो पलक्षितं द्रव्यं भावः ।८।
यथा इन्द्रनामकर्मोदयापादितेन्दन
क्रियापर्यायपरिणत आत्मा भावेन्द्रः ।"

अर्थः—वर्तमान उस द्रव्य पर्याय से विशिष्ट द्रव्य को भाव जीव कहते है । जैसे इन्द्र नाम कर्म के उदय से होने वाली इन्दन या ऐश्वर्य भोग क्रिया से परिणत आत्मा को इन्द्र कहना ।

(स सा।१३। आ कलश ८ की टीका) (प्र सा । त प्र । परि०। नय न० १३) (वृ न च । २७६) (त सा । १ । १३ । १२) (गो. क । मू. । ६५)

३ ध ।पु १।पृ २६।२० "वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते हैं । वह आगम भाव मगल और नोआगम भाव मगल के भेद से दो प्रकार का है ।"

२. आगम भाव निक्षेप —

१ ध पु १।पृ.२६।२१ "आगम सिद्धान्त को कहते है । इसलिये जो मगल विषयक शास्त्र का ज्ञाता होते हुए वर्तमान में

उसमे उपयुक्त है उसे (उस जीव सामान्य को) आगम भाव मगल कहते है।"

(स सि १।५।५१) (रा. वा १।५।१०।२९) (गो. क।मू। ६५) (वृ न च।२७६)

३. नो आगम भाव निक्षेप —

१ ध.।पु१।पृ-२९।२२ "नो आगम भाव मंगल, उपयुक्त और तत्परिणत के भेद से दो प्रकार है। ३

उपयुक्त नो आगमः—जो आगम के बिना ही मगल के अर्थ मे उपयुक्त है उसे उपयुक्त नो आगम भाव मगल कहते है।

तत्परिणत नो आगम—मंगल रूप पर्याय अर्थात जिनेन्द्र देव आदि की वन्दना, भाव स्तुति आदि मे परिणत जीव को तत्परिणत नो आगम भाव मगल कहते हैं।"

२ स सि.।१।५।५२ "जीवन पर्यायेण मनुष्य जीवत्वपर्यायेण वा समाविष्ट आत्मा नो आगम भावजीव ।"

अर्थ—जीवन पर्याय से युक्त या मनुष्य जीवन पर्याय से युक्त आत्मा नो आगम भाव जीव या नो आगम भाव मनुष्य कहलाता है।

(रा वा।१।५।११।२९) वृ न च।२७७)

३ गोक.।मू।६६ "नो आगम भावः पुनः कर्म फल भुंजमान को जीवः।—।६६।"

अर्थः—कर्म के उदय फल को भोगने वाला जीव नो आगम भाव कर्म है।

क्रमश—गो. क.।म् ।८६ "नो आगम भाव. पुन. स्वकस्वककर्म फलसंयुतो जीवः। पुद्गलविपाकीना नास्ति खलु नोआगमो भाव. ।८६।"

अर्थ.—जिस जिस प्रकृति का जो जो फल है तिसतिस अपने अपने फल को भोगता जीव तिसतिस प्रकृति का नो आगम भाव कर्म जानना।

नोटः—(इन दोनों उद्धदरणों में 'कर्म' के विषय पर निक्षेप लागू करके दिखाया है।)

निक्षेप के यह सामान्य लक्षण बताए, इनको जिस किस विषय

८. निक्षेप के कारण प्रयोजन

पर लागू किया जा सकता है। जिस विषय का ज्ञाता प्रकृत हो उसी प्रकार का निक्षेप उसमे किया जाना चाहिये—जैसे सामायिक शास्त्र के ज्ञाता को सामायिक कहना और मगल शास्त्र के ज्ञाता को मंगल कहना। लक्षणो मे दिये गये उद्धरणों मे 'मंगल' के विषय पर निक्षेपों को लागू करके दिखाया गया है।

शब्द व्यवहार लोक मे चारों ही अपेक्षाओं से चलता है। चारों ही किसी न किसी अपेक्षा सत्य है, क्योकि श्रोता के ज्ञान को खेच कर अपने वाच्य पदार्थ के साथ जोडने मे सर्व ही समर्थ है। यद्यपि चारो ही सत्य है पर फिर भी चारों मे उत्तरोत्तर अधिकाधिक सूक्ष्मता व सत्यता है। नाम निक्षेप केवल काल्पनिक सत्य है। स्थापना निक्षेप यद्यपि भी काल्पनिक सत्य है पर नाम निक्षेप की अपेक्षा अधिक। द्रव्य निक्षेप भूत भविष्यत काल की अपेक्षा वस्तुभूत सत्य है और भाव निक्षेप साक्षात सत्य है। शब्द व्यवहार की यह सत्यता ही इन निक्षेपों की उत्पत्ति का कारण है। या यों कहिये कि पदार्थ व शब्द मे वाच्य वाचक सम्बन्ध होना ही इन का कारण है।

निक्षेपों को छोडकर वर्णन किया गया सिद्धान्त संभव है कि वक्ता व श्रोता दोनों को कुमार्ग मे ले जावे, इसलिये निक्षेपों का कथन अवश्य करना चाहिये । जहा उस उस विषय के सम्बन्ध में बहुत जानकारी हो वहा पर नियम से वक्ता को सभी मूल व उत्तर निक्षेपो के द्वारा उन विषयों का विचार करना चाहिये । और जहा पर बहुत न जाने तो वहा पर चार मूल निक्षेप अवश्य करने चाहिये अर्थात चार निक्षेपो के द्वारा उस वस्तु का विचार अवश्य करना चाहिये । कहा भी है –

> ध ।पु १।पृ ३१ "श्रोता तीन प्रकार के होते है–पहिला अव्युत्पन्न अर्थात वस्तु-स्वरूप से अनभिज्ञ, दूसरा सपूर्ण विवक्षित पदार्थ को जानने वाला, और तीसरा एक देश विवक्षित पदार्थ को जानने वाला । इनमे से पहिला श्रोता अव्युत्पन्न होने के कारण विवक्षित शब्द या पद के अर्थ को कुछ भी नही समझता । दूसरा 'यहा पर इस पद का कौनसा अर्थ अधिकृत है' इस प्रकार विवक्षित पद के अर्थ में सन्देह करता है अथवा प्रकरण प्राप्त अर्थ को छोड़ कर दूसरे अर्थ को ग्रहण करके विपरीत समझता है । दूसरी जाति के श्रोता के समान तीसरी जाति का श्रोता भी प्रकृत पद के अर्थ म या तो सन्देह करता है, अथवा विपरीत निश्चय कर लेता है ।

इन मे से यदि अव्युत्पन्न श्रोता पर्यायार्थिक नय की अपेज्ञा वस्तु की किसी विवज्ञित पर्याय को जानना जाहता है तो उस अव्युत्पन्न श्रोता को प्रकृत विषय की व्युत्पत्ति के द्वारा अप्रकृत विषय का निराकरण करने के लिये निक्षेप का कथन करना चाहिये । यदि वह अव्युत्पन्न श्रोता द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सामान्य रूप से किसी वस्तु-का स्वरूप जानना चाहता है, तो भी निक्षेपो के द्वारा प्रकृत पदार्थ का

प्ररूपण करने के लिये सम्पूर्ण निक्षेपों का कथन किया जाता है (अर्थात उस प्ररूपणा मे सर्व ही निक्षेपों को लागू करके दिखाया जाता है,) क्योकि विशेष धर्म के निर्णय के बिना विधि का निर्णय नहीं हो सकता है । दूसरी और तीसरी जाति के श्रोताओ को यदि सन्देह हो, तो उनके सन्देह को दूर करने के लिये भी सम्पूर्ण निक्षेपों का कथन किया जाता है । और यदि उन्हें विपरीत ज्ञान हो गया हो तो प्रकृत अर्थात विवक्षित वस्तु के निर्णय के लिये भी सम्पूर्ण निक्षेपो का कथन किया जाता है कहा भी है–

"अवगय णिवारणट्ठं पयदस्स परूवणा णिमित्त च ।
ससय विणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठं च ।१५।"

अर्थ–अप्रकृत विषय के निवारण करने के लिये, प्रकृत विषय के प्ररूपण करने के लिये, सशय का विनाश करने के लिये और तत्वार्थ का निश्चय करने के लिये निक्षेपो का कथन करना चाहिये। यह निक्षेपो के प्रयोग का प्रयोजन है ।

६. निक्षेपो का नयो मे अन्तर्भाव

निक्षेपों का पृथक कथन करने पर ऐसा भ्रम हो सकता है कि इन का विषय नयों से पृथक कुछ अन्य ही है । वास्तव मे ऐसा नही है। कोई भी विषय लोक में ऐसा नही जो नयों के पेट मे न समा जाये । अत: निक्षेपों का कोई स्वतंत्र विषय हो ऐसी बात नही ।

शंका:–फिर नय व निक्षेप में क्या अन्तर है ?

उत्तर:–इस शंका का उत्तर आगम मे निम्न प्रकार दिया है, उस पर से ही शंका का निवारण हो जाता है ।

१. ध.।पु.१।श्ल १२।पृ.१७ "ज्ञान प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास इत्युच्यते । नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थ परिग्रहः ।११।"

अर्थः—अभेद ज्ञान को प्रमाण कहते हे । नामादि के द्वारा वस्तु में भेद करने को न्यास या निक्षेप कहते है । और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं । इस प्रकार युक्ति से अर्थात प्रमाण नय और निक्षेप के द्वारा पदार्थ का ग्रहण अथवा निर्णय करना चाहिये ।

(ति. प. ।१।८३) (ध्य.।पु ३।श्ल. १५।पृ. १८)

२. वृ न च ।१७२ "वस्तु प्रमाणविषयं नयविषयोभवति वस्त्वेकाशः । यो द्वाभ्या निर्णीतार्थं मनिक्षेपे भवेद्विषय. ।१७२।"

अर्थ —अखण्ड वस्तु प्रमाण का विषय है । नय का विषय वस्तु का एक अश है । जो इन दोनो नय व प्रमाण द्वारा निर्णीत पदार्थ है वही निक्षेप का विषय है ।

३ प.।ध।पू०।७३९-७४० "ननु निक्षेपो न नयो न च प्रमाण न चाशक तस्य । पृथगुद्देश्यत्वादपि पृथगिव लक्ष्यं स्वलक्षणादिति चेत् ।७३९। सत्य गुणसापेक्षो सविपक्ष. स च नय. स्वयक्षिपति । य इह गुणाक्षेपः स्यादुपचरित. केवल स निक्षेप ।७४०। "

अर्थ —शका कार कहता है कि निक्षेप न तो नय है तथा न प्रमाण है तथा न प्रमाण या उसका अश है, परन्तु निक्षेप का पृथक् उद्देश होने से अपने लक्षण से वह पृथक ही लक्षित होता है ।७३९।

इस के उत्तर मे कहते है कि ठीक है, परन्तु गुणो की अपेक्षा से उत्पन्न होने वाले तथा विपक्ष की अपेक्षा रखने वाले जो नय है, उन

का जो स्वय क्षेपण करता है अर्थात् 'इस प्रकार का यह' ऐसा केवल उपचरित गुण का आक्षेप करता है वही निक्षेप कहलाता है ।

नय व निक्षेप मे क्या अन्तर है यह बात प्रकरण न० १ मे स्पष्ट की जा चुकी है । यहा तो केवल इतना कहना इष्ट है कि अर्थ या पदार्थ की अपेक्षा समानता रखने के कारण निक्षेपो को यथा योग्य रूप मे नयो मे गर्भित किया जा सकता है । क्योकि निक्षेपो का काम वस्तु का प्रतिपादन करना मात्र है हेयोपादेयता दर्शाना नही, इस लिये इन का अन्तर्भाव आगम नयो मे ही किया जा सकता है, अध्यात्म नयो मे नही । जैसा कि नीचे दर्शाया गया है ।

१ नाम निक्षेप—

इस का अन्तर्भाव नैगम नय अथवा उस के भेद जो सग्रह व व्यवहार इन द्रव्यार्थिक नयो मे होता है । कारण यह है कि नाम निक्षेप का व्यापार किसी पदार्थ का नाम रखना है । वाच्य वाचक रूप द्वैत भाव के बिना वह सम्भव नही है । पर्याय क्षण वर्ती होती है इसलिये उसमे शब्द द्वारा सकेत करना नही बन सकता, क्योकि जिस समय शब्द बोला जायेगा उस समय पर्याय विनष्ट हो चुकी होगी, तब वह शब्द किसी को वाच्य बनायेगा । स्थायी वस्तु का ही कोई नाम रखा जा सकता है अत नाम निक्षेप द्रव्यार्थिक है ।

यहा यह शका हो सकती है कि तीनो शब्द नय पर्यायार्थिक है । वहा शब्द व्यवहार कैसे सम्भव है । इसका उत्तर यही है कि अर्थगत भेद की वहा प्रधानता नही है शब्द की प्रधानता है । शब्द स्वयं पर्याय स्वरूप ही होता है । इस लिये उस को विषय करने वाले शब्द नय पर्यायार्थिक कहे गए है । इस लिये पर्यायार्थिक नयो द्वारा शब्द व्यवहार होने मे कोई विरोध नही ।

नाम निक्षेप के शब्द व्यवहार का आश्रय लेकर यदि विचारा जाये तो पर्यायार्थिक ऋजुसूत्र मे भी इसका अन्तर्भाव करने मे कोई विरोध नही है। भले ही शब्द बोलते समय सामने उस की वाच्य भूत पर्याय न हो पर शब्द पर से उसका ज्ञान मे ग्रहण हो अवश्य जाता है। या यो कह लीजिये की चिरस्थायी व्यन्जन पर्यायो को वाच्य बनाने की अपेक्षा यह पर्यायार्थिक नय मे गर्भित किया जा सकता है।

इस प्रकार नाम निक्षेप का द्रव्यार्थिक व पर्यार्थिक दोनो नयो मे कथान्चित अन्तर्भाव हो जाता है।

२. स्थापना निक्षेप—

स्थापना निक्षेप का केवल द्रव्यार्थिक (नैगम, सग्रह व व्यवहार) मे ही अन्तर्भाव होता है पर्यायार्थिक मे नही। कारण कि यहां तदाकार व अतदाकार स्वरूप से द्रव्य का ही ग्रहण होता है। पर्याय मे द्रव्य की स्थापना नही की जा सकती। दूसरे जिस की स्थापना की जाये उस द्रव्य की, जिस मे स्थापना की जाये उस द्रव्य के साथ एकता का भाव ग्रहण हुए बिना स्थापना अपने प्रयोजन की सिद्धि नही कर सकती। दो भिन्न पदार्थो मे 'यह वही है' इस प्रकार कथञ्चित एकता करने के कारण यह व्यवहार नय रूप ही है ऋजुसूत्र नय रूप नही। अतः इसे द्रव्यार्थिक नय का विषय ही समझना चाहिये।

३. द्रव्य निक्षेप—

द्रव्य निक्षेप तो स्पष्ट रूप से द्रव्यर्थिक है ही, क्योकि बिना त्रिकाली द्रव्य को ग्रहण किये भूत वर्तमान व भविष्यत की पर्यायो मे एकता का आरोप नही किया जा सकता। दूसरे जीव तथा शरीर इन दो पदार्थो की अथवा अन्य कर्म व नो कर्मादिको की एकता का -

व्यवहार संग्रह व व्यवहार नय का ही विषय है जो द्रव्यार्थिक है। यह दोनों नये नैगम नय के ही अग है अत. द्रव्य निक्षेप का अन्तर्भाव नैगम, संग्रहण व व्यवहार तीनो मे किया जा सकता है।

इतना होते हुए भी द्रव्य पर्याय की अपेक्षा यह स्थूल ऋजुसूत्र का भी विषय कहा जा सकता है। द्रव्य पर्याय मे भी काल भेद अथवा जीव शरीर भे रूप द्वैत देखा जाता है। इस द्रव्य पर्याय को द्रव्य निक्षेप विषय करता है, इसलिये इसे पर्यायार्थिक कहने मे भी कोई निरोध नही है।

४. भाव निक्षेप—

भाव निक्षेप पयायार्थिक रूप है, क्योकि एक समय की पर्याय से परिणत द्रव्य का ही इस मे ग्रहण होता है, बिल्कुल उस प्रकार जिस प्रकार कि एव भूत नय मे। अत भाव निक्षेप का अन्तर्भाव एवभूत नय मे होता है।

फिर भी स्थूल ऋजुसूत्र की विषय भूत स्थूल व्यञ्जन पर्याय से उपलक्षित द्रव्य कथञ्चित द्रव्य स्वीकारा गया है। और भाव निक्षेप उसे विषय करता है। इसलिये इसे द्रव्यार्थिक मानने मे भी कोई विरोध नही।

संक्षिप्त रूप से इन चारों का नयों के साथ सम्बन्ध निम्न चार्ट पर से पढा जा सकता है।

—०० —

नं.	निक्षेप	नय	अन्तर्भाव मे हेतु
१	नाम	द्रव्यार्थिक नैगम, संग्रह व व्यवहार कथञ्चित पर्यायार्थिक	वाच्यवाचक सम्बन्ध को सार्वकालिक निश्चय के विना शब्द व्यवहार असम्भव है। नाम या शब्द के विना पर्याय का कथन नही किया जा सकता, अर्थात् द्रव्य पर्याय का वाचक शब्द भी पर्यायार्थिक है।
२.	स्थापना	द्रव्यार्थिक नैगम, संग्रह व व्यवहार	द्रव्व का परिचय देने के कारण, अथवा जिसकी स्थापना की जाये और जिस पदार्थ मे की जाये, ऐसे दोनो पदार्थो मे आधार आधेय भाव रूप द्वैत के कारण।
३.	द्रव्य	द्रव्यार्थिक नैगम, सग्रह व व्यवहार कथञ्चित पर्यायार्थिक	त्रिकाली द्रव्य का आश्रय होने पर ही भूत व भावि को वर्तमान मे निक्षिप्त किया जा सकता है। ऋजु सूत्र के विषय भूत द्रव्य पर्याय को कथञ्चित द्रव्य स्वीकार किया गया है।
४.	भाव	पर्यायार्थिक	वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्य को विपय करता है।
		द्रव्यार्थिक	वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को कथञ्चित द्रव्य स्वीकार किया गया है।

समाप्त